

UNIVERSAL
LIBRARY

OU 180806

UNIVERSAL
LIBRARY

OUTP-390--29-4-72-21400

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H891.21

Accession No. P. G. H1159

Author 1721H

Title हिन्दी में भारत : 350 वर्ष

This book should be returned on or before the date last marked below

३६

हिन्दी महाभारत

१७



आवश्यक सूचनायें

(१) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी । इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्व-पूर्ण श्लोक, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा । उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे ।

(२) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, बदाय, काशी (रामनगर), कलकत्ता, गाज़ापुर, बरेली, मथुरा (वृन्दावन), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है । अब तक ग्राहकों के पास यहाँ से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा । इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप से मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्ट्री तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायेंगे । इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा । यद्येष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा । आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे । और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचें तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न बढ़ाना पड़े । यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधा-नुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करेंगे ।

(३) हम हिन्दी-भाषा-भाषी यजनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं । वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपा इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का साहित्य-आपड़ाव पूर्ण करन में सहायक हूँजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए । सिर्फ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी हृष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद-पुण्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें । जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर भेजवावे । एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे । आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा ।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
तेरहवाँ अध्याय		तेईसवाँ अध्याय	
ब्रह्महत्या से इन्द्र का कुटकारा	१५११	सञ्जय का पांडवों के पास जाना	१५२७
चौदहवाँ अध्याय		चौबीसवाँ अध्याय	
इन्द्र के पास इन्द्राणी का जाना	१५१२	संजय का युधिष्ठिर को उत्तर ...	१५२९
पन्द्रहवाँ अध्याय		पच्चीसवाँ अध्याय	
बृहस्पति का इन्द्र की खोज कराना	१५१३	सञ्जय का युद्ध की निन्दा करते हुए भीष्म और धृतराष्ट्र की सम्मति सुनाना	१५३०
सोलहवाँ अध्याय		छब्बीसवाँ अध्याय	
इन्द्र का प्रकट होना ...	१५१५	युधिष्ठिर का सञ्जय को प्रत्युत्तर	१५३१
सत्रहवाँ अध्याय		सत्ताईसवाँ अध्याय	
नहुष का स्वर्गराज्य से अष्ट होना	१५१७	गन्धि के लिए सञ्जय का फिर समझाना ...	१५३४
अठारहवाँ अध्याय		अट्ठाईसवाँ अध्याय	
शल्य का दुर्योधन के पास जाना	१५१८	धर्मराज युधिष्ठिर का उत्तर ...	१५३६
उन्नीसवाँ अध्याय		उन्तीसवाँ अध्याय	
युधिष्ठिर और दुर्योधन की सह-यता के लिए अनेक राजाओं का आना	१५१९	सञ्जय के प्रति श्रीकृष्ण के वचन	१५३८
बीसवाँ अध्याय		तीसवाँ अध्याय	
पुरोहित का सन्देशा कहना ...	१५२१	युधिष्ठिर का सञ्जय से, अपनी ओर से, सबको यथायोग्य पूँछने के लिए कहना	१५४३
इक्कीसवाँ अध्याय		इकतीसवाँ अध्याय	
भीष्म, कर्ण और धृतराष्ट्र की बातें	१५२२	युधिष्ठिर का फिर सञ्जय से नीति-वाक्य कहना	१५४७
बाईसवाँ अध्याय			
धृतराष्ट्र का सन्देशा ...	१५२४		

विषय	पृष्ठ
बत्तीसवाँ अध्याय	
संजय का हस्तिनापुर लौटना ... १५४८	
(प्रजागर पर्व)	
तेत्तीसवाँ अध्याय	
विदुर, धृतराष्ट्र-संवाद ... १५५२	
चौतीसवाँ अध्याय	
राजाओं के चरित्र और अन्य	
रीतियाँ १५६०	
पैंतीसवाँ अध्याय	
विरोचन और सुधन्वा का झगड़ा १५६५	
छत्तीसवाँ अध्याय	
आश्वेय मुनि और साध्यगण का	
संवाद १५७१	
सैंतीसवाँ अध्याय	
विदुर का हित के अनेक वचन	
कहकर धृतराष्ट्र को समझाना ... १५७६	
अड़तीसवाँ अध्याय	
विदुर का फिर समझाना ... १५८०	
उनतालीसवाँ अध्याय	
विदुर और धृतराष्ट्र की और भी	
बातचीत १५८३	

विषय	पृष्ठ
चात्तीसवाँ अध्याय	
विदुर का फिर समझाना ... १५८७	
(सनत्सुजात पर्व)	
इकतालीसवाँ अध्याय	
सनत्सुजात ऋषि का आना ... १५८८	
बयालीसवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र और सनत्सुजान का संवाद १५९०	
तैंतालीसवाँ अध्याय	
सनत्सुजात का धृतराष्ट्र को	
तत्त्वोपदेश कहना १५९४	
चवालीसवाँ अध्याय	
उपनिषद् की बातों का वर्णन ... १५९६	
पैंतालीसवाँ अध्याय	
ब्रह्म और ब्राह्मण का वर्णन ... १६०१	
छियालीसवाँ अध्याय	
शुक्र-माहात्म्य-वर्णन ... १६०३	
(यानचन्धि पर्व)	
सैंतालीसवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र की सभा में संजय का	
आना १६०५	
अड़तालीसवाँ अध्याय	
पांडवों का संदेशा कहना ... १६०६	

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
उनचासवाँ अध्याय	
भीष्म, कर्ण, और द्रोण की सम्मति	१६१५
पचासवाँ अध्याय	
रुक्म का युधिष्ठिर के दण्डोपकार का हाल कहना	१६१७
इक्यावनवाँ अध्याय	
भीमसेन का बल याद करके धृतराष्ट्र का शोक	१६१९
बावनवाँ अध्याय	
अर्जुन का बल इखान कर धृतराष्ट्र का खेद	१६२२
तिरपनवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र का परचात्ताप	१६२३
चौवनवाँ अध्याय	
सञ्जय का उत्तर	१६२४
पचपनवाँ अध्याय	
दुर्योधन के वचन	१६२६
छप्पनवाँ अध्याय	
दुर्योधन और सञ्जय की बात-चीत	१६२९
सत्तावनवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र का उदास होना	१६३०
अट्ठावनवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र और दुर्योधन की बातचीत	१६३३

विषय	पृष्ठ
उनसठवाँ अध्याय	
सञ्जय का श्रीकृष्ण के वचन सुनाना	१६३५
साठवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र का दुर्योधन को समझाना	१६३७
इकसठवाँ अध्याय	
दुर्योधन का उत्तर	१६३८
बासठवाँ अध्याय	
भीष्म और कर्ण की प्रतिज्ञा	१६३९
तिरसठवाँ अध्याय	
दुर्योधन की प्रतिज्ञा और विदुर का नैतिकधन	१६४१
चौंसठवाँ अध्याय	
पक्षी के दृष्टान्त से जातिविरोध के अर्थ का वर्णन	१६४३
दसठवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र का फिर दुर्योधन को समझाना	१६४५
छासठवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र से सञ्जय का अर्जुन की कही हुई बातें कहना	१६४५
सड़सठवाँ अध्याय	
ब्यास और गान्धारी का अना	१६४६

विषय	पृष्ठ
अइसठवाँ अध्याय	
अर्जुन और श्रीकृष्ण के	
माहात्म्य का वर्णन ...	१६४७

उनहत्तरवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र, गान्धारी और व्यासजी	
का दुर्योधन का समझाना ...	१६४८

सत्तरवाँ अध्याय	
श्रीकृष्ण के नामों का वर्णन ...	१६४९

इकहत्तरवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र का श्रीकृष्ण को प्रणाम	
करना ...	१६५०

भगवद्गीतानपर्व

वहत्तरवाँ अध्याय	
युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण की बात-	
चीत ...	१६५१

तिहत्तरवाँ अध्याय	
श्रीकृष्ण का उत्तर ...	१६५६

चौहत्तरवाँ अध्याय	
भीमसेन के वचन ...	१६५८

पिछत्तरवाँ अध्याय	
श्रीकृष्ण का भीमसेन को उभाड़ना	१६५९

छियत्तरवाँ अध्याय	
भीमसेन का उत्तर ...	१६६१

सतहत्तरवाँ अध्याय	
श्रीकृष्ण का भीमसेन को शान्त	
करना ...	१६६२

अठहत्तरवाँ अध्याय	
अर्जुन के वचन ...	१६६३

विषय	पृष्ठ
उन्नासीवाँ अध्याय	
श्रीकृष्ण का उत्तर ...	१६६४

अस्सी अध्याय	
नकुल के वचन ...	१६६५

इक्यासी अध्याय	
सहदेव और सारथी के वचन ...	१६६६

बयासी अध्याय	
द्रोपदी की उक्ति ...	१६६७

तिरासी अध्याय	
श्रीकृष्ण की यात्रा ...	१६६८

चौरासी अध्याय	
श्रीकृष्ण का वृकस्थल में विश्राम	१६७३

पच्चासी अध्याय	
धृतराष्ट्रकृत श्रीकृष्ण की अभ्यर्थना	१६७४

छियासी अध्याय	
धृतराष्ट्र के वचन ...	१६७५

सत्तासी अध्याय	
विदुर के वाक्य ...	१६७६

अट्ठासी अध्याय	
दुर्योधन की कुमन्त्रणा ...	१६७७

नवासी अध्याय	
श्रीकृष्ण का धृतराष्ट्र और विदुर	
के घर जाना ...	१६७९

नब्बे अध्याय	
कुन्ती और श्रीकृष्ण की बातचीत	१६८०

इक्यानबे अध्याय	
दुर्योधन और श्रीकृष्ण की बात-	
चीत ...	१६८६

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
बानवे अध्याय		एक सौ तीन अध्याय	
विदुर की प्रार्थना १६८६		दोनों का भोगवती पुरी में जाना	
तिरानवे अध्याय		और सुमुख को पसन्द करना ... १७०६	
श्रीकृष्ण का उत्तर १६६०		एक सौ चार अध्याय	
चौरानवे अध्याय		सुमुख को विष्णु की सम्मति से	
बुलाये जाने पर श्रीकृष्ण का		इन्द्र का आयु देना १७०७	
कीरव-सभा में जाना ... १६६१		एक सौ पाँच अध्याय	
पञ्चानवे अध्याय		गरुड़ का अभिमान दूर होना;	
श्रीकृष्ण का प्रस्ताव करना ... १६६३		दुष्येधन का कण्ठ का उपदेश न	
छियानवे अध्याय		मानना १७०८	
परशुराम के वचन ... १६६७		एक सौ छः अध्याय	
सत्तानवे अध्याय		नारदजी का समझाना ... १७११	
कण्व-द्वारा मातलि के जामाता		एक सौ सात अध्याय	
ढूँढ़ने की कथा १६६६		गालव का गरुड़ से सहायता	
अट्ठानवे अध्याय		लेना १७१२	
मातलि और नारद का एक		एक सौ आठ अध्याय	
साथ पाताळ में जाना ... १७००		पूर्व दिशा का वर्णन ... १७१३	
निनानवे अध्याय		एक सौ नौ अध्याय	
पाताळ की वस्तुओं का नारद-		दक्षिण दिशा का वर्णन ... १७१४	
कृत वर्णन १७०२		एक सौ दस अध्याय	
सौ अध्याय		पश्चिम दिशा का वर्णन ... १७१५	
नारद और मातलि का हिरण्यपुर		एक सौ ग्यारह अध्याय	
में जाना १७०३		उत्तर दिशा का वर्णन ... १७१६	
एक सौ एक अध्याय		एक सौ बारह अध्याय	
दोनों का गरुड़लोक में जाना ... १७०४		गालव का पूर्व दिशा को जाना १७१७	
एक सौ दो अध्याय			
दोनों का रसातल में जाना ... १७०५			

रत्नों चित्रों की सूची

नं०	पृष्ठ	नं०	पृष्ठ
१ घृतराष्ट्र का विलाप ...	१६२०	मधुपर्क आदि से, सत्कार करते थे ...	१६७३
२ कृष्णार्जुन-द्रौपदी और सत्यभामा का विश्रम्भालाप गान्धारी ने दुर्योधन से कहा— अरे दुष्ट ! तू बड़े-बूढ़ों के उपदेश को न मानकर ...	१६३५	७ कृष्णचन्द्र राह में भीष्म, द्रोण और धृतराष्ट्र के पुत्रों से मिले और फिर उनके साथ नगर के भीतर गये ...	१६७६
३सुम्मे शोक से विह्वल करने के लिए तैयार है ...	१६४६	८ श्रीकृष्ण मुसकाये और फिर मन्त्री-सहित दुर्योधन की ओर देखकर कहने लगे ...	१६८७
४ हे श्रीकृष्ण ! दुःशासन के हाथ से खींच गये मेरे इन बालों को याद रखिएगा ...	१६६८	९ सिंह के समान पराक्रमी, शत्रु-संहार में निपुण, वीर लोग श्रीकृष्ण के रथ के चारों ओर चल रहे थे ...	१६९२
५ विशाल नेत्रवाली द्रापदी अब सिसक सिसक कर रोने लगी ...	१६६९	१० महात्मा श्रीकृष्ण, वर्षाकाल के बादल की तरह, गम्भीर वाणी से सभामण्डप को प्रतिध्वनित करते हुए धृतराष्ट्र की ओर देख कर कहने लगे ...	१६९४
६ मार्ग में हजारों ब्राह्मण जगह-जगह पर मिलकर श्रीकृष्ण का, रतुति और			



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
एक सौ तेरह अध्याय	
शाण्डिली ब्राह्मणी से भेंट ...	१७१६
एक सौ चौदह अध्याय	
गरुड़ और गालव का ययाति	
राजा के पास जाकर धन माँगना ...	१७२०
एक सौ पन्द्रह अध्याय	
ययाति का गालव को अपनी	
माधवी नाम की कन्या देना ...	१७२१
एक सौ सोलह अध्याय	
गालव का हर्यश्व राजा से दो	
सौ घोड़े पाना ...	१७२२
एक सौ सत्रह अध्याय	
गालव का दिवोदास राजा से दो	
सौ घोड़े पाना ...	१७२३
एक सौ अठारह अध्याय	
गालव का उशीनर नरेश से दो	
सौ घोड़े पाना ...	१७२४
एक सौ उन्नीस अध्याय	
शेष दो सौ घोड़ों के बदले में	
विश्वामित्र का माधवी को प्रहण	
करना ...	१७२६
एक सौ बीस अध्याय	
राजा ययाति का स्वर्ग से गिरना ...	१७२७
एक सौ इक्कीस अध्याय	
ययाति का स्वर्ग से नैमिषारण्य	
में, अपने नातियों के बीच, गिरना ...	१७२८
एक सौ बाईस अध्याय	
ययाति का फिर स्वर्ग को जाना ...	१७३०

विषय	पृष्ठ
एक सौ तेईस अध्याय	
नारद का दुर्योधन को समझाना ...	१७३१
एक सौ चौबीस अध्याय	
श्रीकृष्ण का दुर्योधन को सम-	
झाना ...	१७३२
एक सौ पचीस अध्याय	
भीष्म, द्रोण और विदुर का दुर्यो-	
धन को समझाना ...	१७३६
एक सौ छब्बीस अध्याय	
भीष्म और द्रोण का दुर्योधन को	
फिर समझाना-झुझाना ...	१७३७
एक सौ सत्ताईस अध्याय	
दुर्योधन का उत्तर ...	१७३८
एक सौ अट्ठाईस अध्याय	
दुर्योधन का सभा से उठ जाना ...	१७३९
एक सौ उनतीस अध्याय	
दुर्योधन को गान्धारी का सम-	
झाना ...	१७४२
एक सौ तीस अध्याय	
दुर्योधन आदि का श्रीकृष्ण को	
कैद कर लेने की सलाह करना ...	१७४५
एक सौ इक्तीस अध्याय	
श्रीकृष्ण का अपनी महिमा	
दिखा कर सभा से जाना ...	१७४८
एक सौ बत्तीस अध्याय	
कुन्ती और श्रीकृष्ण की बात-	
चीत ...	१७५०

विषय	पृष्ठ
एक सौ तैंतीस अध्याय	
कुन्ती का विदुला की कथा कहना ... १७२२	
एक सौ चौतीस अध्याय	
विदुला का फिर पुत्र को उत्तेजित करना ... १७२५	
एक सौ पैंतीस अध्याय	
सज्जय और विदुला के उत्तर-प्रत्युत्तर ... १७२७	
एक सौ छत्तीस अध्याय	
विदुला के उपाख्यान का उपसंहार १७६०	
एक सौ सैंतीस अध्याय	
पाण्डवों को कुन्ती का उपदेश ... १७६१	
एक सौ अड़तीस अध्याय	
भीष्म और द्रोण की दुर्योधन से बातचीत और उसे समझाना ... १७६३	
एक सौ उनतालीस अध्याय	
द्रोणाचार्य का कथन ... १७६५	
एक सौ चालीस अध्याय	
कर्ण से श्रीकृष्ण का प्रस्ताव ... १७६६	
एक सौ इकतालीस अध्याय	
श्रीकृष्ण को कर्ण का उत्तर ... १७६७	
एक सौ बयालीस अध्याय	
श्रीकृष्ण का प्रत्युत्तर ... १७७०	
एक सौ तैंतालीस अध्याय	
कर्ण का लौट जाना ... १७७१	
एक सौ चवालीस अध्याय	
कुन्ती और विदुर की बात-चीत १७७३	
एक सौ पैंतालीस अध्याय	
कर्ण और कुन्ती का संवाद ... १७७५	

विषय	पृष्ठ
एक सौ छियालीस अध्याय	
कर्ण का कुन्ती को उत्तर ... १७७६	
एक सौ सैंतालीस अध्याय	
श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर के पास पहुँचना ... १७७८	
एक सौ अड़तालीस अध्याय	
द्रोणाचार्य, विदुर और गान्धारी के वचनों का वर्णन ... १७८१	
एक सौ उनचास अध्याय	
धृतराष्ट्र का उपदेश ... १७८३	
एक सौ पचास अध्याय	
श्रीकृष्ण की सलाह ... १७८४	
सैन्यनिर्याणपर्व	
एक सौ इक्यावन अध्याय	
पाँचों पाण्डवों की बात-चीत और युद्ध की तैयारी ... १७८६	
एक सौ बावन अध्याय	
कुरुक्षेत्र में पाण्डवों का पड़ाव ... १७८८	
एक सौ तिरपन अध्याय	
कुरुक्षेत्र के लिए दुर्योधन की यात्रा ... १७९०	
एक सौ चौवन अध्याय	
युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद ... १७९२	
एक सौ पचपन अध्याय	
दुर्योधन की युद्ध की तैयारी ... १७९४	
एक सौ छप्पन अध्याय	
दुर्योधन का भीष्म पितामह को प्रधान सेनापति बनाना ... १७९६	

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
एक सौ सत्तावन अध्याय		उलूकदूतागमनपर्व	
बलराम का आना और पाण्डवों		एक सौ साठ अध्याय	
से मिलकर तीर्थयात्रा के लिए		दुर्योधन का उलूक को दूत बना-	
चल देना ... १७६८		कर पाण्डवों के पास भेजना ... १८०२	
एक सौ अट्ठावन अध्याय		एक सौ इकसठ अध्याय	
रुक्मी का आना और लौट		उलूक का पाण्डवों के पास	
जाना ... १८००		जाकर दुर्योधन का संदेश कहना १८०६	
एक सौ उनसठ अध्याय		एक सौ बासठ अध्याय	
धृतराष्ट्र और सञ्जय का संवाद... १८०१		भीमसेन, युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण	
		का प्रत्युत्तर ... १८११	



रङ्गोन चित्रों को सूची

नं०	पृष्ठ	नं०	पृष्ठ
१ गालव के साथ गरुड़ का अपभ पहाड़ की चोटी पर उतरना १७१६		६ महावीर व्रतधारी कर्ण का गायत्री का जप समाप्त होने पर कुन्ती देवी को देखना ... १७७५	
२ राजा ययाति का अपनी कन्या को स्वयंवर के लिए लाना .. १७२७		७ दुर्योधन का शतराष्ट्र के पाण्डवों को राज्य देने की सम्मति पर सभा से क्रुद्ध होकर जाना १७८४-८५	
३ राजा ययाति का स्वर्ग लोक को जाना १७३१		८ दुर्योधन की आज्ञा सुनकर राजा लोगों का युद्ध के लिए उत्साह प्रकट करना ... १७६१	
४ विदुला का अपने पुत्र को फटकारना १७५३		९ राजा दुर्योधन का भीष्मपिता- मह को सेनापति के पद पर अभिषेक करना १७६७	
५ भीष्म और द्रोण की राय सुनकर दुर्योधन का उदास होना १७६५		१० बलरामजी का पाण्डवों के डरे में पहुँचना १७६६	



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
एक सौ तिरसठ अध्याय वलूक का दुर्योधन के पास लौट- कर जाना १८१५	एक सौ बहत्तर अध्याय पाण्डवों के पक्ष के वीरों का वर्णन १८२८
एक सौ चौंसठ अध्याय युधिष्ठिर की युद्ध की तैयारी ... १८१८ (रथातिरथसंख्यानपर्व)	(अम्बोपाख्यानपर्व) एक सौ तिहत्तर अध्याय अम्बा की कथा का आरम्भ ... १८२६
एक सौ पैंसठ अध्याय पितामह भीष्म और दुर्योधन का संवाद १८१६	एक सौ चौहत्तर अध्याय अम्बा और भीष्म का संवाद ... १८३१
एक सौ छालूठ अध्याय दुर्योधन की सेना के और भी रथी, अतिरथी आदि का वर्णन . १८२०	एक सौ पचहत्तर अध्याय शाल्व के अस्वीकार करने पर अम्बा का सुनियों के आश्रमों में जाकर अपना हाल कहना और सहायता माँगना . १८३१
एक सौ सड़सठ अध्याय अन्य रथी आदि का वर्णन ... १८२१	एक सौ छिहत्तर अध्याय ब्राह्मणों का कर्तव्य-निश्चय; राजर्षि होत्रवाहन तथा महारमा अकृतव्रण की मलाह ... १८३४
एक सौ अड़सठ अध्याय पितामह भीष्म और कर्ण का विवाद १८२३	एक सौ सतहत्तर अध्याय परशुरामजी का आगमन ... १८३७
एक सौ उनहत्तर अध्याय पाण्डवपक्ष के रथी, अतिरथी आदि का वर्णन १८२५	एक सौ अठहत्तर अध्याय परशुरामजी का कुरुक्षेत्र में जाना और भीष्म से बातचीत करना १८३६
एक सौ सत्तर अध्याय पाण्डवपक्ष के अन्य वीरों का वर्णन १८२७	एक सौ उन्नासी अध्याय भीष्म और परशुरामजी के युद्ध का आरम्भ १८४४
एक सौ इकहत्तर अध्याय पाण्डवपक्ष के वीरों का वर्णन १८२७	

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
एक सौ अस्सी अध्याय		एक सौ इक्यानवे अध्याय	
युद्ध का वर्णन १८४६		शिखण्डी का वन-गमन ... १८६१	
एक सौ इक्यासी अध्याय		एक सौ बानवे अध्याय	
युद्ध का वर्णन १८४८		शिखण्डी के वृत्तान्त का उप- संहार १८६३	
एक सौ बयासी अध्याय		एक सौ तिरानवे अध्याय	
घमासान लड़ाई का वर्णन ... १८४९		भीष्म और दुर्योधन का संवाद १८६६	
एक सौ तिरासी अध्याय		एक सौ चौरानवे अध्याय	
भीष्म को वसु देवताओं के दर्शन मिलना १८५१		युधिष्ठिर और अर्जुन का संवाद १८६७	
एक सौ चौगसी अध्याय		एक सौ पञ्चानवे अध्याय	
युद्ध का वर्णन १८५२		दुर्योधन का अपनी सेना को तीन भाग करके स्थापित करना ... १८६८	
एक सौ पञ्चासी अध्याय		एक सौ छियानवे अध्याय	
परशुरामजी का शस्त्र-त्याग ... १८५३		युधिष्ठिर का अपनी सेना के तीन विभाग करके युद्ध की तैयारी करना १८६९	
एक सौ छियासी अध्याय			
अश्वत्था का परशुरामजी से निराश होकर फिर तप करने के लिए जाना १८५५			
एक सौ सत्तासी अध्याय			
अश्वत्था का चिता में जलना और राजा द्रुपद के यहाँ उत्पन्न होना १८५७			
एक सौ अट्ठासी अध्याय			
राजा द्रुपद के यहाँ कन्या का उत्पन्न होना १८५८			
एक सौ नवासी अध्याय			
शिखण्डी का विवाह ... १८५९			
एक सौ नब्बे अध्याय			
राजा हिरण्यवर्मा का फिर दूत भेजना १८६०			

भीष्मपर्व

(जम्बूवतगड निर्माणपर्व)

पहला अध्याय

कौरवों और पाण्डवों का परस्पर
युद्ध के नियम निश्चित करना ... १८७१

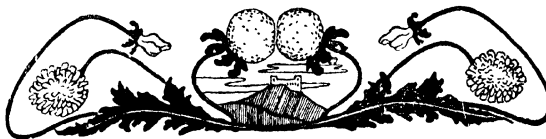
दूसरा अध्याय

न्यासजी का दृतराष्ट्र के पास आना।
सञ्जय को दिव्य दृष्टि देना और
दुर्निमित्तों का वर्णन करना ... १८७३

तीसरा अध्याय

उत्पातों का और शुभसूचक चिह्नों
का वर्णन १८७५

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
चौथा अध्याय		बारहवाँ अध्याय	
धृतराष्ट्र और सञ्जय का संवाद ।		कौञ्च आदि द्वीपों का वर्णन ... १८१३	
पृथ्वी के गुणों का वर्णन ... १८८०		(भगवद्गीतापर्व)	
पाँचवाँ अध्याय		तेरहवाँ अध्याय	
नदी और पर्वत आदि का वर्णन १८८२		सञ्जय-कृत भीष्मवध-वर्णन ... १८१४	
छठा अध्याय		चौदहवाँ अध्याय	
भारत आदि नव खण्डों का, सीमा		धृतराष्ट्र के प्रश्न ... १८१६	
के पर्वतों का और सुमेरु का वर्णन १८८३		पन्द्रहवाँ अध्याय	
सातवाँ अध्याय		सञ्जय-कृत युद्ध-वर्णन का आरंभ १८००	
उत्तरकुरु और भद्राश्वखण्ड का		सोलहवाँ अध्याय	
वर्णन ... १८८५		सैन्य-वर्णन ... १८०१	
आठवाँ अध्याय		सत्रहवाँ अध्याय	
सुमेरु के उत्तर भाग के तीनों		युद्ध के लिए कौरवों की सेना का	
खण्डों का वर्णन ... १८८७		निकलना ... १८०२	
नवाँ अध्याय		अठारहवाँ अध्याय	
भरतखण्ड के देश, नदी, पर्वत		कौरवों की सेना का वर्णन ... १८०४	
आदि का विस्तार से वर्णन ... १८८८		उन्नीसवाँ अध्याय	
दसवाँ अध्याय		पाण्डवों की सेना का युद्ध के	
आयु के परिमाण का वर्णन ... १८९१		लिए निकलना ... १८०६	
(भूमिपर्व)		बीसवाँ अध्याय	
ग्यारहवाँ अध्याय		कौरवों की सेना के जाने का वर्णन १८०७	
शाकद्वीप का वर्णन ... १८९१		इक्कीसवाँ अध्याय	
		युधिष्ठिर और अर्जुन की बातचीत १८०९	



रंगीन चित्रों की सूची

विषय

पृष्ठ विषय

पृष्ठ

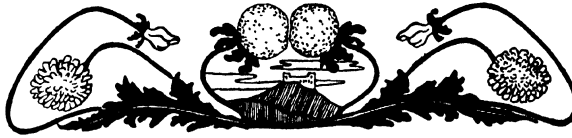
- १—शान्तनु का पुत्र भीष्म तुम
लोगों के सामने कन्याओं को
हरे लिये जाना है। तुम लोग
कन्याओं के लुड़ा लेने का
प्रयत्न करो ... १८३०
- २—माता, मैं सब राजाओं को
हराकर विचित्रवीर्य के लिए
स्वयंवर से काशिराज की तीन
कन्याएँ हर लाया हूँ .. १८३१
- ३—काशिराज की कन्या अश्वि ने
करुण स्वर से बहुत कहा-
सुना, किन्तु शाल्व ने उसे
स्वीकार नहीं किया ... १८३३
- ४—माता गङ्गा प्रकट होकर मेरे
सामने आई और मुझसे
कहने लगी—बेटा, तुम यह
क्या कर रहे हो ... १८४३
- ५—महात्मा परशुराम ने तब एक
घोर, कालरूपिणी, प्रज्वलित
उल्का के समान शक्ति मुझ
पर चलाई .. १८४८
- ६—वे बाण मेरे हृदय में
घुस गये और मैं वेदना
से पीड़ित होकर पृथ्वी पर
गिर पड़ा ... १८४६
- ७—देवर्षि नारद ने मेरे पास आकर
कहा—भैया भीष्म ! ... तुम
इस समय उस अस्त्र का प्रयोग
मत करो ... १८५३
- ८—एक दिन स्थूणा कर्ण ने उसे
देखा। तब वह कोमल
मधुर स्वर से कहने लगा—
हे सुन्दरी, तुम किसलिए यह
उग्र व्रत कर रही हो ? ... १८६२
- ९—वर्णा पार्वती के साथ महादेवजी
पैरों तक लटक रही कनैर
के फूलों की माला पहने
विहार करते हैं ... १८८४
- १०—शाकद्वीप में विविध मणि-
रत्न-शोभित सात पर्वत और
विविध रत्नों की खानें तथा
नदियाँ भी हैं ... १८६२



विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
बाईसवाँ अध्याय		सैंतीसवाँ अध्याय	
युधिष्ठिर आदि की युद्ध-यात्रा ...	१६११	क्षेत्र-क्षेत्रज्ञयोग का वर्णन ...	१६४३
तेईसवाँ अध्याय		अड़तीसवाँ अध्याय	
दुर्गादेवी की स्तुति ...	१६१२	त्रिगुण-विभागयोग का वर्णन ...	१६४५
चौबीसवाँ अध्याय		उनतालीसवाँ अध्याय	
दोनो पक्ष की सेना के अभ्युदय का वर्णन ...	१६१३	पुरुषोत्तम योग का वर्णन ...	१६४७
पच्चीसवाँ अध्याय		चालीसवाँ अध्याय	
अर्जुन का विषाद ...	१६१४	दैवी और आसुरी सम्पत्तियों का वर्णन ...	१६४८
छब्बीसवाँ अध्याय		इकतालीसवाँ अध्याय	
सांख्ययोग का वर्णन ...	१६१६	श्रद्धात्रय-विभाग योग का वर्णन ...	१६४९
सत्ताईसवाँ अध्याय		बयालीसवाँ अध्याय	
कर्मयोग का वर्णन ...	१६२१	संन्यासयोग का वर्णन ...	१६५१
अट्ठाईसवाँ अध्याय		तैंतालीसवाँ अध्याय	
ज्ञानयोग का वर्णन ...	१६२४	भीष्म आदि का समरभूमि में आना और युधिष्ठिर का उनके पास जाकर प्रणाम करना तथा जय का आशीर्वाद पाना ...	१६५५
उनतीसवाँ अध्याय		बघालीसवाँ अध्याय	
कर्म-संन्यास योग ...	१६२६	युद्ध का आरम्भ ...	१६६२
तीसवाँ अध्याय		पैंतालीसवाँ अध्याय	
आत्मसेवक योग ...	१६२८	द्रुपद-युद्ध का वर्णन ...	१६६३
इकतीसवाँ अध्याय		छियालीसवाँ अध्याय	
विज्ञानयोग का वर्णन ...	१६३१	युद्ध का वर्णन ...	१६६८
बत्तीसवाँ अध्याय		सैंतालीसवाँ अध्याय	
महापुरुष योग का वर्णन ...	१६३३	उत्तरकुमार का मारा जाना ...	१६७०
तैंतीसवाँ अध्याय		अड़तालीसवाँ अध्याय	
राजगुह्ययोग का वर्णन ...	१६३५	भीष्म के हाथ राजकुमार श्वेत का मारा जाना ...	१६७३
चौतीसवाँ अध्याय		उनचासवाँ अध्याय	
विभूतियोग का वर्णन ...	१६३७	शङ्ख के युद्ध का वर्णन ...	१६७६
पैंतीसवाँ अध्याय			
विश्वरूप का दर्शन ...	१६३९		
छत्तीसवाँ अध्याय			
भक्तियोग का वर्णन ...	१६४२		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
पचासवाँ अध्याय		सत्तावनवाँ अध्याय	
क्रौञ्चव्यूह की रचना ... १६८२		सङ्कलयुद्ध का वर्णन ... २०००	
इक्यावनवाँ अध्याय		अट्ठावनवाँ अध्याय	
कौरवों का व्यूह बनाना ... १६८५		पितामह भीष्म और दुर्योधन की	
बावनवाँ अध्याय		बात-चीत ... २००२	
पितामह भीष्म और अर्जुन का		उनसठवाँ अध्याय	
युद्ध ... १६८६		भीष्म को मारने के लिए श्रीकृष्ण	
तिरपनवाँ अध्याय		का प्रतिज्ञा छोड़कर चक्र लेकर	
द्रोणाचार्य और छष्टद्युम्न का युद्ध १६९०		दौड़ना और अर्जुन का उनको	
चौधनवाँ अध्याय		रोक लेना ... २००५	
कलिङ्गराज की मृत्यु ... १६९२		साठवाँ अध्याय	
पचपनवाँ अध्याय		अर्जुन के साथ भीष्म का द्वन्द्व-	
दूसरे दिन के युद्ध की समाप्ति ... १६९७		युद्ध ... २०१२	
छप्पनवाँ अध्याय			
कौरवों का गरुडव्यूह और			
पाण्डवों का अर्द्धचन्द्र व्यूह			
रचकर लड़ना ... १६९९			



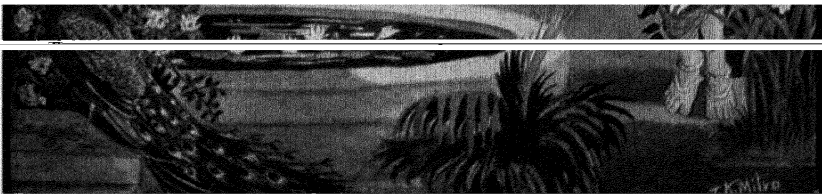
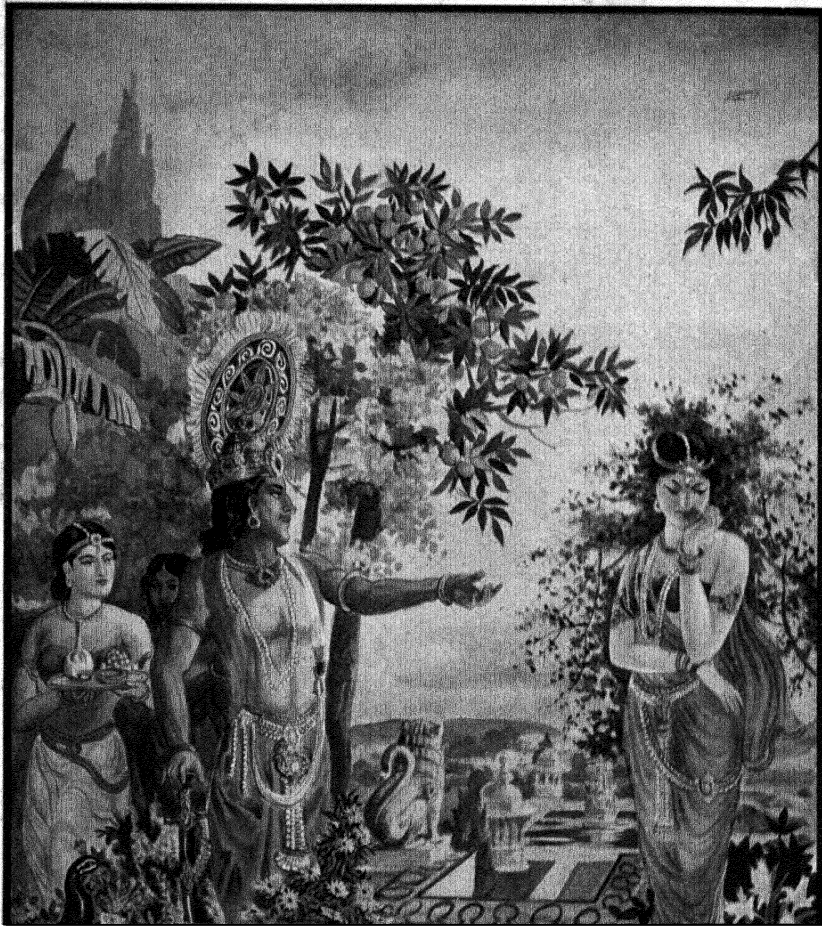
रंगीन चित्रों की सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१ नहुष ने कहा—हे सुन्दरी, मैं त्रिभुवन का स्वामी इन्द्र हूँ, इसलिए तुम मेरी रानी बनकर मुझे स्वीकार करो ... १२११		६ तब इन्द्र : पर चढ़ कर स्व आगे आगे गन्धर्व और अश्विओं के दल उनकी स्तुति करते चले १२१८	
२ १. हे देवी मेरा मनोरथ पूर्ण करो ... १२१२		७ कर्म से ही सूर्यदेव आलस्य- हीन होकर आकाशमण्डल में फिरते हुए दिन रात का विधान करते हैं ... १२३६	
२. उपश्रुति देवी प्रकट होकर इन्द्राणी के पास आई ... १२१२		८ संजय ने कहा—हे द्वारपाल, तुम इसी दम महारथ धृतराष्ट्र को मेरे आने की खबर दे ... १२४६	
३. उस सरोवर के भीतर एक सुन्दर कमलिनी देख पड़ी। उसका डंठल बहुत कँचा था १२१२		९ केशिनी ने दैत्यराज से कहा— हे विरोचन, ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या दैत्य ? ... १२६६	
३ नहुष ने कहा—सुन्दरी, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। आओ, कहो मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ ? ... १२१३		१० हमसे प्रसन्न होकर मैं तुमको तुम्हारा पुत्र देता हूँ ... १२६८	
४ १. बल-गर्वित नहुष ने... तपस्वी ऋषियों को बुलाकर अपनी पालकी में लगाया १२१४		११ नकुल जब दाहिनी ओर के तरकम से सैकड़ों बाण बरसा कर रथ पर से लड़नेवालों को घायल करेंगे तब दुर्योधन को युद्ध के लिये पकड़ाना पड़ेगा १६०८	
२. बृहस्पतिजी आग जलाकर विधिवत् उसमें आहुतियां छोड़ने लगे ... १२१४		१२ श्रीकृष्णजी वानर-ध्वजा से अलङ्कृत मेरे श्रेष्ठ रथ पर बैठे हैं ... १६१०	
५ १. इन्द्र के पुराने कार्यों का वर्णन करके बृहस्पति उनकी स्तुति करने लगे ... १२१६		१३ इतने में एक ब्राह्मण ने आकर कहा—हे अर्जुन, तुम्हें दुष्कर कर्म करना है, शत्रुओं के शाय युद्ध करना है ... १६११	
२. इन्द्र ने कहा—यह पाद्य, अर्घ्य, गाय आदि पूजा की सामग्री आपके अर्पण करता हूँ ... १२१७			

रंगीन चित्रों की सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१ आँखों में आँसू भरे हुए, खिन्न अर्जुन से श्रीकृष्ण ने कहा ...	१२१६	बहुत से रथों के आसनों को खाली कर दिया ...	१२७४
२ सोमदत्त-तनय ने एक बाण से शङ्ख के दाहने हाथ में घाव करके उनके कन्धे पर और एक बाण मारा ...	१२६२	७ अब बलशाली धृष्टद्युम्न शतचन्द्र युक्त अत्यन्त मनोहर बड़े आकारवाली ढाल और दिव्य खड्ग लेकर आचार्य को मारने के लिए, मस्त हाथी के सामने सिंह की तरह झपटे ...	१२२१
३ कूरकर्मा घटोत्कच ने राक्षसराज अलम्बुष के ऊपर वैसे ही आक्रमण किया, जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर पर किया था ...	१२६२	८ अब खड्ग हाथ में लिये हुए भीमसेन द्रुप के साथ अज्ञेय हाथियों का संहार करने लगे	१२२४
४ तब दोनों ही खड्ग-युद्ध करने लगे ...	१२६६	९ अर्जुन के डर से हाथियों के सवार हाथी छोड़ कर घोड़ों के सवार घोड़ें छोड़ कर चारों ओर भागे जा रहे थे ...	१२२६
५ (अभिमन्यु ने) एक भल्ल बाण से दुर्मुख के सारथी का सिर काट डाला ...	१२७१	१० भीमसेन के वज्रतुल्य बाण की चोट से मूर्छित होकर राजा दुर्योधन रथ पर गिर पड़े ...	२००३
६ सूर्य-सदृश तेजस्वी वीर भीष्म ने लगातार बाण-वर्षा के द्वारा वीरों के सिर काट काट कर			





नहुष ने कहा—हे सुन्दरी, मैं त्रिभुवन का स्वामी इन्द्र हूँ, इसलिए तुम मेरी रानी बनकर मुझे स्वीकार करो। पृ० १५११

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्महत्या से इन्द्र का छुटकारा

नहुष ने कहा—हे सुन्दरी, मैं त्रिभुवन का स्वामी इन्द्र हूँ; इसलिए तुम मेरी रानी बनकर मुझे स्वीकार करो। पतिव्रता इन्द्राणी ने नहुष की बातें सुनकर मन ही मन ब्रह्मा को प्रणाम किया। उस समय डर के मारे विद्वल और आँधी से दिलते हुए केलों के पेड़ की तरह कापती हुई वे हाथ जाड़कर नहुष से कहने लगीं—हे देवराज, मुझे नहीं मालूम कि इन्द्र कहाँ गये; उनकी क्या दशा हुई। इसलिए मुझे कुछ समय की अवधि दीजिए। इस बीच में मैं उनका पता लगाऊँगी। जो मुझे उनकी कुछ ख़बर नहीं मिली तो मैं फिर आपके पास आऊँगी और आपकी ही हो जाऊँगी।

यह सुनकर नहुष बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—देवी, तुम जो कहती हो वह मुझे स्वीकार है। इन्द्र का पता लगाकर मेरे पास अवश्य आना। अपने वादे का ख़याल रखना और सत्य की रक्षा करना। तब नहुष से विदा होकर यशस्विनी इन्द्राणी फिर बृहस्पति के पास लौट गई। उनकी व्याकुलता देखकर और वादे का ख़याल करके अग्नि आदि देवता इन्द्र के मिलने के बारे में सोचने लगे। इसके बाद खेद से व्याकुल सब देवता मिलकर देवदेव विष्णु के पास जाकर कहने लगे—हे देवताओं के स्वामी, इस समय देवराज इन्द्र ब्रह्महत्या के पाप से पीड़ित हो रहे हैं; इसलिए आप ही हम सब देवताओं के एकमात्र आश्रयदाता हैं। आपने सब प्राणियों की रक्षा के लिए ही विष्णुरूप धारण किया है—अर्थात् सर्वव्यापक हुए हैं। वृत्रासुर आपके ही पराक्रम और तेज से मारा गया है। हे देवश्रेष्ठ, तभी से इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी है। अब आप कृपा करके ऐसा उपाय बताइए, जिससे इन्द्र ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा पा जायें।

१०

इस पर विष्णु ने कहा—हे देवताओं, इन्द्र पवित्र अश्वमेध यज्ञ करके मेरी आराधना करें तो मैं उन्हें पवित्र कर दूँ। महायज्ञ करने से इन्द्र फिर वैखटके इन्द्रपद प्राप्त कर सकेंगे। दुर्मति नहुष अपने कर्मों के फल से आप नष्ट होगा। किन्तु कुछ समय तक तुम लोग ठहर जाओ। महाराज युधिष्ठिर! विष्णु भगवान् की यह शुभ, सत्य और अमृततुल्य वाणी सुनकर सब देवता—गुरु बृहस्पति और अन्य महर्षियों को साथ लेकर—उस स्थान पर पहुँचे जहाँ डूंगे और घवराये हुए इन्द्र छिपे हुए थे। उसी स्थान पर महेन्द्र ने महायज्ञ अश्वमेध की दीक्षा ली। ब्रह्महत्या को मिटानेवाला वह यज्ञ इन्द्र की पतिव्रता के लिए होने लगा। हे युधिष्ठिर! इन्द्र ने अपनी ब्रह्महत्या नदियों, वृक्षों, पर्वतों, भित्तियों और पृथ्वी का बाँट दी। इस प्रकार पाँच जगह पाप बाँट देने पर इन्द्र पाप, डर और सन्ताप से छुटकारा पाकर अपने पहले रूप को प्राप्त हुए।

२०

राजा नहुष देवताओं को वरदान से दुःसह हो रहे थे; उनमें यह शक्ति भी थी कि देखते ही हर एक प्राणी के तेज और बल को हर लेते थे। इन्द्र ने देखा कि इन कारणों से नहुष को

इन्द्र-पद से हटाना कठिन ही नहीं, अस्मभव है। तब शची के स्वामी इन्द्र फिर वहाँ से चल दिये और सब प्राणियों से अदृश्य रहकर अपने अनुकूल और नरुप के प्रतिकूल समय की वाट देखते हुए अधर-उधर विचरने लगे। अधर इन्द्र को फिर लापता देखकर इन्द्राणी शोक से विह्वल हो उठीं और हाय नाथ ! हाय इन्द्र ! कहकर विलाप करने लगीं। वे कहने लगीं—जो मैंने दान और हवन किया है, गुरुजनों की सेवा से मनुष्टु रक्खा है, जो मैं मृत्युनिर्गत और पतिव्रता हूँ, तो एक इन्द्र ही मेरे पति रहे; दूसरे पुरुष का मुख मुझे न देखना पड़े। मैं उत्तरायण की इस दिव्य पवित्र रात्रि देवी को प्रणाम करती हूँ। हे देवी, मेरा मनोरथ पूरा करो।

हे युधिष्ठिर, शची देवी पवित्रतापूर्वक पतिव्रत्य और मृत्यु का आश्रय लेकर रात्रि देवी के शरणागत हुई। फिर वे उपश्रुति देवी को बुलाकर उनसे कहने लगीं—भगवती, कृपा करके २७ मृत्यु के निहारे मुझे मृत्यु-रूप प्रिय इन्द्र के पास ले चलो।

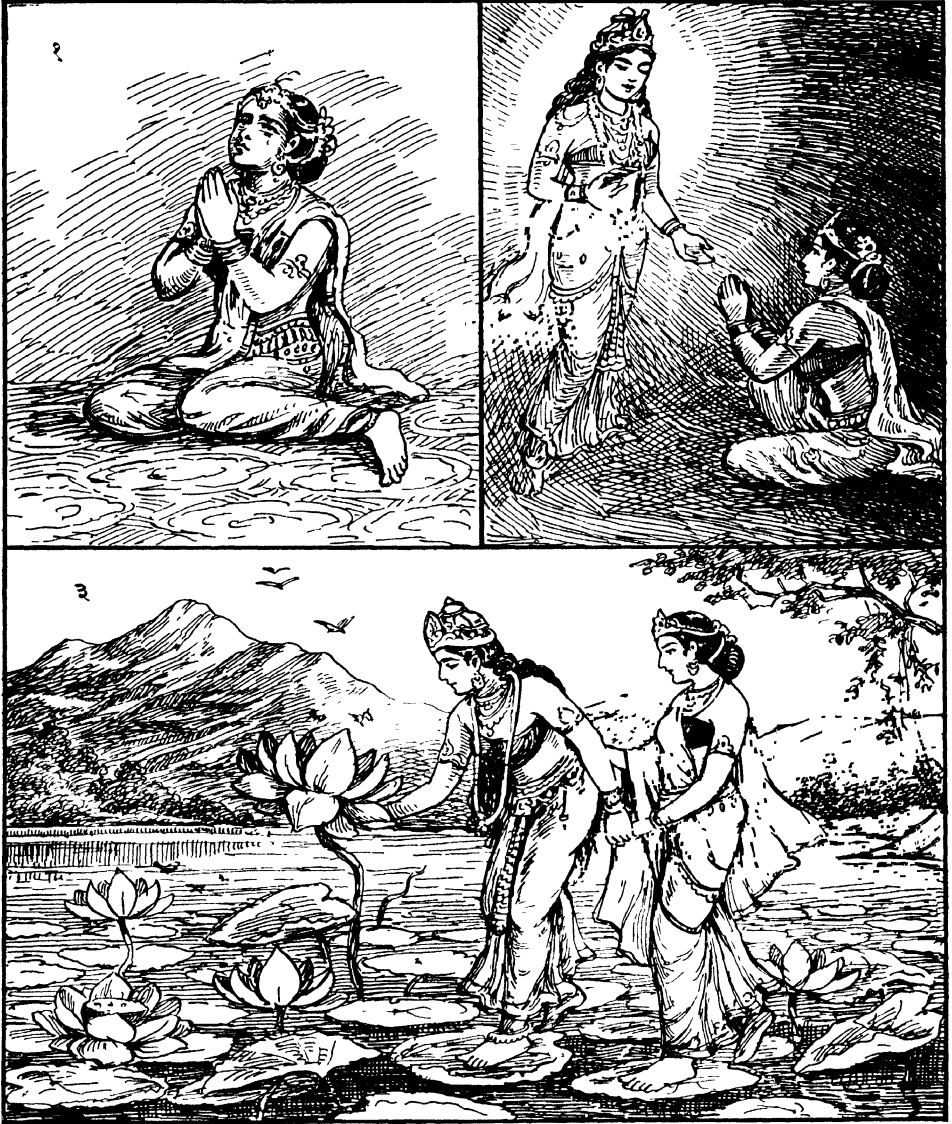
चौदहवाँ अध्याय

इन्द्र के पास इन्द्राणी का जाना

शल्य कहते हैं कि शची देवी के ध्यान करने पर सुन्दर अवस्था और रूप धारण किये हुए उपश्रुति देवी प्रकट होकर इन्द्राणी के पास आई। उन्हे देखकर इन्द्राणी बहुत प्रसन्न हुई। उनकी पूजा करके इन्द्राणी ने कहा—हे देवी, मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुम कौन हो।

उपश्रुति ने कहा—हे शोभने, मेरा नाम उपश्रुति है। मैं तुम्हारे पास आई हूँ। मृत्यु के बल से तुम्हें मेरे दर्शन हुए हैं। तुम पतिव्रता, मृत्यु पर प्रेम रखनेवाली और यम-नियम आदि से पवित्र हो। मैं तुमको वृत्रविनाशन इन्द्र के दर्शन कराऊँगी। शीघ्र मेरे साथ चलो, अभी तुम्हें इन्द्र के दर्शन होंगे और तुम्हारा भला होगा।

अब उपश्रुति देवी चलीं। इन्द्राणी भी उनके पीछे हो लीं। देववन, बहुत से पर्वत और हिमवान् की लावणी हुई उपश्रुति देवी उसके उत्तर और के प्रदेश में पहुँचीं। अनेक योजनों तक फैले हुए समुद्र के पास जाकर वे एक महाद्वीप में पहुँचीं। उस द्वीप में अनेक प्रकार के वृक्ष और लताएँ थीं। उसके भीतर इन्द्राणी ने सौ योजन लम्बा और उतना ही चौड़ा दिव्य सरोवर देखा। उसमें अनेक पक्षी थे। उस सरोवर में पाँच रङ्ग के दिव्य कमल खिले हुए थे, जिन पर सँडराते हुए भैंर गुनगुना रहे थे। उस सरोवर के बीच में एक सुन्दर कम-
 १० लिनी (लता) देख पड़ी। उसका डण्ठल बहुत ऊँचा था। उसमें सफेद कमल लगा हुआ था। उपश्रुति देवी के साथ इन्द्राणी भी कमलनाल को फाड़कर उसके भीतर घुस गईं। उसमें डण्ठल के सूतों के भीतर घुसे हुए इन्द्र उन्हें देख पड़े। वहाँ इन्द्र को अत्यन्त सूक्ष्म रूप में देखकर



१—हे देवी मेरा मनोरथ पूर्ण
करो ।—पृ० १५१२

२—उपश्रुति देवी प्रकट होकर इन्द्राणी के
पास आई ।—पृ० १५१२

३—उस सरोवर के भीतर एक सुन्दर कमलिनी देख पड़ी । उसका डंठल बहुत
ऊँचा था ।—पृ० १५१२



नहुष ने कहा—सुन्दरी, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। आओ, कहो मैं तुम्हारा क्या प्रिय कार्य करूँ ?—पृ० १२१३

उपश्रुति और इन्द्राणी ने भी सूक्ष्म रूप रख लिया। इसके बाद इन्द्राणी, इन्द्र के पहले के श्रेष्ठ कर्मों का बखान करके, उनकी स्तुति करने लगी। इन्द्राणी के स्तुति करने पर इन्द्र ने उनसे पूछा— तुम यहाँ किसलिए आई हो ? और तुम्हें मरे यहाँ रहने का हाल कैसे मान्त्रम हुआ ?

तब इन्द्राणी ने इन्द्र को नहुष को करनूत का व्यास कह सुनाया। शची ने कहा—हे देवराज, पराक्रमी नहुष तीनों लोकों का राज्य और इन्द्रपद पाकर ऐसा गर्वित हो गया है कि उसने मुझे अपनी सेवा करने के लिए बुलाया है। उस क्रूर ने मुझे कुछ समय दिया है कि मैं तुम्हारा पता लगा सकूँ। सो हे प्रभो, जो तुम मरे रक्षा नहीं करोगे तो वह दुष्ट मुझे अपने वश में कर लेगा। हे इन्द्र, इसी के लिए मैं शीघ्रता के साथ तुम्हारे पास आई हूँ। तुम पापविचार रखनेवाले भयानक नहुष को मारो। हे देव्यों और दानवों के शत्रु, तुम प्रकट होकर अपना पहले का तेज प्राप्त करो और देवलोक का राज्य करो।

१८

पन्द्रहवाँ अध्याय

वृहस्पति का इन्द्र की खोज करना

शल्य कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, प्रिया की ये बातें सुनकर इन्द्र ने कहा—प्रिये, राजा नहुष ऋषियों के दिये हुए हव्य (देवताओं के भाग) और कव्य (पितरों के भाग) का पाकर प्रबल हो रहे हैं। इसलिए यहाँ पर नीति से काम लेना चाहिए। मैं तुमको एक गुप्त उपाय बताता हूँ; तुम किसी से उसकी चर्चा न करना। एकान्त में नहुष के पास जाकर तुम कहो कि हे त्रिलोकों के ईश्वर, तुम मुझसे मिलने के लिए ऋषियों की दिव्य सवारी पर चढ़कर आओ। ऐसा करोगे तो मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे अधीन हो जाऊँगी। मुझे विश्वास है कि इस युक्ति से तुम्हारा उपकार और नहुष का नाश हो जायगा।

यह सुनकर कमलनयनी इन्द्राणी “ऐसा ही करूँगी” कहकर नहुष के पास गई। देखते ही नहुष ने गुमकाकर कहा—मुन्दरी, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ, आओ। कहो, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ? हे कल्याणी, मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मुझे स्वीकार करो। बताओ, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? तुम लज्जा न करो। मेरा विश्वास करो। तुम्हारा जो काम हो, उसे करने के लिए मैं तैयार हूँ। मैं मत्स्य की सौगन्द गाकर यह बात कहता हूँ।

इन्द्राणी ने कहा—महाराज, पहले तुमसे जो वादा कर चुकी हूँ उसी को मैं पूरा करना चाहती हूँ। इसलिए अब तुम्हीं मेरे स्वामी होगे; किन्तु हे देवराज, जो मुझे पसन्द है और जो करने के लिए मैं तुमसे कहने आई हूँ, सो सुनो। प्रेम के मारे जो कहती हूँ वह मेरा प्रिय तुमको करना होगा। इन्द्र हाथी, घोड़े, रथ आदि तरह-तरह की सवारियों पर चढ़कर मेरे पास आते

१९

थे । मैं चाहती हूँ कि तुम ऐसी नई सवारी पर बैठकर मेरे पास आओ जिस पर इन्द्र तो क्या, विष्णु और महादेव भी न सवार हुए हों । सब देवताओं और दानवों से निराली सवारी पर बैठकर आना स्वीकार करो तो मैं तुम्हें अङ्गीकार करने को तैयार हूँ । राजन्, मेरी इच्छा यह है कि ऋषि लोग मिलकर अपने कन्धे पर तुम्हारी पालकी ले चलें । तुम देखते ही सबका तेज हर लेते हो, कोई पराक्रमी तुम्हारे सामने नहीं ठहर सकता । इस प्रकार नई सवारी पर चलना तुम्हारे योग्य ही होगा ; क्योंकि तुम सब देवताओं और दैत्यों से बढ़कर हो ।

शल्य कहते हैं कि देवराज नहुष इन्द्राणी के वचन सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । वे कहने लगे—देवी, यह तुमने बेटव सवारी बताई और मुझे बहुत पसन्द आई । मैं तुम्हारे वश में हूँ ; इस कारण अवश्य तुम्हारा कहा करूँगा । थोड़ी शक्ति और प्रभाववाला पुरुष तपस्वी मुनियों को अपनी सवारी में नहीं लगा सकता । मैं तपस्वी, बलवान्, त्रिकालज्ञ और भूत-भविष्य-वर्त्तमान का स्वामी हूँ । यह जगत् मेरे आश्रय में स्थित है । मेरे कुपित होने पर सारे जगत् का नाश हो सकता है ; मैं क्रोध करूँ तो देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर, नाग, राक्षस आदि कोई मेरे आगे नहीं ठहर सकते । मैं जिसकी ओर देख देता हूँ उसी के तेज को हर लेता हूँ । इसलिए हे देवी, मैं तुम्हारा कहा करूँगा । सप्तपिङ्गण और अन्य ब्रह्मपिङ्गण अपने कन्धे पर मेरी पालकी ले चलेंगे । तुम मेरी महिमा और बल-वैभव को देखो ।

अब बल-गर्वित नहुष ने इन्द्राणी को तो विदा कर दिया और तपस्वी ऋषियों को गुलाकर अपनी पालकी में लगाया । ब्राह्मण-भक्ति से रहित, बली, मद और बल से गर्वित, यथेच्छाचार करनेवाले, दुष्टात्मा नहुष ने उन ऋषियों से अपनी पालकी उठाने का निश्चय कर लिया । उधर नहुष से विदा होकर इन्द्राणी बृहस्पति के पास जाकर कहने लगीं—भगवन्, नहुष ने जितना समय मुझे दिया था उसमें थोड़ा ही बाकी रह गया है । अब आप अपने ऊपर भक्ति रखने-वाली मुझ अबला पर दया करके शीघ्र इन्द्र की खोज कीजिए ।

बृहस्पति ने कहा—बहुत अच्छा । तुम दुष्ट चित्तवाले नहुष से डरोगे मत । वह नराधम अब अधिक समय तक इन्द्र के पद पर नहीं रह सकता । उसे तुम गया हुआ ही समझो । वह धर्म को भूल गया है इससे, ऋषियों को अपना वाहन बनाने के कारण, अवश्य उसका अशुभ-पात होगा । उस दुर्मति को स्वर्ग के ऐश्वर्य से भ्रष्ट करने के लिए मैं एक यज्ञ करूँगा । तुम्हारा भला हो । तुम डरोगे नहीं ; मैं शीघ्र ही इन्द्र का भी पता लगाये लेता हूँ ।

अब बृहस्पतिजी आग जला करके उसमें विधिपूर्वक आहुतियाँ छोड़ने लगे । महातेजस्वी बृहस्पति ने देवराज के मिलने के लिए हवन करके अग्नि से कहा—तुम शीघ्र इन्द्र को ढूँढ़ लाओ । तब स्वयं भगवान् अग्नि अद्भुत स्त्री का रूप रखकर, इन्द्र का पता लगाने के लिए, वहाँ से चल पड़े और अन्तर्धान हो गये । वे दम भर मे दिशा-विदिशा, पहाड़, वन—सारी पृथ्वी और

आकाश—में इन्द्र को खोजकर लौट आये। मन का सा वेग रखनेवाले अग्नि बृहस्पति के पास पहुँचकर कहने लगे—देवगुरु, मैं सब जगह खोज आया, पर इन्द्र का पता नहीं चलता। केवल जल में खोजना बाकी रह गया है परन्तु जल के भीतर जाना मेरे लिए असम्भव है। इसी से मैं वहाँ जाना नहीं चाहता।

बृहस्पति ने अग्नि से जल के भीतर भी जाकर देखने के लिए कहा। तब अग्नि ने कहा—भगवन, जल के भीतर मैं न जा सकूँगा। वहाँ जाने से मेरा नाश हो जायगा। मैं आपके शरणागत हूँ, क्षमा कीजिए। जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोहा उत्पन्न हुआ है। इनका तेज और सब जगह काम देता है, पर अपनी उत्पत्ति के स्थान में ठण्डा पड़ जाता है। ३४

सोलहवाँ अध्याय

इन्द्र का प्रकट होना

बृहस्पति ने कहा—हे अग्नि, तुम हव्य पहुँचानेवाले और सब देवताओं के मुख हैं। तुम मात्ता की तरह गूढ़ रूप से सब प्राणियों के शरीर के भीतर रहते हो। कवियों ने तुम्हें एक-रूप बताया है और तुम्हारे तीन रूप भी कहे हैं। हे हुताशन, तुम न रहे तो यह जगत् बात की बात में नष्ट हो जाय। ब्राह्मण लोग तुम्हारी वन्दना और आराधना करके, अपने पुत्रों और स्त्रियों के साथ, अपने कर्मों से प्राप्त अक्षय गति पाते हैं। हे अग्नि, तुम्हीं हव्यवाह और प्रधान हवि हो। ऋषि लोग छोटे और बड़े यज्ञों से तुम्हारी ही पूजा करते हैं। हे हव्यवाह, सृष्टि के आदिकाल में तुम्हीं तीनों लोकों को पैदा करते हो और फिर प्रलयकाल में तुम्हीं बढ़कर संहार करते हो। इस जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार तुम्हीं से होता है। हे अग्नि, पण्डित लोग बादल और बिजलियों को तुम्हारा ही रूप समझते हैं। ज्वालाएँ तुमसे निकलकर सब प्राणियों का पालन करती हैं। सब जगत् और जल तुम्हीं में स्थित है। हे पावक, तीनों लोकों में ऐसा कुछ नहीं है जिससे तुम न जानते हो। सभी लोग अपनी योनि (उत्पत्तिस्थान) को भजते हैं; इसलिए तुम भी बेखटके जल के भीतर चले जाओ। मैं सनातन वेद के मन्त्रों से तुम्हारे तेज को बढ़ाऊँगा।

इस प्रकार स्तुति करने पर देवताओं में श्रेष्ठ भगवान् अग्नि ने बहुत प्रसन्न होकर बृहस्पति से कहा—मैं सच कहता हूँ कि इन्द्र को लाकर आपको अवश्य दिखा दूँगा। शल्य कहते हैं कि तब समुद्र, भील आदि के जल में प्रवेश करके अन्त को अग्निदेव उस सरोवर में पहुँचे जहाँ इन्द्र छिपे हुए थे। वहाँ कमलों के बीच में खोजते-खोजते अग्नि ने कमलनाल के भीतर इन्द्र को देख लिया। तब उन्होंने इन्द्र के पास से लौटकर बृहस्पति से सब हाल कहा। बतलाया कि वहाँ पर इन्द्र बहुत ही सूक्ष्म रूप रखे कमलनाल के भीतर रहते हैं। १०

अब देवता, ऋषि, गन्धर्व आदि को साथ लेकर बृहस्पतिजी वहाँ पहुँचे, और इन्द्र के पुराने कामों का वर्णन करके उनकी स्तुति करने लगे। बृहस्पति ने कहा—हे शक्र, महादानव नमुचि, घोर पराक्रमी शम्बरासुर और बल नाम के दानव को तुमने मारा है। हे इन्द्र, तुम वृद्धि को प्राप्त होकर सब शत्रुओं का नाश करा। उठो, देखो, सब ऋषि लोग तुम्हारे पास आये हैं। हे महेन्द्र, तुम कई बार दानवों को मारकर लोकों की रक्षा कर चुके हो। जगत् के स्वामी हे देवराज, तुमने पहले विष्णु के तेज से परिपूर्ण पानी के फेने से वृत्रासुर को मारा है। सब प्राणी तुम्हारी स्तुति और पूजा करते हैं और शरणागत होते हैं। जगत् में तुम्हारे समान कोई प्राणी नहीं है। तुम्हीं सब प्राणियों को आश्रय देनेवाले हो और तुम्हीं से सब देवताओं की महिमा बढ़ी है। हे इन्द्र, इस समय अपना पहने का बल पाकर सब लोकों की रक्षा करो।

इस प्रकार स्तुति करने पर इन्द्रदेव धीरे-धीरे बढ़ने लगे। फिर अपने पूर्वरूप को पाकर वे वैसे ही बली हो गये। इन्द्र ने सामने खड़े हुए अपने गुरु बृहस्पति से कहा—मैंने महाकाय और लोकों को नष्ट करनेवाले महा असुर त्रिशिरा और वृत्र को मार डाला। बताइए, अब आप २० लोगों का कौन सा काम करूँ? बृहस्पति ने कहा—हे इन्द्र, मनुष्य राजा नहुप देवताओं और ऋषियों के तेज (वरदान) से देव-राज्य पाकर हम सबको सता रहा है। इन्द्र ने पृच्छा—गुरुजी, नहुप ने देवताओं का राज्य कैसे पाया? नहुप का तपोबल और बाहुबल कैसा क्या है?

बृहस्पति ने कहा—हे देवेश, जब तुम स्वर्ग छोड़कर अज्ञातवास के लिए चले गये तब राजा के न होने से अग्नि आदि देवता, ऋषि, गन्धर्व आदि सब प्रजागण परस्पर के डर से घबराकर आर्तभाव से राजा नहुप के पास गये और कहने लगे—महाराज, आप हमारे त्रिभुवन-पालक राजा बनिज। इस प्रकार तुम्हारे छोड़े हुए पद पर इन्द्र बनाकर नहुप को बैठाने की इच्छा प्रकट करने पर नहुप ने उन सबसे कहा—मुझमें इन्द्र का काम करने की शक्ति नहीं है; आप लोग अपने तेज और वरदान से मुझे समर्थ बना दीजिए। तब देवताओं ने नहुप को उसी तरह शक्तिशाली बना दिया। घोर वीर्य प्राप्त करके नहुप इस समय महर्षियों के कन्धे पर पालकी रखाकर लोकों में विचरता है। उसकी दृष्टि में घोर विष है, उसके प्रभाव से वह देखते ही तेज को हर लेता है। तुम उसके सामने मत जाना। उससे डरकर देवता कभी सामने नहीं जाते, छिपे-छिपे घूमते हैं।

बृहस्पति यों कही रहे थे कि वहाँ पर लोकपाल कुबेर, यमराज, चन्द्र और वरुण आ गये। उन्होंने कहा—हे इन्द्र, बड़े भाग्य की बात है कि तुमने त्रिशिरा और घोर वृत्रासुर को मार डाला। यह भी बड़े भाग्य की बात है कि हम तुमको सकुशल और अक्षत-शरीर देख रहे हैं। तब उन लोकपालों से मिलकर प्रसन्नहृदय महेन्द्र ने नहुप की बुद्धि को भ्रष्ट करने के विचार से कहा—देवताओं के वर्तमान राजा भयावने नहुप को मैं इन्द्र-पद से भ्रष्ट करना चाहता हूँ। इस काम में तुम लोग मेरी सहायता करो।

लोकपालों ने कहा—हे ईश, घोररूप नहुष की दृष्टि में विप है, इस कारण हम उससे डरते हैं। जो तुम उसे इन्द्र-पद से हटा देगो तो हमें भी यज्ञ में भाग मिलेगा। इन्द्र ने कहा— ३० मैं वरुण, यम, कुबेर आदि तुम सब लोकपालों को तुम्हारे पदों पर स्थापित करता हूँ। सब देवताओं सहित तुम लोग अपने पदों को और यज्ञ-भाग को पाकर अपना-अपना काम करो। हम सब मिलकर घोर दृष्टिवाले अपने शत्रु नहुष को जीत लेंगे।

तब अग्नि ने इन्द्र से कहा—हे इन्द्र, मैं भी तुम्हारी सहायता करूँगा; मुझे भी यज्ञ में भाग दिलाओ। इन्द्र ने कहा—हे पावक, महायज्ञ में इन्द्राग्नि के नाम से एक भाग तुम्हारा भी होगा। शल्य कहते हैं—इसके बाद इन्द्र ने सत्कार-पूर्वक कुबेर को सब सम्पत्तियाँ और यज्ञों का, यमराज को पितरों का और वरुण को जल का स्वामी बना दिया। ३४

सत्रहवाँ अध्याय

नहुष का स्वर्गराज्य से भ्रष्ट होना

शल्य कहते हैं कि लोकपाल देवताओं के साथ इन्द्र इस प्रकार नहुष के वध का उपाय सोच रहे थे, इसी समय महर्षि अगस्त्य ने वहाँ पहुँचकर इन्द्र की बड़ाई करके कहा—बड़ी बात है कि तुम विश्वरूप और वृत्रासुर को मारकर वृद्धि को प्राप्त हो रहे हो। बड़े भाग्य की बात है कि इस समय राजा नहुष देवराज्य से भ्रष्ट हो गया और मैं तुम्हें निष्कण्टक देख रहा हूँ।

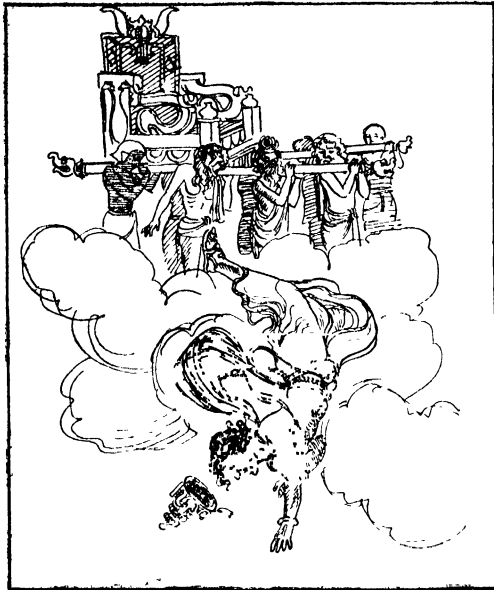
इन्द्र ने स्वागत करके कहा—ऋषिवर, आपके दर्शन पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। यह पाद्य, अर्घ्य, आचमन और गाय आदि पूजा की सामग्री मैं अर्पण करता हूँ, लीजिए। शल्य कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, मुनिवर अगस्त्य जब पूजा स्वीकार करके आसन पर बैठ गये तब इन्द्र ने उनसे पूछा—मैं सुनना चाहता हूँ कि पापी नहुष कैसे स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ ?

अगस्त्य ने कहा—हे इन्द्र, जिस तरह बलदर्पित दुरात्मा राजा नहुष स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ, सो कहता हूँ। पुण्यात्मा देवर्षि और महर्षि लोग जिस समय पापी नहुष की पालकी लादकर चलते-चलते बहुत थक गये, उस समय उन्होंने नहुष से पूछा कि राजन्, ब्रह्माजी ने गोप्राज्ञ के जो मन्त्र कहे हैं, उनको आप प्रमाण मानते हैं या नहीं ? दुर्बुद्धि नहुष ने तमोगुण के प्रभाव से मूढ़ होकर कहा कि मैं नहीं मानता।

१०

तब ऋषियों ने कहा—आप धर्म को नहीं जानते और अधर्म पर उतारू हैं। पहले के महर्षिगण जो इस बारे में कह गये हैं, उसे ही हम प्रमाण मानते हैं। अगस्त्य कहते हैं कि हे इन्द्र, इसी मामले में बहस करते-करते नहुष ने, क्रोधान्ध होकर, मेरे सिर में लात जमा दी। इस अधर्म के कारण वह तत्काल तेज से हीन और श्रीभ्रष्ट हो गया। तब तमोगुण से व्याकुल नहुष को अत्यन्त पीड़ित देखकर मैंने कहा—रे दुष्ट, तू पहले के ब्रह्मा आदि के द्वारा कहे और ब्रह्म-

र्षियों के द्वारा माने गये प्रमाण-वाक्यों को दोष लगाता है, अप्रमाण ठहराता है। मेरे सिर पर तूने लात मारी है और सदा ब्रह्मतुल्य दुर्द्धर्ष ऋषियों को अपनी सवारी ले चलनेवाला वाहन बनाये



हुए हैं। इन कारणों से हे पापी, तू तेज से हीन होकर स्वर्ग से पृथ्वी पर गिर। तेरा पुण्य क्षीण हो गया। पृथ्वी पर तू दस हजार वर्ष तक अजगर के रूप से रहकर फिर स्वर्ग को आवेगा। हे शत्रु-दमन इन्द्र, इस तरह दुरात्मा नहुप देव-राज्य से भ्रष्ट हो गया है। बड़े भाग्य की बात है कि देवताओं और ऋषियों का कण्टक मारा गया। अब हम लोगों का अभ्युदय होगा। तुम स्वर्ग में चलो। इन्द्रियों और शत्रुओं को तुम जीत ही चुके हो, अब महर्षियों के मुँह से अपनी स्तुति सुनते हुए सब लोगों की रक्षा करा।

शल्य कहते हैं कि तब देवता, महर्षि, पितृगण, यक्ष, नाग, राक्षस, गन्धर्व, देवकन्या, अप्सरा, सरोवर, नदी,

पहाड़, समुद्र आदि सबने प्रसन्नतापूर्वक इन्द्र को पास आकर कहा—हे शत्रुनाशन, बड़े भाग्य की बात है कि तुम वृद्धि को प्राप्त हो रहे हो; और पाप विचारवाला नहुप राजा, महर्षि अगस्त्य के २२ शाप से, पृथ्वी पर गिरकर साँप हो गया।

अठारहवाँ अध्याय

शल्य का दुर्वोधन के पास जाना

शल्य कहते हैं—तब वृत्रासुर को मारनेवाले इन्द्र सुलक्षणयुक्त ऐरावत हाथी पर चढ़कर स्वर्ग को चले। आगे-आगे गन्धर्वों और अप्सराओं के दल उनकी स्तुति करते चले जा रहे थे। महातेजस्वी अग्नि, महर्षि बृहस्पति, यम, वरुण, कुबेर आदि सब देवता, गन्धर्वों और अप्सराओं के भुण्ड उनके साथ-साथ चले। देवराज इन्द्र आकर पहले इन्द्राणी से मिले और बहुत प्रसन्न हुए। इन्द्र फिर स्वर्ग-राज्य पाकर प्रजा का पालन करने लगे।

इसके बाद भगवान् अङ्गिरा इन्द्र के पास आकर अथर्ववेद के मन्त्रों से देवराज की स्तुति करने लगे। इन्द्र ने प्रसन्न होकर उनको यह वरदान दिया कि जिन मन्त्रों से तुमने स्तुति की है



तब इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर स्वर्ग को चले, आगे आगे गन्धर्व, अप्सराओं के दल
उनकी स्तुति करते चले ।—पृ० १५१८

इनके तुम ऋषि कहलाओगे। प्रमाण यह है कि तुम्हें यज्ञ में भाग भी मिलने लगंगा। इस प्रकार इन्द्र और पूजा करके इन्द्र ने अङ्गिरा ऋषि को विदा कर दिया। सब देवताओं और तपस्वी ऋषियों का आदर-सत्कार करने के बाद इन्द्रदेव प्रसन्नतापूर्वक धर्म के अनुसार प्रजा-पालन करने लगे।

हे युधिष्ठिर, त्रि-महित इन्द्र ने भी इस प्रकार दुःख पाया है और शत्रुओं के वध की राह देखते हुए अज्ञातवास किया है। महावन में रहते समय जो तुमने द्रौपदी और वीर भाइयों के साथ क्लेश पाये हैं, उनके लिए तुमको खेद न करना चाहिए। हे युधिष्ठिर, जैसे वृत्रासुर ने मारकर इन्द्र ने स्वर्ग का राज्य पाया, वैसे ही तुम भी अपना राज्य पाओगे। ब्रह्मद्रोही, पाप बेचारेवाला, दुराचारी नहुष जैसे अग्रज्य के शाप से अनन्त वर्षों के लिए भ्रष्ट हो गया, वैसे ही तुम्हारे दुरात्मा शत्रु दुर्योधन, कर्ण आदि भी शीघ्र ही मारे जायेंगे। तब तुम भी इन द्रौपदी और भाइयों के साथ समुद्रपर्यन्त पृथ्वी का अकण्टक राज्य करोगे। १०

राजन्, जिस समय युद्ध होनेवाला हो और व्यूह बना करके सेनाएँ लड़ने को तैयार हो रही हों, उस समय राजा को विजय पाने की इच्छा से यह वेद-तुल्य इन्द्र-विजय की कथा श्रवण करने की चाहिए। इसी से विजय की यह कथा मैं तुमका सुना रहा हूँ। हे युधिष्ठिर, भुक्ति करने से क्षत्रियों का तेज बढ़ता है। हे धर्मराज, दुर्योधन के अपराध के कारण भीमसेन और प्रजुन के हाथों शीघ्र ही युद्ध में अनेक क्षत्रिय-वर्गों का संहार होगा।

इस इन्द्र-विजय के उपाख्यान को जो कोई नियम से पढ़ता है वह पापहीन होकर वर्ग को जीत लेता है, और इस लोक तथा परलोक में आनन्द भोगता है। उसे शत्रु का डर नहीं होता। वह विपत्तियों से बचा रहता है और पुत्र-पौत्र पाकर दीर्घायु पाता है। यह कहीं कभी हारता नहीं है; उसे सदा विजय मिलती है। २०

वैशम्पायन कहते हैं—शल्य ने यों युधिष्ठिर को दिलासा दिया और युधिष्ठिर ने भी उनकी पूजा की। फिर युधिष्ठिर ने मद्राज से कहा—आपको कर्ण का मारथी बनना पड़ेगा। उस समय आप अर्जुन की बड़ाई करके कर्ण का उत्साह घटाते रहिएगा। शल्य ने कहा—मैं यह काम प्रवश्य कर दूँगा। साथ ही और भी जो कुछ तुम्हारी भलाई मुझसे हो सकेगी वह मैं करूँगा। हे जनमेजय, इसके बाद पाण्डवों से विदा होकर मद्राज शल्य राजा दुर्योधन के पास गये। २५

उन्नीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर और दुर्योधन की सहायता के लिए अनेक राजाओं का आना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महारथी यादववीर सात्यकि बहुत सी चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर युधिष्ठिर के पास आये। अनेक देशों से आये हुए वीर योद्धा तरह-तरह के शस्त्र लिये उस सेना की शोभा बढ़ा रहे थे। तेल से धोये चमकीले परश्वध, भिन्दिपाल, शूल,

तोमर, सुह्र, परिध, लकड़ी, पाश, निर्मल करवाल, खड्ग, धनुष और विविध बाण उस सेना को सुशोभित कर रहे थे। सेने के सामान और गहनों से अलङ्कृत वह सेना बिजलियों से भूषित घनघटा के समान जान पड़ती थी। वह एक अचौहिणी सेना, समुद्र में छोटी नदी के समान, युधिष्ठिर की अपार सेना में छिप सी गई।

इसके बाद महाबली चेदिराज धृष्टकेतु, परम पराक्रमी पाण्डवों की सहायता के लिए, एक अचौहिणी सेना लेकर आये। मगधनरेश जरासन्ध के कुमार महाबली जयत्सेन भी एक अचौहिणी सेना लेकर युधिष्ठिर के पास आये। पाण्ड्य देश के राजा भी, समुद्रतट में रहनेवाली जातियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के सिपाहियों को साथ लेकर, युधिष्ठिर के पास आये। उनकी १० सुन्दर वेषवाली, प्रबल सेना उस सेना-समागम में अत्यन्त दर्शनीय जान पड़ती थी। अनेक देशों से आये हुए शूर-वीर योद्धाओं से शोभित महाराज द्रुपद की सब सेना आकर वहाँ जमा हुई। द्रुपद के महारथी पुत्र उसके सञ्चालक थे। मत्स्यदेश के राजा विराट भी पहाड़ी राजाओं की सेना के साथ पाण्डवों की सहायता के लिए तैयार हुए। इस तरह अनेक प्रकार की ध्वजाओं से शोभित सात अचौहिणी सेना पाण्डवों की ओर से कौरवों से लड़ने के लिए आकर जमा हुई। उस सेना को देखकर पाण्डवों को बड़ा हर्ष हुआ।

उधर दुर्योधन को खुश करने के लिए उसकी ओर भी अनेक राजा अपनी-अपनी सेना साथ लेकर सहायता करने को पहुँचे। राजा भगदत्त एक अचौहिणी सेना साथ लेकर आये। चीन और किरात देश के बहुत से योद्धा उनकी सेना में थे, जिनसे वह दुर्दर्ष सेना सुनहरे कनैर के वन के समान जान पड़ती थी। भूरिश्रवा और वीर शल्य भी अलग-अलग एक-एक अचौहिणी सेना साथ लेकर दुर्योधन के पास आये। हृदिक के पुत्र कृतवर्मा यादव भोज, अन्धक और कुङ्कुर वंश के यादवों की एक अचौहिणी सेना लेकर दुर्योधन के पास पहुँचे। वनमाला (पैरा तक लटकनेवाली माला) पहने हुए बीर सैनिकों से वह सेना उस वन के समान जान पड़ती थी जिसमें मस्त हाथी क्रीड़ा कर रहे हों। सिन्धु-सौवीर देश के रहनेवाले जयद्रथ प्रभृति २० राजा अपनी एक अचौहिणी सेना से पहाड़ों को भी हिलाते हुए से हस्तिनापुर में आये। वह सेना हवा से उड़े जाते बहुरूपधारी मेघ के समान जान पड़ती थी। काम्बोज देश के राजा सुदर्क्षण भी, यवनों और शकों की टीढ़ी-दल सी एक अचौहिणी सेना साथ लेकर, दुर्योधन के पास पहुँचे। वह सेना भी और सेनाओं की तरह दुर्योधन की अपार सेना में मिलकर अदृश्य सी हो गई। माहिष्मती पुरी के राजा नील भी दक्षिणदेश के नीलशस्त्रधारी वीर पुरुषों की सेना लेकर पहुँचे। अवन्ती देश के दोनों राजा विन्द-अनुविन्द भी एक-एक अचौहिणी सेना साथ लेकर दुर्योधन के पास आये। केकय देश के राजा पाँचों भाई, दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए, एक अचौहिणी सेना साथ लेकर आये। इसी प्रकार और भी जो राजा आये उनकी सब

सेना मिलाकर तीन अर्धहस्तियों हुई। इस प्रकार दुर्योधन की ओर अनेक रङ्ग की ध्वजाओं से शोभित ग्यारह अर्धहस्तियों सेना जमा हो गई। हस्तिनापुर में तो एक राजा की सेना के रहने भर को भी जगह नहीं थी। इसलिए वह सब सेना सारे पञ्चनद, कुरुजाङ्गल, रोहितक वन, मरुभूमि, अहिच्छत्र, कालकूट, गङ्गातट, वारण, वाटधान, यमुन पर्वत आदि धनधान्यपूर्ण प्रदेशों में फैलकर टिक रही। हे जनमेजय ! इसी बीच में राजा द्रुपद का भेजा हुआ दूत, वह पुरोहित, हस्तिनापुर में आया। राह में उसने उस विशाल सेना के पड़ाव देखे।

३३

सञ्जयान पर्व

वीसवाँ अध्याय

पुरोहित का संदेश कहना

वैशम्पायन कहते हैं—द्रुपद का पुरोहित जब कौरवों की सभा में पहुँचा तब धृतराष्ट्र, भीष्म और विदुर ने उसका यथोचित सत्कार किया। पाण्डवों के कुशल-समाचार कहकर और कौरवों की कुशल पूछकर सब सेना-नायकों के सामने पुरोहित ने कहा—आप लोग सनातन राजनीति को अच्छी तरह जानते हैं। परन्तु आपके जानने पर भी प्रसङ्गवश मैं कुछ कहता हूँ। धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों एक ही पिता की सन्तान हैं। पिता की सम्पत्ति में दोनों का ही समान भाग है। धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पिता की सम्पत्ति पाई है, तो फिर पाण्डवों को अपने पिता की सम्पत्ति क्यों नहीं मिली ? यह बात आप लोगों से छिपी नहीं है कि पहले जब पाण्डव वन में थे तब धृतराष्ट्र ने उनका जो पैतृक राज्य ले लिया था, वह उन्हें नहीं मिला। उसके बाद दुर्योधन आदि ने प्राणनाशक अनेक उपाय किये, पर पाण्डवों की ज़िन्दगी थी, इसलिए वे बाल-बाल बचते रहे; उनका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सका।



वीर पाण्डवों ने थोड़ा सा राज्य पाकर ही सन्तोष कर लिया था। उसे उन्होंने अपने बाहुबल से, पृथ्वी-विजय करके, बढ़ा लिया। तब धृतराष्ट्र की अनुमति और शकुनि की सहायता

१० से दुर्योधन आदि कौरवों ने छलपूर्वक उनका वह राज्य भी हर लिया। यही नहीं, बल्कि तेरह वर्ष तक वन में रहने के लिए विवश करके द्रौपदी-सहित पाण्डवों को सभा में तरह-तरह के कष्ट पहुँचाये और अपमान किया। कौरवों के कपट के कारण ही पाण्डवों को वन में रहकर भयानक क्लेश सहने पड़े। वीर पाण्डवों को पापियों की तरह अज्ञातवास का वर्ष विराटनगरी में छिपकर बिताना पड़ा। वहाँ उन्हें गर्भवास के से धोर दुःख सहने पड़े। परन्तु इन सब पहले के दुर्व्यवहारों को भुलाकर पाण्डव लोग सामनीति के साथ आपस में मेल कर लेना चाहते हैं। उनके और दुर्योधन के आचरणों पर ध्यान देकर आप लोग दुर्योधन को समझाएँ, क्योंकि आप लोग दुर्योधन के हितचिन्तक और आत्मीय हैं।

पाण्डव लोग कौरवों के साथ युद्ध करना नहीं चाहते। वे लोग इस तरह अपना हिस्सा लेना चाहते हैं कि लोगों की हत्या होने की नौबत ही न आवे। दुर्योधन जो दुर्बल समझकर पाण्डवों से युद्ध करना चाहते हैं, सो यह इनकी भूल है। क्योंकि वास्तव में बली पाण्डव ही हैं। कौरवों से युद्ध करने के लिए आई हुई सात अचौहिणी सेना पाण्डवों की ओर है। और लोग भी कौरवों से लड़ने के लिए पाण्डवों की आज्ञा की राह देख रहे हैं। सात्यकि, भीमसेन, नकुल, सहदेव आदि पुरुषसिंह हजार अचौहिणी सेना के बराबर हैं। एक ओर कौरवों की ग्यारह अचौहिणी सेना है; दूसरी ओर अगर अकेले महाबाहु बहुरूपी अर्जुन ही होते तो वही उस सेना से अधिक थे। जैसे अकेले अर्जुन कौरवों की ग्यारहों अचौहिणी सेना से बढ़कर हैं, वैसे ही महातेजस्वी महाबाहु श्रीकृष्ण भी हैं। ऐसा कौन बुद्धिमान पुरुष होगा, जो सेना की बलबत्ता, अर्जुन के पराक्रम और श्रीकृष्ण की बुद्धिमानी का संयोग देखकर भी युद्ध करने की इच्छा प्रकट करेगा? इसलिए [मैं यही सँदेसा लेकर आया हूँ कि] आप लोग धर्म और प्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डवों को आधा राज्य दे दीजिए, क्योंकि वह दे देना न्याय से २१ आप लोगों का कर्तव्य है। अभी कुछ नहीं बिगड़ा है।

द्वीसवाँ अध्याय

भीष्म, कर्ण और धृतराष्ट्र की बातें

वैशम्पायन कहते हैं कि पुरोहित के मुँह से ये बातें सुनकर बुद्धिमान तेजस्वी महात्मा भीष्म ने समयानुसार उनकी बड़ाई करते हुए कहा—बड़े भाग्य की बात है कि पाण्डव लोग श्रीकृष्ण के साथ सकुशल, सहायवान् और धर्मनिरत हैं। यह भाग्य की ही बात है कि पाण्डव लोग कौरवों से सन्धि करना चाहते हैं; उनका या उनके इष्ट-मित्र भाई-बन्धुओं का युद्ध का इरादा नहीं है। ब्रह्मन्, आपने जो कुछ कहा सो ठीक ही है; किन्तु आपका कहने का ढङ्ग अत्यन्त तीव्र है।

मेरी समझ में उसका कारण आपका ब्राह्मण होना ही है। इसमें सन्देह नहीं कि वन में और यहाँ भी पाण्डवों को बड़ा कष्ट पहुँचाया गया है और यह भी ठीक है कि वे इस समय धर्म के अनुसार अपने पिता का राज्य पाने के अधिकारी हैं। युद्ध-भूमि में लड़ने के लिए खड़े हुए अर्जुन का सामना साक्षान् इन्द्र भी नहीं कर सकते, तब और योद्धाओं के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। अर्जुन बलवान्, अश्व-विद्या में निपुण और महारथी हैं; वे युद्ध में तीनों लोकों का नाश कर सकते हैं। मैं तो यही समझता हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं कि भीष्म के यों कहने पर कर्ण ने क्रोध का भाव दिखाकर, ठिठाई के साथ उनके वचनों का अनादर करके, दुर्योधन की ओर देखा और कहा—ब्रह्मन्, आपने जिस बारे में ये वचन कहे उसे, ऐसा कोई नहीं है, जो जानता न हो। जानी हुई बात को बार-बार कहने या दुहराने से कोई लाभ नहीं। सभी जानते हैं कि शकुनि ने दुर्योधन की ओर से चौसर खेलकर युधिष्ठिर का राज्य जीत लिया था और अन्त को युधिष्ठिर वनवास की प्रतिज्ञा करके जङ्गल को गये थे। युधिष्ठिर उस प्रतिज्ञा को पूर्ण किये बिना ही, भूखों की तरह, विराट और दुपद के बल पर भूलकर अपने पिता का राज्य लेना चाहते हैं। राजा दुर्योधन धर्म के अनुसार

१०

अपने शत्रु को भी सारी पृथ्वी का राज्य दे डालने को तैयार हैं; किन्तु किसी के दबाव से डरकर पग भर भी पृथ्वी नहीं दे सकते। जो पाण्डव लोग अपने पिता का राज्य लेना चाहते हैं तो प्रतिज्ञा के अनुसार बारह वर्ष वन में फिर रहें और अज्ञातवास करें; [क्योंकि हमने समय पूरा होने के पहले ही उन्हें विराट की नगरी में देख लिया है।] जब वे फिर वनवास करके प्रतिज्ञा पूरी कर लेंगे तब दुर्योधन की शरण में निर्भय होकर रहेंगे। मूर्खतावश प्रतिज्ञा पूरी किये बिना राज्य प्राप्त करने की अधर्म बुद्धि करना उनके लिए सर्वथा अनुचित है। यदि पाण्डव लोग धर्म को छोड़कर युद्ध की इच्छा करेंगे तो जब कौरवों का सामना होगा तब उन्हें मेरी ये बातें याद आवेंगी और पछताना पड़ेगा।



भीष्म ने कहा—हे कर्ण, मुँह से यां कह देने में क्या वीरता है? तुम क्या गर्व करते हो? अकेले अर्जुन ने युद्ध में तुम छः महारथियों को मार भगाया था; उसे याद करा। अर्जुन ने उस युद्ध में कई बार तुमको जीतकर छोड़ दिया था, तभी तुम्हारी सब बहादुरी देख ली गई। ब्राह्मण ने जो कहा है उसे यदि हम लोग नहीं मानेंगे तो अवश्य अर्जुन के हाथ से मरकर धूल फाँकेंगे।

हे जनमेजय, तब धृतराष्ट्र ने सादर नम्र वचनों से भीष्म को प्रसन्न करके कर्ण को भिड़का और कहा—पितामह भीष्म ने यह हमारे हित की बात कही है। इससे पाण्डवों का और सब जगन् का हित होगा। यह सोचकर मैं अभी सञ्जय को पाण्डवों के पास भेजूँगा। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, आप शीघ्र पाण्डवों के पास जाइए। अब धृतराष्ट्र ने सत्कारपूर्वक उस ब्राह्मण को पाण्डवों के पास भेज दिया और फिर सभा में सञ्जय को बुलाकर उससे यां कहा।

बाईसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का सँदेवा

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय, लोग कहते हैं कि पाण्डव लोग उपद्रव्य नगर में आ गये हैं। तुम जाकर पता लाओ। अजातशत्रु युधिष्ठिर का सत्कार करना और कहना, “खुशी की बात है कि तुम वन से नगर में आ गये!” उनसे यह भी कहना कि हम सब कौरव सकुशल हैं। देखो, हमारे कारण अपने अयोग्य वनवास के कष्ट उठाकर भी सत्यवादी और परोपकारी सज्जन पाण्डवों ने अभी तक हम पर क्रोध नहीं किया। हे सञ्जय, निष्कपट पाण्डवों का कभी कोई मिथ्या व्यवहार (बेईमानी या भूठ) नहीं देखा। अपने बाहु-बल से सम्पत्ति जीत लाकर भी वे सदा मुझे ही सौंप दिया करते थे। बहुत खोजने पर भी पाण्डवों में मुझे कोई सूक्ष्म दोष तक नहीं मिला, जिसके लिए मैं उनकी निन्दा करूँ। वे धर्म और अर्थ के लिए ही सब काम करते हैं। कामवश होकर सुख या प्रिय की प्राप्ति के लिए कोई अनुचित काम नहीं करते। पाण्डव लोग समझदारी और धैर्य के बल से सदी-गर्मी, भूख-व्यास, निद्रा-तन्द्रा, क्रोध-हर्ष और प्रमाद आदि द्वन्द्व धर्मों को जीतकर धर्म और अर्थ के कामों को ही यत्नपूर्वक करते रहते हैं। वे समय पर मित्रों को धन देते हैं। पास रहने पर भी उनकी मित्रता शिथिल नहीं होती। वे योग्य पुरुषों को सदा उचित सम्मान और धन देकर सन्तुष्ट रखते हैं। पापी, दुर्बुद्धि, क्षुद्रहृदय दुर्याधन और कर्ण के सिवा पाण्डवों का—खासकर युधिष्ठिर का—शत्रु कोई नहीं है। सुख और प्रिय से हीन पाण्डवों के मन में यही दोनों दुर्मति क्रोध उत्पन्न कर दिया करते हैं। दुर्योधन का पराक्रम इतना ही है कि वह उठान का तेज़ है, अर्थात् अपने कामों से बिगाड़ पैदा कर देने में निपुण है। वह अत्यन्त राज्य-सुख की इच्छा के वश होकर अपने उस काम को अच्छा

समझता है। वह मूर्ख है, जो पाण्डवों के जीते जी उनके भाग को हर लेना सहज समझता है। जिन युधिष्ठिर के सहायक और अनुगामी अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीमसेन, सात्यकि, नकुल, सहदेव और वीर मृञ्जय आदि हैं उन्हें, युद्ध छिड़ने के पहले ही, उनका हिस्सा दे देना दुर्योधन के लिए अच्छा है। गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले सव्यसाची अर्जुन रथ पर बैठकर अकेले ही सारे पृथ्वी-मण्डल का नाश कर सकते हैं। विजयी त्रिलोकीनाथ महात्मा श्रीकृष्ण भी समर में अधृष्य हैं। एकमात्र श्रेष्ठ योद्धा अर्जुन के सामने युद्ध में कौन ठहर सकता है ? जो मेघ के समान गरजनेवाले, शीघ्रगामी, टीढ़ीदल के समान असंख्य बाणों की वर्षा करते हैं, जिन गाण्डीवधन्वा अर्जुन ने एक रथ पर बैठकर उत्तर दिशा और उत्तरकुल प्रदेश को जीतकर उनसे 'कर' वसूल किया और द्रविड़ देश के लोगों को हराकर अपनी सेना में रख लिया, जिन अर्जुन ने खाण्डव वन में गाण्डीव धनुष की सहायता से दंगण-सहित इन्द्र को हराया और अग्नि को जलाने के लिए खाण्डव वन देकर पाण्डवों के यश और मान को बढ़ाया, उन अर्जुन को कौन जीत सकता है ? गदायुद्ध और हाथी की सवारी करने में महाबली भीमसेन के समान दूसरा कोई नहीं है। रथ की सवारी में भी भीमसेन अर्जुन से किसी अंश में कम नहीं हैं। उनकी भुजाओं में दस हजार हाथियों का बल है। उन युद्ध-विद्या में सुशिक्षित, वेगशाली भीमसेन से वैर बढ़ाने का फल यही होगा कि वे कुपित होकर सहज ही मेरे छुद्र पुत्रों को मार डालेंगे। भीमसेन बड़े क्रोधी हैं। उन्हें साक्षात् इन्द्र भी बलपूर्वक नहीं जीत सकते। तेजस्वी, बली, फुरतीले, अर्जुन के सिखाये, सुशिक्षित नकुल और सहदेव युद्ध में एक भी शत्रु को जीता नहीं छोड़ेंगे और दो बाज़ जैसे पक्षियों पर हमला करते हों वैसे ही शत्रुसेना पर हमला करेंगे। यह सच है कि हमारी ओर से लड़ने के लिए अपार सेना जमा हुई है, परन्तु पाण्डवों के मुकाबले में वह मुझे कुछ नहीं जँचती। तेजस्वी पराक्रमी धृष्टद्युम्न और मन्त्रियों-सहित सोमकश्रेष्ठ राजा द्रुपद पाण्डवों के पक्ष में हैं। मैंने सुना है, वे पाण्डवों के लिए अपने प्राण तक देने को तैयार हैं। वृष्णसिंह श्रीकृष्ण जिनके नेता और सलाहकार हैं उन युधिष्ठिर का सामना कौन कर सकता है ? राजा विराट के यहाँ पाण्डव लोग साल भर रहे हैं और उन्होंने विराट का उपकार भी किया है। वृद्ध मत्स्यराज विराट और उनके पुत्र युधिष्ठिर के बड़े भक्त हैं [वे भी पाण्डवों की ओर से लड़ेंगे,] यह मैं सुन चुका हूँ। केकयदेश के महायोद्धा पाँच राजकुमार पहले हमारे पक्ष में थे। हम लोगों ने जब से उन्हें केकयदेश से बाहर निकाल दिया और उनका राज्य छीन लिया, तब से वे हमारे शत्रु हो गये हैं। इस समय वे भी अपना राज्य लेने की इच्छा से पाण्डवों के सहायक हो गये हैं और हमसे लड़ने के लिए उस ओर जा मिले हैं। मैंने सुना है, इसी तरह सब प्रधान शूर-वीर राजा लोग पाण्डवों पर भक्ति रखते हैं और प्रसन्नतापूर्वक उनकी सहायता करने के लिए युधिष्ठिर के पास पहुँच गये हैं। पहाड़ों और दुर्गों में रहनेवाले, विशुद्ध कुल और जाति में

१०

२०

उत्पन्न अनेक क्षत्रिय राजा और विविध-शस्त्रधारी पराक्रमी स्नेच्छ राजा भी पाण्डवों का पक्ष लेकर हमसे लड़ने को जमा हुए हैं। युद्ध में इन्द्र के समान पराक्रम दिखानेवाले, लोकवीर, महा-तेजस्वी पराक्रमी पाण्डव राजा भी बहुत से वीर योद्धाओं को साथ लेकर पाण्डवों की सहायता करने आये हैं। द्रोणाचार्य, अर्जुन, श्रीकृष्ण, कृपाचार्य और भीष्म से अस्त्र-विद्या सीखनेवाले, प्रह्लाद के समान महारथी वीर मात्यकि भी पाण्डवों के पक्ष में हैं। चेदि, करुष आदि देशों के बली राजा भी मिलकर पाण्डवों की सहायता करने आये हैं। उनमें श्रीमान् चेदिराज का तेज सूर्य के समान अमल्य है। पहले युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिराज को, युद्ध में न रक्षा जाने योग्य समझकर और युद्ध के लिए धनुष चढ़ाते देखकर, श्रीकृष्ण ने क्षत्रियों के सब उत्साह को मिटाते हुए बलपूर्वक मार डाला था। उस समय पाण्डवों के यश और मान को बढ़ाने के लिए ही श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को मारा था। करुष देश के राजा आदि सब श्रेष्ठ शूर क्षत्रिय शिशुपाल का मान करते थे, परन्तु सुग्रीव आदि घोड़ों से शोभित रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण को असह्य समझकर वे सब शिशुपाल को छोड़कर वैसे ही भाग खड़े हुए जैसे सिंह को देखकर लुट्ट मृग भाग खड़े होते हैं। श्रीकृष्ण महापराक्रमी हैं। जो कोई विरोध ठानकर उनसे द्वन्द्व युद्ध करने पर उद्यत हुआ वही उनके हाथ से मरकर, हवा के उखाड़े कनैर के पेड़ की तरह, पृथ्वी पर सो रहा। मुझे दूतों से मालूम हुआ है कि वे श्रीकृष्ण पाण्डवों की सहायता के लिए कैसे-कैसे काम कर रहे हैं। हे सञ्जय, श्रीकृष्ण के अद्भुत कर्मों का स्मरण करके मुझे शान्ति नहीं मिलती। वृष्णिर्मह कृष्णचन्द्र जिनके अगुआ हैं, उन पाण्डवों का सामना कौन शत्रु कर सकता है? श्रीकृष्ण और अर्जुन के एक ही रथ पर बैठने की बात जब से मैंने सुनी है तब से मेरा हृदय धड़क रहा है। मेरा मन्दबुद्धि पुत्र यदि पाण्डवों से लड़ाई नहीं ठानेगा, तभी उसका भला होगा। नहीं तो हे सञ्जय, कृष्णचन्द्र और अर्जुन सब कौरवों का विनाश उसी तरह कर डालेंगे जिस तरह इन्द्र और विष्णु दैत्यों का नाश करते हैं। मैं अर्जुन को इन्द्र के समान और श्रीकृष्ण को साक्षात् विष्णु के तुल्य समझता हूँ। अज्ञातशत्रु युधिष्ठिर भी धार्मिक, शील-सङ्कोच से परिपूर्ण और उदार हैं। वे जितेन्द्रिय हैं, नहीं तो जब दुर्योधन आदि ने कपट करके उनका राज्य ले लिया था तभी वे क्रोध करके सब कौरवों का भस्म कर डालते। सच तो यह है कि मैं उतना भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव या श्रीकृष्ण से नहीं डरता जितना क्रोधित राजा युधिष्ठिर के कोप से डरता हूँ। युधिष्ठिर महातपस्वी और ब्रह्मचारी हैं; वे मन में जो इरादा करेंगे वह अवश्य सिद्ध होगा। हे सञ्जय, मैं इस समय उनके क्रोध का उपयुक्त समय देखकर बहुत डर रहा हूँ। इसलिए तुम मेरे कहने से रथ पर बैठकर बहुत शीघ्र पाञ्चालराज की सेना के पड़ाव में जाओ। तुम अज्ञातशत्रु युधिष्ठिर से उनकी कुशल पूछना और बारम्बार मेरी ओर से प्रीति की बातें करना। महापराक्रमी महाभाग श्रीकृष्ण के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करना। मेरे कहने से कुशल-चैम

पूछना, और कहना, राजा धृतराष्ट्र पाण्डवों से मेल ही करना चाहते हैं। श्रीकृष्ण जो कुछ कहेंगे उसे युधिष्ठिर कभी न टालेंगे। हे सञ्जय, श्रीकृष्ण उन्हें बहुत प्यारे हैं। वे आत्मा से भी बढ़कर पाण्डवों को प्रिय, समझदार, विद्वान् और सदा पाण्डवों के हितचिन्तक हैं। तुम मेरी ओर से पाण्डव, सात्यकि, राजा विराट और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों से भी उनकी कुशल-चाम पूछना। इसके सिवा वहाँ जो तुम समय के अनुकूल और कौरवों के भले की बात समझना सो उम राजसभा में कहना। ऐसी बातें करना जिनसे पाण्डव-पक्ष का क्रोध और विरोध न बढ़े, और युद्ध छिड़ने की आशङ्का मिट जाय।

४०

तेईसवाँ अध्याय

सञ्जय का पाण्डवों के पास जाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजा धृतराष्ट्र के वचन सुनकर सञ्जय उसी दिन पराक्रमी पाण्डवों को देखने के लिए उपद्रव्य नगर को गये। राजा युधिष्ठिर के पास पहुँचकर सञ्जय ने पहले उन्हें प्रणाम किया और फिर प्रसन्नतापूर्वक कहा—बड़े भाग्य की बात है महाराज, जो मैं आपको नीरोग, सहाययुक्त और महेन्द्र के समान देख रहा हूँ। बुद्धिमान बूढ़े राजा धृतराष्ट्र ने आपके कुशल-समाचार पूछे हैं। पाण्डवश्रेष्ठ भीमसेन, वीर अर्जुन, पुरुषसिंह नकुल और सहदेव अच्छी तरह हैं न? सत्यवादिनी, वीरपत्नी, श्रेष्ठ पुत्रों-वाली, मनखिनी द्रौपदी तो अच्छी तरह हैं न? जिनका आप सदा भला चेतते रहते हैं और जिन हाथी-घोड़े आदि की आपको इच्छा रहती है वे सब अच्छी दशा में हैं न?

युधिष्ठिर ने कहा—हे सञ्जय, आओ, मैं प्रसन्न होकर तुम्हारा स्वागत करता हूँ। मुझे आशा है, तुम सब प्रकार से सकुशल होओगे। हे सूत, मैं भाइयों के साथ सब प्रकार से सकुशल हूँ। बहुत दिनों के बाद कुरु-वृद्ध राजा धृतराष्ट्र के कुशल-समाचार पाकर और तुमको देखकर मुझे महाराज को



साक्षात् देखने की सी खुशी हुई है। हमारे वृद्ध पितामह, मनरवी, प्राज्ञ, सब धर्मों के ज्ञाता और प्रतिपालक, कुरु-कुल-तिलक भीष्म तो सकुशल हैं न ? हमारे ऊपर उनका जो स्नेह पहले था उसमें कुछ कमी तो नहीं हुई ? हे सूत, महात्मा राजा धृतराष्ट्र और विद्वान् महात्मा बाह्लीक तो कुशल से हैं ? सामदत्त, भूरिश्रवा, सत्यप्रतिज्ञ शल, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि १० सब महारथी तो नीरांग और सकुशल हैं ? बुद्धिमान्, सब शास्त्रों के प्रसिद्ध ज्ञाता, प्रधान योद्धा क्षत्रिय लोग तो कौरवों के अनुकूल और अनुगामी हैं ? जिनके राज्य में दर्शनीय, सच्चरित्र, महाधनुर्धर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा रहते हैं वे योद्धा कौरव तो नीरांग हैं ? उनका सर्वत्र मान होता है न ? वैश्यापुत्र धृतराष्ट्र के बेटे महाप्राज्ञ युयुत्सु तो सकुशल हैं ? मन्दबुद्धि दुर्योधन जिनकी सलाह पर चलते हैं वे मानी कर्ण तो सकुशल हैं ? भरतवंश की मित्रियाँ, बूढ़े, माताएँ, दासियाँ, रसोई का काम करनेवाली, बहुएँ, पुत्र, भानजे, वहने, नाती आदि सब परिवार परिजन तो सकुशल हैं और निष्कपट व्यवहार करते हैं ? राजा दुर्योधन पहले की तरह ब्राह्मणों को, बँधी हुई, वृत्तियाँ देते जाते हैं न ? हं सञ्जय, मैंने ब्राह्मणों की जीविका के लिए गाँव-जमीन आदि जो सम्पत्ति दे रखी थी, उसे दुर्योधन ने उनसे छीन तो नहीं लिया ? ब्राह्मणों से अगर कोई अपराध बन पड़ता है तो उसे अपने पुत्रों-सहित राजा धृतराष्ट्र उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं न ? स्वर्ग का मार्ग, जो ब्राह्मणों को दी हुई, जीविका है उसकी उपेक्षा तो राजा नहीं करते ? ब्राह्मणों की जीविका को बनाये रखना एक ऐसा काम है जिससे यहाँ यश होता है और परलोक में सद्गति प्राप्त होती है। यह व्यवस्था विधाता की बनाई हुई है। यदि मन्दबुद्धि कौरव लालच में पड़कर ब्राह्मणों की वृत्तियाँ छीन लेंगे तो कौरवों का सर्वनाश ही हो जायगा।

हे सञ्जय, अपने पुत्र-सहित राजा धृतराष्ट्र सदा अपने मन्त्रियों और कर्मचारियों के कामों पर ध्यान रखते हैं न ? [ठीक समय पर उन्हें उनकी वृत्ति देकर सन्तुष्ट रखते हैं न ? इस पर दृष्टि रखते हैं न कि उन सबका हमारे (कौरवों के) लिए आन्तरिक भाव क्या है ?] मित्र बने हुए दुष्ट लोग तो एकमत होकर भेद-नीति के प्रयोग से अपना काम नहीं निकाल रहे हैं ? द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, वीर कृपाचार्य और सब कौरव हम पाण्डवों के विषय में कुछ बुरा विचार तो नहीं रखते ? सब कौरव लोग मिलकर पुत्र-सहित धृतराष्ट्र से [हमें आधा राज्य दे देने के लिए] कहते हैं या नहीं ? कभी डाकुओं और शत्रुओं का सामना करने के अवसर पर वे २० लोग महायोद्धा अर्जुन के कामों की याद करते हैं या नहीं ? हे सूत, [भला वे लोग कभी विराट-नगरी के युद्ध को याद करते हैं ? वहाँ अर्जुन ने जो अद्भुत काम किया था उसकी चर्चा भी कभी करते हैं ?] धनुर्धर अर्जुन के गाण्डीव धनुष से छूटे हुए, बिजली के शब्द के समान कड़कते हुए, सीधे जानेवाले बाणों को कभी वे लोग याद करते हैं ? मुझे तो पृथ्वीमण्डल पर अर्जुन से अधिक या उनके समान कोई वीर धनुर्धर योद्धा नहीं देख पड़ा। महावीर अर्जुन

पैने, सुन्दर पुङ्ख से शोभित, शीघ्रगामी इकसठ बाण एक साथ, एक मुट्ठी से, चला सकते हैं ! शत्रुओं को कँपाते हुए—घास के मैदान में मस्त हाथी के समान—शत्रुसेना में विचरनेवाले, अर्थात् उसे रौंदनेवाले, महाबली गदापाणि भीमसेन को और उनके पराक्रम को भी कभी कौरव लोग याद करते हैं ? बायें और दाहने दोनों हाथों से बाण बरसानेवाले और लड़ाई में कलिङ्गदेश-वासियों को हरानेवाले सहदेव को कभी वे लोग याद करते हैं ? हे सञ्जय, पहले तुम्हारे सामने ही मैंने जिनको शिवि और त्रिगर्त देश जीतने के लिए भेजा था और जिन्होंने राजसूय यज्ञ के अवसर पर अपने पराक्रम से सम्पूर्ण पश्चिम दिशा जीतकर मेरे अधीन कर दी थी, उन नकुल को भला दुर्योधन आदि कौरव कभी याद करते हैं ? कुमन्त्रणा करके घोषयात्रा के बहाने दुर्योधन आदि कौरव द्वैतवन में गये थे । वहाँ गन्धर्वों से जो उन्हें नीचा देखना पड़ा था और अर्जुन तथा भीमसेन ने मेरे कहने से जाकर उन्हें गन्धर्वों के हाथ से छुड़ाया था, उन बातों को कभी दुर्योधन और उनके साथी लोग याद करते हैं ? उस युद्ध में मैंने अर्जुन की और भीमसेन ने नकुल और सहदेव की पृष्ठ-रक्षा की थी । गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन शत्रुओं के असंख्य दल को हराकर सकुशल लौट आये थे । इन बातों को और उन पराक्रमी अर्जुन को कौरव लोग कभी याद करते हैं ? हे सञ्जय, अगर हम लोग अनेक यत्न करके भी धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन को वश में न कर सके तो मुझे यह निश्चय हो जायगा कि इस लोक में केवल अच्छे कर्मों से ही सुख नहीं पाया जा सकता ।

२८

चौबीसवां अध्याय

सञ्जय का धर्मराज युधिष्ठिर को उत्तर

सञ्जय ने कहा—हे युधिष्ठिर, आपने कौरवों के बारे में जो कुछ पूछा सो सब वैसा ही है । हे पार्थ, जिन भीष्म आदि कुश्रष्ट्रों के बारे में आपने प्रश्न किये वे सब सकुशल हैं । राजन्, दुर्योधन के पास वृद्ध सज्जन भी हैं और पापबुद्धिवाले दुर्जन भी हैं । दुर्योधन शत्रुओं को भी धन देता है, तब वह ब्राह्मणों की सम्पत्ति या जीविका कैसे हरेगा ? आप लोग द्रोह का भाव नहीं रखते, इस कारण दुर्योधन का आपसे द्रोह रखना ठीक नहीं कहा जा सकता । असाधु दुर्योधन आप सञ्चरित्रों से द्वेष करके मित्रद्रोह के पाप का भागी होगा । हे अजातशत्रु, वृद्ध राजा धृतराष्ट्र भी इस बात को जानते हैं और भीतर ही भीतर शोक से व्याकुल रहते हैं । ब्राह्मणों के मुँह से वे यह बात सुनते रहते हैं कि मित्रद्रोह सबसे बड़ा पाप है । हे नरदेव, बैठक के समय दुर्योधन और उसके साथी भी सदा महायादवा अर्जुन और गदा हाथ में लिये बली भीमसेन को स्मरण करते हैं । वे शङ्ख-दुन्दुभि आदि बजने पर युद्धस्थल में सब और शत्रु-सेना पर लगातार बाण-वर्षा करनेवाले महारथी और युद्ध में पीठ न दिखानेवाले नकुल और सहदेव की भी याद किया करते हैं ।

महाराज, मैं तो यह समझता हूँ कि मनुष्य के भविष्य को कोई नहीं जान सकता; पहले से कोई नहीं बता सकता कि आगे क्या होगा। जो यह बात न होती तो परम धर्मात्मा आप क्यों ऐसे घोर क्लेश पाते ? हे युधिष्ठिर, अपनी बुद्धि और समझदारी से कष्ट को सहना और दुःख-सुख को समान समझना आप ऐसे महात्मा पुरुषों का ही काम है। इसलिए अब आप कौरवों से युद्ध न करके मेल ही कर लीजिए। इन्द्रतुल्य पाँचों पाण्डव किसी इच्छा के वश होकर कभी धर्म को नहीं छोड़ सकते। इसलिए हे युधिष्ठिर, आप इस युद्ध की सम्भावना को मिटाकर मेल का यत्न कीजिए जिसमें कौरवों का भला हो। पाण्डव, सृञ्जयगण, धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव और अन्य जो राजा यहाँ और वहाँ युद्ध के लिए जमा हुए हैं, सबका भला जिममें हों, वही इस समय आपका कर्तव्य है। हे युधिष्ठिर, आपके चाचा धृतराष्ट्र ने आपसे कहने के लिए जो १० मुझसे कहा है, सो मैं कहता हूँ। आप मन्त्रियों, पुत्रों और इष्ट-मित्रों के साथ सुनिए।

पञ्चीसवाँ अध्याय

सञ्जय का युद्ध की निन्दा करते हुए भीष्म और धृतराष्ट्र आदि की सभ्यता सुनाना

युधिष्ठिर ने कहा—हे सञ्जय ! पाण्डव, सृञ्जय, कृष्णचन्द्र, सात्यकि, विराट आदि सब लोग यहाँ उपस्थित हैं। अब तुम महाराज धृतराष्ट्र की कही हुई बातें कहो।

सञ्जय ने कहा—मैं अज्ञातशत्रु, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, महदेव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, चेकितान, विराट, वृद्ध पाञ्चालनरेश द्रुपद, धृष्टद्युम्न आदि सबको प्रणाम करके कौरवों के भले की बातें कहता हूँ। आप लोग सुनिए। राजा धृतराष्ट्र आपस में मेल कर लेना चाहते हैं। इसी से शीघ्र ही रथ पर बिठाकर उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। भाई, पुत्र, स्वजन, इष्ट-मित्र आदि के साथ राजा युधिष्ठिर को धृतराष्ट्र की इच्छा का अनुमोदन करना चाहिए। पाण्डव लोग उसे स्वीकार कर लें, जिसमें युद्ध की आशङ्का मिट जाय और शान्ति स्थापित हो। पाण्डव लोग आकृति, सरलता, कृपा आदि से युक्त, अच्छे कुल में उत्पन्न, शान्त, उदार, शीलसङ्कोचयुक्त और सब कामों में चतुर दूरदर्शी हैं। हे सेनायुक्त पाण्डवों, हिंसा या और कोई हीन काम आपसे नहीं हो सकता, क्योंकि आपकी बुद्धि ऐसी ही परिमार्जित और पक्की है। जो ऐसा काम आपसे हो जाय तो वह उजले कपड़े में काले दाग की तरह सदा दूर से दिखाई देगा—कलङ्क बन जायगा। युद्ध में जाति का क्षय होने की आशङ्का है। उसे कौरवों का पापेदय कहना चाहिए। ऐसे युद्ध में हारना और जीतना दोनों ही समान शोक का कारण होंगे, क्योंकि सबका संहार हो जायगा। कौन ऐसा समझदार होगा जो यह जानकर भी युद्ध छेड़ना चाहेगा ? वे धन्य हैं, जो सदा अपने भाइयों का—जातिवालों का—काम कर देते हैं, जैसे आपने दुर्योधन को घोषयात्रा

में गन्धर्वों के हाथ से छुड़ाया था । वे ही यथार्थ पुत्र और सुहृद् हैं जो जाति-भाइयों का खयाल रखते हैं । ऐसे लोग निन्दित जीवन से कभी नहीं जीते । इसलिए आप कौरवों के भले की इच्छा से मेल कर लीजिए । जो आप पाण्डवों ने युद्ध का ही निश्चय करके सब द्वेषी कौरवों को मारकर विजय पाई, तो आपका वह जीवन भी मरण के समान होगा । जाति-बध करके जीना मरने के ही बराबर है । श्रीकृष्ण, चेकितान, द्रुपद और सात्यकि की सहायता पायें हुए और उनके द्वारा सुरक्षित आप लोगों को युद्ध में जीतने की हिम्मत कौन कर सकता है ? इन्द्र-सहित सब देवताओं की सहायता पाकर भी तो कोई नहीं जीत सकता । वैसे ही द्रोण, भीष्म, १० कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और शल्य आदि अनेक राजा-महाराजाओं के रहते कौरवों को ही कौन सहज में जीत सकता है ? राजा दुर्योधन की अपार सेना को ही कौन, बिना अपनी हानि किये, मार सकता है ? इसलिए मुझे जय-पराजय का कुछ निश्चय नहीं देख पड़ता । [यह नहीं कहा जा सकता कि कौन जीतेगा या कौन हारेगा । जीतने या हारने में दोनों पक्षों की कुछ भलाई नहीं देख पड़ती ।] पाण्डव लोग, नीच कुल में उत्पन्न ओछे आदमियों की तरह, धर्म और अर्थ के विरुद्ध युद्ध ऐसे घोर कर्म में कैसे प्रवृत्त होंगे ? इसलिए मैं (धृतराष्ट्र) श्रीकृष्ण और वृद्ध पाञ्चालराज द्रुपद को प्रणत-भाव से मनाता हुआ, हाथ जोड़कर, शरणागत होकर, कहता हूँ कि [युद्ध छोड़कर सन्धि का ही उद्योग होना चाहिए ।] कुरुवंश और सृजयवंश की भलाई का उपाय करना चाहिए । मुझे विश्वास है कि मेरी बात का श्रीकृष्ण और अर्जुन को खयाल जरूर होगा । क्योंकि ये तो याचना करने से अपने प्राण तक दे सकते हैं; तब यह प्रार्थना मान लेना कौन बड़ी बात है । मैं आपस में मेल होने के लिए ही ये बातें कह रहा हूँ । हे धर्मराज, भीष्म और महाराज धृतराष्ट्र की यही इच्छा है कि यह विरोध सदा के लिए शान्त हो जाय । १५

छब्बीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का सञ्जय को प्रत्युत्तर

युधिष्ठिर ने कहा—सञ्जय, तुमने मेरे मुँह से युद्ध की इच्छा की कौन सी बात सुनी है, जो युद्ध से यों डरते हो ? युद्ध की अपेक्षा मेल कर लेना अच्छा है । जो यों ही कार्य सिद्ध हो जाय तो युद्ध करना कौन पसन्द करेगा ? यदि मनुष्य की इच्छा, कुछ किये बिना, स्वयं सिद्ध हो जाय तो फिर कौन उद्योग करना चाहेगा ? जो युद्ध करने से बहुत और युद्ध न करने से कम लाभ हो तो वह कम लाभ ही सब तरह अच्छा है, यह मुझे मालूम है । कौन पुरुष युद्ध करने का इरादा करेगा ? किसे देवताओं का शाप हुआ है, जो छोड़कर युद्ध करना चाहेगा ? हे सूत, पाण्डवों का नियम है कि वे सदा सुख की इच्छा से वही काम करते हैं जो धर्म के विरुद्ध नहीं होता और जिससे किसी को हानि नहीं पहुँचती । हम लोग वही सुख चाहते हैं जिससे धर्म

का अभ्युदय हो अथवा जो धर्मकार्य से प्राप्त हो। ऐसा सुख दुःख भेलने से ही मिलता है। जिसे सुख पाने और दुःख मिटाने की इच्छा हो, उसे वही काम करना चाहिए जो धर्म-सङ्गत है। कौन चतुर पुरुष विषयेंन्द्रियों के वश में होकर अपने शरीर को कष्ट पहुँचावेगा ? यह मनुष्य की तृष्णा (लोभ) ही सब अधर्म कराती है। उस तृष्णा से जो बचा रहता है वह कभी परिणाम में दुःख देनेवाले काम नहीं करता। जैसे प्रज्वलित आग में बारम्बार ईंधन डालने से वह और प्रबल हो उठती है वैसे ही मनुष्य की तृष्णा दिन-दिन बढ़ती ही रहती है। आग जैसे घी छाड़ने से नहीं बुझती, बल्कि प्रचण्ड हो उठती है, वैसे ही धन और भोग पाकर मनुष्य की लालसा बुझने की जगह दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती रहती है। हम सहित एक सौ पाँच पुत्रवाले महा-राज धृतराष्ट्र को अपार राज्यभोग को देखो। इतने पर उनका जी नहीं भरा। सब हमारे ही लड़कों का हो जाय, इस विचार से उन्होंने हमारा राज्य छीन लिया। फिर भी मैं तो यही कहूँगा कि हम अपने ही भाग्य के दोष से बनवासी हुए और अनेक कष्ट भी हमने सहे। जिसने पुण्य किया है वही युद्ध टानता है, अर्थात् औरों से लड़कर अपना ऐश्वर्य बढ़ाता है। जो पुण्यात्मा नहीं है वह युद्ध में मारा जाता है। पुण्यात्मा लोग ही गाना सुनते हैं, माला पहनते हैं, चन्दन-अङ्गराग आदि लगाते हैं, और बढ़िया कपड़े पहनते हैं। जो यह बात न होती तो राजा धृतराष्ट्र हमें कुरुदेश से दूर क्यों कर देते ? अर्थात् शत्रुओं को राज्य-भ्रष्ट कर देना भी पुण्यात्माओं का कार्य है। यद्यपि राजा की ऐसी ही समझ है तथापि वह डाह और जी की जलन पैदा करने-वाली भोग-तृष्णा मूर्ख दुर्योधन आदि के ही योग्य है; हम ऐसे समझदार उससे अपने को बचाये रहते हैं। वैसे ही नासमझों का हृदय ईर्ष्या से जलता रहता है। किन्तु सङ्कट आ पड़ने पर राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधन दूसरों (कर्ण आदि) के बल का भरोसा करते हैं, यह अच्छी बात नहीं है। राजा धृतराष्ट्र जैसे अपने को अशक्त समझते हैं वैसे ही दुर्योधन भी कर्ण आदि को असमर्थ समझता है। [दुर्योधन यह समझकर भी कि कर्ण आदि पाण्डवों को जीत नहीं सकते, अपनी मूर्खता के कारण युद्ध करना चाहता है किन्तु राज्य नहीं देना चाहता।] धृतराष्ट्र का इस समय शोक करना वैसा ही, जैसे कोई मनुष्य गर्मी के दिनों में, दोपहर के समय, बहुत सी सूखी घासवाले घने जङ्गल में आग लगा दे, और जब वह आग हवा से बढ़कर पास आकर जलाने लगे तब उससे बचना चाहे और अपना दुखड़ा रोवे। हे सज्जय, इस समय राजा धृतराष्ट्र अपार ऐश्वर्य के अधिकारी हैं। फिर वे क्यों ऐसे दान वचन कहकर विलाप करते हैं ? कुटिल, मूढ़, अभाग, बुरे मन्त्रियों की सलाह माननेवाले, पुत्र का पत्त लेनेवाले धृतराष्ट्र इस समय क्यों विलाप करते हैं ? कुरुकुल के शुभचिन्तक और माननीय विदुर की बातें दुर्योधन के लिए कल्याण-कारिणी थीं। राजा धृतराष्ट्र ने, पुत्र का प्रिय करने की इच्छा से, विदुर की उन बातों को नहीं माना। विदुर का समझाना न मानकर वे बराबर अधर्म को ही आश्रय दे रहे हैं। मेधावी,

कौरवों के हितचिन्तक, बहुश्रुत, वाग्मी, सच्चरित्र विदुर चले गये किन्तु पुत्र का खयाल करके राजा धृतराष्ट्र ने उनका आदर नहीं किया। दूसरों का मान मिटाकर अपना मान चाहनेवाले, क्रोधी, ईर्ष्या के वश, धर्म और अर्थ का खयाल न रखनेवाले, दुर्वचन बोलनेवाले, बुरे सलाहकारों के फेर में पड़े हुए, उदण्ड पापियों द्वारा प्रशंसित, भोग-लोलुप, बुरे विचारों और इच्छाओं से परिपूर्ण हृदयवाले, श्रेय और कल्याण से रहित, बहुत दिन तक मन में विरोध का भाव रखनेवाले, मित्रद्रोही, पापबुद्धि पुत्र दुर्योधन का प्रिय करने के लिए राजा धृतराष्ट्र धर्म और अर्थ को छोड़कर सब अन्याय देखते रहे। हे सञ्जय, द्यूत-क्रीड़ा के समय जब विदुर के शुक्र-नीति के अनुसार उपदेश करने पर भी दुर्योधन ने उनकी वड़ाई नहीं की और उनका कहा नहीं माना तभी मैं समझ गया था कि शायद कौरवों के नाश का समय शीघ्र आनेवाला है। हे सूत, जब दुर्योधन आदि कौरवों ने विदुर का कहा नहीं माना था तभी उनके ऊपर आफ़त आ गई थी। जब तक वे विदुर की बात मानते रहे तब तक उनके राज्य की वृद्धि होती रही। ऐश्वर्य के लोभ में पड़े हुए दुर्योधन के मन्त्री दुःशासन, शकुनि और कर्ण ऐसे हैं ! उसका मोह तो देखो ! बहुत सोचने पर भी मुझे कोई ऐसा उपाय नहीं देख पड़ता, जिससे कुरुवंश और सृञ्जयवंश दोनों का भला हो। राजा धृतराष्ट्र शत्रुओं से ऐश्वर्य छीनकर, दूरदर्शी नीतिज्ञ विदुर का देश से निकालकर, अपने पुत्र की बातों में लगकर एक निष्कण्टक महासाम्राज्य पृथ्वी पर स्थापित करना चाहते हैं। मुझे वन में भेजकर जब वे सारा राज्य अपना ही समझते हैं तब उस लोभ की अवस्था में सोलहों आने शान्ति का बना रहना [या सन्धि का होना] कैसे सम्भव है ?

२०

कर्ण समझता है कि युद्ध में धनुष लेकर खड़े हुए अर्जुन को वह जीत लेगा। पर मैं पूछता हूँ कि पहलें जो कई बार कर्ण और अर्जुन के युद्ध हो चुके हैं उनमें कर्ण अर्जुन को क्यों नहीं हरा सका ? उन अवसरों पर कर्ण ने कौरवों की रक्षा क्यों नहीं की ? कर्ण, दुर्योधन, द्रोण, भीष्म पितामह और सब कुरुकुल के लोग इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि अर्जुन से बढ़कर धनुष-बाण की विद्या में निपुण कोई यादवा नहीं है। शत्रुदमन अर्जुन के रहते जिम तरह दुर्योधन ने राज्य ले लिया है, उसे सब कौरव और अन्य राजा लोग जानते हैं। अर्जुन का धनुष चार हाथ लम्बा है और वे धनुर्विद्या को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। दुर्योधन उन अर्जुन से युद्ध करके पाण्डवों के हिरसे को ले लेना सहज समझता है, इससे बढ़कर मूर्खता क्या होगी ? वास्तव में दुर्योधन आदि कौरव जब तक गाण्डीव धनुष का शब्द नहीं सुनते, और क्रोधित भीमसेन का भयानक मुख नहीं देखते, तभी तक वे जीवित हैं और राज्यप्राप्ति के प्रयाजन को सिद्ध समझते हैं। हे सञ्जय ! भीमसेन, अर्जुन, सहन न करनेवाले वीर सहदेव और नकुल के जीते रहते हमारे राज्य और ऐश्वर्य को साक्षात् इन्द्र भी नहीं ले सकते। जो दुर्योधन सहित राजा धृतराष्ट्र यह समझें कि पाण्डवों को राज्य न देने से कौरवों का नाश होना अनिवार्य है तो

कौरव लोग युद्ध में पाण्डवों के कोप की आग में भस्म होने से बच सकते हैं। हमने अब तक जो क्लेश सहे हैं उन्हें तुम अच्छी तरह जानते हो। दुर्योधनकृत पहले के अपने अपकारों को मैं क्षमा कर सकती हूँ, क्योंकि मुझे तुम्हारी बात रखनी है। तुम्हारे कहने से मैं मेल कर लूँगा। पहले कौरवों के साथ हमारा जैसा भाव और व्यवहार था वैसा ही अब भी रहेगा। कौरवश्रेष्ठ दुर्योधन मेरा इन्द्रप्रस्थ का राज्य मुझे दे दे।

सत्ताईसवाँ अध्याय

सन्धि के लिए सञ्जय का फिर समझावा

सञ्जय ने कहा—हे पाण्डव, आपके सब काम धर्म के अनुकूल ही देख पड़ते हैं और सब लोग आपके इस काम को जानते हैं। आप अपने उस यश का खयाल करके और जीवन को अनित्य समझकर अपने भाई कौरवों का नाश न कीजिए। हे अजातशत्रु, यदि कौरव लोग युद्ध के बिना आपका राज्य आपको न देना चाहें तो मैं समझता हूँ कि युद्ध के द्वारा राज्य पाने की आत्ता आपका अन्धक और वृष्णिवंश के राज्य में भित्ता मोंगकर गुज़र करना भी अच्छा है; किन्तु युद्ध करना अच्छा नहीं। हे पाण्डव! मनुष्य का जीवन थोड़े दिन का, सदा क्षीण होने-वाला, चञ्चल और दुःखमय है। इसके सिवा यश के मुकाबले में जीवन एक घटिया पदार्थ है। इसलिए आप अपने यश का खयाल करके भाइयों की हत्या का पाप अपने सिर न लीजिए। हे नरेन्द्र, ये धर्म के आचरण में विघ्न डालनेवाली इच्छाएँ मनुष्य को अपनी ओर खींचा करती हैं। जो बुद्धिमान् पुरुष उनके द्वारा अनर्थ होने के पहले ही उन्हें दबा देता है उसी की लोक में प्रशंसा होती है। हे पार्थ, धन की वृष्णा ही इस संसार का बड़ा भारी बन्धन है। उसके फेर में पड़ने से मनुष्य का धर्म चौपट हो जाता है। जो मनुष्य धर्म के अनुसार चलता है वही यथार्थ बुद्धिमान् है। लालची पुरुष अपने प्रयोजन के अनुरोध से नीच कर्म भी करने लग जाता है। धर्म, अर्थ, काम आदि में धर्म ही मुख्य है। धर्मात्मा पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी होता है। धर्म से हीन पुरुष धर्म-विरुद्ध काम करके, यदि सारी पृथ्वी का राज्य पा जाय तो भी, सदा कष्ट पाता है। आपने परलोक पर विश्वास करके [वहाँ के सुख के लिए] वेद पढ़े हैं, ब्रह्मचर्य का पालन किया है, यज्ञ किये हैं, ब्राह्मणों को दान दिये हैं, यहाँ तक कि अपने आत्मा को भी उसी के लिए लगा दिया है। जो मनुष्य भोग-विलास आदि सुख और पुत्र आदि प्रिय पदार्थों में अत्यन्त लिप्त रहकर योगाभ्यास (आसन-प्राणायाम आदि) में मन नहीं लगाता—शुभ कर्म नहीं करता—वह धन का नाश होने पर भोग-सुख से हीन और विषयवासना से पीड़ित होकर लगातार अत्यन्त दुःख भोगता है। इसी तरह जो ब्रह्मचर्य से विमुख होकर, यज्ञ आदि धर्म के कर्म छोड़कर, अधर्म ही करता है, वह परलोक पर श्रद्धा न रखनेवाला मूढ़ पुरुष मरने पर अपने

अभाग्य पर पछताता और सन्ताप करता है। यहाँ किये हुए पुण्य या पाप, कर्मभोग या आत्म-ज्ञान के बिना, नहीं मिटते। शरीर छूटने पर आगे-आगे कर्म जाते हैं और पीछे-पीछे उनका करनेवाला जाता है। आपने न्याय से प्राप्त धन ब्राह्मणों को दिया है, श्रद्धा से सुगन्धित स्वादिष्ट भोजन कराये हैं, वेदाक्त यज्ञ करके बहुत-बहुत दक्षिणाएँ दी हैं। आपके ये शुभ कर्म संसार में प्रसिद्ध हैं। राजन्, धर्म के कार्य इसी लोक में किये जाते हैं। मरकर परलोक में फलभोग के सिवा कोई कार्य नहीं किया जाता। मनुष्यलोक ही कर्मभूमि है। आपने इस लोक में परलोक बनानेवाले, सज्जनों द्वारा प्रशंसित, पुण्य-कार्य किये हैं। परलोक में मृत्यु, बुढ़ापा, डर, भूख, प्यास, मन को अप्रिय और-और बातें कुछ भी नहीं हैं। वहाँ मनोरञ्जक सुखभोग के सिवा और कुछ कर्तव्य नहीं रहता। इसलिए आप न तो इन्द्रियों के लिए सुखदायक काम कीजिए और न परलोक में फल पाने के लिए कोई काम कीजिए। चित्तविकार से उत्पन्न क्रोध को दबा दीजिए; क्योंकि आप कर्मफल की गति को अच्छी तरह जानते हैं। मतलब यह कि आपको परलोक बनाने के लिए निष्काम कर्म करना चाहिए। वैराग्य का आश्रय लेकर योगाभ्यास से मोक्ष प्राप्त करने का ही यत्न कीजिए। बन्धु-विनाश से मिला हुआ राज्य किस काम का ? ज्ञान का आश्रय लेकर आप सत्य, दम, सरलता और शान्ति को हाथ से न जाने दीजिए; उपकार के लिए अश्वमेध और राजसूय ऐसे महायज्ञों का अनुष्ठान आप भले करें किन्तु पापकर्मों के पास न फटके। हे पाण्डवो, अगर आपने द्वेष के वश होकर मदा के लिए अपयश का कारण यह बन्धु-नाश का घोर पापकर्म किया तो फिर आपने इतने दिन तक वन में रहकर घोर कष्ट क्यों महे ? यह तो आप उसी समय कर सकते थे। राज्य के लिए अगर आप सब क्षत्रियों का नाश करना चाहते हों तो दुर्योधन का आपको वनवासी बनाना धर्म ही माना जायगा। हे युधिष्ठिर, जिस समय आप वन को गये थे उस समय भी यह सब सेना आपके अधीन थी; श्रीकृष्ण, वीर सात्यकि आदि श्रेष्ठ सचिव भी आपके वश में थे। सुवर्णमय रथ पर बैठनेवाले, मत्स्यदेश के राजा विराट, शूर योद्धा उनके पुत्र और अन्य वे राजा जिन्हें आप लोग दिग्विजय में जीत चुके थे, उस समय भी आपका पक्ष लेने को तैयार थे। बड़े-बड़े सहायक, सेना, श्रीकृष्ण और अर्जुन आदि के बल से आप उसी समय लड़कर युद्धभूमि में शत्रुओं को चौपट कर सकते थे; उस समय दुर्योधन का दर्प चूर्ण करना सहज था। हे पाण्डव, वह समय बीत गया। फिर अब शत्रुपक्ष का बल बढ़ाकर, अपने को और भाइयों को अनेक वर्ष तक कष्ट भेलने से दुःखित बनाकर, तेरह वर्ष तक वन में रहने के बाद आप क्यों युद्ध करना चाहते हैं ? फिर युद्ध एक ऐसा काम है, जिसमें मूर्ख और अधर्मी भी विजय और वैभव पा जाते हैं, और बुद्धिमान् और धर्मात्मा भी दैवयोग से युद्ध में हारकर ऐश्वर्य से भ्रष्ट होते देखे जाते हैं। इस प्रकार हार-जीत के अनिश्चित होने के कारण भी आप लोगों का कौरवों से युद्ध करना उचित नहीं जान पड़ता।

हे धर्मराज, आपकी बुद्धि कभी अधर्म की ओर नहीं झुकती और आपने कभी क्रोध के बश होकर कोई पापकर्म नहीं किया। बताइए, इस समय किस कारण आप यह बुद्धि के विरुद्ध काम (युद्ध) करना चाहते हैं? महाराज! यह क्रोध बिना व्याधि की पीड़ा, कड़वा, सिर को घुमा देनेवाला, यश को हरनेवाला और पाप-फल के उदय का कारण है। सज्जन लोग इसे पी जाते हैं, दुर्जन नहीं पी सकते। हे युधिष्ठिर, आप इसे पी जाइए और शान्त बनिजिए। जिस युद्ध में शान्तनु के पुत्र भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा मारे जायँ उस पापमय युद्ध को कौन चाहेगा? राजन्, आपको राज्यभोग की अपेक्षा क्षमा की ही श्रेष्ठ समझना चाहिए। हे कुन्ती-पुत्र! बताइए, कृपाचार्य, शल्य, सोमदत्त के पुत्र, विकर्ण, विविंशति, कर्ण, दुर्योधन आदि स्वजनों की हत्या करके आप लोग जो सुख पावेंगे वह कैसा होगा? सोचिए तो, आप सारी पृथ्वी का राज्य भी प्राप्त कर लें तो भी बुढ़ापा और मौत, प्रिय और अप्रिय, सुख और दुःख—इनसे आप बच नहीं सकते। यह समझकर आप युद्ध न कीजिए। जो आप मन्त्रियों की सलाह से युद्ध छोड़ना चाहते हैं तो आप उन्हें ही सब काम सौंपकर स्वयं इससे अलग हो जाइए। आप गोत्र २७ से द्रोह करके अर्चि आदि देवयानों के मार्ग से अपने को मत हटाइए।

अष्टाईसवां अध्याय

धर्मराज युधिष्ठिर का उत्तर

युधिष्ठिर ने कहा—मञ्जय, सब प्रकार के कर्मों में धर्मातुकूल कर्म ही श्रेष्ठ हैं, यह तुम्हारा कहना सच है। किन्तु पहले तुम यह अच्छी तरह जान लो कि मैं धर्म करता हूँ या अधर्म; उसके बाद मेरी निन्दा करो। कुछ आदमी ऐसे होते हैं जिनमें अधर्म ही धर्म के रूप में देख पड़ता है। वे दम्भी होते हैं और अभिचार आदि के लिए मन्त्र-जप आदि करते हैं। दूसरे प्रकार के वे पुरुष होते हैं, जिनमें धर्म अधर्म सा प्रतीत होता है। जैसे दत्तात्रेय आदि योगी जन राग-द्वेष आदि से शून्य और याग-धर्म का आचरण करने पर भी पागलों की तरह रहते हैं। तीसरे प्रकार के पुरुष ऐसे होते हैं जिनमें धर्म के रूप में ही धर्म देख पड़ता है, जैसे वशिष्ठ आदि महर्षिगण। विद्वान् लोग बुद्धि के द्वारा इस प्रकार भेद को जान लेते हैं। किन्तु आपत्काल में धर्माधर्म का उलट-फेर भी हो जाता है। ब्राह्मण का चिह्न स्वाध्याय आदि है, क्षत्रिय का चिह्न शूरता आदि है, वैश्य का चिह्न खेती आदि है। यद्यपि अलग-अलग वर्णों के ये अलग-अलग चिह्न हैं, तो भी आपत्काल में एक वर्ण दूसरे वर्ण के धर्म को ग्रहण कर सकता है। उस समय वह धर्म है, किन्तु आपत्काल के सिवा अन्य समय वहाँ अधर्म है। फिर भी आपत्ति के समय यज्ञ कराना, दान लेना और पढ़ाना, इन तीनों कर्मों को ब्राह्मण के सिवा क्षत्रिय या वैश्य नहीं कर सकते। इस प्रकार का आपद्धर्म शास्त्र के अनुसार मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो।

जो व्यक्ति आपत्ति के बिना केवल लोभवश आपद्धर्म स्वीकार करता है वह अत्यन्त निन्दनीय है। क्षत्रिय की जीविका भूमि और शस्त्र से होती है और वैश्य की जीविका धन, पशु-पालन और खेती से होती है। ब्राह्मण की जीविका यज्ञ कराने, दान लेने और विद्या पढ़ाने से होती है। यदि ये जीविका के उपाय बिलकुल नष्ट हो जायें तो, उस आपत्काल में, नित्य-नैमित्तिक कर्म करने के लिए एक वर्ण दूसरे वर्ण के धर्म से अर्थोपार्जन कर सकता है। यहाँ तक कि ब्राह्मण का कर्म जो भिक्षा माँगना है उसे भी क्षत्रिय और वैश्य कर सकते हैं; क्योंकि उस समय ऐसा किये बिना कर्मलोप के साथ ही प्राणनाश की भी आशङ्का रहती है। जो मनुष्य आपत्काल में जीविका का नाश न होने पर भी आपद्धर्म को ग्रहण करता है वह निन्दनीय है और जो मनुष्य आपत्काल में जीविका का नाश होने पर भी आपद्धर्म को नहीं ग्रहण करता वह भी निन्दनीय है। जो ब्राह्मण आपत्काल में ब्राह्मणत्व को बचाने के लिए अन्य वर्ण के धर्म का आश्रय लेते हैं उनके लिए विधाता ने आपत्काल के उपरान्त प्रायश्चित्त करने की व्यवस्था कर दी है। इसलिए आपत्काल में एक वर्ण का दूसरे वर्ण के धर्म को ग्रहण करना अनुचित नहीं है। इसी कारण हमने एकचक्रा नगरी में भिक्षा भी माँगी थी। हे सञ्जय, जो लोग आपत्ति के समय अन्य धर्म का आश्रय लेते हैं और आपत्काल के सिवा स्वधर्म का पालन करते हैं उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। जो लोग आपत्ति के समय अपने-पराये लोगों को कष्ट पहुँचाते हैं और जब आपत्ति नहीं होती तब भी अत्यन्त लोभ के वश होकर औरों के धर्म को ग्रहण करते हैं, उन्हीं की निन्दा तुम्हें करनी चाहिए। देखो, जो लोग मन को मारना चाहते हैं और चिदात्मा के साथ मिले हुए बुद्धिसत्त्व को तत्त्वज्ञान के द्वारा अलग करना चाहते हैं उनकी जीविका शास्त्र के अनुसार सज्जनों के यहाँ भिक्षा माँगना ही है। उन्हें आत्मज्ञान की खोज में सर्वसंन्यास ग्रहण करके भिक्षावृत्ति से ही निर्वाह करना चाहिए। किन्तु जो लोग ब्राह्मण नहीं हैं और आत्म-विद्या का अनुशीलन भी नहीं करते उनके लिए भिक्षावृत्ति का विधान नहीं है। वे तो तभी प्रशंसनीय हैं जब अपने जातीय धर्म के पालन से अपनी जीविका चलाते हों। आपत्काल के सिवा सब समय अपने धर्म के अनुसार धनोपार्जन करके जीविका चलाना ही उनके लिए श्रेयस्कर है। हमारे पिता-पितामह-प्रपितामह आदि सब पूर्वज और अन्य महानुभाव राजर्षि इसी, मेरे कहे हुए, मार्ग पर चलते रहे हैं। यज्ञ करने-वाले और कर्म-संन्यासपूर्वक आत्मज्ञान में तत्पर लोग भी पूर्वोक्त मार्ग के अनुयायी हुए हैं। जो उस मार्ग में नहीं चलता वह, मेरी समझ में, नास्तिक है। मैं आस्तिक हूँ, इसलिए अपने लिए उसी राह को, अर्थात् क्षत्रियधर्म के द्वारा जीविका चलाने को ही, श्रेयस्कर समझता हूँ।

हे सञ्जय! इस पृथ्वी पर जो कुछ सम्पत्ति है उसकी कौन कहे, मैं तो देवताओं की सम्पत्ति, प्रजापति का पद, स्वर्ग और ब्रह्मलोक भी अधर्म से प्राप्त करना नहीं चाहता। ये कृष्णचन्द्र धर्म-फल के देनेवाले, चतुर, नीतिज्ञ, ब्राह्मणों की उपासना करनेवाले, विवेकी और अनेक महाबली

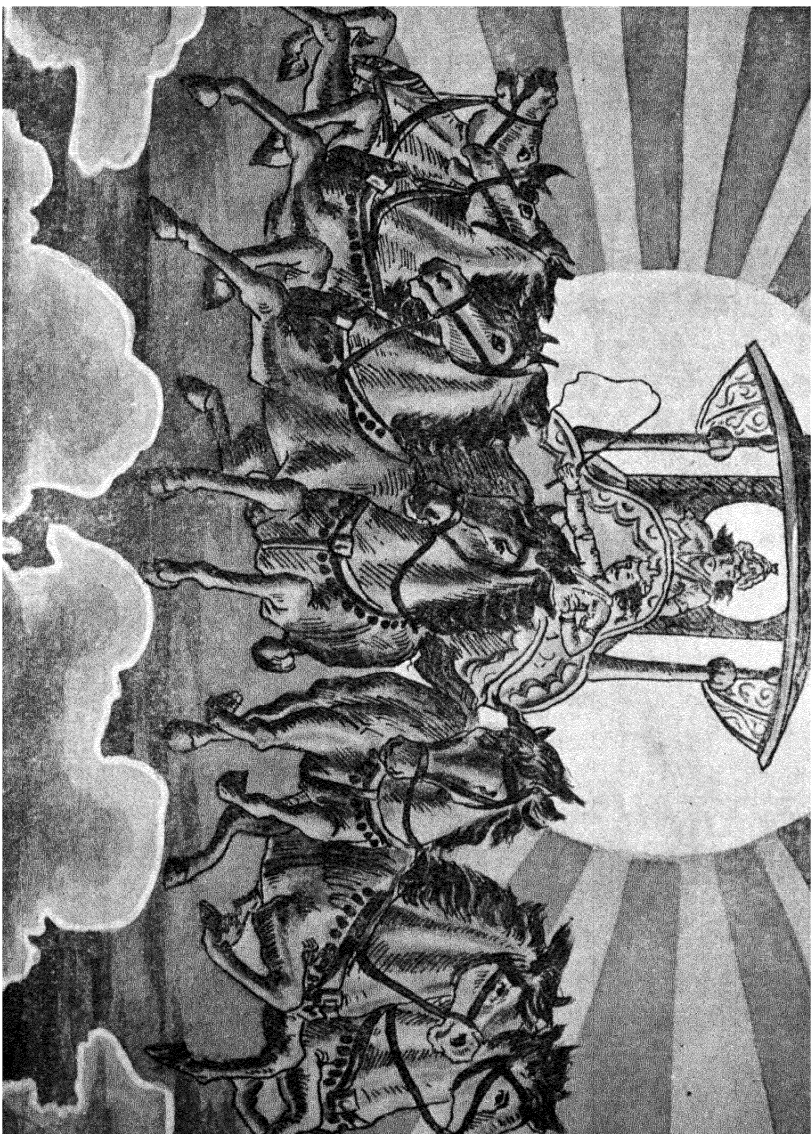
- राजाओं के शासक हैं। मैं इनके ऊपर ही इस फैसले का काम छोड़ता हूँ। मैं सन्धि छोड़कर युद्ध करने से निन्दनीय होऊँगा, या अपने क्षत्रिय-धर्म को छोड़कर संन्यासधर्म ग्रहण करने से निन्दा का पात्र बनूँगा? महायशस्वी श्रीकृष्ण ही इसका उत्तर दें। क्योंकि ये दोनों पक्षों की भलाई चाहते हैं। ये सात्यकि, यं चेदि, अन्धक, वाष्णीय, भोज, कुक्कुर, सृञ्जय आदि यादव श्रीकृष्ण की सलाह से चलते हैं और शत्रुओं का दमन करके अपने इष्ट-मित्रों के आनन्द को बढ़ाते हैं। मनस्वी, सत्यपरायण, महाबली, ऐश्वर्य-भोग-सम्पन्न वृष्णि अन्धक आदि वंशों के यादव और राजा उग्रसेन, सब इन्द्रतुल्य प्रतापी होकर भी श्रीकृष्ण के ही अनुगामी हैं। इन सबको नीति-मार्ग पर चलानेवाले श्रीकृष्ण ही हैं। ऐश्वर्यशाली श्रीकृष्ण से भाईचारा करके काशी के राजा बभ्रु श्रेष्ठ ऐश्वर्य के अधिकारी हुए हैं। गर्मी के बाद वर्षा में मेघ की तरह श्रीकृष्ण उनके सब मनोरथों को पूरा करते हैं। हे सञ्जय, ये श्रीकृष्ण ऐसे प्रतापी और विद्वान् हैं। सब कामों के सिद्धान्त को ये भली भाँति जानते हैं। अत्यन्त सज्जन श्रीकृष्ण हमें परम प्रिय हैं। ये जो कहेंगे उसे १४ मैं मान लूँगा। इनकी बात को मैं कभी टाल नहीं सकता।

उनतीसवाँ अध्याय

सञ्जय के प्रति श्रीकृष्ण के वचन

श्रीकृष्ण ने कहा—हे सञ्जय ! मैं जैसे यह चाहता हूँ कि पाण्डवों का नाश न हो, इनका अभ्युदय और प्रिय हो, वैसे ही धृतराष्ट्र और उनके सौ पुत्रों की बढ़ती भी चाहता हूँ। हे सञ्जय, सदा से मेरी यही इच्छा रही है कि कौरवों और पाण्डवों में मेल होकर शान्ति स्थापित हो। “तुम लोग शान्त भाव से मेल कर लो”, इसके सिवा मैं इन लोगों से और कुछ नहीं कहना चाहता। पाण्डवों के सामने राजा युधिष्ठिर के मुँह से भी यही बात मैं सुना करता हूँ और मुझे सन्धि का होना ही पसन्द है। किन्तु हे सञ्जय, युधिष्ठिर की इच्छा के अनुसार उस सन्धि का होना बहुत ही कठिन देख पड़ता है। धृतराष्ट्र और उनके पुत्र राज्यलोभी हैं। तब फिर उस राज्य के लिए इन पाण्डवों और कौरवों में लड़ाई-झगड़ा कैसे न उठ खड़ा होगा? हे सञ्जय, तुम जानते हो कि राजा युधिष्ठिर या मैं, दोनों कभी धर्म से विचलित नहीं हुए।





कर्म से ही सूर्यदेव आलसहीन होकर आकाशमण्डल में फिरते हुए दिन रात का विधान करते हैं ।—पृ० १४३६

फिर तुम अपना काम पूरा करने के लिए उत्साही और पहले समय में प्रसिद्धि के अनुसार आचरण करके अपने कुटुम्ब में रहनेवाले युधिष्ठिर को धर्म-मार्ग से हटने के लिए तैयार कैसे कह रहे हो ?

शास्त्र में यद्यपि यह विधान देखा जाता है कि पवित्र आचरण के साथ कुटुम्ब का भरण-पोषण करते हुए वेद-पाठ करना और अपनी जीविका चलाना चाहिए, तो भी इस बारे में ब्राह्मणों (ऋषियों) के जुदे-जुदे विचार हैं । कुछ लोग कर्मों से सिद्धि का होना मानते हैं, और कुछ लोग कर्मत्याग-पूर्वक वेदाक्त आत्मविद्या के अनुशीलन को ही सिद्धि का द्वार समझते हैं । किन्तु जैसे खाने-पीने की चीज़ों को खायें-पियें बिना तृप्ति नहीं होती, वैसे ही कर्म किये बिना केवल वेदज्ञ होने से ब्राह्मण आदि को मोक्ष या सिद्धि नहीं मिल सकती । जो वियाएँ कर्म-सिद्धि का साधन हैं वे ही सफल और श्रेष्ठ हैं ; जिनमें कर्म करने की विधि नहीं है वे अनुपयोगी और निष्फल हैं । इसलिए जिनका फल यहाँ देख पड़ता है वे ही कर्म करने चाहिएँ ; जैसे प्यासे आदमी की प्यास पानी पीने से बुझ जाती है, इसमें पानी पीना कर्म है और उसका फल प्यास बुझना तत्काल देख पड़ता है । हे सञ्जय, कर्म करने के लिए ही ऐसी विधि विहित हुई है, इसलिए फलदायक कर्म ही सबसे श्रेष्ठ कर्तव्य है । जो दुर्बल पुरुष कर्म के सिवा और किसी बात को, अर्थात् कर्मत्याग आदि को, अच्छा समझता है उसका वह कथन व्यर्थ है ।

कर्म के प्रभाव से ही इस लोक और स्वर्गलोक में देवगण प्रकाशमान होते हैं । कर्म के बल से ही हवा सदा चलती है । कर्म से ही सूर्यदेव आलस्यहीन होकर, आकाशमण्डल में फिर-कर, दिन-रात का विधान करते हैं । चन्द्रमा आलस्य छोड़कर कर्म करते हुए नक्षत्रों के साथ भास-पक्ष आदि का विभाग करते रहते हैं । अग्निदेव को देखो, वे आलस्य छोड़कर कर्म करते हुए प्रज्वलित होकर प्रजा की सहायता करते हैं—उत्ताप पहुँचाते हैं । पृथ्वी देवी कर्म के बल से संसार के भारी बोझ को लादे हुए हैं । नदियाँ कर्म-बल से ही शीघ्रता के साथ बहती हैं और अपने काम में आलस्य न करके सब प्राणियों को तृप्त करती हैं । इन्द्रदेव कर्म के बल से आकाश और दिशाश्रीं को प्रतिध्वनित करते हुए आलस्य छोड़कर जल बरसाते हैं । इन्द्र ने देवताश्रीं की मण्डली में प्रधान पद पाने के लिए आलस्य छोड़कर बहुत समय तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है । भोग-सुख और प्रिय पदार्थों को त्यागकर कर्म करने से ही इन्द्र को देवराज का पद मिला है । इन्द्रियदमन, सहनशीलता, समदृष्टि, सबका प्रिय करना, सत्य और धर्म का पालन, इन्हीं कर्मों के करने से इन्द्र को ऐसा श्रेष्ठ पद मिला है । भगवान् बृहस्पति ने भी एकाग्रता और नियम-पालन के साथ ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया है और भोग-सुख छोड़कर, इन्द्रियों को दबाकर, कर्म करने से ही गौरवसूचक देव-गुरु का पद पाया है । ऐसे ही नक्षत्रगण भी कर्म के बल से आकाश में प्रकाशमान हैं । कहाँ तक कहें, रुद्र, आदित्य, वसु, विश्वेदेवा, यम, राजराज कुबेर आदि देवता और गन्धर्व, यक्ष, अप्सरा आदि सब कर्म के प्रभाव से ही अपने-अपने स्थान में स्थित होकर ऐश्वर्य-भोग

कर रहे हैं। इस लोक में भी देखो, ऋषि लोग ब्रह्मज्ञान का अभ्यास, ब्रह्मचर्य का पालन और यज्ञ आदि करके, कर्म के प्रभाव से ही, श्रेष्ठ समझे जाते हैं। हंसजय, तुम सब संसार के—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि के—इस धर्म को जानकर भी, ज्ञानी होकर भी, कौरवों का पक्ष लेकर क्यों युधिष्ठिर पर दवाव डालना चाहते हो ?

यं युधिष्ठिर नित्य वेद-शास्त्र पढ़ते-सुनते रहते हैं; अश्वमेध और राजसूय यज्ञ भी कर चुके हैं; धनुष-कवच-रथ-शास्त्र-हाथी-घोड़े आदि के रखने और चलाने में भी निपुण हैं। इनमें विद्या, धर्म और वीरता बहुत कुछ है; इसलिए इन्हें न कोई कुछ सिखा सकता है और न सहज में इन पर विजय पा सकता है। ये पाण्डव अगर कौरवों की हत्या बिना किये ही राज्य लेने का कोई और उपाय ढूँढ़ कर सकें और भीमसेन का क्रोध शान्त करके उन्हें अहिंसा की राह पर ला सकें तो बहुत ही अच्छा है। इस तरह कार्य सिद्ध हो जाने पर धर्म की रक्षा और पुण्य दोनों बाते होंगी। ये पाण्डव इस प्रकार पैतृक धर्म की राह पर चलकर अपनी शक्ति भर अपना कार्य सिद्ध करने में अगर दैवयोग से मृत्यु के मुख में चले जायेंगे तो वह भी प्रशंसनीय है। अथवा जो तुम सन्धि को ही पसन्द करते हो तो बताओ, क्षत्रिय के लिए युद्ध करना धर्म है या युद्ध न करना ? जिसे तुम श्रेष्ठ कहोगे उसे मैं करूँगा।

हे मन्त्रजय, तुम चारों वर्णों के प्रथम अर्थात् प्राचीन विभाग को अपने (दृत् के) कर्म को और पाण्डवों के कर्त्तव्य को देख-भालकर उसके बाद, निन्दा या प्रशंसा, चाहे जो करो। पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना, योग्यों को यज्ञ कराना, सुपात्रों को देना और दिलाना, परिचित विशुद्ध पुरुषों से दान लेना, ये ब्राह्मण के कर्म कहे गये हैं। क्षत्रिय का धर्म यह है कि सावधानी के साथ धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करे, दान और यज्ञ करे, सब वेदों को पढ़े, विवाह करके गृहस्थाश्रम में रहकर पुण्यकार्य करे। धर्मात्मा क्षत्रिय पवित्र धर्मशास्त्रों और वेदों को पढ़कर और पुण्य कार्य करके अनायास ब्रह्मलोक को जा सकता है। वैश्य का धर्म यह है कि खेती और गो-पालन करे, व्यापार करे, शास्त्र और विद्या पढ़े और पूर्वोक्त जीविकाओं से धनोपार्जन और सावधानी के साथ धन की रक्षा करे। वह भी सदा ब्राह्मणों और क्षत्रियों का प्रिय करता हुआ गृहस्थाश्रम में रहकर धर्म-पुण्य करता रहे। ब्राह्मणों की सेवा और वन्दना शूद्र का प्रधान धर्म है। शूद्रों को वेद पढ़ने और यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। उन्हें चाहिए कि अपनी बढ़ती के लिए आलस्य छोड़कर तत्परता के साथ तीनों वर्णों की सेवा करते रहें। शूद्रों का यही प्राचीन धर्म है।

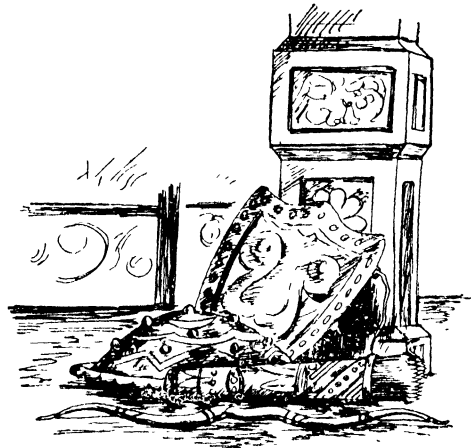
राजा का कर्त्तव्य यह है कि सावधानी के साथ चारों वर्णों की रक्षा करे और उन्हें अपने-अपने कर्म में लगावे। काम-क्रोध-लोभ आदि से बचकर सब प्रजा को समान दृष्टि से देखे। अधार्मिक पुरुषों को, किसी स्वार्थ में पड़कर, दण्ड दिये बिना न छोड़े। ऐसे ही राजा से प्रजा का भला होता है। राजा युधिष्ठिर इन गुणों से विभूषित श्रेष्ठ राजा हैं। इनमें अधर्म

का लेश भी नहीं है। ये सर्वथा प्रजा की देखभाल और उसे उसके धर्म पर चलाने का काम करने के योग्य हैं। दैव के कोप से जब राजा, डाकुओं की तरह, पराये ऐश्वर्य को छीन लेना चाहता है तभी राजाओं में परस्पर युद्ध होने लगता है। इसी के लिए कवच, धनुष-बाण आदि अस्त्र-शस्त्रों की रचना हुई है। दस्यु राजाओं के वध के लिए इन्द्र ने कवच, शस्त्र, धनुष आदि की रचना की है। दस्युवध से क्षत्रियों को पुण्य होता है। हे सञ्जय, धर्म को न जाननेवाले और अधर्म में निपुण उग्र कौरवों ने छल करके वही दोष उत्पन्न किया है जिससे युद्ध छिड़ जाता है। यह उनका काम अच्छा नहीं है।

राजा धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों ने अकारण पाण्डवों का पैतृक राज्य ले लिया है। कुरुवंश के और लोग भी प्राचीन राजधर्म को न देखकर उन्हीं दुर्बुद्धियों के पिछलग्गू बने हुए हैं। कुछ नहीं कहते। हे सञ्जय, चोर-डाकुओं का छिपकर या सामने ही धन हरण करना निन्दनीय समझा जाता है। धृतराष्ट्र के पुत्र के इस कार्य में और चोरी-डकैती में अन्तर ही क्या है? क्रोध और डाह के वश में होकर दुर्योधन लोभ के कारण अपने इस कार्य और इच्छा को धर्म-सङ्गत समझता है। पाण्डव अपना हिस्सा, वनवाम के वाद फेर लेने की शर्त पर, कौरवों के पास छोड़ गये थे। फिर कौरव लोग वह पाण्डवों का हिस्सा क्यों नहीं देते? हम लोग यदि इस अवश्य लेने योग्य अपने हिस्से के लिए लड़कर मारे भी जायें तो उसे प्रशंसा के योग्य अच्छा काम समझते हैं। पाण्डव पराया राज्य नहीं चाहते, अपने पिता का हिस्सा चाहते हैं। इसलिए यह उनका कार्य विशेष रूप से प्रशंसनीय है। हे सञ्जय, तुम कुरुराज की सभा में जाकर कुरुवंश के ये प्राचीन धर्म सबको सुनाना।

दुर्योधन के बुलाने से आकर जो राजा लोग लड़ने के लिए जमा हुए हैं वे मदान्मत्त हाने के कारण कुछ नहीं देख पाते; उनके सिर पर मौत सवार है।

हे सञ्जय, सभा में जुए के समय कौरवों ने जो पाप किया उसे देखो। पाण्डवों की प्यारी पत्नी, पतिव्रता, यशस्विनी, अच्छे स्वभाववाली द्रौपदी उस समय रजम्बला थीं। सभा में वे लाई गईं, पर भीष्म आदि बड़े-बूढ़ों ने कुछ नहीं कहा, चुपके बैठे देखते रहे। उस समय यदि धृतराष्ट्र आदि सब कुरुवंश के वृद्ध और बालक मिलकर द्रौपदी का सभा में लाया जाना रोक



देते, तो अवश्य धृतराष्ट्र मेरा प्रिय करते और पुत्रों के प्रति उनके कर्तव्य का पालन भी हो जाता। दुःशासन जिस समय अन्याय से सभा में ससुरों के आगे द्रौपदी को ले आया था, उस समय द्रौपदी ने करुण स्वर से विलाप करके सबसे प्रार्थना की; किन्तु विदुर के सिवा और किसी ने द्रौपदी को सहारा नहीं दिया—उस अन्याय को नहीं रोका। उस सभा में अनेक राजा और राजकुमार बैठे थे, पर कोई उस अत्याचार का प्रतिवाद नहीं कर सका। सब लोग अपने हृदय की कमज़ोरी से चुप रहे; एक विदुर ने ही धर्मबुद्धि की प्रेरणा से नाममभ दुःशासन से धर्म-सङ्गत और अर्थ-साधक वचन कहे थे। उस समय सभा में तुम भी बैठे थे। वहाँ तुमने किसी को धर्म का उपदेश नहीं किया; अब यहाँ युधिष्ठिर को धर्म का उपदेश करना चाहते हो।

उस सभा में द्रौपदी ने सतीत्व धर्म के अनुकूल, विशुद्ध और दुष्कर काम किया कि—समुद्र से जहाज़ की तरह—पाण्डवों को और अपने को दाम-भाव के अपार सङ्कट-सागर से उबार लिया। उस सभा में ससुरों के पास खड़ी हुई द्रौपदी से सूतपुत्र कर्ण ने कहा था कि “हे द्रौपदी, इस समय तुम्हारे लिए दूसरा उपाय नहीं है। दुर्योधन के घर दासी होकर रहो। तुमको हार जाने के कारण ये पाण्डव अब तुम्हारे पति नहीं रहे। तुम अन्य किसी को अपना पति बना लो।” कर्ण के ये मर्मभेदी वचन तीक्ष्ण बाण की तरह अर्जुन के हृदय में घुसकर उन्हें व्यथा पहुँचाया करते हैं। जिस समय पाण्डव लोग वन जाने के लिए काली मृगछाला पहन रहे थे उस समय दुःशासन ने यं कड़वे दुर्वचन कहे थे कि “ये सब मोटे (खाखल) तिल विनष्ट और क्षीण होकर बहुत समय के लिए नरक में रहेंगे”। कपट के पाँसे फेंकते समय गान्धारराज शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा था कि “नकुल को भी तुम हार गये। अब तुम्हारे पास क्या है? द्रौपदी को बदकर खेलो”। हे सज्जय, जब के समय कौरवों की ओर से यं जो निन्दित और नीतिविरुद्ध वचन कहे गये थे, उन्हें तुम जानते हो।

परन्तु मुझे सन्धि इतनी पसन्द है कि इस बिगड़े हुए मामलें को बनाने के लिए मैं खुद वहाँ जाना चाहता हूँ। जो कर सका तो ऐसी चेष्टा करूँगा कि पाण्डवों को उनका प्राप्य अंश मिल जाय और कौरवों का भी भला हो। जो मैं इस काम में सफलता प्राप्त कर सका तो मुझे पुण्य होगा, यश मिलेगा और कौरव भी मृत्यु के फन्दे से छूट जायेंगे। किन्तु यह तभी होगा जब कौरव लोग शुक्रनीति के अनुसार कही गई, धर्म और अर्थ के अनुकूल, हिंसा के भाव से रहित मेरी बातों को सदा सुनेंगे और वहाँ समझाने के लिए जानें पर मेरा अनादर न करेंगे। अगर इसके विरुद्ध हुआ तो समझ लो कि महारथी अर्जुन और युद्ध के लिए सदा तैयार भीमसेन के हाथ से अवश्य उनकी मृत्यु होगी; अपने कर्म के दोष से पापी कौरवों का भस्म होना अनिवार्य होगा। धूतकीड़ा में हारे हुए पाण्डवों को दुर्योधन और दुःशासन ने कड़ी और रूखी बातें कही थीं। युद्ध में सावधान और गदा हाथ में लिये भीमसेन समय पर दुर्योधन को उन बातों का

स्मरण करा देंगे। दुर्योधन एक क्रोधरूपी महावृत्त है। उसकी बड़ी शाखाएँ कर्ण हैं, छोटी डालियाँ शकुनि हैं, फूल और फल दुःशासन हैं और जड़ अश्विनी की धृतराष्ट्र हैं। वैसे ही युधिष्ठिर एक धर्मरूपी महावृत्त हैं। उनकी बड़ी शाखाएँ अर्जुन हैं, और छोटी डालियाँ भीमसेन हैं, फूल और फल नकुल और सहदेव हैं, जड़ वेद और ब्राह्मण हैं तथा मैं हूँ। हे सञ्जय, पुत्रों सहित राजा धृतराष्ट्र एक महावन हैं और पाण्डव उम्र वन के सिंह हैं। सिंह के द्वारा रक्षित वन का और वन के द्वारा रक्षित सिंह का विनाश नहीं होता। विना वन का सिंह मारा जाता है और विना सिंह का वन उजाड़ा जाता है। इसलिए वन को सिंह की और सिंह को वन की रक्षा करनी चाहिए। दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र लता के तुल्य हैं, और पाण्डव लोग शाल वृत्त के समान हैं। महावृत्त के आश्रय विना लता नहीं बढ़ सकती। पाण्डव लोग युद्ध के लिए भी तैयार हैं, और मेल करने के लिए भी तैयार हैं। राजा धृतराष्ट्र जो कर्तव्य समझें वह करें। हे सञ्जय, तुम जाकर इसी तरह कह देना कि पाण्डव लोग धर्म-आत्मा और महात्मा होने के कारण अभी तक शान्ति धारण किये हुए हैं। जो उन्हें आधा राज्य देकर सन्धि न की जायगी तो वे युद्ध करने को भी तैयार और समर्थ हैं।

५८

तीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का सञ्जय से, अपनी ओर से, सबको यथायोग्य पूछने के लिए कहना

सञ्जय ने कहा—महाराज, आपका भला हो। अब मैं आपसे जाने की आज्ञा माँगता हूँ। मन की चञ्चलता के कारण मेरे मुँह से जो कुछ अनुचित निकल गया हो तो उसके लिए मैं आप लोगों से क्षमा माँगता हूँ। श्रीकृष्ण, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि और चेकितान आदि से आज्ञा माँगकर मैं जाता हूँ। आप लोगों को सुख और कल्याण प्राप्त हो। आप सब लोग मुझ पर कृपा-दृष्टि रखें।

युधिष्ठिर ने कहा—हे सञ्जय, तुम्हारा कल्याण हो। जाओ, मैं तुम्हें जाने की आज्ञा देता हूँ। तुम समझदार और विद्वान् पुरुष हो, इसलिए कभी हमारा अनिष्ट नहीं चाहोगे। हम जानते हैं कि तुम्हारा हृदय शुद्ध है और तुम मध्यस्थ दूत बनकर हमारी सभा में आये हो, इसलिए तुमने जो कुछ कहा है, धृतराष्ट्र और दुर्योधन की ओर से कहा है। हे सञ्जय! तुम विश्वास-पात्र दूत, प्रीतिपात्र, कल्याण की बात कहनेवाले, सुशील और सन्तोषी हो। तुम्हारी बुद्धि कभी मोह को नहीं प्राप्त हो सकती और सच्ची खरी बात कहने पर तुम कभी नाराज़ नहीं हो सकते। तुम कभी मर्मस्थल में चोट पहुँचानेवाली, कड़वी, कड़ी और असङ्गत बात नहीं कह सकते। हे

सूत, तुमने जो कुछ हमसे कहा है उसे हम धर्मार्थ-सङ्गत, और अहिंसा का उद्देश्य रखनेवाली बातें समझते हैं। हमारे अत्यन्त प्रिय दूत एक तुम्हीं हो, या दूसरे विदुरजी हैं, जो हमें समझाने के लिए यहाँ आ सकते हैं और नीतियुक्त वचन सुना सकते हैं। तुम पुराने नौकर और अर्जुन के, आत्मा के समान, प्रिय मित्र हो। हमारी-तुम्हारी पुरानी जान-पहचान है।

हे सञ्जय, यहाँ से शीघ्र जाकर तुम पूजा के योग्य, विशुद्धवीर्य, कठ-कौशुमी आदि वेद की शाखाओं को पढ़नेवाले, सत्कुल में उत्पन्न, सब धर्मों का पालन करनेवाले, स्वाध्यायपाठी, भिक्षा से अपनी जीविका चलानेवाले, नित्य तपोवन में रहनेवाले, तपस्वी, वृद्ध ब्राह्मणों से मिलना। उन्हें मेरी ओर से प्रणाम करके उनसे उनकी कुशल पूछना। तुम राजा धृतराष्ट्र के पुरोहित, आचार्य, ऋत्विक् आदि से मिलकर उनकी कुशल पूछना। हस्तिनापुर में जो शूद्र जाति के सुशील, सबल, वृद्ध, उदारहृदय पुरुष रहते हैं और यथाशक्ति अपने अधिकार के अनुसार धर्म का आचरण करते हुए हमें याद करके हमारी कुशल सदा चाहते हैं उनसे मेरे कुशल-समाचार कहना। इसके बाद मेरी ओर से उनकी बड़ाई करते हुए उनकी चेम-कुशल पूछना। हे सञ्जय, कौरवों के राज्य में जो लोग व्यापार, पशु-पालन आदि से अपनी जीविका चलाते हैं और जो लोग भिन्न-भिन्न पदों पर रहकर राज्य की रक्षा और पालन का प्रबन्ध करते हैं, उन व्यापारी वैश्यों और राज-कर्मचारियों की भी मेरी ओर से कुशल पूछना। उनसे मेरे कुशल-समाचार कह देना।

हमारे आचार्य, प्रिय, नीतिज्ञ, वेद-प्राप्ति के लिए विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य-पालन करनेवाले, अस्त्र-विद्या के मन्त्र-उपचार-प्रयोग-संहार इन चारों विभागों के पूर्ण ज्ञाता, प्रसन्नमुख द्रोणाचार्य से हमारा प्रणाम कहना। उनके पुत्र अश्वत्थामा भी विद्वान्, वेदशाखापाठी, अस्त्रविद्या के पूर्वोक्त चारों अङ्गों के ज्ञाता, पराक्रमी और गन्धर्वपुत्र के समान दर्शनीय तथा मङ्गल-विद्या के जानकार हैं। उनसे हमारी ओर से उनकी कुशल पूछना। फिर महारथी और आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य के घर पर जाकर बारम्बार मेरा नाम लेकर मेरी ओर से उनके चरण छूना। हमारे पितामह भीष्म शूरवीर, दयालु, तपस्वी, प्राज्ञ, सुशील, सूरूप, धीर और शास्त्रज्ञ हैं। उन कुरुवृद्ध के पैर छूकर मेरी ओर से प्रार्थना करना। हे सञ्जय! कौरवों के मुखिया, ब्रह्मचर्य, वृद्धों की उपासना करनेवाले, बुद्धिमान, बहुश्रुत, वृद्ध महाराज धृतराष्ट्र के पैर मेरी ओर से छूना और कहना कि मैं अपने भाइयों के साथ सकुशल हूँ। जिसकी निन्दा पृथ्वी भर पर फैली हुई है उस धृतराष्ट्र के बड़े बेटे, अभागे, मन्दबुद्धि, मूर्ख, शठ, पापप्रकृति दुर्योधन से भी मिलकर मेरी ओर से कुशल-प्रश्न करना। हे सञ्जय, दुर्योधन का छोटा भाई दुःशासन महारथी और कौरवों में प्रधान शूर होने पर भी बड़े भाई के ही समान नीच प्रकृतिवाला और मन्दबुद्धि है। उससे भी मेरी ओर से मिलकर कुशल पूछना। भरतवंश में शान्ति की अत्यन्त इच्छा रखनेवाले, बुद्धिमान्, बाह्यिक-श्रेष्ठ राजा बाह्यिक से भी मिलकर मेरी कुशल कहना। मधुर वचन कहकर मेरी ओर से

उनका सत्कार करना [जिसमें वे प्रसन्न होकर मुझसे फिर मिलें] । अनेक श्रेष्ठ गुणों से युक्त, ज्ञानी, कोमलहृदय, कौरवों पर होनेवाले क्रोध को सदा स्नेह के कारण शान्त रखनेवाले सोमदत्त मेरे पूजनीय हैं । उनसे भी मेरी ओर से कुशल पूछना । उनके पुत्र भी कौरवों में श्रेष्ठ, महाधनुर्धर, २० महारथी, पूजनीय, हमारे भाई और मेरे सखा हैं । मन्त्रियों सहित उनसे भी मेरी ओर से कुशल-समाचार पूछना । इन लोगों के सिवा और भी जो श्रेष्ठ कौरव हैं, जो नाते में हमारे पुत्र, पौत्र और भाई होते हैं, उन नवयुवकों को मेरी ओर से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करना, और उनसे मेरे नीरोग और सकुशल होने का समाचार कहना ।

हे सञ्जय, दुर्योधन ने अपनी ओर से लड़ने के लिए जिन राजाओं को बुलाया है उन वशाति, शाल्व, केकय, अम्बष्ठ, त्रिगर्त, अवन्ती आदि देशों के मुख्य राजाओं की कुशल भी मेरी ओर से पूछना । पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा से आये हुए और पहाड़ी राजाओं को मेरी ओर से पूछना और उन शान्त, सुशील, सच्चरित्र नरपतियों का सत्कार करना । उनके सिवा हाथियों, घोड़ों और रथों पर चढ़कर युद्ध करनेवाले और पैदल सिपाही जो हों, उन वीर आर्यपुरुषों से भी मेरे कुशल-समाचार कहकर मेरी ओर से उनकी कुशल पूछना । राजा दुर्योधन के सलाहकार मन्त्रियों, सुसाहबों, द्वारपालों, सेनापतियों और आमदनी-खर्च का हिसाब करनेवालों तथा बड़े-बड़े विचारकों (हाकिमों) से भी मेरे कुशल-समाचार कहकर उनके कुशल-समाचार पूछना । कौरवों में श्रेष्ठ, महाप्राज्ञ, सब धर्मों से युक्त, मूढ़तारहित, देवतुल्य, धृतराष्ट्र से वैश्य जाति की स्त्री में उत्पन्न युयुत्सु से भी उनके कुशल-समाचार पूछना । वे ऐसे शान्त हैं कि उन्हें युद्ध और आपस का भगड़ा बिलकुल नहीं रुचता ।

धन के हरने में अद्वितीय, गुप्तरूप से छल करनेवाले, पाँसे के खेल में निपुण और युद्ध में देवताओं के लिए भी दुर्जय, चित्रसेन से मिलकर उनसे मेरे कुशल-समाचार कहना । हे सञ्जय ! पहाड़ी प्रदेश का स्वामी, गान्धारराज शकुनि भी पाँसे के खेल में बड़ा धूर्त और कपट से धन हरने में निपुण है । वह सदा दुर्योधन का सम्मान और प्रिय करता है । उस मिथ्यामति शकुनि से भी मेरी ओर से उसकी कुशल पूछना । हे सूत, अकेले ही एक रथ पर बैठकर दुर्जय पाण्डवों को जीतने का दावा रखनेवाले, मूढ़ कौरवों को और भी मोह में डालनेवाले, वीर कर्ण से भी मेरी ओर से उसकी कुशल पूछना । फिर महात्मा विदुर ३० के पास जाकर हमारी ओर से उनकी कुशल पूछना और हमारी कुशल का हाल कहना । वही हमारे भक्त, गुरु, स्वामी, पिता, माता, सुहृद और मन्त्री सब कुछ हैं । उन अगाधबुद्धिवाले दूरदर्शी विदुर को ज़रूर-ज़रूर हमारी ओर से प्रसन्न करना ।

हे सञ्जय, सब गुणों से अलङ्कृत और हमारी माता के समान बूढ़ी स्त्रियों के पास जाकर उनसे मेरा प्रणाम कहना । उनके पुत्र उग्रभाव छोड़कर उनसे यथोचित व्यवहार करते हैं या नहीं,

यह पृछने के बाद उनसे कहना कि पुत्रों सहित युधिष्ठिर कुशल से हैं। हे सञ्जय, दुर्योधन के रनिवास की रानियाँ से भी मेरी ओर से कुशल पूछना। यह भी पूछना कि वे सुरक्षित रहकर आनन्दित भाव से सावधानी के साथ अपने घर के काम-काज देखती-भालती हैं या नहीं। वे अपने पूजनीय ससुरों से अच्छा व्यवहार करती हैं या नहीं? उनसे मेरी ओर से कह देना कि जिस तरह उनके पति उनके अनुकूल और प्रमत्त रहें, वैसे ही काम वे करती रहें। हे सूत! मत्कुल में उत्पन्न, गुणों से अलङ्कृत, बाल-वस्त्रोंवाली जो स्त्रियाँ मेरी बहू लगती हैं उनसे कहना कि युधिष्ठिर मकुशल और प्रमत्त हैं, और उन्होंने तुम्हारी कुशल के समाचार पूछे हैं। हे सञ्जय! तुम घर में जाकर उन बालिकाओं को, जो मेरी कन्या लगती हैं, छाती से लगाकर स्नेह के साथ कुशल पूछना और कहना कि तुम्हें कल्याण-रूप अनुकूल पति मिलें और तुम सदा उनके अनुकूल रहो।

हे सूत! गहने और बढ़िया कपड़े पहने, सुगन्ध लगाये, सुन्दरी सुख और भोगविलास के साथ रहनेवाली, मनोहर रूप और मधुर वाणी से मनोरञ्जन करनेवाली, नगरनिवासिनी वेश्याओं से भी कुशल पूछना। कौरवों के दाम्प, दासी उनके आश्रय में रहनेवाले कुवड़े लूले-लैंगड़-अपाहिजों से भी पहले मेरे मकुशल होने का हाल कहकर उनसे उनकी कुशल पूछना। उन अङ्गहीन, दीन, बौने, अन्धे और बहरे लोगों को, जिन्हें दुर्योधन दया के कारण आश्रय दिये हुए हैं, आश्रय देना और उनसे मेरी ओर से पूछना कि दुर्योधन ने उनको मद से मिलनेवाली वृत्ति तो नहीं बन्द कर दी? उन्हें भोजन-वस्त्र आदि वह देता है या नहीं? महावतों और नगर के कारीगरों से मिलकर उनसे मेरी कुशल कहना और फिर उनकी कुशल पूछना। उनसे मेरी ओर से कह देना कि “तुम जो दुःख के साथ बुरी तरह जीवन बिता रहे हो सो अवश्य तुम्हारे पूर्वजन्म के पापों का फल है। किन्तु तुम डरो नहीं, मैं बहुत शीघ्र शत्रुओं को दबा करके मित्रों पर कृपा करूँगा, और अन्न-वस्त्र देकर तुम्हारा भी भरण-पोषण करूँगा।” हे सञ्जय, तुम राजा दुर्योधन से कहना कि मैंने ब्राह्मणों की जीविका के लिए जो वार्षिक वृत्ति बाँध दी थी वह वृत्ति मेरे चले आने पर तुम्हारे कर्मचारी देते हैं या नहीं, यह जानकर दूत के द्वारा मुझसे कहला भेजो कि मैं (अर्थात् दुर्योधन) बराबर उसकी देखभाल करता हूँ, और तुम्हारी दी हुई वृत्ति ब्राह्मणों को दी जाती है। हे प्रिय सञ्जय! जो अनाथ, दुर्बल और मूढ़ पुरुष सदा अपने पालने का ही यत्न किया करते हैं उन स्वार्थी कृपणों से भी मिलकर तुम मेरी ओर से उनकी कुशल पूछना। हे सूतपुत्र, और भी जो लोग दूर-दूर के देशों से आकर दुर्योधन के आश्रय में रहे हैं उनसे और अन्य पूजनीय पुरुषों से भी मेरी कुशल और आरोग्य रहने का समाचार कहना।

हे सञ्जय, इस तरह सब आये हुए राजाओं और दूतों से मिलकर उनकी कुशल पूछना और मेरी कुशल सुनाना। दुर्योधन ने जो अपने सहायक षोडश पाये हैं वे सब पृथ्वी-

मण्डल में अद्वितीय हैं; किन्तु मेरा सहायक महाबली धर्म ही है। जिसका शुभ फल कभी निष्फल नहीं होता वह धर्म ही शत्रुओं के मारने में मेरी सहायता करेगा। हे सञ्जय, मेरे कहने से मेरी ओर से तुम फिर यह बात धृतराष्ट्र और दुर्योधन से कह देना कि तुम्हारे मन में जो यह इच्छा है कि हम निष्कण्टक होकर अकेले ही कौरवों का राज्य करें, वही तुम्हारी घोर शत्रुता है। उसके कारण शान्ति या भलाई का कोई उपाय नहीं है। यह तुम्हारा प्रिय मैं कभी न करूँगा कि तुम्हें अकेले ही समूचा राज्य भोगने दूँ। इसलिए हे भरतवंश के श्रेष्ठ वीर, या तो तुम मुझे इन्द्रप्रस्थ का राज्य दे दो या युद्ध करो।

४२

इकतीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का फिर सञ्जय से नीति-वाक्य कहना

युधिष्ठिर ने कहा—हे सञ्जय ! सज्जन या दुर्जन, बालक या बूढ़े, बलवान या दुर्बल, सबको विधाता ने अपने वश में कर रखा है। वह ईश्वर मनुष्य के प्राचीन कर्मों का फल देने के लिए बालक को समझदारी और समझदार वृद्ध को नासमझी दे देता है। दुर्योधन अथवा धृतराष्ट्र यदि मेरे बल और सेना का हाल पूछें तो उनको सब ठीक-ठीक बता देना, जिसमें वे उत्साह के साथ सलाह करके कर्तव्य का निश्चय कर सकें। हे सञ्जय, तुम कुरु-सभा में जाकर महाबली धृतराष्ट्र को मेरी ओर से प्रणाम करना और प्रसन्न करके कुशल और आरोग्य रहने का हाल पूछना। कौरवों के बीच में बैठे हुए धृतराष्ट्र से कहना “राजन्, पाण्डव लोग तुम्हारे ही प्रताप से सुखपूर्वक रहते हैं। उन बालकों को तुम्हारे ही प्रसाद से पहले राज्य मिला था। पहले राज्य देकर अब उन्हें राज्य से भ्रष्ट करना या नष्ट होते देखकर भी उपेक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है।” हे सञ्जय, यह सारा विश्व किसी एक के अधीन नहीं रह सकता। इसलिए हम कौरवों से मिलकर हिस्सा बाँटकर जीना और राज्य भोगना चाहते हैं। धृतराष्ट्र और दुर्योधन से कह देना कि वे काम-क्रोध-लोभ आदि शत्रुओं के वश में न हों।

सञ्जय ! तुम भरतवंश के पितामह, महाराज शान्तनु के पुत्र, भीष्म से कहना कि युधिष्ठिर ने आपके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया है। इस प्रकार प्रणाम करके तुम पितामह से मेरी ओर से कहना कि “आपने नष्ट होने से भरतवंश को बचा लिया है। इसलिए अब आप विचार करके अपने मत से वह उपाय कीजिए जिसमें आपके पोते पाण्डव और कौरव आपस में मेल करके सुख से जीवित रहें।” इसी तरह तुम कौरवों के मन्त्री महात्मा विदुर से कहना कि “हे सौम्य, युधिष्ठिर के हित की इच्छा से आप दुर्योधन और धृतराष्ट्र को युद्ध न करके मेल कर लेने की सलाह दीजिए।”

१०

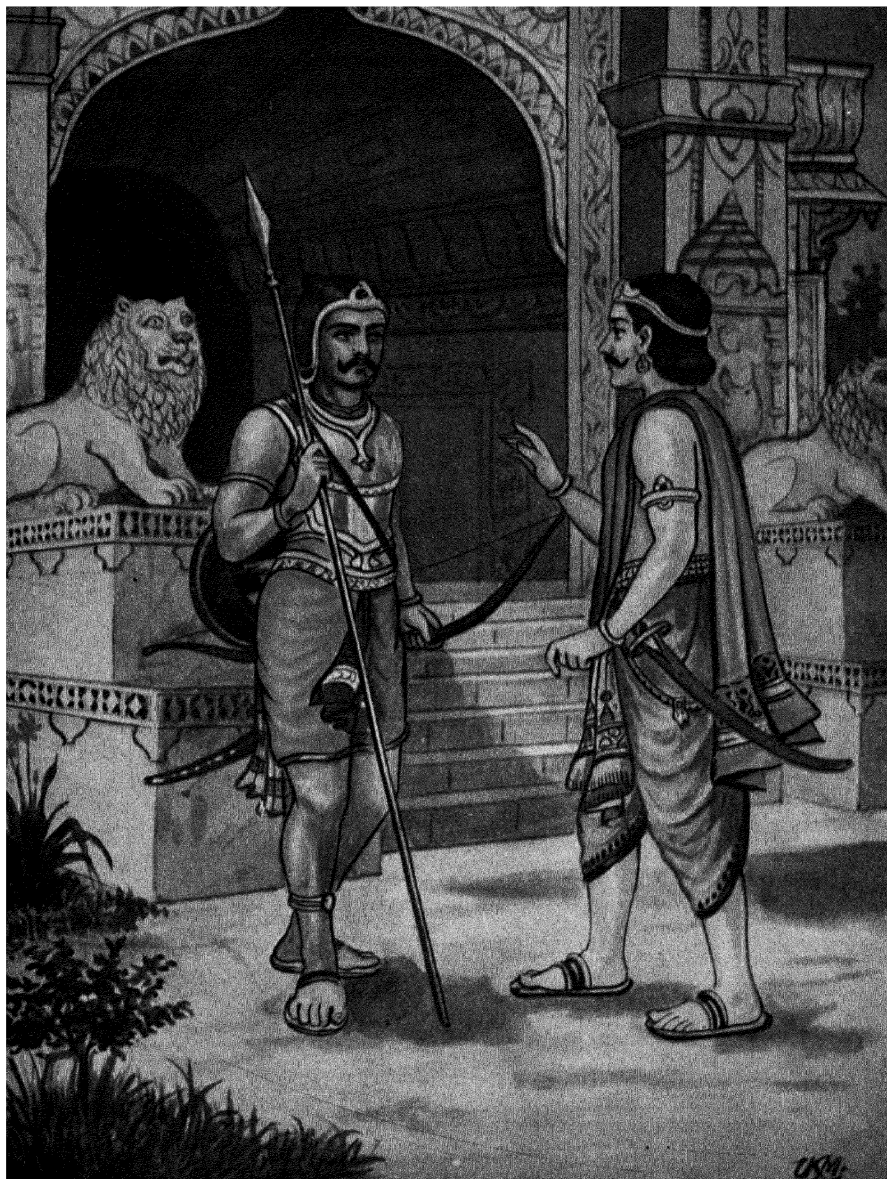
हे सञ्जय! सभा में कौरवों के बीच में बैठे हुए अभिमानी, असहनशील, राजपुत्र दुर्योधन से बहुत अनुनय-विनय के साथ कहना—सभा में बुलाकर बिना किसी अपराध के तुमने द्रौपदी का जो अपमान किया और कष्ट दिया उसे पाण्डव लोग इसलिए भूल जाने को तैयार हैं कि कौरवों की हत्या न करनी पड़े। यह बात सब कौरव जानते हैं कि बलवान् और समर्थ होकर भी पाण्डवों ने इसी घोर कर्म से बचने के लिए पहले के और बाद के सब क्लेशों को सह लिया है। हे सौम्य, तुमने मृगछाला पहनाकर हमें वनवासी कर दिया और देश से निकाल दिया, उसे भी हमने इसी से सह लिया कि हमें कौरवों की हत्या न करनी पड़े। तुम्हारी अनुमति से दुःशासन ने कुन्ती माता का कहा न मानकर द्रौपदी के बाल पकड़ लिये, उसे भी हमने इसी खयाल से भुला दिया और उत समय भी हम चुपके बैठे देखते रहे। हे शत्रुदमन, इसलिए अब हमें हमारा न्याय से प्राप्य हिस्सा तुमसे मिलना चाहिए। हे नरश्रेष्ठ, परायं द्रव्य को ले लेने की बुरी बुद्धि छोड़ दो। राजन्, इसी तरह शान्ति और परस्पर प्रीति हो सकती है। हम शान्ति और मेल ही चाहते हैं, इसलिए जो तुम हमें राज्य का एक छोटा अंश ही दे दोगे तो हम राजी हो जायेंगे। तुम हमें अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दो, वारणावत और एक कोई और गाँव, केवल ये पाँच गाँव दे दो। वस, हमारा-तुम्हारा भगड़ा मिट जायगा। हे सुयोधन, हम पाँच भाइयों के लिए केवल पाँच गाँव दे दो, जिसमें हम सब भाइयों में मेल और शान्ति हो जाय। भाई भाइयों से मिलें, बाप-बेटों में मेल बना रहे—और प्रसन्नचित पाञ्चाल लोग हँसी-खुशी मनाते हुए कौरवों से मिलें। मैं कौरवों और पाञ्चालों को अक्षत शरीर से हेल-मेल के साथ देखना चाहता हूँ। हे भरतश्रेष्ठ, सब लोग सन्धि और शान्ति को पसन्द करते हैं। इसी में सबको प्रसन्नता प्राप्त होगी।

हे सञ्जय, मैं सन्धि और युद्ध दोनों के लिए तैयार और समर्थ हूँ। मैं कोमल और कठोर दोनों तरह के काम कर सकता हूँ। जैसे धर्मोपार्जन के लिए मैं समर्थ हूँ वैसे ही धनोपार्जन भी कर सकता हूँ।

वृत्तिसर्वां अध्याय

सञ्जय का हस्तिनापुर को लौट जाना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, इस प्रकार धृतराष्ट्र की आज्ञा के अनुसार सब काम करने के बाद बुद्धिमान् सञ्जय युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर हस्तिनापुर को लौटे। वेग से चलने-वाले घोड़े जिसमें जुते हुए थे उस रथ पर बैठकर सञ्जय शीघ्र ही दुर्योधन की राजधानी में पहुँच



संजय ने कहा—हे द्रारपाल, तुम इसी दम महाराज धृतराष्ट्र को मेरे आने की खबर दो। पृ० १५४६

गये । रनिवास के द्वार पर पहुँचकर उन्होंने द्वारपाल से कहा—हे द्वारपाल, तुम इसी दम महाराज धृतराष्ट्र को मेरे आने की खबर दो । कहे, सञ्जय पाण्डवों के पास से लौटकर आ गया ।

जो महाराज जाग रहे हैं तो उनसे जाकर यह कहना । उनकी आज्ञा मिलने पर मैं भीतर जाकर उनसे मिलूँगा । मुझे उनसे विशेष प्रयोजन की बातें कहनी हैं ।

द्वारपाल ने सञ्जय की बातें सुनकर राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर कहा—मैं आपको प्रणाम करता हूँ । राजन्, पाण्डवों के पास से लौटकर आये हुए दूत सञ्जय आपसे मिलने के लिए द्वार पर खड़े हैं । उनके लिए आप क्या आज्ञा देते हैं ?

धृतराष्ट्र ने कहा—हे द्वारपाल ! सञ्जय से जाकर कहो, मैं सकुशल, नीरोग और उनसे भेंट करने के लिए तैयार हूँ । तुम स्वागत के माथ उन्हें शीघ्र ले आओ । उनसे मिलने के लिए मैं सब समय तैयार हूँ । वे द्वार पर आज्ञा की प्रतीक्षा में क्यों खड़े हैं ?



हे जनमेजय, इस प्रकार राजा की आज्ञा पाकर सञ्जय ने पात्र, शूर और आर्य (विश्वासपात्र) पुरुषों से सुरक्षित राजभवन में प्रवेश किया । वहाँ मिहिरासन पर बैठे हुए राजा धृतराष्ट्र के पास हाथ जोड़े हुए सूतपुत्र सञ्जय पहुँचे । उन्होंने कहा—राजन्, मैं सञ्जय आपको प्रणाम करता हूँ । मैं पाण्डवों के पास हो आया । मनस्वी युधिष्ठिर ने प्रणाम करके आपके कुशल-समाचार पूछे हैं । उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक आपके पुत्रों की जेम-कुशल पूछी है और कहा है कि आप पुत्र, पौत्र, सुहृद्गण, सचिव और आश्रित अनुजीवी पुरुषों के साथ सुख से हैं न ?

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, मैं सुखपूर्वक युधिष्ठिर का अभिनन्दन करके तुमसे पूछता हूँ कि राजा युधिष्ठिर पुत्रों, भाइयों और मन्त्रियों के साथ सकुशल हैं न ?

१०

सञ्जय ने कहा—राजा युधिष्ठिर भाइयों और मन्त्रियों के साथ सकुशल हैं । वे निर्दोष, धर्मार्थयुक्त कार्य करनेवाले, उदार, बहुश्रुत, दूरदर्शी, सच्चरित्र और सुशील हैं । वे आपसे वही राज्य पाना चाहते हैं जो आपने पहले उन्हें हिस्से में दिया था । वे दया को ही मुख्य धर्म मानते हैं, उसके बाद धन प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं । जहाँ तक हो सके वहाँ तक शान्ति

से काम निकालना ही उनको अभीष्ट है; लाचार होकर वे युद्ध करेंगे। वे परोपकार और धर्म-पालन के प्रयोजन से ही सुख और प्रिय प्राप्त करना चाहते हैं। [धर्मार्थहीन सुख प्राप्त करना उनका उद्देश्य नहीं है।]



महाराज, सूत में बँधी हुई कठपुतली की तरह सब मनुष्य उसी ईश्वर की प्रेरणा से हर एक कार्य करते हैं। युधिष्ठिर के कष्ट को देखकर मुझे निश्चय हो गया है कि दैव उद्योग से बढ़कर प्रबल है। आप के पापमय, घोर, अवर्गनीय कर्मदोष को देखकर भी मेरी यह धारणा पक्की हो गई है कि ईश्वर की इच्छा को कोई टाल नहीं सकता। राजन्, प्रबल शत्रु जब तक बदला लेने को तैयार नहीं होता, तभी तक ऐसा कर्म करनेवाले पुरुष प्रशंसा पाते [और ऐश्वर्य-सुख भोगते] हैं। साँप जैसे पुरानी केंचुल को छोड़कर चमक उठता है, वैसे ही वीर युधिष्ठिर भी आपके प्रति

गुरे भाव को और क्रोध को छोड़कर श्रेष्ठ चरित्र अर्थात् शान्ति के साथ स्थित हैं। [अभी तक वे शान्ति ही चाहते हैं—बदला लेने के विचार से युद्ध के लिए ही हठ किये नहीं बैठे हैं।]

राजन्, धर्मार्थयुक्त आर्थचरित्र के विरुद्ध अपने कामों पर तनिक ध्यान दीजिए। उन कामों के कारण जैसे इस लोक में आपकी निन्दा होती है वैसे ही परलोक में भी पाप-फल भोगना पड़ेगा। हे भरतश्रेष्ठ, मूढ़ पुत्र के वश और अनुगामी होकर आप पाण्डवों को वञ्चित करके अकेले ही राज्य करना चाहते हैं। एक तो यह बात दुर्लभ है, दूसरे इससे पृथ्वी भर में आपके अपयश की घोषणा हो जायगी—सब लोग आपको अधर्मी कहेंगे। यह काम किसी दृष्टि से आपके योग्य नहीं है। महाराज ! जो लोग बुद्धिहीन, दुष्कूल में उत्पन्न, उग्र, निष्ठुर, बहुत दिन तक बैर बनाये रखनेवाले, युद्ध आदि क्षत्रिय की विद्याओं में अधकचरे, वीर्यहीन, असभ्य और अशिष्ट होते हैं, उन्हें अवश्य आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत जो सत्कुल में उत्पन्न मनुष्य बलवान्, यशस्वी, सब शास्त्रों में प्रवीण, सन्तोषी, जितेन्द्रिय और धर्म-अधर्म की उलझन को सुलझाकर काम करता है उसे वैसे दुःख नहीं भोगने पड़ते—वह सहज में आपत्ति से छुटकारा पा जाता है। आप सत्कुल में तो उत्पन्न हैं किन्तु सन्तोष आदि अन्य गुण आपमें

नहीं हैं। मन्त्रणा-चतुर भीष्म आदि आपके पास रहते हैं; उन्होंने उस समय मना भी किया था कि पाण्डवों से अनुचित व्यवहार न किया जाय। आप खुद भी भलाई-बुराई को अच्छी तरह समझते थे। आपत्ति के समय धर्म और अर्थ के अगुवा होने का गौरव भी आप को प्राप्त है। यदि आप पुत्र के मोह में मूढ़ न होते तो ऐसे ओछे काम का अनुमोदन कभी न करते। राजन्, २० ये कर्ण आदि सब आपके मन्त्री, जो सदा आपके कामों में लगे रहते हैं, मिलकर यह दृढ़ निश्चय कर चुके हैं कि पाण्डवों को आधा राज्य कभी न देना चाहिए। इसका अवश्य होने-वाला फल कुरु-कुल का नाश ही है। जो महाराज युधिष्ठिर आपके पाप-कर्म का बदला पाप-पूर्ण उपाय से चुकाना चाहते तो अब तक कब का कौरवों का नाश हो चुका होता। इसमें उन्हें गोत्र-वध का पाप भी न लगता; क्योंकि गोत्र-वध का मूल कारण आपका ही कर्म है। इस प्रकार युधिष्ठिर तो, चोर को दण्ड देनेवाले राजा के समान, अधर्म करनेवाले आप पर पाप का भार छोड़कर उससे बच जाते; और संसार में आपकी ही निन्दा होती।

राजन्, सब जीव दैव के ही अधीन हैं। जो यह बात न होती तो इसी शरीर से स्वर्ग को जा सकनेवाले प्रतापी अर्जुन को ऐसे (बृहन्नला बनने आदि के) कष्ट न भोगने पड़ते। दैव के आगे पौरुष कुछ नहीं है। राजा बलि ने भी जब देखा कि शूरता आदि गुण कर्मानुसार घटते-बढ़ते रहते हैं, और इसी से भाव (ऐश्वर्य) और अभाव (कमी) सदा स्थिर नहीं रहते तब इसके कारण की खोज में बहुत कुछ सोचा, और अन्त में दैवरूप काल को ही उसका कारण माना। मनुष्य को चाहिए कि चक्षु (आँख), श्रोत्र (कान), घ्राण (नाक), रसना (जीभ) और त्वक् (स्पर्शेन्द्रिय), इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में रखकर विषय-वृष्ट्या को मन से हटा दे। मन्तापी पुरुष कभी किसी विषय के लिए दुखी नहीं होता। कुछ लोगों का कहना है कि विधिपूर्वक करने से ही कार्य सफल होता है; जैसे माता-पिता के कर्म से उत्पन्न बालक अच्छी तरह गिलाने-पिलाने से बढ़ता और मोटा-ताज़ा होता है। हर एक मनुष्य प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख और निन्दा-प्रशंसा पाता है। बुरे काम करने से जिसकी निन्दा होती है उसी की, अच्छे काम करने से, बड़ाई होती है। जो आप मेरा कहा और युधिष्ठिर का प्रस्ताव न मानकर विरोध और युद्ध ही चाहेंगे तो उससे सब प्रजा का विध्वंस हो जायगा और आपके हाथ केवल निन्दा ही लगेगी। आग की तरह अर्जुन, श्रीकृष्ण की सहायता से, सूखी घास के समान असार कुरुवंश को भस्म कर डालेंगे। द्यूत-क्रीड़ा के समय स्वेच्छाचारी पुत्र के वश में होकर आपने उसी समय भगड़ा मिटाकर शान्ति नहीं कर दी, बल्कि उलटे दुर्योधन के उस कर्म से आप अपने को कृतार्थ मान बैठे; उसका फल अब यह देखिए। हे कुरुकुलश्रेष्ठ, आप विदुर आदि हितैषियों का अनादर और कर्ण आदि चापलूसों का आदर करते हैं। आपका आत्मा भी दुर्बल है। इस कारण सारे पृथ्वीमण्डल की रक्षा आपसे नहीं हो सकती। मैं रथ के वेग से शिथिल और थका हुआ ३०

हूँ, इसलिए अब आपसे आराम करने के लिए जाने की आज्ञा माँगता हूँ। सबेरे सभा में चलकर सब कौरवों को युधिष्ठिर के वचन सुनाऊँगा।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सख्य ! मैं आज्ञा देता हूँ, जाओ, आराम करो। सबेरे सभा में
३२ सब कौरव तुम्हारे मुँह से युधिष्ठिर के वचन सुनेंगे।

प्रजागरपर्व

तेतीसवाँ अध्याय

विदुर और धृतराष्ट्र का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, सख्य के चले जाने पर महामति धृतराष्ट्र ने द्वारपाल से कहा—मैं विदुर से मिलना चाहता हूँ; शीघ्र उन्हें बुला लाओ।

धृतराष्ट्र की आज्ञा पाते ही द्वारपाल विदुर के पास गया और उनसे कहने लगा—हे महाप्राज्ञ, महाराज धृतराष्ट्र ने आपको याद किया है। विदुर तुरन्त राजभवन के द्वार पर पहुँचे और द्वारपाल से बोले—जाओ, महाराज को मेरे आने की खबर दो।



द्वारपाल ने धृतराष्ट्र से कहा—हे राजेन्द्र, आपने विदुर को बुलाया था सो वे आ गये, आपके दर्शन करना चाहते हैं। क्या आज्ञा है? धृतराष्ट्र ने कहा—महाप्राज्ञ दूरदर्शी विदुर को ले आओ। उनसे मिलने के लिए मैं सदा तैयार हूँ।

द्वारपाल ने आकर कहा—विदुर जी, महाराज के रनिवास में चलिए। राजा ने मुझसे कहा है कि वे आपसे मिलने के लिए सदा तैयार हैं।

वैशम्पायन कहते हैं कि तब बुद्धिमान् विदुर ने राज-भवन में जा करके हाथ जोड़कर चिन्तित धृतराष्ट्र से कहा—

महाप्राज्ञ, मैं आपकी आज्ञा से सेवा में उपस्थित हूँ। यदि मेरे करने योग्य कुछ काम हो तो मैं हाज़िर हूँ, आज्ञा कीजिए।

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, अभी सञ्जय मुझे भला-बुरा कहकर अपने घर गया है। वह सबेरे सभा में युधिष्ठिर का सँदेश सुनावेगा। अभी मुझे नहीं मालूम हुआ कि महात्मा युधिष्ठिर ने उससे क्या-क्या कहा है। उसी चिन्ता से मुझे नींद नहीं आती और शरीर में आग सी लगी हुई है। मैं जगकर चिन्ता की आग में जल रहा हूँ। भाई, तुम धर्म और अर्थ की बातों में निपुण हो। जिस तरह जिस बात में तुम्हें मेरा भला देख पड़ता हो वह मुझसे कहो। जब से सञ्जय पाण्डवों के पास से आया है तब से मेरे मन का चैन नहीं है। सब इन्द्रियाँ विकल सी हो रही हैं। इस समय मुझे यही चिन्ता सता रही है कि सञ्जय सबेरे न जाने क्या कहेगा।



१०

विदुर ने कहा—जो व्यक्ति कामी है, जो चोर है, जिसका सर्वस्व हर लिया गया है और जिस असहाय दुर्बल पुरुष पर बलवान् का आक्रमण होनेवाला है, इन्हीं चार तरह के मनुष्यों का नींद नहीं आती। राजन्, इन महान् दोषों में से किसी दोष ने तो आपको अपना शिकार नहीं बना लिया? अथवा परायें धन पर लोभ करके तो आप बेचैन नहीं हो रहे हैं?

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर, मैं तुमसे धर्मयुक्त कल्याणदायक बातें सुनना चाहता हूँ। राजर्षि भरत के वंश में एक तुम्हीं को विद्वान् और बुद्धिमान् लोग मान देते हैं।

विदुर ने कहा—महाराज, धर्मात्मा युधिष्ठिर में राजा के सब लक्षण हैं और उनमें त्रिभुवन के स्वामी होने की योग्यता है। इसके विपरीत आपमें राजा के लक्षण नहीं हैं और धर्मात्मा धर्मज्ञ होने पर भी आप अन्धे होने के कारण राज्य पाने के उपयुक्त भी नहीं हैं। तो भी आपने राज्यलोभ से स्नेह के योग्य धर्मराज को वन में रहने के लिए भेज दिया। राजा युधिष्ठिर उदार, दयालु, धर्मात्मा, शान्त, सत्यवादी और पराक्रमी होने पर भी आपको अपना बड़ा और बूढ़ा समझकर अनेक क्लेश सह रहे हैं। राजन्! आप दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि के ऊपर राज्य के काम छोड़कर कैसे अपने भले या अभ्युदय की इच्छा करते हैं? जो मनुष्य शास्त्र के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करता है, शक्ति देखकर कार्य का आरम्भ करता है, वैराग्य का आश्रय ले करके सहनशील बनता है और श्रद्धा के साथ सदा धर्म करता है वही पण्डित है। इस प्रकार

उक्त गुणों की सहायता से जो पुरुष पुरुषार्थ से भ्रष्ट नहीं होता, वही पण्डित है। जो परलोक आदि पर विश्वास रखनेवाला आस्तिक है, गुरु और वेद आदि के वचनों पर श्रद्धा रखनेवाला है, प्रशंसनीय काम करता और निन्दित कामों से वचता है, वही पण्डित है। क्रोध, हर्ष, दर्प (दूसरों का अपमान करना), लज्जा, नम्रता का अभाव और अपने को मान के योग्य मानना, ये भाव जिसके कार्यों को नष्ट नहीं कर सकते, वही पण्डित है। जिसके कार्य या सलाह को शत्रु लोग पहले से नहीं जान पाते, कार्य हो चुकने पर ही उन्हें उसकी खबर होती है, वही पण्डित है। गर्मी, जाड़ा, भय, आसक्ति, ऐश्वर्य या गरीबी जिसके काम में विघ्न नहीं डाल सकती, वही पण्डित है। जिसकी बुद्धि धर्म और अर्थ का अनुसरण करती है और जो ऐहिक सुख की अपेक्षा दोनों लोकों में सुख देनेवाले धर्म-रूपी अर्थ को पसन्द करता है वह पण्डित है। मतलब यह कि 'काम' का दर्जा धर्म और अर्थ से नीचे है। पण्डित लोग यथाशक्ति करना चाहते हैं और यथाशक्ति ही करते हैं; वे किसी को तुच्छ भी नहीं समझते। पण्डित की पहली पहचान यह है कि वह जल्द समझ लेता है, देर तक सुनता है, कामना से प्रेरित होकर नहीं, किन्तु अर्थ पर ध्यान रखकर कर्त्तव्य करता है। वह किसी के अच्छी तरह पूछे बिना बेकार बकबक नहीं करता या अपनी ओर से नहीं कहने लगता। जो पण्डित—अर्थात् भले-बुरे का ज्ञान रखनेवाले—हैं वे शक्ति से बाहर की चीज़ को नहीं चाहते, जो नष्ट हो गया है उसका सोच नहीं करते, आपत्ति के समय मूढ़ नहीं हो जाते; उनकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती। जो यह निश्चय करके कि मेरा यत्न सिद्ध हो जायगा, शुरू करता है, काम पूरा किये बिना बीच में नहीं रुकता, बिना प्रयोजन का काम किसी समय नहीं करता और आत्मा का वश में किये हुए है, वह पण्डित कहलाता है। हे भरतश्रेष्ठ, पण्डित लोग श्रेष्ठ और बढ़ती के काम करते हैं और हित की सलाह को अच्छी निगाह से देखते हैं, खरी हित की बातें कहनेवाले का कहा मानते हैं। जो पण्डित होता है वह गङ्गा के कुण्ड की तरह चोभ-शून्य रहकर अपने सम्मान में प्रसन्न या अपमान में खिन्न नहीं होता। सब प्राणियों को तत्त्व को जाननेवाला, सब कामों के सम्पादन को जाननेवाला और मनुष्यों के करने योग्य उपायों को जाननेवाला पण्डित कहलाता है। स्पष्टवक्ता, न हिचकनेवाला, ससार की बातों को जाननेवाला, तर्क में निपुण, प्रतिभा-सम्पन्न, तत्काल ग्रन्थ की व्याख्या कर सकनेवाला मनुष्य पण्डित है। जिसका ज्ञान समझ से जँचा हुआ है और समझ शास्त्र के अनुसार है और जो आर्य पुरुषों की चाल पर चलता है, वही पण्डित कहलाता है। असीम विद्या और ऐश्वर्य पाकर जो व्यक्ति उद्धत नहीं हो जाता वह पण्डित है।

जिसने शास्त्र और लोक की बातें नहीं सुनीं, जो घमण्डी है, जो दरिद्र होकर भी बड़ी इच्छाएँ रखता है, और जो निन्दित कर्म से धन प्राप्त करना चाहता है, उसे विद्वान् लोग मूढ़ कहते हैं। अपने कार्य को छोड़कर पराये कार्य के लिए यत्न करनेवाला और मित्र से दगा करनेवाला

मनुष्य मूढ़ है। न चाहने की चीज़ों को चाहनेवाला, चाहने योग्य चीज़ों को न चाहनेवाला और बलवान् से द्रोह करनेवाला मनुष्य मूढ़ माना गया है। शत्रु को मित्र बनानेवाला, मित्र से द्वेष और उसकी हत्या करनेवाला, और निन्दित कर्म करनेवाला मूढ़ कहा जाता है। कर्तव्य कार्यों को नौकर-चाकरों से करानेवाला, सब बातों में सन्देह करनेवाला, जल्दी के काम में देर लगानेवाला मूढ़ है। पितरों का आद्र और देवताओं की पूजा न करनेवाला, हितचिन्तक मित्र को न खोजनेवाला मूढ़ है। बिना बुलाये किसी के पास जानेवाला, बिना पृष्ठ बहुत कुछ कह जानेवाला, अविश्वास के योग्य मनुष्य पर विश्वास करनेवाला मूढ़ नराधम है। आप खुद कोई दोष का काम करके भी उसी दोष के लिए दूसरे पर आक्षेप करनेवाला और निर्बल होकर भी क्रोध करनेवाला सबसे बढ़कर मूढ़ है। जो मनुष्य अपने बल को न जानकर, धर्मार्थ-शून्य होकर भी, बिना यत्न किये अलभ्य या दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करना चाहता है वह मूढ़ है। राजन्, जिसका शासन न करना चाहिए उसको जो उपदेश करता है, छिपकर राज-दाराओं से सम्बन्ध रखता है और कञ्जूस की सेवा करता है वह मूढ़ है।

राजन्, जो मनुष्य सम्पत्तिशाली होकर अकेला बढ़िया माल खाता है, अकेला सुन्दर मूल्यवान् कपड़े पहनता है, और भरण-पोषण के योग्य व्यक्तियों को अन्न-वस्त्र नहीं देता उससे बढ़कर निष्ठुर और नीच कौन होगा ? एक आदमी पाप करता है, उसका फल [सब लोगों को और] ४१ श्रेष्ठ पुरुषों को भी भोगना पड़ता है। भोग करनेवाले छूट जाते हैं, पाप करनेवाला दोष से लिप्त होता है। अर्थात् तुमने अन्याय किया, उससे होनेवाले युद्ध का फल सबको भोगना पड़ेगा। ऐश्वर्य का भोग सब करेंगे, पाप के भागी तुम्हीं होंगे। धनुषधारी के बाण का निशाना लग भी जाता है, और कभी खाली भी जाता है; किन्तु बुद्धिमान् की चतुराई से राजा और राज्य दोनों का नाश होता है। एक बुद्धि से दो (कार्य और अकार्य) का निश्चय करके तीन (मित्र, शत्रु, उदासीन) को चार (साम, दान, भेद, दण्ड) से वश में कीजिए। फिर पाँच (इन्द्रियों) को जीतकर, छः (सन्धि, विप्रह, यान आदि) को जानकर और सात (वेश्या, जुआ, शिकार, शराब, कठोर वचन, दण्ड की कठोरता अन्याय से धनोपार्जन) छोड़कर सुखी हूँजिए। विप से एक मरता है, शस्त्र से एक की हत्या होती है, किन्तु सलाह की गड़बड़ से राजा, राज्य और प्रजा सबका नाश होता है। राजन्, अकेले स्वादिष्ट चीज़ न खानी चाहिए; अकेले किसी काम के बारे में न सोचना चाहिए; अकेले राह न चलना चाहिए और सोते हुए लोगों में अकेले न जागना चाहिए। महाराज, जैसे समुद्र को पार जाने का उपाय एक मात्र नाव (जहाज़) है, वैसे ही सत्य बोलना स्वर्ग की सीढ़ी है। खेद है कि यह बात आपकी समझ में नहीं आती। क्षमा करनेवाला असमर्थ समझा जाता है, यही एक दोष है। परन्तु इस दोष का खयाल न करना चाहिए; क्योंकि क्षमा मनुष्य का परम बल है। क्षमा अशक्तों के लिए गुण है और

समर्थों के लिए आभूषण है। क्षमा एक उत्तम वशीकरण है। क्षमा से कौन काम नहीं ५० सिद्ध होता? जिसके हाथ में क्षमा रूपी खड्ग है उसका दुर्जन क्या बिगाड़ सकता है? घास-फूस से खाली जगह पर गिरकर आग आप ही बुझ जाती है। जिसमें क्षमा नहीं है, वह दूसरों में और अपने में सैकड़ों दोष पैदा कर लेता है। महाराज, धर्म ही परम कल्याण-दाता है, क्षमा ही उत्तम शान्ति है, विद्या ही परम वृत्ति है और अहिंसा ही परम सुख देती है। साँप जैसे बिल में रहनेवाले जीवों को लाल लेता है वैसे ही यह भूमि युद्ध-विमुख राजा और प्रवासविमुख ब्राह्मण को ग्रस लेती है।

इस लोक में कटु वचन न बोलने से और दुष्टों का आदर न करने से मनुष्य की प्रशंसा ६० हांती है। हे पुरुषसिंह, दूसरी के चाहे हुए पुरुष का चाहनेवाली स्त्रियाँ और पूजित की पूजा करनेवाले (अर्थात् दुर्योधन से सम्मान-प्राप्त कर्ण को तुम भा मानते हो) मूर्ख पुरुष, ये दोनों दूसरों को विश्वास करा देते हैं। निर्धन होकर भी अनेक इच्छाएँ करनेवाला और शक्ति न होने पर भी कांप करनेवाला, दोनों शरीर-शोषक तीक्ष्ण कण्ठक हैं। उद्योगहीन बेकार गृहस्थ और उद्योग-धन्य में लगा हुआ भिच्छुक, ये दोनों अपने धर्म के विरुद्ध काम करने के कारण शोभित नहीं हाते। राजन्, समर्थ प्रभु हाँकर भी क्षमाशील और दानशील दण्ड, दोनों स्वर्ग के ऊपर रहते हैं। न्याय से उपार्जित धन के दो अपव्यय माने गये हैं, एक तो अपात्र को देना और दूसरे सुपात्र को न देना। दान न करनेवाले धनी और तपस्या न करनेवाले गरीब को, गले में भारी ६० शिला मज़बूती से बाँधकर, गहरे पानी में डुबा देना चाहिए। योगाभ्यास करनेवाला संन्यासी और सामने लड़कर युद्ध में मारा गया पुरुष, दोनों सूर्यमण्डल को भेदकर स्वर्ग जाते हैं।

नीति जाननेवाले लोगों ने श्रेष्ठ, मध्यम और अधम, तीन प्रकार की नीतियाँ कही हैं। साम श्रेष्ठ है, भेद और दान मध्यम हैं, दण्ड अर्थात् युद्ध अधम है। उत्तम, मध्यम और अधम, तीन तरह के मनुष्य भा हैं। उन तीनों के साथ उक्त तीन प्रकार का बरताव करना चाहिए। राजन्! भार्या, दास और पुत्र का धन पर अधिकार नहीं होता। इनकी सम्पत्ति पति, मालिक और पिता की होती है। इस कारण आपके रहते राज्य पर दुर्योधन का कुछ अधिकार नहीं है; आप पाण्डवों को आधा राज्य दे सकते हैं। महाराज! पराये धन को हरना, पराई स्त्री को खराब करना और हितचिन्तक मित्र को दूर कर देना, ये तीन दोष सर्वसंहार का कारण होते हैं। काम, क्रोध और लोभ, ये तीनों नरक के द्वार और आत्मविनाश के कारण हैं। इस-लिए इनसे सदा बचना चाहिए। वर देना, राज्यलाभ और पुत्र का जन्म, इन तीनों के बराबर शत्रु को कष्ट से छुड़ाना है। भक्त, उपासक (आश्रय में रहनेवाला) और 'मैं तुम्हारा हूँ' कहनेवाला, इन तीनों शरणागतों को महाविपत्ति के समय भी न छोड़ना चाहिए। राजन्, पण्डित को यह बात जान रखनी चाहिए कि महाबली राजा निम्नलिखित चार पुरुषों को मंत्रा न

बनावे—जो थोड़ी समझवाला हो, जो जल्दी के काम में देर लगानेवाला हो, जो 'करूंगा करूंगा' कहकर समय गँवानेवाला आलसी हो, और जो खुशामदी हो, उससे सलाह न लेना ही भला है। हे तात ! सदा गृहस्थधर्म में अनुरक्त और सम्पत्तिशाली आपके घर में वृद्ध जातिवाला, विपत्ति का सताया कुलीन पुरुष, दरिद्र मित्र और बिना बालबच्चों की बहन, ये चार आदमी सदा रहें। क्योंकि वृद्ध जातिवाला कुल-धर्मों का उपदेश करता है, कुलीन व्यक्ति बच्चों को सदाचार सिखाता है, मित्र हित की बात कहता है और बहन धन की रक्षा करती है। राजन्, इन्द्र के पूछने पर वृहस्पति ने कहा है कि स्वर्गवासी देवताओं का सङ्कल्प, बुद्धिमान तेजशिवियों का प्रभाव, कृतविद्य का विनय और पापकर्म करनेवालों का विनाश तुरन्त फलता है; ये चारों बातें कभी निष्फल नहीं जाती। विधिपूर्वक श्रद्धा से किया हुआ अग्निहोत्र, मौनव्रत, पढ़ना और यज्ञ करना, ये चार बातें अभय देती हैं; किन्तु यथाविधि न करने से ये ही भय का कारण बन जाती हैं।

७०

महाराज ! पिता, माता, अग्नि, आत्मा और गुरु, ये पाँच अग्नि हैं। यत्न के साथ इनकी सेवा करनी चाहिए। देवता, पितर (स्वर्गीय अग्निष्वात्ता आदि), मनुष्य (जीवित पिता-माता आदि), भिक्षुक और अतिथि, इन पाँच की पूजा करने से मनुष्य यशस्वी होता है। महाराज ! आप जहाँ-जहाँ जायेंगे वहाँ-वहाँ मित्र, शत्रु, उदासीन, उपजीव्य (गुरुजन) और उपजीवी (आश्रित अनुचर) ये पाँच आपके साथ जायेंगे। राजन्, मनुष्य के पाँच इन्द्रियाँ हैं; उनमें अगर एक भी इन्द्रिय कुपश्रगामिनी होकर देवों को मौका दे देती है तो उस मनुष्य की प्रज्ञा (समझदारी), फटी हुई मशक से पानी की तरह निकलकर, नष्ट हो जाती है।

राजन् ! ऐश्वर्य की इच्छा रखनेवाले पुरुष को निद्रा, तन्द्रा, डर, क्रोध, आलस्य और दीर्घ-सूत्रता अर्थात् जल्दी के काम में देर लगाने की आदत, ये छः दोष छोड़ देने चाहिए। ज्ञान और हित का उपदेश न करनेवाले आचार्य को, अपढ़ पुरोहित को, रक्षा न करनेवाले राजा को, अप्रिय वचन बोलनेवाली भार्या को, गोपालन के लिए वन में न रहकर बस्ती में रहनेवाले अहीर को और बस्ती में अपना काम न करके वन में रहनेवाले नाई को उसी तरह छोड़ देना चाहिए, जैसे समुद्र में टूटी हुई नाव को लोग छोड़ देते हैं। महाशय ! सत्य, दान आलस्य का त्याग, ईर्ष्या न करना, क्षमा और धैर्य, इन छः गुणों को कभी न छोड़ना चाहिए। राजन् ! नित्य धन की आमदनी, सदा आरोग्य रहना, प्रिया और प्रियवादिनी भार्या, आज्ञा का पालन करनेवाला पुत्र और अर्थकरी विद्या, ये बातें भूलोक में सुख देनेवाली हैं। जो जितेन्द्रिय पुरुष चित्त में नित्य रहनेवाले काम, क्रोध, शोक, मोह, मद और अभिमान, इन छः शत्रुओं को अपने वश में कर लेता है वह कभी पापकर्म ही नहीं करता; फिर उसके लिए अनर्थ की आशङ्का कैसे हो सकती है। असावधान पुरुषों से चोरों की, रोगियों से वैश्यों की, कामी पुरुषों से वेश्याओं की, यजमानों से पुरोहितों की, लड़ने-भगड़ने और मुकद्दमेबाजी करनेवालों से राजा की और मूर्खों

८०

से पण्डितों की जीविका चलती है। इन छः की यही छः जीविकाएँ हैं, सातवीं नहीं है। गाय, खेती, भार्या, सेवा, विद्या और शूद्रसङ्गति, ये छः चीजें तनिक सी लापरवाही होते ही नष्ट हो जाती हैं। राजन्, ये छः आदमी अपने पहले के उपकार करनेवाले को भूल जाते हैं, उसका आदर नहीं करते,—विद्या पढ़ चुकने पर शिष्य अपने गुरु को, व्याह कर लेने पर पुत्र अपनी माता को, भोग कर चुकने पर मर्द औरत को, कार्य सिद्ध हो जाने पर कृतार्थ पुरुष अपनी महा-यता करनेवाले को, पार पहुँचे हुए लोग नाव को और आराम हो जाने पर रोगी वैद्य को छोड़ देते हैं। महाराज! आरोग्य, ऋणी न होना, प्रवास में न रहना, सज्जनों का सङ्ग, अपने विचार से ठीक की गई जीविका और निर्भय निवास, ये छः मनुष्य-लोक के सर्वोपरि सुख हैं। ईर्ष्या करनेवाला, धृष्ट काम करनेवाला, असन्तोषी, क्रोधी, नित्य शङ्कित रहनेवाला और दूसरे के दुकड़े खानेवाला, ये छः आदमी सदा दुःखित रहते हैं।

हे भरतश्रेष्ठ ! स्त्रियाँ (वेश्या आदि), जुआ, शिकार, शराब, कठोर वाणी, कठोर दण्ड और बुरे उपायों से धनोपार्जन, ये सात राजा के दोष कहे गये हैं। इनसे सदा सङ्कट की आशङ्का रहती है। इस कारण राजा को सदा इनसे बचे रहना चाहिए।

ऐसे ही आठ विनाश के कारण कहे हैं। जैसे—जिसका विनाश होनेवाला होता है वह पहले मन में ब्राह्मणों से द्वेष करता है, फिर क्रमशः कार्य्यों से ब्राह्मणों का विरोध करना है, ब्राह्मणों के धन को हर लेता है, ब्राह्मणों की हत्या करना चाहता है, उनकी निन्दा करने में खुश होता है, ब्राह्मणों की प्रशंसा सुनकर चिढ़ता है, कार्य के अवसर पर ब्राह्मणों को नहीं बुलाता और ब्राह्मण यदि कभी कुछ माँगते हैं तो उन्हें डोंट-फटकार बतलाता है। महाराज, बुद्धिमान पुरुष को सदा विचारपूर्वक इन दोषों से बचना चाहिए। राजन्! इसी तरह मित्र का मिलना, बहुत से धन की प्राप्ति, पुत्र को छाती से लगाना, स्त्रीसम्भोग, यथासमय स्त्री से प्रिय वार्तालाप, अपने पक्ष की उन्नति, वाञ्छित वस्तु का लाभ और लोगों में प्रतिष्ठा प्राप्त करना, ये आठ बातें सुख का मारांश हैं। इनसे बढ़कर सुख मनुष्य के लिए नहीं है। हे कुरुकुल-तिलक! समभ-दारी, कुलीनता, इन्द्रियदमन, शास्त्र का ज्ञान, पराक्रम, व्यर्थ बहुत बकबक न करना, यथाशक्ति दान करना और कृतज्ञता, ये आठ गुण मनुष्य के तेज और प्रभाव को बढ़ाते हैं।

राजन्, यह मनुष्य का शरीर एक घर है। इसमें नव द्वार हैं। वात, पित्त, और श्लेष्मा ये तीन शूनियाँ हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ये पाँच विषय साक्षी हैं। इस घर में १०० चेत्रज्ञ जीव रहता है। जो मनुष्य इस शरीरतत्त्व को जानता है वही पण्डित है।

राजन्! मदिरा आदि से मतवाला, अन्य विषय की आसक्ति से असावधान, उन्मत्त, थका हुआ, क्रोध में भरा हुआ, भूखा, जल्दी में पड़ा हुआ, लोभी, भयभीत और कामपीडित, ये दस तरह के मनुष्य धर्म को नहीं जानते। इस कारण पण्डित पुरुष को इन दसों भावों से

दूर रहना चाहिए। हे धृतराष्ट्र, यहाँ पर एक प्राचीन इतिहास कहा जाता है। असुरेन्द्र सुधन्वा ने अपने पुत्र से जो कुछ कहा है वह मैं आपको सुनाता हूँ। जो राजा काम-क्रोध से बचकर सुपात्र को दान करता है, विशेषज्ञ होता है, शास्त्रों का ज्ञाता और कर्तव्य कार्य को शीघ्र कर डालता है, उसे सब लोग अपने लिए प्रमाण मानते हैं। जो राजा दण्ड की मात्रा को जानता है, अवसर पर क्षमा भी करता है, जिनका दोष मालूम हो गया है उन्हें दण्ड देता है और मनुष्यों के मन में अपना विश्वास जमाना जानता है, उसे सब प्रकार से सम्पन्न राजलक्ष्मी भजती है। जो राजा किसी दुर्बल को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखता, बुद्धि लड़ाकर शत्रु के दोष देखता हुआ अवसर की खोज में रहता है, महायसम्पन्न प्रबल पुरुषों से नहीं भिड़ता है और समय पर पराक्रम प्रकट करता है वही धीर है। जो राजा आपत्ति आ पड़ने पर व्यथित नहीं होता, सावधान होकर उद्योग के साथ उसका सामना करने को खड़ा हो जाता है और समय पर दुःख को सहता है, वह कार्य के बोझ का उठाने की शक्ति रखनेवाला महात्मा शत्रुओं को अवश्य जीत सकता है। जो राजा व्यर्थ विदेश नहीं जाता, पापियों से मेल नहीं रखता, पराई स्त्री को नहीं छीनता और दम्भ, मिथ्या व्यवहार, दुष्टता, मद्यपान आदि दुर्गुणों से बचा रहता है वह सदा सुखी है। जो क्रोध से बचकर धर्म-अर्थ-काम का आरम्भ करता है, पृष्ठने पर तत्त्व की मत्त बात कहता है, मित्रों से और स्वजनों से झगड़ा करना पसन्द नहीं करता तथा किसी के अपनी पूजा न करने पर नाराज़ नहीं होता, वही पण्डित है। जो ईर्ष्या नहीं करता वस्त्र दया करता है, दुर्बल हाँकर प्रबल से विरोध नहीं करता, बढ़कर कोई बात नहीं कहता और झगड़े को शान्त करना चाहता है, वही सर्वत्र प्रशंसा पाता है। जो उद्धत भाव प्रकट करनेवाली पाशाक नहीं पहनता, पौरुष में प्रबल होकर भी औरों की निन्दा या अपनी बड़ाई नहीं करता, किसी के बुरे वचनों से क्रोधित होकर भी कटु वचन नहीं कहता, उसी मनुष्य पर सब लोगों का प्यार होता है। जो शान्त वैर को नहीं उभारता, दर्प छोड़कर शान्ति का आश्रय लेता है, अपनी दुर्गति की दशा में भी अनुचित काम नहीं करता, उस आर्य पुरुष की सब लोग बड़ाई करते हैं। जो अपने सुख में बेहद खुशी नहीं दिखाता, दूसरों के दुःख में आनन्द नहीं मनाता और देकर पीछे पछताता नहीं है, वह सत्पुरुष आर्य कहलाता है। देशाचार, समय की गति और जातियों के धर्म आदि विषयों की जानकारी प्राप्त करने में लगा हुआ पुरुष श्रेष्ठ ज्ञानी माना जाता है। वह जहाँ जाता है वहीं नेता बन जाता है। जो चतुर पुरुष मतवाले, उन्मत्त और दुर्जनों से वाद-विवाद नहीं करता; दम्भ (पाखण्ड), मोह, मत्सर, पापकर्म, राजद्रोह, चुगलखोरी और बहुत लोगों से वैर नहीं करता, वही प्रधान पुरुष है। जो मनुष्य नित्य [पवित्रता के साथ] देवताओं की आराधना और अन्य मङ्गलकृत्य करता है, दैनिक पाप के प्रायश्चित्त के लिए पञ्च महायज्ञ करता है और तरह-तरह के लोक-व्यवहार करता है, उसके अभ्युदय को देवता चाहते हैं और उसकी सहायता

१०

भी करते हैं। जो पुरुष बराबरवालों से व्याह, मित्रता, व्यवहार और बातचीत करता है—हीनों से नहीं; और जो गुणों में अपने से विशंपता रखनेवालों को आदर्श मानता है, उसके सब कार्य नीति-सङ्गत होते हैं। जो पुरुष आश्रित पुरुषों को बाँटकर आप थोड़ा खाता और थोड़ा सेता है और काम-काज अधिक करता है, और माँगने पर शत्रु की भी इच्छा पूरी करता है, उम पुरुष-श्रेष्ठ के पास अनर्थ फटकते भी नहीं। जिसकी सलाह और कार्य को और लोग नहीं जान पाते उसका कोई काम ज़रा भी नहीं बिगड़ता; क्योंकि उसका मन्त्र गुप्त रहता है और वह अच्छी तरह उस काम को कर लेता है। जो सबका कल्याण और शान्ति चाहता है, जो सत्यवादी, दयालु, दूसरों को मान देनेवाला और विशुद्ध-हृदय है, वह अपनी जाति में अच्छी खान के बहुमूल्य २० उज्ज्वल रत्न की तरह प्रसन्न और जगमगाता हुआ देख पड़ता है। जो पुरुष अपने बुरे विचार या कार्य पर आप ही लज्जित होता है, दूसरों से छिपे हुए अपने पाप पर जिसे आप ही घृणा होती है, वही सबका गुरु होता है। वह अनन्त तेजवाला, अच्छे हृदय का, सावधान पुरुष संसार में सूर्य की तरह प्रकाशमान होता है।

हे धृतराष्ट्र, राजा पाण्डु जब ब्रह्मशाप से नष्ट हो गये तब वन में उत्पन्न उनके इन्द्रतुल्य पाँचों पुत्रों को यहाँ लाकर आपने ही पाला, इतना बड़ा किया और शास्त्र-शास्त्र की शिक्षा दिलाई। वे इस समय भी आपकी आज्ञा का पालन कर रहे हैं। हे तात, उनके हिस्से का राज्य उन्हें दे दीजिए और पुत्रों-सहित आप भी आनन्द के साथ सुख भोगिए। हे नरेन्द्र, ऐसा करने से न १२३ तो देवता आपकी निन्दा करेंगे और न मनुष्य ही आपको बदनाम करेंगे।

चौंतीसवाँ अध्याय

राजाओं के चरित्र और अन्य नीतियाँ

धृतराष्ट्र ने कहा—भाई विदुर, इस प्रकार नींद न आने पर चिन्ता से पीड़ित मनुष्य को क्या करना चाहिए? तुम धर्म-अर्थ की बातों में निपुण हो। मेरे इस प्रश्न का उत्तर विस्तार के साथ दे। हे विदुर, तुम युधिष्ठिर और कौरवों का हित जिसमें समझते हो, वह विचार करके मुझसे कहो। अपने पहले के अपराध से मुझे कुल का विनाश ही देख पड़ता है। इसी से शङ्कित और व्याकुल होकर मैं यह तुमसे पूछता हूँ। हे चतुर, अब तुम मुझसे युधिष्ठिर का निश्चय अच्छी तरह से कहो।

विदुर ने कहा—जो अपना अनादर न चाहता हो उसे चाहिए कि बिना पूछे किसी से शुभ या अशुभ, प्रिय या अप्रिय, कुछ न कहे। आप पूछते हैं, इससे अब मैं कौरवों के भले के लिए धर्मसङ्गत श्रेयस्कर बातें कहता हूँ—सुनिष्ट। कपटशून्य आदि कर्म, जो बुरे उपायों से सिद्ध होते हैं, उनमें मन न लगाइए। ऐसे ही जो काम युक्ति के साथ उपयुक्त उपायों से

किये जाने पर भी सिद्ध न हों, तो उस असफलता से मन में ग्लानि न लाना चाहिए। प्रयोजनीय कार्यों में पहले प्रयोजन को देखना चाहिए। इस प्रकार विचार और निश्चय करके काम करना चाहिए। कोई काम एकाएक कर बैठना बड़ी मूर्खता है। हर एक काम के प्रयोजन और फल को विचारकर, फिर अपने उद्योग को देखकर धैर्य के साथ चाहे उसे करे और चाहे न करे। जो राजा स्थान, वृद्धि, क्षय, कोष, जनपद और दण्ड के प्रमाण को नहीं जानता, वह राज्यासन पर नहीं ठहर सकता। जो राजा इन बातों के शास्त्रोक्त प्रमाण को जानता और धर्म-अर्थ का ज्ञान रखता है, वह [बहुत दिन तक स्थिर भाव से] राज्य करता है। राज्य पा जाने पर उसे स्थिर जानकर स्वेच्छाचार का बरताव न करना चाहिए। रूप को जैसे थुड़ापा बिगाड़ देता है वैसे ही राजलक्ष्मी को अविनय मिटा देता है। खाने की अच्छी सामग्री में छिपे हुए लोह के काँटे को मछली, अन्न की इच्छा से, निगल जाती है, पोछे से अपने फस जाने को नहीं देखती। इसलिए जो खाने को लायक हो और खा लेने पर जो पच सके तथा जो अन्त को हितकारी हो वही खाना चाहिए; कल्याण और ऐश्वर्य चाहनेवालों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिए। जो कोई वृत्त के कच्चे फल तोड़ लेता है उसे रस तो मिलता ही नहीं, वह बीज से भी हाथ धो बैठता है; वैसे ही जो कोई समय पर पके हुए फल को लेता है वह रस भी पाता है और बीज भी बने रहते हैं, जिनसे फिर फल की आशा होती है। जैसे भौंरा फूलों को बनाये रखकर उनसे रस ले लेता है वैसे ही चतुर राजा प्रजा को सताता या मारता नहीं है, सहज उपाय से धन वसूल कर लेता है। माली की तरह राजा को फूल फूल चुन लेना चाहिए, जड़ न काट डालनी चाहिए। जैसे कोयले बुझानेवाला जड़ से काटकर पेड़ को जला देता है वैसे प्रजा का संहार करना ठीक नहीं। मनुष्य को चाहिए, हर काम में पहले यह सोच ले कि इसके करने से क्या लाभ होगा और न करने से क्या हानि होगी। यों सोचने के बाद चाहे उस काम को करे और चाहे न करे। कुछ ऐसे अप्राप्य मनोरथ होते हैं, जिनकी प्राप्ति के लिए उद्योग ही न करना चाहिए। क्योंकि उनमें किया गया पौरुष व्यर्थ होता है। जैसे मित्रियों नपुंसक पति को नहीं चाहती वैसे ही जिस राजा की प्रसन्नता व्यर्थ और क्रोध निष्फल होता है उसे प्रजा अपना स्वामी बनाये रखना नहीं चाहती। कुछ ऐसे कार्य होते हैं जिनकी जड़ (आरम्भ) छाँटी और फल भारी होता है। प्राज्ञ पुरुष ऐसे कामों में देर नहीं लगाते, भटपट उन्हें आरम्भ कर देते हैं। जो राजा स्नेहपूर्ण सरल दृष्टि से सबको देखता है वह चाहे चुपचाप भी बैठा रहे, प्रजा उस पर अनुराग रखती है। राजा को चाहिए कि वृत्त की तरह खूब फलकर भी (वाणी और आँखों से अनुग्रह दिखाकर भी) फलहीन रहे (आश्रित भृत्यों को धन देकर न बढ़ावे), और फलकर भी (भृत्यों को धन देकर भी) दुरारोढ़ बना रहे (भृत्यों के वश में न हो)। कच्चा होकर भी पका सा देख पड़े (भीतर से निर्बल होने पर भी ऊपर से प्रबलता दिखाता रहे)। कभी जी का हाल न प्रकट करे।

१०

२०

जो राजा दृष्टि, मन, वाणी और कामों से लोगों का तथा भृत्यों को प्रसन्न रखता है उसी से सब प्रसन्न रहते हैं। शिकारी से मृगों की तरह, जिसे देखकर सब डरते हैं वह राजा सारी पृथ्वी का राज्य पाकर भी उससे भ्रष्ट हो जाता है। वह बाप-दादे के राज्य को पाकर भी, अपनी करतूत से उसे उसी तरह चौपट कर देता है जैसे आँधी बादलों को छिन्न-भिन्न कर डालती है। जो राजा पूर्वज मज्जनों की राह पर चलकर उसी ढङ्ग से धर्म का पालन करता है उसके राज्य में पृथ्वी धन-रत्न से परिपूर्ण रहती है और अपनी पैदावार से उसके ऐश्वर्य को बढ़ाती है। वैसे ही जो राजा धर्म को छोड़कर अधर्म का पक्ष लेता है उसका राज्याधिकार, आग में पड़े चमड़े की तरह, सिमट जाता है। बुद्धिमान् राजा लोग शत्रु को राज्य को हानि पहुँचाने का जैसा यत्न करते हैं वैसे ही अपने राज्य की रक्षा के लिए भी उद्योग करते हैं। धर्म से राज्य लेना चाहिए और धर्म से ही उसका पालन करना चाहिए। धर्म से मिली राजलक्ष्मी पाकर मनुष्य कभी उसमें हीन नहीं होता। जैसे पथर से सोना निकाल लिया जाता है वैसे ही बुद्धिमान् राजा को पागल से और अष्टमण्ड वक्रनैवाले बालक से भी मतलब की और अच्छी बात ग्रहण कर लेनी चाहिए। जैसे गिरे पड़े अन्न का खेत से बीनकर जीविका चलानेवाले तपस्वी दाने बीनते रहते हैं वैसे ही धीर पुरुष को सबसे बड़े आदमियों के वचन या उपदेश और सत्कार्य चुनकर ग्रहण कर लेने चाहिए। गायें गन्ध से, ब्राह्मण वेद से, राजा लोग जासूसों से और अन्य लोग आँखों से देखते हैं। दुहने के समय जो गाय उत्पात करती है उसको बहुत क्लेश सहने पड़ते हैं, और जो गाय सहज में दुह लेने देती है उसे कोई कुछ भी कष्ट नहीं देता। जो बिना ताप पहुँचाये ही झुकता है उसे ताप न पहुँचाना चाहिए। जो लकड़ी खुद झुकी हुई हो उसे झुकाना पण्डित का काम नहीं। इस उपमा का ख्याल करके धीर पुरुष को अपने से बलवान् के आगे झुकना चाहिए। जो प्रबल से झुकता है वह बल के अधिष्ठाता देवता इन्द्र को प्रणाम करता है। पशुओं को स्वामी (घास चारा पैदा करके पालनेवाले) मेघ हैं, राजाओं के बन्धु मन्त्री लोग हैं, स्त्रियों का मित्र पति है और वेद ब्राह्मणों के बान्धव हैं। सत्य से धर्म की, अभ्यास से विद्या की, साफ करने से रूप की और सदाचार या अच्छे चरित्र से कुल की रक्षा होती है। परिमाण से अन्न आदि पदार्थ, चलाने और कसरत कराने से घोड़े, बार बार की देखभाल से गायें और मँले कपड़े [सज-धज न करने] से स्त्रियाँ सुरक्षित रहती हैं। मेरी समझ में जो आचार से हीन हैं उनकी श्रेष्ठता का कारण कुल नहीं माना जा सकता। नीच कुल में उत्पन्न पुरुष भी अच्छे चरित्र के कारण प्रशंसा पा सकते हैं। मतलब यह कि सदाचार से हीन पुरुष अच्छे कुल में उत्पन्न होने पर भी निन्दनीय है, और सदाचारी पुरुष नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी प्रशंसनीय है। जो पुरुष पराये धन, रूप, पराक्रम, कुल, सुख, सौभाग्य और सत्कार-प्रतिष्ठा को देखकर ईर्ष्या करता है उसे चिन्ता की अनन्त व्याधि सदा सताया करती है।

अकार्य करने से, कार्य न करने से और इष्टसिद्धि से पहले सलाह के फूट जाने से जो डरता है उसे चाहिए कि मतवाला सा बना देनेवाले—हृदय से कर्तव्याकर्तव्य का विचार हटा देनेवाले—लोभ आदि को आश्रय न दे। जो लोग धमंडो हैं उन्हें विद्या, धन और सहायक परिवार का मद होता है। किन्तु साधु पुरुष इन्हीं तीनों को पाकर नम्रतापूर्वक शान्त भाव से रहते हैं। यदि सज्जन लोग कभी किसी काम के लिए दुर्जनों से प्रार्थना करते हैं तो वे सर्वत्र असाधु कहलाने पर भी अपने को साधु मानते हैं। आत्मज्ञानियों की, सज्जनों की और दुर्जनों की भी गति सज्जन ही हैं। दुर्जन कभी सज्जनों की गति नहीं हैं। सुन्दर वस्त्रवाला पुरुष सभा को, गाय पालनेवाला पुरुष मीठे [और गोरस] की इच्छा को और सवारी जिसके पास है वह राह को जीत लेता है; किन्तु जो अच्छे चरित्रवाला है वह सर्वत्र जय पाता है—सबको जीत लेता है। बात यह है कि शील ही पुरुष का प्रधान गुण है। जिसका शील नष्ट हो जाता है उसका जीवन, ऐश्वर्य और बन्धु आदि सब व्यर्थ हैं। धनी लोग मांस अधिक खाते हैं, मध्यवित्त लोग गोरस का अधिक सेवन करते हैं और दरिद्र लोग तेल को ही श्रेष्ठ समझकर खा लेते हैं। सच तो यह है कि गरीब लोग ही सबसे मजे में सुख का कौर खाते हैं। भूख ही आहार में स्वाद पैदा कर देती है और वह भूख धनी पुरुषों को नहीं लगती, इसलिए वह गरीबों को मिलनेवाला स्वाद अमीरों को दुर्लभ है। प्रायः देखा जाता है कि श्रीमान् लोगों को अजीर्ण मतायें रहता है, उनमें खाने की शक्ति ही नहीं देखी जाती। किन्तु दरिद्र लोग लकड़ी भी खा लें तो पच जाती है। अधम पुरुष जीविका की हानि से, मध्यम पुरुष भौत से और उत्तम पुरुष अपमान से बहुत डरते हैं। विद्या-मद, पानमद आदि से ऐश्वर्य का मद अधिक हानि पहुँचानेवाला है। क्योंकि ऐश्वर्य के मद में मतवाला पुरुष अपने अधःपतन को देखकर भी सचेत नहीं होता। सूर्य आदि ग्रहों से जैसे नक्षत्रों को पीड़ा पहुँचती है (अर्थात् उनके प्रताप से नक्षत्रों की प्रभा क्षीण हो जाती है), वैसे ही अपने विषयों में आसक्त और कावू में न आनेवाली इन्द्रियाँ सब लोगों को कष्ट में डाल देती हैं। स्वभाव से ही मन को अपनी और खींचनेवाली इन्द्रियाँ के वश में जो पुरुष रहता है उसकी आपत्तियाँ, शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के समान, बढ़ती रहती हैं। जो पुरुष पहले अपने मन को जीते बिना मंत्रियों को वश में रखना चाहता है, अथवा मंत्रियों को वश में करके शत्रुओं को जीतना चाहता है, वह अन्त को विवश होकर हीन अवस्था को प्राप्त होता है। मनुष्य को चाहिए कि पहले मन को, मुख्य शत्रु मानकर, अपने वश में करे। फिर वह मंत्रियों और शत्रुओं को अवश्य जीत सकता है। उसका प्रयत्न सफल हुए बिना नहीं रह सकता। जो पुरुष इन्द्रियों को वश में रखता है, मन को जीते हुए है, कुकर्मियों को दण्ड देता है, सोच समझकर काम करता है और धैर्य रखता है, वह अनन्त राज-लक्ष्मी का भोग करता है।

राजन् ! पुरुष का शरीर रथ है, आत्मा सारथी है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं । धीर पुरुष सावधानी के साथ, निपुण रथी की तरह, इन्द्रियरूपी घोड़ों को काबू में रखकर सुखपूर्वक जीवन की यात्रा करता है । काबू में न रहनेवाले चञ्चल घोड़ों की तरह वश में न रहनेवाली इन्द्रियाँ भी रथ और सारथी के समान शरीर और शरीरधारी जीव को सर्वनाश के गढ़े में डालकर नष्ट कर देती हैं । जो मूढ़ पुरुष इन्द्रियों को काबू में नहीं कर सकता वह अनर्थ को अर्थ, अर्थ को अनर्थ और दुःख को सुख समझता है । जो मनुष्य धर्म और अर्थ को छोड़कर इन्द्रियों के वश में रहता है वह लक्ष्मी, प्राण और स्त्रियाँ आदि के वियोग का दुःख शीघ्र ही भोगता है । जो सम्पत्ति का स्वामी होकर इन्द्रियों को वश में नहीं रख सकता वह, इन्द्रियों के वश में न रख सकने के कारण, ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाता है । मन, बुद्धि और इन्द्रियों के वश में रखकर मनुष्य को अपने हृदय में अपने सम्बन्ध में विचार करना चाहिए । मनुष्य आप ही अपना मित्र और आप ही अपना शत्रु होता है, अर्थात् अपनी भलाई या बुराई उसी के हाथ में है । जिसने आत्मविचार से अपने मन को वश में कर लिया है वही अपने आत्मा का मित्र है । मन ही अपना मित्र है, और वही अपना शत्रु है ।

हे भरतश्रेष्ठ, छोटे छेदवाले जाल को जैसे बड़ी मछलियाँ फाड़ डालती हैं वैसे ही ज्ञान को काम और क्रोध मिटा देते हैं । जो पुरुष धर्म और अर्थ को अच्छी तरह देखकर जयसाधक कार्यों का आरंभ करता है वह विजय और ऐश्वर्य पाकर सदा सुख पाता है । जो पुरुष मन के अनुगामी, अपने हृदय में रहनेवाले शत्रुरूप पाँचों इन्द्रियों को जीत बिना अन्य बाहरी शत्रुओं को जीतना चाहता है वह शत्रुओं के वश होकर कष्ट भोगता है । बड़े-बड़े राजा लोग इन्द्रियों को जीतने में असमर्थ होने के कारण राज्य के मोह में, ऐश्वर्य-विलास में, मग्न होकर अपने कर्मों से ही मौत के मुँह में जाते देख पड़ते हैं । जैसे सूखी लकड़ी के साथ गीली लकड़ी भी आग में जलती है, वैसे ही पापियों के साथ में पुण्यात्माओं को भी पापियों के समान दण्ड भोगना पड़ता है । इसलिए पाप करनेवालों का साथ छोड़ देना चाहिए । जो मनुष्य मोह में पड़कर शरीर में रहनेवाले पाँच इन्द्रियरूपी शत्रुओं को कुमार्ग में जाने से नहीं रोकता, उसे चारों ओर से विपत्तियाँ घेर लेती हैं । दुरात्मा पुरुष ईर्ष्याहीनता, सरलता, पवित्रता, सन्तोष, प्रिय वचन बोलना, जितेन्द्रियता, सत्य और शान्ति से सदा दूर रहते हैं । नीच पुरुषों में आत्मज्ञान, शान्त-प्रकृति, सहनशीलता, धर्मेनिष्ठा, ठीक और थोड़ी बात कहना और दान की प्रवृत्ति, ये उत्तम गुण नहीं होते । मूर्ख दुराचारी लोग, निन्दा और रूखे वचनों से, पण्डितों को हानि पहुँचाते हैं । निन्दा और तिरस्कार के वचन कहनेवाला पापभागी होता है और क्षमा करनेवाला पाप से छूट जाता है । दुष्टों का बल हिंसा है, राजाओं का बल दण्ड का विधान है, स्त्रियों का बल सेवा करना है और गुणवानों का बल क्षमा है । राजन्, वाणी का संयम बहुत ही कठिन है । अर्थ-

युक्त, चमत्कारयुक्त बहुत बोलना भी सहज नहीं है। राजन्, मधुर और अच्छे वचन बोलने से कल्याण प्राप्त होता है। वाणी कठिन और कड़वी हो तो घोर अनर्थ हो जाते हैं। वाणी का घाव भर जाता और कुल्हाड़ी का काटा हुआ फिर पनप आता है, किन्तु निन्दित दुर्वचन-वाणी का घाव नहीं भरता। कर्णिकार, नालीक, नाराच आदि बाण शरीर से निकाल लिये जा सकते हैं, परन्तु हृदय में चुभे हुए वाणी के बाण किसी तरह नहीं निकलते, हृदय में खटका करते हैं। मुँह से निकले हुए वचनबाण जिसके कलंजे में लगते हैं वह दिन-रात शोक से व्याकुल रहता है। वे बाण औरों के मर्मस्थल पर ही चोट करते हैं। उन वाक्य-वाणी को पण्डित पुरुष औरों पर न छोड़े। देवता लोग जिसका पराभव चाहते हैं उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर देते हैं तब उसे नीच कर्म सूझने लगते हैं। जब बुद्धि कलुषित हो जाती है और विनाश सिर पर आ जाता है तब अनुचित काम उचित सा जान पड़ता है और वह किसी तरह हृदय से नहीं हटता। हे भरतश्रेष्ठ, आपके पुत्रों को उसी बुद्धि ने घेर रक्खा है; वे पाण्डवों से विरोध बढ़ाना ही अच्छा समझते हैं। परन्तु आपको इन लोगों का पता नहीं लगता। हे धृतराष्ट्र, शिष्य की तरह आपकी आज्ञा माननेवाले महात्मा युधिष्ठिर त्रिलोकी का राज्य करने की योग्यता रखते हैं और उनमें वे सब लक्षण हैं। आप उन्हें उनका राज्य दे दीजिए। राज्य में पहले उनका हिस्सा है। वे धर्म-अर्थ के ज्ञाता और तेज तथा बुद्धि में आपके सब पुत्रों से बढ़कर हैं। वे धर्मात्मा दयालु स्वभाव से, क्रूर प्रकृति न होने के कारण और आपके बड़प्पन का खयाल करके, अनेक क्लेशों को सह रहे हैं; युद्ध नहीं छोड़ते।

पैंतीसवाँ अध्याय

विरोचन और सुधन्वा का झगड़ा

धृतराष्ट्र ने कहा—तुम्हारे मुँह से धर्मार्थयुक्त वचन बारम्बार सुनकर भी मुझे तृप्ति नहीं होती। तुम्हारी बातें विचित्र सी जान पड़ती हैं। मैं और सुनना चाहता हूँ—कहो।

विदुर ने कहा—सब तीर्थों में जाकर स्नान करना और सब प्राणियों के साथ सच्चा सरल व्यवहार करना समान है, बल्कि सरल व्यवहार तीर्थयात्रा से भी बढ़कर है। इसलिए आप अपने पुत्र पाण्डवों के साथ सरल व्यवहार कीजिए। इससे यहाँ कीर्ति प्राप्त होगी और मरने पर स्वर्गलोक मिलेगा। मनुष्य की शुभ कीर्ति जब तक इस लोक में रहती है तब तक वह स्वर्गलोक में सुख भोगता है। यहाँ पर मैं एक इतिहास कहता हूँ, जिसमें केशिनी के लिए विरोचन और सुधन्वा के विवाद का वर्णन है।

केशिनी नाम की कन्या अद्वितीय रूपवती थी। उसने विशेष योग्य पति पाने की इच्छा से स्वयं अपना पति चुनना पसंद किया। दैत्यवंश में उत्पन्न विरोचन ने उस कन्या को पाने की

इच्छा से उसके पाम जाकर कहा—सुन्दरी, मुझे तुम स्वीकार कर लो। केशिनी ने दैत्यराज से कहा—हे विरोचन, ब्राह्मण श्रंष्ट हैं या दैत्य? तुमसे पहले के प्रार्थी सुधन्वा क्यों न मेरे पति हों? विरोचन ने कहा—केशिनी, प्रजापति से उत्पन्न हम दैत्य ही श्रेष्ठ हैं। ये सब लोक हमारे ही हैं। देवता कौन हैं और ब्राह्मण कौन होते हैं? केशिनी ने कहा—मैं यहीं पर तुम दोनों प्रार्थियों की प्रतीक्षा करूंगी। तुम यहीं ठहरा, सबेरे सुधन्वा भी आवेंगे।

१० तुम दोनों को एक साथ देखकर मैं निश्चय करूंगी।

विरोचन ने कहा—भद्रे, मैं तुम्हारे कहने के अनुसार काम करूंगा। कल तुम मुझे सुधन्वा के साथ सबेरे देखोगी। विदुर कहते हैं कि रात वीन गई, सूर्योदय हुआ। उस समय

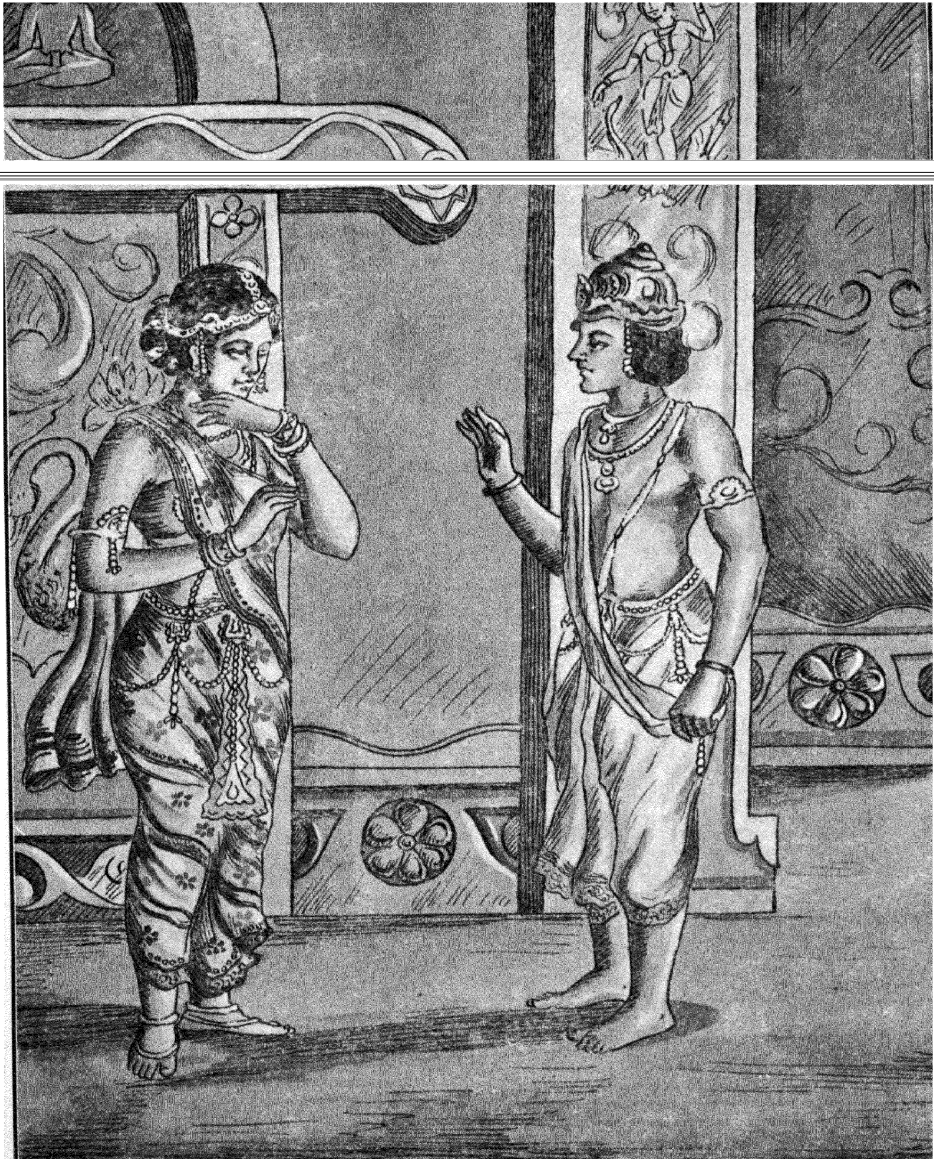


सुधन्वा भी वहाँ आ गये। विरोचन और केशिनी के पाम सुधन्वा के पहुँचने पर केशिनी ने उठकर उनका सत्कार किया। अब सुधन्वा ने विरोचन से कहा—मैं तुम्हारे इस सुवर्णमय आसन को केवल स्पर्श से स्वीकार किये लेता हूँ किन्तु तुम्हारे साथ

एक-आसन पर बैठ नहीं सकता। विरोचन ने कहा—ठीक है, तुमको तो लकड़ी का या कुश का आसन चाहिए। सुधन्वा, तुम मेरे साथ आसन पर नहीं बैठ सकते।

सुधन्वा ने कहा—हे विरोचन, पिता और पुत्र एक साथ बैठ सकते हैं। देव, दैत्य, क्षत्रिय, दो वैश्य, दो शूद्र, और दो वृद्ध वरावर एक साथ बैठ सकते हैं; अन्य अर्थात् उच्च नीच नहीं बैठ सकते। तुम्हारे पिता प्रह्लाद मुझसे नीचे आसन पर बैठते हैं। तुम अभी बालक हो और घर में सुख से पले हो, इसी से इन बातों के बारे में कुछ नहीं समझते।

विरोचन ने कहा—हे सुधन्वा, मैं दैत्यों के सब सुवर्ण, गोधन, घोड़े आदि संपत्ति की बाज़ी लगाता हूँ। हम-तुम दोनों चलकर इस बारे में जानकारों से पूछें। सुधन्वा ने कहा—सुवर्ण, गाय, घोड़े आदि सब संपत्ति तुम्हारी ही बनी रहे, मुझे न चाहिए। आओ, हम तुम प्रार्थों की बाज़ी लगाकर जानकारों से इस बारे में पूछें। विरोचन ने कहा—ब्रह्मन्, प्राण-पण करके हम दोनों किससे यह प्रश्न पूछेंगे? मुझे देवताओं और मनुष्यों पर विश्वास या श्रद्धा



केशिनी ने दैत्यराज से कहा—हे विरोचन, ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या दैत्य ?—पृ० १२६६

नहीं है। सुधन्वा ने कहा—हम तुम दोनों ही, प्राणों की बाज़ी लगाकर, तुम्हारे पिता प्रह्लाद के पास चलेंगे। मुझे विश्वास है, धर्मात्मा प्रह्लाद पुत्र के लिए भी झूठ न बोलेंगे। २०

विदुर कहते हैं—इस प्रकार क्रोधपरिपूर्ण ब्राह्मण और दैत्य दोनों, प्राणों की बाज़ी लगाकर, प्रह्लाद के पास गये। उन्हें देखकर प्रह्लाद ने सोचा कि कभी एक साथ न रहनेवाले ये दोनों, कुछ साँप की तरह, एक राह से एक साथ क्यों आ रहे हैं। यों सोचकर

उन्होंने अपने पुत्र से कहा—विरोचन, तुम दोनों पहले कभी एक साथ नहीं रहे, इस समय एक साथ क्यों फिर रहे हो? मैं पूछता हूँ कि क्या सुधन्वा के साथ तुम्हारी मित्रता हो गई है? विरोचन ने कहा—सुधन्वा से मेरी मित्रता नहीं हुई। पिताजी, हममें कौन श्रेष्ठ है, इस प्रश्न के संबंध में प्राणों की बाज़ी लगाकर आपके पास



हम दोनों आये हैं। आप सच बता दीजिए कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है? झूठ न कहिएगा। प्रह्लाद ने कहा—हे सुधन्वा, ब्राह्मण होने से आप हमारे पृजनीय हैं। इसलिए आपकी पूजा के वास्ते जल, मिष्ठान्न और सफेद मोटी गाय मँगाता हूँ।

सुधन्वा ने कहा—जल, मिष्ठान्न आदि सब मैं तुम्हारे इस प्रश्न-निर्णय से ही पा जाऊँगा। अब तुम मेरे प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर पहले दे दो कि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या तुम्हारे पुत्र विरोचन? प्रह्लाद ने कहा—ब्रह्मन्, मेरे यह एक ही पुत्र है और आप भी साक्षात् मेरे सामने खड़े हैं। आपके और पुत्र के विवाद में ऐसे प्रश्न का उत्तर मैं कैसे दे सकता हूँ? सुधन्वा ने कहा—हे प्रह्लाद, गाय और अन्य सब धन अपने पुत्र को दो। हम दोनों के प्रश्न का ठीक निर्णय कर दो। यही तुम्हारा कर्तव्य है। प्रह्लाद ने पूछा—हे सुधन्वा! जो पुरुष सच नहीं बोलता, झूठा निर्णय करता है, उस मिथ्यावादी को कौन सा दुःख मिलता है? सुधन्वा ने कहा—रात को सौतवाली स्त्री, जुए में हारा हुआ आदमी और बोझ से पीड़ित पुरुष जिस दुःख को पाता है वही दुःख अनुचित निर्णय करनेवाले को मिलता है। नगर में बन्द पड़ा हुआ, द्वार के बाहर भूखा पड़ा हुआ और शत्रुओं से घिरा हुआ आदमी जो दुःख और कष्ट पाता है वही कष्ट मिथ्या साक्षी देनेवाले और मिथ्या निर्णय करनेवाले को भोगना पड़ता है। हे दैत्य-राज, पशु के लिए झूठ बोलने से पाँच पीढ़ियाँ, गाय के लिए झूठ बोलने से दस पीढ़ियाँ, ३०

घोड़े के लिए झूठ बोलने से सौ पीढ़ियाँ और मनुष्य के लिए झूठ बोलने से हजार पीढ़ियाँ स्वर्ग से भ्रष्ट होती हैं। सुवर्ण के लिए झूठ बोलने से पैदा हुई और पैदा होनेवाली सब पीढ़ियाँ स्वर्ग से भ्रष्ट होती हैं। भूमि के लिए झूठ बोलने से सर्वनाश हो जाता है। इस कारण भूमि के लिए कभी झूठ न बोलना चाहिए।

प्रह्लाद ने कहा—हे विरोचन ! सुधन्वा के पिता अङ्गिरा मुझसे, सुधन्वा की माता तुम्हारी माता से और सुधन्वा तुमसे श्रेष्ठ हैं। इस कारण, इस विवाद में, तुम सुधन्वा से हार गये। इस समय सुधन्वा के हाथ में तुम्हारे प्राण हैं। विरोचन से यों कहकर सुधन्वा से प्रह्लाद ने कहा—ब्रह्मन्, मैं चाहता हूँ कि आप विरोचन को प्राणदान करें।

सुधन्वा ने कहा—हे दैत्यराज, तुमने धर्म का पक्ष लेकर सत्य कहा, पुत्र का पक्ष लेकर झूठ नहीं बोला, इससे प्रसन्न होकर मैं तुमको तुम्हारा पुत्र देता हूँ। मैं विरोचन को



प्राणदान करता हूँ। केशिनी इन्हीं की भार्या हो और ये मेरे आगे केशिनी के पैर धावें। [विवाह में दूल्हा-दुल्हिन एक दूसरे के पैरों की हल्दी लगाकर धाते हैं, यह प्राचीन परिपाटी है।]

विदुर कहते हैं—महाराज, इसलिए भूमि के वास्ते आप झूठ न बोलें और मिथ्या निर्णय न करें। जो पुरुष भूमि के लिए झूठ बोलता है उसका नाश हो जाता है। आप भी पुत्र का पक्ष लेकर भूमि के लिए अन्याय न कीजिए, नहीं तो पुत्र, परिवार, मन्त्रों आदि सहित आपका सत्यानाश हो जायगा। देवता पशुपालकों की तरह लाठी लेकर किसी की रक्षा नहीं करते। वे जिसकी रक्षा

४० करना चाहते हैं उसे अच्छी बुद्धि दे देते हैं। मनुष्य जैसे-जैसे कल्याणदायक कामों में मन लगाता है वैसे-वैसे उसके सब प्रयोजन सिद्ध होते हैं। जो मायावी पुरुष छल-कपट करता है उसके कष्ट को वेद नहीं हटा सकते। जैसे पङ्क निकलने पर पत्तियों के बच्चे घोंसला छोड़कर उड़ जाते हैं वैसे ही वेद भी अन्तकाल में उस कपटी को छोड़ जाते हैं। महाराज, शास्त्र में लिखा है कि मद्यपान, कलह, बहुत आदमियों से वैर, स्त्री और पति में मनमुटाव, जाति-भाइयों में फूट, राजद्रोह, स्त्री-पुरुष में वैर और दूषित मार्ग, इनसे सदा बचना चाहिए। इसके सिवा

हस्तरेखा देखनेवाले को, पहले के चार वनिये को, शलाका (रमल) फेंककर सगुन आदि बतानेवाले धूर्त को, वैद्य को, शत्रु को, मित्र को और कथिक भड़ुए आदि को कभी गवाह न बनाना चाहिए । अग्निहोत्र, मौनव्रत, अध्ययन और यज्ञ, ये चार काम विधिपूर्वक करने से अभय देते हैं; किन्तु विधि के विपरीत करने से ये ही काम भय का कारण बन जाते हैं । किसी के घर में आग लगानेवाला, व्यभिचार से उत्पन्न व्यक्ति (कुण्ड) का अन्न खानेवाला, सोमरस बेचनेवाला, शस्त्र बनानेवाला, ज्योतिषी या चुगलखोर, मित्रद्रोह करनेवाला, परम्प्री-गमन करनेवाला, गर्भ गिरानेवाला, गुरुशय्यागामी, मदिरा पीनेवाला ब्राह्मण, अत्यन्त उग्र स्वभाववाला, अपवित्र हृदय और शरीरवाला, नास्तिक (परलोक आदि को न माननेवाला), वंदों की निन्दा करनेवाला, गाँव का पुरोहित, गायत्री को जप से विमुख या यथासमय जिसका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ वह, खेती करनेवाला और समर्थ होकर भी रक्षा की इच्छा से शरण में आये हुए पुरुष की हत्या करनेवाला, ये सब ब्रह्महत्या करनेवाले के समान पापी माने गये हैं । आग के उजले से रूपवाली वस्तु देखी जाती है, चरित्र से भला आदमी पहचाना जाता है, बरताव से सज्जन पुरुष जाना जाता है, भय के समय शूर परखा जाता है, अर्थ-कष्ट के समय धीर की और घोर आपत्ति के समय मित्र और शत्रु की परीक्षा होती है । बुढ़ापा रूप को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, ईर्ष्या धर्म के आचरण को, क्रोध लक्ष्मी को, नीचमङ्ग स्वभाव को, काम लज्जा को और अभिमान मनुष्य को ही मिटा देता है । [क्रोधी के संपत्ति, उग्र के मित्र, क्रूर के स्त्री, आरामतलब के विद्या, कामी के लज्जा और आलसी के लक्ष्मी नहीं होती । किन्तु जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं है उसको पास कुछ नहीं रहता ।] भले कार्य करने से लक्ष्मी मिलती है, प्रगल्भता से बढ़ती है, होशियारी से उसकी जड़ जमती है और संयम से वह स्थिर होती है । प्रज्ञा, कुलीनता, इन्द्रिय-दमन, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, कम बोलना, यथाशक्ति दान की प्रवृत्ति और कृतज्ञता, इन आठ गुणों से मनुष्य का चरित्र उज्ज्वल होता है । महाराज, इन सब गुणों से बढ़कर एक गुण यह है कि राजा सबका सत्कार करे । इस गुण के साथ ही और सब गुण भी रहते हैं । राजन्, इस लोक में आगे कहे गये आठ गुण स्वर्ग के चिह्न हैं । इनमें से चार तो सज्जनों के स्वाभाविक गुण हैं और चार को सीखना पड़ता है । यज्ञ, दान की प्रवृत्ति, अध्ययन और तप, ये स्वाभाविक गुण हैं और जितेन्द्रियता, सत्य, सरलता और कोमलता, इनका अभ्यास करना पड़ता है । यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और जितेन्द्रियता, ये आठ बातें धर्म का मार्ग हैं । इनमें से पहले की चार बातें तो दिखाने के लिए पाखण्डी भी करते हैं; पर पीछे की चार बातें सच्चे महात्माओं के सिवा औरों में नहीं पाई जाती ।

५०

जिसमें बूढ़े (अनुभवी) लोग नहीं हैं वह सभा ही नहीं है, जो धर्म का उपदेश नहीं करते वे बूढ़े ही नहीं हैं, जिसमें सत्य नहीं वह धर्म ही नहीं है और जिसमें छल का लेश भी

- है वह सत्य ही नहीं है। सत्य, रूप (विनय का भाव), शास्त्र का ज्ञान, विद्या, कुल, शील, बल, धन, शूरता और युक्तियुक्त बात करना—ये गुणस्वर्ग के हैं। पाप करनेवाला यहाँ बदनामी उठाकर अनिष्ट फल भोगता है। ऐसे ही पुण्य करनेवाला प्रशंसा का पात्र बनकर शुभ फल प्राप्त करता है। बार-बार पाप करने से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, इसलिए पाप नहीं करना चाहिए। जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है वह एक के बाद दूसरा पापकर्म ही करता है। ऐसे ही पुण्यकर्म बार-बार करने से बुद्धि निर्मल होती है। बुद्धि तीक्ष्ण होने से मनुष्य एक के बाद दूसरा पुण्यकर्म ही करता है। पुण्यात्मा पुरुष पवित्र कीर्ति का भागी होकर पवित्र लोक को जाता है। इसलिए एकाग्र होकर पुण्यकार्य करना चाहिए। ईर्ष्या करनेवाला, मर्मस्थल पर चोट पहुँचानेवाला, अप्रिय वचन बोलनेवाला, वैर करनेवाला और शठ पुरुष पाप करने के कारण शीघ्र ही किसी धार संकट में पड़ जाता है। जो ईर्ष्या नहीं करता, समझदार है, वह सदा अच्छे कर्म करने के कारण सङ्कट और कष्ट से बचा रहता है, सुखी रहता है, और सब उसे प्यार करते हैं। जो पुरुष बुद्धिमानों से समझदारी की बातें सीखता है वही पण्डित है। प्राज्ञ पुरुष धर्म और अर्थ पाकर अपने सुख को बढ़ा सकता है। दिन को वह काम करना चाहिए जिससे रात को सुख से सोवे और साल के आठ महीने में वह काम करना चाहिए जिससे वर्षा के चार महीने अच्छी तरह कटे। पहली अवस्था में वह करना चाहिए जिससे बुढ़ापा सुख से कटे और जन्म भर वह काम करना चाहिए जिससे परलोक में सद्गति हो। पच जाने पर भोजन की, जवानी बीत जाने पर भार्या की, समर जीत लेने पर शूर की और सिद्धि पा जाने पर तपस्वी की प्रशंसा होती है। अधर्म से प्राप्त किये गये धन के द्वारा जो दोष ढका जाता है, वह तो खुला ही रहता है, बल्कि और छिद्र भी खुल जाते हैं। आत्मज्ञानियों का शासक गुरु है, दुष्टों का शासक राजा है, किन्तु जो लोग गुप्त रूप से पाप करते हैं उनको दण्ड देनेवाले साक्षात् यमराज ही हैं। श्रृषि, नदी, कुल और महात्माओं की उत्पत्ति तथा स्त्रियों के कुचरित्र का हाल नहीं जाना जा सकता। राजन् ! जो सुशील राजा ब्राह्मणों का सत्कार करता है, जातिवालों को धन आदि देकर सन्तुष्ट रखता है, सरल और सुशील है, वह बहुत समय तक राज्य करता है। शूर, विद्वान् और सेवा के दङ्ग को जाननेवाला, ये तीन आदमी पृथ्वी पर संपत्ति प्राप्त कर सकते हैं। बुद्धि के कार्य श्रेष्ठ होते हैं, बाहुबल के काम मध्यम होते हैं, जाँघ का काम नीच है और बोक ढोने का काम महा अधम है। आप दुर्योधन, शकुनि, मूढ़ दुःशासन और कर्ण को राज्य का मुखिया बनाकर भलाई की इच्छा कैसे करते हैं ? हे भरतश्रेष्ठ, पाण्डवों में सब गुण हैं। वे आपको पिता की तरह मानते हैं। आप भी उनके साथ वही व्यवहार कीजिए जो अपने पुत्रों से करते हैं।

छत्तीसवाँ अध्याय

आत्रेय मुनि और साध्यगण का संवाद

विदुर ने कहा—यहाँ पर मैं आपको आत्रेय और साध्यगण के संवाद का इतिहास सुनाता हूँ। पूर्व समय में व्रतधारी महर्षि आत्रेय परमहंस परिव्राजक का रूप रक्खे हुए विचर रहे थे। साध्य नाम के देवताओं ने बुद्धिमान् आत्रेय से मिलकर पूछा—हे महर्षिश्रेष्ठ, हम साध्य नाम के देवता हैं। आपको देखकर हम आपके बारे में कुछ अनुमान नहीं कर पाते। हमें तो आप शास्त्र-ज्ञान से युक्त, धीर और बुद्धिमान् जान पड़ते हैं। आप हमसे विद्वानों के योग्य उदार बातें कहिए।

परिव्राजक ने कहा—हे देवताओं, मैंने गुरुमुख से सुना है कि धैर्य, शान्ति, सत्यधर्म का आचरण करना और हृदय के सन्देह को हटाकर, प्रिय और अप्रिय को समान मानना, ये बातें साधुओं की हैं। जो कोई गालियाँ दे तो आप भी उसे गालियाँ न दे। सहनेवाले का क्रोध ही गाली देनेवाले या निन्दा करनेवाले को भस्म कर देता है और सहनेवाला गाली देनेवाले के पुण्य को हर लेता है। न किसी को कटु वचन कहे, न किसी का अनादर करे, न मित्र-द्रोह करे, न नीच की सेवा करे, न अभिमानी हो, न चरित्र से हीन हो और न किसी को रूखी



चुभती हुई बातें कहकर कष्ट पहुँचावे। रूखी और चुभती हुई बातें दूसरे के मर्मस्थल में, हड्डियों में और हृदय में खटकती हैं और जलन पैदा कर देती हैं। इसलिए धर्मात्मा पुरुष को लगती हुई रूखी बात मुँह से न निकालनी चाहिए। मर्मस्थल में चोट पहुँचानेवाली, कटोर, रूखी बातें कहनेवाले और वाक्य-बाण से मनुष्यों को व्यथित करनेवाले आदमी को महा अभंगा समझना चाहिए। उसके मुँह में दरिद्र या मृत्यु का निवास रहता है। जो कोई अग्नि और सूर्य के समान प्रज्वलित तीक्ष्ण वाक्य-बाण मारकर पीड़ा पहुँचावे तो बुद्धिमान् पुरुष को समझना चाहिए कि वह उसका उपकार कर रहा है। मनुष्य सज्जन या दुर्जन, तपस्वी या चोर, जिसका सङ्ग करता है वैसा ही हो जाता है; जैसे उजले कपड़े को जिस रङ्ग से रँगो वही रङ्ग उस पर

- १० चढ़ जाता है। जो पुरुष न घुरे वचन कहता है और न किसी से कहलाता है, जो न किसी को मारता है और न स्वयं मार खाता है, जो अपने ऊपर प्रहार करनेवाले पर भी प्रहार करना नहीं चाहता, उसका देवगण भी आदर करते हैं। बोलने से चुप रहना अच्छा है। सत्य बोलना उससे अच्छा है। सत्य अगर प्रिय हो तो और भी अच्छा। और जो सत्य और प्रिय धर्ममङ्गल हो तो सबसे श्रेष्ठ है। मनुष्य जैसे लोगों के पास बैठता है, जैसी का सङ्ग करता है और जैसा होना चाहता है वैसा ही होता है। मनुष्य जिस-जिस विषय से बचता जाता है उस-उससे होनेवाले दुःख से भी छुटकारा पा जाता है। इस प्रकार सबसे निवृत्त अर्थान् विरक्त होने पर रत्नों भर भी दुःख नहीं रह जाता। इस अवस्था में न कोई उसे जीत सकता है और न वह किसी को जीतना चाहता है। न वह किसी से वैर करता है और न किसी को मारना चाहता है। वह निन्दा और प्रशंसा को समान समझता है। न प्रसन्न होता है और न शोक करता है। जो सबका कल्याण चाहता है, किसी का बुरा नहीं चेतता, सत्य बोलता है, कोमलप्रकृति और जितेन्द्रिय है, उसे उत्तम पुरुष जानना चाहिए। जो व्यर्थ किसी को झूठा दिलासा नहीं देता, वह चीज दे देता है जिसके देने का वादा करता है और शत्रु को ऊपर चोट करने के अवसरों को जानता है, वह मध्यम पुरुष है। जो पुरुष मङ्गलमय पदार्थ में श्रद्धा और गुरुजन पर विश्वास नहीं रखता; जो मित्रों को दूर कर देता है; जिसको वश में रखना कठिन है; मार खाकर भी जो क्रोध के मारे सीधा नहीं होता; जो स्वजनों से भी चौकन्ना रहता है और जो कृतघ्न है, वह अधम है। मनुष्य को सदा उत्तम पुरुषों से मिलना चाहिए। अवसर पड़ने पर समय के अनुसार मध्यम पुरुषों से भी मिलना आवश्यक होता है। किन्तु
- २० जिसे अपना अभ्युदय अभीष्ट हो वह अधमों का साथ कभी न करे। मनुष्य असत् लोगों के बल, बुद्धि, पौरुष और उद्योग से सम्पत्ति और राज्य पा सकता है, किन्तु कीर्ति या श्रेष्ठ कुलों के प्रशंसनीय चरित्र को नहीं पा सकता।

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, धर्मार्थ के ज्ञाता शास्त्रज्ञान-संपन्न देवगण महाकुल की इच्छा किया करते हैं। इसलिए मैं तुमसे पूछता हूँ कि महाकुल कौन होते हैं? उनके लक्षण क्या हैं?

विदुर ने कहा—राजन् ! तप (कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि), जितेन्द्रियता, वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ, विवाह (श्रेष्ठ सम्बन्ध), सच्चरित्रता और अन्नदान की प्रवृत्ति, ये गुण महाकुल के लक्षण हैं। जिनका चरित्र नीतिभ्रष्ट नहीं होता, जिनका जन्म व्यभिचार से नहीं हुआ, जो अपनी प्रसन्नता के लिए धर्म करते हैं, जो अपने कुल की कीर्ति को सदा बढ़ाना ही चाहते हैं और जो मिथ्या नहीं बोलते उनके घराने महाकुल हैं। महाराज ! यज्ञ न करने से, नीच कुल में विवाह करने से, वेद न पढ़ने से, धर्म का उल्लंघन करने से, देवता का द्रव्य ले लेने से, ब्राह्मण का धन हर लेने से, ब्राह्मणों का अनादर और निन्दा करने से, और दूसरे की धरोहर मार लेने

से कुलों की श्रेष्ठता जाती रहती है। जो कुल विद्या, धन और परिवार से पूर्ण होने पर भी चरित्र से भ्रष्ट हैं उनकी गिनती श्रेष्ठ कुलों में नहीं हो सकती। जिस कुल में धन कम है, पर चरित्र धर्मसङ्गत और अच्छा है वह श्रेष्ठ समझा जाता है और उसे महायश प्राप्त होता है। धन-दौलत तो आती भी है और चली भी जाती है, इसलिए यत्पूर्वक चरित्र की रक्षा करनी चाहिए। [निर्धन होने पर भी धर्मात्मा सच्चरित्र पुरुष सौ धनियों से श्रेष्ठ है। जिसका धर्म और चरित्र बिगड़ गया है वही वास्तव में कङ्काल से बढ़कर है।] चरित्र से हीन कुल विद्या, पशु, इग्री-भरी खेती और सम्पत्ति से फलते-फूलते नहीं हैं। पितृलोक में पितर मनाते हैं कि हमारे कुल में कोई वैर करनेवाला राजा, परायण धन को हरनेवाला मन्त्री, मित्र-द्रोही, कपटी, भूठा और पितर-देवता-अतिथि को दिये बिना भोजन कर लेनेवाला न उत्पन्न हो। [क्योंकि ये सब कुल का विनाश करते हैं।] ब्राह्मणों से द्वेष रखनेवाला, ब्राह्मण की हत्या करनेवाला और खेती न करनेवाला हमारे समाज में न सम्मिलित हो। सज्जनों के यहाँ बैठने का ठण (आसन), भूमि, जल और मीठे वचनों की कमी कभी नहीं होती। पुण्यात्मा मज्जन लोग इस साधारण सामग्री से ही श्रद्धापूर्वक सबका सत्कार करते हैं। राजन्, जिनकी लकड़ी से रथ बनता है वे वृत्त छोटे होने पर भी बोझ सह सकते हैं; और पेड़ बड़े होने पर भी बोझ को नहीं सह सकते। इसी प्रकार कुलीन पुरुष जैसे बोझ उठा सकते हैं—सहनशील हो सकते हैं—वैसे और लोग नहीं हो सकते। जिसके क्रोध से डर हो और शङ्कित रहकर जिस मित्र के पास रहना हो वह मित्र नहीं है। जिस पर मा-बाप का सा भरोसा किया जा सके वही मन्त्रा मित्र है, और सब कहने भर के मित्र हैं। को संबंध न रहने पर भी जो मित्रता का व्यवहार करता है वही सम्बन्धी, मित्र, गति और आश्रय है। जिसका चित्त चञ्चल है, जो बूढ़ों के पास नहीं बैठता-उठता, जो भ्रम में पड़कर डाँवाँडोल रहता है, उसके मित्रों का होना अनिश्चित है। जैसे हंस सूखे सरोवर को छोड़ जाते हैं वैसे ही चञ्चल चित्तवाले, मूढ़ और इन्द्रियों के अनुगामी पुरुष को अर्थसिद्धि छोड़ जाती है। ४० दुर्जनों की बुद्धि मेघ की तरह अस्थिर होती है। वे अकस्मात् क्रोध कर बैठते हैं और अकारण प्रसन्नता प्रकट करते हैं। मित्रों से सत्कार और सहायता पाकर, कृतार्थ होकर, भी जो लोग मित्रों का हित नहीं करते उन कृतघ्नों को मरने पर मांस-भोजी कुत्ते-सियार आदि भी नहीं खाते। मित्र चाहे धनी हो और चाहे निर्धन, उससे कुछ माँगना न चाहिए। क्योंकि माँगने से मित्रता का महत्त्व घट जाता है। चिन्ता से रूप, बल और ज्ञान नष्ट होता है; व्याधि उत्पन्न होती है। जो नहीं मिल सकता वह केवल उसके लिए शोक करने से नहीं पाया जा सकता; व्यर्थ ही शोक से शरीर सूखता है और शत्रुओं को प्रसन्नता होती है। इसलिए आप शोक न कीजिए।

राजन्! मनुष्य जन्म लेते हैं और फिर मरते भी हैं, घटते हैं और फिर बढ़ते भी हैं, आप दूसरों से माँगते हैं और फिर दूसरे भी उनसे माँगते हैं, खुद शोक करते हैं और फिर

दूसरे भी उनके आगे शोक करते हैं। सुख और दुःख, क्षय और वृद्धि, लाभ और हानि, जीवन और मरण, ये आते-जाते रहते हैं। इसलिए धीर पुरुष को इनके लिए हर्ष या शोक न करना चाहिए। मन सहित चक्षु आदि छः ज्ञानेन्द्रियाँ चञ्चल हैं। इनमें से जो प्रबल होती है उसी के द्वारा मनुष्य-बुद्धि वैसे ही नष्ट होती है जैसे फूटे घड़े से पानी बहता है।

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, शरीर में हँथो हुई आग के समान धर्म से विश्व राजा युधिष्ठिर के साथ मैंने मिथ्याव्यवहार (बेईमानी) किया है। मुझे जान पड़ता है, वे युद्ध ठानकर मेरे मन्दबुद्धि पुत्रों का नाश कर डालेंगे। सभी बातें घबराहट पैदा करने-वाली हैं। मेरा मन भी सदा घबराया करता है। इसलिए तुम मुझे वह उपदेश करो,
५० जिससे यह घबराहट मिटे और शान्ति मिले।

विदुर ने कहा—हे निष्पाप! विश्वास, तप, इन्द्रियदमन और लोभ के त्याग (अर्थात् सन्तोष) के सिवा आपको शान्ति मिलने का कोई उपाय मुझे नहीं देख पड़ता। ज्ञान से डर चला जाता है। तप से ब्रह्मज्ञान मिलता है। गुरु की सेवा से ज्ञान बढ़ता है। चित की सब वृत्तियों को रोकने से शान्ति प्राप्त होती है। मोक्ष की इच्छा रखनेवाले महात्मा पुरुष न दान के पुण्य का आश्रय लेते हैं और न वेदोक्त यज्ञ आदि का अनुष्ठान करते हैं। वे तो रागद्वेष को छोड़कर इस पृथ्वी पर विचरते हैं। अच्छे पढ़ने-लिखने का, धर्मयुद्ध करने का, पुण्यकर्म करने का और श्रेष्ठ तपस्या करने का फल यह होता है कि अन्त में मनुष्य को सुख और समृद्धि मिलती है। भेदभाव से भरे हुए लोग बढ़िया कोमल पल्लव पर लेटकर भी सुख की नींद नहीं सोते; उन्हें छियाँ या मागध सूत बन्दीजन की स्तुतियाँ नहीं भाँतीं। जिनके मन में भेदभाव है वे धर्म का आचरण नहीं करते, सुख भी नहीं पाते; न उन्हें गौरव मिलता है और न शान्ति रुचती है। उनसे हित की बात कहो तो वह उन्हें अच्छी नहीं लगती। जो नहीं मिला उसको प्राप्त और जो मिल गया है उसकी रक्षा वे नहीं कर सकते। भेदभाव के भक्त विनाश की ओर ही अग्रसर होते हैं। जैसे गाँयों में दूध का होना, ब्राह्मण में तप का होना, स्त्रियों में चञ्चलता का होना सम्भव है वैसे ही जाति-भाइयों से भय की आशङ्का करनी चाहिए। पाण्डव लोग बाल्या-वस्था में आपके पास रहकर पले हैं और अब आपके ही अन्याय से वन में रहकर क्लेश सह रहे हैं। इममें सन्देह नहीं कि वे सर्वोत्तम आदर्श सज्जन हैं। सूक्ष्म, बहुत से और समान डोरे वस्त्ररूप से फैलकर बहुत होने के कारण बहुत से बोझों और कड़ाइयों का सहते हैं। वही हाल सज्जनों का है। हे धृतराष्ट्र, जलती हुई लकड़ियाँ अलग अलग होने से धुआँ देने लगती हैं और एक में मिलने से जल उठती हैं। वही हाल जातिवालों और भाइयों का है। जो लोग ब्राह्मणों, स्त्रियों, जातिवालों और पशुओं के ऊपर शूरता दिखाते हैं वे, वृत्त से पके हुए फल की तरह, नीचे गिर जाते हैं—उनका अधःपात अनिवार्य है। एक वृत्त चाहे जितना बड़ा और

अच्छी तरह जड़ जमाये हुए हो, हवा उसे बलपूर्वक गिराकर दमभर में तोड़-फोड़ सकती है। किन्तु जो बहुत से वृक्ष एक जगह लगे हुए होते हैं वे एक दूसरे के सहारे खड़े रहकर बड़ी बड़ी आंधियों को भी झेल जाते हैं। हवा जैसे एक वृक्ष को सहज में उखाड़ सकती है वैसे ही जो मनुष्य अकेला है वह चाहे जैसा गुणी हो, शत्रु उसे हराना सहज समझते हैं। महाराज, जाति-वाले और भाई परस्पर आश्रय पाकर, परस्पर सहायता करके, सरोवर में कमल की तरह बढ़ते हैं। ब्राह्मण, गाय, बच्चे, जातिभाई, स्त्री, शरणागत और अन्नदाता, ये अवश्य हैं। बहुत बड़ा अपराध करने पर भी इनका त्याग कर देना ही सबसे बड़ा और कड़ा दण्ड है। धन और आराग्य के बिना मनुष्य में कोई गुण नहीं रहता। रोगी को तो मुर्दे के बराबर माना है। आपका भला हो। आप रोग उत्पन्न करनेवाले इस चिन्ता-जागरण को छोड़िए। बिना व्याधि के ही उपजा हुआ, कटु, सिर में पीड़ा उत्पन्न करनेवाला, पापजनक, कठोर, तीक्ष्ण, गर्म, सज्जनों के पीने की और दुर्जनों के न पीने की चीज़ जो क्रोध है उसे पी जाइए। क्षमा धारण करने से शान्ति पाइएगा। रोग से पीड़ित मनुष्यों को पुत्र, पशु आदि जीवन के फल सुखदायक नहीं होते। वे किसी विषय के तत्त्व को भी नहीं प्राप्त कर सकते, क्योंकि उनमें इष्ट-अनिष्ट का विवेक नहीं रह जाता। रोगी पुरुष सदा दुःखी रहते हैं। वे धन, भोग (स्त्रीसङ्ग) आदि के सुख का अनुभव भी नहीं कर सकते। [इसलिए आप रोग उत्पन्न करनेवाले सन्ताप और जागरण को छोड़ दीजिए।] पहले सभा में कपटघूत के समय, द्रौपदी को जीत लेने पर, मैंने आपसे कहा था कि दुर्योधन को रोकिए; जुए को बुरा समझकर पण्डित लोग उससे बचते हैं। परन्तु आपने उस समय मेरा कहा नहीं किया। वह बल ही नहीं जिसका विरोध दुर्बल पुरुष भी कर सके। धर्म की गति सूक्ष्म है, इसलिए जिसमें थोड़ा भी धर्म हो वह काम शीघ्रता के साथ करना चाहिए। क्रूर पुरुष को मिली हुई लक्ष्मी विनाश का कारण बन जाती है और शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। और, कोमल-प्रकृति चतुर पुरुष को मिली हुई लक्ष्मी पुत्र-पौत्र आदि तक स्थिर बनी रहती है। इसलिए आपके पुत्र पाण्डवों की और पाण्डव लोग आपके पुत्रों की रक्षा करें। कौरव और पाण्डव एक दूसरे के शत्रु और मित्र को अपना शत्रु और मित्र समझें और हिलमिलकर सब काम करें। इस ढङ्ग पर चलकर, सुखी और समृद्धिशाली होकर, आपके पुत्र जीवित रहें। महाराज, आप कौरवों के मुखिया हैं। कुरुवंश के सब लोग आपके अधीन हैं। इसलिए आप वनवास के कष्टों से पीड़ित बालक पाण्डवों को आश्रय देकर अपने यश की रक्षा कीजिए। हे कौरव ! आप पाण्डवों से मेल कर लीजिए, शत्रुओं को मौका न दीजिए। हे नरदेव, पाण्डव सत्य का आश्रय लिये हुए हैं। अब आप दुर्योधन को भी युद्ध से रोक करके शान्ति के मार्ग में लगाइए।

७०

७४

सैंतीसवाँ अध्याय

विदुर का हित के अनेक वचन कहकर धृतराष्ट्र को समझाना

विदुर कहते हैं—राजन्, स्वायंभुव मनु ने नीचे लिखे सत्रह मूर्खों को नरकगामी कहा है; जो शासन न माननेवाले को या शासन के अयोग्य को उपदेश करता है, जो थोड़े लाभ में मन्तुष्ट हो जाता है, जो अपनी कल्याण-कामना से मर्यादा का उल्लंघन करनेवाले शत्रु को भजता है, जो भित्तियों की रक्षा करता है (अर्थात् जो अपने सुख के लिए शत्रु की सेवा करता है), जो अच्छे कुल में पैदा होकर अनुचित कार्य करता है, जो अयाच्य (जिससे याचना न करनी चाहिए उस) से याचना करता है, जो अपनी बड़ाई आप करता है, जो अश्रद्धा रखनेवाले से अपना हाल कहता है, जो दुर्बल होकर बलवान् से वैर करता है, जो ससुर होकर बहू से दिव्यगी करता है, जो बहू और समधी आदि की सहायता से सङ्कट से छूटकर फिर उन्हीं से अपना मान चाहता है, जो न चाहने योग्य चीज़ को चाहता है, जो पराये खेत में बीज बोता है, जो औरों के आगे स्त्री की अत्यन्त निन्दा करता है, जो पाकर भी यह कहता है कि मुझे याद नहीं है, जो किसी को उसके माँगने पर कुछ देकर अपनी बड़ाई करता है और जो दुष्टदुर्जनों को समझाकर शान्त बनाना चाहता है या असाधु को साधु प्रमाणित करता है। पाश हाथ में लिये यमराज के दूत इन सत्रहों को यमपुरी को ले जाते हैं। ये मानों आकाश में घूसे मारना चाहते हैं न झुक सकनेवाले इन्द्र के धनुष को झुकाना चाहते हैं, पकड़ी न जाने योग्य सूर्य-चन्द्र आदि की किरणों को पकड़ना चाहते हैं। राजन्, जिसके साथ जिमका जैसा व्यवहार हो उसके साथ उसे वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। यही धर्म है। कपटी से कपटता का और सीधे से सरलता का व्यवहार करना ही भला है। बुढ़ापा रूप को, आशा (वृष्णा) धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, ईर्ष्या धर्म-कर्म को, कामविकास लज्जा को, नीचों का सङ्ग चरित्र को, क्रोध लक्ष्मी को और अभिमान सभी बातों को मिटा देता है।

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, सब वेदों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष की लिखी है। फिर किम कारण सब लोग उतने दिन तक नहीं जीने पाते ?

विदुर ने कहा—राजन् ! अभिमान, अतिवाद, महापाप, क्रोध, पेट भरने की और स्त्री-भोग की ही चिन्ता में लगे रहना और मित्रदोह, ये छः तीक्ष्ण तलवारें मनुष्य की आयु को चीर करती हैं। महाराज, यही छः काम मनुष्यों को मारते हैं, मौत नहीं मारती। यह ११ समझकर आप कल्याण की राह पकड़िए। राजन् ! जो अपने ऊपर विश्वास करनेवाले की स्त्री को ताकता है, जो गुरुजन की शय्या पर गमन करता है, जो ब्राह्मण शूद्र जाति की स्त्री से व्याह करता है, जो ब्राह्मण मद्य पीता है, जो ब्राह्मणों को आज्ञा देता है या उनकी जीविका हर लेता है

अथवा उनसे नौकर का काम लेंता है और जो शरणागत की हत्या करता है, यं मव ब्रह्महत्या करनेवाले के समान पापी हैं। इनका संसर्ग होने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए। यह वेद का विधान है। हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! जो मित्रों का कहा मानता है, नीति को जानता है, उदार है, देवता-पितर-अतिथि आदि को देकर बचा हुआ अन्न खाता है, मन-वाणी-काया से किसी की हिसा नहीं करता, अनर्थ पैदा करनेवाले कामों से अलग रहने के कारण व्याकुल नहीं होता और जो कृतज्ञ, सच्चा तथा दयालु है, वह स्वर्गलोक को जाता है।

राजन् ! सदा प्रिय वचन बोलनेवाले पुरुष सुलभ हैं, किन्तु अप्रिय होने पर भी हित की बात कहनेवाला और सुननेवाला दोनों दुर्लभ हैं। जो पुरुष धर्म का खयाल रखकर, स्वामी के प्रिय-अप्रिय की परवा न करके, अप्रिय होने पर भी हित की बात कहता है, वही राजा का सच्चा सहायक है। महाराज ! कुल की रक्षा के लिए एक पुरुष को, गाँव की रक्षा के लिए कुल को, नगर की रक्षा के लिए गाँव को और अपनी रक्षा के लिए सारी पृथ्वी को छोड़ देना चाहिए। आपत्काल के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। मित्रियों की रक्षा के लिए धन भी खर्च कर डालना चाहिए; किन्तु अपनी रक्षा के लिए धन और स्त्री दोनों का मोह न करना चाहिए। पूर्व समय के लोगों ने अनुभव करके देखा है कि जुआ मनुष्यों में वैर-भाव पैदा कर देता है। इसलिए बुद्धिमान पुरुष दिल्गी के लिए भी जुआ न खेले। मैंने सभा में भी कहा था कि यह जुआ खेलना अच्छा नहीं है; परन्तु रोगी को जैसे पथ्य नहीं रुचता वैसे ही वह मेरा कहना आपको नहीं रुचा। कौओं से विचित्र पङ्खवाले मोरों का हारना और कौरवों से पाण्डवों का परास्त होना एक ही बात है। आप सिंहों को छोड़कर सियारों को पालते हैं। इसके लिए समय पर आपको शोक करना पड़ेगा।

२०

राजन् ! जो पुरुष अपने भक्त, हितचिन्तक सेवकों पर कभी क्रोध नहीं करते उन पर सेवक भी विश्वास करते हैं और आपत्ति के समय उनको नहीं छोड़ते। राजा को चाहिए कि सेवकों की वृत्ति छीनकर राज्य और सम्पत्ति बढ़ाने की इच्छा न करे। यदि वह सेवकों को धोखा देता है तो वे भोगों से हीन होकर विरोधा बन जाते हैं और पहले स्नेह का व्यवहार करनेवाले वे सलाहकर उसे छोड़ देते हैं। राजा को चाहिए कि पहले यह निश्चय कर ले कि मैं क्या कर सकता हूँ और क्या नहीं कर सकता। फिर वह आय-व्यय के अनुसार सेवकों की वृत्ति नियत कर दे। उसके बाद योग्य सहायकों का संग्रह करे; क्योंकि सब दुष्कर काम सहायकों के बल से ही किये जा सकते हैं। जो सेवक, स्वामी के अभिप्राय को जानकर, आलस्य-रहित भाव से सब काम करता है, हित की बात कहने में नहीं हिचकता, अनुराग रखनेवाला तथा सक्षरित्र है और आत्मा की तरह स्वामी की शक्ति को जानता है, उसके साथ राजा को सदा दया और स्नेह का व्यवहार करना चाहिए। जो सेवक आज्ञा देने पर उस प्रभु की बात

पर निरादर का भाव दिखाता है, या जवाब देता है अपने बुद्धिमान होने का अभिमान रखता और प्रतिकूल वचन कहता है, ऐसे कर्मचारी को बहुत जल्द अलग कर देना चाहिए। अभिमान-शून्य, मर्दाना, शांघ्र काम करनेवाला, दयालु, दर्शनीय आकारवाला, औरों के उभारने से न फूटने-वाला, आराग्य और उदार प्रिय वचन बोलनेवाला, इन आठ गुणों से युक्त दूत प्रशंसनीय समझा जाता है। चतुर पुरुष को चाहिए कि विश्राम करके सायंकाल को गैर के घर न जाय, रात को छिपकर चतूरे पर न रहे, राजा की चहेती स्त्री को न चाहे। बुरे आदमियों के साथ मिलकर सलाह करनेवाले की सलाह में शरीक न हो। ऐसे आदमी से यह भी न कहे कि मैं तुम पर विश्राम नहीं करता; बल्कि मुझे कुछ काम है, यों बहाना करके वहाँ से हट जाय। लज्जाशील, राजा, व्यभिचारिणी, राजभृत्य, पुत्र, भाई, बच्चेवाली विधवा, सैनिक और जिसका ऐश्वर्य नष्ट हो गया है वह आदमी, इतनों से धन का व्यवहार न करना चाहिए।

प्रज्ञा, कुलीनता, शास्त्र का ज्ञान, जितेन्द्रियता, पराक्रम, थोड़ा बोलना, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता, इन आठ गुणों से मनुष्य का तेज और कीर्ति बढ़ती है। महाराज, ये सब गुण एक ही गुण के आश्रित रहते हैं यदि राजा सबका स्तकार करता है तो ये सब गुण उसमें विद्यमान होते हैं।

स्नान करनेवाले पुरुष में बल, रूप, स्वरशुद्धि, वर्णशुद्धि, स्पर्श, गन्ध, विशुद्धता, शोभा या सम्पत्ति, सुकुमारता और श्रेष्ठ म्त्रियाँ, ये दस गुण रहते हैं। परिमित भोजन करनेवाले को आराग्य, आयु, बल, सुख और निर्दोष-पुत्र मिलते हैं और पैटू कहकर लोग उसे ताना नहीं देते। परिमित भोजन करने में ये छः गुण हैं। निकम्मे, बहुत खानेवाले, सबके शत्रु, मायावी (धूर्त), क्रूर, देश-काल को न जाननेवाले और उग्र वेपवाले पुरुषों को अपने घर में न रखना चाहिए। अत्यन्त कष्ट के समय भी कृपण, कटु वचन बोलनेवाले या परसन्तापी, शास्त्रज्ञानहीन, वनवासी, धूर्त, जो मान के योग्य नहीं है उसका मान करनेवाले, निष्ठुर, वैर करनेवाले और कृतघ्न से कुछ भी न माँगना चाहिए। आततायी, अत्यन्त असावधान, नित्य मिथ्यावादी, दृढ़ भक्ति से रहित, स्नेहशून्य और अपने को बहुत समझनेवाले की सेवा कभी न करनी चाहिए। ये छः नराधम माने गये हैं। धन-प्राप्ति सहायक की अपेक्षा रखती है और सहायक भी धन-प्राप्ति की अपेक्षा रखते हैं। ये दोनों एक दूसरे के आश्रित हैं। दूसरे की सहायता के बिना एक की सिद्धि नहीं होती। गृहस्थ को चाहिए कि पुत्रों को उत्पन्न करके, उन्हें ऋण के बोझ से बचाकर, किसी जीविका में लगा दे, और इसी तरह लड़कियों का ब्याह अच्छी जगह अच्छे वर के साथ कर दे, फिर वानप्रस्थी होकर मुनिवृत्ति ग्रहण करे।

राजा और समर्थ पुरुष को वही काम करना चाहिए जो अपने लिए सुखदायक और सब प्राणियों के लिए हितकारी हो। गंसा करने से ही सब कार्य सिद्ध होते हैं। जिसमें वृद्धि, प्रभाव, तेज, बल, उद्योग और निश्चय है उसके लिए जीविका की कमी कैसे हो सकती है ?

राजन्, देवताओं सहित इन्द्र भी जिनसे वैर करके व्यथा और कष्ट के सिवा और कुछ नहीं पा सकते उन पाण्डवों से युद्ध ठानने में जो दोष उत्पन्न होंगे उनको आप जा लगाकर देखिए। एक तो पुत्रों (पाण्डवों और कौरवों) में परस्पर विवाद होगा, दूसरे नित्य चित्त में घबराहट बनी रहेगी, तीसरे यश का नाश होगा और चौथे शत्रुओं को आनन्द होगा। हे देवेन्द्र-तुल्य ! जैसे आकाशमण्डल में तिरछे आकार से धूमकेतु का उदय होना से संसार को डर होता है वैसे ही भीष्म, आप, द्रोणाचार्य और राजा युधिष्ठिर का कोप भयङ्कर है। इन लोगों का कोप बढ़कर सारे संसार को उजाड़ सकता है। राजन् ! आपके सौ पुत्र, पाँचों पाण्डव और कर्ण मिलकर सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का शासन कर सकते हैं। महाराज, दुर्योधन आदि आपके पुत्र वन के समान हैं और पाण्डव सिंहमदृश हैं। आप सिंहमहिष वन का अथवा सिंहों का नष्ट करने की चेष्टा न कीजिए; क्योंकि सिंह वन की और वन सिंह की रक्षा करता है वन के बिना सिंह नहीं रह सकते और सिंहों के बिना वन नहीं बच सकता। आपके पापी बेटे पाण्डवों के गुणों पर दृष्टि नहीं डालते, बल्कि उनके दोष की ही खोज में लगे रहते हैं। जो ऐश्वर्य या धन प्राप्त करना चाहता है उसे पहले धर्म का ही आचरण करना चाहिए। जैसे भूर्गलोक से ही अमृत मिलता है वैसे धर्म से ही अर्थ की प्राप्ति होती है। जिसका मन पाप से हटकर कल्याण की राह में—शुभ कार्यों में—लगा गया है वह संसार की प्रकृति और विकृति को अच्छी तरह जान गया है। जो यथासमय धर्म, अर्थ और काम, तीनों का सेवन करता है वह इस लोक और परलोक में धर्म, अर्थ और काम तीनों को पाता है। जो मनुष्य क्रोध और हर्ष के वेग को संभाल लेता है और आपत्ति के समय मोह को नहीं प्राप्त होता, वही राजलक्ष्मी का अधिकारी होता है। मनुष्यों का बल पाँच तरह का है। एक बाहुबल, दूसरा अच्छे मन्त्रों का बल, तीसरा धन का बल, चौथा बाप-दादे से चला आया हुआ सहज स्वाभाविक कुल का बल और पाँचवाँ बुद्धि का बल है। ये चारों बल बुद्धि-बल से ही प्राप्त होते हैं, इसलिए बुद्धि का बल ही प्रधान बल है। जो मनुष्य अपना भारी अपकार कर सकता है उससे वैर करके यह न भूल जाना चाहिए कि हम तो उससे बहुत दूर पर हैं। कौन बुद्धिमान् पुरुष स्त्री, राजा, साँप, स्वाध्यायपाठ, प्रभु, शत्रु, भोग और जीवन पर विश्वास करेगा ?

५०

राजन् ! जिसको बुद्धि के बाणों की चोट लगी है उसे वैद्य, दवा, होम, मन्त्र, मङ्गलकार्य अथवा अथर्वणवेद में कही गई रोगनाशक जड़ी-बूटियाँ या सुसिद्ध प्रयोग, कोई भी अच्छा नहीं कर सकता। मनुष्य को साँप, अग्नि, सिंह और जाति-भाई का अनादर नहीं करना चाहिए। ये बड़े तेजस्वी होते हैं; पल भर में विनाश कर सकते हैं। जगन् में आग महा-तेजस्वी है और वह काठ के भीतर छिपी रहती है। जब तक कोई रगड़ता नहीं है तब तक वह शान्त रहती है। किन्तु जब कोई मथकर उस आग को प्रज्वलित करता है तब वह अपने तेज ६०

से उम लकड़ी को और साथ ही सारे वन को भस्म कर डालती है। राजन्, लकड़ी में छिपी हुई आग की तरह सत्कुल में उत्पन्न तेजस्वी पाण्डव भी इस समय शान्त भाव से स्थित हैं। उन्हें छंडकर प्रज्वलित करना ठीक नहीं। आप और आपके पुत्र लता के तुल्य हैं और पाण्डव लोग साखू के पेड़ के समान हैं। महावृत्त का आश्रय पायें बिना लता बढ़ नहीं सकती। मैं कह चुका हूँ कि आपके पुत्र वन हैं और पाण्डव सिंह। सिंहों के बिना वन का नाश हो जाता है ६४ और वन के बिना सिंह भी नहीं रह सकते।

अड़तीसवाँ अध्याय

विदुर का फिर समझाना

विदुर कहते हैं—महाराज, जब कोई वृद्ध किसी जवान के पास जाता है तब जवान के प्राण ऊपर को निकल जाते हैं। वह जवान प्रत्युत्थान और अभिवादन करने से फिर उन प्राणों को पाता है। जो अभ्यागत मञ्जन आवे उसे बैठने को आसन दे, जल लाकर उसके पैर धोवे, फिर उससे कुशल के बारे में पूछकर अपना हाल कहे। इसके बाद भोजन देकर उसका सत्कार करें। वेदपाठी मन्त्रज्ञ ब्राह्मण अथवा अतिथि जिसके घर में लोभ, डर या कृपणता देखकर, जल, मिष्ठान्न, गाय आदि नहीं ग्रहण करता, उसका जीवन आर्यपुरुषों की राय में व्यर्थ ही है। किन्तु वैद्य, शस्त्र बनानेवाला, जिसका ब्रह्मचर्य भ्रष्ट हो गया हो, चोर, क्रूर, मदिरा पीनेवाला, गर्भहत्याकारी, शस्त्रविद्या से जीविका चलानेवाला, और वेद विक्रय करनेवाला, इतने ब्राह्मण जल देने के योग्य नहीं होते। तथापि अतिथि की हालत में इनका भी प्रेम के साथ सत्कार करना चाहिए। नमक, पका हुआ अन्न, दही, दूध, मदिरा, तेल, घी, तिल, मांस, फल-मूल, साग, लाल कपड़ा, सब प्रकार के गन्धद्रव्य और गुड़, इतनी चीजें बेचना ब्राह्मण के लिए निषिद्ध है। जो क्रोध से हीन, मिट्टी और सोने को समान समझनेवाला, शोकहीन, मेल और वैर से रहित, निन्दा या प्रशंसा न करनेवाला, प्रिय या अप्रिय का त्यागी और उदासीन है, वही भिक्षुक (अतिथि) है। जो जङ्गली अन्न, कन्दमूल, इंगूदी, साग आदि खाकर अपना निर्वाह करता है, जितेन्द्रिय है, अग्निहोत्र करता है, वनवासी है और अतिथिसेवा में नहीं चूकता वही पुण्यात्मा तपस्वी श्रेष्ठ माना गया है। बुद्धिमान को हानि पहुँचाकर अपने को दूर समझकर निश्चिन्त न हो। बुद्धिमान के हाथ बड़ें लम्बे हैं। वह जो सताया जाता है तो अवश्य सतानेवाले का नाश कर देता है। अविश्वासयोग्य पुरुष पर विश्वास न करें, और विश्वासयोग्य पुरुष पर भी अत्यन्त विश्वास न करें। जिस पर विश्वास किया गया है उससे होनेवाला भय जड़ तक काट देता है। मनुष्य को चाहिए कि ईर्ष्या न करे, स्त्रियों की रक्षा करता रहे—उन्हें अन्य पुरुषों से छिपाये रहे, सब हिस्सेदारों का हिस्सा दे दे, प्रिय वचन बोले, स्त्रियों

के निकट मनोहर भाव से रहे और उनसे मीठी वाणी बोले, किन्तु उनके अधीन न हो जाय । १०
स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी और घर की शोभा हैं । इसलिए उनका आदर और विशेष रूप से उनकी रक्षा करते रहना चाहिए । अन्तःपुर की रक्षा का काम पिता को और रसोई का काम माता को सौंप दे । गोरक्षा का काम अपने समान पुरुष अर्थात् भाई आदि को दे और खेती की देखरेख आप खुद करें । सेवकों को बनिज-वैपार का काम दे और ब्राह्मणों की सेवा का काम पुत्रों से करावे । जल से अग्नि, ब्राह्मण से क्षत्रिय और पत्थर से लोहा पैदा हुआ है । इनका तेज सर्वत्र काम करता है किन्तु अपने उत्पत्तिस्थान में शान्त हो जाता है । मत्कुल में उत्पन्न, अग्नि के समान तेजस्वी, क्षमाशील और आकार से कोई भाव प्रकट न करनेवाले सज्जन लकड़ी के भीतर आग की तरह छिपे और शान्त रहते हैं ।

जिस राजा के मन्त्र (सलाह) को भीतरी या बाहरी कोई आदमी नहीं जानता और जो जासूसों के द्वारा सब ओर की खबर—शत्रु के मन्त्र—को देखता-सुनता रहता है वह बहुत दिन तक राज्य करता है । जो करना हो उसे पहले से न कहे, जो कर चुके उसी को प्रकट होने दे । इस प्रकार धर्म-अर्थ के काम करने से मन्त्र नहीं फूटता । पहाड़ के ऊपर जाकर, महल में या गुप्त स्थान में बैठकर, वन में अथवा एकान्त में सलाह करनी चाहिए । हे भरतश्रेष्ठ, ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें शत्रु को किसी तरह सलाह की खबर न हो । मूर्ख या पण्डित होने पर अपने मन को वश में न रखनेवाले मित्र से भी सलाह छिपानी चाहिए । राजा को चाहिए कि परीक्षा किये बिना किसी को अपना मन्त्री न बनावे । ऐश्वर्य की प्राप्ति और मन्त्र की रक्षा मन्त्री पर ही निर्भर है । श्रेष्ठ राजा वही है जिसके धर्मार्थ-काम-सम्बन्धी कार्यों को, कर चुकने पर, सभासद लोग जान पाते हैं । जो राजा मन्त्र को गुप्त रखता है उसका कार्य अवश्य सिद्ध होता है । २०

जो राजा मोहवश होकर निन्दित काम करना चाहता है । वह उन कामों के बिगड़ने पर अपने जीवन से भी हाथ धो बैठता है । भले काम करने से ही सुख मिलता है । ऐसे काम न करने से मनुष्य को पछताना पड़ता है । जैसे वेद पढ़े बिना ब्राह्मण श्राद्ध का अधिकारी नहीं होता वैसे ही जो राजा सन्धि-विग्रह-यान-आसन-द्वैधीभाव-समावस्थान नाम के छः गुणों को नहीं जानता वह मन्त्र (सलाह) सुनने का अधिकारी नहीं होता । समता, बढ़ती और क्षीणता को जाननेवाला, ऊपर लिखे छः गुणों के प्रयोग में प्रवीण, और जिसके शंखस्वभाव का पता शत्रुओं को नहीं लगता वह, राजा स्वार्थी भाव से शासन करता है । जिसका क्रोध या प्रसन्नता निष्फल नहीं जाती, जो आप सब कामों को जाँचता और करता है, जो आत्मविश्वास रखता और खजाने को अपने हाथ में लेता है उसे पृथ्वी अपार ऐश्वर्य देती है । राजा को छत्र और कीर्ति से प्रसन्न रहना चाहिए । सेवकों को भोग-धन-दान आदि से प्रसन्न करते रहना उचित है । अकेले ही सब हड़प करने की प्रवृत्ति अच्छी नहीं ।

ब्राह्मण को ब्राह्मण, स्त्री को पति, मन्त्रों को राजा और राजा को भी राजा ही जानता है। वश में किये गये वध-योग्य शत्रु को कभी न छोड़ना चाहिए। जब तक आप निर्वल रहे तब तक प्रबल शत्रु से दबता रहे, किन्तु प्रबल होने पर उसे अवश्य मार डालें; क्योंकि यदि उस समय वह मारा नहीं गया तो उससे शीघ्र कोई महाभय उपस्थित होने की आशङ्का रहती है। देवता, ३० ब्राह्मण, राजा, वृद्ध, बालक और बीमार पर उत्पन्न क्रोध को सदा दबा देना चाहिए। निरर्थक कलह करना मूढ़ों का काम है, इसलिए समझदार आदमी को उससे सदा बचते रहना चाहिए। ऐसा करनेवाला इस लोक में कीर्ति का भागी होता है, उसे किसी अनर्थ का सामना भी नहीं करना पड़ता। जिसकी प्रसन्नता और क्रोध दोनों निष्फल हैं उसे प्रजा वैसे ही स्वामी नहीं बनाना चाहती, जैसे नपुंसक पुरुष को स्त्रियाँ अपना पति बनाना नहीं पसंद करतीं। बुद्धिमानी से धनलाभ या मूर्खता से गरीबी होना अनिश्चित है। लोक-परम्परा के वृत्तान्त को प्राज्ञ पुरुष के सिवा दूसरा नहीं जानता। जो मूढ़ है वह विद्या, शील, अवस्था, बुद्धि, धन और कुल में बड़े-बूढ़े लोगों का सदा अनादर करता है। जो पुरुष नीच चरित्रवाला, मूर्ख, ईर्ष्या करनेवाला, अधर्मी, क्रोधी और दुष्ट कठोर वचन बोलनेवाला है उसके ऊपर शीघ्र ही अनर्थों की भरमार होती है। भगड़ा न करना, दान, समय को न गँवाना और अच्छी मीठी बोली, ये गुण शत्रु को भी मित्र बना लेंते हैं। भगड़ा न करनेवाला, कार्यचतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान्, सरल व्यवहार करने-वाला व्यक्ति निर्धन होने पर भी भृत्य मित्र आदि सहायकों से हीन नहीं होता। धृति, शम, दम, पवित्रता, दया, मधुर वक्ता और मित्रों से द्रोह न करना, इन सात बातों से लक्ष्मी बढ़ती है। जो राजा बौटकर नहीं भोग करता तथा जो दुष्ट, कृतघ्न और निर्लज्ज है उसे छोड़ देना चाहिए। जो मनुष्य आप दीर्घ होकर निर्दीप स्वजन को कुपित करता है वह, जिसके घर में साँप हो ४० उसकी तरह, रात को मुख से नहीं सोता। जिनके नाराज होने से जीविका और कल्याण की हानि हो उनकी प्रसन्नता के लिए देवताओं की सी उपासना करनी चाहिए। जो कार्य या सम्पत्ति स्त्री, मतवाले, पतित और नीच के हाथ में सौंप दी जाती है वह संशय में पड़ जाती है। जहाँ का शासन स्त्री, कपटी या बालक के हाथ में है वहाँ के लोग, नदी में शिला की तरह, विवश होकर विपत्ति के समुद्र में डूबते हैं। जो भृत्यगण प्रयोजन भर में लग रहते हैं, अधिक में हाथ डालना नहीं चाहते, वे समझदार हैं क्योंकि अधिक बढ़ने से भगड़ा पैदा हो जाता है। धूर्त, चारण और वेश्याएँ जिसकी बड़ाई करती हैं वह बहुत दिन नहीं जी सकता।

राजन्, आपने महातंजम्बी पाण्डवों को छोड़कर दुर्योधन को सब साम्राज्य दे रक्खा है। किन्तु आप शीघ्र ही ऐश्वर्य के मद में मूढ़ हो रहे दुर्योधन को, त्रिभुवन के राज्य से राजा बलि की ४७ तरह, राजसिंहासन से भ्रष्ट होते देखिएगा।

उनतालीसवाँ अध्याय

विदुर और धृतराष्ट्र की और भी बातचीत

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर ! ऐश्वर्य का होना या न होना, जय और पराजय प्राप्त करना मनुष्य के हाथ की बात नहीं है । विधाता ने उसे सूत में बँधी कठपुतली की तरह दैव के वश में डाल रक्खा है । तुम फिर इस विषय की बातें कहो, मैं मावधान होकर सुनने को तैयार हूँ ।

विदुर ने कहा—राजन्, अममय में कोई बात कहने से साक्षान् बृहस्पति की भी बुद्धि का अनादर और उनका अपमान होता है । कोई सेवक दान से, कोई प्रिय वचन कहने से और कोई अच्छी सलाह देने से स्वामी को प्रिय होता है । जो अच्छी सलाह देने से प्रिय होता है वही वास्तव में प्रिय होने योग्य है । लोग जिससे द्वेष रखते हैं वह सज्जन, बुद्धिमान् या पण्डित कुछ नहीं होता । क्योंकि मनुष्यों का स्वभाव ही ऐसा है कि वे अपने प्रिय पुरुष में सब अच्छे काम और अप्रिय पुरुष में सब पापकार्य देखते हैं । दुर्योधन के जन्म के समय ही मैंने आपसे कह दिया था कि आप एक दुर्योधन को त्याग दीजिए । उसके त्याग से अन्य सौ पुत्रों की बढ़ती होगी और उसका त्याग न करने से उन सौ पुत्रों का भी नाश हो जायगा । जिससे नाश की आशङ्का हो उस वृद्धि को अच्छा नहीं समझना चाहिए । जिस क्षय से वृद्धि की सम्भावना हो उस क्षय को अच्छा ही समझना चाहिए । क्योंकि जिससे वृद्धि हो वह क्षय नहीं है, बल्कि जिस थोड़ी सी वृद्धि से बहुत का नाश हो वह वृद्धि ही क्षय है । कुछ लोगों में गुणों की अधिकता होती है और कुछ लोग धन से सम्पन्न होते हैं । राजन्, जो धन से सम्पन्न किन्तु गुणों से हीन हैं उन्हें आप छोड़ दीजिए ।

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर ! तुम ये सब मेरे भले की, युक्तियुक्त बातें कह रहे हो ; किन्तु मैं अपने पुत्र दुर्योधन का त्याग नहीं कर सकता । यह तो निश्चय है कि जिस पक्ष में धर्म होगा उसी की जय होगी ।

विदुर ने कहा—सब गुणों से अलङ्कृत विनयी पुरुष प्राणियों की थोड़ी सी भी हानि या कष्ट को नहीं देख सकता । दूसरों की निन्दा करने की प्रवृत्तिवाले लोग सदा औरों में विरोध पैदा कराने और दूसरों को दुःख पहुँचाने का उद्योग किया करते हैं । पापियों का मुंह देखना दोष की बात है । उनके पास रहने में बड़ा खटका रहता है । उन्हें धन देना महा भयङ्कर है और उनसे धन लेना अनर्थ की जड़ है । वे कामना-परवश, निर्लज्ज, धूर्त और भेदभाव बढ़ाने में तत्पर रहते हैं । अन्य महादोषों से परिपूर्ण पापियों का सङ्ग महा निन्दित है ; इसलिए उनको साथ न रखना चाहिए । नीच पुरुष की प्रीति स्वार्थ-मूलक होती है । काम निकल जाने पर नीच पुरुष उस प्रीति को भुला देता है । साथ ही प्रीति का फल और सुख भी नष्ट

हो जाता है। वह नीच फिर निन्दा और विनाश की चेष्टा करता है। भूल से उसका थोड़ा भी अपकार हो जाय तो वह शान्त नहीं होता, बल्कि मोहवश विरोध को ही बढ़ाता है। डाँवाँडोल चित्तवाले ऐसे नृशंस पुरुष के सङ्ग को विचारपूर्वक दूर से ही बराना विद्वानों का कर्तव्य है।

- राजन् ! जो कोई दरिद्र, दीन, रोगपीडित जातिवाले को आश्रय देता है, उस पर कृपा करता है, उम दयालु के पुत्रों और पशुओं की वृद्धि होती है और उसका सदा भला होता है। जो लोग अपना भला चाहते हैं उन्हें अपनी जातिवालों की उन्नति और वृद्धि का यत्न करना चाहिए। इसलिए हे राजेन्द्र, आप अपने कुल की वृद्धि कीजिए। जाति का सत्कार करने से आपका भला होगा। गुणहीन जातिवालों पर भी हाथ रखना चाहिए। फिर वीर पाण्डव तो
- २० सब गुणों से अलङ्कृत और प्रबल होकर आपकी कृपा चाहते हैं। राजन्, पाण्डवों पर प्रसन्न होकर उन्हें जीविका के लिए कुछ गाँव ही दे दीजिए। ऐसा करने से इस लोक में आपका यश फैलेगा। आप वृद्ध हैं, इसलिए पुत्रों को राह पर लाना आपका कर्तव्य है। हित का उपदेश करना मेरा भी कर्तव्य है। मैं आपका हितचिन्तक हूँ। भलाई चाहनेवाले को कभी अपनी जातिवालों से वैर-विरोध नहीं करना चाहिए। हे भरतश्रेष्ठ, जाति-भाइयों के साथ मिलकर सुख भोगना भला है। जातिभाइयों के साथ भोजन, बातचीत और प्रीति करनी चाहिए; विरोध कभी न करना चाहिए। जातिभाई ही तार देते हैं और वे ही बोर देते हैं; सम्बन्धित होते हैं तो तार देते हैं और बुरे आचरणवाले होते हैं तो बोर देते हैं। महाराज, आप पाण्डवों से अच्छा व्यवहार कीजिए। पाण्डवों से मिलकर रहिएगा तो फिर शत्रु आप पर हमला न कर सकेंगे। जिस शिकारी के हाथ में विष-बुझे बाण हों उसके पास जाकर मृग जैसे संकट में पड़ता है वैसे अगर कोई जातिवाला, श्रीमान सजातीय बन्धु के निकट जाकर, कष्ट पाता है तो मृगवध का पाप जैसे व्याध को होता है वैसे ही जातिवाले को सताने का पाप उस दुष्ट को होता है। सोच लीजिए, यदि आपने पाण्डवों का मरना सुना या अपने पुत्रों का मरना सुना, तो दोनों तरह आपको पछताना पड़ेगा। यह जीवन क्षणभंगुर है, इसलिए मनुष्य को पहले वह काम न करना चाहिए जिससे मौत की सेज में पड़े-पड़े पछताना पड़े। नीति-शास्त्र के प्रणेता भृगु के सिवा और कोई ऐसा नहीं जिसका पैर नीति की राह से कभी
- ३० हटा न हो। जो हो गया सो हो गया, अब आगे जिसमें भला हो वही विचारकर कीजिए। दुर्योधन पाण्डवों के साथ पहले जो अन्याय कर चुका है उसे इस समय आप अपने व्यवहार से मिटा दीजिए; क्योंकि आप इस कुल के मुखिया और वृद्ध हैं। संसार में आपकी वह निन्दा पाण्डवों को राज्य देने से मिट जायगी। हे नरश्रेष्ठ, तब बुद्धिमान लोग आपकी बड़ाई करेंगे। जो पुरुष लोगों के हितोपदेश को सुनकर और उसके फल पर विचारकर कर्तव्य का निश्चय करता है वह सदा यश का भागी होता है। जिसे उपदेश किया जाता है

वह यदि उसे अच्छी तरह नहीं समझता या उसके अनुसार काम नहीं करता तो चतुर पुरुषों का उपदेश भी वृथा ही जाता है। जो पुरुष बुरे फलवाले पापकर्म का आरंभ नहीं करता, उसकी बढ़ती होती है। जो आदमी पहले किये गये पाप पर विचार न करके फिर भी पाप में ही प्रवृत्त होता है वह घोर नरक में गिरता है। चित्त का विकार, शत्रु के गुप्तचर आदि से बेखबरी, सोना, अपने हृदय के भाव को न छिपा सकना, दुष्ट मंत्रियों पर विश्वास और मूर्ख दूत पर विश्वास, ये छः बातें मन्त्र फूटने के द्वार हैं। जो पुरुष मन्त्रभेद के इन द्वारों को जानकर और बन्द रखकर धर्म-अर्थ-काम के कर्म करता है, वही शत्रुओं को हरा सकता है। बृहस्पति के समान मनुष्य भी बिना शास्त्र पढ़े और बिना वृद्धों की सेवा किये धर्मार्थ के तत्त्व को नहीं जान सकता। समुद्र में गिरी हुई चीज़, न सुननेवाले से कही गई बात, अजितेन्द्रिय का शास्त्र पढ़ना और राख में डाली गई आहुति व्यर्थ है। बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि विचार से जांचकर, बुद्धि से निश्चय कर, देख-सुनकर और जानकर फिर बुद्धिमान ज्ञानियों से मित्रता करे। विनय से अकीर्ति, पराक्रम से अनर्थ, क्षमा से क्रोध और सदाचार से अलक्षण दूर होते हैं। राजन् ! पहनावे और खान-पान से, जन्मस्थान से, निवासगृह से और आचार से मनुष्य का कुल जाना जाता है। कामासक्त पुरुष की कौन कहे, जीवन्मुक्त पुरुष भी कामना को रोकने में असमर्थ होते हैं। प्राज्ञ पुरुष की सेवा करनेवाले, विद्वान्, धर्मात्मा, दर्शनीय, मित्रसम्पन्न, अच्छे हित के वचन कहनेवाले सुहृद् का प्रतिपाल करना चाहिए। जो शास्त्र और लोक की मर्यादा को नहीं तोड़ता, धर्म का खयाल रखता है, कोमलप्रकृति और लोकाज्जा से युक्त है वह, चाहे अच्छे कुल में उत्पन्न हो और चाहे नीच कुल में, सैकड़ों कुलीनों से श्रेष्ठ है। जिनका चित्त मिला हुआ है, जिनकी बुद्धि भी मेल खाती है, और गूढ़ बातें भी एक सी हैं, उनकी मित्रता सदा बनी रहती है। बुद्धिमान पुरुष को दुर्भेदिता, अकृतज्ञ, कच्ची समझवाले या नासमझ के साथ मित्रता न करनी चाहिए। ऐसा पुरुष घास से ढके हुए कुए के समान है। उससे की गई मित्रता बहुत शीघ्र मिट जाती है। घमण्डी, मूर्ख, क्रोधी, साहसी और धर्महीन पुरुष से कभी मित्रता न करनी चाहिए। कृतज्ञ, धर्मात्मा, सत्यपरायण, जितेन्द्रिय, दृढ़ भक्तिवाले, उदार और मर्यादापालक पुरुष से ही मित्रता करनी चाहिए। इन्द्रियों को वश में करना अर्थात् विषयों से रोकना मृत्यु से बढ़कर कष्ट सहने के बराबर है। किन्तु इन्द्रियों का विषयों में अत्यन्त प्रवृत्त होना देवताओं के भी विनाश का कारण होता है। सब प्राणियों से कोमलता का व्यवहार करना, किसी से डाह न करना, क्षमा, धैर्य और मित्रों का आदर करना, ये गुण पण्डितों की राय में आयु बढ़ानेवाले हैं। नष्ट वस्तु को अच्छी नीति से फिर प्राप्त करने के लिए दृढ़ निश्चय करना वीर पुरुषों का व्रत है। जो पुरुष आनेवाले दुःख को रोकने के उपाय जानता है, आये हुए दुःख को दृढ़ता के साथ सहता है और बीतते हुए दुःख के लिए पछतावा नहीं करता,

उसे कभी अर्थ की हानि नहीं उठानी पड़ती । मनुष्य मन-वांछी-कर्म से जिसका सेवन करता है उसी कर्म की ओर उसकी प्रवृत्ति होती है, इसलिए कल्याणदायक पुण्यकर्म ही करने चाहिएँ । दही-दूध-गाय आदि मङ्गल पदार्थों को छूना, सहाय-सम्पत्ति, शास्त्र-ज्ञान, उद्योग, सरलता और सज्जनों से मिलना, इन बातों से मनुष्य का ऐश्वर्य बढ़ता है । उद्योग में तत्पर रहने से लक्ष्मी, लाभ और शुभ की प्राप्ति होती है । जो बड़े लोग हैं वे उद्योग को कभी नहीं छोड़ते और अनन्त सुख भोगते हैं । जो समर्थ और सबल है उसके लिए क्षमा से बढ़कर श्रेयस्कर और श्रीवर्द्धन दूसरा उपाय नहीं है । जो अशक्त है उसे तो सभी की सहनी पड़ती है; किन्तु समर्थ पुरुष केवल धर्म के खयाल से क्षमा करते हैं । जो अर्थ और अनर्थ को समान मानता है ६० उसके लिए क्षमा सदा हितकारिणी है । जिस सुख के सेवन से धर्म और अर्थ को हानि न पहुँचती हो उसे ही यथेष्ट रूप से भोगना चाहिए । मूढ़ों की तरह भोजनादि के सुख में अत्यन्त आसक्त होकर धर्म और अर्थ को हानि न पहुँचानी चाहिए । दुःखित, मतवाले, नास्तिक, आलसी, अजितेन्द्रिय और उत्साहहीन पुरुषों को जो ऐश्वर्य मिल भी जाता है तो ठहरता नहीं है । दुष्ट बुद्धिवाले लोग सरलहृदय और लोकलजायुक्त नम्र पुरुष को, अशक्त समझकर, दबाते हैं । अत्यन्त सरल, अत्यन्त दाता, अत्यन्त शूर, अत्यन्त व्रतधारी और अपनी बुद्धिमानी का अभिमान रखनेवाले पुरुषों को लक्ष्मी डरती है और उनके पास नहीं फटकती । अत्यन्त गुणी या अत्यन्त निर्गुण के पास लक्ष्मी नहीं ठहरती । लक्ष्मी न तो गुणों को चाहती है और न निर्गुण पर अनुराग रखती है । उन्मत्त गाय की तरह अन्धी लक्ष्मी एक जगह देर तक नहीं ठहरती । महाराज ! वेदपाठ का फल अग्निहोत्र है, शास्त्रज्ञान का फल अच्छा स्वभाव और अच्छा चरित्र है, स्त्री का फल रति और बालवच्चे पैदा करना है, धन का फल देना और भोग करना है । राजन, अधर्म से सन्धित किये गये धन के द्वारा जो कोई यज्ञ-दान आदि परलोक बनानेवाले कर्म करता है उसे परलोक में उन कर्मों का फल नहीं मिलता । धन के अन्याय से उपार्जित होने के कारण वे कर्म निष्फल होते हैं । जो लोग सरलहृदय और धीर हैं उन्हें जङ्गलों में, दुर्गम स्थानों में, कठिन आपत्तियों में, घबराहट के अवसरों पर और तने हुए शस्त्रों के बीच, कहीं भी, डर नहीं है । उद्योग, संयम, निपुणता, सावधानी, धैर्य, स्मृति और देख-भालकर काम करना, ये बातें ७० अभ्युदय की जड़ हैं । तपस्वियों का बल तप है, ब्रह्मज्ञानियों का बल ब्रह्मज्ञान है, दुर्जनों का बल हिंसा है और गुणी लोगों का बल क्षमा है । जल, कन्द-मूल, फल, दूध, घी, ब्राह्मण की इच्छा, गुरु के वचन और औपध, इन आठ से व्रतभङ्ग नहीं होता । जो अपने लिए अच्छा न जान पड़े वह दूसरे के साथ भी न करना चाहिए । लोगों के अनुकूल रहना ही धर्म है । और धर्म भी प्रयोजन के अनुसार किये जाते हैं, पर मुख्य धर्म लांकसंग्रह ही है । शान्ति से क्रोध को, अच्छे व्यवहार से दुष्ट को, दान से कृपण को और सत्य से मिथ्या को जीतना चाहिए । स्त्री, धूर्त, आलसी,

कायर, क्रोधी, पुरुषाभिमानी, चोर, कृतघ्न और नास्तिक को ऊपर विश्वास न करना चाहिए। जो सबको नम्रता के साथ प्रणाम करता है और सदा वृद्धों के पास रहता है उसकी कीर्ति, आयु, यश और बल बढ़ता है। महाराज! बड़े कष्ट से, धर्म का उल्लंघन करने से या शत्रु के आगे झुकने से जो सम्पत्ति प्राप्त हो उसके लिए कभी मन न चलाइएगा। विद्याहीन पुरुष, पुत्रोत्पत्तिहीन मैथुन, आहारहीन प्रजा और राजा से हीन राज्य शोचनीय है। प्राणियों का बुढ़ापा राह चलना है, पर्वतों का बुढ़ापा जल है, स्त्रियों का बुढ़ापा भांग न करना है और मन का बुढ़ापा वचन-बाण हैं। वेदों का मैल अभ्यास न करना है, ब्राह्मण का मैल ब्रह्मचर्य आदि व्रत न रखना है, पृथ्वी का मैल बाह्यीक देश है, पुरुष का मैल भूठ बोलना है, पतिव्रता का मैल कौतूहल है, स्त्रियों का मैल पति का परदेश जाना है, सुवर्ण का मैल चाँदी है, चाँदी का मैल राँगा है, राँग का मैल सीसा है और सीसे का मैल मैल ही है। सोने से नाँद नहीं कम हाँती। लकड़ियों से आग नहीं बुझती। पीने से मदिरा की प्यास नहीं बुझती। भोग से स्त्रियों का जी नहीं भरता। जो पुरुष दान से मित्र को, युद्ध से शत्रु को, और खाने-पीने-पहनने की चीज़ों से स्त्री को छुका देता है उसी का जन्म सफल है। हज़ारपती और लखपती सब अपनी जीविका चलाते हैं। मतलब यह कि कोई ऐसा नहीं है जिसे शाम तक खाने को न मिलता हो। इसलिए आप इस धन के लोभ को छोड़ दीजिए। पृथ्वी भर का अन्न, सोना, पशु और स्त्रियाँ पाकर भी लोभी आदमी तृप्त नहीं हो सकता। इससे बुद्धिमान लोग लाभ-मोह के वश नहीं होते। राजन्, मैं फिर आपसे कहता हूँ कि यदि आप कौरवों और पाण्डवों को समान समझते हैं तो दोनों के साथ समान व्यवहार कीजिए।

८६

चालीसवाँ अध्याय

विदुर का फिर समझाना

विदुर ने कहा—महाराज ! जो मनुष्य अहंकार और आसक्ति छोड़कर, शक्ति का अप-व्यय न करके, धन उपार्जन करता है उसे शीघ्र यश प्राप्त होता है और सज्जन लोग उसका आदर करते हैं। जिस पर सज्जन प्रसन्न होते हैं वह सदा सुखी रहता है। जो पुरुष अधर्म से प्राप्त अतुल ऐश्वर्य को भी नहीं लेता और न उसकी ओर अपने चित्त को खिंचने देता है, वह केचुल छोड़े हुए साँप की तरह दुःखों से बचकर सुख से सोता है। मिथ्या व्यवहार (बेईमानी) से उन्नति या जय प्राप्त करना, राजा से द्रोह करना और गुरु की निन्दा करना, ये तीनों बातें ब्रह्म-हत्या के समान हैं। ईर्ष्या करना आत्मा की हत्या करना है और किसी की निन्दा करना लक्ष्मी का वध करना है। सुनने की इच्छा न करना, जल्दी और अपने मुँह अपनी बड़ई, इन तीन बातों से विद्या का वैर है। जो विद्या प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें आलस्य, मद और मोह,

चञ्चलता, गुपशप लड़ाना, उग्रता, अभिमान और लोभ से बचना चाहिए। उनके लिए ये दोष बड़े अनिष्टकारक हैं। जो सुख चाहता है, आरामतलब है, उसे विद्या कहाँ आ सकती है? विद्यार्थी को आराम कहाँ मिल सकता है? जो आराम चाहता है वह विद्या का पढ़ना छोड़ दे या जो विद्या चाहता है वह आरामतलबी छोड़ दे। महाराज! ईधन से आग, जल से समुद्र, सब प्राणियों से मृत्यु और पुरुषों से स्त्री तृप्त नहीं होती। आशा से धैर्य, मृत्यु से ऐश्वर्य, क्रोध से लक्ष्मी, कञ्जूसी से यश और पालन न करने से पशु नष्ट होते हैं। किन्तु एक भी ब्राह्मण अगर क्रोध करे तो वह सम्पूर्ण राज्य का नाश कर सकता है।

महाराज! बकरी, काँसे का बर्तन, चाँदी, मधु, सज्जन, वेदपाठी ब्राह्मण, पत्नी, वृद्ध जातिवाले और सङ्कटग्रस्त कुलीन, ये सदा आपके घर में रहें। महाराज! मनुजी की आज्ञा है कि देवता, ब्राह्मण और अतिथि की पूजा और सत्कार के लिए बकरी, बैल, चन्दन, वीणा, दर्पण, मिठाई, घी, लोहा, तौबे के बर्तन, शालग्राम की शिला, दक्षिणावर्त शङ्ख और गोरोचन आदि मङ्गल-पदार्थों को गृहस्थ अपने घर में अवश्य रखे। राजन्! मैं आपको यह सर्वोत्तम मङ्गलप्रद पवित्र धर्म बताता हूँ कि काम, डर, लोभ आदि के वश होकर धर्म का त्याग न करना चाहिए; यहाँ तक कि प्राण देकर भी धर्म का पालन करना चाहिए। धर्म नित्य है, सुख और दुःख अनित्य हैं। ऐसे ही जीव नित्य है, शरीर अनित्य है। आप अनित्य को छोड़कर नित्य की रक्षा कीजिए। सन्तोष कीजिए; सन्तोष ही सज्जनों का लक्षण है।

देखिए, बड़े-बड़े महानुभाव वाली राजा इस पृथ्वी पर हो गये हैं। वे धन-धान्य-पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करके अन्त को राज्य और भोग यहीं छोड़ मौत के मुँह में चले गये। राजन्, बड़े-बड़े दुःख सहकर पाला गया पुत्र जब मर जाता है तब मनुष्य उसे घर से बाहर निकालकर मसान पहुँचा देते हैं, घड़ी भर घर में नहीं रहने देते। उसके बाद बाल बिखेरे, करुण स्वर से विलाप करते हुए लोग चिता के ऊपर उसी प्रिय पुत्र का शरीर लकड़ी की तरह रखकर जला देते हैं। मरे हुए मनुष्य के धन को दूसरा ही भोगता है। उसके शरीर की धातुओं (मांस आदि) को या तो पत्नी खा जाते हैं या आग जला देती है। उसके साथ परलोक तक केवल पाप या पुण्य जाता है। महाराज, बिना फूल-फल के वृत्त को जैसे पत्नी छोड़ जाते हैं वैसे ही मुर्दे को उसके जातिवाले, पुत्र और मित्र मसान में छोड़कर लौट जाते हैं। चिता पर चढ़ाकर आग में जलाये गये पुरुष के साथ उसका किया हुआ कर्म ही जाता है। इसलिए मनुष्य को यत्र के साथ धीरे-धीरे धर्म का उपार्जन करना चाहिए। इस लोक से ऊपर स्वर्ग में और इस लोक के नीचे इन्द्रियों को महामोह में डालनेवाला अंधेरा है। आप उससे बचे रहिए; वह आपको छू न सके। मेरी इस बात को सुनकर यदि आप इसी के अनुसार काम करेंगे तो संसार में श्रेष्ठ यश आपको प्राप्त होगा और परलोक में निर्भय भाव से स्वर्गभोग कीजिएगा।

महाराज, यह आत्मा नदी है। इसमें पुण्य ही तीर्थ है। सत्य ही जल है। सन्तोष इसके तट हैं। दया को तरङ्ग कह सकते हैं। लोभशून्य पुण्यात्मा पुरुष इस नदी में नहाकर परम पवित्र होते हैं। पाँच इन्द्रियों के जल से भरी, काम-क्रोध आदि ग्राहों से परिपूर्ण इस नदी को धैर्य की नाव पर बैठकर तर जाइए। जो मनुष्य बुद्धि, धर्म, विद्या या अवस्था में बड़े अपने हितचिन्तक मित्रों को प्रसन्न करके आदरसहित कर्तव्य-अकर्तव्य के बारें में उनसे पूछता है वह कभी मोह में नहीं फँसता। धैर्य से भोजन और इन्द्रियसुख की वासना को रोके, आँखों से हाथ-पैर बचावे, मन से आँख-कान की रक्षा करे और मन तथा वाणी को कर्म से पवित्र रखे। जो ब्राह्मण नित्य स्नान-सन्ध्या-तर्पण करता है, नित्य यज्ञोपवीत धारण किये रहता है, नित्य स्वाध्याय करता है, पतित का अन्न नहीं खाता, सत्य बोलता है, गुरु की सेवा करता है वह ब्रह्म-तेज और ब्रह्मलोक से कभी नहीं भ्रष्ट होता। जो क्षत्रिय वेद पढ़ता है, यज्ञ-अग्निहोत्र करता है, प्रजा-पालन करता है, गाय और ब्राह्मण के लिए प्राण तक दे देता है और युद्ध में मारा जाता है वह स्वर्गलोक को जाता है। जो वैश्य वेद-शास्त्र पढ़ता है, समय पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और आश्रित लोगों की धन से सहायता करता है और यज्ञ करता है वह मरने पर स्वर्ग में जाकर सुख भोगता है। जो शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णों की सेवा से सन्तुष्ट रखता और नम्र रहता है, वह भी पाप से बचकर, मरने पर, स्वर्गलोक में सुख भोगता है। महाराज, यह चारों वर्णों का धर्म मैंने जिस कारण आपके आगे कहा है सो सुनिए। आपके दोष से और युधिष्ठिर प्रजापालन रूप क्षत्रिय के धर्म का पालन करने में असमर्थ हो रहे हैं। आप उन्हें अपना धर्म पालने का अवसर दीजिए।

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, तुम जो यह उपदेश मुझे सदा दिया करते हो वह बहुत ठाँक है। मैं भी ऐसा ही करना चाहता हूँ। मैं पाण्डवों के बारे में जो अच्छा निश्चय करता हूँ वह दुर्योधन के सामने आने पर फिर पलट जाता है। मैं समझता हूँ, कोई प्राणी होनी को नहीं टाल सकता। मैं उद्योग की अपेक्षा होनी को ही प्रबल समझता हूँ।

३२

सनत्सुजातपर्व

इकतालीसवाँ अध्याय

सनत्सुजात ऋषि का आना

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर, तुम विचित्र बातें कह रहे हो। यदि कुछ कहने को और रह गया हो तो वह भी मुझे सुनाओ।

विदुर ने कहा—हे धृतराष्ट्र, सनातन पुराण कुमार सनत्सुजात ऋषि का कहना है कि मृत्यु नाम की कोई वस्तु नहीं है। अब वही बुद्धिमानों में श्रेष्ठ महात्मा आपके हृदय के गुप्त और प्रकट सब सन्देशों को दूर करेंगे।

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, क्या तुम वह नहीं जानते जो सनत्सुजात ऋषि कहेंगे ? यदि जानते हो तो तुम्हीं कहो।

विदुर ने कहा—महाराज, मेरा जन्म शूद्र जाति की माता से हुआ है, इसलिए मैं उस विषय को नहीं कह सकता। महर्षि सनत्सुजात के अनादि सिद्धान्त को मैं जानता तो हूँ, पर मुझे उसके कहने का अधिकार नहीं। ब्राह्मणयोगिन् मे उत्पन्न पुरुष यदि उस गुह्य ज्ञान का वर्णन करता है तो देवगण उसकी निन्दा नहीं करते। इसी से मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि इस विषय को सनत्सुजात ऋषि के मुँह से ही सुनिए।

धृतराष्ट्र ने कहा—तो फिर विदुर, तुम्हीं वह उपाय बताओ जिससे इसी शरीर से, यहीं पर मैं सनत्सुजात ऋषि से मिल सकूँ।

वैशम्पायन कहते हैं—तब विदुर ने महात्मा सनत्सुजात का ध्यान किया। उसी समय वे महात्मा वहाँ आ गये। विदुर ने विधिपूर्वक मधुपर्क-आसन आदि देकर उनकी पूजा की। जब वे थकन मिटाकर सुख-पूर्वक बैठे तब विदुर ने कहा—भगवन्, महाराज धृतराष्ट्र के मन में एक ऐसा संशय है जिसका समाधान मैं नहीं कर सकता। कृपा कर आप उसका समाधान कर दीजिए। जिसे सुनकर ये महाराज लाभ-हानि, प्रिय-अप्रिय, जरा-मृत्यु, भय-असहिष्णुता, भूख-प्यास, मोह-मद से उत्पन्न अरुचि-आलस्य, काम-क्रोध, क्षय-अभ्युदय आदि के हाथ से १० और सब दुःखों से छुटकारा पा जायें वही इन्हें सुनाइए। १२

बयालीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र और सनत्सुजात का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं कि तब राजा धृतराष्ट्र ने विदुर के कथन का समर्थन करके, श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से, एकान्त में सनत्सुजात से, कहा—भगवन्, आपका उपदेश है कि मृत्यु तो कोई वस्तु ही नहीं। किन्तु देवताओं और असुरों ने मृत्यु का डर मिटाने के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का आश्रय लिया है। इन दोनों बातों में कौन सी बात ठीक है ? आप कृपा करके मेरा यह संदेह मिटाइए।

सनत्सुजात ने कहा—राजन् ! कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु तो है, पर कर्म से उसका डर मिटाया जा सकता है। पर कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु है ही नहीं। ये दोनों पक्ष सत्य

हैं। इस बारे में आप शङ्का न कीजिए। मैं यह मृत्यु का रहस्य कहता हूँ, सुनिए। राजन्, पण्डितों ने मोह को ही मृत्यु माना है। मैं प्रमाद को मृत्यु और सावधानी को अ-मृत्यु मानता हूँ। प्रमाद से असुर पराभूत और मृत्यु के वश हुए, और अप्रमाद से देवता अमर हैं। मौत बाघ की तरह आकर मनुष्यों को नहीं खा जाती। मृत्यु का रूप आज तक किसी ने नहीं जाना। कुछ लोगों की राय में यमराज मृत्यु हैं और आत्मनिष्ठ ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मचर्य ही अ-मृत्यु है। यम देव पितृलोक में रहकर सबका शासन करते हैं। वे पुण्यात्माओं के लिए मङ्गलरूप और पापियों के लिए अमङ्गलरूप हैं। उन्हीं की आज्ञा से मनुष्य क्रोध, प्रमाद (मोह) और लोभ नाम से प्रसिद्ध मृत्यु के वशीभूत होते हैं। अहङ्कार के वश होकर, कुमार्ग पर चलकर, मनुष्य



आत्मरूप प्राप्त करने में असमर्थ होता है। इस प्रकार सब लोग मोहित, ज्ञान से अष्ट, लोभ आदि मृत्यु के वशवर्ती होकर बारम्बार नरक-यन्त्रणा में पीड़ित और इन्द्रियों के सम्पर्क से रहित होते हैं। इसी से मृत्यु का नाम मरण है। भोग के साधनरूप कर्म के परिणाम से कर्म में अनुरक्त जीव स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। इस शरीर के छूटने पर भी मौत उनका पीछा नहीं छोड़ती। जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है उस योगमार्ग की अभिज्ञता न होने के कारण देहधारी की विषय-वासना प्रकट होती है, और स्वभाव से ही अनित्य विषयों के प्रति अनुराग का सञ्चार होता है। तब उसकी प्रवृत्ति इन्द्रियों को मोह-जाल में जकड़कर जड़ सा बना देती है और

१० असार विषयों की खोज में भ्रान्तिवश उसे विषयों का चिन्तन ही विषयसेवा प्रतीत होती है। जो चित्त को वश में नहीं कर सका, अर्थात् अजितेन्द्रिय है, उसके लिए विषय-चिन्तन, विषय-लाभ-वासना और क्रोध, यही तीन क्रम से होनेवाली मृत्यु के कारण बन जाते हैं। किन्तु जो धीरे जितेन्द्रिय हैं वे धैर्य की सहायता से मृत्यु की सीमा को लाँघ जाते हैं। मतलब यह कि आत्म-जिज्ञासा को अपना लक्ष्य बनाकर विषय-वासना का त्याग करने से सब कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं और मनुष्य मृत्यु के हाथ से छुटकारा पा जाता है।

मृत्यु के फन्दे में न पड़नेवाला पुरुष आत्मा का चिन्तन करते-करते काम-वासना का विनाश कर देता है; रास्ते में पड़े हुए तिनके के समान प्राप्त स्त्री आदि विषयों में तुच्छत्व बुद्धि से वह चिन्ता नहीं करता अर्थात् काम-रहित पुरुष को मृत्यु का भय नहीं है। जो व्यक्ति विषयासक्त है उसके लिए विषय का नाश मृत्यु स्वरूप है; किन्तु विषय-वासना का त्याग सब दुःखों के नाश का कारण है। विषयासक्ति से विवेक का प्रकाश बुझ जाता है। विषयासक्ति अन्धकाररूपिणी और नरक की सी यन्त्रणा देनेवाली है। मदिरा के नशे में चूर आदमी जैसे गढ़े या नाली में गिर पड़ता है, वैसे ही विषयासक्त पुरुष सुख-साधन में अनुरक्त होकर अधःपतित होता है। अन्तःकरण यदि विषयों के वश में न हो तो मौत, तृण के बने बाघ की तरह, कुछ नहीं कर सकती। अन्य किसी काम्य-विषय का स्मरण न करना ही विषय-वासना के विनाश की जड़ है। अपने हृदय में स्थित आत्मा ही क्रोध-लोभ-भय-मोहरूपी मृत्यु है। विद्वान् पुरुष मृत्यु को इस प्रकार उत्पन्न और तुच्छ समझकर उससे नहीं डरता। शरीर जैसे काल के द्वारा नष्ट होता है, वैसे ही मृत्यु का भी ज्ञान योग से नाश हो जाता है।

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, वेद में कहा है कि केवल यज्ञ के द्वारा द्विजों को सनातन श्रेष्ठ और पवित्र लोक मिलते हैं। वही मोक्ष का कारण है। फिर लोग कर्मों का अनुष्ठान क्यों न करें?

सनत्सुजात ने कहा—राजन्, कामासक्त मूढ़ पुरुष ही इस प्रकार मोक्ष पाने की इच्छा रखते हैं। वेद में तो बहुत से फलों का वर्णन पाया जाता है। किन्तु निष्काम जीवात्मा को ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है। वही यथार्थ निवृत्ति मार्ग पर चलकर मोक्ष पाता है।

धृतराष्ट्र ने पूछा—भगवन्! जिसके प्रभाव से यह विश्व क्रमशः पैदा होता है, जो जन्म और मृत्यु से रहित है, उस सनातन जीवात्मा को नियुक्त कौन करता है? अर्थात् उसका प्रेरक कौन है? उसके कर्मों का अनुष्ठान और सुखभोग का ढङ्ग क्या है?

सनत्सुजात ने कहा—महाराज, जीवात्मा और परमात्मा परस्पर अनादि योग से अभिन्न हैं। किन्तु भेद उपस्थित होने पर एकता का सम्पादन अत्यन्त दुर्घट हो जाता है। परमात्मा ही मायामय अज्ञान के संयोग से सूक्ष्म और स्थूल शरीर धारण करके जीवात्मा कहलाता है।

८ किन्तु इस प्रकार उपाधि के भेद से उसके महत्त्व में कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। वेद में यह

निर्णय हो चुका है कि उस विकार-रहित परमात्मा की माया से ही यह विश्व प्रकट हुआ है और उसी की शक्ति इस स्वप्नतुल्य मिथ्या जगत् को यथार्थ सा दिखा रही है ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महर्षिश्रेष्ठ, इस संसार में धर्मात्मा और अधर्मी, दोनों तरह के आदमी हैं । मैं आपसे पूछता हूँ कि धर्म को पाप नष्ट कर देता है या पाप को धर्म नष्ट करता है ?

सनत्सुजात ने कहा—महाराज, पुण्य और पाप दोनों के जुड़े-जुड़े फल हैं । संन्यास (विषय-त्याग) और उपासना के साथ किये गये कर्मों द्वारा, दोनों तरह के कर्मों से, मोक्ष प्राप्त होता है । विद्वान् पुरुष संन्यास के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करता है और देहाभिमानी पुरुष उपासना के प्रभाव से पुण्य को प्राप्त होता है । कर्मासक्त पुरुष कर्म करने के कारण पाप और पुण्य दोनों के अस्थायी फल को पाकर फिर कर्म में ही प्रवृत्त होता है । किन्तु विद्वान् पुरुष धर्म के बल से पाप को परास्त करके सिद्धि प्राप्त कर लता है ।

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, वेद के कथन के अनुसार द्विज लोग पुण्य करके जिन सनातन लोकों को पाते हैं उनकी उत्तरोत्तर श्रेष्ठता का वर्णन कीजिए । निर्मल आनन्दस्वरूप मोक्ष-सुख का भी ठीक-ठीक रूप बताने की कृपा कीजिए ।

सनत्सुजात ने कहा—राजन्, जो लोग यम-नियम आदि को विशेष स्पर्धा के साथ पालते हैं वे निर्गुण ब्रह्मवादी पुरुष शरीर त्यागने पर ब्रह्मलोक में जाते हैं । जो लोग यज्ञ आदि कर्म-काण्ड में लगे रहते हैं वे उसी के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके अन्त को देवलोक में विराजमान होते हैं । अपने को वैदिक माननेवाले मनुष्य यद्यपि इस प्रकार के धर्मानुष्ठान से किसी फल की इच्छा नहीं करते तथापि वे उसकी श्रेष्ठता प्रसिद्ध करते हैं । किन्तु वैसे अन्तर्दृष्टि से रहित बहिर्मुख लोगों की बात पर सोलहों आने विश्वास करना ठीक नहीं । जो स्थान, वर्षाकाल में निकले हुए घास-फूस आदि की तरह, संन्यासियों के उपयुक्त खाने पीने की सामग्रो से परिपूर्ण हो वहीं रहकर जीवन बिताना चाहिए । वृत्तिहीन व्यक्ति को सताना या आत्मा को भूख-प्यास का क्लेश देना ठीक नहीं । जहाँ अपनी महिमा प्रकट न करने से अनिष्ट की आशङ्का हो उस भयानक स्थान में रहकर भी जो महात्मा अपनी महिमा और गौरव प्रकट नहीं करता है वही सबमें श्रेष्ठ है । और के गौरव या उन्नति को देखकर जिसके मन में डाह नहीं पैदा होती और जो संन्यासी या ब्रह्मचारी को खिलाये बिना आप भोजन नहीं करता, उसका अन्न ही खाने लायक है । कुत्ता जैसे अपने मुँह से उगले पदार्थ को खाकर अमङ्गल का भागी होता है वैसे ही हालत उन संन्यासियों की है जो पाण्डित्य या महिमा दिखाकर अपनी जीविका चलाते हैं । जाति-भाइयों के बीच में रहकर भी जो ब्रह्मज्ञानी यह चेष्टा किया करता है कि किसी को मेरे धर्मानुष्ठान की खबर न हो, उसी को पण्डितों ने यथार्थ ब्रह्मज्ञानी कहा है । मतलब यह कि ऐसी अज्ञातचर्या के बिना वह उपाधिरहित, अद्वैत, अनुभव से परे, असङ्ग और सर्वव्यापक परमात्मा नहीं मिल सकता । इस

प्रकार की अज्ञातचर्या के प्रभाव से क्षत्रिय भी ब्रह्मज्ञानी हो सकता है। जो पुरुष अपने को और का और दिखाता है, वह आत्मापहारी कहलाता है। वह चोर के तुल्य पुरुष सब पाप कर सकता है। ब्राह्मण को चाहिए कि कर्त्तव्यपालन में थके नहीं, किसी से कुछ दान न ले, सबके अनुकूल रहकर उपद्रवशून्य रहे, शिष्ट होकर भी उसके लिए घमण्ड न करे। वही ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण आत्मज्ञान पाकर कवि कहलाता है। ब्राह्मण वही हैं जो लौकिक धन से हीन (सर्वसङ्ग-त्यागी) होकर भी पारलौकिक सम्पत्ति (धर्म आदि) से युक्त हैं और ईश्वर की भक्ति किया करते हैं। वे दुर्द्धर्ष होते हैं; उन्हें कोई उनकी राह से डिगा नहीं सकता। वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हैं। यज्ञ से सन्तुष्ट होकर यजमान के मनोरथ को पूरा करनेवाले देवताओं से अभिन्न पुरुष भी ब्रह्मनिष्ठ की बराबरी नहीं कर सकता, क्योंकि कर्मसाध्य होने के कारण यज्ञों का फल नित्य (अविनाशी) नहीं है। किन्तु ब्रह्म तो ब्रह्मज्ञानी के निकट स्वयंसिद्धरूप से प्रकाशित होता है, इस कारण उसके ज्ञान का फल जो मोक्ष है वह भी नित्य है। जो आरम्भशून्य (वासनाहीन) होने के कारण देवताओं से भी सम्मान पाता है वही यथार्थ ब्रह्मज्ञानी माननीय है। यज्ञ आदि के कारण जिसका मान होता है वह देवताओं का पशु है, वास्तव में माननीय नहीं है। इस कारण किसी से सम्मान पाकर अपने को सम्मानित या अपमान होने से अपमानित नहीं समझना चाहिए। मानी व्यक्ति को समझना चाहिए कि निमेष और उन्मेष की तरह लोग अपने स्वभाव का ही अनुसरण करते हैं। जो विद्वान् है वही मानी के मान की रक्षा करता है। अधर्मी, पाखण्डी, छली, मूढ़ पुरुष से सम्मान मिलने की सम्भावना नहीं। मान और मोन कभी एक साथ नहीं रहते। तत्त्वज्ञानी पुरुषों का कहना है कि इस लोक पर मानी का और परलोक पर मौनी का अधिकार है। इस लोक में धन, जन या ऐश्वर्यरूपिणी लक्ष्मी मानरूपी महासुख का कारण अवश्य है, किन्तु परलोक के लिए वह बड़ी भारी बाधक है। जो पुरुष प्रज्ञा (बुद्धि) से हीन है वह ब्राह्मी श्री—वेद के रहस्य—को किसी तरह नहीं पा सकता। इस ब्रह्मानन्द के साधन अनेक प्रकार के हैं। उन सबकी रक्षा करना सहज नहीं है। उनमें से सत्य, सरलता, लोक-लज्जा, इन्द्रियदमन, पवित्रता और शास्त्र का ज्ञान, ये छः साधन अभिमान और मोह के शत्रु हैं।

तेंतालीसवाँ अध्याय

सनसुजात का धृतराष्ट्र को तत्त्वोपदेश करना

धृतराष्ट्र ने पूछा—हं पण्डितप्रवर, मौन* का प्रयोजन और लक्षण क्या है? लौकिक व्यवहारसिद्ध मौन और इस वेदाक्त मौन में कौन प्रधान है? मौनव्रत को प्राज्ञ पुरुष किस प्रकार करते हैं? और वे मौनव्रत के द्वारा निर्विकल्प पद पा सकते हैं या नहीं?

* मौन = ब्रह्म, मौन रहना, इत्यादि।

सनत्सुजात ने कहा—राजन्, परमात्मा मन और वेद दोनों से परे है। इसी से उसका नाम मौन है। जो वाणी और मन की गति से बाहर है उसकी प्राप्ति ही मौन का प्रयोजन है। बाहरी और भीतरी इन्द्रियों का दमन ही मौन है। बाहरी और भीतरी विषयों का त्याग ही मौन का लक्षण है। इस प्रकार विषयों से बचे रहना ही वाणी और मन से परे उस परम पद के पाने का प्रधान साधन है। गुरु की बताई युक्ति के अनुसार ओंकार के रूप से परब्रह्म का चिन्तन करने से मौनव्रत का अनुष्ठान होता है।

धृतराष्ट्र ने पूछा—भगवन् ! ऋक्, यजुः और साम नाम के वेदों को जाननेवाले लोग पाप करने पर उसमें लिप्त होते हैं या नहीं ?

सनत्सुजात ने कहा—महाराज ! साम, यजुः या ऋक्, कोई भी पापकर्म में अविवेकी पुरुष की रक्षा नहीं कर सकते। मेरा यह कहना भूठ नहीं है। जो कपटव्यवहार करता है उस मायावी पुरुष के पाप को वेद किसी तरह नहीं मिटा सकते। पत्नी जैसे पङ्ख निकलने पर अपने घोंसले को छोड़कर उड़ जाते हैं वैसे ही वेद भी अन्त समय कपटी पुरुष का साथ छोड़ देते हैं।

धृतराष्ट्र ने पूछा—भगवन्, यदि स्वाभाविक धर्म (शम, दम इत्यादि) का पालन किये बिना वेद [वेदों की सहायता से होनेवाले यज्ञ आदि] मृदु पुरुष को पापों से बचा नहीं सकते तो फिर ब्राह्मणों को माहात्म्य को सूचित करनेवाले “सर्व देवता वेदज्ञ ब्राह्मण के शरीर में रहते हैं; इत्यादि” वाक्य क्या प्रलापमात्र हैं ?

सनत्सुजात ने कहा—हे धृतराष्ट्र, यह जगत् उसी परमात्मा के नाम आदि विशेष रूपों से प्रकाशमान हो रहा है। वेद में भी कहा गया है कि यह विश्व ब्रह्म से भिन्न है। ब्रह्म की प्राप्ति का साधन तप और यज्ञ का अनुष्ठान कहा गया है। विद्वान् व्यक्ति इन दोनों साधनों की सहायता से पुण्य प्राप्त करते हैं। पीछे उस पुण्य के बल से सब पाप मिट जाने पर विद्वानों का आत्मा ज्ञान के प्रभाव से प्रकाशित हो जाता है। इसके बाद उन्हें ज्ञान के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। किन्तु ज्ञान की प्राप्ति हुए बिना मनुष्य विषयवासना के वश होकर इस लोक में किये गये पाप-पुण्य का फल परलोक में भोगता है और फिर उसे इसी लोक में आना पड़ता है। इस लोक में जो तप किया जाता है उसका फल परलोक में भोगने को मिलता है। किन्तु अवश्य-कर्तव्य तप करनेवाले ब्राह्मण इसी लोक में उसका फल भोगते हैं।

१०

धृतराष्ट्र ने पूछा—भगवन् ! एक ही तप ‘समृद्ध’ और ‘असमृद्ध’ भेद से दो प्रकार का कैसे होता है ? यह आप मुझसे कहिए, जिससे मुझे इस विषय का ज्ञान प्राप्त हो।

सनत्सुजात ने कहा—महाराज, फल-प्राप्ति की इच्छा और अश्रद्धा आदि दोषों से रहित तप कैवल्यसाधन होने से ‘कैवल’ भी कहा जा सकता है। यदि वह श्रद्धादि से युक्त होकर सकाम हो तो ‘समृद्ध’ कहा जाता है और जो निरे दम्भ के लिए किया जाता है वह ‘असमृद्ध’

है। तुम्हारा यह प्रश्न तप से सम्बन्ध रखता है। वेद के ज्ञाता लोग तप के प्रभाव से ही अमृत नाम से प्रसिद्ध मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, आपसे निर्दोष तपस्या का उपदेश मैं सुन चुका। अब आप मुझसे तपस्या के दोषों का वर्णन कीजिए, जिसमें यह सनातन गुह्य विषय मैं जान लूँ।

सन्तुष्टजात ने कहा—महाराज ! क्रोध आदि बारह, और आत्मश्लाघा मिलाकर तेरह, तपस्या के दोष कहे गये हैं। ब्राह्मणों के धर्म आदि बारह गुण प्रसिद्ध हैं। मन्वादि शास्त्रों में भी उनका वर्णन पाया जाता है। क्रोध, काम, लोभ, मोह, विधित्सा, अकृपा, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईर्ष्या और निन्दा*, इन बारह दोषों से सर्वथा बचना चाहिए। बहेलिया जैसे मृगों का शिकार करने के लिए मौक़ा देखा करता है वैसे ही इन दोषों में से हर एक दोष मनुष्य पर आक्रमण करने के लिए घात में रहता है। अहङ्कारी, स्पृहा-परवश (हज़ारों यत्न करके पर-स्त्री-भोग आदि की इच्छा), पण्डितमानी, क्रोधी, चञ्चल और सामर्थ्य होने पर भी पालन-पोषण योग्य लोगों के पालन से विमुख, ये छः पापी महासङ्कट में भी बेधड़क सदा पाप किया करते हैं। स्त्री-सम्भोग को ही सबसे बढ़कर पुरुषार्थ समझनेवाला और विषम बुद्धि रखनेवाला, अभिमानी, दान करके पछतानेवाला, मक्खीचूस, प्रजा से ज़बर्दस्ती अधिक कर वसूल करनेवाला, दूसरे के दुःख को देखकर खुश होनेवाला और अपनी स्त्रियों से द्वेष रखनेवाला, ये सात पुरुष भी निन्दनीय हैं।

२० धर्म, सत्य, इन्द्रियदमन, तप, ईर्ष्या न करना, लोकलज्जा, चमा, क्रोध को रोकना, यज्ञ, दान, धैर्य और वेद पढ़ना, ये ब्राह्मण (सुमुचु) के बारह गुण हैं। जो ब्राह्मण इन बारह व्रतों का पालन कर सकता है, वह सम्पूर्ण पृथ्वी का शासन करने में समर्थ है। इनमें से तीन, दो या एक नियम का भी पूरा-पूरा पालन कर सकने से परम ऐश्वर्य प्राप्त होता है। इनमें से इन्द्रियदमन, ईश्वरार्पण-बुद्धि और अप्रमाद, ये तीनों मोक्ष दे सकते हैं। बुद्धिमान् ब्राह्मणों का कहना है कि ये तीनों व्रत सत्य से ही सिद्ध होते हैं।

वैदिक कार्य और उपवास आदि की प्रतिकूलता, झूठ, असूया, कामासक्ति, धनोपाजन के लिए अत्यन्त यत्न, स्पृहा, क्रोध, शोक, वृथा, लोभ, चुगलखोरी, ईर्ष्या, हिंसा, सन्ताप, अनुत्साह, कर्तव्य कार्य को भूल जाना, निन्दा और आत्मश्लाघा, इन अठारह दोषों से मुक्त पुरुष को दान्त अर्थात् जितेन्द्रिय कहते हैं। 'दम' का उलटा 'मद' है। उसमें ये पूर्वोक्त अठारह दोष रहते हैं।

॥ क्रोध = इच्छा के रुकने से उत्पन्न गाली-गलौज और मार-पीट का कारण मनस्ताप, काम = स्त्री की अभिलाषा, लोभ = स्वर्ग करने से डरना, मोह = क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इसका विवेक न होना, विधित्सा = उत्तरोत्तर लाभ होने पर भी सन्तुष्ट न रहना, अकृपा = निर्दयता, असूया = दूसरे के गुण में दोष देखना, मान = अपने को बड़ा समझना, शोक = प्रिय वस्तु के नाश से मन की विकलता, स्पृहा = भोग्य वस्तुओं में आदर, ईर्ष्या = दूसरे का उत्कर्ष देखकर कुड़ना।

त्याग छः प्रकार का है । पहला, सम्पत्ति मिलने पर हर्ष का त्याग । दूसरा, यज्ञ आदि करना और तालाब खुदवाना आदि । तीसरा, कामना (फल-प्राप्ति की इच्छा) का त्याग । इसका अनुष्ठान अत्यन्त कठिन है, किन्तु केवल इस इच्छा के त्याग से ही सब दुःख दूर हो सकते हैं । वैराग्यवश स्त्री आदि भोग की सब वस्तुओं का त्याग यथार्थ कामत्याग है । नहीं तो कामवश होकर इच्छानुसार उपभोग करने के बाद उनका त्याग करने से, अथवा बहुत सा धन प्राप्त कर काम्य-वस्तु के लिए वह सब खर्च करने के बाद निर्धन होने पर भोग का त्याग यथार्थ कामत्याग नहीं कहा जा सकता । जिस सब गुणों से सम्पन्न और समृद्धिशाली मनुष्य के मन में कार्य अगर सिद्ध न हो तो उसके लिए दुःख और ग्लानि नहीं होती वही वास्तव में कामत्यागी है । चौथा, अप्रिय घटना होने पर भी व्यथा का त्याग । पाँचवाँ, भाई-बन्धु या पुत्र-स्त्री आदि से भी याचना का त्याग । छठा, योग्य पात्र को धन देकर शुभलाभ करना । इस प्रकार त्यागचर्या में लगे रहकर प्रमाद से बचना चाहिए । अप्रमाद के भी आठ गुण हैं । सत्य, ध्यान, समाधान, तर्क, वैराग्य, किसी तरह की चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और सन्ध्य न करना ये अप्रमाद के लक्षण हैं ।

३०

धृतराष्ट्र, ये सब दोष मद से उत्पन्न हैं । इनसे बचना चाहिए । प्रमाद के भी आठ उत्पत्ति-स्थान हैं । उनसे भी बचा रहे । पाँच इन्द्रियाँ, मन और बीते हुए तथा आनेवाले दुःख, इनसे आठ प्रकार का प्रमाद उत्पन्न होता है । प्रमाद से बचनेवाला सुखी होता है । सदा सत्यनिष्ठ रहना चाहिए । सब लोक और अमृत (ब्रह्म) सत्य में ही स्थित है । इसी से पण्डित लोग सत्य को दम, त्याग और अप्रमाद का मुखिया कहते हैं । विधाता का बनाया नियम यही है कि सब दोषों के मिटने और गुणों के आने पर ही तप और व्रत सम्पन्न होते हैं । इसलिए सत्य ही साधुओं का व्रत है । उक्त दोषों को छोड़कर गुणी बनने से परम समृद्ध तप सिद्ध होता है, जिससे अन्त को मुक्ति मिलती है । राजन्, तुमने जो पृच्छा था वह सब पापों को मिटानेवाला और जन्म-जरा-मृत्यु से बचानेवाला यह पवित्र प्रसङ्ग मैंने सुना दिया ।

४०

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, सब वेद और इतिहास परमात्मा को चराचर रूप बताते हैं । कोई चार वेद, कोई तीन वेद, कोई दो वेद, कोई एक वेद पढ़नेवाले और कोई एक मात्र ब्रह्मप्रतिपादक अद्वैत मत के अनुयायी हैं । इनमें से किसको ब्रह्मज्ञानी माना जाय ?

मनसुजात ने कहा—महाराज, एकमात्र ब्रह्म ही जानने योग्य और सत्यस्वरूप है । उस सत्य का यथार्थ ज्ञान न होने के कारण ही लोगों ने उपासना के अनेक मार्गों की कल्पना की है । ब्रह्म की प्राप्ति सहज में नहीं होती । सत्यस्वरूप परब्रह्म का उपासक पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है । लोग उस नित्यानन्दरूप परमपुरुष का ज्ञान न होने के कारण ही अपने को ज्ञाता समझते हैं और बाहरी सुख की इच्छा से दान, अध्ययन, यज्ञ आदि करने में लग जाते हैं । सत्य से भ्रष्ट लोगों का सङ्कल्प भी ऐसा ही होता है ।

कोई मानस यज्ञ, कोई वाक्ययज्ञ और कोई कर्मयज्ञ करता है। सत्यसङ्कल्प ब्रह्मज्ञानी पुरुष ब्रह्मलोक आदि श्रेष्ठ लोकों में जाता है। आत्मज्ञान न होने के कारण सङ्कल्प-सिद्धि न होने से लोग मस्तकमुण्डन, वाक्यसंयम आदि दीक्षाओं के नियम लेते हैं। किन्तु कर्मजनित संस्कार काल पाकर लुप्त हो जाते हैं, इसलिए श्रेष्ठ साधु पुरुष ब्रह्म को ही श्रेष्ठ पदार्थ समझते हैं; क्योंकि ब्रह्मानन्द अकृत्रिम और अविनाशी है। शोक, मोह आदि से छुटकारा मिल जाना ज्ञान का प्रत्यक्ष फल है; तप का फल परलोक में मिलता है। इसलिए केवल बहुत पढ़नेवाला बहुपाठी ब्राह्मण होने के सिवा और कुछ महत्त्व नहीं रखता। केवल पढ़ना ही ब्राह्मणत्व का कारण नहीं है। जो सत्य से विचलित नहीं होता वही ब्राह्मण है।

उपनिषदों में प्रसिद्ध महर्षि अथर्वा ने पहले ऋषियों के साथ जो कहा था सो मैं कहता हूँ, सुनो। वह पुरुषों के पापों को प्रच्छादित करता (ढकता) है, इसलिए उसका नाम छन्द है। जो लोग शुद्ध कर्मज्ञान-लाभ के लिए उपनिषद्युक्त वेद पढ़ते हैं वे कभी छन्द के ज्ञाता नहीं हैं; क्योंकि वेद का प्रतिपादनीय जो परम पुरुष है उसका यथार्थ तत्त्व उन्हें ज्ञात नहीं होता। ५० हे धृतराष्ट्र, वेदों के कर्मकाण्ड-विषयक और ब्रह्मकाण्ड-विषयक दोनों तरह के अर्थ होते हैं। दोनों अर्थों का ज्ञान ब्रह्मप्राप्ति का कारण है। कर्मकाण्डार्थ का ज्ञान तो अनुष्ठान की अपेक्षा रखता है, किन्तु ब्रह्मकाण्डार्थ का ज्ञान अनुष्ठान की अपेक्षा नहीं रखता। इस कारण केवल कर्मज्ञान से कोई वेदज्ञ नहीं होता, सत्य का ज्ञान ही यथार्थ वेदज्ञ होने का प्रमाण है। अनेक महापुरुषों ने ऐसे वेदज्ञों के साथ रहने के प्रभाव से वेदवेद्य परब्रह्म का साक्षात्कार पाया है।

बहुत लोग चित्तशुद्धि की अधिकता के कारण वेद का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होते हैं, किन्तु वेद के असली मर्म को समझना बहुत कठिन है। कोई-कोई लोग रहस्यप्रतिपादक वेदांश को जानते हैं, किन्तु जानने योग्य विषय (ब्रह्म) से बिल्कुल ही अनभिज्ञ हैं। मतलब यह कि केवल सत्यनिष्ठ व्यक्ति ही निर्विकल्प सुख से परिचित होता है।

पण्डितों ने कहा है कि जैसे किसी वृक्ष की शाखा के द्वारा प्रतिपदा की चन्द्रकला का ज्ञान होता है, वैसे ही वेद की सहायता से परमात्मा के परम-पुरुषार्थरूप यथार्थ तत्त्व की उपलब्धि, किसी-किसी को, हो जाती है। जो वेद-वाक्य का भावार्थ बताने में अत्यन्त निपुण है, युक्ति के साथ श्रुतिमङ्गल अर्थ की आलोचना करने में समर्थ है, स्वयं मन्देह-हीन होकर दूसरे के संशय को दूर कर सकता है वही ब्राह्मण है। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊपर, नीचे, आस-पास, कहीं परमात्मा का पता नहीं लगता। ध्यान-मग्न तपस्वी लोग ध्यानयोग के मार्ग से उसका साक्षात्कार पाते हैं। महाराज, तुम शारीरिक और मानसिक चेष्टाओं को छोड़कर, शुद्ध मन से, परब्रह्म का ध्यान करो। मौन होने से या वन में रहने से कोई मुनि नहीं होता। जो ब्रह्म को ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण जानता है तथा ब्रह्म को सच्चिदा-

नन्द स्वरूप समभक्ता है वही श्रेष्ठ मुनि है। जो सब विषयों का अर्थ कर सकता है— ६०
सब विषयों को प्रत्यक्ष सा देखता है—वह सर्वज्ञ वैयाकरण है। राजन्, जैसे सीढ़ियों पर
चढ़ा जाता है वैसे ही साधक पुरुष धीरे-धीरे धर्म और वेद आदि का ज्ञान प्राप्त करता हुआ
अन्त को परब्रह्म का साक्षात्कार पाता है। ६३

चवालीसवाँ अध्याय

उपनिषद् की बातों का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, अब आप उपनिषद् की बातें सुनाइए। उनसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। वे विषय-संमर्ग-शून्य और अत्यन्त दुर्लभ हैं।

सनत्सुजात ने कहा—राजन्, आप प्रफुल्ल-हृदय होकर अधिक आप्रह को साथ मुझसे जो पूछ रहे हैं, वह ब्रह्मज्ञान शीघ्र नहीं प्राप्त होता। निश्चयात्मिका बुद्धि में अन्तःकरण की स्थिति होने पर जिसके द्वारा सब वृत्तियों का निरोध होकर केवल ब्रह्मचिन्तन ही रह जाता है उसी को ब्रह्म-विद्या या उपनिषद् कहते हैं। यह अध्यात्म-विद्या विधिपूर्वक गुरु के पास रहने से प्राप्त होती है।

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, आप कहते हैं कि ब्रह्मविद्या नित्यसिद्ध है, वह कर्मकाण्ड की तरह चेष्टा की अपेक्षा नहीं रखती—कार्य के समय ब्रह्मचर्य के साथ प्रकाशित होकर आत्मा में स्थित रहती है। तो ब्राह्मण को मुक्ति की प्राप्ति किस तरह हो सकती है? कृपा करके कहिए।

सनत्सुजात ने कहा—ब्रह्म नित्य प्रत्यक्ष होकर भी उपाधि का सम्बन्ध होने के कारण सहसा ज्ञानगम्य नहीं होता। अतएव जिस विद्या के द्वारा ब्रह्म की उपलब्धि होती है वह नित्य-सिद्ध होने पर भी साधना और यत्न की अपेक्षा रखती है। अब मैं वही गुरुपरम्परा और ब्रह्म-चर्य व्रत से सिद्ध होनेवाली ब्रह्मविद्या कहता हूँ।

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, ब्रह्मविद्या का साधन ब्रह्मचर्य क्या और कैसा है ?

सनत्सुजात ने कहा—हे धृतराष्ट्र ! जो लोग ब्रह्मविद्या की साधना के लिए गुरुगृह में जाकर, निष्कपट सेवा के द्वारा गुरु की हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त करते हुए, ब्रह्मचर्य में प्रवृत्त होते हैं, वे इसी लोक में ब्रह्ममूर्ति (जीवन्मुक्त) होकर परलोक में परब्रह्म में लीन होते हैं। जो लोग सत्वगुण ग्रहण करके ब्रह्मपद पाने की प्रत्याशा से जाड़ा-गर्मी आदि द्वन्द्वों को सहते और विषय-वासना को छोड़ते हैं उनका आत्मा, मूँज से सिकी की तरह, शरीर से पृथक् हो जाता है। पिता और माता पहले शरीर को उत्पन्न करते हैं, उसके बाद आचार्य के उपदेश के प्रभाव से ब्रह्मप्रामिरूप दूसरा जन्म होता है। वह जन्म अजर, अमर और पवित्र है। जो अनुशासन के द्वारा ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं और उसका फल मोक्ष देकर सबका द्वैतभय मिटाते और सबकी

रक्षा करते हैं, वे गुरुदेव ही मन्त्रचे माता-पिता हैं। शिष्य को उनका कृतज्ञ रहकर कभी उनसे विद्रोह या विरोध नहीं करना चाहिए। मतलब यह कि अभिमान और क्रोध छोड़कर, पवित्र और सावधान होकर, स्वाध्यायपाठ और नित्य गुरु की वन्दना करना शिष्य का सबसे बड़ा और पहला कर्तव्य है। यही ब्रह्मचर्य की पहली सीढ़ी है। जो मनुष्य जीविका के लिए गुरु के भरोसे न रहकर, स्वयं पवित्र होकर, सबेर और शाम भिक्षा के द्वारा अपनी जीविका चलाते हुए ११ विद्यालाभ करते हैं, उनका वह अनुष्ठान भी ब्रह्मचर्य की पहली सीढ़ी कहा जाता है। मन-वाणी-काया से, मन और धन समर्पण करके भी, आचार्य का प्रिय करना ब्रह्मचर्य की दूसरी सीढ़ी है। गुरु की तरह गुरु की पत्नी और गुरुपुत्र से भी व्यवहार करना चाहिए। यह भी ब्रह्मचर्य की दूसरी सीढ़ी है। आचार्य विद्यादान आदि के द्वारा जो उपकार करता है, उसे प्रयोजन-सहित विशेष रूप से हृदय में धारण करके, प्रफुल्ल हृदय से यह सोचना कि “गुरु ने मुझ बढ़ाया है” ब्रह्मचर्य की तीसरी सीढ़ी है। गुरु-दक्षिणा देकर गुरु का ऋण चुकाये बिना ज्ञानी शिष्य को दूसरे आश्रम में प्रवेश न करना चाहिए। और, “मैं गुरु को यह धन देता हूँ” इसे प्रकट करना कैसा, अपने मन में भी स्थान नहीं देना चाहिए। दक्षिणा पाकर गुरु सन्तुष्ट हों और सन्तोषजनक बातें कहें, इसकी भी चेष्टा करनी चाहिए। यह ब्रह्मचर्य की चौथी सीढ़ी है। इन्हें ब्रह्मचर्य के चार पाद (चरण) भी कहते हैं। शिष्य ब्रह्मचर्य के प्रयोजनरूप ब्रह्मविद्या के इन चारों चरणों में से एक चरण को बुद्धि के परिपाक से, दूसरे चरण को आचार्य के उपदेश से, तीसरे चरण को उत्साह से और चौथे चरण को सहपाठियों के साथ विचार करके प्राप्त करता है। पण्डितों का कहना है कि धर्म आदि बारह, और आसन आदि अन्य अङ्ग और योग ही ब्रह्मचर्य के निदान कारण हैं। कर्म और ब्रह्मलाभ के द्वारा ब्रह्मचर्य सम्पन्न होता है। गुरुदक्षिणा के लिए शिष्य जो धन लावे वह गुरु को ही दे दे। आचार्य की जीविका इसी तरह चलती है। शिष्य को गुरुपुत्र के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि वह गुरु के साथ करता है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करने से शिष्य सब प्रकार से समृद्ध होकर बहुत से पुत्र और कीर्ति प्राप्त करता है। अनेक दिशाओं और देशों के रहनेवाले लोग जलवर्षा की तरह उसे धन देते हैं और अनेक लोग ब्रह्मचर्य-साधन के लिए शिष्यभाव से उसके घर में रहते हैं। इसी प्रकार के ब्रह्मचर्य के द्वारा देवता देवभाव को प्राप्त हुए हैं और महाभाग महर्षियों को ब्रह्मलोक २० की गति मिली है। इस ब्रह्मचर्य से ही गन्धर्वों और अप्सराओं को रूप मिला है। इसी ब्रह्मचर्य के बल से सूर्यदेव ऐसे तेजस्वी होकर उदय की समृद्धि दिखाते हैं। अभीष्ट फल देनेवाले चिन्तामणि के समान इस ब्रह्मचर्य को जिन्होंने प्राप्त कर लिया है वे देवताओं से वाञ्छित पदार्थ प्राप्त करते हैं। जो तपस्या के साथ चार चरणों से युक्त ब्रह्मचर्य को धारण करते हैं वे राग-द्वेष आदि से शून्य और तत्त्वज्ञान के लाभ में समर्थ होकर अन्त को मृत्यु को जीत सकते हैं। राजन्,

ब्रह्मविद्या से शून्य पुरुष भी विशुद्ध कर्मों के अनुष्ठान के बल से अनित्य लोकों को जीत लेते हैं; किन्तु विद्वान् व्यक्ति विज्ञान के प्रभाव से विश्वात्मा ब्रह्म को ही प्राप्त करता है। मतलब यह कि ज्ञान ही मुक्तिलाभ का अद्वितीय उपाय है।

धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, मैंने सुना है कि ब्रह्मदर्शी पुरुष के हृदय में ब्रह्म का रूप सफेद, लाल, श्याम, कज्जल, धूस्र या पिङ्गल रङ्ग का सा भासित होता है। कृपा कर बताइए कि उस सर्वमय नित्य परमात्मा का रूप किस प्रकार का है।

सनत्सुजात कहते हैं—हे धृतराष्ट्र! ब्रह्म का रूप सफेद, लाल, श्याम, धूस्र या पिङ्गल रङ्ग का सा अवश्य भासित होता है; किन्तु वह पृथ्वी, अन्तरिक्ष, सागरजल, तारागण, बिजली, मेघमाला, वायुचक्र, देवलोक आदि किसी स्थान में विद्यमान नहीं है। वह सूर्यमण्डल में, चन्द्रमण्डल में, शुक, यजुः, साम, अथर्व आदि वेदों में या रथन्तर, बार्हद्रथ या महाव्रत यज्ञों में, कहीं नहीं देख पड़ता। क्योंकि वह ब्रह्म नित्य है, नाम और रूप से रहित है, अनतिक्रमणीय है और अज्ञानरूप उपाधि से अतीत है। सबका संहार करनेवाला काल भी प्रलय के समय उसी ब्रह्म में लीन हो जाता है। उसका रूप अत्यन्त अलख है; छुरे की धारा की तरह अत्यन्त सूक्ष्म और पर्वत से भी अधिक बड़ा है। वह ब्रह्म विकारहीन और सब प्राणियों का अधिष्ठाता है। यह देख पड़नेवाला पञ्चभूतों का प्रपञ्च वही है। वह ब्रह्म है, वह यश है, वह सर्वमय है, वह बृहत् है, वह रमणीय है। जैसे सुवर्ण से कुण्डल आदि गहने बनते हैं, घट अन्त को मृत्तिका में लीन हो जाता है, वैसे ही सब प्राणी और पदार्थ उसी से उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाते हैं। वह अद्वैत और जगदाकार महत् यश (सर्वव्यापक) है। पण्डित लोग कहते हैं कि उसका विकार नाममात्र को है, वास्तविक नहीं है। यह विश्व उसी में प्रतिष्ठित है। जो लोग उसे जानते हैं वे ही अमर हैं।

३१

पैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्म और ब्राह्मण का वर्णन

सनत्सुजात कहते हैं—राजन् ! शोक, क्रोध, लोभ, काम, मोह, निद्रा, ईर्ष्या, अभिमान, विधित्सा, स्नेह, असूया और निन्दा, ये बारह दोष बहुत बड़े हैं। ये मनुष्य की मृत्यु के कारण हैं। इनमें से हर एक दोष मनुष्यों को घेरता है। इन दोषों के आक्रमण से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और मनुष्य तरह-तरह के पाप करता है। स्पृहाशील, निर्दय, कठोर वचन बोलनेवाला, बकवादी, हृदय में कोप को छिपाये रखनेवाला और अहङ्कारी, ये छः आदमी प्राप्त अर्थ का समुचित व्यवहार नहीं करते; बल्कि ये लोग सज्जनों का अपमान किया करते हैं। जो आदमी

स्त्रीसङ्ग को ही परम पुरुषार्थ समझकर दुर्व्यवस्थित होता है, जो अत्यन्त अहङ्कारी है, जो मनुष्य दान करके अपनी बड़ाई आप करता है, जो कञ्जूस है, जो बलपूर्वक दूसरे का अनिष्ट करता है, जो अपनी अधिक प्रशंसा करता है और जो स्त्री से द्वेष रखता है, ये सात मनुष्य भी निन्दनीय हैं। धर्म, सत्य, तप, इन्द्रियदमन, मत्सरहीनता, लोकलज्जा, क्षमा, असूया का त्याग, दान, शास्त्रज्ञान, धैर्य और सहनशीलता, ये बारह—ब्रह्मज्ञानी के महाव्रत हैं। जो इन बारह गुणों को नहीं छाड़ता वह सारी पृथ्वी का अधीश्वर हो सकता है। इनमें से तीन, दो या एक भी गुण जिसमें होता है, उस व्यक्ति की दृष्टि में दुनिया की कोई भी चीज़ उक्त गुण की समता नहीं कर सकती। दम, त्याग और अप्रमाद, ये तीन मोक्ष की सीढ़ियाँ हैं। विवेकी ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण ही इनके अधिकारी हो सकते हैं।

सत्य हो या मिथ्या, किसी के दोष को कहना ब्रह्मज्ञानी का कर्तव्य नहीं है। किसी का दोष कहने से अवश्य नरक की गति प्राप्त होती है। पहले इतना कहा जा चुका है कि मद के अठारह दोष हैं। अब उन दोषों का स्पष्ट वर्णन तुमको सुनाता हूँ। पराई स्त्री आदि को हर लेना, धर्म आदि में विघ्न डालना, गुणी पुरुषों पर दोषारोपण करना, भूठ बोलना, काम, क्रोध, मदिरा-पान आदि व्यसनों के वश होना, निन्दा करना, चुगलखोरी, अर्थहानि, विवाद, पर-मन्ताप, प्राणियों को सताना, ईर्ष्या, मोह, अतिवाद (कठोर वचन), असावधानी और औरों के अनिष्ट में लगे रहना, ये अठारह मद के दोष हैं। इस कारण प्राज्ञ पुरुष को कभी मद के ११ अधीन न होना चाहिए। मद अत्यन्त दूषित है।

हे धृतराष्ट्र, सौहार्द के छः गुण हैं। किसी की प्रिय घटना को देखकर हर्ष प्रकट करना; अप्रिय घटना को देखकर व्यथित होना; प्रार्थी पुरुष को परम प्रिय ऐश्वर्य और पुत्र-स्त्री तक दे डालना; किसी को सर्वस्व देकर, यह सोचकर कि मैंने इसका उपकार किया है, उसके यहाँ नहीं रहना; किसी का भरोसा न करके अपनी कमाई वस्तु का उपभोग करना और पराये हित के लिए स्वार्थत्याग से विमुख न होना। सौहार्द के ये परम प्रशंसनीय छः गुण हैं। जो धनी गृहस्थ इन गुणों को ग्रहण करता है, दानशील और सत्त्वसम्पन्न रहता है, उसकी चत्तु आदि पाँचों इन्द्रियाँ रूप आदि अपने विषयों से निवृत्त हो जाती हैं। यही समृद्धिपूर्ण तप और सद्गति (मोक्ष) प्राप्त करने का उपाय है। जो लोग धैर्य छोड़ देते हैं, वे भी “हम ब्रह्म-लोक में दिव्यसुख भोगेंगे” इस सङ्कल्प से उत्तम गति प्राप्त करते हैं। सत्य सङ्कल्प से ही यज्ञों की वृद्धि होती है। कोई मन का यज्ञ, कोई वाणी का यज्ञ और कोई कर्म का यज्ञ करता है। सत्यसङ्कल्पवाला पुरुष ही ब्रह्म को पाता है।

राजन्, यह मेरा कहा हुआ योगशास्त्र का सारांश ब्रह्म की प्राप्ति का कारण है। यह यश को बढ़ानेवाला प्रसङ्ग शिष्यों को पढ़ाना चाहिए। पण्डितों का कहना है कि इस शास्त्र के सिवा

और सब शास्त्र वाक्य-विकार मात्र हैं। सभी विषय योग के अधीन हैं। योगशास्त्र में अभिज्ञ पुरुष ही मुक्ति प्राप्त करता है। कर्म के अच्छी तरह अनुष्ठान से भी ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। अविद्वान् पुरुष के किये हुए यज्ञ या हवन से मोक्ष या परलोक का आनन्द नहीं मिल सकता। इस प्रकार चुपचाप अकेले ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। मन की चेष्टाओं को भी छोड़ देना चाहिए। स्तुति से प्रसन्न और निन्दा से क्रोधित न हो। ब्राह्मण का यही धर्म है। साङ्गोपाङ्ग वेद का अनुशीलन करने से क्रमशः इसी लोक में ब्रह्म का साक्षात्कार पाकर साधक तन्मय हो सकता है। २१

छियालीसवाँ अध्याय

शुक्र-माहात्म्य-वर्णन

सनत्सुजात ने कहा—राजन्, महाज्योति और महायश के नाम से प्रसिद्ध और प्रकाशमान “शुक्र” की उपासना सब देवता करते हैं। उसी से सूर्य भी इतने तेजस्वी और प्रकाशशील हैं। योगी लोग ही उन सनातन भगवान् शुक्र के दर्शन पाते हैं। शुक्र से ब्रह्म की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। वह शुक्र सूर्य आदि ज्योतिर्मय पदार्थों को ताप पहुँचाता है। वह किसी के द्वारा प्रकाश नहीं पाता, बल्कि वही सबको प्रकाश पहुँचाता है। योगी लोग ही उन सनातन भगवान् शुक्र को देख पाते हैं। जीव और ईश्वर दोनों की अधिष्ठानभूमि हृदयाकाश है। उनमें से एक मायाशून्य और सूर्य का भी प्रकाशक है; भूलोक और द्युलोक उसी में अधिष्ठित हैं। योगी लोग ही उस सनातन पुरुष का साक्षात्कार पाते हैं। भगवान् शुक्र पृथ्वी, आकाश, दिशा, भुवन और पूर्वोक्त दोनों देवों को धारण करते हैं। महासागर और सब नदियाँ उसी से निकली हैं और बहती हैं। योगी लोग ही उस सनातन भगवान् के दर्शन पाते हैं। इन्द्रियरूप धोड़ों से युक्त, कर्माधीन, नश्वर देहरूप रथ पर चढ़कर जीव उसी अजर अमर परमात्मा के पद को जाता है। योगी लोग ही उस सनातन भगवान् के दर्शन पाते हैं। उसका रूप सादृश्यरहित और चक्षु आदि इन्द्रियों से परे है। मन, बुद्धि और हृदय के द्वारा उस जानने से मुक्ति मिलती है। योगी लोग ही उस सनातन भगवान् के दर्शन पाते हैं। चित्त, स्मृति, श्रोत्र, श्रवण, वाक्, वचन, शब्द, वियद्, प्राण, श्वसन, संस्कार और सुकृत से पूर्ण अविद्यारूपिणी दुस्तर नदी देवताओं द्वारा सुरक्षित होकर बहती है। जीवगण उसका जल पीकर, उसमें पुत्र आदि मधुर फलों को देखकर, तृप्त होते हैं और बारम्बार उसी शुक्र नाम के अधिष्ठान में विचरते हैं। योगी लोग ही उस सनातन भगवान् को देख पाते हैं। जो जीव परलोक में कर्म का आधा फल भोगकर आधा फल भोगने के लिए इस लोक में जन्म लेता है और सभी प्राणियों में अन्तर्यामी के रूप से स्थित है, वही यज्ञ आदि का प्रवर्त्तक है। योगीजन ही उस सनातन पुरुष

को देखते हैं। अविद्या एक वृत्त है, स्त्री-पुत्र आदि उसके पत्ते हैं और चिदात्मारूप पत्त-हीन पत्तो उस पर बैठा हुआ है। पङ्क निकलने पर वह इच्छा के अनुसार अनेक स्थानों में विचरता है। योगीजन ही उस सनातन भगवान् को देख पाते हैं।

१० पूर्णस्वरूप पूर्ण स्वरूप का क्रमशः उद्धार, निर्माण और संहार करता है। अन्त को एक-मात्र पूर्ण ही बच रहता है। योगी लोग उस सनातन पुरुष का साक्षात्कार प्राप्त करते हैं। वायु उसी से उत्पन्न होकर उसी में लीन होता है। अग्नि, सोम और प्राण की भी उत्पत्ति उसी से हुई है। मतलब यह कि वह पूर्णस्वरूप सभी वस्तुओं की उत्पत्ति का स्थान और वाणी से परे है। योगी जन ही उस सनातन पुरुष के दर्शन पाते हैं।

अपानवायु प्राणवायु में, प्राण मन में, मन बुद्धि में और बुद्धि परमात्मा में लीन होती है। योगीजन ही उस सनातन भगवान् को देखते हैं। हंस जैसे किसी समय एक चरण को छिपा लेता है, वैसे ही चार चरणोंवाला परमात्मा तुरीय नाम के चरण को प्रकाशित न करके केवल तीन चरणों से विचरता है। उसका दर्शन पाने से मृत और अमृत, कोई भाव नहीं रहता। योगी जन ही उस सनातन पुरुष को देख पाते हैं। अन्तरात्मा अंगुष्ठपरिमित, सर्वकार्यममर्थ, आदि-कारण, चैतन्य स्वरूप, स्तुतियोग्य और लिङ्ग शरीर के सम्बन्ध से नित्य है। मूढ़ जन उसे नहीं देख पाते। योगीजन ही उस सनातन पुरुष के दर्शन पाते हैं। शमादि गुणों से सम्पन्न या रहित दोनों प्रकार के मनुष्यों में तथा बद्ध और मुक्त आत्माओं में ब्रह्म समान रूप से देख पड़ता है। मुक्त पुरुषों को उस परमात्मा में परमानन्द का स्रोत प्राप्त हो जाता है। योगीजन ही उस सनातन पुरुष को देख पाते हैं। ब्रह्मवेत्ता लोग अभिज्ञ होकर दोनों लोकों में विचरण कर सकते हैं, और अभिहोत्र में आहुति न देकर भी उसका फल पाते हैं। राजन्, तुम्हारी ब्राह्मी बुद्धि लघुता को न धारण करे; क्योंकि धीर ध्यानशील पुरुष ब्रह्मज्ञान से ब्रह्मरूप हो जाते हैं। योगी जन ही उस सनातन पुरुष का साक्षात्कार पाते हैं। परमात्मा मन और वाणी से अगोचर, योग से ही प्राप्य, निर्विकार और जीव को अपने में लीन करनेवाला है। उसे जानने से मुक्ति मिलती है। योगीजन ही उस सनातन पुरुष को देखते हैं। जो अनन्तपञ्चयुक्त है और मन की तरह वेग से गमन करता है वही अन्तःस्थित अन्तरात्मा को प्राप्त होता है। योगीजन ही उस सनातन पुरुष को देख पाते हैं।

२० परमात्मा का रूप अदृश्य है किन्तु विशुद्ध सत्त्व-सम्पन्न होने से उसका दर्शन होता है। जो पुरुष सबका सुहृद् और इन्द्रियदमन में तत्पर होकर, पुत्र-स्त्री आदि के वियोग में भी व्याकुल न होकर, संन्यास धारण करता है वह मुक्ति को पाता है। योगी जन ही उस मुक्तिदाता भगवान् को देखते हैं। शिक्ता और स्वभाव के कौशल से मनुष्य अपने पापकर्मों को छिपाते हैं और मूढ़ जन बाहर से अच्छे देख पड़नेवाले विषयों में आप आसक्त होकर औरों को भी उनकी ओर लगाते हैं। किन्तु योगीजन साधुसङ्ग-प्राप्ति की प्रत्याशा से उस सनातन भगवान् के दर्शन

करते हैं। मैं सुख-दुःख, जरा-मरण आदि के हाथ से छुटकारा पा चुका हूँ। इस कारण जन्म-मरण से भी अतीत हूँ। इसलिए मुझे मोक्ष-प्राप्ति की भी इच्छा नहीं है; क्योंकि ईश्वर में ही मर्त्य-मिथ्या और मत्-असत् सबका अन्त है। योगी जन ही उस सनातन पुरुष के दर्शन पाते हैं। कार्यवश मनुष्य में ही उत्कर्ष और अपकर्ष देखा जाता है; चैतन्यरूपी परब्रह्म में यह कुछ नहीं है। मतलब यह कि परब्रह्म उत्कृष्ट या अपकृष्ट नहीं है। वह स्वयं अमृतस्वरूप और सर्वदा समदर्शी है। पाप या पुण्य उसे छू नहीं सकता। राजन्, तुम उसी ब्रह्म को पाने का प्रयत्न करो। योगीजन ही उस सनातन पुरुष को देखते हैं।

ब्रह्मज्ञानी का हृदय निन्दा से तप्त नहीं होता। वेद के अध्ययन में मन न लगाना या अग्नि-होत्र न करना भी उसे सन्ताप नहीं पहुँचा सकता। ध्यानशील पुरुष को प्राप्त होनेवाला प्रज्ञा ब्रह्मविद्या के प्रभाव से शीघ्र ही मिल जाती है। योगीजन ही उस सनातन पुरुष के दर्शन पाते हैं। सब प्राणियों के आत्मतत्त्व को देखनेवाला पुरुष अन्य को विषयासक्त देखकर कभी शोक-ग्रस्त नहीं होता। विषयासक्त पुरुष ही शोक से व्याकुल होते हैं। जलाशय जैसे प्यासे की प्यास बुझाता है, वैसे ही सब वेद आत्मज्ञानी पुरुष के अभीष्ट को सिद्ध करते हैं। अंगुष्ठमात्र हृदयस्थ आत्मा को कोई नहीं देखता। वह जन्म और मोह आदि से रहित और ब्रह्माण्ड का नियामक है। विद्वान् लोग उसे जानकर निर्मल होते हैं।

पिता, माता, पुत्र, भूत, भविष्य और वर्तमान का आत्मा, वृद्ध पितामह, प्रपितामह आदि सब मैं ही हूँ। तुम मेरे आत्मा में स्थित हो। न मैं तुम्हारा हूँ और न तुम मेरे हो। आत्मा ही मेरी उत्पत्ति और स्थिति का स्थान है। मैं ओतप्रोतरूप से समग्र विश्व में व्याप्त हूँ। मेरा अधिष्ठान कभी विनाश को नहीं प्राप्त होता। मैं जन्म आदि से हीन होकर भी आलस्य छोड़कर दिन-रात विचरता रहता हूँ। आत्मजिज्ञासु और परिणामदर्शी पुरुष विशेष रूप से मुझे जानकर सन्तोष को प्राप्त होते हैं। सूक्ष्म से भी सूक्ष्म वह परमात्मा सभी प्राणियों के भीतर अन्तर्यामी रूप से विराजमान है। ब्रह्मज्ञानी लोग उस सर्वभूतजनक परमात्मा को हृदय-कमल के ऊपर विराजमान देखते हैं।

यानसन्धिपर्व

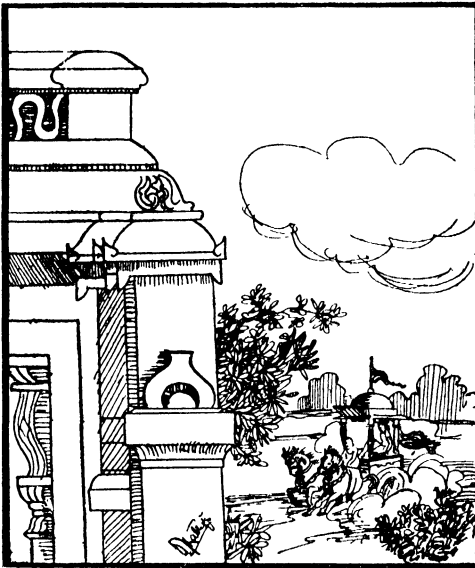
सैतालीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र की सभा में सञ्जय का आना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, इस प्रकार विदुर और सनत्सुजात से बातचीत करने में ही धृतराष्ट्र ने वह रात बिता दी। सबेरा होने पर सब प्रसन्नचित्त राजा लोग सञ्जय की

वातं सुनने के लिए कौरवों की सभा में आये। वह सभाभवन उज्ज्वल, लम्बा-चौड़ा, अनेक वस्त्र-मालाओं से शोभित, सोने के चबूतरों से अलङ्कृत और सुगन्धित जल के छिड़काव से शीतल था। उसमें सुवर्ण, लकड़ी, पत्थर और हाथीदाँत के आसन चारों ओर पड़े हुए थे। वहाँ धृतराष्ट्र के साथ भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, कृतवर्मा, जयद्रथ, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, बाह्लीक, महात्मा विदुर, महारथी युयुत्सु और अन्य शूर-वीर राजाओं ने प्रवेश किया। उसके बाद दुर्योधन के साथ दुःशामन, चित्रसेन, शकुनि, दुर्मुख, दुःसह, कर्ण, उलूक और विवि-

८



शति आदि वीर भी पहुँचे। आसनों पर उन प्रतापी राजाओं के बैठने के बाद वह सभा देवगण-शोभित अमरावती पुरी अथवा सिंहों से सुरक्षित गिरिकन्दरा के समान शोभित होने लगी।

इसके बाद द्वारपाल ने आकर निवेदन किया कि राजन्, सूतपुत्र सञ्जय आये हैं। पाण्डवों के पास जो रथ भेजा गया था वह पीछे आ रहा है। हमारे दूत शीघ्रगामी घोड़े पर बैठकर शीघ्र आ गये हैं। अब कुण्डल पहने हुए सञ्जय ने महात्मा राजाओं से शोभित राजसभा में प्रवेश करके कहा—हे कौरवो, मैं पाण्डवों के पास हो आया। उन्होंने जो कुछ कहा है वह सुनिए। पाण्डवों ने अवस्था के अनुसार

सब कौरवों का मत्कार किया है। उन्होंने वृद्धों को प्रणाम किया है, बराबरवालों से यथोचित सम्भाषण कहा है और छोटेों को सादर आशीर्वाद दिया है। हे राजाओ, महात्मा महाराज

१७ धृतराष्ट्र की आज्ञा से पाण्डवों के निकट जाकर मैंने जो कहा और सुना है सो सब सुनिए।

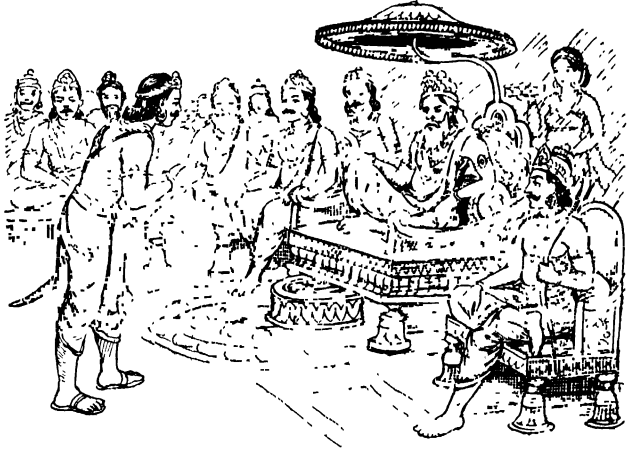
अड़तालीसवाँ अध्याय

पाण्डवों का सँदेश कहना

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, सब राजाओं के सामने मैं तुमसे पृष्ठता हूँ कि उन योद्धा पुरुषों के नेता, दुरात्मा पुरुषों का जीवन हरनेवाले, उत्साही अर्जुन ने क्या कहा है ?

सञ्जय ने कहा—युद्ध की इच्छा रखनेवाले वीर अर्जुन ने युधिष्ठिर की आज्ञा से श्रोकृष्ण के सामने मुझसे जो कहा है वह मैं राजा दुर्योधन को सुनाता हूँ । निर्भय अर्जुन ने मुझसे कहा है—हे

सञ्जय, जिन दुर्वचन बोलने-
वाले, दुरात्मा, मूढ़ सूतपुत्र
कर्ण ने मौत निकट आने के
कारण मुझसे युद्ध की इच्छा
प्रकट की है और जो राजा
लोग पाण्डवों से युद्ध करने
आये हैं, उनके आगे दुर्यो-
धन और उनके मन्त्रियों से
कहना कि क्रोध से लाल
आँखें करके गाण्डीव धनुष
धारण करनेवाले अर्जुन ने,
देवमण्डली में स्थित वज्र-



पाणि इन्द्र की तरह, पाण्डवों और सृञ्जयों के सामने कहा है—अगर दुर्योधन अजमीढ़ वंश में उत्पन्न महाराज युधिष्ठिर को उनका राज्य नहीं देंगे तो मैं समझूँगा कि धृतराष्ट्र के पुत्रों के भोगने के लिए उनका पूर्व जन्म का पाप अभी बाकी है । उसी का फल भोगने के लिए भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण, सात्यकि, शम्भुधारी धृष्टकेतु और शिखण्डी के साथ उनका युद्ध होगा; और उस युद्ध में वे इन्द्र-तुल्य धर्मराज युधिष्ठिर भी जायेंगे जो अनायास स्वर्ग, पाताल और मनुष्य-लोक को भस्म कर सकते हैं । यदि दुर्योधन इन वीरों के साथ युद्ध करना चाहेंगे तो अवश्य पाण्डवों के सब प्रयोजन सिद्ध होंगे । पाण्डवों के प्रयोजन की सिद्धि के लिए सन्धि के प्रस्ताव की ज़रूरत नहीं । इच्छा हो तो युद्ध करें । परम धार्मिक राजा युधिष्ठिर वनवास के लिए देश से निकाले जाकर वन में लगातार दुःसह दुःखशय्या पर सोये हैं । दुर्योधन उससे भी अधिक दुःखदायक मृत्यु की अन्तिम शय्या पर सोकर प्राणत्याग करें । कपटी दुरात्मा दुर्योधन लोक-लज्जा, ज्ञान, तप, दम, शूरता और धर्म की रक्षा आदि के द्वारा कभी पाण्डवों को हरा नहीं सके । किन्तु राजा युधिष्ठिर ने सरलता, तप, दम, शूरता, बल आदि से सम्पन्न और नम्र होकर भी केवल सत्य के खयाल से दुःसह क्लेश सहते हैं । जब विशुद्ध-हृदय महात्मा बड़े पाण्डव धर्मराज युधिष्ठिर उद्योग और उत्साह के साथ कौरवों पर पुराना क्रोध प्रकट करेंगे और गर्मियों की दोपहरी में प्रचण्ड आग जैसे घास-फूस को जलाती है वैसे क्रोध से प्रज्वलित होकर वे जब दुर्योधन की सेना का संहार करेंगे तब दुर्योधन को पछताना पड़ेगा । जब दुर्योधन देखेंगे

कि साक्षात् काल के समान महाबली, पराक्रमी, गदा-पाणि, शत्रु-सेना का नाश करनेवाले भीमसेन कवच पहनकर भीमवेश से रथ पर सवार हैं और शत्रु-सेना के सामने पहुँचकर क्रोध का दारुण विष उगल रहे हैं, तब उनको पछताकर मेरा कहा याद करना पड़ेगा। जब दुर्योधन देखेंगे कि भीमसेन पर्वत-शिखर ऐसे हाथियों को गिरा रहे हैं, उन हाथियों के फटे हुए मस्तकों से रक्त

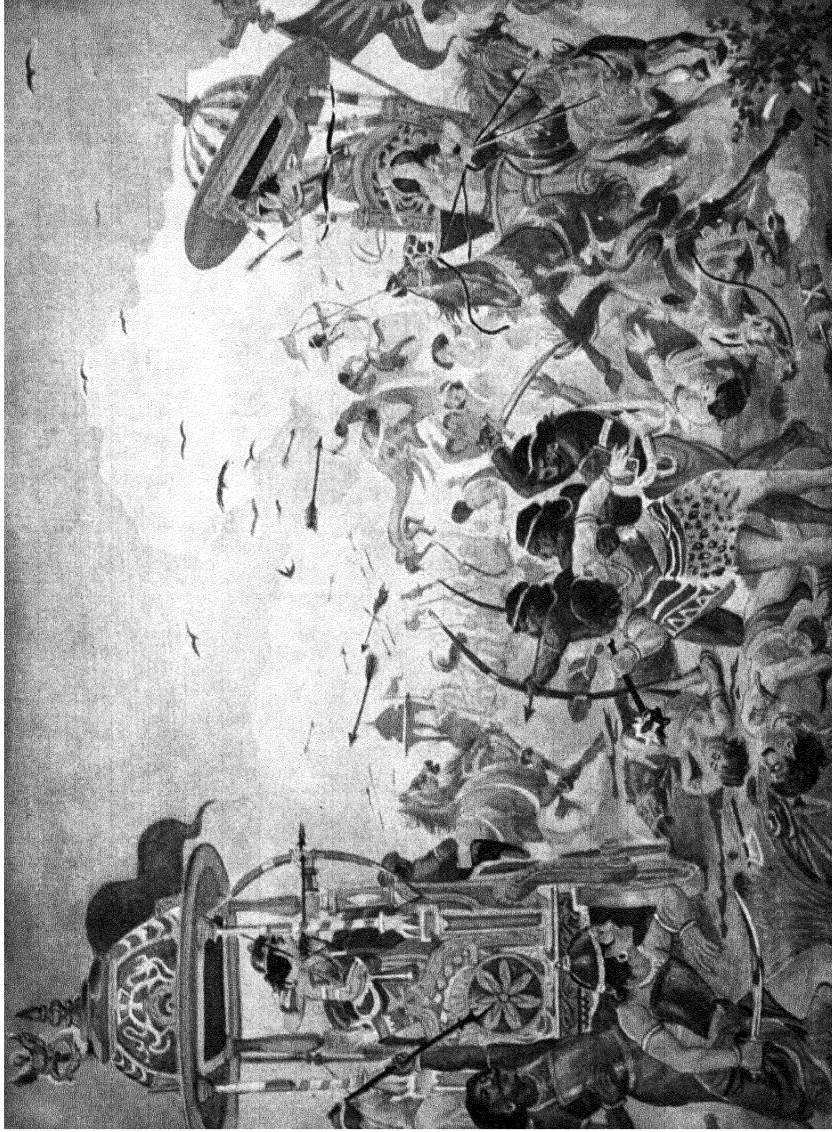


वह रहा है, तब उन्हें अवश्य पछ-ताना पड़ेगा। जब महाबली भयंकर स्वभाववाले भीमसेन, गायों के झुण्ड में घुसे हुए सिंह की तरह, सेना में घुसकर धृतराष्ट्र के पुत्रों का संहार करेंगे, तब दुर्योधन को पछताना पड़ेगा। जब अश्व-विद्या में सुशिक्षित वीर भीमसेन अकेले रथ पर बैठकर रथों और पैदलों का विध्वंस करेंगे, खाँड़ से वेग के साथ हाथियों को काटेंगे और कुल्हाड़ी से कटे हुए वन की तरह दुर्योधन की सेना

१ को छिन्न-भिन्न करेंगे, तब दुर्योधन को इस युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा। जब दुर्योधन देखेंगे कि भीमसेन शस्त्र की आग से, फूस के बने भोपड़ोंवाले गाँव की तरह, उनकी सेना को भस्म कर रहे हैं और महाबली पराक्रमी योद्धा लोग डर के मारे रण छोड़-छोड़कर भागे जा रहे हैं, तब युद्ध के लिए उनको पछताना पड़ेगा।

रथयुद्ध करनेवालों में श्रेष्ठ, विचित्र याँडा नकुल जब दाहनी ओर के तरकस से सैकड़ों बाण बरसाकर रथ पर से लड़नेवालों को एक साथ घायल करेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा। सदा सुख-भोग के योग्य नकुल ने वनवास की दुःखशय्या में लेटकर क्रोधित साँप की तरह साँसें ली हैं। वही नकुल जब क्रोध का विष उगलेंगे तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा। महाराज युधिष्ठिर ने जिन राजाओं को रण का निमन्त्रण दिया था वे सब उनके झण्डे के नीचे आकर जमा हो गये हैं। जब वे सब वीर राजा श्रेष्ठ रथों पर चढ़कर कौरव-सेना पर आक्रमण करेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा।

देवतुल्य बलशाली अस्त्र-विशारद द्रौपदी के पाँचों पुत्र, जीवन की आशा छोड़कर, जब कौरवों पर आक्रमण करेंगे और प्रौढ़ वीरों की तरह पराक्रम प्रकट करेंगे तब दुर्योधन को युद्ध के



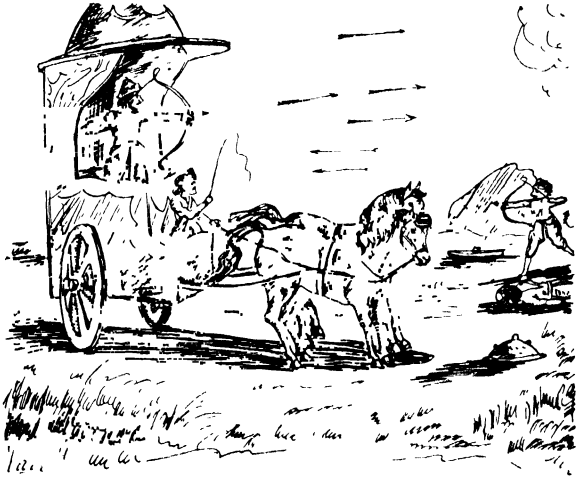
नकुल जब दहिनी ओर के तरफ से सकड़ें बाण बरसा कर रथ पर से लड़नेवालों को धायल करेंगे तब दुर्योधन को युद्धके लिए पकड़ाना पड़ेगा ।

पृ० १६०८

लिए पछताना पड़ेगा । जब आसतायी सहदेव शब्द-हीन पहियांवाले, सुवर्ण-मण्डित, सुशिक्षित घोड़ों से युक्त रथ पर चढ़कर बाणों की वर्षा करते हुए राजाओं के सिर काटेंगे, तब वीर यादवाओं को भी डरकर दाहने-बायें भागते देख दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । लज्जाशील, युद्धविशारद, सत्यवादी, महाबलवान्, पराक्रमी, सब धर्मों के ज्ञाता, धर्मात्मा, फुरतीले, वेगशाली सहदेव धीरे युद्ध में गान्धारराज शकुनि पर जब आक्रमण करेंगे और उनके प्रहार से कौरवों की सेना इधर-उधर भाग खड़ी होगी, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । जब महा-

३०

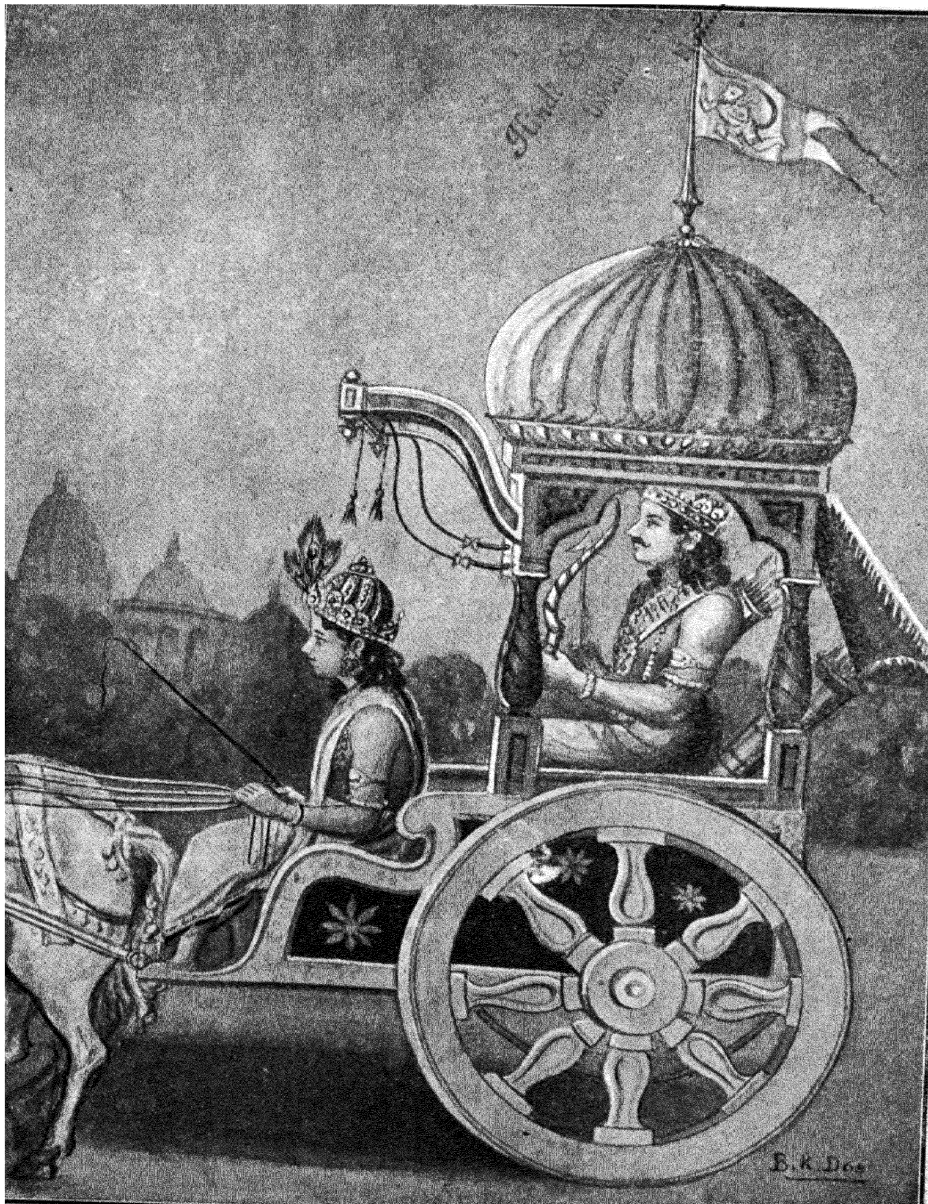
धनुर्धर, कृतास्त्र, युद्धविशारद द्रौपदी के पुत्र तीक्ष्ण विषवाले काले नागों की तरह समर-भूमि में उतरेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । जब श्रीकृष्ण के तुल्य अस्त्र-निपुण और शत्रुनाशन अभिमन्यु वर्षा की तरह बाण-वर्षा करके शत्रुसेना का संहार करेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । सिंह-सदृश वीर्यशाली, फुरतीले, युद्धविशारद प्रभद्रक नाम के युवक यादवा जब सेना-सहित धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार भगावेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । जब सेना-सहित कौरवगण महारथी विराट और द्रुपद को अलग-अलग अपनी सेना लेकर युद्धभूमि में आते देखेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । अस्त्रविद्या में निपुण राजा द्रुपद जब रथ पर चढ़कर, क्रोध से विह्वल होकर, अनायास बाणों से नौजवानों के सिर काटेंगे तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । जब शत्रुदमन राजा विराट अपने पुत्र उत्तर और मत्स्यदेश के



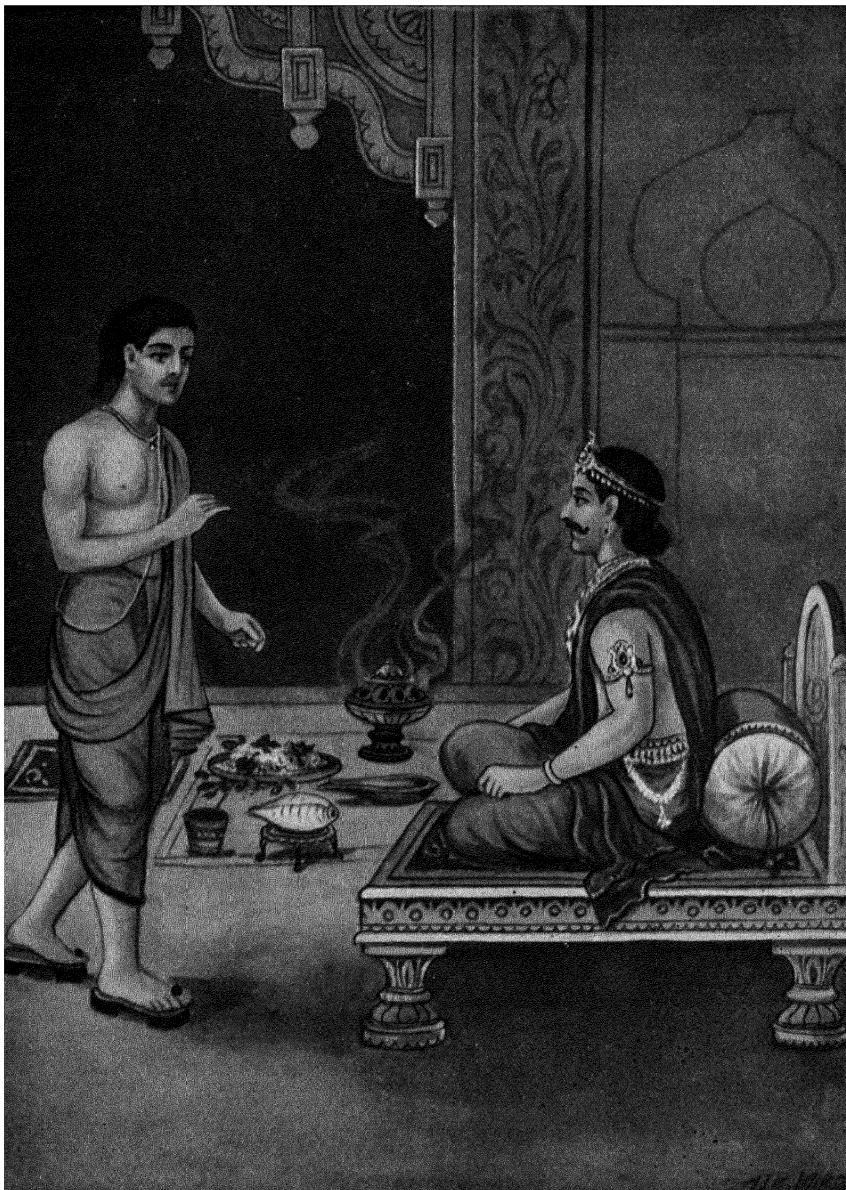
सजीले सैनिकों के साथ शत्रु-सेना में प्रवेश करेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । जब मत्स्यराज के पुत्र महारथी उदारप्रकृति उत्तर कवच पहनकर युद्धभूमि में उतरेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । जब शिखण्डी कवच पहनकर, दिव्य घोड़ोंवाले रथ पर बैठकर, रथों को नष्ट-भ्रष्ट कर, रथी वीरों को खोजते हुए, पितामह भीष्म के ऊपर हमला करेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । मैं निश्चय के साथ कहता हूँ कि शिखण्डी के हाथ से कुरुश्रेष्ठ भीष्म का देहान्त यहां पर पाण्डवों के शत्रुओं का अवश्य

४० नाश होगा। बुद्धिमान् आचार्य द्रोण ने जिन्हें गुप्त अस्त्रों की शिक्षा दी है, उन धृष्टद्युम्न को जब दुर्योधन मृज्यसेना में देखेंगे, तब उन्हें अवश्य युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा। जब महाप्रतापी शत्रुदमन सेनापति धृष्टद्युम्न बाणवर्षा से धृतराष्ट्र के पुत्रों का संहार करते हुए द्रोणाचार्य के सामने उपस्थित होंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा। लज्जाशील, बुद्धिमान्, चतुर, मनस्वी, लक्ष्मीसम्पन्न, वृष्णिवंशी श्रीकृष्ण जिनके प्रधान नेता हैं उनको कोई शत्रु नहीं हरा सकता। दुर्योधन से जाकर तुम कहना कि वे राज्य पाने की आशा न करें; क्योंकि शनि के पौत्र, निर्भय, अस्त्रविद्या में निपुण, महाबलवान्, पराक्रमी सात्यकि हमारे सहायक हैं। शनि-वंश के वीर सात्यकि की छाती चौड़ी है, हाथ लम्बे हैं और उनका धनुष चार हाथ का है। वे दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता, शत्रुदल-दलन, महारथी, निर्भय और अद्वितीय योद्धा हैं। सात्यकि जब मेरी आज्ञा से जलधारा की तरह बाणवर्षा से शत्रुसेना को छा देंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा। सिंह की गन्ध पाकर जैसे गायें इधर-उधर भाग खड़ी होती हैं वैसे ही उस समय कौरवों की सेना इधर-उधर भागने लगेगी जिस समय दृढ़ धनुष धारण करनेवाले महाभुज सात्यकि युद्ध के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा करके युद्धभूमि में उपस्थित होंगे, और तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा। सूर्यतुल्य तेजस्वी सात्यकि अस्त्रविद्या में अद्भुत योग्यता रखनेवाले और फुरतीले हैं। वे अनायास सब लोकों का संहार कर सकते हैं। बुद्धिमानों ने जिन अस्त्रों को उत्तम और दिव्य बताया है उन अस्त्रों को सात्यकि अच्छी तरह जानते हैं। युद्ध के समय जब मूढ़ दुर्योधन वृष्णिवंशश्रेष्ठ सात्यकि के सफेद चार घोड़ों से युक्त रथ को ५० देखेंगे तब उन्हें युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा।

जब दुर्योधन देखेंगे कि सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्ण सुवर्ण और मणियों की प्रभा से प्रकाशित, सफेद घोड़ों से शोभित, वानर की ध्वजा से अलङ्कृत मेरे श्रेष्ठ रथ पर बैठे हैं तब उन्हें पछताना पड़ेगा। महायुद्ध में गाण्डीव धनुष की दृढ़ डोरी से जब वज्रपात की सी कठोर ध्वनि निकलकर दुर्योधन के कानों को बहरा करेगी तब उन्हें पछताना पड़ेगा। जब बाणवर्षा से विद्वल होकर दुर्योधन के सैनिक इधर-उधर भागेंगे—मेघमाला से निकली हुई विजली की लपटों के समान मेरे गाण्डीव धनुष की डोरी से निकले हुए मर्मभेदी, हड्डियाँ तोड़नेवाले, एक साथ हज़ारों को मारने-वाले, भयानक, तीक्ष्ण बाण जब हाथी-घोड़ों और कवचधारी योद्धाओं को मार गिरावेंगे, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा। जब शत्रुसेना के बाणों को मैं अपने बाणों से निष्फल कर डालूँगा—राह में ही टुकड़े-टुकड़े करके गिरा दूँगा, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा। जब दुर्योधन देखेंगे कि ब्राह्मण जैसे वृक्षों की डालियों से फल चुनते हैं, वैसे ही मेरे गाण्डीव धनुष से निकले हुए बाण वीर युवकों के मस्तकों को चुन-चुनकर उनके धड़ों से अलग कर रहे हैं, तब उन्हें युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा। जब दुर्योधन की ओर के प्रधान-प्रधान



श्रीकृष्णजी वानर-ध्वजा से अलङ्कृत मेरे श्रेष्ठ रथ पर बैठे हैं ।—पृ० १६१०



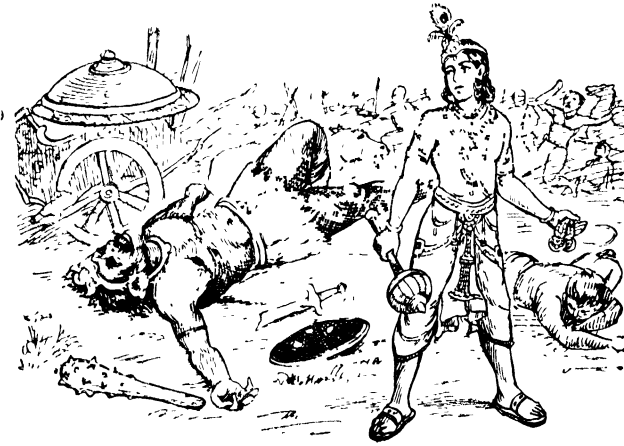
एक ब्राह्मण ने आकर कहा—हे अर्जुन, तुम्हें दुष्कर्म करना है, शत्रुओं के साथ युद्ध करना है। पृ० १६११

योद्धा मारे जाकर रथों से नीचे गिरेंगे, जब धृतराष्ट्र के पुत्र बाण बिना लगें ही, केवल उन्हें देखकर, युद्ध से भाग खड़े होंगे और मरने लगेंगे, और मुँह फैलाये हुए काल की तरह मैं अग्नि-सदृश प्रज्वलित धनुष की आग में पैदल सेना और रथ आदि की आहुति दूँगा, तब दुर्योधन को युद्ध के लिए अवश्य पछताना पड़ेगा । जब दुर्योधन देखेंगे कि मेरा रथ वेग से घूम रहा है, युद्धभूमि से उड़ी हुई धूल आकाशमण्डल तक छा गई है और गाण्डीव धनुष के द्वारा उनकी सेना छिन्न-भिन्न हो गई है, तब उनकी पछताना पड़ेगा । जब दुर्योधन देखेंगे कि उनकी सेना में कोई भागा जा रहा है, कोई घायल हो गया है, कोई बेहोश पड़ा है—घोड़े, हाथी, श्रेष्ठ वीर राजा लोग जगह-जगह धरती पर मरे पड़े हैं—किसी के वाहन थक गये हैं, कोई डर या व्यास से व्याकुल हो रहा है, कोई करुण स्वर से चिल्लाकर मर रहा है, कोई युद्धभूमि में मरा पड़ा है और उसके केश, हड्डियाँ और मस्तक अस्त-व्यस्त हो गया है—रण-भूमि वाजपेय यज्ञ की भूमि के समान दिखाई पड़ रही है, तब उन्हें युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । जब दुर्योधन देखेंगे कि दिव्य पाञ्चजन्य शङ्ख लिये श्रीकृष्ण और अर्जुन तरकस, गाण्डीव धनुष, देवदत्त शङ्ख लेकर मैं दोनों मित्र दिव्य घोड़ोंवाले श्रेष्ठ रथ पर सवार हुए हैं, तब उन्हें अवश्य युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा । आग जैसे प्रलय के समय दस्युओं का विनाश करके अन्य युग की स्थापना करती है वैसे ही जब मैं कौरवों को भस्म करता हुआ युगान्तर उपस्थित करूँगा, तब धृतराष्ट्र और दुर्योधन, दोनों को पछताना पड़ेगा । क्रोधी, चूड़प्रकृति दुर्योधन जब ऐश्वर्य और दर्प से हीन होकर, सेना और भाइयों सहित घायल होकर, धरती पर गिरेंगे, तब उन्हें युद्ध के लिए पछताना पड़ेगा ।

मैं एक दिन सबरे सन्ध्या-तर्पण और गायत्री-जप करके बैठा था, इतने में एक ब्राह्मण ने आकर मुझसे कहा—हे अर्जुन, तुम्हें दुष्कर कर्म करना है, अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करना है । तुम क्या चाहते हो ? उच्चैःश्रवा घोड़े पर बैठकर हाथ में वज्र लिये इन्द्र आगे-आगे तुम्हारे शत्रुओं का नाश करते चले, अथवा सुग्रीव आदि घोड़ों से युक्त दिव्य रथ पर बैठे भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारी रक्षा करते हुए पीछे चले ? तब मैंने वज्रपाणि इन्द्र को छोड़कर इस युद्ध में सहायक रूप से श्रीकृष्ण को ही स्वीकार किया । दस्युवध के लिए श्रीकृष्ण को मैंने अपना सहायक पाया है । मैं समझता हूँ, यह घटना देवताओं की इच्छा से ही हुई है । श्रीकृष्ण युद्ध न करके मन से ही जिसकी जय चाहें वह इन्द्र-सहित सब देवताओं को भी जीत सकता है । मनुष्यों की तो बात ही क्या है ? तेजस्वी और शूर श्रीकृष्ण को जीतने की इच्छा करना और अपार समुद्र के जल को हाथों से तैर जाना एक सा असम्भव है । जो पुरुष बड़े भारी सफेद पर्वत (हिमालय) को, तोड़ डालने के लिए, घूसे मारता है उसी का हाथ चूर-चूर हो जाता है, पर्वत का कुछ नहीं बिगड़ता । श्रीकृष्ण को जो युद्ध में जीतना चाहता है वह जलती हुई आग को हाथों से बुझाना चाहता है, चन्द्र-सूर्य की गति को रोकना चाहता है और बलपूर्वक देवताओं से अमृत छीन लेना

चाहता है। महात्मा श्रीकृष्ण अकेले जाकर सब राजाओं को और बली रुक्मी को जीतकर बल-पूर्वक यशस्विनी रुक्मिणी को हर लाये हैं। उन्हीं रुक्मिणी के गर्भ से महात्मा प्रद्युम्न का जन्म हुआ है। श्रीकृष्ण ने एकाएक गान्धार देशवासियों को जीतकर, नम्रजित् राजा के पुत्रों को परास्त करके देवताओं के प्रिय राजा सुदर्शन को बन्धन से छुड़ाया है। श्रीकृष्ण ने कपाट नगर में पाण्ड्य राजा को, कलिङ्गदेशवासियों की सेना को और दन्तवक्र को मारा है। इन्होंने कुपित होकर काशीपुरी को जलाया है। इसके बाद बहुत दिन तक काशीपुरी बिना राजा के ही रह चुकी है। श्रीकृष्ण ने अपने को अजेय समझनेवाले निपादराज एकलव्य को मार डाला है। पर्वत पर इन्द्र के पटके हुए जम्भासुर के समान श्रीकृष्ण के हाथ से मरा हुआ एकलव्य मृत्युशय्या पर सोया है। श्रीकृष्ण ने बलदेव के साथ जाकर वृष्णि और अन्धक वंश के यादवों की सभा में प्रचण्ड कंस को मारा और उग्रसेन को राजा बनाया है। श्रीकृष्ण ने आकाश में सौभविमान पर स्थित शाल्व को माया के युद्ध में मारा है। सौभ के द्वार पर रक्खे हुए शतघ्ना नाम के भयानक अस्त्र को जब शाल्व ने कृष्ण पर चलाया तब इन्होंने उसे हाथों से तोड़ डाला है। भला इनके पराक्रम को कौन सह सकता है? कौन श्रीकृष्ण का सामना कर सकता है?

असुरों की प्राग्ज्योतिष नाम की एक दुर्गम नगरी थी। अदिति के मणिमय दिव्य कुण्डल ८० खीन लानेवाला महाबली भौमासुर उसमें रहता था। मृत्यु से निडर इन्द्र सहित सब देवता भी युद्ध करने के लिए आकर उस दानवराज का सामना नहीं कर सके देवताओं ने श्रीकृष्ण के



पराक्रम, दिव्य अस्त्रों के ज्ञान और दुष्टों के दमन की प्रकृति को जानकर उन्हीं से उस डाकू दैत्य को मारने की प्रार्थना की। कार्य-कौशल में निपुण श्रीकृष्ण ने वह दुष्कर कर्म करना स्वीकार कर लिया। फिर निर्मोचन नगर में जाकर उन्होंने छः हजार असुरों को और ओघ नाम के

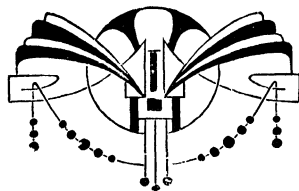
राक्षसों को मारकर, तीक्ष्ण धारवाले लोहे के पाशों को काटकर, मुर दैत्य को मारा। इसके बाद नगर के भीतर प्रवेश किया। वहाँ महाबलवान् और पराक्रमी नरकासुर से उन्हीं ने युद्ध किया।

आंधी से टूटे कनैर के फूल की तरह मरकर नरकासुर पृथ्वी पर गिर पड़ा। महातेजस्वी श्रीकृष्ण ने इस प्रकार भौमासुर और मुर दैत्य को मारकर श्री और कीर्त्ति प्राप्त की। फिर वहाँ से अदिति के मणिमय कुण्डल लेकर वे अपनी नगरी को लौटे। तब देवताओं ने श्रीकृष्ण की असाधारण रणचातुरी से प्रसन्न होकर उन्हें यह वर दिया कि हे केशव, आज से तुम युद्ध में कभी नहीं थकोगे, आकाश या जल में सर्वत्र तुम आ-जा सकोगे और शत्रुओं के चलाये शस्त्रों का तुम्हारे शरीर पर असर नहीं होगा। हे सञ्जय, देवताओं से ये वर पाकर कृष्णचन्द्र कृतार्थ हो चुके हैं। महाबली श्रीकृष्ण में सब श्रेष्ठ गुण सदा विराजमान रहते हैं। दुरात्मा दुर्योधन किस तरह इन अनन्तवीर्यशाली श्रीकृष्ण को परास्त करना चाहते हैं? दुर्योधन सदा श्रीकृष्ण से विरोध किया करते हैं, किन्तु ये कृष्णचन्द्र हमारा खयाल करके उन बातों को टाल जाते हैं। जो मूर्ख व्यक्ति श्रीकृष्ण में और मुझमें विरोध पैदा करना और श्रीकृष्ण के हृदय से पाण्डवों का स्नेह हरना सहज समझता है वह युद्ध में जाकर उसका हल जानेगा।

मैं राज्यप्राप्ति की इच्छा से पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, अद्वितीय वीर कृपाचार्य आदि को प्रणाम करके युद्ध का आरम्भ करूँगा। मैं दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ कि जो कोई धर्मात्मा पाण्डवों से युद्ध करने आवेगा वह धर्म के हाथ से मारा जायगा। नीच दुर्योधन आदि ने कपट के जुए में हराकर जिन पाण्डवों को बारह वर्ष वन में और एक वर्ष अज्ञातवास में रखकर अनेक कष्ट दिये हैं उनके जीते रहते दुरात्मा धृतराष्ट्रपुत्र कैसे राज्यासन पर बैठकर सुखपूर्वक ऐश्वर्य भोग सकते हैं? यदि दुरात्मा कौरव लोग इन्द्र आदि देवताओं की सहायता से हम लोगों को हरा देंगे तो इसमें भी सन्देह न रह जायगा कि धर्म से अधर्म श्रेष्ठ है—अच्छे काम करना निरी नादानी है। यदि सब पुरुष कर्म-पाश में बंधे हुए नहीं हैं और हम लोग सब बातों में कौरवों से श्रेष्ठ नहीं हैं, तो अवश्य इस युद्ध में दुर्योधन को जय प्राप्त होगी। यदि हमको अधर्म से राज्य से भ्रष्ट करने का और इस समय हमें राज्य न देने का फल कौरवों को अवश्य भोगना है तो हम श्रीकृष्ण की सहायता से दुर्योधन को समूल नष्ट कर सकेंगे। इन दोनों कार्यों के फल पर विचार करके मैंने निश्चय किया है कि दुर्योधन का हारना ही ठीक है। मैं सब कौरवों के सामने कहता हूँ, युद्ध में धृतराष्ट्र का एक भी पुत्र जीता नहीं बचेगा। हाँ, अगर वे युद्ध छोड़कर कहीं भाग जायें तो उनकी ज़िन्दगी हो सकती है। कर्ण-सहित सब कुरुवंश का संहार करके मैं कुरुराज्य को जीतूँगा। युद्ध जब तक नहीं छिड़ता तब तक तुम लोग प्यारी स्त्रियों से मिल लो और ऐश्वर्यसुख भोग लो। हम लोगों के निकट वृद्ध, बहुत शास्त्रों के पण्डित, कुलशीलयुक्त, संवत्सर-फल, नक्षत्रों के यांग और ज्योतिष के रहस्य जाननेवाले जो ब्राह्मण हैं वे कह रहे हैं और दैवरहस्य, होनी की सूचना देनेवाले प्रश्न, मृगसमूह देख पड़ने के सगुन और सुहृत् जता रहे हैं कि कुरु-पाञ्चाल देश के योद्धाओं का बड़ा भारी नाश होने के साथ ही कौरवों का

संहार होगा, और पाण्डवों को विजयलक्ष्मी प्राप्त होगी । हमारे नेता अज्ञातशत्रु अपने पक्ष को १०० शत्रुदमन के लिए समर्थ समझते हैं और सर्वज्ञ श्रीकृष्ण भी हमारी जीत के बारे में निःसन्देह हैं । मैं भी शुद्ध हृदय से ज्ञानदृष्टि के द्वारा, होनवाले, शत्रुओं के संहार को और अपनी जीत को देख रहा हूँ । मेरी दृष्टि योगबल से अमोघ है । मुझे भरोसा है कि युद्ध करने से एक भी कौरव जीता नहीं बचेगा । मेरा गाण्डीव धनुष बिना छुए ही शब्दायमान होता है, उसकी डोरी बिना चढ़ाये ही हिल रही है । बाण आप ही आप तर्कसों से बाहर निकले से पड़ते हैं । हम लोगों के पैने खड्ग, कंचुल छाड़ें हुए नागों की तरह, चमकते हुए म्यान से बाहर निकले पड़ते हैं ।

ध्वजा के ऊपर से ये भयङ्कर वचन सुन पड़ते हैं कि “हं अर्जुन, तुम्हारा रथ कब जोता जायगा ?” रात को सियारनियाँ लगातार अशुभ शब्द करती हैं । आकाश से राक्षस पृथ्वी पर गिरते हैं । मृग, सियार, नीलकण्ठ, कौण, गिद्ध, बगलें, तेंदुए और सुनहरे पंखवाले अन्य अनेक पक्षी सफेद घोड़ों से जोते गये मेरे रथ को देखकर पीछे उड़ते हैं । मैं अकेला ही युद्ध-भूमि में बाणवर्षा करके सब शत्रुओं को यमलोक भेजूँगा । जैसे गर्मियों में प्रज्वलित दावानल सब वन जलाकर अन्त को शान्त होता है, वैसे ही मैं भी कौरव-वध के लिए सुसज्जित होकर, अस्त्रप्रयोग के भिन्न-भिन्न कौशलों द्वारा—वेगशाली स्थूणाकर्ण, पाशुपत, ब्रह्मास्त्र और इन्द्र के दिये अस्त्रों के द्वारा—सर्वसंहार करके शान्ति प्राप्त करूँगा । हे सख्य, कौरवों से यह मेरा दृढ़ सङ्कल्प कह देना । इन्द्र आदि देवताओं की सहायता पाकर भी जिन्हें हराना असाध्य है उनसे यों युद्ध करने के लिए तैयार होना दुर्योधन का भारी भ्रम है । चाहे जो हो, अब मेरी प्रार्थना ईश्वर से यही है कि पितामह भीष्म, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और बुद्धिमान विदुर जिनके लिए कहते हैं १०८ वह मन्धि ही हो और कुरुवंश के सब लोग विनाश से बचकर चिरजीवी हों ।



उनचासवाँ अध्याय

भीष्म, कर्ण और द्रोण की सम्मति

वैशम्पायन कहते हैं कि इसमें बाद भीष्म पितामह ने कहा—हे दुर्योधन, एक समय बृहस्पति, शुक्राचार्य, इन्द्र, अग्नि, सप्तऋषि, वायु, वसु, आदित्य, माध्य, अप्सराएँ और विश्वावसु आदि गन्धर्व, सब देवगण ब्रह्माजी की सभा में बैठे हुए थे। इसी समय पुरातन देव नर-नारायण ऋषि उधर से निकले। उनके तेज से सब देवता विस्मित और निस्तेज हो गये। नर-नारायण ऋषि ब्रह्मा को नमस्कार करके [वहाँ ठहरे बिना] यथेष्ट स्थान को चले गये। तब बृहस्पति ने ब्रह्मा से पूछा—पितामह, ये दोनों कौन हैं, जो आपकी उपासना किये बिना चले गये? ब्रह्मा ने कहा—बृहस्पति, ये महाबली महासत्त्व दोनों ऋषि अपने तप के तेज से भूलोक और स्वर्ग को प्रकाशित करते हुए चले जा रहे हैं। ये नर-नारायण हैं। अपने तप के प्रभाव से ये भूलोक से ब्रह्मलोक में आये हैं। कर्मों से त्रिभुवन का आनन्द बढ़ानेवाले इन देवों की स्तुति गन्धर्व करते हैं। असुरों को मारने के लिए ईश्वर के ही ये दोनों अवतार हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—उसी समय देवताओं के साथ दैत्यों का घोर युद्ध चल रहा था। देवगण डरे हुए थे। इन्द्र आदि देवगण वहाँ पर पहुँचे जहाँ नर-नारायण तप कर रहे थे। इन्द्र आदि देवताओं ने उनके पास पहुँचकर वर माँगा। नर-नारायण ने कहा—हे देवगण, तुम वर माँगो। इन्द्र ने कहा—हे नर-नारायण, आप हमारी सहायता कीजिए। तब नर-नारायण ने कहा—हे इन्द्र, तुम जो चाहते हो वही होगा। इन्द्र ने नर-नारायण की सहायता से दैत्यों और दानवों को हराया। शत्रुदमन नर ने इन्द्र के शत्रु सैकड़ों-हज़ारों पौलोम और कालकज असुरों को मारा। जम्भासुर उन्हें प्रसने के लिए उद्यत हुआ, तब भ्रमण-शील रथ पर बैठकर उन्होंने भल्ल बाण से उसका सिर काट डाला। नर ने समुद्र पार जाकर साठ हज़ार निवातकवच असुरों को मारकर हिरण्यपुर नगर को उजाड़ा है। शत्रुदमन महाबाहु



नर ने इन्द्रसहित देवताओं को परास्त करके अग्नि को तृप्त किया है। इसी तरह नारायण ने भी अन्य बहुत से बड़े-बड़े दानवों और दैत्यों को मारा है। वही नर अर्जुन और नारायण श्रीकृष्ण हैं। उन दोनों पराक्रमी पुरुषों को एक साथ देखो। मैं यह बात अपने मन से नहीं कहता मैंने वेदज्ञ नारद मुनि से सुना है कि महावीर अर्जुन वही पूर्वदेव नर हैं और भगवान् श्रीकृष्ण ही पूर्वदेव २० नारायण हैं। एक ईश्वर ने नर और नारायण नाम से दो रूप धारण किये हैं। इन्द्र आदि देवता, असुर अथवा मनुष्य कभी इन्हें नहीं हरा सकते। इन दोनों सनातन ऋषियों ने अपने कर्मों से अक्षय लोक प्राप्त किये हैं। जब जहाँ घोर युद्ध अनिवार्य होता है तब वहाँ ये जन्म लेकर शिष्टों का पालन और दुष्टों का दमन करते हैं। युद्ध ही इनका कर्तव्य है।

हे दुर्योधन, तुम जब शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान् कृष्ण को और गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले महाबाहु अर्जुन को एक रथ पर बैठे देखोगे तब तुम्हें मेरा कहा याद आवेगा। मेरा कहा न मानोगे तो निःसन्देह कुरुकुल का सर्वनाश हो जायगा। महाबाहु श्रीकृष्ण और अर्जुन ने बहुत से वीरों को मारा है। यह सुनकर भी जो तुम मेरा कहा न मानोगे तो निःसन्देह तुम्हारी बुद्धि धर्म और अर्थ से भ्रष्ट हो गई है। सब कौरव तुम्हारे कहे में हैं। किन्तु तुम परशुराम के शाप से कलङ्कित, हीनजाति, सूतपुत्र कर्ण, शकुनि और पापबुद्धि दुःशासन को अपना मन्त्री बनाये हुए हो।

कर्ण ने कहा—पितामह, आप अब फिर ऐसी बात मुँह से न निकालिएगा। मैं अपने धर्म से भ्रष्ट न होकर, चात्रधर्म धारण किये हुए हूँ; दुर्योधन को चात्रिय का धर्म पालने की सलाह दे रहा हूँ। खासकर मुझमें ऐसा कोई दोष या दुराचार नहीं है जिसके कारण आप मेरी निन्दा ३० कर सके। दुर्योधन आदि कौरवों ने कभी कुछ भी पाप मुझमें नहीं देखा। मैंने कभी दुर्योधन का अनिष्ट नहीं किया; बल्कि दुर्योधन आदि का यह प्रिय करूँगा कि रण में अर्जुन आदि पाण्डवों को मारूँगा। पहले जिनके साथ विरोध हो चुका है उनसे अब मेल कैसे हो सकता है? महाराज धृतराष्ट्र का सब तरह हित करना ही मेरा कर्तव्य है। राजपद पर प्रतिष्ठित दुर्योधन का प्रिय करने के लिए मैं सब तरह तैयार हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं कि कर्ण के वचन सुनकर भीष्म ने राजा धृतराष्ट्र से कहा—कर्ण यह कहकर नित्य अपनी बड़ाई किया करता है कि मैं पाण्डवों को मारूँगा; किन्तु वह पाण्डवों के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं है। तुम निश्चय जानो, इस सूतपुत्र के कारण तुम्हारे दुष्ट पुत्रों पर बड़ी भारी विपत्ति आवेगी। तुम्हारा पुत्र दुरात्मा दुर्योधन इसी के बल पर भूला है। इसी के सहारे पर उसने प्रधान वीर, शत्रुदमन, देवकुमार पाण्डवों का अपमान किया है। पाण्डवों ने एक-एक करके जो दुष्कर कर्म किये हैं, वैसा कौन कर्म कर्ण ने किया है? विराट नगर में अर्जुन ने युद्ध-कौशल और पराक्रम का परिचय देकर जब इसके प्रिय भाई विकर्ण को

मार डाला था, तब इमने उनका क्या कर लिया था ? महावीर अर्जुन अकंले ही जब सब कौरवों को विवश करके सबके कपड़े ले गये थे, तब कर्ण क्या कहीं चला गया था ? जब घोषयात्रा में बली गन्धर्व तुम्हारे पुत्रों को पकड़कर ले गये थे, तब यह सूतपुत्र कहाँ गया था जो इम समय बैल की तरह चिन्ना रहा है ? उस समय अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव ने ही गन्धर्वों को हराकर दुर्योधन को छुड़ाया था । हे भरतश्रेष्ठ, यह अपने मुँह अपनी बड़ाई करनेवाला और धर्मार्थनाशक कर्ण सदा मिथ्या बोला करता है । ४०

भीष्म के वचन सुनकर उत्साही वीर द्रोणाचार्य ने राजा धृतराष्ट्र से कहा—राजन्, भरत-श्रेष्ठ भीष्म जो कहते हैं वही कीजिए । लालचियों की इच्छा के अनुसार काम करना आपको उचित नहीं । युद्ध छिड़ने से पहले ही पाण्डवों से मेल कर लेना मैं अच्छा समझता हूँ । सञ्जय ने अर्जुन के जो वचन कहे हैं उनकी यथार्थता को मैं अच्छी तरह जानता हूँ । अर्जुन अवश्य वैसे ही काम करेंगे; क्योंकि त्रिभुवन में अर्जुन के समान धनुर्विद्या में प्रवीण यादवा दूसरा नहीं है ।

महात्मा भीष्म और द्रोण की बातों पर ध्यान न देकर राजा धृतराष्ट्र सञ्जय से पाण्डवों की बातें पूछने लगे । धृतराष्ट्र ने जब भीष्म और द्रोणाचार्य के वचनों का अनुमोदन नहीं किया तभी सब कुलवंशी अपने जीवन से निराश हो गये । ४८

पचासवाँ अध्याय

सञ्जय का युधिष्ठिर के उद्योग का हाल कहना

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, हमारी प्रसन्नता और सहायता के लिए यहाँ अनेक राजाओं की अपार सेना के आने का हाल सुनकर धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने क्या कहा ? युद्ध के लिए वे कैसा उद्योग कर रहे हैं ? भाइयों और पुत्रों में से कौन-कौन उनकी आज्ञा की राह देख रहे हैं ? मेरे मन्दबुद्धि पुत्रों ने छल करके पाण्डवों को कुपित कर रक्खा है । धर्मज्ञ और धर्मात्मा युधिष्ठिर को शान्ति का उपदेश देकर युद्ध से रोकनेवाले कौन-कौन हैं ?

सञ्जय ने कहा—राजन्, चारों पाण्डव और धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालगण राजा युधिष्ठिर के मुँह से युद्ध की आज्ञा पाने की राह देख रहे हैं । युधिष्ठिर भी सबको यथोचित उद्योग के बारे में आज्ञाएँ दिया करते हैं । जब युधिष्ठिर आते हैं तब पाञ्चाल वीरों के रथ उनका अभिनन्दन करते हैं । आकाश में उदय हो रहे सूर्य के समान तेजस्वी युधिष्ठिर की उपासना में सब पाञ्चालगण और पाण्डव लगे रहते हैं । पाञ्चाल, केकय और मत्स्यदेश के अहीर-गड़रिये तक महाराज युधिष्ठिर के भक्त हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति की कन्याएँ युद्ध के वेप में अर्जुन को देखने के लिए क्रीड़ा करती हुई चारों ओर से आती हैं ।

धृतराष्ट्र ने पृष्ठा—सञ्जय, पाण्डवों ने धृष्टद्युम्न और सोमकों की कितनी सेना हमसे लड़ने के लिए जमा की है ? वैशम्पायन कहते हैं—कुरुसभा में धृतराष्ट्र का यह प्रश्न सुनकर सञ्जय

११



चिन्तित होकर लम्बी साँसें लेने लगे और खेद के मारे अचेत होकर गिर पड़े। तब विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज, सञ्जय बेहोश होकर गिर पड़े हैं। इसी से कुछ बोल नहीं सकते।

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय शायद महारथी पाण्डवों को देखकर घबरा गये हैं, इसी से इस समय बेहोश हो गये हैं।

हे जनमेजय, इतने में सञ्जय को होश आ गया। उन्होंने उठकर कौरवों के सामने धृतराष्ट्र से कहा—राजेन्द्र, मैंने जाकर देखा कि विराट के घर में एक वर्ष अज्ञात-वास करने के कारण पाण्डव दुबले हो रहे

हैं। राजन्, उन पाण्डवों ने कौरवों से लड़ने के लिए जिन राजाओं को जमा किया है उनका वर्णन सुनिए। उन्होंने धृष्टद्युम्न को अपना लिया है। जो महात्मा क्रोध, डर, लोभ और अर्थ या हेतुवाद आदि किसी कारण से मृत्यु को नहीं छोड़ते, जो श्रेष्ठ धार्मिक महात्मा धर्म के बारे में प्रमाण माने जाते हैं, वे अजातशत्रु युधिष्ठिर कौरवों से लड़ने को तैयार हैं। पृथ्वी भर पर बाहु-बल में अद्वितीय, बड़े-बड़े धनुर्धारी राजाओं को अधीन करनेवाले, काशी, वज्र और कलिङ्ग देश के राजाओं को हरानेवाले, अपने पराक्रम के प्रभाव से युधिष्ठिर आदि भाइयों को लाक्षागृह से बाहर निकाल ले जानेवाले, महाबली मनुष्य-मांस-लोलुप हिडिम्ब राक्षस से पाण्डवों को बचानेवाले भीम-

२१

सेन युद्ध को प्रस्तुत हैं। जयद्रथ के हाथ से द्रौपदी का उद्धार करनेवाले, वारणावत नगर में दग्धप्राय पाण्डवों को उस विपत्ति से बचानेवाले, द्रौपदी की प्रसन्नता के लिए भयङ्कर गन्धमादन पर्वत के शिखर पर जाकर क्रोधवश नाम के राक्षसों को मारनेवाले और दस हज़ार मस्त हाथियों की ताकत रखनेवाले भीमसेन कौरवों से लड़ने के लिये तैयार हैं। श्रीकृष्ण की सहायता से अग्नि को तृप्त करने के लिए इन्द्र को युद्ध में हरानेवाले, देवादिदेव महादेव को युद्ध में छकानेवाले, और सब लोकपालों को वश में करनेवाले धनुर्धर अर्जुन कौरवों से लड़ने के लिए तैयार हैं। जो म्लेच्छों से पूर्ण पश्चिम दिशा को अपने बाहुबल से जीत चुके हैं वे विचित्र युद्ध करनेवाले परम सुन्दर नकुल २८ कौरवों से युद्ध करने के लिए उद्यत हैं। पृथ्वी पर अश्वत्थामा, धृष्टकेतु, रुक्मी और प्रद्युम्न, यही

चार योद्धा जिनकी बराबरी कर सकते हैं वे सहदेव भी कौरवों से लड़ने के लिए तैयार हैं । काशिराज की सती कन्या अम्बा पहलें धोर तप करके भोष्म की मृत्यु के लिए प्राण दे चुकी है । वही फिर पाञ्चालराज द्रुपद के घर कन्या के रूप में उत्पन्न हुई । अन्त को वह दैव की कृपा से स्त्री से पुरुष हो गई । वही स्त्री और पुरुष के सब गुण-दोषों को जाननेवाले, कलिङ्ग-निवासियों को हरानेवाले, भोष्म को मारने के लिए वन में यज्ञ से पुरुष-भाव प्राप्त करनेवाले, महाधनुर्धर, उग्रमूर्ति शिखण्डी कौरवों से लड़ने के लिए तैयार हैं । केकय देश के पाँच महारथी राजकुमार भी कौरवों से लड़ने के लिए तैयार हैं । दीर्घबाहु, फुरतीले, धीर और सत्यपरायण वृष्णिश्रेष्ठ महावीर सात्यकि लड़ने के लिए तैयार हैं । अज्ञातवास के समय पाण्डवों की रक्षा करनेवाले राजा विराट आपसे लड़ने को तैयार हैं । काशी के नय नरेश आपसे लड़ेंगे । युद्ध में दुर्जय, विपैल साँप के बच्चे ऐसे, द्रौपदी के पाँचों पुत्र युद्ध करेंगे । पराक्रम में श्रीकृष्ण और इन्द्रियदमन में युधिष्ठिर के समान वीर अभिमन्यु आपके पुत्रों से लड़ेंगे । क्रुद्ध होने पर समर में दुर्द्धर्प, महावीर्यशाली, महारथी, महायशस्वी चंद्रिराज धृष्टकेतु एक अचौहिणी सेना साथ लिये पाण्डवों के पक्ष में हैं । देवताओं में इन्द्र की तरह पाण्डवों में शोभायमान महात्मा श्रीकृष्ण सब तरह से पाण्डवों की सहायता करने के लिए कर्मर कसे हुए हैं । चेदिपति के भाई शरभ और करकर्ष भी कौरवों से लड़ने के लिए तैयार हैं । युद्ध में जिनका सामना करना कठिन है वे जरासन्ध के पुत्र सहदेव और राजा जयत्सेन पाण्डवों की सहायता करने को तैयार हैं । बहुत सी सेना साथ में लिये महाबली और तेजस्वी राजा द्रुपद भी अपना सर्वस्व पाण्डवों को देकर कौरवों से लड़ने को तैयार हैं । इनके सिवा पूर्व और उत्तर दिशा के रहनेवाले असंख्य राजा पाण्डवों की ओर होकर कौरवों से युद्ध करने को तैयार हैं ।

४०

५०

इक्ष्वावनवाँ अध्याय

भीमसेन का बल याद करके धृतराष्ट्र का शोक

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय, तुमने जिनके नाम लिये वे सब बड़े वीर हैं; किन्तु अकेले भीमसेन उन सबके बराबर हैं । जैसे बाघ से मृग और सिंह से अन्य पशु डरते हैं वैसे भीमसेन से मैं डरता हूँ । डर के मारे रात को मुझे नींद नहीं आती । इन्द्र के तुल्य तेजस्वी, महाबाहु भीमसेन का सामना कर सकनेवाला एक आदमी भी मुझे अपनी ओर नहीं देख पड़ता । वे महाउत्साही, बली, क्रोधी, वैर न भूलनेवाले, उद्धतस्वभाव, टेढ़ी नज़र से देखनेवाले, भयानक आवाज़वाले, हँसी-दिल्लीगी से दूर रहनेवाले, महावेगशाली भीमसेन युद्ध में दण्डपाणि यमराज की तरह गदा हाथ में लेकर मरे मन्दबुद्धि और युद्ध के लिए दृढ़ निश्चय रखनेवाले पुत्रों को मार

- डालेंगे। उठे हुए ब्रह्मदण्ड के समान वह अष्टकोणयुक्त सुवर्णभूषित लोहनिर्मित भीम की भयानक गदा मेरी आँखों के आगे नाच रही है। बलशाली सिंह जैसे मृगों के भ्रूण्ड में शिकार करता हुआ विचरता है वैसे ही मेरी सेना में भीमसेन भी संहार करते हुए घूमेंगे। वे बहुत भोजन
- १० और सहमा कर्म करनेवाले भीमसेन लड़कपन में भी मेरे सब पुत्रों को पछाड़ा करते थे। वे लड़कपन में मस्त हाथी की तरह दुर्योधन आदि से भिड़कर उन्हें रौंदते थे—यह स्मरण करके मेरा कलेजा काँप उठता है। भीमसेन के हाथों सताये जाकर मेरे पुत्र उन्हें डरा करते थे। वे भीमपराक्रमी भीमसेन ही इस 'घर की फूट' की जड़ हैं। मैं मानों देख रहा हूँ कि क्रोधित भीमसेन युद्ध में असंख्य मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों का नाश कर रहे हैं। अस्त्रशिक्षा में द्रोणाचार्य के समान, वेग में वायु के तुल्य और क्रोध में साक्षान्त रुद्र के सदृश वीर भीमसेन को युद्ध में कौन मार सकेगा? मैं इसी को बड़ा भारी लाभ समझता हूँ जो महाबली भीमसेन ने उसी भ्रूण्ड के समय मेरे पुत्रों को नहीं मार डाला। महाबली यत्नों और राक्षसों को मारने-वाले भीमसेन के वेग का साधारण मनुष्य कैसे सह सकेंगे? भीमसेन लड़कपन में भी कभी मेरे वश में नहीं रहे। इस समय तो मेरे पुत्रों ने उन्हें इतने क्लेश दिये हैं; अब वे कैसे मेरा कहा मान सकते हैं! वे अत्यन्त निष्ठुर और क्रोधी हैं। वे जीते जी झुक नहीं सकते। क्रोध के मारे सदा देढ़ी नज़र से देखनेवाले और सटी हुई भाँहोंवाले भीमसेन भला कैसे शान्त रह सकते हैं? व्यास के मुँह से सुनकर लड़कपन से ही भीमसेन का रूप, बल और पराक्रम मैं जानता हूँ। व्यास ने कहा है कि मैंभले पाण्डव वृकोदर अद्वितीय शूर और बली हैं, उनका रङ्ग गारा है और वे ताड़ के पंड़ु गंसे ऊँचे हैं। भीमसेन अर्जुन से मुट्ठा भर ऊँचे हैं; वेग में घोड़े से और बल में हाथी से भी बढ़कर हैं। वे बड़बड़ाया करते हैं; उनकी आँखें सदा
- २० लाल रहती हैं। वे उग्रमूर्ति क्रूरकर्मा भीमसेन युद्ध में क्रोधित होकर लोहे की गदा से रथ, हाथी, घोड़े और मनुष्यों का अवश्य चूर-चूर कर डालेंगे। मैं पहले उन क्रोधी और श्रेष्ठ योद्धा भीमसेन के प्रतिकूल कार्य करके उनका अपमान कर चुका हूँ। इस समय उनकी उस सुवर्ण-मण्डित, लोहे के मोटे पहल्लों से सुडौल बनी हुई, सँकड़ों वज्रपात के समान भयङ्कर शब्द करने-वाली गदा के वेग और प्रहार को मेरे पुत्र कैसे सह सकेंगे? हे सज्जय, मेरे दुष्टबुद्धि पुत्र बाण-वेगरूपी भयङ्कर वेग से युक्त भीमसेनरूपी अथाह समुद्र के पार जाना चाहते हैं। यद्यपि मैं नित्य चिन्ताया करता हूँ, तो भी मूर्ख होकर समझदारी का अभिमान रखनेवाले मेरे पुत्र उधर कान नहीं देते। शहद उतारनेवाला जैसे शहद के लिए ऊपर चढ़ता है, पर वहाँ से गिरने का जो खटका है उस पर ध्यान नहीं देता, वैसे मेरे पुत्र राज्य तो ले लेना चाहते हैं, मगर विनाश की ओर आँख उठाकर नहीं देखते। मनुष्य-रूपधारी यमराज भीमसेन से युद्ध करने जो जायँगे वे अवश्य मारे जायँगे। हे सूनपुत्र, शिक्य में रखकर चलाई गई, चार हाथ लम्बी, छः कोनेवाली, भीमसेन



की कठोर गदा को मेरे पुत्र कैसे सह सकेंगे ? जब महाबली भीमसेन चारों ओर गदा घुमाकर हाथियों को मस्तक फोड़ेंगे, क्रोध से ओठ चाटते और नाक से ज़ोर-ज़ोर से माँस छोड़ते हुए वे भयङ्कर शब्द करनेवाले हाथियों के झुण्ड की ओर झपटेंगे तब उनका सामना करने के लिए जो मेरे पुत्र जायँगे वे अवश्य मार जायँगे ।

३१

महापराक्रमी, क्रोधी भीमसेन मेरी सेना को मारकर अपनी राह साफ़ करते और गदा हाथ में लिये नाचते हुए प्रलयकाल का सा घोर दृश्य उपस्थित कर देंगे । जैसे मस्त हाथी फूले हुए पंड़ों को कुचलता है वैसे ही पराक्रमी भीमसेन रणभूमि में घुसकर जब मेरे पुत्रों की सेना का संहार करेंगे—जब वे रथों का सारथी, घोड़े, ध्वजा और रथी से शून्य करेंगे तथा हाथियों पर बैठे हुए योद्धाओं को पीड़ित करेंगे—तब उनके सामने कौन ठहर सकेगा ? जैसे गङ्गा का प्रवाह किनारे के पंड़ों को बहाता और उखाड़ता चलता है वैसे ही भीमसेन अपने आस-पास की कौरवसेना को नष्ट करने चलेंगे । मेरे पुत्र, संवक और सहायक राजा लोग भीमसेन के डर से युद्ध छोड़कर इधर-उधर भाग खड़े होंगे । मगध-नरेश बुद्धिमान् प्रतापी जरासन्ध ने अपने बाहुबल और प्रभाव से सारे राजाओं को अपने अधीन कर लिया था । दैव्यांग से केवल कुरुगण भीष्म के प्रभाव से और यादव लोग नीति के बल से जरासन्ध के वश नहीं हुए । उसी जरासन्ध को भीमसेन ने अकेले अन्तःपुर में जा करके श्रीकृष्ण की सहायता से मार डाला । भीमसेन ने शस्त्र से नहीं, बल्कि बाहुबल से उसको पछाड़ा और मार डाला । इससे बढ़कर वीरता और क्या होगी ? हे सञ्जय, विषधर नाग जैसे बहुत दिन के जमा किये हुए विष को उगले वैसे ही भीमसेन बहुत दिन के रुके हुए अपने क्रोध को मेरे पुत्रों पर प्रकट करके सफल करेंगे । इन्द्र ने जैसे वज्र से दानवों का संहार किया था वैसे ही भीमसेन गदा हाथ में लेकर मेरे पुत्रों को मारेंगे । मुझे देख पड़ता है, मानों महाबली, पराक्रमी, दुर्निवार भीमसेन लाल आँखें किये तीव्र वेग से इधर ही आ रहे हैं । महावीर भीमसेन चाहे गदा, धनुष, रथ, कवच आदि के बिना भी युद्ध करें, कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता । यद्यपि मेरी ही तरह भीष्म पिता-मह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य भी भीमसेन के बल-पराक्रम को जानते हैं तो भी वे आर्य लोगों के सदाचार के अनुसार मेरे पुत्रों की सेना में रहकर पाण्डवों से युद्ध करेंगे । पुरुष का भाग्य बड़ा ही प्रबल है । मैं पाण्डवों की जीत सरासर देखकर भी अपने पुत्रों को नहीं रोकता, यह भी होनी ही है । भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि योद्धा चिरप्रसिद्ध स्वर्गमार्ग में जाने के लिए क्षत्रिय-कीर्ति की रक्षा करते हुए संग्राम में प्राणत्याग करेंगे । इनके लिए जैसे मेरे पुत्र हैं वैसे ही पाण्डव हैं । कौरव-पाण्डव दोनों ही कृपाचार्य और द्रोणाचार्य के शिष्य हैं । भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य तीनों वृद्ध पुरुष हमारे आश्रय में रहते हैं । इनके साथ जो कुछ कौरवों ने किया है उसका बदला देना आर्यधर्म जानकर ये तीनों महापुरुष दुर्योधन का साथ देंगे । पण्डितों का कहना

४०

५०

है कि शस्त्र हाथ में लेकर युद्ध में प्राणत्याग करना क्षत्रियधर्म पर चलनेवाले का और क्षत्रिय का प्रधान धर्म है। पाण्डवों के साथ जिन्हें युद्ध करना पड़ेगा उन सबके लिए मैं शोकविह्वल हो रहा हूँ। विदुर ने पहले ही पुकारकर जिमकी सूचना दे दी थी वह विपत्ति सिर पर आ गई है।

हे मञ्जय ! जान पड़ता है, ज्ञान से दुःख नहीं दूर होता, बल्कि अत्यन्त दुःख उपस्थित होने पर उससे ज्ञान ही मिट जाता है। लोक-व्यवहार को जाननेवाले जीवन्मुक्त ऋषि भी सुख के समय सुख का और दुःख के समय दुःख का अनुभव करने के लिए विवश होते हैं। तब मैं तो हजार तरह के ममता-मोह में फँसा हुआ हूँ। पुत्र, पौत्र, भाई-बन्धु, इष्ट-मित्र आदि के विनाश और कुलवधुओं के सर्वनाश को मैं कैसे देख सकूँगा ? मैंने खूब विचारकर देख लिया, मुझे कौरवों का नाश अनिवार्य जान पड़ता है। उस जुए के कारण ही कौरवों पर यह सङ्कट आया है। लालची मन्दमति दुर्योधन ने लोभ के कारण पाप करके यह अनिष्ट और अनर्थ बुलाया है। अत्यन्त शीघ्र चलने और पलटनेवाले काल का यह धर्म है कि उसके फेर से रथ के पहिये की तरह सुख और दुःख घूमा करते हैं। सड़क जैसे रथ के पहिये से अलग नहीं हो सकती वैसे ही कोई मनुष्य इस कालचक्र के फेर से भागकर बच नहीं सकता। मञ्जय, मैं क्या करूँ ? कहा जाऊँ ? कालवश ये मन्दबुद्धि कौरव काल के मुँह का कौर बनने को तैयार हैं। सौ पुत्रों के मरने पर मैं रनिवास की स्त्रियों का रोना सुनूँगा। मुझे उससे पहले माँत क्यों नहीं ले जाती ! जैसे गर्मियों में प्रज्वलित दावानल हवा की सहायता पाकर सूखे वन को जलाता है वैसे ही अर्जुन के साथ गदा हाथ में लिये हुए भयानक भीमसेन मेरे पुत्रों को मारेंगे।

६१

बावनवाँ अध्याय

अर्जुन का बल बखानकर धृतराष्ट्र का खेद

धृतराष्ट्र ने कहा—मञ्जय, मैंने युधिष्ठिर के मुँह से कभी कोई झूठी बात नहीं सुनी। उनकी ओर लड़नेवाले महावीर मय्यामाची अर्जुन है। राजा युधिष्ठिर अर्जुन की सहायता से त्रैलोक्य का राज्य प्राप्त कर सकते हैं। बारम्बार सोचने पर भी मुझे ऐसा कोई वीर नहीं देख पड़ता जो रथ पर चढ़कर अर्जुन से युद्ध कर सके। जब गाण्डोव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन कर्ण, नालीक, शिलीमुख आदि बाण चलावेंगे और दिव्य अस्त्रों का कौशल दिखावेंगे तब कोई उनका सामना न कर सकेगा। अपराजित पुरुषश्रेष्ठ द्रोणाचार्य और कर्ण दोनों ही अर्जुन से लड़ने जायँ तो अन्य लोगों को जय-पराजय के बारे में सन्देह हो सकता है किन्तु मुझे तो निश्चय है कि विजय अर्जुन की ही होगी। क्योंकि कर्ण दयालु और प्रमादी है और द्रोणाचार्य एक तो बूढ़े, दूसरे कौरव और पाण्डव दोनों के गुरु हैं। किन्तु अर्जुन समर्थ, बलवान् और परिश्रमी हैं। उनका धनुष भी श्रेष्ठ और दृढ़ है। तीनों वीर अपराजित, अस्त्रविद्या में निपुण, शूर,

उत्साही और यशस्वी हैं। ये लोग देवताओं के राज्य को भले ही छोड़ दें, परन्तु जय की इच्छा को नहीं छोड़ सकते। द्रोण और कर्ण मर जायँ या अर्जुन की मृत्यु हो जाय, तभी वह समर बन्द हो सकता है। किन्तु ऐसा कोई पृथ्वीमण्डल पर नहीं है जो अर्जुन को जीत सकता हो या मार सकता हो। जो मनुष्य अपने साथ वुराई करनेवाले दुष्टों के विरुद्ध युद्ध करने को खड़ा हुआ है उसका क्रोध ऐसे कैसे शान्त हो सकता है? अन्यान्य योद्धा युद्ध में जीतते हैं और हारते भी हैं, किन्तु मैंने आज तक अर्जुन को जीतने की ही खबर सुनी है। अर्जुन ने इन्द्र आदि तैंतीस देवताओं को जीतकर अग्नि को, जलाने के लिए, खाण्डव वन दिया और अग्नि को तृप्त किया है। मैंने नहीं सुना कि अर्जुन कहीं युद्ध में हारे हों। शील, चरित्र और पराक्रम मे १० अद्वितीय श्रीकृष्ण जिसके मारथी हैं वह इन्द्र की तरह अवश्य विजय प्राप्त करेगा, इसमें सन्देह नहीं है। मैंने सुना है कि श्रीकृष्ण, अर्जुन और गाण्डीव धनुष, ये तीनों अमह्य तेज एकत्र हो गये हैं। दुर्योधन के अनुगामी मन्दबुद्धि में पुत्र नहीं जानते कि हमारी ओर वैसा धनुष, वैसा रथी और वैसा मारथी नहीं है। सिर पर गिरकर प्रज्वलित वज्र का अन्त हो जाता है, परन्तु अर्जुन के प्रज्वलित बाणों का अन्त नहीं है। हे सञ्जय, मैं देखता हूँ कि महावीर अर्जुन मानों बाण-वर्षा करके मेरे सैनिकों को मार रहे हैं—तीक्ष्ण बाण चलाकर उनके सिरों को धड़ से काटकर पृथ्वी पर गिरा रहे हैं। अर्जुन के गाण्डीव धनुष से छूटे हुए तेजोमय प्रज्वलित बाण मेरी सेना को भस्म कर रहे हैं और कौरवों की सेना, अर्जुन के रथ के शब्द को सुनकर, घबराई हुई इधर-उधर भाग रही है। हवा से बढ़ी हुई आग जैसे इधर-उधर घूमकर जङ्गल को जलाती है, वैसे ही पाण्डवों का तेज मेरे पुत्रों को भस्म कर डालेगा। जब फुर्तिले अर्जुन तीक्ष्ण बाण बरमावेंगे तब वे सबका संहार करनेवाले यमराज की तरह अत्यन्त अमह्य हो उठेंगे। हे सञ्जय, मैं घर में बैठे-बैठे बारम्बार सुनूँगा कि कौरव-सेना छिन्न-भिन्न होकर इधर-उधर भाग रही है। निश्चय है कि यह कौरवों का नाश करनेवाला युद्ध होगा।

२०

तिरपनवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का पश्चात्ताप

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, जय की इच्छा रखनेवाले पाण्डव जैसे पराक्रमी हैं वैसे ही उनके आगे युद्ध-भूमि में चलनेवाले योद्धा भी उनके लिए प्राण देने का दृढ़ निश्चय किये हुए हैं। मुझीने कहा है कि बड़े बली और पराक्रमी पाञ्चाल, केकय, मत्स्य, मगध और वत्सदेश के राजा पाण्डवों की सहायता के लिए आये हैं। जो महाबली श्रीकृष्ण इच्छामात्र से इन्द्र-सहित सब लोकों को वश में कर सकते हैं वही त्रिभुवन के उत्पादक श्रीकृष्ण पाण्डवों को जय दिलाने की चेष्टा में लगे हुए हैं। शीघ्र ही अर्जुन से सब अस्त्र-विद्या सीख लेनेवाले शिनिवंश-

तिलक वीर सात्यकि पाण्डवों की ओर से वीज बाँने की तरह युद्ध-भूमि में बाण बरसावेंगे। क्रूर कर्म करनेवाले महारथी पाञ्चालनन्दन धृष्टद्युम्न पाण्डवों का पक्ष लेकर हमसे लड़ेंगे।

हे सञ्जय! युधिष्ठिर के क्रोध, अर्जुन के पराक्रम, भीमसेन के बल और नकुल-महदेव की युद्ध-चातुरी से मुझे डर लगता है। मनुष्यश्रेष्ठ पाण्डव जिन अलौकिक अस्त्रों से युक्त बाणों की वर्षा करेंगे उन्हें महकर जीते रहना मेरे सैनिकों की शक्ति से बाहर है। इसी से मैं इस तरह चिन्ता रहा हूँ। पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर दर्शनीय रूपवाले, उदार, श्रोमान्, ब्रह्मतेज-सम्पन्न, चतुर, बुद्धिमान्, धर्मपरायण, युद्ध के लिए उद्यत, महारथी, महावीर, मित्र-मन्त्री-भाई-ससुर आदि सहायकों से युक्त, धीर, सलाह को गुप्त रखनेवाले, दयाशील, दाता, लांकलजा का खयाल रखने-
१० वाले, सफल पराक्रमी, बहुत संशयों को अच्छी तरह जाननेवाले, जितेन्द्रिय, वृद्धों की सेवा में रहनेवाले और पुण्यात्मा हैं। इन सब गुणों से अलङ्कृत महात्मा युधिष्ठिर प्रज्वलित अग्नि के समान हैं। कौन मूढ़ पुरुष मरने की इच्छा से उस अनिवार्य अग्नि में पतङ्ग की तरह कूटना चाहेगा? मैंने अग्नि के समान तेजस्वी राजा युधिष्ठिर से अनुचित कपट का व्यवहार किया है। इस कारण मुझे निश्चय है कि वे युद्ध में मेरे अभाग पुत्रों का नाश कर डालेंगे।

हे कौरवों, मेरी समझ में उन वीर पाण्डवों से युद्ध न करना ही अच्छा है। युद्ध करने से कौरव-कुल का संहार हो जायगा। यही मेरा निश्चय है। सन्धि कर लेने से ही मेरे मन को शान्ति मिलेगी। जो तुम राजा हो जाओ तो मैं सन्धि के लिए यत्न करूँ, नहीं तो मेरे अत्यन्त क्लेश को देखकर भी युधिष्ठिर तरह नहीं देंगे। वे मुझे ही इस अधर्म का कारण
१६ मानकर मेरी निन्दा किया करते हैं।

चौवनवाँ अध्याय

सञ्जय का उत्तर

सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, आपका कहना सच है। युद्ध में गाण्डीव धनुष से सब चतुरियों का नाश होता देख पड़ता है। किन्तु नहीं मालूम, आप अर्जुन के बल-विक्रम को अच्छी तरह जानकर भी क्यों पुत्रों के अधीन हो रहे हैं। राजन्, आप पहले से ही सदा पाण्डवों के साथ कपट का व्यवहार करते आ रहे हैं। दोष आपका ही है; फिर विलाप करने से क्या होगा? जो पिता श्रेष्ठ, सुहृद् और सावधान है उसे आज्ञाकारी पुत्रों का हित ही करना चाहिए। द्रोह या अनिष्ट करनेवाला व्यक्ति कभी पिता या गुरु नहीं माना जा सकता। महा-राज! जुए के समय पाण्डवों की हार और अपने पुत्रों के “यह जीत लिया, यह पाया” ऐसे वचन सुनकर आप बालकों की तरह मुसकाते और प्रसन्नता प्रकट करते रहे। पाण्डवों को

सुनाकर कौरवों ने बहुत से अपमान-जनक कठोर वचन कहे और आप सुनते रहे। उस समय अपने पुत्रों के राज्यलाभ को देखकर आप खुश हुए किन्तु आगे हेनानवाले पुत्रों के सर्वनाश को देखकर भी आपने नहीं देखा। देखिए, पाण्डवों ने अपने पैतृक राज्य—कुरु और जाङ्गल देश—के सिवा बाहुबल से और अनेक देश जीतकर आपको अर्पण किये थे। आप समझते हैं कि वह सब राज्य आपका ही है। घोषयात्रा के समय गन्धर्वराज चित्रसेन आपके पुत्रों को पकड़े लिये जा रहा था [दुर्योधन आदि निराश्रय होकर विपत्ति के समुद्र में डूब चुके थे] उस समय महाबली पाण्डवों ने ही महायता की और गन्धर्वों की कैद से दुर्योधन आदि को छुड़ाया।

राजन्, पाण्डव जब जुए में हारकर वन को जा रहे थे तब आप वच्चों की तरह बार-बार मुसकाकर खुशी ज़ाहिर कर रहे थे। महाराज, अर्जुन के बाण वरमाने पर मनुष्यों की १० कान कहे, समुद्र भी सूख जा सकते हैं। अर्जुन सब धनुष धारण करनेवाले वीरों में श्रेष्ठ हैं। गाण्डीव सब धनुषों में श्रेष्ठ है। वैसे ही श्रीकृष्ण सब प्राणियों में श्रेष्ठ हैं और उनका सुदर्शन चक्र सब शस्त्रों में अद्वितीय है। अर्जुन का वानरयुक्त केतु (ध्वजा) भी अद्वितीय है। राजन्, यह सब सामग्री जब सफेद घाड़ों से शांभित अर्जुन के रथ पर एकत्र होगी तब प्रतापी अर्जुन कालदण्ड की तरह कौरवपक्ष के सब लोगों का विनाश कर डालेंगे। हे भरतश्रेष्ठ, भीमसेन और अर्जुन जिनकी ओर लड़नेवाले हैं वे युधिष्ठिर इसी समय सारी पृथ्वी को जीतकर अपने अधिकार में कर सकते हैं। दुर्योधन आदि कौरव भीमसेन के हाथ से अपनी संना का संहार हाते देखेंगे और आप भी विनाश का प्राप्त होंगे। हे स्वामी भीम और अर्जुन के पराक्रम से मन ही मन डरनेवाले आपके पुत्र और उनके अनुगामी लोग कभी विजय नहीं पा सकते।

महाराज ! मत्स्य, पाञ्चाल, कंकय, शाल्व, शूरसेन आदि देशों के राजा अर्जुन के पराक्रम को जानते हैं। वे आपको और आपके पुत्रों को आदर की दृष्टि से नहीं देखते। सब अर्जुन के ही पक्ष में जाकर आपसे लड़ने को तैयार हैं। वे सब सदा से पाण्डवों के भक्त और आपके पुत्रों के विरोधी हैं। महाराज, आप शोक न करके अपने पापी पुत्र दुर्योधन को और उसके सलाहकार साधियों को शीघ्र दण्ड देकर राह पर लाइए। दुर्योधन ने अनुचित उपाय से कई बार धर्मात्मा और वध के अयोग्य पाण्डवों को मार डालने की चेष्टा की है। वे सदा पाण्डवों को क्लेश पहुँचाते रहे हैं और अब भी उनसे घोर शत्रुता रखते हैं। महाराज, यही बात जुए के समय मैंने और महात्मा विदुर ने भी कही थी। मैं दुर्योधन के पीछे यही कह चुका हूँ और इस समय उनके आगे भी कह रहा हूँ। इसी में भलाई है। जो आप असमर्थता दिखाते हुए पाण्डवों के लिए विलाप करेंगे और पुत्रों को शासन के द्वारा राह पर नहीं लावेंगे तो आपका यह विलाप करना वृथा है।

पचपनवाँ अध्याय

दुर्योधन के वचन

दुर्योधन ने पिता से कहा—महाराज, आप न तो डरें और न हमारे लिए शोक ही करें। हम लोग प्रबल शत्रुओं को युद्ध में हरा सकेंगे। वन में गये हुए पाण्डवों के पास जब श्रीकृष्ण



गये थे तब शत्रुराज्य को पीड़ा पहुँचाने-वाली बहुत सी सेना साथ लेकर कंकयदेश के राजकुमार, धृष्टशुम्भ, धृष्टकेतु आदि पाण्डवों के अनुगामी अनेक महारथी राजा उनसे मिलने गये थे। उस समय पाण्डव लोग इन्द्रप्रस्थ से थोड़ी ही दूर पर थे। काली मृगछाला पहने वनवासी युधिष्ठिर के पास बैठकर श्रीकृष्ण आदि उन सब राजाओं ने आपकी और कौरवों की जी भरकर निन्दा की और पाण्डवों को सराहा। सबने युधिष्ठिर से कहा कि कौरवों से राज्य ले लेना ही तुम्हारा कर्तव्य है। मुझे जब मालूम हुआ कि वे सब लोग आपको और आपके वंश को मिटा देना चाहते हैं तब जातिनाश के डर से मैंने भीष्म, द्रोणाचार्य,

कृपाचार्य आदि से कहा कि “श्रीकृष्ण हम कौरवों का सर्वनाश करवाना चाहते हैं। मुझे निश्चय है कि श्रीकृष्ण के कहने पर पाण्डव चलेंगे और विदुर और धृतराष्ट्र के सिवा सब जाति-वालों का मार डालने की चेष्टा करेंगे। श्रीकृष्ण हम सबका नाश कराकर युधिष्ठिर को कुरु-राज्य देना चाहते हैं। अब आप ही सोचकर बताइए कि ऐसी दशा में हमारा क्या कर्तव्य है। हमें दबकर मेल कर लेना चाहिए या भाग जाना चाहिए? अथवा जी-जान से शत्रुओं से लड़ना चाहिए? यह निश्चित है कि पाण्डवों का सामना करने से अन्त को हमें हारना पड़ेगा; क्योंकि सभी लोग राजा युधिष्ठिर के अनुकूल हैं। इधर राज्य के सब लोग हमसे नाराज़ हैं और हमारे मित्र भी हमसे चिढ़े हुए हैं। सभी राजा और स्वजन मुझे धिक्कार देते हैं। दबकर नम्रता के साथ सन्धि कर लेने में कोई दोष नहीं है, सदा के लिए शान्ति हो जायगी। किन्तु मैं अपने पिता प्रज्ञाचक्षु (अन्वे) वृद्ध राजा के लिए ही चिन्तित हो रहा हूँ। उन्होंने

मेरे लिए अनन्त दुःख सहे हैं । आप जानते ही हैं कि मेरी प्रसन्नता के लिए मेरे भाई शत्रुओं की वृद्धि रोकने के अनेक उपाय कर चुके हैं । महारथी पाण्डव लोग उन्हीं बातों का बदला लेने के लिए महाराज धृतराष्ट्र के पुत्रों और मन्त्रियों का नाश करने की चेष्टा अवश्य करेंगे ।” पिताजी, मेरी ये बातें सुनकर और मुझे बहुत ही चिन्तित देखकर उस समय भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा ने कहा—“हे शत्रुदमन, शत्रुओं से द्रोह करने के कारण तुम मत डरो । हम लोग जब युद्ध के लिए तैयार होंगे तब पाण्डव हमें किसी तरह नहीं जीत सकेंगे । हममें से हर एक ऐसा है जो सब राजाओं को जीत सकता है । इसलिए आओ, हम तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों के अनुगामी राजाओं का दर्प चूर्ण करें ।” राजन्, पहले पिता शान्तनु के मरने पर कुपित होकर महाबली भीष्म अकेले एक ही रथ से सब शत्रु राजाओं को परास्त कर चुके हैं । जब बहुत से राजा मारे गये तब वचे हुए लोग डर के मारे देवव्रत की शरण में आ गये । वही महातेजस्वी भीष्म हमारी आर से युद्ध करेंगे । इसलिए आप शत्रुओं से मत डरिए और उन्हें जीतने के सम्बन्ध में चिन्ता भी न कीजिए । भीष्म, द्रोण आदि महा-पराक्रमी वीर उसी समय से पाण्डवों का मान-मर्दन करने के लिए दृढ़ निश्चय कर चुके हैं । २०

महाराज, पहले यह सब पृथ्वी हमारे शत्रु पाण्डवों के हाथ में थी । फिर हमने उनसे ले ली । अब भी वे शत्रु हमें युद्ध में नहीं जीत सकते । इस समय पाण्डव लोग बलवीर्यरहित और सहाय-हीन हैं । सारी पृथ्वी का राज्य मेरे हाथ में है । जिन राजाओं को मैंने वुलाया है वे मेरे लिए समुद्र में और आग में भी कूद सकते हैं । मेरे सुख-दुःख को वे अपना ही सुख-दुःख समझते हैं । वे आपको यों डरा हुआ, दुःखित और पागलों की तरह प्रलाप करते देखकर हँस रहे हैं । इनमें से हर एक वीर युद्धकला में पाण्डवों के समान है । ये सब अपने को ऐसा ही समझते हैं । आप इस डर को अपने हृदय से हटा दीजिए ।

राजन्, साक्षात् इन्द्र भी मेरी सारी सेना को परास्त नहीं कर सकते । मेरी सेना और प्रभाव को देखकर युधिष्ठिर ऐसे डर गये हैं कि वे नगरों का राज्य छोड़कर केवल पाँच गाँव माँगते हैं और इतने ही पर मेल करने को राजा हैं । आप मेरे सम्पूर्ण प्रभाव को नहीं जानते इसी से आपकी यह भ्रमपूर्ण धारणा है कि भीमसेन हम सबसे बली और समर्थ है । पृथ्वी पर गदायुद्ध में मेरी बराबरी करनेवाला न कोई हुआ है, न है और न होगा । मैंने अनेक कष्ट सहकर चित्त लगाकर गुरुकुल में सम्पूर्ण विद्या प्राप्त की है । इसलिए भीमसेन से या और किसी से मैं नहीं डरता । मैंने अद्वितीय योद्धा बलदेवजी से गदायुद्ध की कला सीख ली है । मेरे जैसा गदायुद्ध करनेवाला, बलदेवजी की निगाह में, दूसरा वीर नहीं है । युद्ध में भीमसेन कभी मेरी गदा की चोट नहीं सह सकता । राजन्, मैं कोपित होकर गदा के एक ही बार से भीमसेन को मार गिराऊँगा । एक बार गदा हाथ में लिये भीमसेन को युद्धभूमि में अपने सामने ३०

देखने की मुझे बड़ी इच्छा है। तभी मेरा बहुत दिनों का मनोरथ पूरा होगा। मैं जब भीमसेन को गदा मारूँगा तब वह उसी दम मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। दूसरे की कौन कहे, मेरी गदा की चोट से हिमालय पहाड़ के भी हज़ारों टुकड़े हुए बिना नहीं रह सकते। भीमसेन, श्रीकृष्ण और अर्जुन को भी यह बात अच्छी तरह मालूम है कि गदायुद्ध में मेरे समान कोई दूसरा नहीं है। इसलिए आप भीमसेन से न डरिए। मैं अवश्य ही उसको मारूँगा। उसके मरने पर अन्य मेरे पक्ष के, अर्जुन के समान और उनसे श्रेष्ठ, यादवा अवश्य ही अर्जुन को मार सकेंगे।

पिताजी! भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, भूरिश्रवा, प्राग्व्योतिषपुर के राजा भगदत्त, शल्य, सिन्धुराज जयद्रथ आदि वीरों में से हर एक राजा पाण्डवों को मार सकता है। फिर जब ये सब मिलकर युद्ध करेंगे तब तो अवश्य ही क्षण भर में पाण्डवों को मार गिरावेंगे। इसका कोई कारण नहीं देख पड़ता कि ये सब अद्वितीय वीर यादवा अकेले अर्जुन को परास्त न कर सकें।

अर्जुन अवश्य ही भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य के तीक्ष्ण वाणों से यमपुरी के पाहुने बनेंगे। ब्रह्मर्षि-सदृश पितामह भीष्म शान्तनु के वीर्य और गङ्गा के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। देवता भी उनके पराक्रम को नहीं सह सकते। उन्हें मारनेवाला कोई नहीं है; क्योंकि पिता ने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया है कि उनके स्वयं इच्छा किये बिना उनकी मृत्यु न होगी।

महात्मा द्रोणाचार्य भी महर्षि भरद्वाज से उत्पन्न हुए हैं। श्रेष्ठ अस्त्रों के ज्ञाता अश्वत्थामा उनके पुत्र हैं। कृपाचार्य शरस्तम्भ में महर्षि गौतम के वीर्य से उत्पन्न हुए हैं। जिनके माता, पिता और मामा अयोनिक हैं वे महापराक्रमी अश्वत्थामा मेरी सहायता करने को तैयार हैं। ये सब देवतुल्य महारथी युद्ध में इन्द्र को भी हरा सकते हैं। अर्जुन इनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते। हे राजेन्द्र, ये सब मिलकर अर्जुन को मारेंगे।

मेरी समझ में अकेले कर्ण ही भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के समान हैं। परशुराम से अस्त्रशिक्षा प्राप्त करके ये जब घर को लौटे थे तब परशुराम ने कहा था कि हे कर्ण, तुम युद्धकला में मेरे समान हो गये। शत्रुदमन इन्द्र जब इन्द्राणी के लिए इनसे स्वाभाविक कवच और कुण्डल माँगने आये थे तब वे इन्हें उसके बदले में एक अमोघ शक्ति दे गये हैं। ये महावीर कर्ण जब वह महाभयङ्कर अमोघ शक्ति अर्जुन पर चलावेंगे तब अर्जुन कैसे जीते रहेंगे?

राजन्, विजय मेरे हाथ में है और शत्रुओं की हार भी प्रकट है; क्योंकि ये महावीर भीष्म एक दिन में दस हज़ार वीरों को मार सकते हैं। महाधनुर्धर द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य इनके समान पराक्रमी हैं और वीर संशप्तक क्षत्रिय भी साधारण नहीं हैं। मेरे पक्ष के राजाओं के मन में यह संशय नहीं है कि या हम लोग कपिध्वज अर्जुन को मारेंगे, अथवा अर्जुन हमें मारेंगे। वे अर्जुन को मारकर विजय प्राप्त करने का निश्चय कर चुके हैं।

इसलिए, आप पाण्डवों से डरकर क्यों दुखी होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ, भीमसेन के मार जाने पर और कौन हमारा सामना करेगा ? हे शत्रुदमन, जो शत्रुपक्ष में और कोई ऐसा आदमी आपका जाना हो, तो बताइए।

शत्रुपक्ष के प्रधान यादवा पाँचों पाण्डव, धृष्टद्युम्न और मात्यकि हैं। किन्तु उनसे श्रेष्ठ भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण, सोमदत्त, वाह्लिक, शल्य, जयद्रथ, दुःशासन, दुःमह, चित्रसेन, श्रुतायु, पुरुमित्र, विविंशति, शल, भूरिश्रवा और आपके पुत्र विकर्ण आदि अनेक यादवा मंत्रपक्ष में हैं। इसके सिवा मैंने ग्यारह अर्जुनसिंहासेना जमा की है। शत्रुओं के पास केवल सात अर्जुनसिंहासेना है। फिर क्यों हमारी हार होगी ? बृहस्पति का कहना है कि अपनी सेना जिससे तिहाई अधिक हो उससे युद्ध करना चाहिए। राजन्, मेरी सेना शत्रुसेना से तिहाई अधिक है। इसके सिवा शत्रुपक्ष के अनेक लोग हमारी अपेक्षा गुणहीन हैं। अब आपको हमारे बल की अधिकता और शत्रुओं के बल की हीनता अच्छी तरह मालूम हो गई। इसलिए खेद करना आपके योग्य कार्य नहीं है।

पिता से यों कहकर दुर्योधन पाण्डवों का वृत्तान्त जानने के लिए मञ्जय से कहने लगा। ६८

छप्पनवाँ अध्याय

दुर्योधन और मञ्जय की बातचीत

दुर्योधन ने पूछा—हे मञ्जय, राजाओं-सहित सात अर्जुनसिंहासेना एकत्र करके युद्ध की तैयारी करनेवाले युधिष्ठिर क्या करना चाहते हैं ?

मञ्जय ने कहा—राजन्, राजा युधिष्ठिर युद्ध के लिए बहुत ही उत्साहित हैं। भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी डरते नहीं हैं। अर्जुन ने मन्त्र की परीक्षा के लिए अपना दिव्य रथ जोतकर खड़ा किया था। उस रथ की प्रभा से सब ओर प्रकाश फैल गया था। कवच पहने हुए अर्जुन विजली के प्रकाश से चमकते हुए मेघ की तरह जान पड़ते थे। अच्छी तरह जाँच करके अर्जुन ने उत्साह के साथ मुझसे कहा कि “मञ्जय, हम अवश्य जीतेंगे। हमारी विजय के चिह्न अभी से देख पड़ते हैं।” हे कुरुराज, अर्जुन ने जो कहा वही मुझे भी जान पड़ा।

दुर्योधन ने कहा—मञ्जय, जुए में हारे हुए पाण्डवों का अभिनन्दन करते हुए तुम उनकी प्रशंसा कर रहें हो। बताओ, अर्जुन के रथ में घोड़े कैसे हैं ? और, ध्वजा कैसी है ?

मञ्जय ने कहा—राजन् ! विश्वकर्मा, इन्द्र और प्रजापति ने अर्जुन की बहुमूल्य श्रेष्ठ ध्वजा में अनेक रूप (सूरतें) चित्रित किये हैं। भीमसेन के अनुरोध से युद्ध में पवनपुत्र हनुमान उस ध्वजा पर बैठेंगे। वह ध्वजा तिरछे और ऊपर एक योजन तक फैली हुई है। विश्वकर्मा

ने उस पर ऐसी माया दिखलाई है कि वह वृत्त आदि के भुण्ड में भी चली जाती है, किन्तु वृत्त १० उसमें छू नहीं जाते। जैसे आकाश में विचित्र इन्द्रधनुष का प्रकाश मनोहर जान पड़ता है,



किन्तु ठीक रङ्ग नहीं जाना जाता, वैसे ही उस ध्वजा में भी अनेक रङ्ग देख पड़ते हैं। जैसे आकाश में छाया हुआ धुआँ तेज से शोभायमान होता है, वैसे ही वह विश्वकर्मा की बनाई हुई ध्वजा है। उसमें न तो बोझ है और न वह कहीं रुकती या अटकती है। नरेन्द्र, उस विचित्र रथ में तेज़ी से जानेवाले सफेद घोड़े जुते हैं। ये वही सौ घोड़े हैं जो चित्ररथ गन्धर्व ने दिये थे। इनमें यह करामात है कि चाहे जितने क्यों न मारे जायें, सौ के सौ बने रहेंगे; कम न होंगे। वे पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग आदि सब स्थानों में जा सकते हैं। यही बात उस रथ में भी है। राजा युधिष्ठिर के रथ में उनके पराक्रम के अनुरूप फुर्तीले घोड़े जुते हुए हैं। वे भी

आकाश, स्वर्ग और पृथ्वी पर चल सकते हैं। भीमसेन के रथ में भी हवा से बातें करनेवाले बढ़िया घोड़े जुते हुए हैं। सहदेव के घोड़ों की पीठ तीतर के रङ्ग की विचित्र है और सब शरीर काला है। अर्जुन ने प्रमत्त होकर वे घोड़े उनको दिये हैं। वे घोड़े वीर अर्जुन के घोड़ों से भी अच्छे हैं। वे कभी नहीं थकते। इन्द्र के दिये हुए बढ़िया घोड़े नकुल के रथ को लं चलते हैं। हवा के समान वेग से चलनेवाले, एक रङ्ग-रूप और शक्तिवाले, चित्रसेन गन्धर्व के १७ दिये हुए, दिव्य घोड़े कुमार अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्रों के रथों में लगे हैं।

सत्तावनवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का उदास होना

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय, पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए हमारे पक्ष की सेना से युद्ध करने को कौन-कौन वीर आये हैं, यह भी तुमने देखा था ?

सञ्जय ने कहा—राजन्, मैंने वहाँ देखा कि वृष्णि और अन्धकवंश के मुखिया श्रीकृष्ण और चेकितान आये हैं। मर्दानगी का दावा रखनेवाले महारथी सात्यकि और चेकितान अलग-अलग एक-एक अर्जुन की सेना लेकर पाण्डवों के पास आये हैं। पाञ्चालराज द्रुपद—सत्यजित्, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि दस पुत्रों के साथ—एक अर्जुन की सेना लेकर आये हैं। उनके सैनिक ऐसे कवच पहने हैं कि शरीर का कोई हिस्सा खुला नहीं है। शङ्ख और उत्तर नामक दोनों कुमारों तथा भाइयों सहित राजा विराट एक अर्जुन की सेना लेकर आये हैं। सूर्यदत्त और मदिराक्ष आदि वीर उनके साथ हैं। मगध के राजा जरामन्ध का पुत्र और चेदि-नरेश धृष्टकेतु दोनों एक-एक अर्जुन की सेना लेकर आये हैं। लाल ध्वजावाले पाँचों भाई कंकयदेश के राजकुमार एक अर्जुन की सेना लेकर पाण्डवों के पास आये हैं।

मनुष्यों, गन्धर्वों और असुरों के व्यूहों को जाननेवाले महारथी धृष्टद्युम्न पाण्डवों की सेना के अगले हिस्से में रहेंगे। पितामह भीष्म को मारने का काम शिखण्डी को सौंपा गया है। मत्स्यदेश की वीर सेना के साथ राजा विराट शिखण्डी की सहायता करेंगे। बली मद्र-नरेश शल्य को मारने का भार राजा युधिष्ठिर ने अपने ऊपर लिया है। कुछ लोगों की राय यह हुई कि ये काम इन दोनों के द्वारा न हो सकेंगे। सौ भाइयों-सहित दुर्योधन को और पूर्व तथा दक्षिण के राजाओं को मारना भीमसेन ने स्व-कार किया है। कर्ण, अश्वत्थामा, विकर्ण और जयद्रथ महावीर अर्जुन के हिस्से में पड़े हैं। अपने को शूर समझनेवाले जो अन्य राजा लोग दुर्योधन समझ जाते हैं उन्हें भी अर्जुन ने अपने हिस्से में लिया है। धनुर्धर पाँचों भाई कंकय राजकुमार कंकय-सेना लेकर लड़ेंगे। इनके हिस्से में मालव, शाक्वक और संशप्तक नाम से विख्यात त्रिगर्त देशवालों के मुख्य वीरगण पड़े हैं। दुर्योधन और दुःशामन के पुत्रों और महाराज बृहद्रथ को मारने का भार अभिमन्यु ने लिया है। सुवर्ण की ध्वजावाले, महाधनुर्धर द्रौपदी के पुत्र और धृष्टद्युम्न आदि वीर द्रोणाचार्य पर आक्रमण करेंगे। चेकितान सोमदत्त से द्वैत युद्ध करेंगे। भोजपति सात्यकि कृतवर्मा से लड़ेंगे। माद्री के पुत्र, महाशूर, इन्द्र-सदृश, युद्ध-निपुण सहदेव आपके साले शकुनि से सङ्ग्राम करेंगे। धूर्त उलूक और सारस्वत राजाओं से नकुल लड़ेंगे। इनके सिवा और जो-जो राजा आपकी ओर से लड़ने जायेंगे उनको मारने का काम पाण्डव आपस में बाँट लेंगे। पाण्डवों की सेना का विभाग यों ही हुआ है। अब आपको और आपके पुत्रों को जो कर्तव्य समझ पड़े वह कीजिए।

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय, मेरे शूतासक्त दुर्मति पुत्र यदि महाबली भीमसेन से लड़ेंगे तो कभी जीते न बचेंगे। कालवश होकर सब राजा आग में कूदनेवाले पतङ्गों की तरह गाण्डीव धनुष की आग में भस्म होंगे। जिनसे वीर बाँधा जा चुका है उन वीर पाण्डवों की बाण-वर्षा के आगे मेरी सेना कभी नहीं ठहर सकेगी। जब सब सैनिक भागेंगे तब उन्हें कौन बचावेगा? पाण्डव लोग महारथी, शूर, कीर्तिशाली, प्रतापी, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी तथा युद्ध में विजय

प्राप्त किया करते हैं। युधिष्ठिर जिनके नेता हैं, श्रीकृष्ण जिनके रक्षक हैं और अर्जुन, भीमसेन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, उनके भाई, सात्यकि, भाई-सहित धृष्टकेतु, द्रुपद, दुर्जय युधामन्यु, शिखण्डी, चित्रदेव, विराट के पुत्र उत्तर, वध्रु, काशिनरंश, चेदिराज, मत्स्यराज, सृञ्जय, पाञ्चाल ३४ और प्रभद्रक आदि जिधर के योद्धा हैं, उनके राज्य को सात्तान् इन्द्र भी नहीं ले सकते। पाण्डव रणधीर हैं। वे पहाड़ तक को अपने वाणों से तोड़ सकते हैं। हे सञ्जय, मेरे दुर्गुद्धि पुत्र उन्हीं सब गुणों से युक्त अलौकिक प्रतापी पाण्डवों से युद्ध करना चाहते हैं।

दुर्योधन ने कहा—पिताजी, हम और पाण्डव एक ही जाति के और एक ही मनुष्य-लोक के निवासी हैं। फिर आप पाण्डवों के ही जीतने की आशा क्यों करते हैं? पाण्डवों की बात जानें दोजिए, सब देवताओं-सहित इन्द्र भी भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, जयद्रथ, सोमदत्त और अश्वत्थामा आदि महाधनुर्धर महातंजस्वी वीरों को नहीं जीत सकते। पाण्डव तो मेरी सेना की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकेंगे। मैं अपने पराक्रम से उन सबको युद्ध में नीचा दिखा- ४० ऊँगा। मेरा प्रिय करने के लिए जमा हुए राजा लोग ही विपत्तियों को विमुख कर देंगे। मेरे रथों की कतार और वाणों की वर्षा से पाञ्चालों समेत पाण्डव लोग युद्ध-भूमि से भाग जायेंगे।



धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, मेरा यह अशिष्ट पुत्र पागल की तरह बक रहा है। यह युद्ध में युधिष्ठिर को कभी न हरा सकेगा। पितामह भीष्म पाण्डवों के और उनके कुमारों के बल को जानते हैं; इसी से वे युद्ध नहीं पसन्द करते। अस्तु, तुम फिर पाण्डवों के कार्य और उद्योग का हाल सुनाओ। कौन-कौन आदमी उन महायाद्धा पाण्डवों को वैसे ही युद्ध के लिए उत्तेजित कर रहा है जैसे आग में घी की आहुति डाली जाती हो?

सञ्जय ने कहा—राजन्, वीर धृष्ट- ५० द्युम्न नित्य यह कहकर पाण्डवों को उकसाते हैं कि “वीरो, निर्भय होकर युद्ध करो। दुर्योधन के अनुरोध से इस सङ्ग्राम में जो लोग लड़ने आवेंगे उन्हें मैं अकेला ही, जल से मछली की तरह, पकड़-पकड़कर मार डालूँगा। तटभूमि जैसे समुद्र के वेग को रोक रखती है वैसे ही भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा,

शल्य और दुर्योधन कं वेग को मैं रोक रखूँगा ।” युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न से कहा था—हे वीर, ५० पाञ्चालों को और हम लोगों को तुम्हारे ही पराक्रम और धैर्य का भरोसा है। तुम क्षत्रियधर्म के अनुगामी और अकेले ही युद्ध-भूमि में कौरवों का नाश कर सकते हो। यह मैं जानता हूँ। तुम्हारी सलाह से हमारा भला होता है। नीतिकारों का कहना है कि हजार गुना मूल्य देकर ऐसे आदमियों को अपने पास रखना चाहिए, जो युद्ध-विमुख, शरणागत और भागनेवाले पुरुषों को पौरुष दिखाकर उत्साहित करते हुए, आप उनके अगुआ बनकर, खड़े हो जायें। तुम शूर, वीर, पराक्रमी हो। तुम युद्ध में डरे हुए पुरुषों की रक्षा कर सकते हो।

धर्मशील युधिष्ठिर यों कह रहे थे और मैं डर से व्याकुल हो रहा था। इसी समय धृष्टद्युम्न ने मुझसे कहा—हे मृत! तुम जाकर अग्निनाभ-निवागी योद्धा बाह्लीक, कौरव, प्रातिपत्य-गण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, जयद्रथ, दुःशासन, विकर्ण, भीष्म और राजा दुर्योधन से कहो कि वे लोग शीघ्र युद्ध के लिए आवें।

महाराज, मैं प्रार्थना करता हूँ कि कोई सज्जन पुरुष अभी राजा युधिष्ठिर के पास इसलिए जाय जिसमें देव-रक्षित अर्जुन आप लोगों का संहार न करें। आप राजा युधिष्ठिर को आधा राज्य देने की सूचना शीघ्र पाण्डवों के पास भेजिए। मत्स्यपराक्रमी अर्जुन पृथ्वी पर अद्वितीय योद्धा हैं। वे ऐसे पराक्रमी हैं कि देवताओं ने उन्हें रथ दिया है। कोई उन्हें हरा नहीं सकता। इसलिए आप युद्ध का इरादा छोड़ दीजिए।

६२

अष्टावनवां अध्याय

धृतराष्ट्र और दुर्योधन की बातचीत

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय ! ब्रह्मचारी, क्षत्रियतेज से युक्त, पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर से मेरे मन्दमति पुत्र लड़ना चाहते हैं। मैं राता और क्लपता हूँ, पर मेरा कहा नहीं मानते। दुर्योधन, तू युद्ध का विचार छोड़ दे। किसी दशा में युद्ध अच्छा नहीं है। आधा राज्य तुम्हारे लिए काफी है। तुम मन्त्रियों-सहित मजे में रह सकते हो। पाण्डवों को उनका हिम्सा दे दो। तुम आधा राज्य देकर पाण्डवों से मेल कर लो, यही कुरुवंश के लोगों की इच्छा है। सब इसी को धर्मसङ्गत समझते हैं। बेटा, तुम अपनी सेना की ओर देखो। यह जमाव तुम्हारे सर्वनाश के लिए हुआ है। तुम मोहवश होकर नहीं जान पाते। शत्रु-पीड़ित कौरवों की रक्षा करने-वाले भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, बाह्लीक, अश्वत्थामा, सञ्जय, सोमदत्त, शल, सत्यव्रत, पुरु-मित्र, जय, भूरिश्रवा आदि सब वीर योद्धा और मैं, कोई भी युद्ध के पक्ष में नहीं है। तुम इन सबकी सम्मति से काम करो। तुम अपनी इच्छा से युद्ध में प्रवृत्त नहीं होते; तुम्हें तो युद्ध के लिए कर्ण, दुःशासन और शकुनि उभाड़ रहे हैं।

दुर्योधन ने कहा—पिताजी ! मैंने द्रोण, अश्वत्थामा, भीष्म, वाह्लीक, कृप, काम्बोज, सत्य-
व्रत, पुरुमित्र, भूरिश्रवा अथवा आपके अन्य किसी यादवा के बल पर भरोसा रखकर पाण्डवों
११ को युद्ध के लिए नहीं ललकारा है । मैं और कर्ण, दोनों वीर अपने पराक्रम के बल पर यह
युद्ध-यज्ञ करना चाहते हैं । इस यज्ञ में बलि-पशु युधिष्ठिर, वेदो रथ, सुवा खड्ग, सुकु गदा,
मृगछाला कवच, चारों होता मेरे चारों घोंड़ें, कुश बाण और धी यश होगा । मैं युद्ध-भूमि में आत्म-
यज्ञ से यमराज को प्रसन्न करके, शत्रुओं को मारकर, राजलक्ष्मी पाकर, अपनी नगरी में
आऊँगा । मैं, कर्ण और भाई दुःशासन, ये तीनों वीर युद्ध में अवश्य पाण्डवों को मारेंगे ।
महाराज, या तो मैं पाण्डवों को मारकर इस पृथ्वी का साम्राज्य करूँगा और या पाण्डव मुझे
मारकर इस पृथ्वी पर सम्राट् कहावेंगे । मैं राज्य, सब ऐश्वर्य और अपना जीवन भी चाहते हूँ,
दूँ, किन्तु पाण्डवों से मेल नहीं करूँगा । सुई की नोक भर पृथ्वी भी मैं पाण्डवों को नहीं दूँगा ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे राजाओं, दुर्योधन को तो मैंने छोड़ दिया; जो उसके भाग्य में बदा
है वह होगा । मुझे शोक तुम्हारे लिए हो रहा है, जो इस दुर्योधन के पीछे यमपुरी के मार्ग में
२० पैर रख रहे हो । बाघ जैसे मृगों के झुण्ड में पैठकर उन्हें नष्ट करता है वैसे ही पाण्डव लोग
कौरव-सेना के चुने-चुने जवानों को छाँट-छाँटकर मारेंगे । मुझे जान पड़ता है, महाबाहु सात्यकि
की मार से व्याकुल और घबराई हुई हमारी सेना पीछे का भाग रही है । अर्जुन की सहायता
करनेवाले सात्यकि, श्वेत में वीज बोलने की तरह, समर-भूमि में बाण बरसावेंगे । बड़ी ऊँची
दीवाल की तरह भीमसेन सब सेना के आगे होंगे, सब लोग उन्हीं का आश्रय लेकर कौरवसेना में लड़ेंगे ।

दुर्योधन ! तुम जब देखोगे कि भीमसेन ने पहाड़ ऐसे हाथियों को गिरा दिया है, उनके
दाँत टूट गये हैं, सिर फट गये हैं और वे खून से लथ-पथ होकर युद्ध-भूमि में फटे हुए पहाड़ के
शिखर ऐसे पड़े हुए हैं तब भीमसेन से डरकर तुम मेरी इन बातों को याद कराओगे । जब
भीमसेनरूपी आग में असंख्य हाथी, रथ, पैदल आदि को स्वाहा होते देखोगे तब तुम्हें मेरी ये
बातें याद आवेंगी । मैं नहीं चाहता कि पाण्डवों की ओर से तुम्हें किसी प्रकार का डर हो;
क्योंकि युद्ध में तुम सबको भीमसेन की गदा पीस डालेंगी । पाण्डवों से सन्धि न कराओ तो
भाइयों-सहित तुम्हारी यह दशा अवश्य होगी । जब देखोगे कि भीमसेन ने बड़े भारी वन की
तरह कौरव-सेना का तहम-नहस कर डाला है, तब तुमको मेरा कहा याद आवेगा ।

वैशम्पायन कहते हैं—राजा धृतराष्ट्र सब राजाओं के आगे दुर्योधन से यों कहकर फिर
२६ सज्ज से पूछने लगे ।

हिन्दी-महाभारत



कृष्णार्जुन द्रौपदी और सत्यभामा का विश्रम्भालाप ।

उनसठवाँ अध्याय

सञ्जय का श्रीकृष्ण के वचन सुनाना

धृतराष्ट्र ने कहा—हं प्राज्ञ, महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन ने जो कहा हं वह मुझसे कहा। उसे सुनने के लिए मैं अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा हूँ।

सञ्जय ने कहा—राजन, मैंने महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन को जिम ढङ्ग से देखा और उन दोनों वीरों ने जो मुझसे कहा, सो मैं आपको सुनाता हूँ। उन नर-देवों से मिलने के लिए हाथ जोड़ें, सिर झुकायें, मैं अन्तःपुर के भीतर गया। जहाँ श्रीकृष्ण, अर्जुन, द्रौपदी और सत्यभामा थीं वहाँ आज्ञा के बिना अभिमन्यु, नकुल और सहदेव भी नहीं जा सकते।

वहाँ महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन माध्वा मदिरा पियें, शरीर में उत्तम चन्दन लगाये, बढ़िया कपड़े पहने, विविध बहुमूल्य अलङ्कारों से आभूषित होकर रत्नमण्डित सुवर्ण के आसन पर बैठे थे। मैंने देखा, अर्जुन की गोद में श्रीकृष्ण के और द्रौपदी की गोद में अर्जुन के चरण रखे थे। सत्यभामा की गोद में श्रीकृष्ण का सिर था। अर्जुन ने मुझसे स्वर्णरचित पाद-पीठ पर बैठने के लिए कहा। मैं उस आसन को हाथ से छूकर नीचे ही बैठ गया। अर्जुन ने पैर रखने की चौकी से जब पैर उठाये तब मैंने देखा कि उनमें ऊर्ध्ववरेखा आदि अनेक शुभ लक्षण मौजूद हैं। राजन ! श्यामवर्ण, पुष्ट, लम्बे, तरुण और शाल-



वृत्त ऐसे ऊँचे कन्धोंवाले श्रीकृष्ण और अर्जुन को एक ही आसन पर बैठे देखकर मुझे बड़ा डर लगा। वे दोनों वीर इन्द्र और विष्णु के समान हैं। दुर्योधन को भीष्म और द्रोण के आश्रय का तथा कर्ण के शस्त्री मारने का भरोसा है, इसी से वे उनकी महिमा को नहीं जानते या जानकर भी नहीं मानते। ऐसे पुरुषोत्तम (श्रीकृष्ण और अर्जुन) जिनकी आज्ञा पर चलनेवाले हैं उन महाराज युधिष्ठिर का मनोरथ अवश्य पूरा होगा। मुझे तो यही जान पड़ता है। भोजन, कपड़े, गहने आदि देकर अर्जुन ने मेरा सत्कार किया। मधुर सम्भाषण आदि के उपरान्त मैंने हाथ जोड़कर आपका सँदेसा कहा। तब धनुष की डोरी के दागवाले हाथ से अर्जुन ने श्रीकृष्ण के

शुभ लक्षणयुक्त पैर को दबाकर, उत्तर देने के लिए, उन्हें इशारा किया। अलङ्कार-भूषित, महेन्द्र-महेश, वीर्यशाली, श्रेष्ठ वक्ता श्रीकृष्ण इन्द्र की ध्वजा के समान उठकर बैठ गये और मुझसे, कोमल होने पर भी, दारुण और दुर्योधन आदि आपके पुत्रों के लिए भयङ्कर वचन कहने लगे।

- श्रीकृष्ण ने कहा—हे सख्य, हम लोगों के कहे अनुसार तुम बड़ों से प्रणाम और छोटों से कुशल-प्रश्न कहकर कुरुश्रेष्ठ भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने बुद्धिमान धृतराष्ट्र से कहना कि आपके मिर पर महाभय आ गया है। अब आप ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर अनेक प्रकार के यज्ञ कर लीजिए। इस समय पुत्र-स्त्री आदि के साथ आमोद-प्रमोद, सुपात्रों को धन-दान, अभिलषित पुत्र-प्राप्ति और प्यार-स्वजनों का भला कर लेना ही कौरवों का कर्तव्य है; क्योंकि
- २१ राजा युधिष्ठिर विजय प्राप्त करने के लिए शीघ्र यत्न करेंगे। मेरे दूर होने के कारण द्रौपदी जा “गोविन्द! गोविन्द!” कहकर कौरव-सभा में चिल्लाई और राई थीं, उसकी खटक मेरे हृदय से दूर नहीं हुई, बल्कि दिन दिन बढ़ती ही जाती है। मैं द्रौपदी की इच्छा पूरी करके उन्हें सुखी करूँगा। तुमने उन अर्जुन के साथ शत्रुता की है जिनका गाण्डीव धनुष त्रिलोक में प्रसिद्ध और अद्भुत कर्म करनेवाला है, मैं अर्जुन की सहायता करूँगा। मेरी सहायता जिन्हें प्राप्त है उन अर्जुन को जीतने की इच्छा यदि मात्तान् इन्द्र भी करें तो वे भी वचन के नहीं। सद्ग्राम में अर्जुन को जीतने की इच्छा करना मानों हाथों पर भूमण्डल का उठाना है, क्रुद्ध होकर तीनों लोकों की प्रजा का संहार करना है और स्वर्ग से देवताओं को भी गिराना है। वास्तव में देवता, गन्धर्व, यक्ष, असुर, मनुष्य या नाग कोई भी ऐसा नहीं देख पड़ता जो युद्ध में अर्जुन के सामने ठहर सकें। विराट नगर में अकलं अर्जुन ने सब वीरों को जीतकर खदेड़ दिया था। एक इस अद्भुत काम से ही महावीर अर्जुन के पराक्रम का यथेष्ट परिचय मिलता है। अर्जुन में बल, वीर्य, तेज, फुर्ती, उत्साह और धैर्य आदि गुण पूर्ण रूप से हैं। ये गुण और किसमें हैं?
- राजन! वर्षाकाल में मेघ जैसे आकाश में गरजकर जल वरमाते हैं, वैसे ही अर्जुन को उत्तेजित करते हुए श्रीकृष्ण ने मुझसे ये बातें कही। उनके बाद महावीर अर्जुन रोंगटे खड़े
- ३१ कर देनेवाले वचन कहने लगे।

साठवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का दुर्योधन को समझाना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, राजा धृतराष्ट्र सख्य का कथन सुनकर उसकी बातों के गुण-दोषों पर विचार करने लगे। अपने पुत्रों की जय चाहनेवाले धृतराष्ट्र सूक्ष्म दृष्टि से दाप-गुण का विचार करके, यथार्थ रूप से दोनों पक्षों के बलाबल को जाँचकर, यह देखने लगे

कि किस पक्ष को कौन-कौन शक्ति प्राप्त है । उन्होंने देखा कि देवशक्ति और मनुष्यशक्ति दोनों ही पाण्डवों की ओर हैं और वे स्वयं भी बड़े बली और तेजस्वी हैं । इधर कौरवों की शक्ति बहुत थोड़ी है; क्योंकि देवशक्ति की सहायता तो उन्हें मिली ही नहीं है, बल्कि वे खुद भी पाण्डवों के मुकाबले में बहुत ही हीन हैं । तब धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से फिर कहा—बेटा, पाण्डवों के हाथ से कौरवों के विनाश की चिन्ता सदा मुझे सताया करती है । मैं इसे प्रत्यक्ष सा देख रहा हूँ, यह निरा अनुमान नहीं है । मैं मच कहता हूँ । सब प्राणी पुत्रों पर स्नेह करने हैं और यथाशक्ति उनका प्रिय और हित चाहते हैं । उपकार करनेवालों का ढङ्ग प्रायः ऐसा ही देखा जाता है कि वे सदा प्रिय करने में तत्पर रहते हैं । इसलिए धर्म, इन्द्र, वायु आदि पाण्डवों के पिता देवता अवश्य आकर उनकी सहायता करेंगे । पाण्डव वन जलाने के लिए देकर अर्जुन ने जो उपकार किया है उसका खयाल करके कौरव-पाण्डवों के युद्ध में अग्नि अवश्य पाण्डवों की सहायता करेंगे, क्योंकि सज्जन लोग उपकार करनेवाले का प्रत्युपकार करते ही हैं । जान पड़ता है, देवता लोग कौरवों पर कोप करेंगे और वज्रपात तुल्य भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य के डर से पाण्डवों को बचावेंगे । इसके सिवा कौरवों पर क्रुद्ध भी हो जायेंगे । पाण्डव यां ही अब- १०
विद्या में निपुण और वीर्यशाली हैं, उस पर देवताओं की सहायता होने से कोई उनकी ओर आँख उठाकर देख भी न सकेगा । जिनका पाण्डव धनुष महाभयङ्कर है, जिनके पाम वरुण के दिव्य हृष्ट अक्षय बाण-पूर्ण तरकस हैं, जिनके रथ की गति ध्रुव की तरह कहीं नहीं रुकती, जिनकी ध्वजा में वानर का चिह्न है, जो सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल पर अद्वितीय याँदा है, जिनका मेघगम्भीर सिंहनाद वज्र की ध्वनि की तरह शत्रुओं के हृदय दहला देता है और लोग जिन्हें अद्भुत वीर्यवाला मानते हैं उन महेन्द्र और उपेन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन का मैं मानों संहार के लिए उद्यत देख रहा हूँ; राजा लोग जिन्हें देवविजयी जानते हैं, जो पल भर में पाँच सौ बाण तरकस से निकालकर और धनुष पर चढ़ाकर छोड़ सकते हैं, जिनको भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, मद्रराज शल्य और अन्य वीरगण देवताओं से भी बढ़कर पराक्रमी समझते हैं, जो किसी से हारते नहीं हैं, जिनका बाहुबल सहस्रबाहु अर्जुन के समान है, उन महेन्द्र और उपेन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन को मैं मानों संहार के लिए उद्यत देख रहा हूँ । हे पुत्र, मैं दिन-रात २०
इसी चिन्ता से पीड़ित रहता हूँ । रात को मुझे नींद नहीं आती । इस युद्ध में अवश्य कौरवों का संहार होगा । सन्धि के सिवा यह सर्वनाश टलने की कोई सम्भावना नहीं । इसी से पाण्डवों के साथ सन्धि करने के लिए मैं इतना आग्रह कर रहा हूँ । पाण्डव कौरवों से अधिक बली और शक्तिशाली हैं । इस कारण मेरी राय नहीं है कि उनके साथ युद्ध किया जाय । २३

इकसठवाँ अध्याय

दुर्योधन का उत्तर

वैशम्पायन कहते हैं कि पिता के वचन सुनकर दुर्योधन क्रोध से अधीर हो उठा और कहने लगा—पिताजी ! देवता पाण्डवों के महायक हैं इसी कारण वे जीते नहीं जा सकते, यह समझकर



आप डर रहे हैं। आप इस डर को अपने हृदय से हटा दीजिए। मैं पहले एक बार महात्मा व्यास, तपस्वी नारद और जमदग्नि के पुत्र परशुराम के मुँह से यह पौराणिक कथा सुन चुका हूँ कि काम, द्वेष और लोभ के त्याग से ही देवताओं को देवपद प्राप्त हुआ है। महाराज ! देवता लोग मनुष्यों की तरह काम, क्रोध, लोभ या द्वेष के वश होकर कोई काम नहीं करते। यदि अग्नि, वायु, धर्म, इन्द्र और अश्विनीकुमार स्नेह के वश होकर काम करते तो पाण्डव ऐसे दुःख न उठाते। देवता लोग शम-दम आदि देवभावों को ही पसन्द करते हैं, काम-क्रोध आदि से दूर रहते हैं। इसलिए आप चिन्ता न करें। यदि देवता

लोग काम, द्वेष, लोभ या क्रोधके वश होकर कुछ करेंगे तो अवश्य ही उनका देवभाव और पराक्रम नष्ट हो जायगा और उनकी चेष्टा सफल न होगी।

महाराज, केवल पाण्डव ही दैवतल से बलवान नहीं हैं। मैं भी अग्निहोत्र आदि से अग्नि की उपासना किया करता हूँ। चारों ओर से सब लोकों का जलाने के लिए उद्यत प्रचण्ड अग्नि को मन्त्रबल से मैं भी शान्त कर सकता हूँ। देवता जैसे परमतेजस्वी हैं वैसे ही उनके प्रसाद से मैं भी तेजस्वी हूँ। मैं लोगों के सामने फट रही पृथ्वी और पर्वत के शिखरों को मन्त्रबल से जोड़ सकता हूँ। चराचर जगत् के विनाश के लिए उत्पन्न, महाशब्दयुक्त, धार, शिलावर्षायुक्त, आँधी-पानी को, लोक-रक्षा के लिए मैं दया करके शान्त कर सकता हूँ। मैं लोगों के सामने कई बार ये अद्भुत काम कर चुका हूँ। मैं जल का स्तम्भन जानता हूँ। पानी को रोक देता हूँ, तो उसके ऊपर से रथ और पैदल मनुष्यों में चले जा सकते हैं। देवों और असुरों के भावों का प्रवर्तक मैं ही हूँ। मैं अचौहिणी सेना लेकर किसी

काम से जिन देशों में जाता हूँ उन देशों में, जहाँ पर मैं चाहता हूँ वहीं, जल प्रकट हो जाता है। मेरे राज्य के भीतर साँप आदि भयङ्कर जीव नहीं देख पड़ते। मेरे मन्त्र-बल से रक्षित जीवों को भयङ्कर हिंसक जीव नहीं सताते। मेरे राज्य में मेघ सदा समय पर जल बरसाते हैं। मेरी प्रजा अपने-अपने धर्म का पालन करती है। मेरे राज्य में अनावृष्टि, अतिवृष्टि आदि ईतिभय नहीं है। अश्विनीकुमार, अग्नि, वायु, इन्द्र, धर्म आदि सब देवता मिलकर भी मेरे शत्रुओं की रक्षा नहीं कर सकते। यदि ये देवता मेरे शत्रुओं की रक्षा कर सकते तो पाण्डवों को बारह वर्ष वन में रहकर ऐसे कष्ट न भोगने पड़ते। पिताजी ! मैं सच कहता हूँ कि देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस आदि कोई भी मेरे शत्रुओं की रक्षा नहीं कर सकेंगे। मैंने मित्रों और शत्रुओं के लिए भला या बुरा जो कुछ सोचा है वही अब तक हुआ है। वही बात अब भी होगी। मैंने जब जो कहा है तब वही हुआ है। इसी से सब लोग मुझे सत्यसङ्कल्प जानते हैं। मेरी यह महिमा सब देशों में प्रसिद्ध है और नगर के सब लोग इसके मार्गी हैं। मैं आपको दिलासा देने के लिए ये बातें कह रहा हूँ; अपने मुँह अपनी बड़ाई करना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैंने आज तक कभी अपने मुँह अपनी बड़ाई नहीं की। राजन् ! आप सुनेंगे कि मैंने युद्ध में पाण्डवों, पाञ्चालों, मत्स्यों और कंक्यों का तथा सात्यकि और श्रीकृष्ण को हरा दिया। नदियाँ जैसे सागर में जाकर लीन हो जाती हैं, वैसे ही सपरिवार पाण्डव मेरे सामने आकर नष्ट हो जायेंगे। बुद्धि, तेज, पराक्रम, विद्या और उपाय में मैं पाण्डवों से श्रेष्ठ हूँ। पितामह भीष्म, गुरु द्रोण, महात्मा कृप, शल्य और शल जिन अस्त्रविद्याओं को जानते हैं वे सब मुझमें मौजूद हैं।

२०

दुर्योधन के ये कहे चुकने पर राजा धृतराष्ट्र फिर सञ्जय से युद्ध के लिए उद्यत पाण्डवों का हाल पूछने लगे।

२१

बासठवाँ अध्याय

भीष्म और कर्ण की प्रतिज्ञा

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र सञ्जय से पाण्डवों की बातें पूछ रहे थे। इसी समय सभा के बीच कौरवों का प्रसन्न करने के लिए कर्ण ने दुर्योधन से कहा—मैंने परशुराम से झूठ कहकर, अपने को ब्राह्मण बताकर, ब्रह्मास्त्र प्राप्त किया था। उस समय परशुराम ने मेरा छल जानकर मुझे शाप दिया था कि ‘अन्त समय तुझे ब्रह्मास्त्र आदि मेरे दिये सब अस्त्र भूल जायेंगे।’ मेरे भारी अपराध से रूठकर महर्षि ने मुझे इतना ही शाप दिया। वे उग्र तेजवाले महर्षि चाहें तो कुपित होकर सारे पृथ्वीमण्डल को भस्म कर सकते हैं। इसके बाद मैंने सेवा करके और अपना पौरुष दिखाकर उन्हें प्रसन्न कर लिया। राजन्, अभी मेरा अन्तकाल नहीं आया है, इसी से वे सब अस्त्र अभी तक मुझे याद हैं। इससे मुझे निश्चय है कि मैं अर्जुन

को मार लूँगा। अर्जुन को मारने का ज़िम्मा मैं लेता हूँ। महर्षि परशुराम की थोड़ी ही कृपा के प्रभाव से मैं पाञ्चाल, करुप, मत्स्य आदि देशों के राजाओं, राजकुमारों और पुत्र-पौत्रों-सहित



पाण्डवों को मारकर शस्त्र से जीता हुआ राज्य आपके अर्पण करूँगा। पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य और आये हुए सब राजा यहीं, आपके पास, बैठे रहें; मैं अकेला अपनी सेना के साथ जाकर ऋषि की दी हुई अस्त्र-विद्या के प्रभाव से पाण्डवों को जीत लूँगा।

कर्ण की ये बातें

सुनकर भीष्म पितामह ने

कहा—कर्ण, तेरी बुद्धि को काल ने भ्रष्ट कर दिया है, इसी से तू ऐसी बे-वुनियाद की बातें बक रहा है। तू प्रधान बनता है; किन्तु क्या तू यह नहीं जानता कि तेरे मरने पर धृतराष्ट्र के सभी पुत्र मारे जायेंगे? इसलिए तू पहले अपनी ही रक्षा कर ले। खाण्डवदाह के समय श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन ने जो अद्भुत काम कर दिखाया है उसे सुनकर ही तुझे अपने अभिमान को दबा लेना चाहिए था, और तेरे भाई-बन्धुओं तथा मित्रों के भी हाश ठिकाने हो जाने चाहिए थे। इन्द्र ने तुझे जो अमोघ शक्ति दी है वह तेरे काम न आवेगी। तू देख लेना कि श्रीकृष्ण के चक्र से टुकड़े-टुकड़े और भस्म होकर वह शक्ति पृथ्वी पर पड़ी होगी। सर्पमुख के आकारवाले जिन अपने प्रज्वलित बाणों की तू पूजा करता है, उन्हें माला पहनाता है, वे सब अर्जुन के बाणों से कटकर तेरे साथ ही नष्ट हो जायेंगे। रं कर्ण, बाणासुर और भौमासुर आदि के मारनेवाले महात्मा श्रीकृष्ण अर्जुन के रक्षक हैं। वे घोर युद्ध में तुझ सरीखे सब प्रधान शत्रुओं को मार गिरावेंगे।

तब कर्ण ने कहा—पितामह ने महात्मा श्रीकृष्ण के बारे में जो कुछ कहा सो ठीक है। श्रीकृष्ण उससे भी अधिक श्रेष्ठ हैं। किन्तु पितामह ने मुझे जो कठोर वचन कहे हैं उनका फल सुनो। मैं अपने शस्त्र रखे देता हूँ। पितामह अब मुझे युद्ध में या सभा में कहीं न देखेंगे। पितामह, जब सङ्ग्राम में आपकी मृत्यु हो जायगी तब पृथ्वी के सब राजा मेरे बल और पराक्रम को देखेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि महायादवा कर्ण यह कहकर उसी समय सभा से उठकर अपने घर को चला गया। तब कुरुश्रेष्ठ वीर भीष्म ने हैमकर कौरवों के सामने कहा—हे दुर्योधन, सूत-पुत्र कर्ण ने सत्य प्रतिज्ञा की है कि मेरे मरे बिना वह शस्त्र ग्रहण नहीं करेगा। वह समझता है कि मैं (कर्ण) जो कौरव-सेना की रक्षा का भार न लूँगा तो भीमसेन व्यूह-रचना करके कौरवसेना के वीरों के सिर काटेंगे और लोकक्षय करेंगे। सो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अवन्ती के राजा, कलिङ्ग-नरेश, जयद्रथ और बाह्लीक आदि के सामने नित्य शत्रु-सेना के हज़ारों यादवाओं के सिर काटूँगा। नराधम कर्ण ने अपने को ब्राह्मण बताकर भगवान् परशुराम से अस्त्र-विद्या सीखी है सो उस मिथ्यावादी का धर्म और तप तो उसी समय नष्ट हो चुका।



वैशम्पायन कहते हैं कि अस्त्र-शस्त्र छोड़कर कर्ण जब चला गया और भीष्म ने ये वचन कहे तब मन्दबुद्धि राजा दुर्योधन भीष्म से बोला।

१८

तिरसठवाँ अध्याय

दुर्योधन की प्रतिज्ञा और विदुर का नीतिकथन

दुर्योधन ने कहा—पितामह, पाण्डव और हम दोनों ही मनुष्य हैं और एक ही वंश में उत्पन्न हुए हैं। फिर आप केवल पाण्डवों के ही जीतने की आशा क्यों करते हैं? हम लोग और पाण्डव दोनों ही बल, पराक्रम, अवस्था, बुद्धि, प्रतिभा, शास्त्रज्ञान, यादवाओं के योग्य अस्त्र-शस्त्र-कौशल, कुर्ती आदि सब बातों में समान हैं। फिर आप कैसे जानते हैं कि पाण्डव ही विजयी होंगे? मैं आप, आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, बाह्लीक या अन्य वीर राजाओं के बल पर पाण्डवों से नहीं लड़ूँगा। मुझे तो अपने पराक्रम और बाहु-बल का भरोसा है। मैं, कर्ण और मेरा भाई दुःशासन, यही तीन आदमी तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों को मारकर विजय प्राप्त करेंगे।

इसके बाद मैं भारी दक्षिणावाले अनंक यज्ञ करके गाय, घोड़े, धन, रत्न आदि देकर ब्राह्मणों को प्रसन्न करूँगा। जैसे नदी का प्रवाह बिना माँझी की नाव को भँवर में डालकर डुबाता है, या हिरन को बन्धे को फन्दे से बाँधकर अधिक सहज ही खींचता है, वैसे ही मेरी सेना के वीर यादवा अपने बाहुबल से पाण्डवों को पीड़ित करेंगे। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल, इन चार अङ्गों से परिपूर्ण मेरी अपार सेना को देखते ही श्रीकृष्ण-सहित पाण्डवों का घमण्ड चूर हो जायगा।

विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा—राजन्, सिद्धान्त के जाननेवाले बूढ़ों और पण्डितों ने कहा है कि इस लोक में, विशेषकर ब्राह्मण के लिए, दमगुण ही सनातन धर्म और परम शुभ है। दमगुणवाला व्यक्ति ही दान, क्षमा और सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। वह दमगुण दान, तप, शास्त्रज्ञान और अध्ययन से प्राप्त होता है। दमगुण उत्तम और पवित्र है। उससे तेज बढ़ता है। पाप नष्ट होने और तेज बढ़ने से पुरुष को ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है। दमगुण से रहित पुरुष राक्षसों के समान सब लोगों के लिए भयानक होते हैं। उन्हीं का दमन करने के लिए विधाता ने क्षत्रियों को उपजाया है। महाराज, चारों आश्रमों के लोगों के लिए इन्द्रियदमन अर्थात् दम ही श्रेष्ठ व्रत है। अब मैं दमगुण-युक्त लोगों के लक्षण कहता हूँ, सुनिए।

जिनमें क्षमा, धैर्य, अहिंसा, समदृष्टि, सत्य, सरलता, इन्द्रियदमन, धैर्य, कोमलता, लांकलजा, स्थिरता, उदारता, शान्ति, सन्तोष और श्रद्धा, ये गुण हैं वही पुरुष दमगुणालम्बी कहें गये हैं। वे काम, क्रोध, लोभ, दर्प, निद्रा, आत्मश्लाघा, अभिमान, ईर्ष्या और शोक के पास नहीं फटकते। जो लोभ से शून्य, कामनाविहीन और समुद्र के समान गम्भीर है वही दमगुणालम्बी है। दम धारण करनेवाला पुरुष सदाचारी, सुशील, प्रमत्तचित्त, आत्मतत्त्वज्ञ और पण्डित होता है। उसे इस लोक में सम्मान मिलता और परलोक में सद्गति मिलती है। जिससे कोई नहीं डरता और जो किसी को नहीं डरता वह पक्की समझवाला आदमी प्रधान माना जाता है। जो सब जीवों का हितचिन्तक है वह किसी के डर या दुःख का कारण नहीं हो सकता। वह पुरुष प्रज्ञा-बुद्धि से सन्तोष पाकर समुद्र की तरह गम्भीर और शान्त रहता है। दम और शम गुणवाले पुरुष सज्जनों के आचार-व्यवहार के अनुगामी होकर आनन्दित होते हैं। जो पुरुष ज्ञान से तृप्त और जितेन्द्रिय होकर कर्म छोड़कर काल की प्रतीक्षा करते हैं वे ब्रह्मपद प्राप्त कर सकते हैं। जैसे आकाश में पक्षियों की राह नहीं देख पड़ती, वैसे ही ज्ञानतृप्त पुरुष का मार्ग अलख है। जो घर-बार छोड़कर मोक्ष की राह पर चलता है उसे स्वर्ग में तेजस्वी लोक मिलते हैं।

चौंसठवाँ अध्याय

पक्षी के दृष्टान्त से जातिविरोध के अनर्थ का वर्णन

विदुर ने कहा—महाराज, मैंने प्राचीन पुरुषों के मुँह से सुना है कि एक चिड़ीमार ने चिड़ियों को पकड़ने के लिए धरती पर जाल बिछा दिया। एक साथ उड़नेवाले दो पक्षी जब उस जाल में गिरकर फँस गये तब वे उस जाल को लेकर एक साथ उड़ गये। यह देखकर चिड़ीमार, को बड़ा दुःख हुआ। वह उनके पीछे दौड़ता जा रहा था। सन्ध्या आदि नित्य कर्म करके आश्रम में बैठे हुए एक मुनि ने यह हाल देखा। आकाश में उड़ रहे दोनों पक्षियों का पीछा करनेवाले उस शिकारी को बुलाकर अपि ने कहा—चिड़ीमार पक्षी तो आकाश में जाल लिये उड़े जा रहे हैं और तू पृथ्वी पर उनका पीछा कर रहा है। यह देखकर मुझे बड़ा अचरज हुआ।



चिड़ीमार ने कहा—ऋषिश्रेष्ठ, ये दोनों पक्षी अभी हिल-मिलकर जाल का लिये उड़े जा रहे हैं सही; किन्तु जब इनमें परस्पर भगड़ा उठ खड़ा होगा तब ये अवश्य पृथ्वी पर जाल समेत गिर पड़ेंगे और मरे वश में आ जायेंगे।

विदुरजी कहते हैं—इसके बाद सचमुच वे पक्षी आपस में भगड़ा करके पृथ्वी पर गिर पड़े और उस चिड़ीमार ने पीछे से पहुँचकर अनजाने में उन्हें पकड़ लिया। इसी तरह जो जातिवाले धन आदि के लिए आपस में विरोध करते हैं वे उन भगड़नेवाले पक्षियों की तरह शत्रु के हाथ में पड़कर चौपट हो जाते हैं। साथ खाना, बातचीत करना, दुःख-सुख कहना-सुनना और मिलना, ये जातिवालों के काम हैं। आपस में विरोध करना महामूढ़ता है। जो शुद्ध हृदयवाले आदमी बड़े-बूढ़ों की सेवा करते हैं वे, सिंह के द्वारा सुरक्षित वन की तरह, दुर्द्वर्ष होते हैं। जो लगातार धन पाकर भी वृत्त नहीं होते, जिनकी वृष्णा नहीं बुझती, वे मूढ़ [अपने हाथ से] अपनी लक्ष्मी शत्रुओं को दे देते हैं। जाति के लोभ मुलगती हुई लकड़ियों के समान हैं। अलग-अलग रहने से केवल धुआँ होते हैं, परन्तु मिलने से प्रज्वलित रहते हैं।

राजन्, मैंने गन्धमादन पहाड़ पर जो देखा है उसका भी वर्णन करता हूँ। सुनकर जो उचित समझिए सो कीजिए। एक समय हम लोग किरातों और मन्त्र-यन्त्र-औषध आदि के



गुणों को जाननेवाले देवतुल्य ब्राह्मणों के साथ लता-जाल-मण्डित, उज्ज्वल औषधियों से सुशोभित, पवित्र गन्धमादन पर्वत के ऊपर गये थे। सिद्ध और गन्धर्व वहाँ विचर रहे थे। चलते-चलते हमने मरु-प्रपात के दुर्गम स्थान में पीली ममाखियों का लगाया हुआ शहद का छत्ता देखा। वह शहद कुबेर को बहुत प्रिय था। इसी से विपले साँप उसकी रक्षा कर रहे थे। उस शहद को खाने से मनुष्य देवता हो जाता है; अन्धे का आँखें मिल जाती हैं और बूढ़ा जवान हो जाता है। मन्त्र जाननेवाले उन ब्राह्मणों ने उस शहद की महिमा ऐसी ही बताई थी। हमारे साथ के किरात लोग लालच में आकर वह शहद

लेने गये और साँपों से भरे पहाड़ी दर्रे में गिरकर मर गये। महाराज, वैसे ही आपका पुत्र दुर्योधन मोहवश होकर शहद लेना चाहता है, अर्थात् अकेले ही सारी पृथ्वी का राज्य करने की इच्छा रखता है; किन्तु गिरने की इसे खबर ही नहीं। दुर्योधन अर्जुन से लड़ना चाहता है, पर मुझे उसमें वैसा तेज या पराक्रम नहीं देख पड़ता। अर्जुन ने रथ पर बैठकर अकेले ही सारी पृथ्वी के वीरों को जीत लिया है। भीष्म, द्रोण आदि यादवा विराट नगर में अर्जुन के आगे से भाग खड़े हुए थे; वह बात क्या आप भूल गये? युद्ध की आशा से ही वीर अर्जुन आपके पक्षपात को सह रहे हैं। महाराज द्रुपद, राजा विराट और अर्जुन क्रोध के वश होकर वैसे ही सब कौरवों को मार डालेंगे जैसे हवा से बढ़ी हुई आग वन को भस्म कर डालती है। इसलिए मैं फिर कहता हूँ कि आप पिता की तरह युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को अपनी गोद में जगह दीजिए। युद्ध करने से 'कौन जीतेगा' यह नहीं कहा जा सकता।

२७ इस विचार से भी सन्धि करना ही भला है।

पैसठवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का फिर दुर्योधन को समझाना

धृतराष्ट्र ने कहा—दुर्योधन, मेरा कहा मानो । राह न जाननेवाले बटाही की तरह तुम कुमारों को ठीक राह समझ रहे हो । संसार के सिरजनेवाले पञ्चतत्त्व की तरह तेजस्वी पाँचों पाण्डवों को तुम तेज से हीन करके मारना चाहते हो, यह तुम्हारी भूल है । तुम राजा युधिष्ठिर को कभी नहीं हरा सकोगे; बल्कि तुम्हीं को अपने प्राण गँवाने पड़ेंगे । भीमसेन के समान बलवान् महावीर पुरुष दूसरा नहीं देख पड़ता । वृत्त जैसे प्रचण्ड आर्धी का सामना करने के लिए तैयार हो, वैसे ही तुम भी युद्ध में यमराज-सदृश भीम से लड़ने की डींग हाँकते हो । कौन बुद्धिमान् पुरुष, पर्वतराज सुमेरु के समान, अद्वितीय यादवा अर्जुन से युद्ध करेगा ? पाञ्चाल राजकुमार धृष्टद्युम्न वज्र-सदृश बाण बरसाकर किसको नहीं मार सकते ? पाण्डवों के हितैषी और यादवों के प्यारे अकेले सात्यकि ही तुम्हारी मारी सेना का नाश कर सकते हैं । त्रिभुवन में अद्वितीय महापुरुष श्रीकृष्ण से कौन युद्ध कर सकता है ? अर्जुन उन्हें स्त्री, जाति, वन्धु, पृथ्वी और आत्मा से भी अधिक प्रिय हैं । जहाँ पाण्डव हैं वहीं दुर्द्धर्प और जितेन्द्रिय योगी कृष्ण-चन्द्र हैं । श्रीकृष्ण जिनके सहायक हैं उनके बल को पृथ्वी भर के लोग मिलकर नहीं सह सकते । १०

बेटा, ठीक-ठीक कहनेवाले सज्जन शुभचिन्तकों का कहा मानो; बूढ़े पितामह भीष्म की राय पमन्द करो । कौरवों की भलाई चाहनेवाले सुभ बूढ़े वाप की बात पर ध्यान दो और मेरे समान माननीय द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विकर्ण और महाराज बाह्योक्त का कहा मानकर उन्हें सम्मानित करो । विराट नगर में भाइयों सहित तुम गायें छोड़कर अर्जुन के आगे से भाग खड़े हुए थे; तुम्हारे सब सैनिक भी डरकर सामने से हट गये थे । सुना जाता है कि वहा अकेले अर्जुन ने बहुत वीरों से लड़कर अद्भुत काम किया था । पाण्डवों के प्रबल और अजेय होने का एक यही उदाहरण बहुत है । देखा, जब अकेले अर्जुन ने इतना अद्भुत काम कर डाला, तब पाँचों पाण्डव मिलकर क्या नहीं कर सकते ? इसलिए तुम जल्दी आधा राज्य देकर अपने भाई पाण्डवों से मेल कर लो । १६

छाछठवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र से सञ्जय का अर्जुन की कही हुई बातें कहना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, अब फिर महाबुद्धिमान् धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—सञ्जय ! श्रीकृष्ण के बाद अर्जुन ने जो कुछ कहा, वह भी मैं सुनना चाहता हूँ, कहो ।

सञ्जय कहते हैं कि कृष्णचन्द्र के वचन सुनकर उनके आगे ही अर्जुन ने मुझसे कहा—
हे सञ्जय ! पितामह भीष्म, राजा धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, बाह्लीक, अश्वत्थामा,
सोमदत्त, शकुनि, दुःशासन, शल्य, पुरुमित्र, विविशति, विकर्ण, चित्रसेन, जयत्सेन, अवन्तीनरेश
विन्द और अनुविन्द, दुर्मुख, मिन्धुराज जयद्रथ, भूरिश्रवा, भगदत्त—जलसन्ध, दुर्योधन आदि धृत-
राष्ट्र के सब पुत्र—और मरने के लिए अन्य जो राजा जल रही पाण्डवरूपी आग में स्वाहा करने के
लिए बुलाये गये हैं, उन सबसे मेरा यथोचित प्रणाम, कुशल प्रश्न और अभिवादन कहना । फिर सब
१० राजाओं के आगे पापपरायण क्रीधी दुर्बुद्धि लोभी दुर्योधन और उसके मन्त्रियों से यह कहना ।

राजन्, यह कहते-कहते क्रोध से अर्जुन की आंखें लाल हो उठीं । उन्होंने श्रीकृष्ण की
और देखकर मुझसे कहा—हे सञ्जय, तुमने जो बातें श्रीकृष्ण के मुँह से सुनी हैं और जो बातें
मैंने तुमसे कही हैं वे सब ठीक इसी तरह सब राजाओं के आगे दुर्योधन से कहना । और यह
भी कह देना कि ऐसा यत्न करो जिससे इस युद्ध में रथों की ध्वनि से शब्दायमान बाणरूपी
आग में, धनुषरूपी सुवा के द्वारा, सब लोग स्वाहा न हों । युधिष्ठिर को उनका हिस्सा दे दो ।
जो ऐसा न करागे तो मैं बहुत जल्द तेज़ बाणों की मार से असंख्य पैदल, घोड़े, हाथी, रथ
आदि महित तुम लोगों को यमपुरी भेज दूँगा ।

राजन् ! इसके बाद मैं श्रीकृष्ण और अर्जुन को प्रणाम करके, उनसे विदा होकर, आपको
१५ इन बातों की खबर देने के लिए यहाँ का चल दिया ।

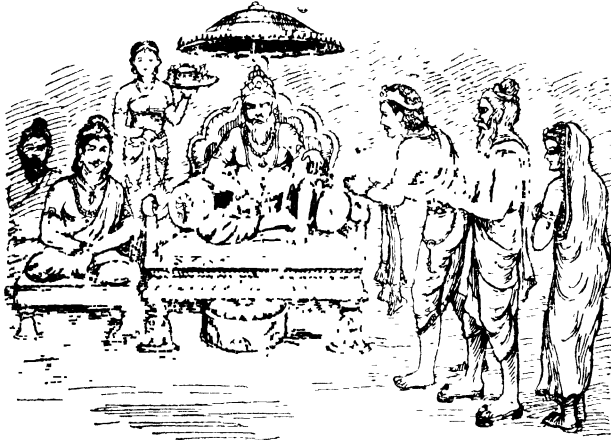
सङ्गठवाँ अध्याय

व्यास और गान्धारी का आना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, राजा दुर्योधन ने जब सञ्जय की बातों का अनुमोदन
नहीं किया और सब चुप हो गये तब राजा लोग सभा से उठकर अपने-अपने स्थान को चले गये ।
अब पुत्र के अधीन और उसकी जीत चाहनेवाले राजा धृतराष्ट्र चिन्तित होकर एकान्त में सञ्जय
से अपने पत्न का, पाण्डवपत्न का और उदासीन लोगों का बल और निश्चय पूछने लगे ।

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय, हमारी सेना में कौन यादवा श्रेष्ठ है और कौन निकृष्ट है,
सो तुम अच्छी तरह जानते हो । पाण्डवों का हाल भी तुमको रत्ती-रत्ती मालूम है । बताओ,
पाण्डवों में कौन हमारे पक्ष से श्रेष्ठ है और कौन निकृष्ट है ? तुम दोनों दलों की शक्ति को
जाननेवाले, सर्वदर्शी, धर्मार्थ में चतुर और सिद्धान्त-तत्त्व के ज्ञाता हो । इसी कारण मैं तुमसे
पूछता हूँ कि पाण्डवों और कौरवों का युद्ध होने पर किस पक्ष का नाश होगा ?

सञ्जय ने कहा—महाराज, मैं एकान्त स्थान में कोई ऐसी बात आपसे न कहूँगा; क्योंकि पाण्डवपक्ष की प्रबलता सुनकर आपके मन में डाह पैदा हो सकती है। इसलिए महा-तपस्वी व्यासदेव और रानी गान्धारी को यहाँ बुला लीजिए। वे दोनों धर्मात्मा, धर्म के जानकार, निपुण और सिद्धान्त के ज्ञाता हैं। वे आपके मन से डाह के भाव का मिटा सकते हैं। मैं उनके आगम ही आपसे अर्जुन और श्रीकृष्ण का मत कहूँगा।



वैशम्पायन कहते हैं—यह सुनकर विदुर

तुरन्त ही गान्धारी और व्यासजी को वहाँ ले आये। गान्धारी-सहित व्यासदेव ने सभा में आकरके, धृतराष्ट्र और सञ्जय के मत को जानकर, कहा—हे सञ्जय, तुम श्रीकृष्ण और अर्जुन का सब हाल जानते हो। धृतराष्ट्र उस बार में जो पूछें वह उन्हें सुनाओ।

१०

अड़सठवाँ अध्याय

अर्जुन और श्रीकृष्ण के माहात्म्य का वर्णन।

सञ्जय ने कहा—महाराज, परम पूजनीय और श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन और श्रीकृष्ण अपनी इच्छा से पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं। वे दोनों वीर सब कुछ कर सकते हैं। श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र का भीतरी घेरा पाँच हाथ का है। किन्तु जब उसे वे चलाते हैं तब उनकी माया से वह इच्छानुसार अलक्ष्य भाव से बढ़ जाता है। वह चक्र पाण्डवों की रक्षा और कौरवों का संहार करनेवाला है। वह सबका बलाबल जानने के लिए बनाया गया है और तेज रूप जान पड़ता है। महाबली श्रीकृष्ण ने घोर पराक्रमी नरकासुर, शम्बरासुर, कंस और शिशुपाल आदि को सहज ही जीत लिया है। महाबली श्रीकृष्ण इच्छामात्र से पृथ्वी, स्वर्ग और आकाश के निवासियों को जीतकर अपने अधीन कर सकते हैं।

राजन्, आप पाण्डवों का बलाबल जानने के लिए जो बार बार पूछ रहे हैं वह मैं संक्षेप में कहता हूँ। जगत् में जितने बली पुरुष हैं उन सबसे श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं। एक और सब जगत् हो

- और एक ओर श्रीकृष्ण हों तो वही श्रेष्ठ होंगे । वे इच्छामात्र से सब जगत् को भस्म कर सकते हैं, किन्तु सारा जगत् मिलकर भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता । जिधर सत्य, धर्म, सरलता और लोकलज्जा का भाव है उधर ही श्रीकृष्ण है और जिधर श्रीकृष्ण हैं उसी पक्ष की जीत होना निश्चित है । सब प्राणियों के आत्मा पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सहज ही पृथ्वी, आकाश और भुवः-
 १० लोक को सम्भालित करते हैं । वही श्रीकृष्ण पाण्डवों के द्वारा तुम्हारे अधर्मी मूढ़ पुत्रों को मारना चाहते हैं । सब लोग श्रीकृष्ण की माया में मोहित रहते हैं । वे अपने याग-बल से काल-चक्र, संसारचक्र और युगचक्र को दिन-रात घुमाने रहते हैं । मैं आपसे मंच कहता हूँ, भूतभावन श्रीकृष्ण कालरूप, मृत्युरूप और चराचर के ईश्वर हैं । किमान जैसे अन्न के पौदों को बढ़ाकर फिर काटता है, वैसे ही महायोगी कृष्णचन्द्र इस संसार के प्रतिपालक होकर भी यथामय सबका संहार करते हैं । वही अपनी माया के प्रभाव से सबको मोहित करते हैं; किन्तु जो
 १५ मनुष्य उनकी शरण में जाते हैं—उपासना करते हैं—वे कभी मोहित नहीं होते ।

उनहत्तरवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र, गान्धारी और व्यासजी का दुर्योधन को समझाना

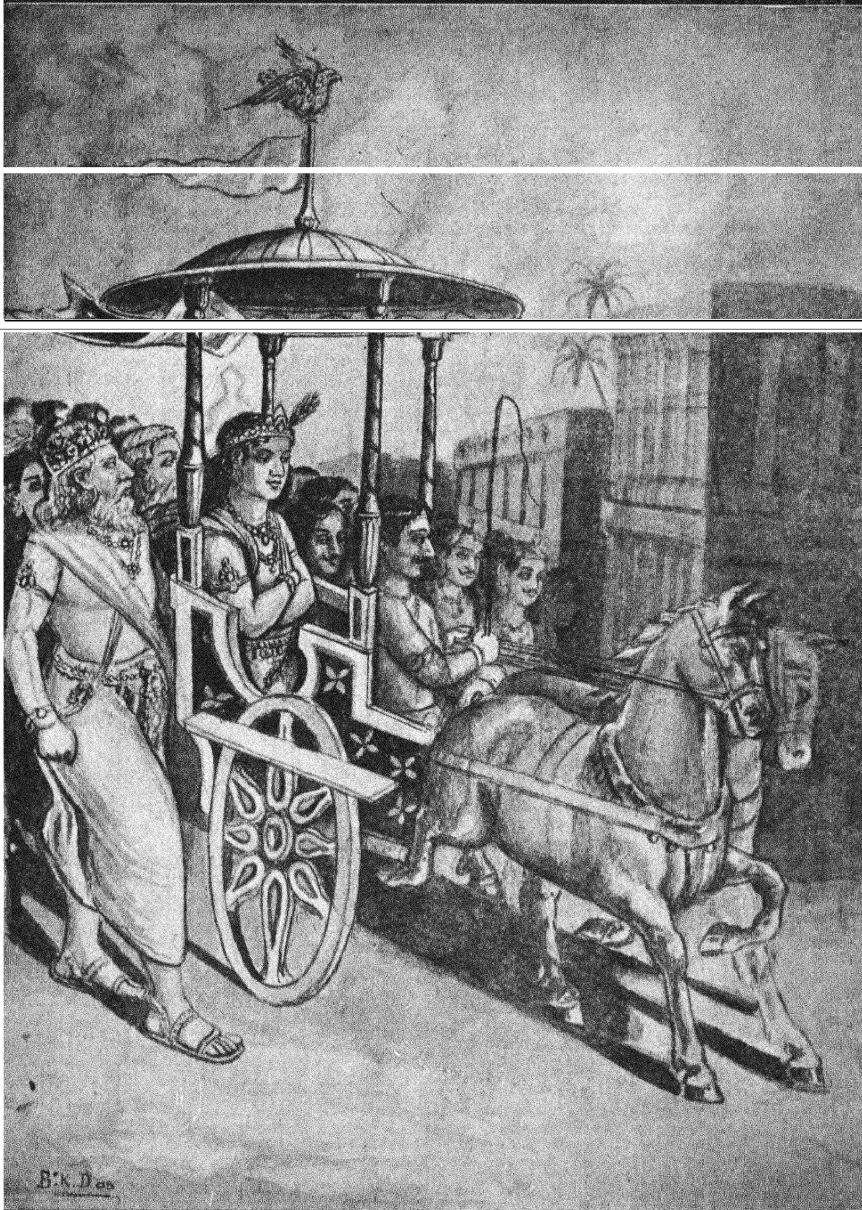
धृतराष्ट्र ने कहा—सज्जय, सब लोगों के ईश्वर श्रीकृष्ण की यह महिमा तुमको कैसे मालूम हुई ? मैं क्यों उनको नहीं पहचान सकता ? मुझे बतलाओ ।

सज्जय ने कहा—राजन, आप विद्या (ज्ञान) से हीन हैं और मुझमें विद्या है । विद्या से हीन और विषयों के अंधेर में पड़ा हुआ पुरुष श्रीकृष्ण के रूप को नहीं जान सकता । तीनों युगों में अवतार लेनेवाले, सबके कर्ता और स्वयंभू, सब प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश के कारण-स्वरूप कृष्णचन्द्र को मैं विद्या के द्वारा जानता हूँ । धृतराष्ट्र ने पूछा—सज्जय, तुमने जिस भक्ति या विद्या के प्रभाव से कृष्णचन्द्र को जाना है वह कैसी है ? उनका क्या स्वरूप है ? सज्जय ने कहा—राजन, आपका कल्याण हो । मैं माया से अलग रहकर ईश्वर-भक्तिहीन वृथा-धर्म का आचरण नहीं करता । भक्ति के साथ विशुद्ध भाव से शास्त्रों के द्वारा श्रीकृष्ण की महिमा मैंने जानी है ।

तब धृतराष्ट्र ने फिर दुर्योधन से कहा—बेटा दुर्योधन, सज्जय हमारे बड़े शुभचिन्तक हैं । तुम शीघ्र जगदीश्वर श्रीकृष्ण की शरण में जाकर अपने भले के लिए उन्हें प्रमन्न करो ।

दुर्योधन ने कहा—पिताजी, देवकीनन्दन श्रीकृष्ण यदि अर्जुन की मित्रता के विचार से तीनों लोकों का नाश करने के लिए तैयार हों तो भी मैं अब उनकी शरण में न जाऊँगा ।

तब धृतराष्ट्र ने रानी से कहा—गान्धारी, तुम्हारा दुर्मति बेटा दुर्योधन डاه करनेवाला और अभिमानी है; यह किसी के उपदेश को नहीं मानता । इसलिए यह जल्दी मरना चाहता है ।



कृष्णचन्द्र राह में भीष्म, द्रोण और धृतराष्ट्र के पुत्रों से मिले और फिर उनके साथ नगर के भीतर
गये—पृ० १६७६



गांधारी ने दुर्योधन से कहा—अरे दुष्ट वृद्धों के उपदेश को न मान कर.....मुझे शोक से विह्वल करने को तैयार है—पृ० १६४६

अब गान्धारी ने दुर्योधन से कहा—अरे दुष्ट ! तू बड़े-बूढ़ों के उपदेश को न मानकर ऐश्वर्य, जीवन और पिता-माता को छोड़कर शत्रुओं को प्रसन्न और मुझे शोक से विह्वल करने के लिए तैयार है । जब भीम की गदा की चोट से तें प्राण निकल जायेंगे तब तुझे पिता का समझाना याद आवेगा । १०

व्यासदेव ने कहा—हे धृतराष्ट्र, तुम मुझे बहुत प्रिय हों । इसलिए मैं श्रीकृष्ण की महिमा तुमसे कहता हूँ । तुम एकाग्र होकर सुनेगो तो इस आनेवाले सङ्कट से छुटकारा पा जाओगे । तुम्हारे दूत सञ्जय, जो तुम्हें भलाई की राह बता रहे हैं, श्रीकृष्ण को अच्छी तरह जानते हैं । हे धृतराष्ट्र ! जो पुरुष हर्ष और क्रोध के वशीभूत और काम-क्रोध आदि बन्धन में बँधे होने के कारण अपने धन से सन्तुष्ट नहीं हैं, वे कामना से मूढ़ पुरुष अपने कर्मों के द्वारा उसी तरह बारम्बार यमपुर को जाते हैं जिस तरह अन्ध के पीछे चलनेवाले अन्ध गढ़े आदि में गिरते हैं । यह ज्ञान ही ब्रह्मलाभ या मुक्ति का एकमात्र मार्ग है । बुद्धिमान लोग इसी राह पर चलते हैं । इसी पर चलने से मौत का डर नहीं रहता । महापुरुष काम-क्रोध-शोक आदि में नहीं फँसते ।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, मैं जिस अभय मार्ग पर चलकर श्रीकृष्ण को जान सकूँ और उत्तम सिद्धि पा सकूँ वह मार्ग मुझे बताओ ।

सञ्जय ने कहा—राजन्, मन को जिसने नहीं मारा वह पुरुष सिद्धेश्वर योगिराज कृष्ण को नहीं जान सकता । इन्द्रिय-दमन के बिना केवल यज्ञ आदि करके उन्हें प्राप्त करना असम्भव है । इन्द्रिय-दमन, सावधानी और अहिंसा का भाव, इन्हीं से ज्ञान प्राप्त होता है । इसलिए आप आलस्य छोड़कर इन्द्रिय-दमन का उपाय कीजिए । आप अपनी बुद्धि को भ्रष्ट न होने दोजिए और इन्द्रियों को वश में कीजिए । ब्राह्मणों का कहना है कि इन्द्रिय-दमन ही ज्ञान है । बुद्धिमान लोग इसी ज्ञान-मार्ग पर चलते हैं । राजन्, इन्द्रिय-दमन के बिना कभी कृष्णचन्द्र नहीं मिल सकते । शास्त्रज्ञान और योगाभ्यास से ही प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण भगवान् हृदय में अपना ज्ञान देने की कृपा करते हैं । २१

सत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण के नामों का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, तुम फिर मुझसे श्रीकृष्ण के नाम और कर्म कहो, जिन्हें जानकर मैं उन पुरुषोत्तम को पा सकूँ ।

सञ्जय ने कहा—राजन्, यद्यपि श्रीकृष्ण के नाम और गुण असंख्य हैं तथापि जो कुछ उनके नाम और गुण मुझे मालूम हैं, सो मैं आपको सुनाता हूँ । वे सब प्राणियों के आश्रयरूप, तेजोमय और देव-योनि हैं, इसी से उनका नाम वासुदेव है । वे सर्वव्यापी हैं, इसलिए उन्हें

- विष्णु कहते हैं । वे मुनि के कर्म मनन, ध्यान और योग के प्रभाव से 'मा' अर्थात् आत्मा की उपाधि को दूर कर देते हैं, अथवा मनन और ध्यान का विषय हैं, इससे उनका नाम माधव है । सब तत्त्व उन्हीं में लीन हो जाते हैं, अथवा उन्हीं में मधु दैत्य को मारा है, इससे उनको मधुहा और मधुसूदन कहते हैं । कृषि शब्द का अर्थ पृथ्वी है और ण शब्द का अर्थ आनन्द है । भूमिलोक के जीवों को आनन्द देने के कारण वे कृष्ण कहलाते हैं । पुण्डरीक का अर्थ परम धाम है और अक्ष शब्द का अर्थ अक्षय है । परम धाम या हृदय-कमल में रहकर अविनाशी होने के कारण उन्हें पुण्डरीकाक्ष कहते हैं । दस्यु लोगों को मारनेवाले होने के कारण उनका नाम जनार्दन है । वे सत्त्व से हीन नहीं होते, इसी से उनका नाम सात्वत है । वृषभ अर्थात् धर्म या वेद से ज्ञात होने के कारण उन्हें वृषभेक्षण कहते हैं । किसी के गर्भ से उत्पन्न न होने के कारण वे अज कहलाते हैं । दाम अर्थात् दमयुक्त और उदर अर्थात् प्रकाशयुक्त होने के कारण उनका नाम दामोदर है । हृष्ट, सुखी और ऐश्वर्यशाली होने के कारण वे हृषीकेश कह जाते हैं । दोनों बाहुओं से पृथ्वी और अन्तरिक्ष को धारण करने के कारण उनका नाम महाबाहु है । उनका अधःपतन नहीं है, इसी से उन्हें अधोक्षज कहते हैं । नरों का आश्रय होने के कारण उनका नाम नारायण है । सब प्राणियों के कार्य पूर्ण करनेवाले और उनका निवासस्थान होने के कारण उन्हें पुरुषोत्तम कहते हैं । वे सबकी उत्पत्ति और लय का स्थान और सर्वज्ञ होने के कारण सर्व नाम से प्रसिद्ध हैं । वे धर्म में स्थित हैं और धर्म उनमें स्थित है, इसी से उनका नाम सत्य है । सर्वत्र व्याप्त रहने से विष्णु और विजयी होने के कारण उन्हें जिष्णु कहते हैं । शाश्वत होने के कारण अनन्त और इन्द्रियों के प्रकाशक होने से वे गोविन्द कहलाते हैं । वे अतत्त्व (मिथ्या) को तत्त्वरूप और तत्त्व (सत्य) को अतत्त्वरूप किये हुए हैं, इसी से लोग मोह में पड़े हुए हैं । ऐसे धर्मनिष्ठ सनातन भगवान् मधुसूदन कौरवों पर कृपा करके सन्धि का प्रस्ताव लेकर आवेंगे ।

इकहत्तरवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का श्रीकृष्ण को प्रणाम करना

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, मैं आँखोंवाले लोगों की तरह नेत्रयुक्त होने की इच्छा करता हूँ [कि मेरे भी नेत्र क्यों नहीं हुए] । वे लोग अपने पास ही श्रेष्ठ शरीर से शोभायमान और सब दिशाओं को प्रकाशित कर रहे श्रीकृष्ण के दर्शन पावेंगे । वे देखेंगे कि कृष्ण-चन्द्र कुरुवंश के लिए पूजनीय, पाण्डवों के लिए कल्याणकारी, अनिन्दित, जय की इच्छा रखनेवालों के लिए प्रहण करने योग्य और मृत्यु के मुख में पड़े हुए लोगों के लिए अङ्गीकार के अयोग्य उपदेश दे रहे हैं । उद्यमशाली, यादवश्रेष्ठ, अद्वितीय वीर, यादवों के नेता, शत्रुपक्ष के नाशक, उन्हें जोष पहुँचानेवाले, शत्रुओं के यश का नाश करनेवाले, महात्मा शत्रुहन्ता, श्रेष्ठ कोमल

वचन कह रहें, मेरे पुत्रों का मोह में डाल रहे यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण का कौरव लोग देखेंगे। ऋषि, सनातनतम, विवेकी, वाणी के सागर, यतिश्रेष्ठ, अरिष्टनेमि, गरुड, सुपर्ण, हरि, प्रजापति, सृष्टिकर्ता, सहस्रमस्तक, पुराण पुरुष, आदि मध्य-अन्त से रहित, अनन्तकीर्ति, शुक्र के धाता, अज, नित्य श्रीकृष्ण की मैं शरण हूँ। त्रैलोक्यनिर्माता, उत्पादक, देवता-असुर-नाग-राक्षस-राजा और विद्वान् लोगों के प्रधान, इन्द्र के छोटे भाई श्रीकृष्ण की मैं शरण हूँ।

७

भगवद्गीतापर्व

बहत्तरवाँ अध्याय

युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं कि सञ्जय के लौट जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्ण से कहा—हे मित्र-वत्सल, अब समय आ गया है कि मित्र मेरी सहायता करें। हमें इस आपत्ति से उबारनेवाला आपके सिवा और कोई नहीं देख पड़ता। आपके भरोसे पर ही हम वृथा-गर्वित दुर्योधन से अपना हिस्सा ले लेने की आशा रखते हैं। जिस तरह आपत्ति के समय आप यादवों को उबारते हैं उसी तरह पाण्डवों की भी रक्षा करना आपका काम है। इसलिए पाण्डवों को भी इस विपत्ति से उबार लीजिए।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे महाबाहु, मैं तैयार हूँ। जो कहना हो, कहिए। आप जो आज्ञा देंगे उसे मैं पूर्ण करूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—हे वीर, धृतराष्ट्र और दुर्योधन की मन्शा तो आपको मालूम हो गई। सञ्जय ने जो कहा वह धृतराष्ट्र का ही मत है। सञ्जय आत्मा की तरह धृतराष्ट्र के हृदय का हाल जानते



हैं। खासकर दूत प्रभु की आज्ञा के अनुसार ही प्रस्ताव किया करते हैं। ऐसा न करें, अपनी ओर से कुछ कहें-सुनें तो उन्हें वध का दण्ड दिया जा सकता है। पक्षपात के कारण लोभ

और पाप की ओर झुककर, हमें राज्य विना दिये ही वे शान्ति बनाये रखना चाहते हैं। यह काम उनके अयोग्य है। हमने यह समझकर बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास के कष्ट महे कि चौदहवें वर्ष हमें हमारा राज्य मिल जायगा; धृतराष्ट्र मत्स्य से नहीं मुकरेंगे।

१० ब्राह्मण इसका साक्षात्कार है कि हमने अपनी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी। दुर्युद्धि लोगों के अनुगामी और पुत्रहन्त के अधीन राजा धृतराष्ट्र इस समय अपने धर्म की ओर नहीं देखते। उल्टे दुर्योधन के लाभ के लिए लोभ में पड़कर बेईमानी करना चाहते हैं। मेरे लिए इससे बढ़कर दुर्भाग्य की बात और क्या होगी कि मैं अपनी माता और आत्मीय लोगों को सुखी नहीं बना सकता। सभी कष्ट पा रहे हैं। हे मधुसूदन! काशिराज, चंद्रिराज, पाञ्चालराज, मत्स्यराज और आप ऐसे सहायकों के रहते भी मैंने युद्ध टालने के लिए केवल अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दा, वारणावत और एक कोई और, ये पाँच गाँव लेकर ही मन्थि करने का प्रस्ताव किया था। मैंने कहा था—चाचाजी, हमें केवल पाँच गाँव या नगर दे दीजिए, वहाँ हम पाँचों भाई रहेंगे; हमारे भरतवंश का विनाश न हो। दुर्मति दुर्योधन अपने को समर्थ और स्वामी समझकर उस पर भी नहीं राजी होता; इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या होगी ?

जो व्यक्ति अच्छे कुल में उत्पन्न और ज्ञानी होकर भी लोभ-वश पराया धन हर लेना चाहे तो वह लोभ उसके ज्ञान को हर लेता है। ज्ञान नष्ट होने पर लोकलज्जा जाती रहती है। तब मनुष्य श्री-हीन हो जाता है। श्री-हीन होने पर उसका विनाश भी हो जाता है। फूल-फल से खाली पेड़ को जैसे पत्ती छोड़ जाते हैं वैसे ही जातिवाले, ब्राह्मण और मित्र निर्धन २० पुरुष को छोड़ देते हैं। मुर्दे को जैसे प्राण छोड़ जाते हैं वैसे ही जातिवाले पतित की तरह मुझे छोड़ जाते हैं, यही मेरे लिए मौत के बराबर है। शम्बर कह गया है कि जब सबेरे खाने का ठिकाना न हो तब से बढ़कर क्लेश तथा दुःख की घड़ी नहीं हो सकती। धन ही परम धर्म है; क्योंकि धन से ही धर्म और अन्य सब काम होते हैं। संसार में निर्धन पुरुष ही मृत है और धनी लोग जीवित हैं। जो लोग बलपूर्वक दूसरे का धन हरेते हैं वे उस आदमी को और उसके धर्म-अर्थ-काम को मिट्टी में मिला देते हैं। निर्धनता से पांडित होकर अनेक प्राणी प्राण छोड़ चुके हैं, सैकड़ों आदमी नगर छोड़कर गाँव को और गाँव छोड़कर वन को चले गये हैं। कोई जान देने के लिए देश से निकलकर वन को चले गये हैं। इसी हालत में कोई पागल हो गये हैं, किसी ने शत्रु की अधीनता स्वीकार करली है और कोई पापी पंड पालने के लिए सेवक बन गये हैं। जीव स्वभाव से ही मरणधर्मा है। वह मौत उसके टाले नहीं टल सकती जो एक समय हर एक मनुष्य के प्राण हर लेती है। मृत्यु एक मनातन लोकमार्ग है। हे कृष्णचन्द्र! जन्म के ही निर्धन पुरुष को निर्धनता से उतना कष्ट नहीं पहुँचता, जितना सुख के योग्य पुरुष को मिली हुई लक्ष्मी छिन जाने से कष्ट मिलता है। अपने ही दोष से निर्धनता के कष्ट में पड़ा हुआ पुरुष इन्द्र आदि देवताओं

को दोष देता है, अपने को दोष नहीं देता। उसके दुःख को शास्त्र का ज्ञान भी नहीं मिटा सकता। निर्धन पुरुष कभी नौकरों पर नाराज़ होता है और कभी डाह के मारे मित्रों को दोष लगाता है। इसी तरह क्रोध के वश होने के कारण बारम्बार मोहग्रस्त और मोह से विवश होकर वह अनुचित काम करने को तैयार हो जाता है। अन्त को पाप के वश होकर जाति-विद्रोह का उद्योग करता है। जातिनाश और वर्णमङ्गल नरकगति का प्रधान कारण और महापाप है। पापी पुरुष को कभी शान्ति नहीं मिलती और अन्त को नरक की यातना भोगनी पड़ती है। प्रज्ञा-बुद्धि प्राप्त हुए बिना किसी तरह शान्ति नहीं मिल सकती। प्रज्ञा के सहारे किसी तरह पापों का समुद्र पार किया जा सकता है। प्रज्ञा-दृष्टि के साथ सब शास्त्रों का मनन करने से धर्म की रुचि पैदा होती है तब लोकलज्जा, उसके प्रधान अङ्ग के रूप से, पाप की प्रवृत्ति को हृदय से हटा देती है। धीरे-धीरे वह पुरुष फिर समृद्धिशाली हो सकता है। पुरुष के पास जब तक लक्ष्मी रहती है तब तक वह मनुष्य गिना जाता है। जो मनुष्य शान्ति के साथ सदा धर्म करता है और विचार करके हर एक काम में हाथ डालता है उसकी प्रवृत्ति कभी अधर्म या पाप की ओर नहीं होती। जिसे लोकलज्जा और उचित-अनुचित का विचार नहीं है वह न तो स्त्री है, न मर्द। वह शूद्र की तरह कभी धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता। सुशील समझदार आदमी देवताओं पितरों और अपने को प्रसन्न रखता है और अन्त को मुक्तिपद पाता है। मुक्ति ही पुण्यात्माओं का परम फल है।

हे जनार्दन, आपको ये बातें हममें ही प्रत्यक्ष देख पड़ती होंगी। राज्य से भ्रष्ट होने के बाद ये तेरह वर्ष हमने कैसे कष्ट से बितायें हैं सो आपको बताना नहीं है। इसलिए अब हम किसी तरह अपना राज्य बिना लिये छोड़ नहीं सकते। राज्य पाने की चेष्टा में यदि प्राण चले जायें तो भी अच्छा। इस समय मेरा प्रधान उद्देश्य यही है कि दोनों पक्ष मन्थि करके शान्ति के साथ बराबर राज्य बांट ले और सुखी रहें। जो दुर्योधन ने इसके विपरीत किया तो इच्छा न रहने पर भी कौरवों को मारकर हम अपना द्विना हुआ राज्य फिर प्राप्त करेंगे। किन्तु युद्ध ठानकर प्राणियों की हिंसा करना भी कुछ उत्तम काम नहीं है। ऐसे नगीची आत्मीय कौरवों की कौन कहे, जिनसे कुछ भी सम्बन्ध न हो उन दुराचारी और अनादर के पात्र शत्रुओं को भी न मारना चाहिए। असंख्य जातिवालों, सहायकों और गुरुओं की हत्या करना तो अत्यन्त दोष की बात है। मतलब यह कि युद्ध कभी मङ्गल का कारण नहीं हो सकता। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि वही पापकार्य क्षत्रियों का परम धर्म माना गया है। हम भी उसी अधम निन्दनीय क्षत्रियवंश में पैदा हुए हैं। इसलिए भला हो या बुरा, युद्ध हो हमारा धर्म है। उसके सिवा और सब धर्म हमारे लिए निन्दनीय हैं। शूद्र का धर्म सेवा, वैश्य का धर्म बनिज-वैपार, ब्राह्मण का धर्म भिक्षा और हम क्षत्रियों का धर्म हिंसा ही है। हे दाशार्ह, सभी अपने धर्म के अनुकूल

काम करते हैं। मछलियाँ जैसा मछलियों को खा जाती हैं, कुत्ते जैसे कुत्तों का मार डालते हैं, वैसे ही क्षत्रिय भी क्षत्रिय के प्राणियों के ग्राहक हैं। युद्ध में कलियुग का निवास है, इसी से उसमें हजारों प्राणियों का नाश होता है। नीति-रूप वृत्र का आश्रय लेकर हम युद्ध करेंगे; जय और पराजय तो दैव के अधीन है। मरना या जीना किसी के वश में नहीं है। काल ही सुख और दुःख देनेवाला है। एक आदमी भी बहुत से आदमियों को मार सकता है और बदनाम आदमी भी यशस्वी को नीचा दिखा सकता है। दोनों पक्षों में से किसकी जीत या हार होगी, यह नहीं जान पड़ता, किन्तु यह निश्चय है कि हानि दोनों की हांगी। जो हारते हैं उनका धन-बल और जन-बल विलकुल मिट जाता है। मतलब यह कि चाहे जित्त तरह देखो, युद्ध एक पापकर्म है। किसी को घायल करने से आप भी घायल होना पड़ता है। मरे हुए आदमी के लिए जय और पराजय में कुछ भेद नहीं। मेरी सम्झ में मौत और हार एक ही बात है। जीत होने पर भी हानि उठानी पड़ती है। शत्रु यदि अपने को नहीं मार पाते तो किसी न किसी प्रिय पुरुष का वियोग अवश्य हो जाता है। इस प्रकार बल घटने और प्रियजनों का वियोग होने पर जीना भारी हो जाता है। धीर, लज्जाशील, गुणी, दयालु पुरुष ही प्रायः युद्ध में मारे जाते हैं; दुराचारियों को कुछ नहीं होता।

हे मधुसूदन, बड़े से बड़े शत्रु को भी मार डालने से बहुत दिन तक पछतावा बना रहता है। विशेष कर वे शत्रु, जो मरने से बच जाते हैं, बदला लेने की नीयत को नहीं छोड़ सकते; सबल हाँते ही विजयी पक्ष के सर्वनाश की धुन में लग जाते हैं। विजय-लाभ इस तरह शत्रुता पैदा करके हारे हुए आदमी को बहुत समय तक दुःख के सागर में डुबाये रहता है। शत्रुहीन पुरुष पराजय की चिन्ता से वेष्टक होकर शान्ति के साथ सेता है। किन्तु जो किसी से वैर ठान चुका है वह, माँपवाले घर में रहनेवाले मनुष्य की तरह सदा शङ्का और दुःख में रहता है। जो पुरुष सबके विनाश का यत्न करता है वह कभी यश नहीं पा सकता, बल्कि नेकनामी खोकर संसार में फैलनेवाली बदनामी ही बढोरता है। वैर की आग बहुत दिन तक जलती रहती है। शत्रुवंश का एक भी आदमी जीता रहता है तो वैर की याद दिलानेवालों की कमी नहीं रहती।

हे श्रीकृष्ण, वैर से वैर की शान्ति नहीं होती, बल्कि घी डालने से आग की तरह बार-बार वह बढता ही रहता है। इस प्रकार एक दृमर के विनाश का मौका देखा करता है और यह दोष लगातार बढना ही रहता है। एक पक्ष का पूरा नाश हुए बिना वैर नहीं रुकता। छिद्र ढँढ़नेवाले पक्ष के वैरी पुरुषों में यह सर्वनाश का दोष सदा बना रहता है। लगातार हृदय को दुखानेवाली पौरुष से उपजी मानसिक चिन्ता की शान्ति या तो त्याग से हो सकती है या मरण से।

हे हृषीकेश! शत्रुओं की जड़ काट देने से राज्य की प्राप्ति तो हो जाती है, किन्तु वह बड़ी निर्दयता का काम है। पर राज्य को त्याग करके शान्ति की स्थापना करना भी एक प्रकार की

मौत है। क्योंकि उसमें अपने पत्त के उखड़ जाने का खटका रहता और शत्रुपत्त से सन्देह भी बना रहता है कि वे मौका पाकर मारेंगे या उपेक्षा करेंगे। इस कारण अपना राज्य छोड़ देना या कुलक्षय, दोनों बातें हमें पसन्द नहीं हैं। युद्ध न हाने देने के लिए पूरा यत्न करके दबकर भी शान्ति स्थापित करने का मैं अच्छा समझता हूँ। इस प्रकार शान्ति तो अच्छी और अभीष्ट है। जाँ हमारा समझाना-बुझाना बेकार हुआ, युद्ध न चाहनेवाले हम लोगों का यत्न खाली गया, तो युद्ध ही करना हांगा; फिर कायरता दिखलाना अनुचित हांगा। समझाना बेकार हाने पर कुत्तों का सा निन्दनीय विकृत युद्ध हाता हा है। कुत्ते पहले दुम हिलाने हैं, गुराँत और भूकते हैं, चक्कर लगाते हैं, मुँह फैलाकर दाँत निकालते हैं, फिर क्रोधसूचक शब्द करते हुए हमला कर बैठते हैं। उनमें प्रायः मांस के छोछड़ों के लिए लड़ाई होती है। जाँ बलवान् होता है वह निर्वल से छीनकर मांस खा जाता है। मनुष्यों का भी यही ढङ्ग है; उनमें कुत्तों से कुछ विशेषता नहीं है। दुर्बलों के साथ बलवान् का यह अनादर और विरोध का व्यवहार ठीक हा है। दबनेवाला या भुक्नेवाला दुर्बल समझा जाता है।

हे वासुदेव, बृहद् राजा धृतराष्ट्र हमारे पूज्य पिता के तुल्य और माननीय हैं; किन्तु वे प्रबल पुत्रस्नेह के कारण पुत्र के हाथ का खिलौना हो रहे हैं, इसलिए हमारी नम्र प्रार्थना का नहीं मानेंगे। इस दशा में तुम हमारा समयाचित काम क्या समझते हो? क्या उपाय करें जो हमारे धर्म-अर्थ-काम का विनाश न हो? हमें कर्तव्य और उपाय बतानेवाले तुम्हीं हो। हे पुरुषोत्तम, ऐसे भयङ्कर अर्थ-कष्ट के समय हम तुम्हारे सिवा और किससे पूछने जायें? तुम्हारा ऐसा प्रिय, हितैषी, सबकामों में चतुर और सब उलझनों का सुलझा सकनेवाला हमारा मित्र और कौन है?

वैशम्पायन कहने हैं कि युधिष्ठिर के वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—महाराज, मैं दोनों पक्षों की भलाई के लिए कौरवों की सभा में जाऊँगा। वहाँ जाँ आपके स्वार्थ को बनायें रखकर मैं शान्ति स्थापित कर सका तो मुझे बड़ा पुण्य हांगा; क्योंकि सन्धि करा सका तो क्रांति होकर युद्ध के लिए तैयार हो रहे कुरु, मृज्य, पाण्डव, धृतराष्ट्र के पुत्रों और अन्य राजाओं को मौत के मुँह से उबार लूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रीकृष्ण, मेरी यह राय नहीं है कि तुम स्वयं कौरवों के यहाँ जाओ। तुम्हारे युक्तियुक्त भलाई के वचनों को भी दुर्योधन नहीं मानेगा। वहाँ दुर्योधन के अनुगामी और अधीन क्षत्रियों का बड़ा भारी जमघट है। हे श्रीकृष्ण, उनके बीच मे तुम्हारा जाना मैं नहीं पसन्द करता। हे जनार्दन! यदि तुम्हारा कुछ अनिष्ट हुआ तो राज्य, धन, सुख, स्वर्ग का ऐश्वर्य और देवपद पाकर भी हम प्रसन्न नहीं हो सकते।

श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्, दुर्योधन की यह पाप-बुद्धि मैं जानता हूँ। किन्तु उसके पास सन्धि का प्रस्ताव लेकर जाने से राजा लोग फिर हमें दोष न देंगे; कुत्त के नाश के लिए

हमारी निन्दा न करेंगे। रही मुझ पर हमला होने की आशङ्का, सो जैसे क्रोधित सिंह के सामने मृग नहीं ठहर सकते, वैसे ही मेरे कुपित होने पर सब राजा मिलकर भी मेरा सामना नहीं कर सकते। मैंने निश्चय कर लिया है कि जो वे लोग मेरे साथ कुछ अनुचित छेड़छाड़ करना चाहेंगे तो मैं वहीं सब कौरवों को भस्म कर दूँगा। राजन्, मेरा वहाँ जाना व्यर्थ नहीं है। शायद सन्धि हो जाय, और जो न हो सकी तो कम से कम हम दोष और निन्दा से तो बच जायेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा—हे दृपीकेश, जैसा तुम्हें अच्छा लगे वही करो। तुम सकुशल कौरवों के पास जाओ। हम लोग फिर सकुशल और कृतकृत्य होकर लौटे हुए तुम्हें देखेंगे। तुम कौरवों के पास जाकर उन्हें समझाकर शान्त करो, जिसमें हम सब भाई मेल करके प्रसन्नता के साथ जीवित रह सकें। जनार्दन, तुम्हीं हमारे भाई और सखा हो। तुम मुझे और अर्जुन को बहुत प्यारे हो। तुम्हारे हितचिन्तक सुहृद् होने में हमें तनिक भी सन्देह नहीं। हमारे हित के लिए शुभ यात्रा करके तुम कल्याण प्राप्त करो। तुम हमको जानते हो, शत्रुओं को जानते हो और प्रयाजन के अनुकूल उचित बातें करना भी जानते हो। जिसमें हमारा हित जान पड़े, जो धर्ममङ्गल हो, वही दुर्योधन से कहना। सन्धि या युद्ध, जो ठीक जान पड़े, उसी का प्रस्ताव करना।

तिहत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का उत्तर

वासुदेव ने कहा—राजन्, मैंने सख्य की और आपकी बातें सुन लीं। शत्रुओं का और आपका इरादा मुझे अच्छी तरह मालूम है। आपकी बुद्धि धर्म के मार्ग पर दृढ़ है और कौरव वैर छोड़ने को तैयार नहीं हैं। बिना युद्ध के जो मिले उसी को आप बहुत समझने के लिए तैयार हैं; किन्तु क्षत्रिय के लिए जन्म भर ब्रह्मचारी या संन्यासी रहकर भिक्षा माँगना ठीक नहीं है। सब आश्रमों के लोगों का यही मत है। युद्ध में जय प्राप्त करना या मर जाना ही विधाता का बनाया हुआ क्षत्रिय का सनातन धर्म है। दीनता दिखाते [केवल पाँच गाँव लेकर ही राजी हो जाने] यानी युद्ध न करने से क्षत्रिय का निर्वाह नहीं हो सकता। इसलिए हे शत्रुदमन, आप पराक्रम करके शत्रुओं को मारिए। दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र बड़े लोभी हैं। उन्होंने बहुत दिन तक वीर पुरुषों के साथ रहकर उनसे स्नेह बढ़ा लिया है, इसलिए वे बलवान हो रहे हैं। अनेक मित्र भी उनके पक्ष में हैं। इस कारण अपने को बलवान समझकर वे आपसे किसी तरह सन्धि न करेंगे। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि की सहायता पाकर वे अपने को बली समझते हैं, इसलिए आप जब तक कोमलता और नम्रता दिखावेंगे तब तक वे आपके राज्य को दबाये रहेंगे। राजन्! दुर्योधन आप पर दया करके, अपनी हीनता

देखकर या धर्म और अर्थ का खयाल करके, किसी तरह आपको आधा राज्य न देगा। आपको वनवासी करने का कठिन काम करके भी दुर्योधन को पछतावा नहीं हुआ। [तब वह अब राज्य देकर सन्धि कैसे करेगा ?]

१०

धर्मात्मा, कोमल, दमपरायण, दानी और व्रत करनेवाले आपको दुरात्मा दुर्योधन ने भीष्म, द्रोण, विदुर, महात्मा ब्राह्मणगण, राजा धृतराष्ट्र, प्रधान-प्रधान कुरुवंशी और नगर-निवासी आदि के सामने ही जूए में छल से जीतकर वन का भेजा और अब तक अपने कुकर्म के लिए वह लज्जित नहीं होता। ऐसे बुरे स्वभाववाले दुर्योधन पर दया की दृष्टि डालना कभी आपका काम नहीं है। हे युधिष्ठिर! केवल आपके ही हाथ से नहीं, कौरव तो सबके हाथ से मार जाने योग्य हैं। सोचकर देखिए, भाइयों सहित दुर्योधन ने अपनी बड़ाई करने हुए प्रसन्नता से अनुचित अपमानजनक वाक्य कहकर आपको और आपके भाइयों को बड़ी पीड़ा पहुँचाई है। उस दुरात्मा ने चिल्लाकर कहा था कि “अब पाण्डवों की अपनी सम्पत्ति कुछ नहीं है, इनका नाम-गोत्र तक बाकी नहीं रहा। ये बहुत समय तक पराभव और कष्ट पाकर, शूरवीरता आदि स्वभाव को छोड़कर, जीविका के लिए दीनभाव से या तो मरे आश्रय में रहेंगे या प्रजा से सहायता माँगेँगे। क्योंकि इनका सब राज्य अब मेरा हो गया है।”

जूए के बाद दुरात्मा दुःशासन राती हुई देवी द्रौपदी को, अनाथ स्त्री की तरह, बाल पकड़कर खींचता हुआ सभा में ले आया। उस दुष्ट ने सभा में सबके सामने “गाय है गाय” [गाय की तरह सबके उपभोग की सामग्री] कहकर द्रौपदी का उपहास किया। उस समय आपके भाई आपको रोकने से, और धर्म में बँधे रहने से खून पीकर रह गये [नहीं तो उसी समय उन दुष्टों का अपनी करनी का फल मिल जाता]। आप जब वन को चलने लगे तब भी दुर्योधन ने सब जातिवालों के सामने अपनी बड़ाई करके आपको बहुत कटु वचन कहे थे। उस समय सभा में स्थित सज्जन महात्मा लोग आपको निर्दोष समझकर राने लगे थे। इसके सिवा वे कर ही क्या सकते थे? सभा में स्थित ब्राह्मणों या राजाओं में से किसी ने उसकी बातों का अनुमोदन नहीं किया। सभी उसकी निन्दा कर रहे थे। हे शत्रुदमन, अच्छे आचरणवाले पुरुष के लिए निन्दा मृत्यु से बढ़कर है। निन्दित अधम जीवन से तो एकदम मर जाना सौगुना अच्छा। निर्लज्ज दुर्योधन उसी समय मर चुका, जब सब राजाओं ने उसकी निन्दा की। ऐसे अधम आचरणवाले को मारना तो बहुत ही सहज है। सूखे हुए वृक्ष की तरह उसे काट गिराना कुछ कठिन नहीं। साँप की तरह, नीच दुर्योधन, सभी के द्वारा मार जाने लायक है। राजन, आप आगा-पीछा न सोचकर उस दुष्ट को मार डालिए।

२०

हे निष्पाप, अपने पिता धृतराष्ट्र और पितामह भीष्म के आगे आपका झुकना कुछ अनुचित नहीं। यह बात आपके योग्य है और मुझे भी पसन्द है। राजन! मैं कौरव-सभा में

जाकर जो लोग दुर्योधन को अच्छा समझते हैं उनका भ्रम दूर करूँगा, सब राजाओं के बीच में आपके असाधारण गुणों का और दुर्योधन के दापों का बखान करूँगा। देश-देशान्तर से आये हुए राजा लोग मेरे धर्मार्थसङ्गत और हितकारी वचन सुनकर आपकी धर्मपरायणता और सत्यता पर विश्वास करेंगे। उन्हें यह भी मालूम हो जायगा कि दुर्योधन कैसा लोभी और दुराचारी है। मैं वहाँ नगर और जनपद में रहनेवाले, बालक-वृद्ध-जवान, चारों वर्ण के लोगों के सामने स्पष्ट शब्दों में दुर्योधन की निन्दा करूँगा। शान्ति की प्रार्थना करने से कोई आपको अधार्मिक नहीं समझेगा बल्कि सभी लोग धृतराष्ट्र की और उनके पुत्रों की निन्दा करेंगे। इस प्रकार जब लोग उसका साथ छोड़ देंगे तब दुर्योधन को मरा हुआ सा समझिए। उसके मर जाने पर फिर करने को ही क्या रह जायगा? इसलिए मैं कुरुक्षेत्र में जाकर पहले ऐसा उपाय करूँगा जिसमें शान्ति भी स्थापित हो और आपको स्वार्थ की हानि भी न सहनी पड़े। इस पर भी जो वे युद्ध की ही इच्छा या उपाय करेंगे तो मैं तुरन्त आपकी विजय के लिए लौट आऊँगा।

हे भारत, मुझे जो असगुन देख पड़ रहे हैं उनसे जान पड़ता है कि आपको शत्रुओं से युद्ध ही करना पड़ेगा। देखिए, सन्ध्या के समय सृग और पक्षी भयङ्कर शब्द करते हैं, रात को हाथियाँ और घोड़ों के रूप भयावने देख पड़ते हैं, आग भी बहुत बुरा रूप धारण किये हुए जलती देख पड़ती है। सबका संहार करनेवाला घोर समय जो न आया होता तो ऐसे कुलक्षण कभी न देख पड़ते। इसलिए आपके यादवा लोग युद्ध के लिए पक्का विचार करके हथियार, कवच, रथ, हाथी, घोड़े, युद्ध-यन्त्र आदि सब समर-सामग्री तैयार करें। हाथी, घोड़े, रथ आदि की मजावट भी शुरू होनी चाहिए। हे नरेन्द्र, आपको सद्राम की जो सामग्री जमा करनी हो उसे जमा कर लीजिए। मुझे निश्चय है कि आपके जिस समृद्धिशाली राज्य को ४२ दुर्योधन पा चुका है उसे वह जीते जी कभी न देगा।

चौहत्तरवाँ अध्याय

भीमसेन के वचन

भीमसेन ने कहा—हे मधुसूदन, जिस तरह कुरुवंश में शान्ति स्थापित हो वही कीजिएगा। सन्धि का ही प्रस्ताव कीजिएगा, युद्ध की धमकी न देकर कोमल शब्दों से समझाइएगा। दुर्योधन असहजशील, क्रोधी, उत्साही, महामनोरथ रखनेवाला और कल्याण से चिढ़ता है। उससे उग्र वचन न कहिएगा, समझाने की ही कोशिश कीजिएगा। किन्तु दुर्योधन स्वभाव से ही पाप-प्रिय, डाकुओं की सी तबियत रखनेवाला, ऐश्वर्य के घमण्ड में चूर, अद्भुतदर्शी, निष्ठुर, भले लोगों की राह पर न चलनेवाला, क्रोधी, बुरे काम करनेवाला, उद्धत, छली और जान की परवा न करके अपने हठ पर दृढ़ रहनेवाला है। उसको सन्धि के लिए राजी करना सहज नहीं। वह दुरात्मा

धर्म को छाड़कर भूठ और कपट को पसन्द करनेवाला होने के कारण अपने हितचिन्तकों का भी कहा नहीं मानता और उनका जी दुखाता है। क्रोधी और दुष्ट स्वभाववाला दुर्योधन घास में छिपे हुए साँप के समान स्वभाव से ही पाप को पसन्द करता है।

हे कृष्णचन्द्र ! दुर्योधन की सेना, बर्ताव, स्वभाव, बल और पराक्रम को आप अच्छी तरह जानते हैं। पहले पुत्रों सहित कुरुवंश के सब लोग प्रसन्न रहते थे और हम भी इन्द्र के अनुगत देवताओं की तरह महाराज युधिष्ठिर के साथ आनन्द से रहते थे। हमारे भाई-बन्धु भी सुखी थे। जाड़े के अन्त में वन जैसे, वृत्तों के परस्पर रगड़ने से पैदा हुई, आग में जल जाते हैं वैसे ही भरतवंश के सब लोग दुर्योधन के क्रोधी की आग में जल मरेंगे। हे केशव, युग के अन्त में अठारह राजा ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपने कुलघातक कर्मों से बन्धु-बान्धवों महित अपनी जाति का नाश करा दिया है। धर्म की हीनता के समय तेजस्वी समृद्धिशाली असुरों में कलि, हैहयवंश में उदावर्त, नीपवंश में जनमेजय, तालजङ्घवंश में बहुल, कृमिवंश में उद्धत स्वभाव का वसु, सुवीर-वंश में अजबिन्दु, सुराष्ट्रवंश में रूपद्रिक, वलीहवंश में अर्कज, चानवंश में धातमूलक, विदेहवंश में हयग्रीव, महौजमवंश में वरयु, सुन्दरवंश में बाहु, दीपाक्षवंश में पुनरवा, चेदि-मत्स्यवंश में सहज, प्रवीरवंश में वृषध्वज, चन्द्रवत्सवंश में धारण, सुकुटवंश में विगाहन और नन्दिवेगवंश में सम, ये अठारह राजा नराधम कुलघातक हुए हैं। शायद यह दुर्योधन भी वैसे ही इस युगान्त समय में पाप का अवतार हुआ है। यह नराधम कुरुवंश का विनाश करायें बिना माननेवाला नहीं जान पड़ता। इसलिए हे पुरुषोत्तम ! आप धीरे से धर्मार्थयुक्त, हितकारी, स्वार्थ साधनेवाले कोमल वचन कहकर उसे समझाइएगा। उपपराक्रमी दुर्योधन से कड़ी बातें न कहिएगा। हम नम्रता के साथ दुर्योधन की अधीनता मानने को इसलिए तैयार हैं कि हमारे भरतवंश का विनाश न हो। १०

हे मधुसूदन ! चाहे हमसे और कौरवों से कुछ वास्ता न रहे, वह भी हमें मञ्जूर है, पर उनकी दुर्बुद्धि के कारण कुरुवंश को चौपट करने का कलङ्क न लगने पावे। हे कृष्णचन्द्र, बूढ़े पितामह भीष्म और अन्य सभासदों से कहिएगा कि भाइयों में परस्पर मेल हो जाय और दुर्योधन शान्त हो। मैं शान्ति के लिए यह कह रहा हूँ, राजा युधिष्ठिर सन्धि को पसन्द करते हैं, और अर्जुन की भी यह इच्छा नहीं है कि युद्ध हो, क्योंकि ये बड़े दयालु हैं। २३

पिछत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का भीमसेन को उभाड़ना

वैशम्पायन कहते हैं—पर्वत के हलकोपन और आग की शीतलता के समान भीमसेन के इन अपूर्व कोमल वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण मुसकुराने लगें। फिर हवा जैसे आग को प्रचण्ड करती है वैसे ही ममता में भूल रहे भीम को भड़काते हुए कृष्णचन्द्र यों कहने लगे—हे भीम-

सेन, तुम और समय तो क्रूर धृतराष्ट्र-पुत्रों का मारने की इच्छा प्रकट करके युद्ध की बड़ाई किया करते थे। तुम बेचैन होकर रात को औंधे पड़े रहते हो और नींद नहीं आती, इसलिए जागा करते हो; क्रोध के मारे सदा घोररूप और शान्ति के विरोधी वचन कहा करते हो। जैसे धुआँ दे रही आग सुलगती हो वैसे ही तुम भीतर ही भीतर जला करते हो और लम्बी साँसें लिया करते हो। बाँझ होने से थकें हुए दुर्बल पुरुष की तरह एकान्त में पड़े रहते हो [और साँप की तरह फुफकारें छोड़ा करते हो]। जो तुम्हारी हालत नहीं जानते वे इन आचरणों से तुम्हें पागल समझते हैं। तुम कभी-कभी गजराज की तरह वृत्तों को तोड़ते और ज़मीन पर ज़ोर से पैर पटकते चलते हो। लोगों से तुम बहुत मिलते और बातचीत करते नहीं देख पड़ते; दिन-रात एकान्त में ही पड़े रहते हो। तुम पागलों की तरह कभी हँसते हो, कभी एकान्त में रोते हो और कभी घुटनों पर सिर रखकर आँखें बन्द १० किये घण्टों चिन्ता किया करते हो। कभी भौंहें टेढ़ी करके आँठ चबाते हुए चारों ओर भय-ङ्कर दृष्टि डालते हो। ये सब चेष्टाएँ क्रोध की हैं। हे शत्रुदमन, तुम पहले अपने भाइयों के बीच में गदा लेकर यह प्रतिज्ञा कर चुके हो कि 'सूर्य जैसे अपना तेज फैलाते हुए पूर्व में उदय होते हैं और पश्चिम में अस्त होकर मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं—उनका यह क्रम कभी उलटा नहीं होता—वैसे ही मैं मृत्यु कहता हूँ कि इस गदा से अमहनशील दुर्योधन को अवश्य मारूँगा।' किन्तु कैसे आश्चर्य की बात है कि वही तुम आज शान्ति पसन्द कर रहे हो—सन्धि के लिए जोर दे रहे हो! अहो, युद्ध का समय आने पर युद्ध की इच्छा रखनेवाले लोगों के चित्त की वृत्ति बदल जाया करती है! ऐसा न होता तो तुम युद्ध से क्यों डरते?

तुम शायद सोते और जागते में अमगुन और कुलक्षणा देखते हो, इसी से शान्ति की इच्छा प्रकट कर रहे हो। तुम अपने में कुछ भी पौरुष नहीं समझते, इसी से कायरों की तरह ऐसे डर और मोह के वश हो रहे हो। डर और मोह से ही तुम्हारा चित्त बिगड़ गया है। तुम्हारा हृदय धड़क रहा है, तुम्हारा चित्त प्रसन्न नहीं है। तुम्हारे पैर मानों किसी ने पकड़ लिये हैं। इसी से तुम शान्ति चाहते हो। मनुष्य का चित्त सदा स्थिर नहीं रहता। हवा के वेग से हिल रही सेमर की गाँठ की तरह—जिसमें रुई भरी रहती है—चित्त डाँवाँडोल रहता है। पशु जैसे मनुष्य की वाणी बोलें, वैसे ही स्वभाव के विपरीत तुम्हारे ये वचन सुनकर पाण्डव व्याकुल और सुस्त हो रहे हैं। उनकी दशा अथाह नदी में नाव के बिना डूबनेवाला की जैसी २० हो रही है। पर्वत के टलने की तरह तुम अपने अयोग्य वचन कह रहे हो। इन्हें सुनकर सुभं बड़ा अचरज हो रहा है। तुम अपने कर्मों की ओर देखो और जिस वंश में पैदा हुए हो उसकी ओर देखो। हे वीर! स्थिर होकर, खेद छोड़कर उठो। तुम्हारी यह ग्लानि तुम्हारे योग्य २३ नहीं। अपने प्रताप से जीती हुई वस्तु का उपभोग करना ही क्षत्रियों का सोहता है।

द्वितीयोऽध्यायः

भीमसेन का उत्तर

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय ! क्रोधी और अमहानशील भीमसेन, श्रीकृष्ण के वचन सुनकर, सघायं गये घोड़े की तरह भड़क उठे और बड़े वेग के साथ यों कहने लगे—हे जनार्दन ! मेरा मतलब और था, किन्तु तुम और कुछ समझ रहे हो । बहुत दिन साथ रहकर तुम यह अच्छी तरह जान गये हो कि युद्ध मुझे बहुत प्रिय है, और मेरा पराक्रम भी अपार है । परन्तु कैसे आश्चर्य की बात है कि जैसे कोई अथाह सागर की ग्राह न पा सके वैसे तुम अब तक मुझे नहीं पहचान सके । मुझ भीमसेन को जानकर भी मेरे लिए ऐसे अयोग्य वचन, जैसे तुम कह रहे हो, कौन कहेगा ? तुमको जताने के लिए मैं अपने पौरुष और बल का बखान करता हूँ । शत्रु मेरे पौरुष और बल के पसङ्गे बराबर नहीं हैं । अपने मुँह से अपनी बड़ाई करना अच्छा नहीं, किन्तु तुम्हारे यों कहने के कारण लाचार होकर मैं अपने बल का वर्णन करता हूँ । कृष्ण-चन्द्र ! सम्पूर्ण प्रजा को माता के समान पालनेवाले, अटल, असीम, अनन्त स्वर्गलोक और मनुष्य-लोक यदि दो शिलाओं की तरह एकाएक टकराना चाहें तो मैं इन हाथों से उन्हें बलपूर्वक रोक सकता हूँ । मेरी इन बेलन ऐसी विशाल बाहुओं का घेरा देखो । पृथ्वीमण्डल में ऐसा कोई मनुष्य नहीं जो इन हाथों के बीच में पड़कर जीता बच सके । मैं जिस पर हमला करूँ उसे पर्वतराज हिमालय, समुद्र या स्वयं इन्द्र, तीनों मिलकर भी नहीं बचा सकते । हे माधव, मैं पाण्डवों के शत्रु क्षत्रियों को, युद्ध में पृथ्वी पर सुलाकर, सहज ही पैरों से रौंद सकूँगा । मैं पहले जिस तरह राजाओं को हराकर अपने वश में कर चुका हूँ, सो तुमसे छिपा नहीं है । उसी से तुम मेरे पराक्रम का अनुमान कर सकते हो । अथवा उदय हो रहे सूर्य की उज्ज्वल प्रभा के समान मेरा पराक्रम और तेज तुमको न मालूम हो तो उसे युद्ध-भूमि में देख लेना । पके घाव में सुई चुभाने की तरह तुम ऐसे कठोर वचनों से मुझ पर आक्षेप कर रहे हो, किन्तु घोर युद्ध में मेरे कहे से भी अधिक मेरा पराक्रम देख लेना । एक तुम्हीं नहीं, सब लोग उस लोकनाशक युद्ध के समय देखेंगे कि मैं कभी हाथी, घोड़े, रथ आदि के सवारों को पकड़-पकड़कर दूर पर फेंकूँगा, कभी दुःसह क्रोध के मारे श्रेष्ठ क्षत्रियों और प्रधान वीरों को मारूँगा और कभी प्रधान सैनिकों और योद्धाओं की लाशें खोंच-खोंचकर फेंकूँगा । न तो मेरे अङ्ग शिथिल हो रहे हैं और न कलेजा ही धड़क रहा है । सारा संसार क्रोध करके मुझ पर चढ़ आवे तो भी मैं नहीं डर सकता । मैं तो सौहार्द के कारण ही यों कृपालु होकर सब क्लेश सह रहा हूँ और चाहता हूँ कि हमारे भरतवंश का नाश न हो ।

१८

१८

सतत्तरवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का भीम को शान्त करना

भगवान् ने कहा—भीमसेन ! तुम्हारे हृदय का भाव जानने की इच्छा से स्नेह के मारे, जान-बूझकर, मैंने ये बातें कही थीं । क्रोध से, पण्डिताई दिखाने के लिए, तानेजनी करने के लिए अथवा इसलिए कि तुम अपने पराक्रम का वर्णन करो, मैंने ये कठोर वाक्य नहीं कहे । तुम्हारी महिमा, पराक्रम और काम मुझे अच्छी तरह मालूम हैं । मैं तुम्हारा तिरस्कार नहीं करता । हे वीर ! तुम अपने में जितने बल का अन्दाज करते हो, उससे हजारगुना बल मैं तुम्हारे हाथों में समझता हूँ । तुम अपने ही बाहुबल से सम्पत्ति और कल्याण प्राप्त कर सकते हो । तुम जिस कुल में पैदा हुए हो उसे सब राजा आदर की दृष्टि से देखते हैं । तुम्हारा बल भी अपने कुल के योग्य है और तुम्हारे भाई-बन्धु भी तुम्हारे योग्य हैं । हे वृकोदर, सन्देह-युक्त धर्म को जानने की इच्छा होने पर मनुष्य अपने और देवताओं के धर्म का निर्णय करने में असमर्थ हो जाते हैं । जो अर्थसिद्धि का कारण है वही विनाश का भी कारण हो जाता है । इस कारण पुरुष के सब कार्य सन्देहपूर्ण हैं । दंष्ट्रों के जानकार पण्डित कर्तव्य कर्म की एक तरह की गति सोचते हैं, किन्तु वायु-वेग की तरह उन कर्मों की दृमरी ही गति देखी जाती है । न्याय, नीति और युक्ति के अनुकूल कार्य भी दैवसंयोग से विगड़ जाते हैं । उधर पुरुष अपने पौरुष से जाड़ा, गर्मी, वर्षा, भूख-प्यास आदि दैवकृत कर्मों को विफल कर देता है, अर्थात् उपाय करके उनमें अपने को बचा लेता है । फल-भोगदाता प्रारब्ध कर्म के सिवा पुरुषों के उद्योग के विफल होने का और कोई कारण नहीं है । ज्ञान या प्रायश्चित्त के द्वारा सञ्चित पापों का विनाश होता है । श्रुतियों और स्मृतियों के प्रसिद्ध वाक्य ही इसका प्रमाण हैं । इसलिए लोकनिर्वाह का एकमात्र उपाय कर्म ही है । दैव और पौरुष दोनों की अनुकूलता और मेल से काम बनते हैं । यही सोचकर हर एक काम करना चाहिए । इस प्रकार कर्तव्य समझकर जो लोग काम करते हैं वे सफलता न होने पर खेद नहीं करते और सफलता होने पर आनन्द भी नहीं मनाते । इस विषय में तुमसे मुझे यही कहना है । मेरा कहना यह नहीं है कि शत्रुओं से युद्ध करने में सफलता होगी ही । इस अभिप्राय से भी मैंने तुमसे उस तरह की बातें कही थीं कि चिन्ता की बचैनी के समय एकदम निस्तेज या सुस्त हो जाना ठीक नहीं है ।

अस्तु, मैं कल कुरु-सभा में जाकर तुम्हारे स्वार्थ पर दृष्टि रखकर सन्धि होने का उपाय करूँगा । इसके लिए मैं भरपूर यत्न करूँगा । जो उन लोगों ने मान लिया तो उन्हें मज्जल, समृद्धि और जीवन, तुम्हें अभीष्ट और मुझे यश प्राप्त होगा । किन्तु दुर्बुद्धि कौरवगण जो मेरी बातों का अनादर करके अपने हठ पर ही अड़े रहेंगे तो विकट सङ्ग्राम होगा ही । हे भीम, इस

युद्ध का सब भार तुम्हारे ही ऊपर है। तुमको और अर्जुन को युद्ध की ज़िम्मेदारी लेकर सब योद्धाओं का सञ्चालन करना होगा। युद्ध तो मैं भी करना चाहता था, पर अर्जुन की यही इच्छा है कि मैं उनका रथ हों। इसलिए मुझे सारथी का काम करना होगा। तुम्हारी बुद्धि से शङ्कित होकर, तुम्हें कायरों की सी निस्तेज बातें कहते देखकर, तुम्हें उत्तेजित करने के लिए ही मैंने कठोर वचन कहे थे।

२०

अठहत्तरवाँ अध्याय

अर्जुन के वचन

अर्जुन ने कहा—जनार्दन! मुझे जो कुछ कहना था, सो तो महाराज युधिष्ठिर ही कह चुके। किन्तु आपके कहने से मुझे जान पड़ा कि धृतराष्ट्र के लोभ और हमारी हीन अवस्था को देखकर आप सन्धि का होना सहज नहीं समझते। आपने यह भी कहा कि पराक्रम के बिना सभी काम निष्फल होते हैं और पौरुष के बिना कोई काम सिद्ध होने की या फल पाने की सम्भावना नहीं है। वास्तव में आपका यह कहना ठीक है; किन्तु सभी जगह ऐसा नहीं होता। किसी बात को बिलकुल असाध्य या अमम्भव न समझना चाहिए। मतलब यह कि आप हमारी यह विषम दशा होने और क्लेश सहने के कारण शिथिलता देखकर सन्धि का होना दुर्घट समझते हैं सही; किन्तु दुःशासन, कर्ण और शकुनि आदि दुराचारी लोग हमें व्यर्थ ही क्लेश दे रहे हैं, इसलिए सन्धि का प्रस्ताव अच्छी तरह योग्यता के साथ किये जाने पर सफलता प्राप्त हो भी सकती है। अतएव आप यथाशक्ति कौरवों से सन्धि हो जाने के लिए उद्योग कीजिएगा।

हे वीर, प्रजापति ब्रह्मा जैसे देवता और दैत्य दोनों के सुहृद् (हितचिन्तक) हैं वैसे ही आप भी पाण्डवों और कौरवों के प्रधान हितैषी हैं। इसलिए शान्ति की स्थापना करके दोनों दलों के मानसिक सन्ताप को दूर कीजिए। जान पड़ता है, प्रयत्न करने से दोनों पक्षों का हित करना आपके लिए सहज ही है, कठिन नहीं। एक बार वहाँ जानें से ही आप अपने कर्तव्य कार्य में सफल हो सकेंगे। हे वीर, दुरात्मा दुर्योधन के साथ यदि और तरह का व्यवहार होना आप ठीक समझते हैं तो वह भी आपकी इच्छा के अनुसार सिद्ध होगा। मतलब यह कि आप विचार करके, सन्धि के लिए या युद्ध के लिए, जैसी सलाह देंगे या निश्चय करेंगे, उसे ही हम स्वीकार करेंगे—उसे ही हम अपने लिए गौरव-जनक समझेंगे। हे जनार्दन! उस दुष्ट दुर्योधन ने धर्मराज की सुख-समृद्धि को न देख सकने के कारण बुरे विचार से, कपट-शूत-क्रोड़ा के निर्दय उपाय से, उनका राज्य और धन ले लिया है। इस कारण बन्धु-बान्धव-पुत्र आदि के साथ उसे

१०

मारना किसी तरह अनुचित नहीं। चत्रिय-कुल में उत्पन्न कौन धनुर्धर पुरुष युद्ध के लिए ललकारे जाने पर जान बचाकर उससे विमुख हो सकता है? दुर्योधन ने जिस समय अधर्म से जीतकर हमें वन भेजा, उसी समय वह हमारा वध्य हो चुका। हं वासुदेव, अपने मित्र की भलाई के लिए तुम्हारी युद्ध की इच्छा होना कुछ अनुचित नहीं है। अत्यन्त कोमलता या अत्यन्त उग्रता दिखाना कभी ठीक नहीं। ऐसा करना युक्ति से भी सिद्ध नहीं है। किन्तु यदि कौरवों का संहार ही आपको अच्छा जान पड़े तो आप शीघ्र ही उसका उद्योग करा सकते हैं। अब और अधिक विचारने की ज़रूरत नहीं। हे यदुनन्दन, द्रौपदी को सभा में लाकर पापबुद्धि दुर्योधन ने जैसा क्लेश दिया है और हमने जैसे उसके अत्याचार सहं हैं, सो आपसे छिपा नहीं है। मुझे भी जान पड़ता है, वह पाण्डवों से न्याय का व्यवहार न करेगा; बल्कि ऊसर में बीज बोने की तरह सब यत्न व्यर्थ होंगे। इसलिए हे माधव, इस १८ समय वही समयोचित कार्य कीजिए जिससे पाण्डवों का भला हो।

उन्नासीवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण का उत्तर

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, तुम्हारा कहना सच है। जिसमें कौरव और पाण्डव दोनों का भला हो वही मेरा कर्तव्य है। सन्धि और युद्ध, दोनों बातें मेरे हाथ में हैं। किन्तु इस बार मैं मुझे जो कुछ कहना है सो सुनो;—

उपजाऊ भूमि में विधिपूर्वक हल चलाने और बीज बोने पर भी, वर्षा के बिना, फसल उत्पन्न नहीं होती। हर एक काम के लिए यही कहा जा सकता है। किसी काम में उद्योग करना जल-वर्षा के समान माना गया है। किन्तु जैसे कभी-कभी वर्षा होने पर भी देवयोग से फसल मारी जाती है, वैसे ही उद्योग करने पर भी दैव के द्वारा काम बिगड़ सकता है। प्राचीन पण्डितों की राय है कि दैव और उद्योग दोनों के बिना काम नहीं बनता। मैं यथाशक्ति उद्योग कर सकता हूँ कि सन्धि हो जाय, किन्तु जो दैव ही उसका विरोधी हुआ तो उसे टालना मेरी शक्ति से बाहर है।

दुर्मति दुर्योधन अनुचित कर्म करके भी लज्जित नहीं होता। उसके हृदय में उसके लिए सन्ताप भी नहीं होता। शकुनि, कर्ण आदि मंत्रों और भाई दुःशासन उसे बहकाये हुए हैं। इसी से उसकी पापबुद्धि दिन-दिन बढ़ती ही जाती है। इससे जान पड़ता है कि दुर्योधन राज्य देकर सन्धि नहीं करेगा। इस कारण उसे मारे बिना राज्य मिलने की सम्भावना नहीं। इधर

राज्य छोड़कर शान्ति स्थापित करना युधिष्ठिर को पसन्द नहीं है, उधर प्रार्थना करने पर भी दुष्ट दुर्योधन पाण्डवों को राज्य नहीं देगा। मेरी समझ में उसके आगे युधिष्ठिर की नम्र बातों का कहना अयोग्य होगा; क्योंकि पापी दुर्योधन उन बातों को कभी न मानेगा। तब वह मेरे लिए और सब लोगों के लिए बन्ध होगा।

११

हे भारत, वह दुष्ट तुम लोगों की बाल्यावस्था में सदा तुम्हारा अनिष्ट करने की धुन में रहा है। अन्त में युधिष्ठिर के अतुल ऐश्वर्य को न देख सकने के कारण असन् उपाय से उसने तुम्हारा राज्य छीन लिया। उस क्रूर ने कई बार मुझे तुमसे फाड़ने की चेष्टा की है; किन्तु उसके कुचक्र को मैंने पसन्द नहीं किया। हे महाबाहु, उसके अभिप्राय को तुम भी अच्छी तरह जानते हो। यह भी तुमसे छिपा नहीं है कि मैं धर्मराज का शुभचिन्तक हूँ। फिर क्यों तुम ऐसी आशङ्का कर रहे हो जैसे मेरे हृदय का हाल जानते ही न हो? तुम साधारण मनुष्य नहीं हो, पृथ्वी का भार उतारने के लिए देवलोका से पृथ्वी पर आये हो।

हे पार्थ, शत्रुओं से मेल होना अत्यन्त कठिन है। जो हो, वाणी और कर्म से मैं जाँच सकता हूँ वह करके सन्धि का उपाय करूँगा; परन्तु मुझे उसमें सफलता पाने की आशा बिल्कुल नहीं। गोधन-हरण के समय तुम्हारे अज्ञातवाम का वर्ष पूरा हो चुका था। महात्मा भीष्म ने उसी समय राज्य देकर तुमसे मेल कर लेने के लिए दुर्योधन से अनुरोध किया था; परन्तु वह दुष्ट राजा नहीं हुआ। वह थोड़ा सा राज्य देने को भी तैयार नहीं। हे अर्जुन, तुमने जब उसे मारने का निश्चय कर लिया है तब वह अवश्य मारा जायगा। मैं पहले धर्मराज की आज्ञा के अनुसार सन्धि की यथाशक्ति चेष्टा करके पीछे उम दुरात्मा के पाप-कार्यों पर विचार करूँगा।

२१

अस्सी अध्याय

नकुल के वचन

नकुल ने कहा—हे माधव ! उदार धर्मज्ञ धर्मराज ने जो कुछ कहा, उनके वचन सुनकर भीमसेन और अर्जुन ने जिस तरह सन्धि का उल्लेख किया और अपने पराक्रम का परिचय दिया, सो सब सुनकर आप अपनी सम्मति प्रकट कर चुके। किन्तु यदि आपके मत से शत्रुओं का मत नहीं मिला, तो फिर विचारपूर्वक कर्तव्य कार्य का निश्चय करना होगा। हे केशव, कारण के अनुसार ही मनुष्य को कार्य के सम्बन्ध में अपनी राय पक्की करनी चाहिए। ऐसा करने से ही मनुष्य उपयुक्त रूप से काम पूरा कर सकता है। कार्य के बारे में सोचा कुछ जाता है, पर करने के समय और का और हो जाता है।

सभी मनुष्यों की बुद्धि अस्थिर होती है। जब हम वन में रहते थे तब हमारी बुद्धि और तरह की थी, और अब और तरह की हो गई है। इस समय शत्रुओं से राज्य ले लेने की

- जैसी उत्कण्ठा हो रही है वैसी वनवास के समय नहीं थी। हे जनार्दन ! आपकी कृपा से हम वनवास की अवधि पूरी करके लौट आये हैं, यह सुनकर राजाओं की यह सात अक्षौहिणी सेना हमारे पास आ गई है। अचिन्त्य बल और पौरुष से युक्त इन पुरुषसिंहों को युद्ध के लिए
- १० शस्त्र धारण करते देखकर किसका चित्त व्यथित न हो उठेगा ? आप कौरवों के पास जाकर पहले समझाइएगा। यदि वे न मानें तो पीछे युद्ध का भय दिखाइएगा। ऐसे वचन कहिएगा जिसमें मन्दबुद्धि दुर्योधन को व्यथा न पहुँचे। हे महाभाग ! युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, सहदेव, बलराम, महारथी सात्यकि, महात्मा विराट, राजा द्रुपद, धृष्टद्युम्न, काशिराज, चेदिराज धृष्टकेतु, आप और मैं, इन लोगों से युद्ध करने का साहस कौन करेगा ? इससे मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि आप कौरव-सभा में जाकर धर्मराज का अभीष्ट सिद्ध कर सकते हैं। महात्मा विदुर, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, बार्ह्वाक आदि बुद्धिमान पुरुष आपकी बातों का मर्म समझकर महाराज धृतराष्ट्र और मन्त्रियों-सहित दुरात्मा दुर्योधन को अच्छी तरह समझावेंगे। हे जनार्दन,
- १८ आप जैसे वक्ता और विदुर जैसे श्रांता हों तो कौन सा कार्य सिद्ध हुए बिना रह सकता है ?

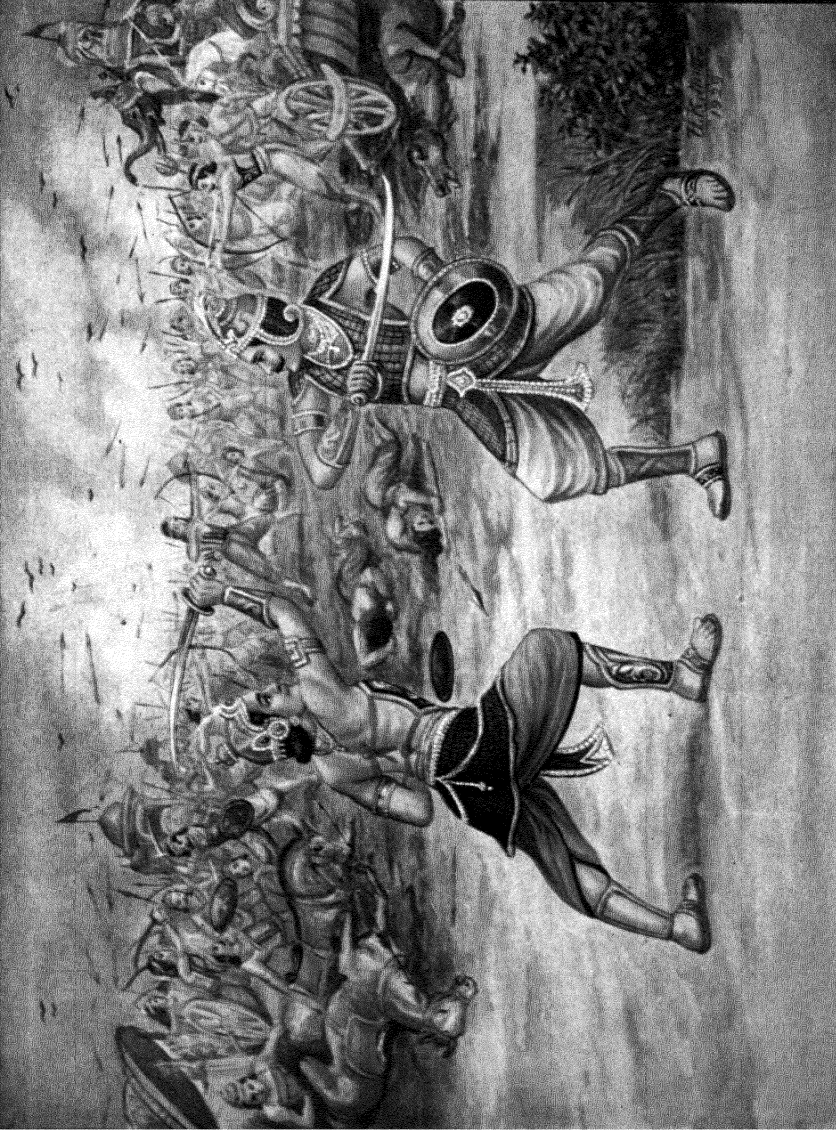
इक्ष्वासी अध्याय

सहदेव और सात्यकि के वचन

सहदेव ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! महाराज युधिष्ठिर ने सन्धि के लिए जा कुछ कहा है, वह यद्यपि ठीक है तो भी आप वही कीजिएगा जिसमें युद्ध हो। यदि कौरव लोग हमारे साथ सन्धि कर लेना मञ्जूर कर लें, तो भी आप उनसे युद्ध का ही प्रस्ताव कीजिएगा। हे श्रीकृष्ण, मैंने सभा में द्रौपदी का वैसा अपमान होते देखा है, फिर शत्रुओं से युद्ध किये बिना कैसे रह सकता हूँ ? युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और नकुल जा धर्म के अनुरोध से युद्ध नहीं करेंगे तो मैं अकेला धर्म छोड़कर दुर्योधन से लड़ने के लिए तैयार हूँ। [मूर्ख दुर्योधन से मेरी ओर से कहिएगा कि हम लोग या तो वन में कष्ट सहेंगे और या हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठेंगे।]

सात्यकि ने कहा—हे महाबाहु, बुद्धिमान सहदेव ने ठीक कहा है। दुर्योधन को मारने से ही मेरा क्रोध शान्त होगा। क्या आप भूल गये कि चीर और मृगछाला धारण किये दुःखित पाण्डवों को वन जाते देखकर आप भी अत्यन्त क्रोधित हो उठे थे ? समर में दुर्धर्ष सहदेव ने जो कहा है वही सब योद्धाओं का मत है।

वैशम्पायन कहते हैं—समर की इच्छा रखनेवाले सब योद्धाओं ने प्रसन्नतापूर्वक सात्यकि के कथन का अनुमोदन किया। चारों ओर साधुवाद और सिंहनाद का कोलाहल सुन पड़ने लगा।



तब दोनों ही खटग युद्ध करने लगे ।—पृ० १६६६

वयासी अध्याय

द्रौपदी की उक्ति

वैशम्पायन कहते हैं—बड़े-बड़े कंशोंवाली द्रौपदी युधिष्ठिर के धर्मार्थयुक्त हितकारी वचन सुनकर और भीमसेन को शान्ति का प्रस्ताव करते देखकर शोक से व्याकुल हो उठीं। उन्होंने महारथी सात्यकि और सहदेव की वड़ाई की। फिर आँखों में आँसू भरकर सामने बैठे हुए श्रीकृष्ण से कहने लगीं—हे कृष्ण-चन्द्र, मन्त्रियों सहित दुर्योधन के क्रूर व्यवहार से पाण्डव लोग जिस तरह राज्य-सुख से भ्रष्ट हुए हैं और इस समय एकान्त में सज्ज्य जा कुछ राजा युधिष्ठिर से कह गये हैं, सो सब आप जानते हैं। सज्ज्य से युधिष्ठिर ने जो कुछ कहा वह भी आप सुन चुके। युधिष्ठिर ने मन्धि का प्रस्ताव करके आपके आगे ही कहा है कि “हे तात सज्ज्य, तुम दुर्योधन और उसके मित्रों से कहना कि हमें अविस्थल, शुकस्थल, माकन्दी, वारणावत और कोई एक और गाँव देकर सन्धि कर लें। मैं इतने में ही राजा हो जाऊँगा।” सज्ज्य ने जाकर दुर्योधन से यह बात कही, परन्तु वह इस पर भी राजा नहीं हुआ।



हे केशव, आप कौरवों की सभा में जाइए; जो दुर्योधन आधा राज्य न देकर सन्धि करने का प्रस्ताव करे तो आप उसे कभी मञ्जूर न कीजिएगा। पाण्डव और सृज्य मिलकर सहज ही सैन्य-सामन्त-सहित दुर्योधन को हरा सकते हैं। साम या दान के द्वारा कौरवों से कार्य सिद्ध होने की आशा नहीं है। इसलिए आप उन पर तनिक भी कृपा न कीजिएगा। शत्रु यदि साम या दान के द्वारा न मानें तो उन्हें, अपने जीवन और जीविका की रक्षा के लिए, दण्ड देना ही चाहिए। इस कारण पाण्डव, पाञ्चाल और आप-सहित यादव, सबको मिलकर कौरवों से युद्ध करना चाहिए। इससे आप यशस्वी होंगे और क्षत्रियों को भी सुख मिलेगा। ब्राह्मण को छोड़कर यदि क्षत्रिय या अन्य कोई जातिवाले लोभवश अधर्म करें तो उन्हें मारना

क्षत्रिय का धर्म और कर्तव्य है। ब्राह्मण सब वर्णों का गुरु और पूजनीय है, इस कारण पाप (अन्याय) करने पर भी वह अवध्य है।

हे जनार्दन, धर्मज्ञ पण्डितों का कहना है कि अवध्य का वध करने से जो पाप होता है वही पाप वध्य का वध न करने से होता है। इसलिए ऐसा उपाय कीजिए जिसमें आपके पाण्डवों, पाश्र्वालों और यादवों के साथ उस पाप का भागी न बनना पड़े। हे केशव, इस पृथ्वी पर मेरे समान दुखिया स्त्री और कौन होगी? मैं महाराज द्रुपद की अग्रजिजा कन्या, धृष्टद्युम्न की बहन, आपकी प्रिय सखी, अजमीद्वंश में उत्पन्न पराक्रमी पाण्डु राजा की बहू और इन्द्र-सदृश तेजस्वी पाँचों पाण्डवों की पत्नी हूँ। इन पाण्डवों के वीर्य से, मेरे गर्भ से, पाँच महारथी पुत्र उत्पन्न हो चुके हैं। आपके लिए जैसे अभिमन्यु हैं वैसे ही वे कुमार भी हैं। हे कृष्णचन्द्र, मैं ऐसी सौभाग्यवती होकर पाण्डवों के सामने, आपके जीते-जी, सभा में सबके सामने अपमानित की गई! मैंने वह क्लेश भी सह लिया। उस समय मैंने पाण्डवों को क्रोधरहित और निश्चेष्ट होकर परस्पर मुँह ताकते देखकर मन ही मन “हे गोविन्द! मेरी रक्षा करो!” कहकर आपके ही स्मरण किया था। हे कृष्णचन्द्र! जिस समय मेरे ससुर महाराज धृतराष्ट्र ने मुझसे कहा कि “पाश्र्वाली, तुम मुझसे वरदान पाने के योग्य हो, इसलिए वरदान माँगो,” उस समय मैंने उनसे यही वर माँगा था कि पाण्डव अपने रथ और शस्त्र पाकर दास-भाव से छुटकारा पा जायें। मेरे वर मांगने से ही पाण्डव दास-भाव से छूटे हैं।

हे कमल-नयन, आप मेरे इस दुःख का सब हाल जानते हैं। इसलिए भाई, पति और बान्धवों-सहित मुझको इस दुःख से उबारिए। मैं भीष्म और धृतराष्ट्र की धर्म की बहू हूँ। ३० मुझे कौरवों ने बलपूर्वक दासी बनाना चाहा था। मेरा ऐसा अपमान करके भी यदि दुर्योधन जीता बच जाय तो अर्जुन के धनुष धारण करने को और भीमसेन के बलो होने को धिक्कार है। हे श्रीकृष्ण! अगर आप मुझे अनुग्रह और कृपा के योग्य समझते हैं, तो शीघ्र दुर्योधन आदि को अपने क्रोध की आग में भस्म कर दीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं कि कमलनयनी सुन्दरी गजगामिनी द्रौपदी सुगन्ध से सुवासित, सुलक्ष्णों से युक्त, महासर्प-मदृश बिखरें हुए अपने कंशों को बायें हाथ में लेकर, आँखों में आँसू भरे हुए, गिड़गिड़ाकर कहने लगीं—हे श्रीकृष्ण! शत्रु जब सन्धि की इच्छा प्रकट करें तब, कर्तव्य निश्चित करने समय, दुःशासन के हाथ से खींचे गये मेरे इन बालों को याद रखिएगा। जो भीमसेन और अर्जुन युद्ध से विमुख होकर दीनभाव से सन्धि करने को तैयार हो जायेंगे तो मेरे वृद्ध पिता, मेरे महारथी भाई और महा पराक्रमी अभिमन्यु-सहित मेरे पाँचों पुत्र कौरवों से युद्ध करेंगे। जब तक दुष्ट दुःशासन के काले हाथ को कटकर धूल में लोटते न देख लूँगी तब तक मुझे शान्ति कहाँ? जल रही आग के समान क्रोध को अपने हृदय में दबाकर तेरह वर्ष तक

मैं क्लेश सहती रही हूँ। मुझे अभी तक शान्ति मिलती नहीं देख पड़ती। आज भीम- ४०
सेन के कातर वचन मेरे हृदय में बाण की तरह लगे हैं, मेरा कलेजा फटा सा जा रहा है। महा-
बाहु भीमसेन भी आज मेरा विचार न करके धर्म का ध्यान धर रहे हैं !

विशाल नेत्रोंवाली द्रौपदी अब सिसक-सिमककर रोने लगीं। असह्य वेदना से उनका
शरीर काँपने लगा। तब महाबाहु कृष्णचन्द्र उन्हें धीरेज देते हुए कहने लगे—पाञ्चाली, तुम जल्द
अपनी तरह कौरवों की स्त्रियों को रोते-कलपते देखोगी। तुम जैसे दुखी हो रही हो वैसे ही जाति-
वालों और बान्धवों के मरने से कुरुकुल की कामिनियाँ दुःख पावेंगी। मैं युधिष्ठिर की आज्ञा से
भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव के द्वारा कौरवों का नाश कराऊँगा। दुर्योधन आदि मंत्री
बात नहीं सुनेंगे तो कालवश होकर पृथ्वी पर पड़ें होंगे और कुत्ते-सियार-गिद्ध उन्हें नाच-नोचकर
खायेंगे। चाहे हिमालय अपनी जगह से टल जाय, नक्षत्रों-सहित आकाशमण्डल गिर पड़े,
पृथ्वी के सैकड़ों टुकड़े हो जायें, पर मेरा कहा भूट नहीं हो सकता। रोना बन्द करो; मैं सच कहता
हूँ, तुम जल्दी देखोगी कि तुम्हारे पतियों ने शत्रुओं को मार डाला है और वे राज्य भोग रहे हैं। ४६

तिगसी अध्याय

श्रीकृष्ण की यात्रा

अर्जुन ने कहा—हे कृष्णचन्द्र, तुम सब कुरुवंश के परम शुभचिन्तक और पाण्डव-कौरव
दोनों के प्यारे हो। इसलिए वही उपाय करो जिसमें हमारा और दुर्योधन आदि का कल्याण
हो। यदि तुम चाहो तो सन्धि का होना बहुत सहज है। हे वासुदेव, तुम यहाँ से जाकर
क्रोधी दुर्योधन से सन्धि का प्रस्ताव करना। यदि वह नासमझ उस पर राजी न होगा तो
फिर वही होगा जो उसके भाग्य में बदा होगा।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, कौरवों की भलाई करना मेरे लिए बड़े हित और धर्म की
बात है। इसलिए धृतराष्ट्र का इरादा जानने को मैं जल्द कुरुसभा में जाऊँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—श्रीकृष्ण और अर्जुन में यों बातचीत हो रही थी कि रात बीत गई।
सूर्य उदय होकर अपनी कोमल किरणों फैलाने लगे। यदुवंश-चूड़ामणि भगवान् वासुदेव ने
कातिक के महीने में, रेवती नक्षत्र और मैत्र मुहूर्त में यात्रा की उन्होंने पहले ब्राह्मणों और ऋषियों
के मुँह से मङ्गलमय पुण्याहपाठ सुना। फिर स्नान-सन्ध्या आदि करके उन्होंने वस्त्र-आभूषण
पहनकर हवन किया और सूर्य की उपासना की। तब बैल की पूँछ छूकर, ब्राह्मणों को प्रणाम
और अग्नि की प्रदक्षिणा करके उन्होंने मङ्गल पदार्थों के दर्शन किये। फिर युधिष्ठिर की बातें १०

याद करके श्रीकृष्ण ने अपने पाम बैठे हुए सात्यकि से कहा—हे वीर ! मेरा रथ जुतवाकर उस पर शङ्ख, चक्र, गदा, तरकम, शक्ति और अन्य सब युद्ध की सामग्री रख दे । प्रबल पुरुष को निर्बल शत्रु से भी लापरवाही न करनी चाहिए । फिर दुर्योधन, शकुनि और कर्ण तो अत्यन्त दुष्ट हैं ।

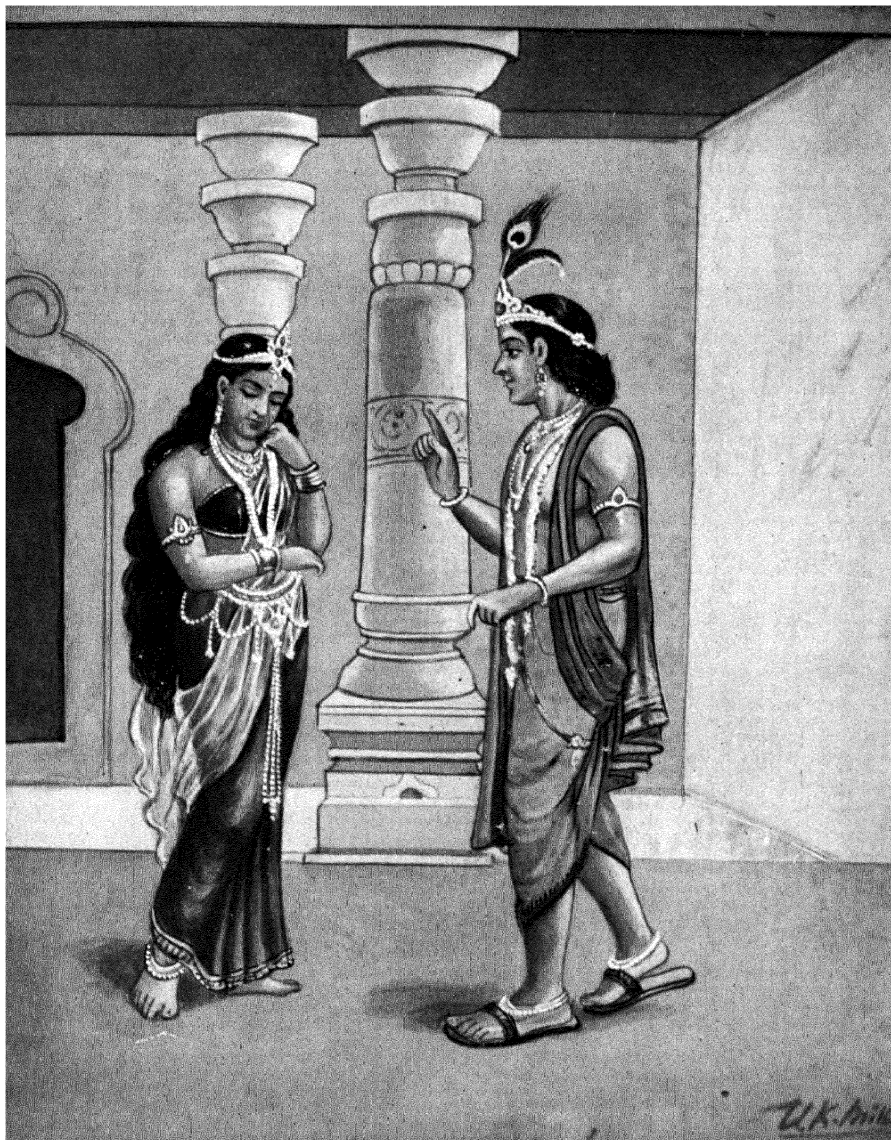
श्रीकृष्ण के अनुचर उनकी आज्ञा से रथ सजाने लगे । वह रथ कालानल-तुल्य प्रज्वलित था । चलता इस तरह था मानों आकाश में उड़ रहा हो । सूर्य और चन्द्र के समान उसमें पहिये थे । चन्द्र, अर्धचन्द्र, मङ्गली, मृग, पक्षी आदि के चिह्न उसमें बने हुए थे । विविध विचित्र पुष्प, मणि और बहुत सा सुवर्ण उसमें लगा था । ध्वजा और पताका उस पर फहरा रही थी । ऊपर से बाघ की खाल मढ़ी हुई थी । वह रथ शत्रुओं के यश को हरनेवाला और यादवों के आनन्द को बढ़ानेवाला था । आगे रहनेवाले आदमियों ने दम भर में शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम के श्रेष्ठ घोड़े उसमें लगा दिये । ध्वजा के अग्रभाग में पक्षिराज गरुड़ २० विराजमान हुए । देखने से जान पड़ता था कि वह रथ श्रीकृष्ण की महिमा की घोषणा कर रहा है ।

चाहे जहाँ जा सकनेवाले विमान के समान और मेघ की सी घरघराहट से चलनेवाले, मेरुशिखरतुल्य ऊँचे रथ पर श्रीकृष्ण सवार हुए । उनके पीछे सात्यकि बैठ गये । रथ-घोष से



आकाश और पृथ्वी को काँपाते हुए श्रीकृष्ण चल दिये । क्षण भर में आकाश साफ हो गया ; ठण्डो और अनुकूल हवा चलने लगी । धूल का उड़ना मिट गया । मङ्गल-सूचक मृग और पक्षी उनके पीछे चलने लगे । हंस, सारस, शतपत्र पक्षी मङ्गल शब्द करते हुए श्रीकृष्ण के पीछे जा रहे थे । मन्त्रों से पवित्र आहुतियाँ पाकर अग्निदेव भूमरहित और प्रज्वलित हो उठे । अग्नि की लपट दक्षिणावर्त होकर निकलने लगी । वशिष्ठ, वामदेव, भूरिशुम्भ, गय, क्रथ, शुक्र, नारद, वाल्मीकि, मरुत कुशिक, भृगु आदि ब्रह्मर्षि, राजर्षि और देवर्षि यदुकुल-भूषण श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा करने लगे ।

उक्त महात्माओं से सत्कार पाकरके कृष्णचन्द्र कौरवसभा को चले । तब युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव, पराक्रमी चेकितान, चेदिराज धृष्टकेतु, महारथी द्रुपद, काशिराज,



शिखण्डी, धृष्टशुम्भ, केकय-राजकुमार, विराट और उनके पुत्र आदि सब क्षत्रिय कार्यसिद्धि की बातें करते हुए शिष्टाचार के लिए कुछ दूर तक श्रीकृष्ण को पहुँचाने गये ।

३२

काम, क्रोध या डर के बश न होनेवाले, अन्याय की प्रवृत्ति से रहित, सब जीवों के स्वामी, निर्लोभ, धर्मज्ञ, धीर, सब प्राणियों के अन्तर्यामी, सब गुणों से अलङ्कृत, श्रीवत्सलाञ्छन, सनातन, देवदेव केशव को गले लगाकर धर्मराज युधिष्ठिर कहने लगे—हे जनार्दन ! लड़कपन से ही हमारा पालन करनेवाली, उपवास, तपस्या, स्वस्त्ययन, देव-पूजा, अतिथि-सत्कार और गुरुजन की सेवा में लगी रहनेवाली, अत्यन्त पुत्र-वत्सला हमारी दुखिया माता कुन्ती से मिलकर उनकी कुशल पूछिएगा ।



उन्हें प्रसन्न देखना ही हमारा एकमात्र उद्देश्य है । नाव जैसे महाभयङ्कर समुद्र से बचाती है वैसे ही उन्होंने वारम्बार हमें दुर्योधन के भय से बचाया है । हमारे लिए उन्होंने बड़े-बड़े कष्ट भेले हैं । उन्हें हमारी ओर से प्रणाम करके हमारे सकुशल होने का समाचार सुनाइएगा । उन्हें वारम्बार तरह-तरह से ढाढ़स बँधाइएगा । वे व्याह से लेकर बराबर सुमराल में दुःख और अपमान भोगती आई हैं । हे वासुदेव, क्या वह मेरे सौभाग्य का दिन आवेगा कि मैं अपनी दुखिया माता के दुःख दूर कर सकूँगा ? वनवास के समय वे रोती और दौड़ती हुई हमारे पास आई थीं ; किन्तु हम उन्हें वहीं छोड़ आये । जान पड़ता है, वे मरी नहीं हैं, बल्कि पुत्र-वियोग के दुःख से अत्यन्त क्षीण होकर भी जीती हैं । आप जाकर उन्हें, धृतराष्ट्र को और भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, वाह्लीक, सोमदत्त आदि वृद्ध क्षत्रियों और माननीय गुरुओं को मेरी ओर से प्रणाम कीजिएगा । कुरुकुल के प्रधान मन्त्री, धीशक्तिसम्पन्न, धर्मशील, महाप्राज्ञ विदुर को गले से लगाइएगा । राजाओं के बीच में इतना कहकर धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा की और उनसे आज्ञा लेकर लौट पड़े ।

४०

अब अर्जुन ने अपने सखा वासुदेव से कहा—हे गाविन्द, मन्त्रणा के समय हम आधा राज्य लेकर सन्धि करने के लिए तैयार थे, यह बात सब राजा लोग जानते हैं । कौरव लोग यदि

५०

मादर हमारा हिस्सा हमें दे दें तो हम सबका भला है; नहीं तो मैं अवश्य सब चित्रियों का संहार करूँगा। वैशम्पायन कहते हैं कि अर्जुन की बातें सुनकर भीमसेन ने अत्यन्त प्रसन्न होकर बड़ा उत्साह प्रकट किया। फिर क्रोध के मारे वे मिहनाद करने लगे। उनका शरीर काँपने लगा। उनके मिहनाद को सुनकर बड़े-बड़े धनुर्धर काँप उठे; हाथी, घोड़े आदि ने डर के मारे मल-मूत्र कर दिया। अब अर्जुन भी श्रीकृष्ण को गन्ने लगाकर लौट पड़े।

सब राजाओं के लौट जाने पर श्रीकृष्ण फुर्ती से हस्तिनापुर की ओर बढ़े। दारुक के हाँके हुए घड़े हवा से बातें करने लगे। देखने से जान पड़ता था मानों वे आकाश को लॉघ

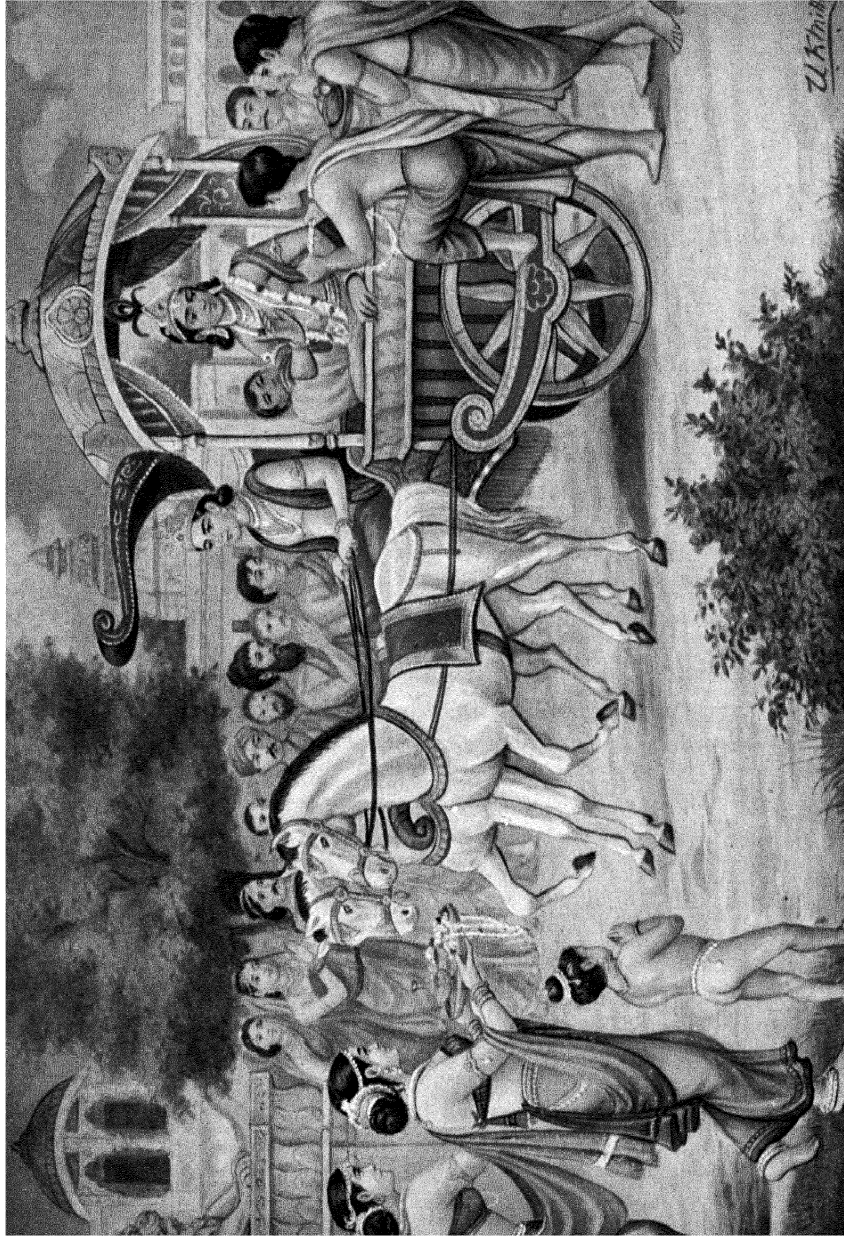


जायेंगे। कुछ दूर जाने पर जनार्दन ने सड़क के आस-पास खड़े हुए ब्रह्मतेज-सम्पन्न कई महर्षियों को देखा। उन्हें देखते ही श्रीकृष्ण भट-पट रथ से उतर पड़े। यथोचित अभ्यर्थना करके कृष्ण-चन्द्र ने कहा—हं महर्षियां, सब लोक में कुशल तो है? धर्मकार्य तो ठीक तौर से किये जा रहे हैं? चित्रिय आदि वर्ण ब्राह्मणों की आज्ञा पर चलते हैं? आप लोगों

का कुछ कार्य हो तो कहिए। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप यहाँ किम काम से आये हैं?

तब इन्द्र के सखा महर्षि परशुराम श्रीकृष्ण के पास आकर उन्हें गले से लगाकर कहने लगे—हे गाविन्द, हममें कोई देवर्षि, कोई बहुव्रतधारी ब्राह्मण, कोई राजर्षि और कोई तपस्वी है। हमने बहुत बार देवताओं और दैत्यों का युद्ध देखा है। इस समय हम कौरव-सभा में सभासदों और राजाओं के बीच आपको देखने के लिए जा रहे हैं। कौरव-सभा में आपके मुँह से धर्मार्थयुक्त मधुर वचन सुनने की हमें बड़ी अभिलाषा है। हे मधुसूदन! भीष्म, द्रोण, विदुर आदि बुद्धिमान लोग और आप जो कुछ कहेंगे वह सत्य और हितकारी होगा। हम वही सुनना चाहते हैं। हे यदुश्रेष्ठ, आप अब कौरव-सभा को जाइए। हम वहाँ

७२ दिव्य आमन पर बैठे हुए तेजस्वी आपको देखेंगे।



मार्ग में हज़ारों ब्राह्मण जगह-जगह पर मिलकर श्रीकृष्ण का स्तुति और मधुपर्क आदि से सत्कार करते थे—पृ० १६७३

चौरासी अध्याय

श्रीकृष्ण का वृकस्थल में विश्राम

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, शत्रुसेना का पीड़ा पहुँचानेवाले शम्भुधारी महाबली परा-
क्रमी दम महारथी वीर, एक हजार पैदल सिपाही और इतने ही सवार तथा बहुत सो भोजन-
सामग्री लिये हुए सैकड़ों दाम आदि श्रीकृष्ण के साथ चले ।

जनमेजय ने कहा—हैं तपोधन, महात्मा श्रीकृष्ण की यात्रा का पूरा हाल कहिए । जाते
समय विष्णु के अवतार कृष्णचन्द्र को कौन-कौन सगुन या असगुन हुए थे ?

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, जाते समय महात्मा कृष्णचन्द्र को जो सगुन और असगुन
देख पड़े सो मैं कहता हूँ, सुनिए । उस समय आकाश में बिना बादल के विजली चमकने और
कड़कने लगी । फिर बिना बादल के ज़ोर से पानी बरसने लगा । नदियाँ उलटी बहने लगीं ।
सानों समुद्र पूर्व को उमड़ चले । एकाएक दिशाओं में अँधेरा छा गया । नहीं जान पड़ता था
कि कौन दिशा और कौन स्थान किधर है । अग्निदेव प्रज्वलित हो उठे । बारम्बार भूकम्प होाने
लगा । जलाशयों से और भरे हुए घड़ों से पानी उछलकर इधर-उधर बहने लगा । सब जगत्
धूल और अँधेरे से ढक गया । दिशा-उपदिशा का पहचानना दूभर हो गया । आकाश में महा-
घोर शब्द होने लगा । सब देश के लोगों का आकाश में छाया-पुरुष का शरीर देख पड़ा ।
हस्तिनापुर को दक्षिण-पश्चिम से उठी हुई आँधी ने घेर लिया [जिससे वहाँ के निवासी बहुत
पीड़ित हुए] । सैकड़ों वृक्ष टूट-टूटकर गिरने लगे । दिशाओं में उस वायु का वज्रपात-सदृश
घोर शब्द छा गया । किन्तु महात्मा श्रीकृष्ण जिस राह में जा रहे थे उसमें शीतल, १०
मन्द, सुगन्ध हवा चलने लगी । आकाश से कमल आदि के फूलों की वर्षा होने लगी । सब
बाते अनुकूल ही देख पड़ीं । मार्ग सब समतल और सुखदायक हो गये । उनमें कुश-काँटे
आदि न थे । मार्ग में हजारों ब्राह्मण जगह-जगह पर मिलकर श्रीकृष्ण का, स्तुति और मधुपर्क
आदि से, सत्कार करते थे । राह में अनेक स्त्रियाँ आकर सब प्राणियों के हितचिन्तक महात्मा
कृष्णचन्द्र के ऊपर सुगन्धित फूल बरमाती थीं ।

सब अश्वों से भरे रमणीय खेतों और हृदय को आनन्द देनेवाले मनोहर गाँवों के पशुओं
को देखते हुए कृष्णचन्द्र बड़े सुख से चले जा रहे थे । इसी तरह अनेक नगरों और राज्यों को
लौंघकर श्रीकृष्ण हस्तिनापुर के समीप पहुँचे । उपसुन्न नगर की प्रजा भी श्रीकृष्ण के दर्शन
पाने के लिए राह में जमा हुई । भरतवंशी राजाओं द्वारा सुरक्षित, नित्य प्रमन्न और सुखी
रहनेवाले, शत्रुओं की चढ़ाई से बेखटके, सङ्कट का नाम न जाननेवाले नगरनिवासी लोग प्रज्वलित
अग्नि के समान तेजस्वी श्रीकृष्ण को देखकर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने अपने अतिथि और पूज-

नीय श्रीकृष्ण का पूजन और सत्कार किया। उधर सूर्यदेव अस्ताचल पर पहुँच गये। सूर्य की किरणें
२० ऊपर उठने से आकाश लाल हो गया। श्रीकृष्ण ने वृकस्थल में पहुँचकर विश्राम के लिए आज्ञा दी।

कृष्णचन्द्र रथ से उतर पड़े। घोड़ों को खाल देने की आज्ञा देकर उन्होंने नहा-धोकर सन्ध्योपासन किया। दारुक सारथी ने रथ से घोड़ों को खोलकर टहलाया, मला और उनकी पीठ पर से सब साज हटा दिया। सन्ध्यावन्दन करके श्रीकृष्ण ने अपने साथियों से कहा—आज युधिष्ठिर के काम के लिए मैं रात को इसी जगह रहूँगा। अनुचरों ने श्रीकृष्ण की इच्छा जानते ही वहीं डंरे डाल दिये। तम्बू, कनात, खेमे लग गये। पीने के सरस पदार्थ और खाने की चीजें लाई गईं।

राजन्! फिर उस गाँव के निवासी, ब्रह्मविद्या के ज्ञाता, आर्य कुलीन ब्राह्मण लोग शत्रु-दमन कृष्णचन्द्र के पास आये। उन्होंने कृष्णचन्द्र का स्वागत किया, आशीर्वाद दिये। फिर कहा कि महाराज, चलकर हमारे घरों को सनाथ कीजिए। भगवान् ने भी उनकी पूजा की; उनके मनोरथ को पूरा करने के लिए वे उनके घरों में पधारे। वहाँ कुछ देर ठहरकर कृष्णचन्द्र अपने डंरे पर लौट आये। उन ब्राह्मणों को सुन्दर दिव्य भोजन कराये, फिर आप भी सात्यकि
२८ के साथ भोजन किया। महाराज, इस तरह श्रीकृष्ण ने वृकस्थल में सुख से सोकर वह रात बिताई।

पञ्चासी अध्याय

धृतराष्ट्रकृत श्रीकृष्ण की अभ्यर्थना

वैशम्पायन कहते हैं—इधर धृतराष्ट्र ने दूतों से श्रीकृष्ण के आने की खबर पाई तो उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। उन्होंने महाबाहु भीष्म, द्रोण, सञ्जय और महामति विदुर के सामने मन्त्रियों सहित दुर्योधन से कहा—बंटा, आश्चर्य की बात सुन पड़ती है। घर-घर, बैठकों में, सभाओं में, स्त्री-बालक-बृद्ध आदि सबके मुँह से सुन पड़ता है कि महापराक्रमी यादवपति श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से हमारे पास आवेंगे। वे मधुसूदन सब तरह हमारे माननीय और पूज्य हैं। उन्हीं की कृपा से सबका गुजर होता है। वे सब प्राणियों के ईश्वर हैं। धैर्य, वीर्य, प्रज्ञा और तेज उनमें पूर्ण रूप से है। वे पुरुषसिंह ऐसे हैं कि साधु लोग उन्हें सनातन-धर्म-स्वरूप मानकर उनका सम्मान करते हैं। उनकी पूजा करने से सब सुख मिलते हैं और पूजा न करने से महादुःख भोगना पड़ता है। जो हम विधिपूर्वक आदर और सेवा करके उन्हें सन्तुष्ट कर सके तो उनकी सहायता से हमें सब राजाओं से अपने मनोरथ पूरे कर लेने का अवसर प्राप्त होगा। हे शत्रुदमन, इस कारण उनके स्वागत की तैयारी करो। जगह-जगह पर, राह में, टिकने के लिए मनोहर भवन बनवा दो और उनमें सब ज़रूरी और सुखभोग की उत्तम

सामग्री रखवा दे। ऐसा करने से वे तुम पर प्रसन्न होंगे। मेरा मत है कि उनकी खूब आवभगत की जाय। पितामह की क्या राय है ?

१०

पितामह भीष्म आदि सबने राजा धृतराष्ट्र की बड़ाई करके श्रीकृष्ण के स्वागत का समर्थन किया। अनेक रत्नों से मनोहर सभाभवन जगह-जगह पर बन गये। उनमें टिकनेवालों के लिए सब तरह के सुपास का प्रबन्ध कर दिया गया। विचित्र आसन, खियाँ, गन्ध, अलङ्कार, महीन कपड़े, खाने-पीने के तरह-तरह के पदार्थ, सुगन्धित फूलमाला आदि सब चीजें वहाँ तैयार रखी गईं। खासकर वृकस्थल में वासुदेव के ठहरने के लिए जो मनोहर सभा बनाई गई वह अन्य सभाओं से बहुत बढ़कर थी। असंख्य बहुमूल्य रत्नों से वह जगमगा रही थी।

राजा दुर्योधन ने अलौकिक ऐश्वर्य का परिचय देनेवाले भवन बनवाकर धृतराष्ट्र को उसकी सूचना दी; किन्तु आते समय श्रीकृष्ण ने उन सभाओं की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं। १८

त्रिंशत्तम अध्याय

धृतराष्ट्र के वचन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! महाबली, महासत्वधारी जनार्दन उपप्लव्य गाँव से हमारे राज्य में आ गये हैं और वृकस्थल में टिके हुए हैं। वे कल सबेरे यहाँ आवेंगे। वे आहुक-वंश में प्रधान और सब यादवों के मुखिया हैं। वे भरे-पुरे उन्नतिशील वृष्णिराज्य के रक्षक हैं। वे तीनों लोक उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मा के भी पिता नारायण हैं। आदित्य, वसु आदि देवता जैसे बृहस्पति के कहे पर चलते हैं वैसे अन्धक, वृष्णि आदि वंशों के यादव श्रीकृष्ण के अनुयायी हैं। हे धर्मज्ञ, मैं तुम्हारे सामने ही जितनी सामग्री भेंट करके श्रीकृष्ण की पूजा करूँगा, सो सुनो। मैं सुवर्ण-मण्डित सोलह रथ दूँगा जिनमें एक ही डोल-डौल और सूरत के, सुडौल, बाह्यीक देश के श्रेष्ठ चार-चार घोड़े जुते होंगे। लगातार जिनके मद बह रहा है और आठ आठ आदमी साथ रहते हैं, ऐसे बड़े-बड़े दाँतवाले आठ गजराज दूँगा। सुतहरे रङ्ग की शरीर की कान्तिवाली, सब लक्ष्णों से युक्त, एक सौ दासियाँ और उतने ही दास दूँगा। दासियाँ नौजवान और ऐसी होंगी जिनके कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। पहाड़ी लोगों के दिये हुए अठारह हजार मेघ (मेढे) और चीन देश के हजार घोड़े अर्पण करूँगा। महात्मा श्रीकृष्ण के साथी लोग और वाहन जितनी सामग्री खा-पी सकते हैं उससे अठगुनी आहार की सामग्री दूँगा। दिन-रात जगमगानेवाली मणियाँ और चौदह यांजन नित्य चलनेवाले बढ़िया खच्चर दूँगा। दुर्योधन के सिवा में सब पुत्र और पोते बढ़िया गहने और कपड़े पहनकर उत्तम रथों पर बैठकर कृष्णचन्द्र की अगवानी के लिए जायेंगे। तरह-

१०

तरह को शृङ्गार करके हज़ारों वेश्याएँ पैदल—किसी सवारी पर नहीं—उन महात्मा को लेने जायँगी। नगर से उन्हें देखने के लिए बहुत सी कन्याएँ भी पैदल ही जायँगी। प्रजा जैसे सूर्य के दर्शन करती है वैसे ही नगरनिवासी बालक-बूढ़े सब श्रीकृष्ण के दर्शन करेंगे। चारों ओर नगर में झण्डे, पताका, बन्दनवार आदि मङ्गलचिह्न लगा दे। सड़कों को साफ़ कर छिड़काव कर दे। दुःशासन का महल दुर्योधन के महल से श्रेष्ठ है। इसलिए श्रीकृष्ण के ठहराने का उसी में प्रवन्ध करो। उस भवन में अनेक मनोहर स्थान हैं। वह रमणीय और सब श्रुतियों में २१ सुखदायक है। दुर्योधन के भवन की सब श्रेष्ठ सामग्री उस महल में लाकर सजा दे।

सत्तासी अध्याय

विदुर के वाक्य

विदुर ने कहा—महाराज! आप वृद्ध तो हई हैं, शास्त्र-ज्ञान और तर्क से आपकी बुद्धि भी स्थिर हो गई है। पृथ्वी पर आपका बड़ा मान है। लोग आपको प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। आप सबके प्रिय और आदरणीय हैं। आपका यह कहना ठीक ही है। प्रजा को विश्वास है कि पत्थर की लकीर की तरह आपमें दृढ़ धर्मभाव है। चन्द्रमा में कला और मसुद्र में तरङ्ग की तरह आपमें गुण वर्तमान हैं। सब लोग आपके गुणों से प्रसन्न हैं। इसलिए आप अपने बान्धवों के साथ उन गुणों को बनायें रखने का यत्न कीजिए। सरलता ग्रहण कीजिए। बालकों की तरह लोभ के वश होकर बहुत से पुत्र, पौत्र, प्रिय सुहृद् और इष्ट-मित्र आदि सहित अपने को विनाश की राह पर मत ले जाइए। राजन, आप श्रीकृष्ण को अतिथि जानकर जो कुछ देना चाहते हैं, वही नहीं, बल्कि सारी पृथ्वी यदि उनको अर्पण कर दीजिए तो वह भी उनकी यथेष्ट पूजा न होगी। मैं कसम खाकर कहता हूँ, आप धर्म समझकर अथवा श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए यह सामग्री नहीं देना चाहते। यह आपकी माया है। इतनी सामग्री का लोभ दिखाकर आप श्रीकृष्ण को पाण्डवों से फाड़ना और अपनी आंर मिलाना चाहते हैं। आपके बाहरी कामों से मुझे आपके हृदय के गूढ़ भाव का पता लग जाता है। पाण्डवों ने आपसे केवल पाँच गाँव माँगे, पर आप उन्हें पाँच गाँव भी नहीं देना चाहते हैं। इससे निश्चय है कि आप मेल करना नहीं चाहते। आप धन देकर महाबाहु वासुदेव को पाण्डवों से अलग करना चाहते हैं। आप समझते हैं, इस उपाय से श्रीकृष्ण पाण्डवों का पक्ष छोड़ देंगे। किन्तु मैं आपसे दावे के साथ कहता हूँ कि धन देकर, पाण्डवों की निन्दा करके या किसी और उपाय से आप कृष्णचन्द्र को अर्जुन से अलग नहीं कर सकते। मैं श्रीकृष्ण की महिमा और अर्जुन की दृढ़ भक्ति अच्छी तरह जानता हूँ। श्रीकृष्ण को अर्जुन प्राणप्रिय हैं। वे अर्जुन को कभी नहीं छोड़ सकते। जना-

र्दन जल के कलश, पाय और कुशल-प्रश्न के सिवा और कुछ न लेंगे। आपकी दी हुई और चीजों को वे आख उठाकर देखेंगे भी नहीं। इस कारण जैसा सत्कार करने से माननीय जना-र्दन प्रसन्न हो सकते हैं वही करना चाहिए। महात्मा वासुदेव आप सबके भले के लिए सन्धि का प्रस्ताव लेकर आ रहे हैं। इसलिए उनकी बात मान लेना ही आपके लिए योग्य है। राजन, पाण्डवों और कौरवों में मेल कराकर शान्ति स्थापित करना ही श्रीकृष्ण का उद्देश्य है। इसलिए उनकी आज्ञा से काम कीजिए। यही आपके लिए श्रेयस्कर है। महाराज, पाण्डव लोग आपके पुत्र सदृश हैं और आप उनके पिता के तुल्य हैं। वे बालक हैं, आप वृद्ध हैं। वे आपको पिता के तुल्य जानते हैं, आप भी उन्हें पुत्र के समान समझिए।

१७

अट्टासी अध्याय

दुर्योधन की कुमन्त्रणा

दुर्योधन ने कहा—पिताजी, विदुर ने श्रीकृष्ण के बारे में ठीक ही कहा है। पाण्डवों पर उनका अत्यन्त अनुराग है, इस कारण आप उन्हें किसी तरह अपने पक्ष में न कर सकेंगे। आपने सत्कार के लिए उन्हें जो कुछ धन या सम्पत्ति देने का विचार किया है वह उन्हें कभी न देनी चाहिए। श्रीकृष्ण आपके पूजनीय हैं सही; किन्तु इस समय उक्त सामग्रियों से उनका सत्कार करने से वे समझेंगे कि ये लोग डरकर मेरी पूजा कर रहे हैं। क्षत्रिय का वह काम कभी न करना चाहिए जिसमें अपना अपमान हो। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि श्रीकृष्ण सब लोगों के पूजनीय हैं; किन्तु जब आपस का कुछ शान्त ही न होगा, तब उनकी पूजा करना बेकार है।

वैशम्पायन कहते हैं कि दुर्योधन के ये वचन सुनकर कुरुपितामह भीष्म ने धृतराष्ट्र से कहा—राजन, सत्कार या असत्कार चाहे जो करो, श्रीकृष्ण किसी तरह क्रोध नहीं कर सकते। कोई भी उनका अनादर नहीं कर सकता, इसी से कहता हूँ कि श्रीकृष्ण का किसी तरह अनादर न करना। वे जिस काम को करने की ठान लेते हैं उसे हजार उपाय करके भी कोई नहीं उलट सकता। महात्मा श्रीकृष्ण जो कहें वही तुम्हें करना चाहिए। तुम बिना कुछ सोचे-विचारे उसे मान लेना। यह निश्चय है कि वे जो कुछ कहेंगे सो धर्मार्थ-सङ्गत और हितकारी होगा; क्योंकि वे बहुत बड़े धर्मात्मा हैं। बन्धुओं सहित तुम उनसे प्रिय और मीठी बातें कहना। श्रीकृष्ण को मध्यस्थ बनाकर तुम पाण्डवों से सन्धि कर लो।

१८

दुर्योधन ने कहा—पितामह, मैं जीते-जी पाण्डवों के साथ मिलकर इस समग्र पृथ्वी का राज्य भी नहीं करना चाहता [; अथवा पाण्डवों को हराकर अकेले सम्पूर्ण साम्राज्य प्राप्त करने की भी आशा नहीं है]। इस कारण मैंने इस सम्बन्ध में इस समय जो बहुत बड़ा

काम करना विचारा है, सो कहता हूँ, सुनिए। पाण्डवों के सबसे बड़े सहायक श्रीकृष्ण ही हैं। वे जब यहाँ आवेंगे तब उन्हें पकड़कर कैद कर लूँगा। फिर तो पाण्डव, यादव और सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल के राजा सहज ही मेरे अधीन हो जायेंगे। आप इस बारे में मुझे ऐसा उपाय बताइए जिससे श्रीकृष्ण मेरे इस अभिप्राय को पहले से न भाँप जायें और मेरा किसी तरह का अनिष्ट भी न हो।

वैशम्पायन कहते हैं—श्रीकृष्ण के बारे में दुर्योधन के ऐसे ओछे विचार को सुनकर मन्त्रियों सहित धृतराष्ट्र व्यथित और उदाम हो उठे। उन्होंने दुर्योधन से कहा—बेटा, ऐसा मत कहो। यह सनातनधर्म नहीं है। इस समय श्रीकृष्ण एक तो दूत, दूसरे हमारे प्रिय सम्बन्धी हैं। उन्होंने कभी कौरवों का कुछ अनिष्ट भी तो नहीं किया। फिर किस प्रकार हम उन्हें कैद करने का विचार कर सकते हैं ?

भीष्म ने कहा—हे धृतराष्ट्र, तुम्हारा यह पुत्र बड़ा मूर्ख है। यह सदा अनर्थ ही सोचा करता और अधर्म को ही पसन्द करता है। सब इष्ट-मित्रों तथा सुहृदों के समझाने पर भी यह ठीक

राह पर नहीं चलता। तुम भी अपने शुभचिन्तकों के कहे पर ध्यान न देकर इस कुमार्गगामी पापी पुत्र की बात मानते और इसी के पीछे चलते हो। मन्त्रियों सहित यह दुर्मति दुर्योधन जो ऐसा करेगा तो अवश्य वासुदेव के क्रोध की आग में भस्म हो जायगा। इस नराधम ने धर्म छोड़ दिया है। मैं इसकी ऐसी अनर्थ की बातें नहीं सुनना चाहता।



२३ भरतकुलश्रेष्ठ वृद्ध पितामह भीष्म यह कहकर क्रोध के मारे उसी समय सभा से उठकर चले गये।

नवासी अध्याय

श्रीकृष्ण का धृतराष्ट्र और विदुर के घर जाना

वैशम्पायन कहते हैं— हे जनमेजय ! इधर रात बीतने पर सर्वे मन्ध्यावन्दन आदि नित्य-कृत्य करके, ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर, कृष्णचन्द्र हस्तिनापुर की ओर चले । वृकस्थल के रहनेवाले सब लोग श्रीकृष्ण को जानते देखकर, उनसे आज्ञा लेकर, लौट गये । भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और—दुर्योधन के सिवा—धृतराष्ट्र के सब पुत्र वस्त्र-अलङ्कार पहनकर महात्मा कृष्ण की अगवानी के लिए नगर से बाहर निकले । श्रीकृष्ण का देखने की लालसा से पुरवासी लोग भी सवारियों पर चढ़कर और कोई-कोई पैदल ही उनके साथ चले । कृष्णचन्द्र राह में भीष्म, द्रोण और धृतराष्ट्र के पुत्रों से मिले और फिर उनके साथ नगर के भीतर गये । श्रीकृष्ण के सम्मान के लिए सारा नगर और राजमार्ग अनेक रत्नों और मूल्यवान् विचित्र वस्तुओं से सजाया गया था । उस समय श्रीकृष्ण का देखने के लिए नगरनिवासी स्त्री, बालक, बूढ़े तक घरों से निकलकर बाहर खड़े थे । कृष्णचन्द्र जब नगर में पहुँचे तब राजमार्ग में इधर-उधर खड़े हुए सब लोग उनके गुणों का वर्णन करने लगे । बड़े-बड़े महलों पर हज़ारों सुन्दरी स्त्रियाँ श्रीकृष्ण की सवारी देखने के लिए खड़ी थीं । इससे वे महल चलते हुए से जान पड़ते थे । बहुत तेज़ चलनेवाले श्रीकृष्ण के धाड़ें राजमार्ग में बड़ी भीड़ होने के कारण धीरे-धीरे चलने लगी ।

१०

चलते-चलते कमल-नयन कृष्णचन्द्र बड़े-बड़े भवनों से शोभित धृतराष्ट्र के महल में पहुँचे । धीरे-धीरे तीन ऊंग्रदियों लाँघकर वे राजा धृतराष्ट्र के पास गये । प्रज्ञाचक्षु महात्मा धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण के आने का समाचार पाकर आसन से उठ खड़े हुए । उनके साथ ही श्रीकृष्ण का सम्मान करने के लिए भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, सोमदत्त और महाराज वाह्लीक आदि सभासद भी खड़े हो गये । सबने यथायोग्य रीति से श्रीकृष्ण का सत्कार किया ।



अब महामति कृष्णचन्द्र ने नम्र वचन कहकर धृतराष्ट्र और भीष्म का सत्कार किया। फिर अवस्था के अनुसार अन्य राजाओं को भी सादर सम्भाषण आदि से सम्मानित किया। वाल्मीकि, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और सोमदत्त के पास बैठे हुए महात्मा द्रोणाचार्य से भी कृष्णचन्द्र मिले। श्रीकृष्ण के लिए वहाँ एक श्रेष्ठ आसन पड़ा हुआ था। धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर वे उसी पर बैठ गये। तब राजकुल के पुरोहित ने विधिपूर्वक गाय, मिष्टान्न और जल देकर



श्रीकृष्ण का सत्कार किया। अतिथि-सत्कार स्वीकार करने के बाद कृष्णचन्द्र, सम्बन्ध के अनुसार, कौरवों से हँसी-दिल्लीगी और बातचीत करने लगे।

धृतराष्ट्र की की हुई पूजा ग्रहण करके, कुछ देर वहाँ ठहरकर, कृष्णचन्द्र वहाँ से चल दिये। कौरवों से मिलने के बाद वे महात्मा विदुर के रमणीय भवन में गये। विदुर ने प्रसन्नता के साथ यथाशक्ति विधि-पूर्वक श्रेष्ठ सामग्री से श्रीकृष्ण का सत्कार किया। सब धर्मों के ज्ञाता विदुर ने अतिथि-सत्कार के उपरान्त श्रीकृष्ण से पाण्डवों के कुशल-समाचार पूछे।

विदुर ने कहा—हे जनार्दन, आपके दर्शन पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। हे कृष्णचन्द्र, आप सब प्राणियों के आत्मा और

अन्तर्यामी हैं। आपसे कुछ छिपा नहीं है। आप क्रोधशून्य, बुद्धिमान, धर्म और अर्थ के नित्य आश्रयरूप हैं। आप सज्जनों के माननीय और सज्जन हैं। हे जनमेजय, अब कृष्णचन्द्र

२७ ने विदुर से पाण्डवों का इरादा विस्तार के साथ कहा।

नव्वे अध्याय

कुन्ती और श्रीकृष्ण की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, विदुर से बातचीत करके तीसरे पहर श्रीकृष्ण अपनी बुआ कुन्ती के पास गये। सूर्य के समान परमतेजस्वी और अपने पुत्रों के प्रधान सहायक श्रीकृष्ण को

देखकर कुन्ती ने गले से लगा लिया। फिर वे अलग-अलग पुत्रों के नाम लेकर रोने लगीं। सत्य-व्रत पुत्रों के साथी और सहायक श्रीकृष्ण को बहुत दिनों के बाद देखकर कुन्ती देवी उमड़ें हुए आँसुओं के वेग को नहीं रोक सकीं। फिर उन्होंने श्रीकृष्ण का स्तुति किया। जब वे आसन पर आराम से बैठ गये तब कुन्ती कहने लगीं—[उस समय कुन्ती का मुँह सूख रहा था और आँसुओं के वेग से बाणो गद्गद हो रही थी।] हे कृष्णचन्द्र, मेरे पुत्र पाण्डव बचपन से ही बड़े-बूढ़ों की सेवा करते रहे हैं। उनमें परस्पर ऐसा अटल स्नेह है कि कभी कोई किसी की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं करता। शरीर भिन्न होने पर भी वे हृदय से एक हैं। शत्रुओं के छल और दुर्व्यवहार से राज्यभ्रष्ट होकर वे निर्जन वन को गये। मैं रोती रही, पर वे प्रिय राज्य और सुख के साथ मुझे भी छोड़ गये। अपने साथ ही वे मेरे हृदय को भी लेते गये। हे कृष्णचन्द्र, पुत्रों को मैंने सदा सुख में रक्खा था, वे किसी तरह वनवास के योग्य नहीं थे। केशव ! सत्यवादी, क्रोध-हर्ष से शून्य और ब्राह्मणों के भक्त मेरे पुत्र सिंह, बाघ, मस्त हाथी, साँप आदि से परिपूर्ण भयङ्कर वन में इतने दिन किस तरह रहे होंगे ? लड़कपन में ही उनके पिता का देहान्त हो गया था। मैंने ही पालकर उन्हें इतना बड़ा किया था। हे श्रीकृष्ण ! घर में लड़कपन से पाण्डव लोग शङ्ख, नगाड़े, मृदङ्ग, वंशी आदि के मधुर मङ्गलमय शब्द सुनकर पलंग से उठते थे; या घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघार और रथों की घरघराहट से उनकी नींद खुलती थी। शङ्ख, नगाड़े, वेणु, वीणा, पुण्याहपाठ आदि १० के शब्द के साथ ब्राह्मण लोग सदा उनकी स्तुति करते थे। वे भी विविध वस्त्र, अलङ्कार, रत्न-धन आदि देकर ब्राह्मणों को प्रसन्न करते थे। पूजनीय महात्मा ब्राह्मण पूजित होकर मङ्गलमय आशी-वादि देकर उनका अभिनन्दन करते थे। हे श्रीकृष्ण, मेरे पुत्र महलों में कोमल मूल्यवान् विछौने-वाले पलंगों पर सोते थे और पूर्वोक्त मधुर मङ्गलमय शब्द सुनकर जागते थे। वन में क्रूर हिंसक जीवों के भयानक शब्द सुन पड़ने के कारण कठोर भूमि की शय्या पर उन्हें नींद कैसे आती होगी ? वे ऐसे क्लेश भोगने के योग्य नहीं हैं। जो पहले यहाँ नगाड़े, मृदङ्ग, वीणा, शङ्ख



आदि की ध्वनि, स्त्रियों के मधुर गीत और बन्दीजनकृत स्तुति-पाठ सुनकर पलंग पर से उठते थे वे ही पाण्डव वन में घोर पशु-पक्षियों के भयङ्कर शब्द सुनकर उठते होंगे !

- हे कृष्णचन्द्र ! लज्जाशील, सत्यवादी, दयालु, काम-क्रोध-शून्य, सदा सज्जनों के मार्ग पर चलनेवाले, धर्मज्ञ, महाराज अश्वमेध-मान्धाता-ययाति-नहुष-भगत-दिलीप और शिवि आदि के प्रार्थन आदर्श पर सब काम करनेवाले, धर्मज्ञान और चरित्र में कौरवों से श्रेष्ठ, त्रिलोक का राज्य करने की योग्यता रखनेवाले, गौरवर्ण, महाबाहु, अजातशत्रु, प्रियदर्शन युधिष्ठिर इस समय कैसे हैं ? हे जनार्दन ! दम हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले, वायुवेग, महाबली, क्रोधी, भाइयों को प्रिय, भाइयों का प्रिय करनेवाले, भाइयों सहित दुष्ट कीचक का मारनेवाले, शूर, क्रोधवश हिडिम्ब और वकासुर के प्राण हरनेवाले, पराक्रम में इन्द्र के समान, बल में वायु के समान, क्रोध में रुद्र के समान, जितेन्द्रिय, शत्रुदमन, तंजोराशि, महात्मा, श्रेष्ठ, परमपराक्रमी, देखने में भयङ्कर भीमसेन कैसे हैं ? बड़े भाई के कहने से ही वे असह्य क्रोध का दबाये हुए हैं । हे कृष्णचन्द्र, वताओं लोहे के बेलन से बंधकर दृढ़ हाथोंवाले भीमसेन इस समय किस हालत में हैं ? जो महावीर दा भुजा हाने पर भी सहस्रबाहु अर्जुन की बगवरी का दावा रखते हैं; जो एक साथ पाँच सौ बाण चला सकते हैं; जो अस्त्रविद्या और धनुर्विद्या में सहस्रबाहु अर्जुन के समान हैं; जो तेज में सूर्य के समान, दम में महर्षियों के समान, क्षमा में पृथ्वी के समान और पराक्रम में इन्द्र के समान हैं; जिन महारथी ने सब राजाओं का जीतकर कौरवों को सब का सम्राट् बनाया है; वे अर्जुन इस समय कैसे हैं ? पाण्डवों का जिनके बाहुबल का भरोसा है; जिनसे युद्ध करके कोई जीता नहीं बच सकता; जो सत्यविक्रम होने के कारण पृथ्वी के योद्धाओं में श्रेष्ठ माने जाते हैं; जो देवताओं के आश्रयदाता इन्द्र की तरह सब पाण्डवों के आश्रयदाता हैं; और जो अजेय तथा सबका जीतने-
 २१ वाले हैं वे तुम्हारे प्रिय सखा और भाई अर्जुन इस समय कैसे हैं ? हे वासुदेव ! सब प्राणियों पर दया रखनेवाले, लज्जाशील, दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता, कोमल-प्रकृति, सुकुमार, धर्मात्मा, सभा-चतुर, भाइयों की सेवा में तत्पर, मुझे अत्यन्त प्रिय, जवान, बड़े भाई के अत्यन्त अनुगत और अन्य पाण्डवों से सदा बड़ाई और मान पानेवाले माद्रीपुत्र सहदेव इस समय कैसे हैं ? हे यदुनाथ ! प्रियदर्शन, सुकुमार, तरुण, शूर, सब भाइयों को प्यारे, विचित्र युद्ध में अत्यन्त निपुण और मेरे
 ३४ हाथ से सुख पाकर पलनेवाले महात्मा नकुल इस समय कैसे हैं ? हाथ ! नकुल को घड़ी भर देखे बिना पहले मैं व्याकुल हो उठती थी; उन्हीं नकुल को इतने दिनों से न देखकर भी मैं अब तक जीती हूँ ! हे केशव, बेटा नकुल को क्या फिर मैं देख पाऊँगी ? हे जनार्दन ! कुलीन, अमा-धारण रूप-लावण्यशालिनी, सब गुणों से अलङ्कृत, मुझे पुत्रों से बढ़कर प्यारी द्रौपदी इस समय कैसी हैं ? वे महाकुल में उत्पन्न, कल्याणी द्रौपदी धन्य हैं, जो उन्होंने प्रिय पुत्रों का साथ छोड़-
 ४० कर पतियों के पास रहना ही स्वीकार किया । अमृतुल्य तेजस्वी, शूर, योद्धा पाँच पतियों के

साथ रहकर भी द्रौपदी धार दुःख भोग रही हैं। पुत्रों के दुःख से पीड़ित, मत्स्यवादिनी द्रौपदी का मैंने चौदह वर्ष से नहीं देखा। ऐसे श्रेष्ठ शील-स्वभाववाली द्रौपदी का सुख से वञ्चित देखकर यही कहना पड़ता है कि कोई मनुष्य पुण्य करके सुखभाग नहीं कर पाता। हे श्रीकृष्ण, मैंने जब से सभा में पतिव्रता द्रौपदी का अपमान होत देखा है तब से मुझे तुम, अर्जुन, भीमसेन, युधिष्ठिर, नकुल या सहदेव कोई नहीं सोहाता। जिस समय क्रोध और लोभ के अधीन, अनार्य-प्रकृति दुष्ट लोग द्रौपदी को रजस्वला अवस्था में ही भरी सभा में शूरों और मसुरों के पास ले गये थे, उस समय मुझे जैसा दुःख हुआ था वैसा दुःख मुझे कभी नहीं मिला। वहाँ सभा में धृतराष्ट्र, ५० महाराज बाह्लीक, कृपाचार्य, सोमदत्त और सब कौरव लोग एक वस्त्र धारण किये द्रौपदी की वह दुर्दशा देखते रहे। खेद प्रकट करने के सिवा किसी ने उस अन्याय का प्रतिवाद नहीं किया।

कृष्णचन्द्र ! उस सभा में जितने लोग बैठे थे, उन सबमे विदुर को ही मैं श्रेष्ठ समझती हूँ। उन्होंने वहाँ धर्म की बात कही थी। धन से या केवल विद्या से कोई श्रेष्ठ नहीं होता, असल में चरित्र ही श्रेष्ठता का मूल कारण है। महाबुद्धिमान, गम्भीरप्रकृति, महात्मा विदुर का शील प्रशंसनीय, अलौकिक और अलङ्कार-स्वरूप है।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, गोविन्द का देखकर कुन्ती का दुःख उमड़ आया। वे शोक-मोह से विह्वल होकर अपने पहले के दुःखों का वर्णन करने लगी। वे कहने लगीं—हे मधुसूदन, पहले भी जो कुमति राजा लोग मृगवध (शिकार) और अन्न-क्रोड़ा (पाँसे का खेल) आदि व्यमनों में फँसे हैं उन्हीं का क्या कुछ सुख मिला है? हे वासुदेव सभा में हानेवाले द्रौपदी के अपमान की याद सदा मेरे हृदय को जलाया करती है। हे माधव, दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मुझे और मेरे पुत्रों का बड़े क्लेश दिये हैं। दुर्योधन ने पहले नगर से निकाल दिया, फिर छल करके वनवास और अज्ञातवास के लिए मेरे पुत्रों का विवश किया और अब राज्य न देकर वह जीविका छीन लेने का तैयार है। जो मैं भी पुत्रों के साथ रहती तो शायद ये बातें मेरे लिए उतना कष्ट न देतीं। दुर्योधन ने अब तक जो दुःख दिये हैं और कष्ट पहुँचाये हैं वे एक घड़ी के लिए भी मुझे नहीं भूलते। किन्तु मैंने सुना है कि दुःख-भोग से पहले के पापों का प्रायश्चित्त हो जाने पर मनुष्य को फिर सुख मिलता है। इसलिए, जान पड़ता है, इस दुःख-भोग के द्वारा जब हमारे पिछले पापों का क्षय हो जायगा तब हम लोग फिर सुख भोगेंगे। ६०

हे केशव, मैं पाण्डवों के समान ही कौरवों पर भी स्नेह रखती थी। यदि यह बात सच है तो उसी पुण्य के प्रभाव से मैं पाण्डवों सहित तुमको इस युद्ध के उपरान्त शत्रुओं को मारकर विजयलक्ष्मी प्राप्त किये हुए सकुशल देखूँगी। मञ्जरित्र पाण्डवों को कौरव कभी नहीं हरा सकेंगे।

हे माधव, मैं अपने को या दुर्योधन का दांप नहीं दूँगी। मुझे सारा दांप अपने पिता का ही जान पड़ता है। उदार पुरुष जैसे लापवाही के साथ धन दे डालते हैं वैसे ही मेरे पिता ने मुझे

अपने मित्र महात्मा कुन्तिभाज को दे दिया। मैं उस समय बालिका थी; गेंद और गुड़िया खेलने के सिवा कुछ नहीं जानती थी। हे कृष्णचन्द्र, पिता ने भी मेरा आदर नहीं किया और सुसराल में भी मैं सदा दुःख सहती रही। मैं बड़ी दुःखिया हूँ। मेरा जीवन ही निष्फल है। हे वासुदेव, अर्जुन के जन्म के समय रात को मैंने आकाशवाणी सुनी थी कि 'कुन्ती, तुम्हारा यह प्रतापी पुत्र सारी पृथ्वी को जीतकर अपने अधिकार में कर लेगा। इसका यश स्वर्गलोक तक प्रसिद्ध होगा। यह युद्ध में कौरवों को मारकर राज्य प्राप्त करके भाइयों के साथ तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा'। मैं उस देववाणी को मिथ्या नहीं समझती। सब लोक के विधाता धर्म को और महात्मा श्रीकृष्ण को प्रणाम है। धर्म ही सब लोकों को धारण किये हुए है। हे यदुराज! यदि धर्म है, यदि देववाणी सत्य है और जो तुम भी सत्य हो, तो तुम्हारे द्वारा अवश्य मेरी सब इच्छाएँ पूरी होंगी। माधव, पुत्रों के वियोग का शोक मुझे जितना दुःख दे रहा है उतना दुःख वैधव्य, राज्यहरण और कौरवों के वीर से नहीं मिला। आज यह चौदहवाँ वर्ष लगा है, मैंने शास्त्र और शास्त्र की विद्या में निपुण गाण्डोव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन को, धर्मात्मा युधिष्ठिर को, महाबली भीमसेन को और माद्री के पुत्र नकुल और सहदेव को नहीं देखा। फिर मुझे कैसे शान्ति मिले? बहुत दिन तक जिनकी कुछ खबर नहीं मिलती उन्हें मरा समझकर लाग उनके लिए श्राद्ध-तर्पण करते हैं। इस हिसाब से पाण्डवों के लेखे मैं मर गई हूँ और मर लेखे पाण्डव मर गये हैं। हे केशव, तुम धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर से कहना कि राज्य प्राप्त न करने से और माता को प्रसन्न न करने से तुम्हारे श्रेष्ठ धर्म की हानि हो रही है। इसलिए तुम ऐसा करो जिसमें तुम्हारा जीवन व्यर्थ न हो और प्रतिज्ञा भी भूठी न हो।

हे वासुदेव, जिस स्त्री को परायण आश्रय में रहकर पेट पालना पड़ता है उसे धिक्कार है। जो जीविका दीनता से मिलती है वह घोर अप्रतिष्ठा है। भैया, तुम भीमसेन और अर्जुन से कहना कि क्षत्रिय की कन्या जिस समय के लिए लड़का पैदा करती है वह समय आ गया है। जो इम आये हुए माँ के को हाथ से खो देगे, अर्थात् शत्रुओं को मारकर अपना राज्य न प्राप्त करागे, तो वह तुम्हारा काम बहुत ही निन्दित और अधम होगा। जो तुम लोग क्षत्रिय-धर्म का पालन न करके निन्दित और कलङ्कित बनना पसन्द करोगे तो मैं सदा के लिए तुम्हारा त्याग कर दूँगी। समय आने पर कर्तव्यसाधन के लिए अपने प्राण भी दे देना श्रेष्ठ पुरुषों का काम है।

हे वासुदेव, सदा क्षत्रियधर्म के अनुगामी माद्री के पुत्रों से कहना कि प्राण भले ही चले जायँ किन्तु तुम पराक्रम से राज्य और सम्पत्ति प्राप्त करना। पराक्रम से प्राप्त धन ही क्षत्रिय को सुख देनेवाले होता है। पराक्रम से जीविका प्राप्त करना ही क्षत्रिय का धर्म है।

हे महाबाहु, तुम जाकर सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ वीर पाण्डव अर्जुन से कहना कि द्रौपदी की इच्छा के अनुसार काम करें। काल-अन्तक-तुल्य महाबली भीम और पराक्रमी अर्जुन

क्रोध करके देवताओं को भी मार सकते हैं। दुर्मति दुर्योधन का द्रौपदी का सभा में ८०
बुलाना और दुःशासन, कर्ण आदि का वैसे कठोर वचन कहना भीम और अर्जुन के लिए
अत्यन्त अपमान की बात हुई है। प्रधान-प्रधान कुरुवंशियों के आगे दुर्योधन ने असह्यशील
भीमसेन का जो असह्य उपहास किया था, उसका फल उसे शीघ्र ही देखने को मिलेगा।
भीमसेन के हृदय में एक बार वैर की आग सुलगने पर फिर बुझनेवाली नहीं। महावीर
वृकोदर जब तक शत्रुओं का विनाश नहीं कर लेते तब तक—चाहे जितने दिन हो जायँ—
उनके क्रोध की आग नहीं बुझती।

हे मधुसूदन! सदा चतुरिधर्म के पालन में तत्पर, रजस्वला, एक धोती पहने, सुन्दरी द्रौपदी
ने सभा में जाकर अनाथ स्त्री की तरह जो कठोर वचन सुने, इससे बढ़कर दुःख की बात और
क्या होगी? मुझे राज्यहरण, जुए की हार, वनवास आदि से उतना दुःख नहीं मिला जितना
दुःख द्रौपदी का अपमान देखकर हुआ है। उस समय द्रौपदी विलाप कर रही थीं, और वीर
पत्नियों के रहते भी उन्हें अपनी रक्षा करनेवाला कोई नहीं देख पड़ता था। हे माधव! मेरे
पुत्रों के और मेरे तुम, महाबली बलभद्र और महारथी प्रभुन् ऐसे सहायक हैं; फिर भी
मुझे ऐसे दुःख सहने पड़ते हैं! भीमसेन जीवित हैं और अर्जुन भी कहीं भाग नहीं गये, फिर
भी मैं यों दुःखित हो रही हूँ—यह कैसे आश्चर्य की बात है!

वैशम्पायन कहते हैं कि तब अर्जुन के प्रिय मखा मधुसूदन पुत्रवियोग से विह्वल और
शोक से पीड़ित अपनी बुद्धि कुन्ती को समझाते हुए कहने लगे—बुद्धिमान्, संसार में आपके ८०
समान सौभाग्यशालिनी स्त्री भला कौन है? आप महाराज शूरसेन की कन्या हैं और आपका
व्याह महाराज अजमीढ़ के प्रसिद्ध कुल में हुआ है। जैसे कमलिनी एक मरोवर से दूसरे मरो-
वर में पहुँचती है वैसे ही आप एक श्रेष्ठ कुल से दूसरे श्रेष्ठ कुल में आई हैं। आप कल्याण-
रूपिणी और घर की मालकिन हैं। आपके पति महाराज पाण्डु सदा आपका आदर किया
करते थे। आपमें सब गुण हैं। आपके पति वीर थे और पुत्र भी वीर हैं। आप ऐसी बुद्धि-
मती स्त्री को धैर्य के साथ अपने ऊपर आनेवाले सुख या दुःख को समयानुसार सहना चाहिए।
निद्रा, आलस्य, क्रोध, हर्ष, भूख, व्यास, जाड़ा, गर्मी आदि पर विजय पाकर वीरों के योग्य सुख
भोगते हुए पाण्डव सकुशल हैं। वे विषयभोग के सुख को छोड़कर वीराचित धैर्य का सुख भोग
रहे हैं। वे बड़े उत्साही और बली हैं, इसलिए कभी थोड़े में संतोष नहीं करेंगे। जो धीर
पुरुष हैं वे अन्त के सुख को पसन्द करते हैं और जो विषय-भोग को प्रिय समझते हैं वे बीच के
सुख को चाहते हैं। उत्तम पुरुषों और वीरों का नियम होता है कि वे या तो बहुत बड़े क्लेश सहते
हैं और या अलौकिक सुख भोगते हैं। पाण्डव दुःख के अन्त में मिलनेवाले सुख को ही पसन्द
करते हैं, अन्त में दुःखदायक बीच के सुख में उनकी रुचि नहीं है। अन्त को जिसमें सुख हो

वही सुख है। देवी, युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों ने और द्रौपदी ने आपको प्रणाम कहा है और आपकी कुशल पूछी है। वे सब अच्छी तरह हैं। आप देखेंगी कि वे शीघ्र ही शत्रुओं को मारकर साम्राज्य और अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे।

पुत्र-विरह से व्याकुल कुन्ती को कृष्णचन्द्र के इन वाक्यों से सन्तोष और धैर्य हुआ।
१०० वे अज्ञान से उत्पन्न मोह को छोड़कर बोली—हे माधव, तुम वही करो जिसमें समझो कि पाण्डवों का हित होगा और धर्म की हानि भी न होगी। मैं नहीं चाहती कि राज्य के लिए मेरे पुत्र धर्म छोड़ दें या छल करें। कृष्णचन्द्र ! मैं तुम्हारे प्रभाव, मित्रता, बुद्धि, विक्रम, सत्य-निष्ठा आदि सब गुणों को अच्छी तरह जानती हूँ। तुम हमारे आत्मीय हो। तुमसे बढ़कर कर्तव्य-अकर्तव्य की व्यवस्था देनेवाला और कोई नहीं। भैया मेरे पितृकुल में तुम धर्म, सत्य और तप के रूप हो। तुम्हीं पाण्डवों के रक्षक हो। तुम ब्रह्मस्वरूप हो। तुम्हीं में ब्रह्माण्ड की स्थिति है। तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है।

वैशम्पायन कहते हैं—अब महात्मा कृष्णचन्द्र कुन्ती को प्रदक्षिणा करके, उनसे विदा
१०५ होकर, कुरु राज दुर्योधन के घर का चले।

इक्ष्यानवे अध्याय

दुर्योधन और श्रीकृष्ण की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! महात्मा गोविन्द अपनी बुद्धि कुन्ती से पूछकर, उनकी प्रदक्षिणा करके, दुर्योधन के घर गये। दुर्योधन का भवन इन्द्रभवन के समान श्रेष्ठ सम्पत्ति से शोभित और मनोहर था। उसमें विचित्र आसन पड़े हुए थे। द्वारपालों ने श्रीकृष्ण को भीतर जाने से नहीं रोका। वे बाहर की तीन ऊँढ़ियाँ लाँघकर भीतर पहुँचे। मंघवर्ण और पर्वत-शिखर ऐसे उस भवन के ऊपर की बैठक पर चढ़कर श्रीकृष्ण ने देखा कि महाबाहु दुर्योधन बहु-मूल्य रत्न-जटित मिहासन पर बैठा हुआ है। उसके आसपास बहुत से राजा, मन्त्री और सब भाई बैठे हैं। दुःशामन, कर्ण और शकुनि उसके पास ही विचित्र आसनों पर बैठे हैं। श्रीकृष्ण का देखते ही दुर्योधन अपने मन्त्रियों सहित उठ खड़ा हुआ। उसने यथोचित रूप से श्रीकृष्ण की अभ्यर्थना की। कृष्णचन्द्र भी मन्त्रियों सहित राजा दुर्योधन से और अन्य राजाओं से, अवस्था के अनुसार, मिले। सबसे कुशल-प्रश्न करके भगवान् कृष्णचन्द्र एक सुन्दर सुवर्ण के पलंग पर जा बैठे। उस बहुमूल्य पलंग पर उज्ज्वल और कोमल बिछौने बिछे हुए थे। कुरु-राज दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को मिष्टान्न, गाय, जल और रहने का घर देकर शिष्टाचार के तौर पर
१० कहा—यह राज्य आपका ही है। फिर कौरवों ने भी महाबाहु कृष्णचन्द्र का सत्कार किया। सूर्य सटश तंजस्वी श्रीकृष्ण जब बैठ गये तब उनके पास ही सब कौरव और राजा लोग भी बैठे।

हिन्दी-महाभारत



महात्मा श्रीकृष्ण, वर्षाकाल के बादल की तरह, गम्भीर वाणी से सभामण्डप को प्रतिध्वनित करते हुए
दुष्टराष्ट्र की ओर देखकर कहने लगे । १०० १०००



अब राजा दुर्योधन ने विजयी श्रीकृष्ण को भोजन का निमन्त्रण दिया; परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। तब दुर्योधन उम सभा में, कर्ण को सुनाता हुआ, शठता से भरे हुए कोमल वचन कहने लगा—हे जनार्दन! ये खाने-पीने की चीजें, कपड़े, शय्या आदि वस्तुएं हमने आपके अर्पण कीं, पर आपने उन्हें स्वीकार क्यों नहीं किया? आप दोनों पक्ष के सहायक हैं; पाण्डव और कौरव दोनों के हितचिन्तक हैं। आप महाराज धृतराष्ट्र के सम्बन्धी और उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। हे गोविन्द, आप धर्म और अर्थ की बातों को यथार्थ रूप से जानते हैं। मैं आपसे इसका कारण सुनना चाहता हूँ कि आपने हमारी की हुई पूजा और भोजन का निमन्त्रण क्यों अस्वीकार कर दिया?

वैशम्पायन कहते हैं—इस पर चक्र-गदा-धारी महामना भगवान् श्रीकृष्ण ने, हाथ उठाकर मेघ के समान गम्भीर वाणी से, धर्मार्थयुक्त समयोचित वाक्य कहना शुरू किया। श्रीकृष्ण ने विस्तार के साथ, स्पष्ट निर्भय और अखण्डनीय वचन कहकर निमन्त्रण अस्वीकार करने का कारण बताते हुए कहा—हे दुर्योधन, जब काम में सफलता मिल जाती है तभी दृत भोजन करते हैं और पूजा भी लेते हैं। जब मैं कृतकार्य हो जाऊँगा तब तुम मुझे और मेरे साथियों को भोजन कराना और पूजा भी करना।

दुर्योधन ने कहा—हे वासुदेव, हम लोगों के सम्बन्ध में आपको ऐसे वचन नहीं कहने चाहिए। आप अपना काम पूरा कर सकें या न कर सकें, हम सदा आपकी पूजा करने के लिए तैयार हैं। इसी कारण इस समय हम आपको पूजा से प्रसन्न करने का यत्न कर रहे हैं; परन्तु आपके स्वीकार न करने से हम असमर्थ हैं। हमने प्रीतिपूर्वक आपकी पूजा की, पर आप उसे स्वीकार नहीं करते। इसका कोई यथार्थ कारण हमें नहीं देख पड़ता। हे गोविन्द, आपके साथ हमारा वैर या विरोध नहीं है। इस पर विचार करके आप ऐसे वचन न कहिए, और हमारी की हुई पूजा ग्रहण कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं कि यह सुनकर श्रीकृष्ण मुसकाये और फिर मन्त्रियों सहित दुर्योधन की ओर देखकर कहने लगे—हे कौरव! मैं काम, क्रोध, द्वेष, स्वार्थ, कपट या लोभ के वश होकर धर्म को नहीं छोड़ सकता। लोग या तो प्रीति से और या विपत्तिग्रस्त होकर दूसरे का अन्न खाते हैं। तुमने प्रीति से मुझे भोजन का निमन्त्रण नहीं दिया और मुझ पर भी कोई विपत्ति नहीं आई है। फिर मैं क्यों भोजन करूँ? सब गुणों से परिपूर्ण, सगे भाई के तुल्य स्नेहपात्र पाण्डवों से तुम बिना किसी कारण के जन्म से ही द्वेष रखते हो। पाण्डव धर्मात्मा हैं, उनसे तुम्हारा अकारण वैर करना सर्वथा अनुचित है। उन्हें कोई कुछ भी दोष नहीं दे सकता। जो कोई पाण्डवों से द्वेष रखता है, वह मानो मुझसे भी द्वेष रखता है, और जो कोई उनसे प्रीति का व्यवहार करता है, वह मानो मुझसे भी वैसा ही व्यवहार करता है।

मैं पाण्डवों से अलग नहीं हूँ। उन धर्मात्माओं का शत्रु मेरा भी शत्रु है। जो पुरुष काम, क्रोध या मोह के वश होकर लोगों से विरोध करता है और गुणी पुरुष से द्वेष रखता है वह नराधम है। जो पुरुष कल्याणपात्र गुणी जातिवालों और भाइयों को अकारण लाञ्छन लगाता और उनकी सम्पत्ति हर लेने की इच्छा करता है, वह अजितेन्द्रिय दुराचारी कभी चिरमन्वित ३० सम्पत्ति नहीं भाग सकता; शीघ्र ही श्रीहीन हो जाता है। और, जो कोई अपने को हृदय से अप्रिय होने पर भी गुणी जातिवालों का, उनका प्रिय करके, अपने अनुकूल बनाता है वह सदा यशस्वी और श्रीमान रहता है। मुझ विश्वास है कि तुम किसी दुष्ट विचार से भोजन के लिए



मुझसे अनुरोध कर रहे हो; इसलिए मैं तुम्हारे इस दृष्टित अन्न को न खाऊँगा। मैं केवल विदुरजी का अन्न ग्रहण करना उचित और श्रेयस्कर समझता हूँ।

महाबाहु श्रीकृष्ण क्रोधविह्वल दुर्योधन से इतना कहकर उठ खड़े हुए, और दुर्योधन के घर से निकलकर विदुर के भवन में पहुँचे। भीष्म, द्रोण, कृप, वाह्लीक और अन्य कुरुवंशी लोग विदुर के यहाँ श्रीकृष्ण के पास जाकर उनसे अपने-अपने घर चलने के लिए अनुरोध करने लगे।

श्रीकृष्ण ने उनसे कहा—हं महात्माओं, आप लोग जाइए। आप लोगों से मैं सब तरह की पूजा पा चुका।

कौरव लोग जब अपने-अपने घर चले गये तब महात्मा विदुर ने बड़े स्नेह

और यत्न से सब प्रकार के आवश्यक पदार्थों द्वारा कृष्णचन्द्र का सत्कार करके पवित्र उत्तम आहार और पीने की चीज़ें उन्हें अर्पण कीं। मधुसूदन ने विदुर की दी हुई भोजन-सामग्री से पहले वेदपाठी ब्राह्मणों को वृत्त किया और बहुत सी दक्षिणा दी; फिर देवगण सहित इन्द्र की ४१ तरह अपने साथियों के साथ उन्होंने वह ब्राह्मण-भोजन से बचा हुआ अन्न खाया।

वानवे अध्याय

विदुर की प्रार्थना

वैशम्पायन कहते हैं कि श्रीकृष्ण भोजन करके जब विश्राम करने लगे तब रात को एकान्त में महात्मा विदुर ने उनसे कहा—हे केशव, आपका यहाँ आना अच्छा नहीं हुआ। मन्दमति दुर्योधन धर्म और अर्थ के ज्ञान से शून्य, काम-क्रोध-परायण, औरों के मान को मिटानेवाला, आप मान पाने का अभिलाषी, निर्वोध, मूढ़, इन्द्रियासक्त, अपने को समझदार समझनेवाला, मित्रद्रोही, कृतघ्न, अधर्मी, मिथ्यावादी और स्वेच्छाचारी है। किसी कर्तव्य के बारे में उसका दृढ़ निश्चय नहीं रहता है। दुर्योधन मे इनके सिवा और भी बहुत से दोष हैं। आप हित की बातें कहेंगे, पर वह किसी तरह न मानेगा। भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, अश्वत्थामा और जयद्रथ आदि को दुर्योधन इसी खयाल से बहुत कुछ वृत्ति दिये हुए हैं कि वे युद्ध में उसकी सहायता करेंगे। उन्हीं के बल पर भूला हुआ वह पाण्डवों से सन्धि करना नहीं चाहता। कर्ण-सहित सब धृतराष्ट्र के पुत्र निश्चय किये बैठे हैं कि भीष्म, द्रोण आदि से युद्ध करना कैसा, पाण्डव उनके भयङ्कर युद्ध-वेप की ओर आँखें उठाकर भी नहीं देख सकते। राजाओं की बहुत सी सेना जमा करके ही मूर्ख बाल-प्रकृति दुर्योधन अपने को कृतार्थ मान रहा है। उस दुर्बुद्धि का यह भी दृढ़ निश्चय है कि अकेला कर्ण ही सब पाण्डवों को और उनकी सेना को परास्त करेगा। इसलिए वह कभी शान्ति की राह नहीं पकड़ेगा। मतलब यह कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पाण्डवों को उनका उचित अंश न देने का पक्का इरादा कर लिया है। इसलिए आप पाण्डवों और कौरवों के मेल के लिए जो कुछ कहेंगे वह व्यर्थ होगा। १०

हे मधुसूदन ! जैसे गवैया बहरों के आगे नहीं गाता वैसे ही बुद्धिमान् लोग उस व्यक्ति से कोई बात नहीं कहते जिससे अच्छी और बुरी दोनों तरह की बातें एक सी लगती हैं। जैसे चाण्डाल को उपदेश देना ब्राह्मण का कर्तव्य नहीं वैसे ही दुराचारी दुर्योधन को उपदेश देना आपका काम नहीं है। खासकर इस समय उसने बहुत सी सेना जमा कर ली है, इसलिए वह कभी आपकी बात न सुनेगा। हे कृष्णचन्द्र ! एकत्र बैठे-हुए उन पापियों के बीच में आपका जाना, अथवा उनके मत के विरुद्ध बातें कहना मेरी राय में ठीक नहीं। वह दुष्ट एक तो बड़े-बूढ़ों की सोह-बत में नहीं बैठा, दूसरे असहजशील और ऐश्वर्य के घमण्ड में चूर है। इसलिए यह सर्वथा असम्भव है कि वह आपके कल्याणदायक वचनों को मान ले। दुर्योधन ने प्रबल सेना जमा कर ली है और वह आपसे शङ्कित भी रहता है, इसलिए कभी आपकी बात नहीं मानेगा।

धृतराष्ट्र के पुत्रों ने विश्वास कर लिया है कि सब देवताओं सहित इन्द्र भी अगर लड़ने आवें तो कौरवों की सेना को हरा नहीं सकते। काम-क्रोध के वशवर्ती उन दुष्टों ने जब यह २०

निश्चय कर लिया है तब आपके उपयुक्त वचन भी उनके आगे सफलता नहीं प्राप्त कर सकेंगे । हे मधुसूदन ! दुर्योधन बहुत सी चतुरङ्गिणी सेना जमा करके, उसके बल पर, सारी पृथ्वी को अपनी ही समझता है । धृतराष्ट्र का मूढ़ पुत्र समझता है कि पृथ्वी पर वह निष्कण्टक साम्राज्य प्राप्त करेगा । उससे शान्ति के लिए कहना बेकार है । वह समझता है कि मैं बाँधकर शत्रुओं का जीत लूँगा और शर्तिया अपना प्रयोजन सिद्ध कर सकूँगा । यह पृथ्वी अधर्म के बोझ से दब रही है । संहार का समय उपस्थित है । पृथ्वी के सब याद्रा और राजा दुर्योधन के लिए पाण्डवों से लड़ने आये हैं । वे सब पहले से ही आपके साथ वैर बाँध चुके हैं, और आपके प्रभाव से नीचा भी देख चुके हैं । आपसे डरकर उन्होंने इस समय दुर्योधन और कर्ण का आश्रय लिया है । वे दुर्योधन के साथ रहकर पाण्डवों से लड़ने का दृढ़ निश्चय कर चुके हैं । मैं उनके पास जाकर सन्धि के लिए प्रस्ताव करने का अनुमोदन नहीं करूँगा । हे कृष्णचन्द्र, मैं आपके बल और बुद्धि को अच्छी तरह जानता हूँ । यद्यपि देवता भी आपके प्रताप को सह नहीं सकते, तो भी मुझे आपका उस शत्रु-सभा में जाना पसन्द नहीं । पाण्डवों पर मुझे जितना स्नेह है, उससे अधिक आप पर है । हे पुरुषोत्तम, आप सब प्राणियों के ३० आत्मा हैं । आपके दर्शनों से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है ।

तिरानवे अध्याय

श्रीकृष्ण का उत्तर

कृष्णचन्द्र ने कहा—हे विदुरजी, तुमने बुद्धिमान और चतुर पुरुषों की सी ही बात कही है । मुझे ऐसे सुहृद् से तुम ऐसे व्यक्ति को जैसी धर्मार्थसङ्गत बात कहनी चाहिए वैसी ही तुमने कही है ; किन्तु मैं और ही विचार से यहाँ आया हूँ । सुनो, दुर्योधन का दौरात्म्य (पाजी-पन) और क्षत्रियों की शत्रुता जानकर ही मैं यहाँ आया हूँ । जो पुरुष हाथी, घोड़े, रथ, रथी सहित हानेवाले लाञ्छन को रोक सकता है उसे श्रेष्ठ धर्म और पुण्य प्राप्त होता है । यदि मनुष्य यथाशक्ति धर्म के काम के लिए यत्न करके भी उसे पूरा न कर सके, तो भी उसे वह काम पूरा करने का फल मिल जाता है । किन्तु मन में पाप कर्म का इरादा करके अगर कोई उसे कर न सके, अर्थात् उसमें सफलता पा न सके, तो उसे उस पाप का फल नहीं भाँगना पड़ता । यह नीति के जानकारों की गाय है । कर्ण और दुर्योधन के दोष से कुरुकुल पर घोर विपत्ति आ रही है । मैं इस समय अपनी शक्ति भर ऐसा यत्न करूँगा जिससे युद्ध में नष्ट होने के लिए तैयार कौरव और पाञ्चाल उस क्षय से बच जायँ और शान्ति स्थापित हो जाय ।

हे विदुरजी, जो आदमी मङ्कट में पड़े हुए बान्धवों को उससे बचाने का यत्न नहीं करता १० उसे पण्डितों ने नराधम कहा है । बुद्धिमान पुरुष मित्र के लिए कष्ट तक स्वीकार करके उसे

बुरे कामों से बचाते हैं। ऐसी चेष्टा करना उनका कर्तव्य है। जो वह उम चेष्टा में निवृत्त न हो तो राकनेवाला निन्दा का पात्र नहीं होता। दुर्योधन और पृथ्वी के अन्य राजाओं की भलाई के लिए मैं जो हित की बातें कहूँगा, उन्हें मानना दुर्योधन का सब तरह कर्तव्य है। दुर्योधन अगर मेरे धर्मार्थयुक्त वचन सुनकर भी मुझसे शङ्कित रहे और न माने, तो उससे मेरी कुछ हानि नहीं; बल्कि मैं भोजन का अच्छा उपदेश देने के कारण परम सन्तोष और यश पाऊँगा; मैं अपने कर्तव्य से उरित हो जाऊँगा। जातिवालों और नातेदारों में फूट पड़ने के समय जो पुरुष मित्र का अच्छी सलाह नहीं देता, वह आत्मीय नहीं कहा जा सकता। हे निष्पाप! मैं कौरवों और पाण्डवों में मेल कराने के लिए यथाशक्ति यत्न करके कृतकार्य न होऊँगा, तो भी अधर्मी मूढ़ पुरुष या आत्मीय लोग यह न कह सकेंगे कि कृष्ण ने समर्थ होकर भी कौरवों और पाण्डवों के झगड़े को नहीं शान्त किया। मैं दोनों पक्षों का काम बनाने का यहाँ आया हूँ। उसके लिए यत्न करने से जन-समाज में मेरी निन्दा न होगी। जो दुर्योधन सूर्यता के कारण मेरे धर्मार्थसङ्गत हितकारी वाक्य न मानेंगा तो उसे अपने भाग्य का लिखा भोगना पड़ेगा।

हे विदुरजी, मैं यदि पाण्डवों को राज्य दिलाकर कौरवों से मेल करा सका तो मुझे पुण्य हांगा और कौरव मृत्यु-मुख से बच जायेंगे। मैं कुरुसभा में जाकर जो युक्तिमङ्गत निर्दोष वचन कहूँगा उन्हें क्या अभाग्य धृतराष्ट्र के पुत्र सुनेंगे? कौरव लोग बात मानकर क्या मेरे मान की रक्षा करेंगे? सिंह जैसे अन्य पशुओं को सहज ही मार सकता है वैसे ही मैं कौरवपक्ष के क्षत्रियों को सहज ही मार सकता हूँ। २०

वैशम्पायन कहते हैं—यह बातचीत करके श्रीकृष्ण सुखदायक शय्या पर लोट गये। २२

चौरानवे अध्याय

बुलाये जाने पर श्रीकृष्ण का कौरव-सभा में जाना

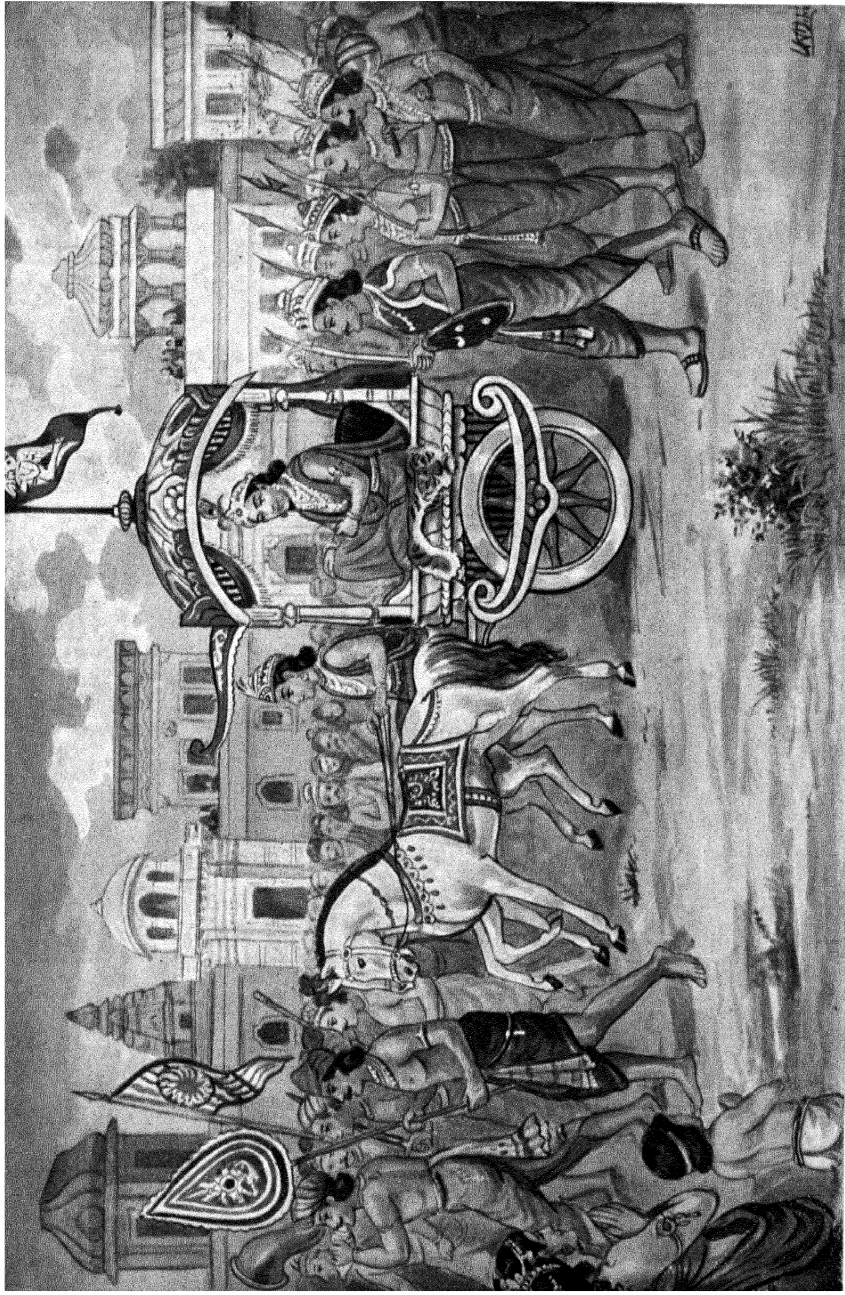
वैशम्पायन कहते हैं—राजन, श्रीकृष्ण और विदुर को इस प्रकार धर्मार्थयुक्त बातचीत करते-करते रात बीत गई। आकाश से धीरे-धीरे नक्षत्र खिसकने लगे। वैतालिकगण ब्राह्ममुहूर्त में आकर मधुर स्वर से स्तुति करके और शङ्ख घण्टा नगाड़े आदि बजाकर श्रीकृष्ण को जगाने लगे। तब उन्होंने उठकर आवश्यक प्रातःकृत्य किये। फिर स्नान-सन्ध्या-जप-हवन आदि कर चुकने पर उन्होंने कपड़े पहने। इनमें ही सूर्योदय हुआ और माधव उनकी आराधना करने लगे। इसी समय दुर्योधन और शकुनि ने श्रीकृष्ण के पास आकर कहा—हे वासुदेव! सभा में महाराज धृतराष्ट्र, भीष्म आदि कौरव और अनेक अन्य राजा, देवता जैसे इन्द्र की प्रतीक्षा करें वैसे, आपकी राह देख रहे हैं।

महात्मा वासुदेव ने मधुर वचनों से उनका अभिनन्दन किया । फिर ब्राह्मणों को गाय, १० सुवर्ण, वस्त्र, रत्न, घोड़े आदि देकर सन्तुष्ट किया । अब दारुक सारथी ने श्रीकृष्ण के पास आकर प्रणाम किया । फिर वह किकिर्गाजालयुक्त, श्रेष्ठ घोड़ों से शांभित बड़ा भारी रथ जोतकर ले आया । महात्मा वासुदेव ने उस रथ को तैयार देखकर अग्नि और ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा की, कौस्तुभ मणि पहनी; फिर वे उस पर सवार हुए । पीछे सब धर्मों के ज्ञाता महात्मा विदुर भी उस पर बैठ गये । दुर्योधन और शकुनि अपने रथ पर बैठकर श्रीकृष्ण के पीछे चलने लगे । मात्यकि, कृतवर्मा और अन्य वृष्णिवंशी यादव रथ, हाथी, घोड़े आदि पर बैठकर श्रीकृष्ण के पीछे चले । उस समय उन चित्रियों के सुवर्ण-सामग्री-युक्त मंघ-जैसी वरघराहट करनेवाले बड़े रथ बहुत ही भले लगे ।

वासुदेव की सवारी धीरे-धीरे राजमार्ग में पहुँची । चन्दन-जल के छिड़काव से सड़क २० की धूल बैठ गई थी । शङ्ख, नगाड़े आदि बजने लगे । सिंह के समान पराक्रमी, शत्रु-संहार में निपुण, वीर लोग श्रीकृष्ण के रथ के चारों ओर चल रहे थे । विचित्र पोशाक पहने, अस्त्र-प्रास आदि शस्त्र लिये हज़ारों वीर—हाथी, रथ आदि सवारियों पर—श्रीकृष्ण के पीछे जा रहे थे । हस्तिनापुरनिवासी बालक, बूढ़े, स्त्रियाँ सभी सड़क पर जाते हुए श्रीकृष्ण का देखने के लिए आतुरता के साथ दौड़ पड़े । स्त्रियाँ घर के चबूतरों पर खड़ी होकर श्रीकृष्ण को देख रही थीं । जान पड़ता था, आदमियों के बोझ के मारे मकान विचलित हो रहे हैं ।

कौरवों से सत्कार पानेवाले श्रीकृष्ण उनके मधुर वचन सुनते, उनका यथोचित अभि-नन्दन करते और चारों ओर की सैर करते धीरे-धीरे जा रहे थे । फिर कुरु-सभा में पहुँचकर केशव के साथ के लोगों ने शङ्ख, वेणु आदि के शब्द से दसों दिशाओं को गुंजा दिया । श्रीकृष्ण के आने की सूचना पाकर सारी सभा मानों हर्ष के मारे हिल उठी । क्रमशः श्रीकृष्ण सभा के समीप पहुँच गये । उस समय मंघ के शब्द की तरह गम्भीर उस रथ के पहियों का ३० शब्द सुनकर राजा लोग बहुत ही प्रसन्न हुए । सभा के द्वार पर पहुँचकर यादवश्रेष्ठ श्रीकृष्ण कैलासशिखर-तुल्य रथ से उतरे । वहाँ से विदुर और सात्यकि के हाथ पकड़े हुए श्रीकृष्ण आगे बढ़े । नये मेघ-सदृश तेजस्वी श्रीकृष्ण के तेज और सौन्दर्य के आगे सबका तेज फीका पड़ गया । वासुदेव ने इन्द्रसभा-सदृश कौरवों की सभा में प्रवेश किया । कर्ण और दुर्योधन उनके आगे थे और कृतवर्मा सहित यादव लोग पीछे थे ।

श्रीकृष्ण ने सभामण्डप में ज्योंही प्रवेश किया त्योंही भीष्म, द्रोण आदि के साथ महाराज धृतराष्ट्र सिंहासन से उठ खड़े हुए । उनके खड़े होते ही सभा में बैठे हुए हज़ारों राजा आसन छोड़कर खड़े हो गये । धृतराष्ट्र की आज्ञा से सभा में श्रीकृष्ण के लिए सुवर्णमय, बहुत ही साफ़, मूल्यवान् आसन रक्खा गया था । वासुदेव ने मुसकाकर धृतराष्ट्र,



सिंह के समान पराक्रमी, शत्रु-संहार में निपुण, वीर लोग श्रीकृष्ण के रथ के चारों ओर चल रहे थे—पृ० १६६२

भीष्म, द्रोण और अन्य राजाओं की यथाचित अभ्यर्थना की। कौरवों और मद्र राजाओं ने भी जनार्दन का आदर-सत्कार किया।

४०

कृष्णचन्द्र ने उन राजाओं के बीच में खड़े होकर, अन्तरिक्ष में स्थित नारद आदि महर्षियों को देखकर, भीष्म से कहा—हे पितामह, नारद आदि महर्षि इस मभा के समारोह को देखने के लिए देवलोक से मनुष्यलोक में आये हैं। इनको यथाचित आसन दीजिए और सत्कार कीजिए। इन लोगों के आसन ग्रहण किये बिना कोई बैठ नहीं सकता। कुरुवंशश्रेष्ठ भीष्म ने ऋषियों को मभा के द्वार पर उपस्थित देखकर शीघ्र आसन लाने के लिए सेवकों का आज्ञा दी। नौकर लोग उसी समय मणि-काञ्चन-शोभित श्रेष्ठ आसन ले



आये। ऋषि लोग जब उन आसनों पर बैठ गये तब महात्मा वासुदेव और अन्य राजा लोग अपने आसनों पर बैठे। दुःशासन ने सात्यकि को और विविशति ने कृतवर्मा को श्रेष्ठ आसन दिया। क्रांन्धी अमहनशील दुर्योधन कर्ण के साथ, एक ही आसन पर, श्रीकृष्ण से कुछ ही फासले पर बैठा। शकुनि अपने पुत्र को साथ लिये हुए एक आसन पर बैठ गया। उसके शरीर-रक्त गान्धार देश के वीर उसके पास मौजूद थे। महात्मा विदुर महामूल्य मणिपीठ पर, श्रीकृष्ण के आसन से सटकर, बैठे। जैसे बारम्बार अमृत पीने से तृप्ति नहीं होती, वैसे ही बहुत दिन के बाद श्रीकृष्ण को बारम्बार देखकर भी कुरुवंशियों का और अन्य राजाओं का जी नहीं भरता था। अलसी के फूल के समान श्यामवर्ण मधुसूदन पीताम्बर पहने ऐसे जान पड़ते थे जैसे सुवर्ण में जड़ा हुआ नीलम का तग हो। सब मभासद चुपचाप बैठे हुए एकटक नारायण की ओर देख रहे थे। किसी का कुछ बोलने का माहम न होता था।

५०

५४

पञ्चानवे अध्याय

श्रीकृष्ण का प्रस्ताव करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! इस तरह जब मभा में सन्नाटा छाया हुआ था तब महात्मा श्रीकृष्ण, वर्षाकाल के बादल की तरह, गम्भीर वाणी से सभामण्डप का प्रतिध्वनित करते

हुए धृतराष्ट्र की आर दम्बकर कहने लगे—हं भरतकुलदोषक, मैं इसी लिए आपको पास आया हूँ कि पाण्डवों और कौरवों में परम्पर सन्धि हो जाय और वीर पुरुषों का विनाश न हो। आपको और कोई हितोपदेश करने की मुझे इच्छा नहीं; क्योंकि जानने योग्य सब बातें आप जानते ही हैं। राजन् ! आपका धरणा विद्या, सदाचार वीरता आदि गुणों के कारण अन्य राजघरानों से श्रेष्ठ समझा जाता है। दया, उदारता, सरलता, क्षमा और सत्य, ये बातें कुरुकुल में विशेष रूप से विद्यमान हैं। इसलिए इस ग्यानदान से, स्वास्कर आपसे, किसी तरह का अनुचित काम होना बहुत ही बेजा है। आप कुरुकुल के प्रधान नेता और शासक वर्तमान हैं। आपके रहने आपसे छिपाकर और आपका जताकर भी कौरव लोग भूठ और कपट का व्यवहार कर रहे हैं। आपके पुत्र दुर्योधन आदि अत्यन्त अशिष्ट हैं। वे लोभ के वश होकर प्राचीन मर्यादा को तोड़ते हैं—धर्म और अर्थ पर दृष्टि न रखकर पाण्डवों के साथ क्रूरता और बेईमानी का वर्ताव कर रहे हैं। उम्मी के कारण इस समय कुरुकुल के ऊपर विपत्ति के बादल मँडला रहे हैं। जो आप इस मामले को न सम्भालेंगे तो निश्चय है कि अन्त को युद्ध की आग में पृथ्वी के असंख्य मनुष्यों का सर्वनाश हो जायगा।

राजन्, आप चाहें तो सहज में यह आपत्ति टल सकती है। इसलिए कदाचित् दोनों पक्षों का शान्त करना अत्यन्त दुष्कर नहीं है। राजन्, कौरवों और पाण्डवों का मेल आपके और मेरे हाथ में है। आप अपने पुत्रों का समझाकर या डाँटकर शान्त कीजिए और मैं आपके वर्तमान शत्रु पाण्डवों का रोकूंगा। हे राजेन्द्र, आपकी आज्ञा मानना आपके पुत्रों का आवश्यक कर्तव्य है। आपकी आज्ञा पर चलने से उनका परम कल्याण होगा। शान्ति स्थापित करने से कौरव और पाण्डव दोनों का ही भला होगा। इसलिए शान्ति स्थापित करने का यत्न कीजिए, व्यर्थ का बैग छाड़ दीजिए। कौरव आपके सहायक हैं ही, इस समय पाण्डवों के द्वारा सब आंग से सुरक्षित होकर धर्मार्थ के चिन्तन में शेष जीवन के दिन बिताइए।

हे नगराज, विरोध यत्न और उद्योग करके भी आप पाण्डवों का हरा नहीं सकेंगे, किन्तु पाण्डव जो आपके रजक हो जायेंगे तो देवगण सहित इन्द्र भी आपका सम्मान न कर सकेंगे। राजाश्रमों की तो कुछ बात ही नहीं। देविए, भोष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, विविशति, अश्वत्थामा, विकर्ण, समोदन, बाह्लीक, जयद्रथ, कलिङ्गराज, काम्बोजराज मुदक्षिण, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि, महारथी युयुत्सु आदि वीर यदि मिलकर एक हो जायें तो फिर संसार में कौन इनसे युद्ध करने की हिम्मत कर सकता है? हे शत्रुन शन ! कौरवों और पाण्डवों का मेल हो जाने पर आप सहज ही सब शत्रुओं को जीत सकते और त्रिभुवन का साम्राज्य भी प्राप्त कर सकते हैं। उस समय आपके समकक्ष या आपसे श्रेष्ठ राजा भी आपसे सन्धि कर लेंगे। तब पुत्र, पौत्र, भाई, पिता और सुहृद्गण से सुरक्षित होकर आप पृथ्वीमण्डल

का साम्राज्य भोगते हुए परम सुख से रहेंगे। आप अपने पुत्रों और भतीजों के प्रताप से सहज ही अन्य शत्रुओं को हराकर, मन्त्री, मित्र, पुत्र आदि के साथ, पाण्डवों के बाहुबल से प्राप्त भूमि का ऐश्वर्य भोग सकेंगे।

राजन्, संप्राम का फल केवल महात्तय है। देखिए, कौरव या पाण्डव दोनों में से यदि कोई पक्ष नष्ट हुआ तो आपकी हानि होगी। शोक भी होगा। समर में पाण्डवों या कौरवों का विनाश होने से क्या आपकी नेकनामी होगी? पाण्डव मर या कौरव मरे तो आपको क्या सुख मिलेगा? पाँचों पाण्डव शूरा, युद्धनिपुण और आपके सगे हैं। इसलिए आप इस होनेवाले अनर्थ से दोनों पक्षों की रक्षा कीजिए। ऐसा कीजिए जिसमें शूरा और रथी ३० पाण्डव और कौरव एक दूसरे के हाथ से मरते न देख पड़ें। हे राजेन्द्र, पृथ्वी के सब राजा क्रोधवश होकर एकत्र हुए हैं। उनके क्रोध से बड़ी भारी मनुष्यहत्या या लोकक्षय होगा। इसलिए आप प्रजा की रक्षा कीजिए; उसका विनाश न होने पावे। आप प्रकृतिस्थ हों, अर्थात् मत्त्व-गुण की वृत्ति स्वीकार करें तो यह भाई-भाई का विरोध बहुत जल्द मिट सकता है। विशुद्ध वंश में उत्पन्न, उदार, यशस्वी, लज्जाशील कौरव-पाण्डवों को परस्पर मित्र बनाकर आप इस महाभय से बचाइए। आये हुए राजा लोग क्रोध और वैरभाव छोड़कर, आपस में मिलकर, बढ़िया कपड़े और माला आदि पहनें, एक साथ भोजन करें और प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घर को लौट जायें। पहले पाण्डवों के साथ आपका जैसा सद्भाव था वैसा ही फिर हो जाय। हे भरतश्रेष्ठ, आप शान्ति स्थापित करने के लिए यत्न कीजिए। पाण्डवों के पिता वचन में ही मर गये थे, तभी से वे पुत्र की तरह आपके यहाँ पले हैं। इसलिए आप उन्हें और अपने पुत्रों को एकसा समझकर दोनों की रक्षा कीजिए। सब समय, खामकर विपत्ति के समय, आपको पाण्डवों की रक्षा करनी चाहिए, इस कारण कर्तव्य-विरुद्ध कार्य करके धर्म और अर्थ की हानि करना आपके लिए सर्वथा अयोग्य है।

महाराज, पाण्डवों ने आपको प्रणाम और प्रसन्न करके कहा है कि 'हमने आपको पिता मानकर आपकी आज्ञा से बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करके बहुत क्लेश सहे हैं। ४१ हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके, यह बात वनवासी ब्राह्मण जानते हैं। इस समय ऐसा उपाय कीजिए जिससे हमें अपने हिस्से का राज्य मिल जाय। आप धर्म और अर्थ के तत्त्व को जानते हैं। हमने आपको गुरुतुल्य समझकर सब क्लेश सहे हैं। इसलिए इस समय पिता-माता की तरह हमें विपत्ति से उबारना आपका कर्तव्य है। हे महाराज, गुरु से शिष्य को जैसा व्यवहार करना चाहिए, वैसा ही व्यवहार हम आपके साथ करते हैं। आप भी हमारे साथ ऐसा व्यवहार कीजिए जैसा गुरु को करना चाहिए। हम जो कुराह पर चलें तो हमें सुमार्ग पर लगाना आपका काम है। आप धर्म-मार्ग पर हड़ होकर हमें उसी राह पर लगाइए'।

पाण्डवों ने आपके सभासदों से भी कहा है कि 'आप लोगों के ऐसे सभासदों के रहते सभा में अन्याय होना उचित नहीं। यदि सभामदों के आगे अधर्म से धर्म का और असत्य से सत्य का विनाश हो तो वे भी नष्ट हो जाते हैं। जिस सभा में अधर्म के हाथों धर्म की हत्या होती है और वहाँ के सभासद अधर्म से धर्म की रक्षा नहीं करते तो उस धर्म की हत्या से वे भी मारे जाते हैं। नदी जैसे किनारे पर कं वृत्तों को उखाड़ डालती है वैसे ही धर्म ऐसे सभासदों को नष्ट कर देता है। जो सभासद धर्म पर दृष्टि रखकर सोच-विचार करते हैं अर्थात् अधर्म का अनुमोदन नहीं करते वे ही सत्य, धर्मसङ्गत और न्यायपूर्ण वचन कहते हैं'।

महाराज, मैं इसके सिवा और कुछ नहीं कह सकता कि आप पाण्डवों को राज्य देकर उनसे सन्धि कर लीजिए; अथवा इस बार में जो वक्तव्य हो सो यहाँ के सभासद कहें। राजन्, अगर आपको मेरी ये बातें धर्मार्थ-मङ्गत और सत्य समझ पड़ें तो इन राजाओं को और अपने पुत्रों को मृत्युपाश से छुड़ाइए। हे भरतश्रेष्ठ, अब आप क्रोध-ईर्ष्या त्यागकर शान्त भाव धारण कीजिए। पाण्डवों को उनके बाप का हिस्सा देकर पुत्रों के साथ सुख से रहिए। महात्मा युधिष्ठिर धर्म के मार्ग से कभी डिगनेवाले नहीं। आप अच्छी तरह जानते हैं कि महाराज युधिष्ठिर आपसे और आपके पुत्रों से कैसा व्यवहार रखते हैं। यद्यपि आपने उनको जलाना चाहा, देश से निकाल दिया, तो भी वे आपकी शरण में आये हैं। आपने पहले, पुत्रों की सलाह से, युधिष्ठिर को हस्तिनापुर से इन्द्रप्रस्थ में रहने को बाध्य किया था। उसके अनुसार वे वहाँ रहे थे और अपने बाहुबल से राजाओं को जीतकर उन्होंने आपके अधीन कर दिया था। इसके विरुद्ध उन्होंने कभी कुछ काम नहीं किया। किन्तु बीच में सुबल-पुत्र शकुनि ने, आपकी सम्मति से, कपट-दूत में उनका राज्य और धन-सम्पत्ति अन्यायपूर्वक हर ली। उस अवस्था में द्रौपदी का घोर अपमान देखकर भी पाण्डव लोग क्षत्रिय-धर्म से विचलित नहीं हुए।

हे भारत, मैं आपके और पाण्डवों के भले के लिए ये सब बातें कह रहा हूँ। राजन्! आप युद्ध ठानकर अपनी प्रजा के धर्म, अर्थ और सुख को नष्ट न कीजिएगा। महाराज, आपके लोभी पुत्र अनर्थ को अर्थ और अर्थ को अनर्थ समझ रहे हैं। इसलिए आप उनको शासन में लाइए। पाण्डव लोग सन्धि और युद्ध, दोनों के लिए तैयार हैं। अब आपको जो रुचे सो कीजिए। वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, श्रीकृष्ण के वचन सुनकर राजा लोग मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगे। किन्तु स्पष्ट रूप से पहले बोलने का या कुछ कहने का साहम किसी को नहीं हुआ।

द्वियानवे अध्याय

परशुराम के वचन

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महामनस्वी यशस्वी श्रीकृष्ण की बात पूरी होने पर सभासद चुपचाप सोचने लगे; कोई कुछ उत्तर न दे सका। सबको रोमाञ्च हो आया। इस तरह सब राजाओं के चुप रहने पर निर्भय महर्षि परशुराम ने कुरुसभा में सबके सामने कहा—हं धृतराष्ट्र, मैं दृष्टान्त-सहित कुछ सत्य बातें कहता हूँ। उन्हें सुनकर जो उचित समझिए सो कीजिए। यह निश्चित है कि यदि मेरी बात मानिएगा तो आपका भला होगा। मैंने सुना है कि प्राचीन काल में एक दम्भोद्भव नाम के राजा थे। वे सारी पृथ्वी के सम्राट् होकर राज्यसुख भोग करने लगे थे। महारथी राजा दम्भोद्भव सबेरे उठकर नित्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि से पूछते थे कि क्या पृथ्वी पर ब्राह्मण आदि चारों वर्णों में मुझसे अधिक या मेरे समान कोई शस्त्रधारी पुरुष है ?

राजा दम्भोद्भव को ऐसा गर्व था कि वे अपने आगे किसी को कुछ नहीं समझते थे और अपने साथ लड़ने की शक्ति रखनेवाले यादवा की तलाश में पृथ्वी पर घूमते रहते थे। विद्वान् उद्धार और निडर ब्राह्मणों ने राजा को बारम्बार इस तरह अपने मुँह अपनी बड़ाई करते देखकर कई बार मना किया तो भी राजा ने नहीं माना; ब्राह्मणों से यह प्रश्न करना नहीं छोड़ा। तब वेदपाठी तपस्वी ब्राह्मणों ने कुपित होकर उन महाअभिमानी और ऐश्वर्य के नशे में चूर राजा से कहा—राजन् ! दो पुरुषश्रेष्ठ ऐसे हैं, जिन्होंने युद्धस्थल में कई बार अनेक वीरों को हराया है। तुम युद्ध में कभी उनकी बराबरी नहीं कर सकोगे।

ब्राह्मणों से यह सुनकर राजा ने पूछा—हे ब्राह्मणो, वे दोनों वीर किस देश में पैदा हुए हैं ? कहाँ रहते हैं ? कौन हैं ? उनके कर्म किस प्रकार के हैं ?

ब्राह्मणों ने कहा—राजन्, हमने सुना है कि वे दोनों श्रेष्ठ तपस्वी नर-नारायण हैं और इस समय देवलोक से मनुष्यलोक में आकर तप कर रहे हैं। तुम उनके साथ युद्ध करो। उनका ठिकाना भी हम तुमको बताये देते हैं। चले जाओ, वे गन्धमादन पर्वत पर अत्यन्त कठिन तपस्या कर रहे हैं।

असहृणशील घमण्डी राजा दम्भोद्भव नर-नारायण को अपराजित सुनकर बहुत सी चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये हुए गन्धमादन पर्वत की ओर चले, जहाँ नर और नारायण कठिन तप कर रहे थे। राजा ने गन्धमादन पर्वत पर जाकर देखा कि उक्त महर्षि जाड़ा-गर्मी, आँधी-पानी, भूख-प्यास आदि द्वन्द्व धर्मों को सहते हुए उग्र तपस्या कर रहे हैं। दोनों महर्षियों के शरीर ऐसे दुर्बल थे कि नसें दूर से देख पड़ती थीं। राजा ने पास जाकर उन्हें प्रणाम

किया और कुशल पूछी। ऋषियों ने भी आसन, फल-मूल, जल आदि देकर राजा की खातिर की और पूछा—राजन, कहिए हम आपका क्या काम करें?

२० अब राजा ने आदि से अन्त तक सब हाल सुनाकर उनसे कहा—मैं अपने बाहुबल से सब शत्रुओं को मारकर सारी पृथ्वी जीत चुका हूँ। इस समय आप लोगों से युद्ध करने इस



पर्वत पर आया हूँ। मेरी बहुत दिनों की युद्ध की इच्छा पूरी कीजिए। मैं यही अतिथिसत्कार चाहता हूँ।

नर-नारायण ने कहा—हं राजेन्द्र, यह आश्रम क्रोध और लोभ से रहित है। इस आश्रम में युद्ध कैसा? यहाँ अस्त्र-शस्त्र, क्रूरता या कुटिलता की चर्चा भी असम्भव है। पृथ्वी पर बहुत से क्षत्रिय हैं। और जगह जाकर उनसे युद्ध की इच्छा प्रकट करो।

परशुराम कहते हैं—दम्भोद्भव राजा को शान्त करने के लिए नर-नारायण ने बारम्बार इस तरह कहा, पर राजा ने न माना। वे बारम्बार युद्ध के लिए उन महर्षियों को बुलाने लगे। तब नर ने मुट्ठी भर मेंठे उग्राङ्कुर राजा से कहा—हं युद्ध की इच्छा रखनेवाले क्षत्रिय, आश्रमा, सब अस्त्र-शस्त्र लाओ और सेना तैयार करो। मैं अभी तुम्हारी युद्ध की भूक उतारे दूँगा हूँ।

राजा ने कहा—हं तपस्व, जो तुम इन मेंठों से मेरे साथ युद्ध करना ठीक समझते हो, तो मैं इस तरह भी तुमसे लड़ने का तैयार हूँ। मैं युद्ध की इच्छा से ही आया हूँ।

परशुराम कहते हैं—अब राजा दम्भोद्भव तपस्वी नर को मारने की इच्छा से उनके ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। राजा के सैनिक भी चारों ओर से उन पर बाण बरसाने लगे। अपराजित तपस्वी नर ने दिव्य अस्त्र से अभिमन्त्रित मेंठों से ही शत्रुओं ३० को छिन्न करनेवाले बाणों की वह वर्षा निष्फल कर दी और फिर असह्य धार ऐपीक अस्त्र राजा के ऊपर छोड़ा। उस अस्त्र से नर ने बड़ा अद्भुत काम यह किया कि मायाबल से सेना-सहित राजा के आँख, नाक, कान आदि अङ्गों को मेंठों से भर दिया। शब्दवेधी और निमित्तवेधी बाण छोड़नेवाले नर के अस्त्र-प्रभाव को देखकर राजा घबरा गये। उन्होंने देखा, सफेद इपीका (मेंठे) आकाश भर में छाई हुई हैं। तब वे “मेरा भला हो” कहकर नर के पैरों पर गिर पड़े।

शरणागतरत्नक भगवान् नर ने राजा से कहा—हे नरश्रेष्ठ, अब धर्मात्मा और ब्राह्मणभक्त बने। फिर ऐसा काम न करना। तुम ऐसे पुरुष, क्षत्रिय के धर्म का खयाल रखकर, कभी मन में ऐसा विचार भी नहीं करते। तुम अहङ्कार के अधीन होकर अपने से दुर्बल या प्रबल पर कभी आक्रमण न करना। अब प्रज्ञायुक्त होकर लोभ और अहङ्कार छोड़ दे। महानुभाव, दमयुक्त, क्षमाशील और शान्तिप्रिय होकर प्रजा का पालन करो। किसी के बलाबल को जाने बिना भूलकर उस पर आक्रमण न करना। मैं जाने की आज्ञा देता हूँ; जाओ, सुख से रहो। मेरे कहने से जाकर ब्राह्मणों से उनकी कुशल पूछना।

राजा दम्भोद्भव ने दोनों महात्माओं के पैर छुए। फिर वे अपने नगर में जाकर धर्म के अनुसार सब काम करने लगे। हे धृतराष्ट्र, नर ने पहले बहुत से अलौकिक काम किये हैं। नारायण नर से भी अधिक गुणी और श्रेष्ठ हैं। इसलिए श्रेष्ठ धनुष गाण्डीव पर बाण चढ़ने के पहले ही अभिमान छोड़कर अर्जुन की शरण में जाओ। राजन्! ये मनुष्य काकुर्दाक, शुक, नाक, अक्षिसन्तर्जन, सन्तान, नैक, घोर और आस्यमादक नाम के आठ अस्त्रों से घायल होकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं। ये आठों अस्त्र काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अभिमान, मात्सर्य और अहङ्कार ही हैं। लोग इन्हीं अस्त्रों के लगने से उन्मत्त से हो जाते हैं। कभी सोते, कभी उछलते, कभी वमन करते, कभी मूतते, कभी राते और कभी हँसते देख पड़ते हैं। सब लोकों का निर्माण करनेवाले, ईश्वर, सब कर्मों के ज्ञाता नारायण जिनके सखा हैं उन युद्धप्रिय अजेय अर्जुन को हरा सकनेवाला तीनों लोकों में नहीं है। युद्ध में नरश्रेष्ठ अर्जुन के समान दूसरा कोई नहीं है। तुम भी अर्जुन को अच्छी तरह जानते हो। जनार्दन कृष्ण उनसे भी श्रेष्ठ हैं। राजन्, जिन नर-नारायण का वर्णन मैंने किया वे ये अर्जुन और श्रीकृष्ण ही हैं। यदि मेरी बात विश्वासयोग्य समझते हो और मेरा मतलब समझ गये हो तो युद्ध की इच्छा छोड़कर शान्ति ग्रहण करो। हे भरतश्रेष्ठ, इस पृथ्वी पर तुम्हारा कुल प्रतिष्ठित समझा जाता है, इसलिए ऐसा करो, जिसमें उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपना भला सोचो। ४०

सत्तानवे अध्याय

कण्व द्वारा मातलि के जामाता ढूँढ़ने की कथा

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, परशुराम के परचात् महर्षि कण्व ने दुर्योधन से कहा—हे कुरुराज! लोकपितामह ब्रह्मा, भगवान् नर और नारायण, ये तीनों क्षत्रिय और वयस्य से रहित निर्भय हैं। सब देवताओं में एक विष्णु ही सनातन, अव्यय, अजेय और सबके ईश्वर हैं। चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, ग्रहगण, नक्षत्रपुञ्ज आदि सब प्रलय-काल में नष्ट हो जाते हैं। ये बारम्बार प्रलय के समय जगत् से मिट जाते हैं और मृष्टि के समय फिर

प्रकट होता है। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि तिर्यक् योनि के जीव और अन्य सब जीवलोक के प्राणी बहुत थोड़े दिन जीकर परलोक को सिधार जाते हैं। राजा लोग प्रायः थोड़ी ही अवस्था तक ऐश्वर्य-सुख भोगकर जवानी में ही, अपने पुण्य-पाप का फल भोगने के लिए, परलोकवासी हो जाते हैं। इसलिए तुम युद्ध की इच्छा छोड़कर पाण्डवों से सन्धि कर लो और उनके साथ पृथ्वी का पालन करो। हे दुर्योधन, अपने को ही सबसे बढ़कर बलशाली समझना अनुचित है। संसार में एक से एक बली पड़े हैं। बाहुबल रखनेवाले लोगों के आगे सेना का १० बल कोई चीज़ नहीं। देवतुल्य पराक्रमी पाण्डव असाधारण बल-वीर्यशाली हैं।

यहाँ पर मैं तुमको एक पुरातन इतिहास सुनाता हूँ जिसमें मातलि का, कन्या के लिए, वर ढूँढ़ने जाने का हाल है। त्रिलोकीनाथ इन्द्र के सारथी मातलि के एक ही कन्या थी, और कोई मन्तान न थी। उसका नाम गुणकेशी और रूप जगत् भर में प्रसिद्ध था। देवरूपिणी गुणकेशी सौन्दर्य तथा तेज में और बियों से बहुत बढ़कर थी। उस कन्या को विवाह के योग्य देखकर मातलि और उसकी स्त्री दोनों को बड़ी चिन्ता हुई।

मातलि सोचने लगा—महाशय, प्रतिष्ठित, यशस्वी पुरुषों के घर में कन्या का होना बहुत बुरा है। कन्या के कारण उसकी माता का कुल, पिता का कुल और पति का कुल, तीनों कुल संशय में पड़ते हैं। मैं मनुष्य-दृष्टि से मनुष्यलोक और देवलोक में कन्या के लिए वर खोज चुका, पर कोई मरं मन का वर नहीं मिलता।

कण्व कहते हैं—मातलि ने बहुत से देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि और मनुष्य देख डाले, पर अपनी कन्या के योग्य उसे कोई न जान पड़ा। अन्त को रात्रि के समय अपनी स्त्री सुधर्मा से सलाह करके उसने नागलोक जाने का निश्चय किया। मन में यह सोचकर कि देवलोक और मनुष्यलोक में गुणकेशी के योग्य वर नहीं मिला, अब शायद नागलोक में मिल जाय, मातलि ने यात्रा कर दी। अपनी स्त्री से बिदा होकर, कन्या २१ को प्यार करके, मातलि पाताल को चल दिया।

अट्टानवे अध्याय

मातलि और नारद का एक साथ पाताल में जाना

कण्व कहते हैं कि इसी समय महर्षि नारद वरुण से भेंट करने पाताल को जा रहे थे। राह में मातलि को देखकर उन्होंने पूछा—मातलि, कहाँ जा रहे हो? अपने काम से कहीं जा रहे हो या इन्द्र की आज्ञा से? तब मातलि ने उन्हें सब हाल कह सुनाया। नारद ने कहा—हे सूत, मैं भी वरुण से भेंट करने जाता हूँ। चलो, हम दोनों साथ ही चलें। मैं तुमको पाताल की सैर भी करा दूँगा और वहाँ का हाल भी बताऊँगा। हम दोनों मिलकर

वहाँ एक योग्य वर भी खोज सकेंगे। हे दुर्योधन, यह निश्चय करके दोनों पाताल के भीतर घुसे। वहाँ जाकर उन्होंने वरुण के दर्शन किये। वहाँ नारद की तो देवर्षि के योग्य और मातलि की इन्द्र की सी पूजा हुई। फिर अपने आने का कारण बताकर और वरुण से अनुमति लेकर वे नागलोक में घूमने लगे।

महर्षि नारद पाताल-लोकवासी प्राणियों का हाल जानते थे, इसलिए वे मातलि से सब हाल कहने लगे—हे सूत, पुत्र-पौत्र-सहित वरुण देव के तुम दर्शन कर चुके, अब जलराज के सब समृद्धि-पूर्ण उत्तम स्थानों की सैर कर लो। वह देखो, जलपति के कमललोचन महाप्राज्ञ पुष्कर नाम के पुत्र हैं। ये रूप, गुण, शौच और सच्चरित्रता में सबसे बड़े हुए हैं। लक्ष्मी के समान रूप-लावण्य-वाली ज्योत्स्नाकाली नाम की सोम की कन्या ने इनको अपना पति बनाया है।



१०

वह देखो, अदिति के बड़े पुत्र सुरश्रेष्ठ का काञ्चनमय वारुणागृह है। इसी को पाकर देवता लोग 'सुर' कहलाते हैं। हे मातलि, जिनका राज्य छीन लिया गया है उन दैत्यों के वे शस्त्र रक्खे हुए चमक रहे हैं। ये सब अक्षय शस्त्र, चलाये जाने पर शत्रुवध करके फिर चलानेवाले के पास बारम्बार चले आते हैं। देवताओं ने दैत्यों को जीतकर ये शस्त्र प्राप्त किये हैं। इस स्थान पर राक्षसों और दैत्यों को देवताओं ने हराया था। उन राक्षसों और दैत्यों के पास पहले के देवताओं के ही बनाये ये दिव्य अस्त्र थे। वह वारुणहृद में उज्ज्वल लपटोंवाली आग जल रही है। यह अग्नि विष्णु के चक्र के भय को भी दूर किये हुए है—यहाँ विष्णु के सुदर्शन चक्र का भी डर नहीं है। वह जो देवताओं द्वारा सुरक्षित गँड़े की पीठ का बड़ा भारी धनुष रक्खा है, उसका नाम गाण्डोव है। मौके पर अन्य धनुषों की अपेक्षा सौ गुना हजार गुना इसका बल बढ़ जाता है। यह राक्षस-सदृश शान्ति भङ्ग करनेवाले दुष्ट राजाओं को दण्ड देने के लिए बना है। ब्रह्मज्ञ भगवान् ब्रह्मा ने इसे बनाया है। भगवान् शुक ने इसे सब शस्त्रों से श्रेष्ठ कहा है। जलेश वरुण के पुत्र इस धनुष को धारण करते हैं। वह देखो, जलेश वरुण का छत्रगृह है। उसमें विशाल छत्र रक्खा है। वह छत्र मेघ की तरह शीतल जल-बर-

२०

साया करता है। इस छत्र से गिरनेवाला जल चन्द्र-सम उज्ज्वल होने पर भी अन्धकार से ढका रहने के कारण देख नहीं पड़ता। हे सूत, यहाँ बहुत सी देखने योग्य अद्भुत चीजें हैं। परन्तु २५ तुम्हारे काम की जल्दी के कारण उन्हें बिना देखे ही हम चलेंगे।

निम्नानवे अध्याय

पाताल की वस्तुओं का नारदकृत वर्णन

नारदजी कहते हैं कि हे मातलि, यह पाताल नाम का पुर नागलोक के मध्य भाग में है। यहाँ अनेक दैत्य और दानव रहते हैं। जल के वेग में बहकर आये हुए पृथ्वी के कुछ जङ्गम



जीव जब यहाँ प्रवेश करते हैं तब डर के मारे चिन्नाने लगते हैं। यहीं जल सोखने-वाले आसुर अग्नि (वाड़वानल) स्थित हैं। जगत् पर अनुग्रह करने के लिए वे अपने को रोके हुए हैं। देवताओं ने यहीं शत्रुओं को मारकर अमृत पिया और रख दिया है। यहीं से सोम की वृद्धि और चय देखा जाता है। इसी स्थान पर अदितिपुत्र हयग्रीवरूपधारी विष्णु, वेदपाठी लोगों की वेदध्वनि बढ़ाने के लिए, वेद-वाक्यों से जगत् को पूर्ण करते हुए प्रतिपर्व पर ऊपर उठते हैं। वे सुवर्ण नाम से प्रसिद्ध हैं। ज्योंही वे ऊपर उठते हैं त्योंही ये चन्द्र आदि सब जलमूर्ति होकर, दधीभूत चन्द्रकान्त मणि की तरह, गिरते हैं। इसी से इस स्थान का नाम

पाताल है। जगत् का हित करने के लिए गजराज ऐरावत इसी स्थान से शीतल जल खींचकर मेघों को पहुँचाते हैं। उसी जल को इन्द्र पृथ्वी पर बरसाते हैं। इसी स्थान पर विविध आकारवाले जलचारी तिमि आदि जल-जन्तु चन्द्रमा की कान्ति पीते हुए रहते हैं। हे सूत, इस पाताल-तल में इस तरह के बहुत से जीव हैं जो दिन को तो सूर्य की किरणों से मर जाते हैं; किन्तु रात को चन्द्रमा उदय होकर अपनी किरणों से उन पर अमृत बरसाते हैं इससे १० वे फिर जी उठते हैं। समय के फेर में पड़े हुए दैत्य, इन्द्र से हारकर, यहीं रहते और अपने धर्म का पालन करते हैं। इसी स्थान में सब प्राणियों के स्वामी देवादिदेव भगवान् शूल-पाणि महादेव

ने प्राणियों के हित के लिए उग्र तप किया है। वेदपाठ-परायण गोव्रतधारी महर्षि ब्राह्मण स्वर्ग को अपने कर्मों से जीतकर, प्राण त्यागकर, इसी स्थान में रहते हैं। इधर-उधर पड़े रहना, जो मिल जाय वही खा लेना, और जो मिल जाय वही पहन लेना गोव्रत कहलाता है। मेरावत, वामन, कुमुद, अञ्जन आदि सुप्रतीक के वंश में उत्पन्न गजराज यहाँ प्रकट हुए हैं।

हे मातलि ! देखो, शायद यहाँ कोई गुणी वर तुम्हें पसन्द आ जाय। तुम पसन्द कर लो, फिर मैं यत्र करकं उसे राज़ो कर लूँगा। देखो, जल के भीतर वह जो तेज से प्रकाशमान अण्ड देख पड़ता है सो सृष्टि के आरम्भ से अब तक यों ही रक्खा है; न तो वह फूटता है और न चलता है। मैंने किसी के मुँह से इसके जन्म या विशेषता का हाल नहीं सुना। कोई नहीं बतला सकता कि इसके माता-पिता कौन हैं। प्रलयकाल में इसी से महान् अग्नि उत्पन्न होकर चराचर जगत् का भस्म कर देगा।



नारदजी के वचन सुनकर मातलि ने कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ, यहा मुझे अपनी कन्या के योग्य वर नहीं देख पड़ता। चलिए, हम लोग किसी दूसरे स्थान में चलें।

२०

सौ अध्याय

नारद और मातलि का हिरण्यपुर में जाना

नारदजी ने कहा—हे मातलि ! असुरों के विश्वकर्मा मय दानव ने मायावी दैत्यों और दानवों के लिए बड़े यत्र से, मङ्गल के द्वारा, पाताल में हिरण्यपुर नाम का यह श्रेष्ठ पुर बनाया है। पूर्व समय में महातेजस्वी, महावीर, विशालशरीर, भीमपराक्रमी, वायुवेगगामी राक्षस, विष्णु के चरणों से उत्पन्न कालखज्र अमुर और ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न महायोद्धा निवातकवच दानव—ब्रह्मा के वर से—यहाँ बेखटक रहते थे। वे हजारों घोर मायाओं को जानते थे। इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर अथवा अन्य देवता उन्हें नहीं जीत सकते थे। तुमको मालूम है कि इन्द्र तक उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। तुम, तुम्हारा पुत्र गोमुख, इन्द्र और उनके पुत्र जयन्त कई बार युद्ध में उनके सामने से भाग चुके हैं।

हे मातलि ! देखो, इस हिरण्यपुर के सुवर्णमय, चाँदी के, पद्मरागमय, वैडूर्यमणिमय, मूँगे के और शुभ्रवर्ण सूर्यकान्त मणि के बने, उज्ज्वल हीरों से शोभित, ऊँचे, विचित्र मणिजाल से १२ विभूषित घने विशाल भवन शिलामय, काष्ठमय, सूर्यकिरणमय और अग्निमय ऐसे जान पड़ते हैं। इनके रूप, गुण, परिमाण आदि सब अनिर्वचनीय हैं। ये किस सामग्री से बने हैं, यह बताना भी असम्भव सा है। वह देखो, दैत्यों के क्रीड़ा-स्थान, सोने की शय्याएँ, बहुमूल्य-रत्न-मण्डित भवन और आसन हैं। मेघ-सदृश पर्वत, भरने और इच्छानुसार सदा फूलने-फलनेवाले वृक्ष देखकर नेत्रों को सफल करो। हे मातलि, तुमने अपनी कन्या के लिए यहाँ कोई वर पसन्द किया या नहीं ? यदि कोई न जँचा हो तो हम भूमि की और दिशा में चलें ;

मातलि ने कहा—नारदजी, मैं देवताओं का अप्रिय नहीं कर सकता। यदि देवता और दैत्य भाई-भाई हैं, फिर भी दोनों में सदा से वैर चला आता है। इस कारण मैं शत्रुपक्ष से नाते-दारी नहीं कर सकता। मैं अपने, आपके और हिमा-प्रिय दानवों के स्वभाव को अच्छी तरह १६ जानता हूँ। आइए, हम और जगह चलें। मैं दानवों को देखना भी नहीं चाहता।

एक सौ एक अध्याय

दानवों का गरुड़लोक में जाना

नारद ने कहा—हे सूत, यह लोक सपों और नागों को खा जानेवाले गरुड़ पक्षियों के रहने का स्थान है। ये पक्षी आकाश में उड़ने से या बोझ लादने से कभी नहीं थकते। कश्यप की स्त्री विनता के गर्भ से सुमुख, सुनामा, सुनेत्र, सुवर्चा, सुरुक् और सुपर्ण नाम के छः पुत्र उत्पन्न हुए थे। उन्हीं से यह गरुड़ पक्षियों का वंश चला और बढ़ा है। विनता के वंश में उत्पन्न प्रधान-प्रधान पक्षियों ने सैकड़ों-हज़ारों कुलों की सृष्टि करके गरुड़-वंश को बढ़ाया है। इस वंश में उत्पन्न सब गरुड़ श्रीमान्, श्रीवत्सचिह्नयुक्त, श्री प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले और बलवान् हैं। ये दयाहीन और नागभक्ती होने के कारण कर्म से क्षत्रिय हैं। अपनी जाति का क्षय करनेवाले होने से ये ब्राह्मण-पदवी नहीं पाते। ये विष्णु भगवान् के वाहन हैं। इन पक्षियों के कुल-देवता, प्रधान आश्रय, हृदयनिवासी और परमगति विष्णु ही हैं। यह गरुड़-वंश अत्यन्त प्रशंसनीय है। अब मैं प्रधानता के अनुसार इनके नाम तुमको सुनाता हूँ। सुवर्णचूड़, नागाशी, दारुण, चण्डतुण्ड, अनिल, अनल, विशालाक्ष, कुण्डली, पङ्कजित, वज्रविष्कम्भ, वैनतेय, १० वामन, वातवेग, दिशाचक्षु, निमिष, अनिमिष, त्रिराव, सप्तराव, वल्मीकि, दीपक, दैत्यद्वीप, सरिद्धीप, सारस, पद्मकेतन, सुमुख, चित्रकेतु, चित्रबर्ह, अनघ, मेघहृत्, कुसुद, दत्त, सर्पान्त, सोम-भोजन, गुरुभार, कपोत, सूर्यनेत्र, चिरान्तक, विष्णुधर्मा, कुमार, परिवर्ह, हरि, सुखर, मधुपर्क, हेमवर्ण, मालय, मातरिश्वा, निशाकर, दिवाकर आदि गरुड़ यहाँ रहते हैं। मैंने संक्षेप में

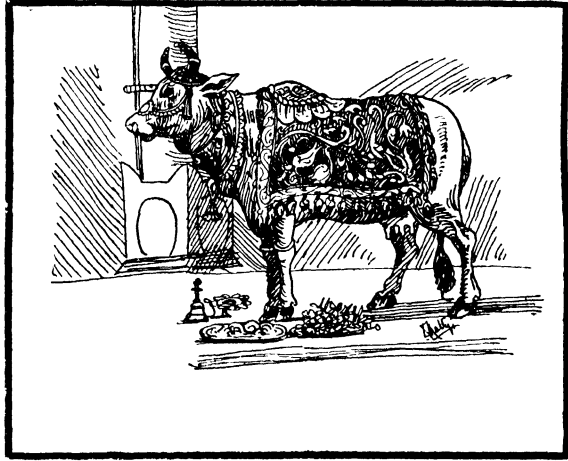
कीर्तिशाली, महाकाय, प्रधान-प्रधान गरुड़पुत्रों के नाम तुम्हें सुना दिये । हे मातलि, जो यहाँ भी तुम्हारी पसन्द का कोई वर न हो तो फिर चलो, मैं तुमको उस स्थान में ले चलूँ जहाँ तुम्हें लड़की के लिए अपनी पसन्द का लड़का मिल जायगा ।

१६

एक सौ दो अध्याय

देवों का रसातल में जाना

नारदजी कहते हैं—हे मातलि, इस स्थान का नाम रसातल है । इसे सातवाँ पाताल कहते हैं । इस स्थान में गोमाता सुरभि रहती हैं । सुरभि गाय अमृत से उत्पन्न हुई हैं । उन्हीं [के स्तनों] से छहों रसों का सार गोरस निकलता है । वह गोरस पृथ्वी के सार से प्रकट है । पूर्व समय में ब्रह्मा ने अमृत से वृष होकर उसका सारांश अपने मुँह से उगला था, उसी से सुरभि उत्पन्न हुई हैं । उन्हीं के दूध की धारा पृथ्वी पर गिरने से चौरसागर बना है । उस दूध का फेना सागर के किनारों तक फूल सा देख पड़ता है । हे मातलि, कुछ महर्षि वही फेना पीकर दुष्कर तप करते हैं, इससे वे फनप कहलाते हैं । उन मुनियों के तपोबल से देवता भी डरते हैं । सुरभि की चार बेटियाँ (गायें) चारों दिशाओं के सिरो पर रहकर उन दिशाओं को धारण किये हुए हैं और उनका पालन करती हैं । सुरभि की कन्यासुरूपी पूर्व दिशा में, हंसिका दक्षिण दिशा में, सुभद्रा पश्चिम दिशा में और कामधेनु ऐलविला उत्तर दिशा में रहती है ।



१०

देवताओं और दैत्यों ने मन्दराचल को मथानी बनाकर चौरसागर में इन धेनुओं का दूध मथा था और सागर से उन्हें वारुणी, लक्ष्मी, अमृत, श्रेष्ठ घोड़ा उच्चैःश्रवा और श्रेष्ठ मणि कौस्तुभ आदि रत्न मिले थे । सुरभि का दूध सुधा का आहार करनेवालों (पितरों) के लिए सुधा, अमृताहारियों के लिए अमृत और स्वधा से वृष होनेवालों के लिए स्वधा है । पहले रसातल के निवासी इस विषय की एक गाथा कहते थे, वह अब तक सुनी जाती है । पण्डित

लोग अभी तक यह गाथा गाते हैं कि रसातल में रहने से जो सुख मिलता है वह १५ नागलोक, स्वर्गलोक या विमानों में नहीं है।

एक सौ तीन अध्याय

दोनों का भोगवती पुरी में जाना और सुमुख को पसन्द करना

नारदजी ने कहा—हे मातलि, इन्द्र की अमरावती नगरी जैसी मनोहर है वैसी ही वासुकि नाग की राजधानी यह भोगवती पुरी है। महापराक्रमी शंपनाग तपोबल से हज़ार मस्तकों पर प्रभावशालिनी पृथ्वी को रखे हुए हैं। उनका शरीर मफ़ंद पर्वत के समान है, जीभें ज्वाला की तरह लपलपाती हैं और वे अङ्गों में दिव्य आभूषण पहने हुए हैं। सुरसा नागिन के पुत्र एक हज़ार नाग यहाँ रहते हैं। वे कभी दुःखित नहीं होते। उन महाबली, पराक्रमियों का भयानक स्वभाव है। उनके शरीरों में मणि, स्वस्तिक, चक्र और कमण्डलु आदि के चिह्न बने हुए हैं। इन पर्वताकार नागों में से किसी के हज़ार, किसी के सौ, किसी के दस, किसी के सात और किसी के तीन सिर हैं। इस स्थान में रहनेवाले, एक ही वंश में उत्पन्न, उन अयुत-अर्बुद-संख्यक विपथर नागों के नाम बड़े-छोटे के क्रम से कहता हूँ; सुनो—वासुकि, तत्त्वक, कर्कोटक, धनञ्जय, कालिय, नहुष, कम्बल, अश्वतर, बाह्यकुण्ड, मणि, आपूरण, खग, वामन, १० एलापत्र, कुकुर, कुकुण, आर्यक, नन्दक, कलश, पांत, कंलाम, पिञ्जरक, ऐरावत, सुमना, सुमुख, दधिमुख, शङ्ख, नन्द, उपनन्द, आप्त, कोंटरक, शिखों, निपटुरक, तित्तिरि, हस्तिभद्र, कुमुद, माल्य-पिण्डक, दोपद्म, पुण्डरीक, पुष्प, मुद्गरपर्णक, करवीर, पीठरक, संवृत्त, वृत्त, पिण्डार, विल्वपत्र, मूपिकाद, शिरीषक, दिलीप, शङ्खशीर्षा, ज्यातिष्क, कौरव्य, धृतराष्ट्र, कुहुर, कृशक, विरजा, धारण, सुबाहु, मुखर, जय, वधिर, अन्ध, विशुण्डि, विरस और सुरस आदि अनेक कश्यप के पुत्र नाग हैं। हे मातलि, जो तुम्हें इनमें कोई वर पसन्द आवे तो देखा;

कण्व कहते हैं कि मातलि ने उन नागों में से एक को देखकर पसन्द किया और फिर प्रसन्न होकर नारद से कहा—भगवन्, जो तेजस्वी और दर्शनीय नाग कौरव्य आपके सामने खड़ा है वह किमके कुल में उत्पन्न है? उमके माता-पिता कौन हैं? वह किस नागवंश का यश २० बढ़ानेवाला पताका-स्वरूप है? उमकी एकाग्रता, धैर्य, गम्भीरता, रूप और अवस्था देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मुझे वह गुणकेशों के योग्य वर जान पड़ता है।

कण्व कहते हैं—देवर्षि नारद ने देखा कि मातलि ने सुमुख नाग को पसन्द किया है, तब वे उससे सुमुख के गुण, जन्म और कर्म का हाल कहने लगे—यह ऐरावत नाग के कुल में उत्पन्न है। इसका नाम सुमुख है। इसके पिता का नाम चिकुर, पितामह का नाम आर्यक और नाना का नाम वामन है। थोड़ा समय हुआ, विनता के पुत्र गरुड़ इसके पिता को मारकर खा चुके हैं।

मातलि ने प्रसन्नता प्रकट करके देवर्षि नारद से कहा—मुनिवर, यह नाग मुझे पसन्द है। मैं इसे देखकर बहुत प्रसन्न हूँ। इसे मैं अपनी कन्या व्याह देने को तैयार हूँ। आप कृपा करके यह व्याह ठीक करा दीजिए।

२६

एक सौ चार अध्याय

सुमुख को विष्णु की सम्मति से इन्द्र का आयु देना

नारदजी ने आर्यक नाग के पास जाकर कहा—हे आर्यक, यं इन्द्र के प्रिय सखा और सारथी मातलि हैं। यं सुशील, गुणी, तेजस्वी, वीर्यशाली, बलवान्, पराक्रमी और इन्द्र के मन्त्री हैं। हर एक युद्ध में इनका सम्बर इन्द्र से कुछ ही नीचे रहता है। ये हर एक देवासुर-सङ्ग्राम में हजार घोड़ेवाले विजयदायक रथ को हाँकते हैं। यं इस काम को इच्छामात्र से करते हैं। इन्द्र इनकी, घोड़ों की और अपने बाहुबल की सहायता से शत्रुओं को हराते हैं। पहले जब यं शत्रु पर चोट कर लेंते हैं तब इन्द्र प्रहार करते हैं। इनके एक सुन्दरी मत्स्यवादिनी गुणवती गुणकेशी नाम की कन्या है। यं सब लोकों में वर की खोज में घूम आये हैं। यहाँ शील, शौच, दम आदि गुणों से युक्त आपके पोते सुमुख को इन्होंने पसन्द किया है और उससे अपनी कन्या का व्याह करना चाहते हैं। जो आपको भी यह सम्बन्ध पसन्द हो तो शीघ्र इस विवाह के लिए अनुमति दीजिए।



जैसे लक्ष्मी का नारायण से, स्वाहा का अग्नि से और इन्द्राणी का इन्द्र से व्याह हुआ है वैसे ही गुणकेशी का सुमुख से व्याह हो। मेरी राय है कि आप अपने पोते के लिए गुणकेशी को ग्रहण कर लीजिए। सुमुख के पिता नहीं हैं, तो भी उनके गुण देखकर और आपको और आपके पुरखा ऐरावत को माननीय समझकर हमने सुमुख को ही वर चुना है। सुमुख के गुण देखकर मातलि स्वयं आये हैं और उसके साथ अपनी कन्या का व्याह होने के लिए प्रार्थना करते हैं। आप इनके सम्मान की रक्षा कीजिए।

१०

कण्व कहते हैं कि आर्यक के पुत्र को गरुड़ खा चुके थे, पोता जीता था । इस कारण शोक और हर्ष प्रकट करते हुए आर्यक ने कहा—हे नारद जी, आपका यह प्रस्ताव ही मेरे लिए आदरणीय है, फिर देवराज के सखा मातलि से सम्बन्ध करना कौन नहीं पसन्द करेगा ? किन्तु एक कारण से मैं आपका प्रस्ताव स्वीकार न करने के लिए विवश हूँ । सुमुख के पिता—मेरे पुत्र—को गरुड़ खा गये हैं; इससे हम लोग अत्यन्त दुखी हैं । इसके सिवा गरुड़ जाते समय महीने भर के बाद सुमुख को भी खा जाने के लिए कह गये हैं । हम गरुड़ के निश्चय को जानते हैं । वे इसे भी न छोड़ेंगे । गरुड़ की धमकी ने ही मेरा सब आनन्द मिट्टी में मिला दिया है ।

कण्व कहते हैं कि तब मातलि ने आर्यक से कहा—हे नागराज, मैंने एक उपाय सोचा है । मैं आपके पोते को अपना दामाद बनाना स्वीकार करता हूँ । नारद-सहित मैं इसे लेकर इन्द्र के पास जाऊँगा । मैं उनसे प्रार्थना करके इसकी आयु बढ़ाने का और गरुड़ के वध का २० यत्न करूँगा । आपका भला हो । इसे मेरे साथ इन्द्र के पास जाने की अनुमति दीजिए ।

अब नारद, मातलि और अनेक तेजस्वी नागों के साथ सुमुख, सब लोग इन्द्रलोक को गये । सबने त्रिलोकनाथ इन्द्र के पास जाकर उनके दर्शन किये । दैवसंयोग से उस समय चतुर्भुज भगवान् विष्णु भी इन्द्र की सभा में आये हुए थे । देवर्षि नारद ने विष्णु और इन्द्र के आगे मातलि और सुमुख का हाल कहा । वैशम्पायन कहते हैं कि सब वृत्तान्त सुनकर विष्णु ने इन्द्र से कहा—हे देवराज, तुम सुमुख को अमृत पिलाकर देवताओं के समान अमर कर दो । तुम्हारी कृपा से नारद और मातलि की इच्छा पूरी हो, और सुमुख का भला हो ।

गरुड़ के पराक्रम का खयाल करके इन्द्र डरे और विष्णु से कहने लगे—भगवन्, आप ही इसे अमृत दीजिए । विष्णु ने कहा—हे इन्द्र, तुम चराचर जगत् के ईश्वर हो । तुम्हारा हाथ कौन पकड़ सकता है ? अथवा तुम्हारी इच्छा या कार्य का विरोध कौन कर सकता है ?

हे दुर्योधन, तब इन्द्र ने बिना अमृत दिये ही सुमुख को दीर्घजीवी बना दिया । इन्द्र के वरदान से सन्तुष्ट और दीर्घायु होकर सुमुख ने मातलि की कन्या से व्याह किया और फिर उसे लेकर वह अपने लोक को चला गया । कृतकार्य होने के कारण नारद और आर्यक को बड़ी ३० खुशी हुई । वे प्रसन्नतापूर्वक महातेजस्वी इन्द्र की पूजा करके गन्तव्य स्थान को चल दिये ।

एक सौ पाँच अध्याय

गरुड़ का अभिमान दूर होना ; दुर्योधन का कण्व का उपदेश न मानना

कण्व कहते हैं—महाबली गरुड़ को जब मालूम हुआ कि इन्द्र ने सुमुख नाग को पूरी आयु दे दी है, तब वे क्रोध के मारे पक्षों की प्रबल हवा से त्रिभुवन को व्याकुल करते हुए इन्द्र की ओर दौड़े । स्वर्ग में पहुँचकर उन्होंने इन्द्र से कहा—हे इन्द्र, तुमने क्यों अनादरपूर्वक मेरी

जीविका में बाधा डाली ? पहले तुमने मुझे यह वर दिया था कि मैं मनमाना काम कर सकता हूँ; अब उससे क्यों डिग गये ? सब प्राणियों के ईश्वर ब्रह्माजी ने साँपों को मेरा स्वाभाविक आहार बना दिया है। तुम उसमें क्यों विघ्न डालते हो ? मैंने हर महीने एक नाग खाने का नियम नागों से करा लिया है। उसी के अनुसार सुमुख नाग को अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए मैं ले जानेवाला था। मैं महीने में और किसी नाग को नहीं मारता; जिसकी पारी होती है उसी को ले जाता हूँ। हे इन्द्र, तुम जो चाहते हो वही कर डालते हो। अब बिना आहार के मैं, मेरे परिवार के लोग और मेरे भृत्य, सब प्राण दे देंगे। यह देखकर तुम सुखी होओ। हे इन्द्र, सच तो यह है कि जिसे दूसरे की गुलामी करनी पड़ती है वह चाहे तीनों लोकों का ईश्वर हो, फिर भी दुखी रहता है। उसका मरना ही अच्छा। हे देवराज, तुम सदा से तीनों लोकों के राजा हो। तुम्हारे आगे मैं विष्णु को भी अपना प्रभु नहीं समझता।

हे देवराज, दत्त प्रजापति की कन्या विनता मेरी माता और कश्यपजी मेरे पिता हैं। मैं सहज ही इन सब लोकों को अपने ऊपर लाद सकता हूँ। कोई प्राणी मेरे बल को नहीं सह सकता। दानवों के साथ हुए सङ्ग्राम में मैंने बड़े बड़े काम किये हैं। श्रुतश्री, श्रुतसेन, विवस्वान्, रोचनामुख, प्रसुत और कालकाक्ष नाम के दानवों को मैंने मारा है। मैं तुम्हारे अनुज उपेन्द्र (विष्णु) के रथ की ध्वजा पर रहता हूँ और उन्हें लादकर ले चलता हूँ, इसी से शायद तुम मेरा अपमान करते हो। मैं बान्धवसहित विष्णु को लादकर ले चलता हूँ। तुम्हीं बताओ, मुझसे बढ़कर भार सहनेवाला और बली कौन है ? तुमने अनादर करके मेरा आहार मेरे मुख से छीन लिया। तुम दोनों भाइयों ने मेरा गौरव मिटाया है। हे वासव, अदिति के गर्भ से जो पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए हैं उन सबमें तुम श्रेष्ठ बली हो; किन्तु मैं तुमको पङ्क के एक हिस्से पर बिठाकर जहाँ कहो वहाँ पहुँचा सकता हूँ। बताओ, मुझसे बढ़कर बली और कौन है ?

कण्व कहते हैं कि गरुड़ के अभिमान से भरे वचन सुनकर भगवान् विष्णु बहुत क्रोधित हुए। वे अचोभ्य गरुड़ के हृदय में चोभ उत्पन्न करते हुए तीव्र वचन कहने लगे—हे गरुड़, तुम अत्यन्त दुर्बल होकर भी अपने को बहुत बली समझते हो। हे पक्षिराज, हमारे सामने तुम्हें इस तरह अपनी बड़ाई न करनी चाहिए। यह सम्पूर्ण त्रिभुवन मेरे शरीर के बोझ को नहीं सँभाल सकता। मैं आप ही अपने को और तुमको सँभाले रहता हूँ। लो, तुम मेरे केवल दाहने हाथ का बोझ सँभाल लो तो मैं तुम्हारी इस आत्मश्लाघा को सही समझूँगा।

अब नारायण ने गरुड़ के कन्धे पर अपने हाथ का बोझ रख दिया। पक्षियों के राजा उससे अत्यन्त व्याकुल और बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। गरुड़ को विष्णु का वह हाथ पर्वतों सहित सारे पृथ्वीमण्डल से अधिक भारी जान पड़ा। विष्णु भगवान् ने पूर्ण बल से गरुड़ को पीड़ा नहीं पहुँचाई, इसी से वे जीते बच गये। तब विनता के पुत्र गरुड़ विष्णु

के हाथ के बोझ से पीड़ित, विह्वल, शिथिल और अचेत से होकर वमन करने लगे। उन्होंने विष्णु के पैरों पर गिरकर कहा—भगवन्, आपके दाहने हाथ के बोझ से मैं पिस



गया। लघुचेता, बलदर्पहीन मुझ पत्नी का अपराध क्षमा कीजिए। हे विभु, मैं आपके बल-विक्रम का हाल न जानता था, इसी से अपने को सबसे बढ़कर बली समझता था।

गरुड़ की की हुई स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान् नारायण ने स्नेहपूर्वक कहा—
“हे पत्तिराज, तुम फिर कभी ऐसा अभिमान न करना।” अब विष्णु ने सुमुख नाग को पैर के अँगूठे से गरुड़ की छाती पर फेंक दिया। तभी से वह नाग गरुड़ के साथ रहता है।

हे दुर्योधन, महायशस्वी महाबली विनता के पुत्र गरुड़ का घमण्ड इस प्रकार विष्णु के बल से चूर्ण हो चुका है। जब तक युद्ध में पाण्डवों का सामना नहीं होता तभी तक तुम जीवित हो। सब योद्धाओं

में श्रेष्ठ भीमसेन और इन्द्र के पुत्र अर्जुन युद्ध में किसे नहीं हरा सकते ? हे दुर्योधन ! वायु, इन्द्र, धर्म और अश्विनीकुमारों के अवतार पाण्डवों से और श्रीकृष्ण से लड़ना कैसा, तुम इनकी ओर आँख उठाकर देख तक नहीं सकते। इसलिए हे राजकुमार, विरोध मत करो। श्रीकृष्ण के कहने से सन्धि कर लो; इसी में तुम्हारे कुल की रक्षा होगी। प्रत्यक्षदर्शी महातपस्वी महर्षि नारद यहाँ मौजूद हैं। इनसे पूछ लो, ये श्रीकृष्ण वही शङ्ख-चक्र-गदाधारी विष्णु भगवान् हैं।

वैशम्पायन कहते हैं कि अब दुर्योधन ने कर्ण को मौत का इशारा करके ताल ठोककर हँसते हँसते कण्व से कहा—हे तपोधन, परमेश्वर ने मुझे पैदा करके जैसी बुद्धि दी है वैसा ही मैं कर रहा हूँ। मेरे भाग्य में जो वधा है वह होगा। आप क्यों बक-बक कर रहे हैं !

एक सौ छः अध्याय

नारदजी का समझाना

जनमेजय ने पूछा—भगवन् ! भगवान् व्यासदेव, पितामह भीष्म और मनेह-परायण सुहृदों ने अनर्थ के लिए तुझे हुए—परायं धन के लोभी, अनार्य-कार्य करने को उतारू, मरने के लिए निश्चय किये हुए, जाति-भाइयों को दुःख देनेवाले, वन्धुओं का शाक बढ़ानेवाले, सुहृदों को क्लेश पहुँचानेवाले, शत्रुओं के लिए हर्षजनक—कुमार्गगामी दुर्योधन को रोका क्यों नहीं ?

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, भगवान् व्यासदेव और महात्मा भीष्म ने दुर्योधन को बहुत-बहुत समझाया, पर उसने एक न सुनी। अब महर्षि नारद ने कहा—हे दुर्योधन, सुहृद् की बात सुननेवाले लोग जैसे दुर्लभ हैं वैसे ही हितकारी सुहृद् भी दुर्लभ होते हैं। जहाँ प्रत्युपकार की अपेक्षा न रखकर उपकार करनेवाला सुहृद् रहता है वहाँ वन्धु भी नहीं रहते; अर्थात् सुहृद् भाइयों से भी बढ़कर है। इस कारण यत्पूर्वक ध्यान देकर सुहृद् की बात सुननी चाहिए। किसी विषय में हठ करना ठीक नहीं। हठ बहुत ही भयङ्कर होता है। महर्षि गालव ने हठ के कारण जो नीचा देखा है उसका इतिहास मैं कहता हूँ।

एक समय भगवान् धर्म, तपस्वी विश्वामित्र की परीक्षा लेने के लिए, महर्षि वशिष्ठ का रूप रखकर विश्वामित्र के आश्रम में गये। मत्प्रर्षियों में से एक, वशिष्ठ, का रूप रक्खे हुए धर्म भूखे बनकर पहुँचे। विश्वामित्र ने उन्हें देखकर सावधानी से बढ़िया भोजन बनाया किन्तु वशिष्ठ ने भोजन तैयार होने तक उनकी राह नहीं देखी। इसी अवसर में वशिष्ठरूपी धर्म अन्य मुनियों का दिया हुआ अन्न खाकर तृप्त हो गये। उधर विश्वामित्र गरमागरम भोजन लेकर उनके पास पहुँचे। यह देख धर्म विश्वामित्र से यह कहकर चले गये कि ऋषिवर ! मैं भोजन कर चुका, तुम खड़े रहो। विश्वामित्र वह गरम भोजन का पात्र हाथ के सहारे सिर



१०

पर रक्खे खड़े रहे। वे उसी प्रकार, वृत्त की तरह, केवल वायु भक्षण करते खड़े रहे। उस समय विश्वामित्र के शिष्य गालव गुरु के गौरव, मान और प्रिय के लिए उनकी सेवा करते रहे।

इसी तरह सौ वर्ष बीत गये । धर्म फिर वशिष्ठ का रूप रखकर भोजन के लिए विश्वामित्र के यहाँ आये । उन्होंने देखा कि बुद्धिमान विश्वामित्र वैसे ही गरम भोजन का वर्तन सिर पर रखे उसी जगह खड़े हैं । तब उन्होंने वह गरम भोजन कर लिया । फिर 'हे ब्रह्मर्षि ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ' कहकर, मुँहमाँगा आशीर्वाद देकर, वशिष्ठरूपी धर्म वहाँ से चल दिये । तब से, धर्म के कहने के अनुसार, विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये ।

अब प्रिय शिष्य गालव की भक्ति और सेवा से सन्तुष्ट होकर विश्वामित्र ने कहा—
 २० पुत्र, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम चाहे जहाँ जाओ । तब गालव ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ, आपको गुरु-दक्षिणा देने के लिए मेरी बड़ी इच्छा है । इसलिए आज्ञा दीजिए, मैं क्या पदार्थ आपके अर्पण करूँ । दक्षिणा देने से ही कार्य की सिद्धि होती है और दक्षिणा देनेवाला ऋण से छुटकारा पाकर अन्त को स्वर्गलोक में यज्ञ का फल और शान्ति पाता है । इसलिए आज्ञा दीजिए, मैं आपको गुरु-दक्षिणा क्या दूँ ।

गालव ने जो सेवा और भक्ति की थी उसी से विश्वामित्र सन्तुष्ट हो चुके थे, इसलिए वे बारम्बार कहने लगे—पुत्र, दक्षिणा की ज़रूरत नहीं, तुम जाओ । किन्तु गालव ने उनका कहा न माना और बारम्बार 'क्या दक्षिणा दूँ ?' कहकर हठ करने लगे । इससे कुछ कुपित होकर विश्वामित्र ने कहा—हे गालव, दक्षिणा देने के लिए जो तुम्हारी ज़िद है तो शीघ्र मुझे
 २७ चन्द्रमा के से उजले रङ्ग के आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े लाकर दो ।

एक सौ सात अध्याय

गालव का गरुड़ से सहायता लेना

नारदजी कहते हैं—हे दुर्योधन, विश्वामित्र की यह आज्ञा सुनकर तपोधन गालव चिन्तित हुए । उन्होंने खाने-पीना और सोना छोड़ दिया । उनके शरीर में केवल हड्डियाँ और चमड़ा रह गया । शोक से उनका हृदय जल रहा था । वे आँखों में आँसू भरकर सोचने लगे कि हाय, मेरे न मित्र हैं, न धन है । मैं श्यामकर्ण आठ सौ सफेद घोड़े कहाँ पाऊँगा ? मुझे किसी सुख की, खाने-पीने की भी रुचि नहीं है । मुझे अब अपने जीवन की आशा नहीं । अब मैं समुद्र के पार या पृथ्वी के किसी दूर देश में जाकर अपनी जान दे दूँगा । मैं धनहीन, अकृतार्थ और जीवन के विविध फलों के भोग से वञ्चित हूँ । उसके ऊपर गुरु का ऋण भी मेरे सिर पर चढ़ा हुआ है । जो ऋणी है उसे सुख कहाँ ? मेरा जीवन व्यर्थ है । जो पुरुष उपकार करनेवाले स्नेही का प्रत्युपकार नहीं कर सकता उसके जीने से तो मरना ही अच्छा है । जो पुरुष अङ्गीकार के पालन से विमुख होता है उसके सब पुण्य-कर्म और इष्टापूर्त (कुआ-बावली खुद-

वाना और बाग लगवाना आदि) निष्फल हो जाते हैं । भूठ बोलनेवाले को रूप, सन्तान, आधिपत्य या सद्गति, कुछ नहीं मिलता । कृतघ्न को कहीं स्थान, यश या सुख नहीं मिलता । एहसान न माननेवाले पुरुष पर किसी को श्रद्धा नहीं होती । वह किसी तरह छुटकारा नहीं पाता । निर्धन व्यक्ति का जीवन अत्यन्त निष्फल है । वह पापी, जो उपकार करनेवाले का बदला नहीं चुका सकता, शीघ्र नष्ट हो जाता है । मैं वैसा ही पापी, कृतघ्न, दीन, ऋणी और भूठा हूँ । मैंने गुरु से विद्या पढ़ी है; उन्हें गुरु-दक्षिणा देना अङ्गीकार करके मैं दे नहीं सका । इसलिए फाँसी लगाकर या विष पीकर मर जाना ही मेरे लिए सब तरह अच्छा है । मैंने कभी देवताओं से भी कुछ माँगा नहीं; वे यज्ञ के समय मेरा बहुत मान करते हैं । इसलिए अब त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णु के पास चलों । वे सब प्राणियों की एकमात्र गति और सबको भोगवस्तु देते हैं । इस समय मेरा उन्हीं के पास जाना ठीक है ।

तपोधन गालव इस तरह कही रहे थे कि उनके मित्र गरुड़, उनका प्रिय और सहायता करने के लिए, वहाँ आ गये । गरुड़ ने गालव से कहा—हे मित्र, तुम मेरे और अन्य सुहृदों के परम प्रिय मित्र हो । तुम्हारा काम कर देना और तुम्हें वैभवशाली बनाना मेरा कर्तव्य है । मेरा सारा ऐश्वर्य भगवान् विष्णु हैं । मैंने पहले ही तुम्हारे लिए उनसे कहा था और उन्होंने मेरा अभीष्ट पूरा करना स्वीकार कर लिया है । इसलिए अब तुम घोड़ों के लिए पृथ्वी के उस पार या और जहाँ चलना चाहो वहाँ तुमको ले चलने के लिए मैं तैयार हूँ ।

१८

एक सौ आठ अध्याय

पूर्व दिशा का वर्णन

गरुड़ ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ गालव, तुम्हें अपनी पीठ पर ले जाने के लिए मुझे ज्ञानदाता विष्णु भगवान् ने आज्ञा दे दी है । इसलिए अब बताओ, पूर्व-दक्षिण-पश्चिम या उत्तर किस दिशा में तुमको ले चलूँ ? जिस दिशा में सब भुवनों के प्रकाशक भगवान् सूर्य का उदय होता है, जिधर सन्ध्या के समय तपस्वी साध्यगण तपस्या करते हैं, जिधर सबसे पहले सर्वव्यापिनी बुद्धि प्रकट हुई थी, जिधर यज्ञ के आज्यभागरूपी धर्म के नेत्र विद्यमान हैं और जिधर आहुति देने से वह सबको पहुँचती है, वह पूर्व दिशा दिन और स्वर्ग का द्वार है । उस दिशा में अदिति आदि दत्त प्रजापति की कन्याओं के गर्भ से और कश्यप के वीर्य से सब प्रजा उत्पन्न हुई और बढ़ी है; वह पूर्व दिशा देवताओं के ऐश्वर्य-लाभ की जड़ है । पूर्व दिशा में ही इन्द्र का अभिषेक हुआ है । देवताओं ने इसी दिशा में तप किया है । देवता पहले पूर्व दिशा में ही रहते थे । हे ब्रह्मन्, इसी से उसका नाम पूर्व दिशा है । प्राचीन लोगों का उस पर अधिकार कहा गया है ।

पूर्व दिशा में ही देवताओं ने सुख की इच्छा से सब काम किये हैं। उधर ही भूतभावन भगवान् पितामह ब्रह्मा ने सम्पूर्ण वेद गायें हैं। उधर ही सविता ने ब्रह्मवादी लोगों को सावित्री का उपदेश किया था। हे द्विजश्रेष्ठ, पूर्व में ही सूर्यदेव ने यांगी याज्ञवल्क्य को यजुर्वेद दिया था। उसी दिशा में सोमरस को वर मिला है और देवताओं ने उसे अपने पीने की चीज़ माना है। पूर्व दिशा में ही अग्निदेव तृप्त होकर अपनी उत्पत्ति के स्थान—सोमरस, आज्य, पय आदि रूपवाले—जल को पीते हैं। पूर्व से ही वरुणदेव ने पाताल में प्रवेश किया और श्रेष्ठ ऐश्वर्य पाया है। पूर्व दिशा में ही मित्रावरुण के यज्ञ में प्राचीन वशिष्ठ ऋषि की उत्पत्ति, स्थिति और राजा निमि के शाप से मृत्यु हुई है। पूर्व ओर ही ओंकार के दस हजार मार्ग प्रकट हुए हैं। पूर्व में ही भूम-पान करनेवाले मुनि आज्यभूम पीते हैं। पूर्व में ही इन्द्र ने यज्ञभाग के लिए वराह आदि बहुत से पशुओं को मारकर उनसे देवताओं के भागों की कल्पना की है। पूर्व दिशा में ही अग्नि-देव प्रज्वलित और क्रोधित होकर अनिष्टकारी कृतघ्न मनुष्यों और अमुरों का संहार करने हैं। पूर्व दिशा त्रिलोक का द्वार और स्वर्ग का मुख है। जो कहे तो मैं तुम्हें इस पूर्व दिशा में ले चूँ। मैं जिनका आज्ञाकारी दाम हूँ उन विष्णु का प्रिय करना मेरा कर्तव्य है। हे गालव, मैं और दिशाओं का हाल भी तुमसे कहता हूँ। जिधर कहाँगे उधर ले चूँगा।

एक सो नव अध्याय

दक्षिण दिशा का वर्णन

गरुड़ ने कहा—हे गालव, पहले सूर्य ने यथाविधि यज्ञ करके दक्षिणा के रूप में आचार्य का यह दिशा दी थी, इसी से यह दक्षिण दिशा कहलाती है। मैंने सुना है कि तीनों लोकों के पितर नाम से प्रसिद्ध और गर्म अन्न खानेवाले देवता इसी दिशा में रहते हैं। यहाँ विश्वेदेवा पितरों के साथ रहते हैं और उनके साथ श्राद्ध में भाग पाते हैं। यह दिशा धर्म का दूसरा द्वार कही गई है। इसी दिशा से काल के सूक्ष्म अंशों—बुढ़ि, लव आदि—का निर्णय होता है। इसी दिशा में देवर्षि, पितृगण और राजर्षि परमसुख के साथ रहते हैं। इसी दिशा में मत्स्य, धर्म, कर्म आदि की स्थिति है। हे गालव, आत्मा को वश में करनेवाले लोगों की एकमात्र गति और कर्मक्षेत्र यही दिशा है। सभी लोगों को इधर जाना पड़ता है; किन्तु अज्ञान से ढकी रहने के कारण इस दिशा में लोग सुख से नहीं जा सकते। इसी दिशा में भयङ्कर रूपवाले कई हजार राक्षस रहते हैं, जो पापियों को और अजितेन्द्रिय पुरुषों को पीड़ा पहुँचाते हैं। उनकी मृष्टि इसी लिए हुई है। इसी दिशा में गन्धर्व लोग मन्दराचल के कुञ्जों, ऋषियों के आश्रमों और ब्राह्मणों के घरों में मनोहर गाथाएँ गाते हैं। इसी दिशा में रैवत मनु, सामगाथा सुनकर, स्त्री-मन्त्री-राज्य

आदि छोड़कर, वन को गये हैं। इसी दिशा में सावर्णि मनु ने और यवकीत के पुत्र ने सूर्य के १० रथ की सीमा बाँध दी है। सूर्य कभी उसे नहीं लाँघते। इसी दिशा में पौलस्त्य रावण ने तप करके देवताओं के हाथ से अवध्य होने का वर पाया है। इसी दिशा में वृत्रासुर अपने चरित्र के दोष से इन्द्र का वैरी हुआ और मारा गया। इसी दिशा में सबके प्राण आकर फिर पाँच रूप से शरीर में प्रवेश करते हैं। इसी दिशा में दुराचारी मनुष्य आकर अपने कुकर्मों के फल भोगते हैं। इसी दिशा में नरक-भोग के योग्य जीवों से भरी हुई वैतरणी नदी है। इसी दिशा में जाने से सुख और दुःख का अन्त हो जाता है। इसी दिशा में कर्कराशि-स्थित दक्षिणायन के सूर्य वर्षा करते हैं। फिर सूर्य, जब उत्तरायण में जाते हैं तब, हिम उत्पन्न करके शीतकाल प्रकट करते हैं। पहले बहुत ही भूखे और चिन्तित होकर मैंने इसी दिशा में परस्पर लड़ रहे भारी कछुए और गजराज को पाया था। इसी दिशा में उनको खाकर मैं तृप्त हुआ था। मगरवंश का विनाश करनेवाले कपिल, चक्रधनु नाम के ऋषि इसी दिशा में सूर्य से उत्पन्न हुए हैं। इसी दिशा में वेद के पूरे ज्ञाता गिव नाम के ब्राह्मणों ने सब वेद पढ़कर, मिद्ध होकर, अविनाशी मोक्ष की गति पाई है। इसी दिशा में वासुकि, तक्षक, एरावत आदि नागों की भोगवती पुरी है। इस दिशा में मरण के समय भी घोर तम (मोह) प्राप्त होता है। स्वयं अग्नि या सूर्य भी उस तम को नहीं मिटा सकते। हे गालव, तुम्हारी इच्छा हो तो इस दिशा में चलो। अब मैं पश्चिम दिशा का वर्णन करता हूँ।

२०

एक सौ दस अध्याय

पश्चिम दिशा का वर्णन

गरुड़ कहते हैं—हे गालव, पश्चिम दिशा जलराज दिक्पाल वरुणदेव का प्रियतम और आदिम निवासस्थान है। सूर्य इस दिशा में दिन के अन्तिम भाग में अपनी किरणें डालते हैं। इसी कारण इसे पश्चिम कहते हैं। इस दिशा में जल की रक्षा के लिए भगवान् कश्यप ने वरुण-देव को जलचरों का राजा बनाया है। इस दिशा में अंधरे को मेटनेवाले चन्द्रमा, शुक्लपक्ष के पहले के दिनों में, वरुण के छः रत्न पीकर फिर तरुण हो जाते हैं। इसी दिशा में वायु ने दैत्यों को अपने वेग से पीछे करके, पीड़ित करके, सुला दिया था; वे देख लम्बी साँसें छोड़ते हुए लोट गये थे। इसी दिशा में अस्ताचल अपने प्रणयी सूर्य को ग्रहण करता है और उसी से पश्चिम सन्ध्या (सायंकाल) प्रकट होती है। दिन समाप्त होने पर इसी दिशा से रात और नींद प्रकट होती है, जो मनुष्यों की आधी आयु हर लेती है। इसी दिशा में इन्द्र ने दिति को उस गर्भ के कई टुकड़े किये थे, जिससे मरुद्गण उत्पन्न हुए हैं। इसी दिशा में हिमवान् पहाड़ की जड़ समुद्र

- के जल में डूब गई है। हजार वर्ष तक खोज करने पर भी न हिमवान् का अन्त मिल सकता है, न सागर की ग्राह पाई जा सकती है। इसी दिशा में सुवर्णशैल के पास, सुवर्णकमलयुक्त सरो-
 १० वर के किनारे, सुरभि गाय अपना दूध गिराती है। इसी दिशा में समुद्र के बीच सूर्यसदृश तेजस्वी राहु का कबन्ध देख पड़ता है। वह राहु हर पर्व के समय सूर्य और चन्द्रमा को लीलने के लिए चलता है। इसी दिशा में अमितपराक्रमी, अदृश्य, नित्यतरुण, सुवर्णशिरा ऋषि की वेदध्वनि सुन पड़ती है। इसी दिशा में हरिमेधा नाम के मुनि की कन्या ध्वजवती, सूर्य की आज्ञा से, आकाश में ही स्थित है। इसी दिशा में वायु, अग्नि, जल और आकाश ने दिन और रात के दुःखदायक स्पर्श को छोड़ रक्खा है अर्थात् इन तत्त्वों का स्पर्श सदा सुखदायक रहता है। इसी दिशा से सूर्य की गति तिरछी घूमती है। इसी दिशा में सब ज्योतिर्गण सूर्य-मण्डल में प्रवेश करते हैं। फिर अट्ठाईस दिन तक सूर्य के साथ घूमकर वे, सोमसंयोग के योग से, सूर्य से निकलते हैं। इसी दिशा से वे नदियाँ निकली हैं जो सदा सागर को परिपूर्ण रखती हैं। इसी दिशा में तीनों लोकों के निर्वाह योग्य जल समुद्र में भरा रहता है। इसी दिशा में नागराज शेष और विष्णु का निवासस्थान है। इसी दिशा में अग्नि, वायु और मरीचि के पुत्र महर्षि कश्यप रहते हैं। हे गालव, मैंने संक्षेप में यह पश्चिम दिशा का वर्णन कर
 २० दिया। अब बताओ, किधर जाना चाहते हो ?

एक सौ ग्यारह अध्याय

उत्तर दिशा का वर्णन

गरुड़ ने कहा—ऋषिश्रेष्ठ, अब उत्तर दिशा का हाल सुनो। यह दिशा लोगों को पाप के पार उतारकर मोक्ष-सुख देती है, अर्थात् उत्तरायण सूर्य में मरकर उत्तर-मार्ग से जाने से मुक्ति मिलती है, इसी से इसको उत्तर दिशा कहते हैं। इसी दिशा में सुवर्ण की खानें हैं। इसका मार्ग पूर्व और पश्चिम के मध्य का है। इस श्रेष्ठ उत्तर दिशा में कोई उग्ररूप, अजितेन्द्रिय और धर्महीन पुरुष नहीं रहता। नारायण कृष्ण, नरोत्तम जिष्णु और सनातन देव ब्रह्मा इसी दिशा के बदरि-काश्रम में विराजमान हैं। इसी दिशा में प्रलयकाल के अग्नि के समान तेजस्वी महेश्वर, पार्वती के साथ, हिमालय के पिछले हिस्से में सदा रहते हैं। नर और नारायण के सिवा इन्द्र आदि देवता, मुनि, यक्ष, सिद्ध आदि भी उनके दर्शन नहीं पाते। इसी दिशा में अकेले सनातन विष्णु सहस्र-नयन, सहस्रचरण और सहस्रमस्तक होकर इस मायाचित जगत् को देखते हैं। इसी दिशा में अमृत-किरण सोम ब्राह्मणों के राजा बनाये गये हैं। इसी दिशा में भगवान् शूलपाणि शङ्कर ने आकाश से गिरी हुई गङ्गा के वेग को सिर पर रंका और पतितपावनी भागीरथी को

पृथ्वीमण्डल पर पहुँचाया है। इसी दिशा में भगवती पार्वती ने सदाशिव को पाने के लिए तप किया है। इसी दिशा में काम, क्रोध, शैल और पार्वती का उद्भव हुआ है। इसी दिशा में कैलास पहाड़ पर दिक्पाल कुबेर राक्षसों, यक्षों और गन्धर्वों के राजा बनाये गये हैं। इधर ही चैत्रग्रथ बाग, वैखानस ऋषियों का आश्रम, मन्दाकिनी और कल्पवृक्ष हैं। इसी दिशा में राक्षस-गण सौगन्धिक वन की रक्षा करते हैं। इसी दिशा में हरी घास के मैदान, कले के पेड़ और कल्पवृक्ष हैं। इसी दिशा में वशिष्ठ आदि सप्तऋषि और अरुन्धती देवी हैं। इसी दिशा में संयमी और कामचारी सिद्धों के काम-भोगपूर्ण विमान हैं। इसी दिशा में स्वाती नक्षत्र प्रकाशमान है। इसी दिशा में भगवान् पितामह ब्रह्मा यज्ञ करते हुए स्थित हैं। इसी दिशा में चन्द्र, सूर्य और सब ज्योतिर्मण्डल भ्रमण करता है। इसी दिशा में महानुभव, सत्यपरायण महर्षिगण मावधानी से गङ्गा के द्वार की रक्षा करते हैं। उन महर्षियों की मूर्ति, आकार, तप, जाना-अना आदि नहीं जाना जाता। वे चार हजार युग तक रहकर काम-भोग करते हैं। इधर हिमालय से आगे बढ़ने पर मनुष्य का विनाश हो जाता है। अव्यय जिष्णु नर भगवान् या नारायण के सिवा और कोई आज तक इस दिशा के अन्त तक नहीं जा सका। इसी दिशा में यक्षपति कुबेर के रहने का स्थान कैलास है। इसी दिशा में विद्युत्प्रभा नाम की दस अप्सराएँ उत्पन्न हुई हैं। इसी दिशा में भगवान् विष्णु ने, त्रिभुवन में भ्रमण करते समय, आकाशमण्डल में अपना पैर फैलाया है; इसी से आकाश को विष्णुपद कहते हैं। इसी दिशा में राजा मरुत्त ने महायज्ञ किया था। इधर ही उशीरवीज नाम के स्थान में जाम्बूनद सरोवर है। इसी दिशा में महात्मा जीमूत ने परम पवित्र हिमालय की सोने की खान का आविष्कार किया है। उन्होंने ब्राह्मणों से वर माँगा था कि यहाँ का सब सुवर्ण मेरे नाम से प्रसिद्ध हो। इसी दिशा में सबरे और सन्ध्या के समय सब लोकपाल अपने-अपने कार्य का निश्चय करते हैं।

हे ब्रह्मन्, यह दिशा ऐसे ही अनेक गुणों के कारण उत्तर—बहुत बढ़िया—मानी गई है। मैंने तुमसे चारों दिशाओं का हाल कह दिया। अब बताओ, किधर चलना चाहते हो? मैं तुम्हें, सब दिशाओं सहित, सारा भूमण्डल दिखाने को तैयार हूँ। कहे, किधर जाना चाहते हो; मेरी पीठ पर सवार हो जाओ।

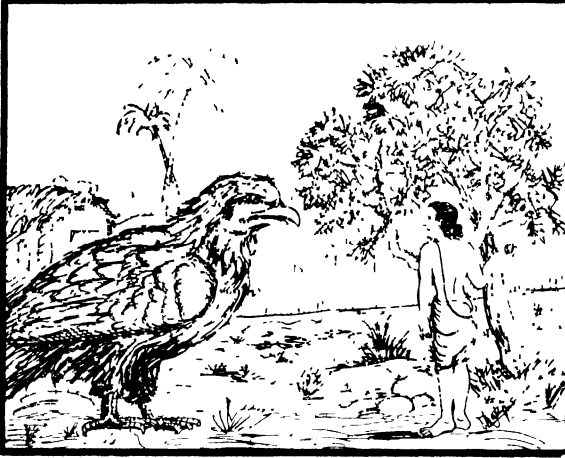
२८

एक सौ बारह अध्याय

गालव का पूर्व दिशा को जाना

गालवने कहा—हे पत्तिराज! तुम पहले जिस पूर्व दिशा का वर्णन कर चुके हो, जहाँ धर्म के दोनों नेत्र विद्यमान हैं, जिधर सब देवता रहते हैं और जिधर सत्य और धर्म का निरन्तर निवास है, उसी दिशा में मुझे ले चलो। वहाँ देवताओं से मिलने और उन्हें देखने की मुझे इच्छा है।

तब गरुड़ ने उनसे अपनी पीठ पर चढ़ने के लिए कहा। गालव ने गरुड़ की इच्छा से उनकी पीठ पर बैठकर कहा—हैं पत्तिराज, चलते समय तुम मध्याह्नकाल के सूर्य के समान



जान पड़ते हो; तुम्हारे पंखों के पवन से टूटे हुए वृक्ष मानों तुम्हारे पीछे चले आ रहे हैं। तुम अपने पंखों की हवा से मानों पहाड़, समुद्र और वन सहित पृथ्वीमण्डल को खींचे लिये जा रहे हो। तुम्हारे पंखों की हवा के वेग से मछलियाँ और सोंपों सहित समुद्र का जल मानों आकाशमार्ग में उठा जा रहा है। तिमि, तिमिझिल, उनके समान रूप-

वाले अन्य जलचर और नाग, घोड़े तथा मनुष्य के मुखवाले अनेकों जलचर जीव व्याकुल और उन्मथित से देख पड़ते हैं। हे पत्तिराज, महा-समुद्र के गम्भीर नाद से मेरे कान मानों बहरें हुए जा रहे हैं। मुझे चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा देख पड़ता है। मुझसे मानों देखने और सुनने की शक्ति नहीं रही। मुझे तुम्हारा और अपना शरीर भी नहीं देख पड़ता। केवल समुज्ज्वल मणि के समान चमकीली तुम्हारी आँखें देख पड़ती हैं। पग-पग पर तुम्हारे शरीर से आग की चिनगारियाँ सी निकल रही हैं। इन चिनगारियों को बुझाओ और आँखों की कराल ज्योति को शान्त करो। मैं नहीं जाना चाहता। तुम ठहरकर मुझे उतार दो। मैं तुम्हारे वेग को संभाल नहीं सकता।

हे गरुड़, मैंने गुरु को दक्षिण में सफ़ेद रङ्ग के श्यामकर्ण आठ सौ घोड़े देने की प्रतिज्ञा की है; किन्तु घोड़े मिलने का कोई उपाय मुझे नहीं देख पड़ता। इसलिए मैंने अपनी जान गँवाने का निश्चय कर लिया है। मेरे पास न तो धन है, न मेरा कोई धनी मित्र है। और, धन होना पर भी मैं उससे ऐसे-ऐसे दिव्य घोड़े प्राप्त कर सकूँगा, इसी की क्या आशा ?

गालव के विलाप को सुनकर पत्तिराज गरुड़ चलते-चलते हँसते हुए कहने लगे—ब्रह्मन्, तुम अत्यन्त अनभिज्ञ पुरुष की तरह मरने का इरादा कर रहे हो। काल को कोई अपनी इच्छा के अनुसार नहीं बुला सकता। काल स्वयं ईश्वर है। तुमने पहले क्यों नहीं श्यामकर्ण घोड़ों के लिए मुझसे कहा ? वैसे श्रेष्ठ घोड़े मिलने का स्थान और उपाय मुझे मालूम है। चलो, समुद्र के समीप इस ऋषभ पर्वत पर विश्राम और भोजन करें। फिर लौटकर घोड़े मिलने की जगह चलेंगे।



एक सौ तेरह अध्याय

शाण्डिली ब्राह्मणी से भेंट

नारदजी कहते हैं—इसके बाद गालव के साथ गरुड़ ऋषभ पहाड़ की चोटी पर उतरे । वहाँ उन्हें तपस्या में लगी हुई शाण्डिली नाम की ब्राह्मणी देख पड़ी । गरुड़ और गालव ने उस ब्राह्मणी से यथोचित सम्भाषण कर उसका पूजन किया । ब्राह्मणी ने स्वागत और कुशल-प्रश्न करके उन्हें बैठने के लिए आसन दिया । जब दोनों जने बैठ गये तब ब्राह्मणी ने उन्हें भोजन के लिए बलि-मन्त्र से पवित्र अन्न दिया । उस अन्न से तृप्त और अचेत से होकर गालव और गरुड़ दोनों सो रहे । जागकर चलते समय गरुड़ ने देखा कि उनके पङ्ख भड़ गये हैं और वे मुख-चरण-युक्त मांस के लोदे के समान हो गये हैं । गरुड़ की यह दशा देखकर महर्षि गालव बहुत विस्मय हुए । उन्होंने पूछा—हे पत्तिराज गरुड़, यहाँ आने से तुम्हारी यह कैसी दशा हो गई ? हम यहाँ, इसी दशा में, कब तक रहेंगे ? तुमने कोई अशुभ अधर्म सोचा होगा, और वह तुम्हारा पाप थोड़ा नहीं होगा, जिसका यह फल तुम्हें मिला है ।



गरुड़ ने कहा—हे विप्र, मैंने सिद्धावस्था को पहुँची हुई इन ब्राह्मणी को यहाँ से प्रजापति के पास ले जाने की इच्छा की थी । मैंने सोचा था कि ये भगवान् शङ्कर, सनातन विष्णु, धर्म और यज्ञ के पास रहें । अब इन देवी को प्रणाम और प्रार्थना से सन्तुष्ट करना मेरा कर्तव्य है । फिर गरुड़ ने ब्राह्मणी से कहा—देवी, मैंने मोहवश आपकी इच्छा के विरुद्ध काम करना चाहा था, यह मेरा बड़ा भारी अपराध है । आप अपने माहात्म्य का विचार करके मुझे क्षमा कर दें । ११

गरुड़ के अनुनय-विनय के वचनों से सन्तुष्ट होकर शाण्डिली ने कहा—हे गरुड़, तुम डरो नहीं । तुम्हें पहले से भी अच्छे पङ्ख मिलेंगे । हे वत्स, मैं निन्दा नहीं सह सकती । तुमने मेरी निन्दा की थी, उसी का यह फल तुम्हें भोगना पड़ा । जो पापी मेरी निन्दा करता है वह

पुण्यलोक से भ्रष्ट हो जाता है। मैंने सब अशुभ लक्षणों को छोड़कर और सदाचार में लगी रहकर यह उत्तम सिद्धि पाई है। सदाचार से धर्म, धन और ऐश्वर्य मिलता है और सब प्रकार



के अशुभ नष्ट होते हैं। अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार जाओ। स्त्रियाँ जो निन्दा के योग्य हों तो भी उनकी निन्दा न करनी चाहिए। तुम्हें फिर पहले का बल-वीर्य मिल जायगा। शाण्डिली के यों कहते ही गरुड़ का रूप और बल पहले का सा हो गया। अब वे शाण्डिली से बिदा होकर फिर श्यामकर्ण घाटों की खोज में घूमने लगे किन्तु उन्हें कहीं सफलता नहीं प्राप्त हुई।

इसी बीच में, राह में, गालव और गरुड़ को महर्षि विश्वामित्र मिल गये। वे गरुड़ के सामने ही गालव से कहने लगे—हे शिष्य, तुमने अपने आप मुझे जो गुरु-दक्षिणा देने का वादा किया था उसके देने का समय आ गया। वादे से अब तक जितना

समय बांता है उतना ही अबसर मैं तुमको और देता हूँ। तुम उतने घोड़े लाने का यत्न करो।

पत्तिराज ने बहुत ही दीन और दुःखित होकर कहा—हं ब्राह्मण, विश्वामित्र ने जो कहा सो मैंने भी सुना। अब वह यत्न सोचना चाहिए जिसमें जल्दी से घोड़े मिल जायँ। गुरु

को देने के लिए स्वीकृत पदार्थ दिये बिना निश्चिन्त रहना ठीक नहीं।

एक सौ चौदह अध्याय

गरुड़ और गालव का ययाति राजा के पास जाकर धन माँगना

गरुड़ ने कहा—हे तपोधन, भूगर्भ के कण अग्नि से शुद्ध और वायु से परिवर्द्धित होते हैं। वे ही सुवर्ण हैं। हितकारी और रमणीय होने के कारण वह हिरण्य कहलाता है। इस जगत् में हिरण्य ही प्रधान है, इसी से जगत् को हिरण्यमय कहते हैं। उस हिरण्य से सबका निर्वाह होता है, इसी से उसका नाम धन है। वह धन त्रिभुवन में, पूर्वाभाद्रपद और उत्तरा-

भाद्रपद नक्षत्रों में शुक्रवार का योग होने पर मिल सकता है। सुवर्ण अग्नि में और कुबेर के पास है। हिरण्यरेता अग्नि अपने सङ्कल्प से सिद्ध धन मनुष्यों को देते हैं। अजैकपान्, अहिर्बुध्न्य और कुबेर उस धन की रक्षा करते हैं। इसलिए हे द्विजश्रेष्ठ, धन प्राप्त करना किसी के लिए सहज नहीं है। धन के बिना तुम्हें श्यामकर्ण घोड़े मिलने की भी सम्भावना नहीं। प्रजा को सताये बिना जो राजा हमें धन दे सकता हो उसी के पास चलकर धन मागना चाहिए। चन्द्रवंशी नहुष राजा के पुत्र ययाति मेरे सखा हैं। राजा ययाति पृथ्वी पर धनपति कुबेर के समान ऐश्वर्यशाली हैं। चलो, हम उनके पाम चले। मैं स्वयं उनसे तुम्हारे लिए धन माँगूँगा। वे अवश्य हमारी आशा पूरी कर सकेंगे। उनसे धन पाकर तुम गुरु-दक्षिणा दे देना।

यों सलाह करके गरुड़ और गालव राजा ययाति के पाम गये। महात्मा ययाति ने पाश, अर्घ्य आदि से यथोचित सत्कार करके उनसे आने का कारण पूछा। गरुड़ ने कहा—राजन्, ये १० तपस्वी गालव मेरे प्रिय सखा हैं। इन्होंने हजारों वर्ष तक महर्षि विश्वामित्र से विद्या पढ़ी है। उन्होंने जब इनसे घर जाने के लिए कहा तब इन्होंने उन्हें गुरु-दक्षिणा देने का आग्रह किया। विश्वामित्र ने कई बार कहा कि गुरु-दक्षिणा की कोई ज़रूरत नहीं, तुम जाओ; किन्तु इन्होंने न माना। इनके बहुत हठ करने पर विश्वामित्र कुपित हो उठे। उन्होंने ऐश्वर्यहीन निर्धन जानकर भी इनसे गुरु-दक्षिणा में सफेद रङ्ग के, काले कानवाले, आठ सौ घोड़े माँगे। उनकी आज्ञा का पालन करने में असमर्थ होकर ये दुःख के मारे मेरी शरण में आये हैं। अब ये आपसे भिक्षा लेकर गुरु-दक्षिणा देने की आशा से यहाँ आये हैं। हे राजर्षि, आप इनको अभीष्ट भिक्षा देंगे तो ये भी अपने तप का कुछ अंश देकर आपके तप को बढ़ावेंगे। घोड़े के शरीर में जितने राँवे होते हैं उतने ही पुण्यलोक घोड़ा दान करनेवाले को मिलते हैं। ये ब्राह्मण लंने के योग्य पात्र हैं और आप भी देने के योग्य पात्र हैं। इसलिए इन्हें अभीष्ट धन देकर आप अपने योग्य कार्य कीजिए। २०

एक सौ पन्द्रह अध्याय

ययाति का गालव को अपनी माधवी नाम की कन्या देना

नारदजी ने कहा—राजन्, हजार यज्ञ करनेवाले सर्वकाशीश महाराज ययाति ने गरुड़ के युक्तियुक्त वचन सुनकर सोचा कि प्रिय सखा गरुड़ और ब्राह्मणश्रेष्ठ गालव आकर मुझसे याचना कर रहे हैं, यह बड़े सौभाग्य की बात है। भिक्षा देना यों भी बड़ी बात है। ये लोग सूर्य-वंशी राजाओं को छड़ाकर मेरे पास आये हैं। अब ययाति ने गरुड़ से कहा—हे पतिराज, आपके द्वारा इस समय मेरा जन्म सफल और देश तथा कुल पवित्र हो गया। हे निष्पाप,

१० इस समय यद्यपि मेरे पास पहले की सी सम्पत्ति नहीं रही है तो भी मैं आपकी आशा को व्यर्थ नहीं कर सकता। मैं आपको ऐसी कोई वस्तु दूँगा, जिससे आपकी इच्छा पूरी होगी। भिन्ना भाँगनेवाला भिन्ना भाग करके ज़िमके यहाँ से विमुख चला जाता है उसका सारा कुल भस्म हो जाता है। प्रार्थी को निराश करने से बढ़कर कोई पातक नहीं है। प्रार्थी हताश होकर लौट जाता है तो निराश करनेवाले के पुत्र-पौत्र आदि मर जाते हैं। इसलिए आप धर्म में रुचि रखनेवाली मेरी इस कन्या को ग्रहण करें। देव, दानव, मनुष्य आदि इसके रूप पर सुग्ध होकर इसे पाने की प्रार्थना करते हैं। इस देवकन्या जैसी कन्या का नाम माधवी है। इससे चार वंश चलेंगे। जाँ राजा लोग इसे पावें तो श्यामकर्ण आठ सौ घोड़ों की कौन कहे, अपना सारा राज्य तक देने को तैयार हो जायँ। इसलिए आप इस कन्या को ले जायँ। इसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र मेरा नाती होगा। इसके सिवा मुझे दूसरी इच्छा नहीं है।

तब तपस्वी गालव माधवी को लेकर और गरुड़ से 'मैं फिर तुमसे मिलूँगा' कहकर वहाँ से चल दिये। गरुड़ भी गालव को छोड़ पाने का उपाय करके अपने भवन को चले गये। उनके चले जाने पर गालव उस कन्या को लेकर सोचने लगे कि यह कन्या किसे दूँ जिससे मेरा मनोरथ सिद्ध हो। अन्त को उन्होंने निश्चय किया कि अयोध्या के राजा, इक्ष्वाकुवंशी हर्यश्च बड़े बली, धर्मात्मा, पराक्रमी, चतुरङ्गिणी सेना रखनेवाले, ऐश्वर्यशाली, प्रजावत्सल, पुरवासियों और ब्राह्मणों का प्रिय हैं। पुत्र पाने के लिए वे श्रेष्ठ तप भी कर रहे हैं। उनके यहाँ जाने से मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा। यह निश्चय करके तपस्वी गालव राजा हर्यश्च के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने राजा से कहा—हूँ राजेन्द्र, मेरी यह कन्या आपका वंश बढ़ावेगी। आप शुल्क (मूल्य) देकर इसको स्त्री-रूप से ग्रहण कीजिए। इसे ग्रहण करने से जो शुल्क देना पड़ेगा वह मैं कहता हूँ—सुनिए।

एक सौ सोलह अध्याय

गालव का हर्यश्च राजा से दो सौ घोड़े पाना

नारदजी कहते हैं कि कोई सन्तान न होने के कारण राजा हर्यश्च को बड़ी चिन्ता थी। वे कुछ देर सोचकर, लम्बी साँस लेकर, गालव से कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ! देवता, गन्धर्व आदि भी इस परम सुन्दरी कन्या को अपनी भार्या बनाने के लिए लालायित होंगे। इस लोक-सुन्दरी रमणी के हाथों और पैरों की पीठ, स्तन, नितम्ब, कपोल और नेत्र ऊँचे हैं। कमर, केश, दाँत, हाथों और पैरों की उँगलियाँ पतली हैं। स्वर, नाभि और स्वभाव गम्भीर है। हथेली, नेत्रों के कोण, तालु, जीभ और आँठ लाल हैं। इन सब सुलक्षणों से सूचित होता है

कि इसके गर्भ से उत्पन्न बालक चक्रवर्ती राजा होगा। इसलिए आप मेरी सम्पत्ति का खयाल करके इसका शुल्क बताइए।

गालव ने कहा—महाराज ! चन्द्रमा के समान मफेद रङ्ग के, सर्वाङ्गसुन्दर और एक कान के काले आठ सौ घोड़े इस कन्या का शुल्क हैं। जैसे वन से आग उत्पन्न होती है वैसे ही इसके गर्भ से आपके बहुत पुत्र उत्पन्न होंगे।

अब काम-मोहित राजा हर्यश्व ने गालव के वचन सुनकर नम्रता के साथ कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ, आपके मतलब के दो सौ श्यामकर्ण घोड़े मेरे यहाँ हैं। उनके सिवा और तरह के हज़ारों घोड़े हैं। मैं वे दो सौ घोड़े देकर इस रमणी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न करना चाहता हूँ। आप मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिए।

उस सुन्दरी कन्या ने गालव से कहा—भगवन्, एक ब्रह्मचारी मुझे यह वर दे गये हैं कि 'तुम प्रसव के बाद फिर कन्या हो जाओगी'। इसलिए आप ये दो सौ घोड़े लेकर मुझे १० राजा को दे दीजिए। इस तरह आप चार राजाओं से आठ सौ घोड़े पा जायेंगे और मेरे भी चार पुत्र उत्पन्न होंगे। यह सुनकर महर्षि गालव ने कहा—राजन्, इस कन्या को लेकर शुल्क का चतुर्थांश मुझे दीजिए और इस सुन्दरी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न कर लीजिए।

राजा हर्यश्व ने गालव ऋषि का अभिनन्दन किया। घोड़े देकर यथामय उन्होंने माधवी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न किया। उस पुत्र का नाम वसुमना हुआ। कुछ दिनों बाद वही वसुप्रद वसुमना अयोध्या की गद्दी पर बैठे।

इसके बाद गालव मुनि ने फिर हर्यश्व के पास जाकर कहा—राजन्, आप सूर्यतुल्य तेजस्वी एक पुत्र प्राप्त कर चुके। अब मैं भी और घोड़ों के लिए यह कन्या लेकर अन्य राजाओं के पास जाना चाहता हूँ। इसलिए माधवी को मेरे साथ कर दीजिए।

पौरुषशाली राजा हर्यश्व ने सत्य का पालन करके मुनि को माधवी लौटा दी; क्योंकि २० वैसे घोड़े और मिल नहीं सकते थे। माधवी अपनी इच्छा से उत्तम राज्यलक्ष्मी छोड़कर, कुमारीभाव धारण करके, गालव के साथ चली। गालव मुनि धरोहर के तैर पर अपने दो सौ घोड़े राजा हर्यश्व के पास ही छोड़कर महाराज दिवोदास के यहाँ गये। २२

एक सौ सत्रह अध्याय

गालव का दिवोदास राजा से दो सौ घोड़े पाना

महर्षि गालव ने माधवी से कहा—भद्रे, महावीर भीमसेन के पुत्र दिवोदास काशी के राजा हैं। मैं तुमका अब उन्हीं के पास लिये चलता हूँ। तुम कुछ शोक न करो, धीरे-धीरे

मेरे साथ चली आओ। वे राजा बड़े धर्मात्मा, संयमी और सत्यवादी हैं। नारदजी कहते हैं कि अब महर्षि गालव राजा दिवोदास के पास पहुँचे। राजा ने उनका यथाचित सत्कार किया। तब गालव ने उनसे, पुत्र उत्पन्न करने के लिए, माधवी को ग्रहण करने का अनुरोध किया।

दिवोदास ने कहा—हे द्विजवर, आपको अधिक कुछ न कहना पड़ेगा, मुझे पहले से ही सब हाल मालूम है; मैं तो इस सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए उत्सुक हूँ। आप अन्य राजाओं को छोड़कर मेरे पास आये हैं, यह मेरे लिए बड़े गौरव की बात है। इसे भावी ही कहना चाहिए। किन्तु, मेरे पास भी आपके मतलब के केवल दो सौ घोड़े हैं। मैं वे घोड़े देकर इस सुन्दरी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न करूँगा। गालव ने राजा का कहा मान करके माधवी उन्हें दे दी।

महाराज दिवोदास ने विधिपूर्वक माधवी को ग्रहण किया। जैसे प्रभावती को सूर्य, स्वाहा को अग्नि, इन्द्राणी को इन्द्र, रोहिणी को चन्द्र, उर्मिला को यमराज, गौरी को वरुण, १० श्रद्धा को कुंवर, लक्ष्मी को नारायण, गङ्गा को सागर, रुद्राणी को रुद्र, सरस्वती को ब्रह्मा, अदृश्यन्ती को वशिष्ठ के पुत्र, अक्षमाला को वशिष्ठ, सुकन्या को ज्यवन, सन्ध्या को पुलस्त्य, वैदर्भी को अगस्त्य, सावित्री को सत्यवान्, पुलोमा को भृगु, अदिति को कश्यप, रेणुका को यमदग्नि, हैमवती को काशिक, तारा को बृहस्पति, शतपर्वा को शुक, भूमि को भूमिपति, उर्वशी को पुरूरवा, सत्यवती को ऋचीक, सरस्वती को मनु, शकुन्तला को दुष्यन्त, धृति को धर्म, दमयन्ती को नल, सत्यवती को नारद, जरत्कारु को जरत्कारु, प्रतीची को पुलस्त्य, मेनका को ऊर्गार्यु, रम्भा को तुम्बुरु, शतशीर्षा को वासुकि, कुमारी को धनञ्जय, जानकी को राम और रुक्मिणी को कृष्णचन्द्र प्रिय हैं वैसे ही माधवी को दिवोदास प्रिय थे। कुछ समय के बाद माधवी के गर्भ से दिवोदास के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम हुआ प्रतर्दन।

अब महर्षि गालव ने राजा दिवोदास के पास आकर कहा—राजन्, मेरी कन्या मुझे लौटा दीजिए। आपके दिये हुए मेरे घोड़े अभी आपके ही पास रहेंगे। मुझे अभी और घोड़ों के लिए अन्य राजाओं के पास जाना है। सत्यपरायण धर्मशील राजा ने २१ समय देखकर गालव मुनि को वह कन्या फेर दी।

एक सौ अठारह अध्याय

गाढव का उशीनर नरेश से दो सौ घोड़े पाना

नारदजी कहते हैं—सत्यवादिनी यशस्विनी माधवी फिर कन्या होकर, वह राज्यलक्ष्मी छोड़कर, गालव के साथ चली। अपना कार्य सिद्ध करने के लिए चिन्तित गालव ऋषि भोज

नगर में उशीनर राजा के पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मत्स्यपरायण राजा उशीनर से कहा—राजन्, मेरी इस कन्या के गर्भ से आपके चन्द्र-सूर्य के समान तेजस्वी दो पुत्र उत्पन्न होंगे। वे आपको इस लोक और परलोक में कृतार्थ करेंगे। इस कन्या का शुल्क आपको चार सौ श्यामकर्ण मफेद घोड़े देने पड़ेंगे। महाराज, मैं गुरु-दक्षिणा देने के लिए यह यत्न कर रहा हूँ; नहीं तो घोड़ों की मुझे कोई ज़रूरत नहीं। जो आप चार सौ श्यामकर्ण घोड़े मुझे दे सकते हैं तो शीघ्र इस कन्या को ले लीजिए। आपके कोई पुत्र नहीं है। इसके गर्भ से उत्पन्न दोनों पुत्र आपके पितरों को और आपको तार देंगे। हे राजर्षि, जिसके पुत्र हैं वह कभी स्वर्ग से भ्रष्ट नहीं होता। उसे पुत्र-हीन पुरुष की तरह कभी नरक नहीं भोगना पड़ता।



गालव के वचन सुनकर राजा उशीनर ने कहा—हे गालव, आपकी बातें मैंने सुनीं। इस सुन्दरी को पाने के लिए मैं भी बहुत उत्कण्ठित हो रहा हूँ। हे द्विजश्रेष्ठ, आपके मतलब के केवल दो सौ घोड़े मेरे घर में हैं। मैं इस रमणी के गर्भ से केवल एक पुत्र उत्पन्न करके सज्जनों की राह पर चलूँगा। आप भी इसका उचित शुल्क मुझसे ले लीजिए। हे ब्रह्मन्, मेरे पास जो धन-सम्पत्ति है वह अपने भोग के लिए नहीं, पुरवासी और जनपदवासी लोगों के लिए ही सञ्चित है। जो राजा प्रजा के धन को लेकर अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करता है, वह कभी धर्म और यश पाने का अधिकारी नहीं हो सकता। इससे आप मुझे केवल एक पुत्र उत्पन्न करने के लिए यह देवकन्या सी सुन्दरी दे दीजिए। राजा के वचनों से सन्तुष्ट होकर गालव ने वह कन्या राजा को दे दी। फिर वे वन को चले गये। जैसे पुण्यात्मा लोग श्रेष्ठ ऐश्वर्य पाकर बड़े सुख से समय बिताते हैं वैसे ही राजा उशीनर ययाति की कन्या माधवी को लेकर कभी पर्वत-कन्दराओं में, कभी नदियों के झरनों में, कभी विमानों में, कभी अन्तःपुर में, कभी विचित्र उद्यानों में, कभी वन में, कभी उपवन में, कभी महलों में, कभी महलों की छतों पर और कभी झरोखों तथा तहखानों में विचरते हुए सुख भोगने लगे। यथासमय

राजा उशीनर के, माधवी के गर्भ से, एक सूर्य-सदृश तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। वही कुमार प्रसिद्ध शरणागतरक्षक महाराज शिवि हुए। समय पर महर्षि गालव फिर राजा उशीनर २१ के पास आये और उनसे माधवी को लेकर गरुड़ से मिले।

एक सौ उन्नीस अध्याय

शेष दो सौ घोड़ों के बदले में विश्वामित्र का माधवी को ग्रहण करना

नारदजी कहते हैं कि तब गरुड़ ने हँसकर गालव मुनि से कहा—हे गालव, बड़े भाग्य की बात है कि आज मैं तुमको कृतकार्य देय्य रहा हूँ।

गालव मुनि ने कहा—मित्र, अभी तक पूरे आठ सौ घोड़े नहीं मिले। दो सौ की अभी कमी है। बताओ, उनके लिए क्या करना चाहिए?

तब गरुड़ ने कहा—हैं गालव, अब शेष दो सौ घोड़े प्राप्त करने के लिए यत्न करने की कोई ज़रूरत नहीं। और घोड़े अब मिल भी नहीं सकते। पूर्व-समय में ऋचीक ऋषि ने कान्य-कुब्ज देश के राजा से उनकी 'सत्यवती' कन्या को अपनी स्त्री बनाने के लिए माँगा था। राजा ने कन्या का शुल्क ऐसे ही श्यामकर्ण हज़ार घोड़े उनसे माँगे थे। ऋचीक तथास्तु कहकर वरुण के भवन में गये और वहाँ के अश्वतीर्थ से वैसे हज़ार घोड़े लेकर राजा गाधि के पास आये। उन्होंने वे हज़ार घोड़े राजा को दे दिये। गाधि राजा ने पुण्डरीकाक्ष यज्ञ का अनुष्ठान करके वे घोड़े ब्राह्मणों को दे दिये। आप तीन राजाओं से जो छः सौ घोड़े लायें हैं, वे घोड़े दो-दो सौ करके उन्होंने उन्हीं ब्राह्मणों से मोल लिये थे। बाकी चार सौ घोड़े वितस्ता नदी पार हाते समय जल में डूब गये थे। आपको अब किसी तरह वे घोड़े नहीं मिल सकते। इसलिए महर्षि विश्वामित्र का शेष दो सौ घोड़ों के बदले यही कन्या दे दीजिए। तब आपकी १० सब चिन्ता दूर हो जायगी और आप कृतकार्य हो जायेंगे।

गरुड़ के वचन सुनकर महर्षि गालव, वह कन्या लेकर उनके साथ, विश्वामित्र के आश्रम में गये। छः सौ श्यामकर्ण घोड़े और वह कन्या देकर गालव मुनि ने विश्वामित्र से कहा—गुरुजी! आप ये छः सौ घोड़े और, दो सौ घोड़ों के बदले में, यह कन्या ले लीजिए। तीन राजर्षि इस कन्या से तीन परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न कर चुके हैं। अब आप इसके गर्भ से एक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न कीजिए।

गालव, गरुड़ और माधवी को देखकर विश्वामित्र ने कहा—हे गालव, तुमने पहले ही यह कन्या मुझको क्यों नहीं दे दी? कुल को पवित्र करनेवाले चार पुत्र इससे पाकर मैं अपने

को कृतार्थ करता । खैर, मैं इस समय एक पुत्र पाने के लिए इसे ग्रहण करता हूँ । ये सब धाड़े छोड़ दो, मंरे आश्रम में चारों ओर विचरें । महातेजस्वी विश्वामित्र ने इस तरह माधवी को ग्रहण किया । यथासमय माधवी के गर्भ से उनके, अष्टक नाम से प्रसिद्ध, एक महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ । विश्वामित्र मुनि ने उत्पन्न होते ही उस बालक को धर्म-अर्थ की शिक्षा देकर वे धाड़े दे दिये । फिर वे माधवी को गालव के पास छोड़कर वन को चले गये । महाप्रतापी अष्टक चन्द्रलोक के समान शोभाशाली अपने पुर में जाकर प्रजा का पालन करने लगे ।

२०

अपिश्रेष्ठ गालव, गरुड़ की महायशता से, इस तरह गुरु-दक्षिणा देकर बहुत प्रसन्न हुए । फिर उन्होंने माधवी से कहा—हे सुन्दरी ! तुम्हारे गर्भ से एक दाता, एक शूर, एक सत्यवादी और एक याज्ञिक, चार पुत्र उत्पन्न हुए हैं । तुमने उन पुत्रों से अपने पिता की, चार पतियों की और मंत्री रक्षा की । अब तुम अपने पिता के पाम जाओ । अब वह कन्या राजा ययाति का सौंपकर और गरुड़ से विदा होकर महामुनि गालव वन को चल दिये ।

२४

एक सौ बीस अध्याय

राजा ययाति का स्वर्ग से गिरना

नारदजी कहते हैं—राजा ययाति अपनी कन्या का स्वयंवर करने के लिए उसे बढ़िया माला-कपड़े-गहने आदि से सजा करके बढ़िया रथ में बिठाकर गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर स्थित आश्रम में लाये । पुरु और यदु अपनी बहन के साथ उक्त आश्रम में आये । स्वयंवर की खबर पाकर अनेक देश, पर्वत, वन आदि स्थानों से बहुत से मनुष्य, नाग, यक्ष, गन्धर्व, मृग और पक्षी उस आश्रम में आकर जमा हुए । बहुतेरे राजाओं और ब्रह्मतुल्य महर्षियों से वह आश्रम भर गया । किन्तु सुन्दरी माधवी ने वहाँ असंख्य योग्य पात्र रहने पर भी उन्हें छोड़कर वन को पतिरूप से स्वीकार किया । वे रथ से उतरकर, वन्धुओं को प्रणाम करके, वन में चली गईं और वहाँ तपस्या करने लगीं । क्रमशः बहुत से उपवास, दीक्षा और नियमों के द्वारा राग-द्वेष आदि दूर करके उन्होंने मन को एकाग्र किया । वैदूर्य मणि के अंकुर सी श्याम, कोमल, तीखी और मीठी घास खाकर और झरनों का पवित्र निर्मल शीतल जल पीकर, वाघ आदि हिंसक जीवों से रहित, दावानल-हीन, निर्जन वन में हरिणों के साथ हरिणी की तरह भ्रमण करती हुई माधवी ब्रह्मचर्य के द्वारा श्रेष्ठ धर्म का उपार्जन करने लगीं ।

११

इधर राजा ययाति भी अपने पुरखों के ढङ्ग पर राज्यशासन करके कई हजार वर्ष के बाद परलोकवासी हुए । पुरु और यदु से महाराज ययाति के दो वंश चले, जिनसे पृथ्वी-

- मण्डल परिपूर्ण हो गया। महर्षि-तुल्य राजा ययाति परलोक में प्रतिष्ठा के साथ स्वर्ग के भोग भोगने लगे। इसी तरह बहुत वर्ष बीतने पर एक समय ययाति ने राजर्षियों और महर्षियों के सामने मूढ़ की तरह देवताओं, ऋषियों और मनुष्यों का अपमान किया। यह जानकर इन्द्र और सब राजर्षि ययाति को धिक्कार देने लगे। अब ययाति के बारे में उस महासभा में विचार होने लगा। सब लोग कहने लगे—यह व्यक्ति कौन है? किस वंश में उत्पन्न है? किस तरह, किस कर्म के फल से, यहाँ आया है? यह व्यक्ति किस पुण्य से इस सिद्धि को पहुँचा है? इस देवपुरी में कैसे इसका परिचय मिलेगा? कौन इसे जानता है? स्वर्ग के निवासी लोग
- २० इसी तरह राजा ययाति के बारे में विचार करते हुए परस्पर पृच्छने लगे। सैकड़ों विमानपालक, स्वर्गद्वाररक्षक और आसनपाल आदि से ययाति के बारे में पूछा गया। सबने कहा—हम नहीं जानते। सबका ज्ञान कुण्ठित हो गया। कोई भी राजा ययाति को नहीं जान सका।
- २२ घड़ी भर में राजा ययाति का तेज फीका पड़ गया।

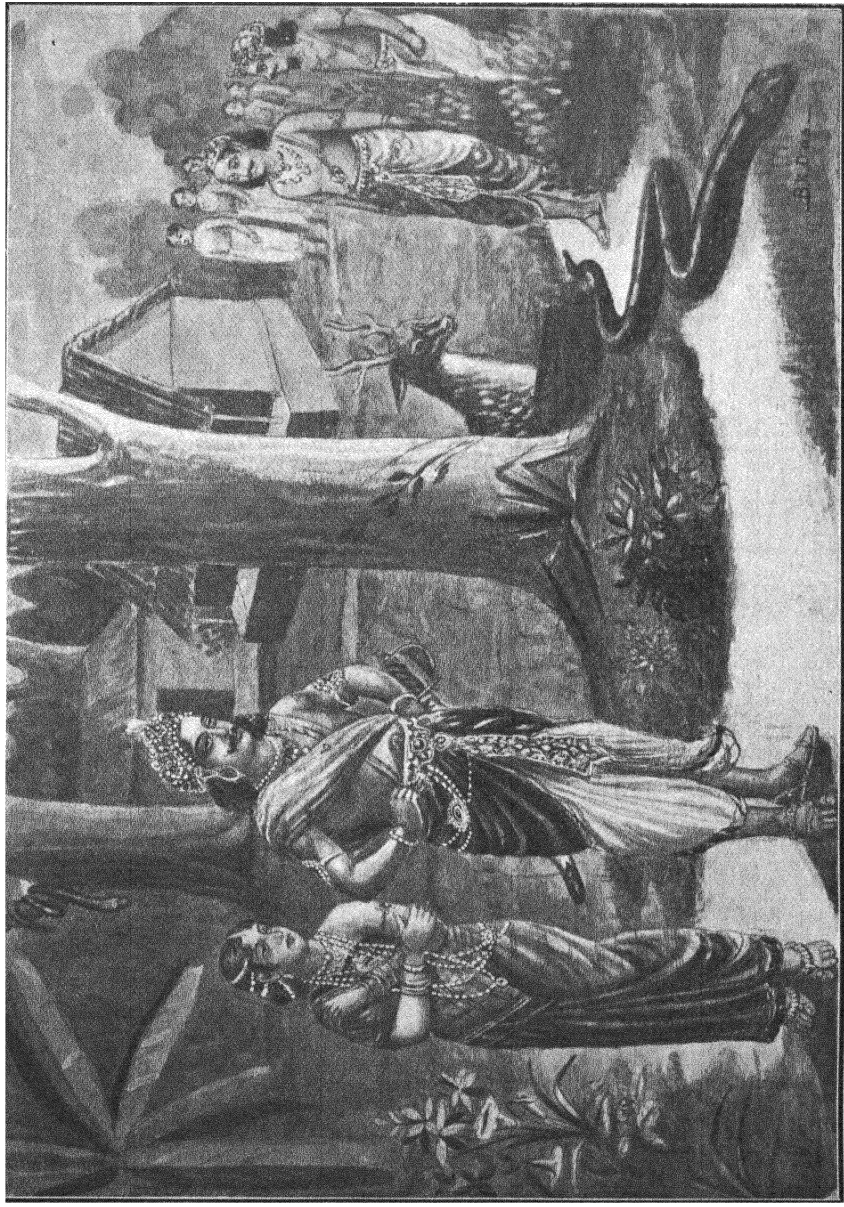
एक सौ इक्कीस अध्याय

ययाति का स्वर्ग से नैमिषारण्य में, अपने नातियों के बीच, गिरना

नारदजी कहते हैं—स्वर्गवासी लोगों के द्वारा न पहचाने जाने पर राजा ययाति उसी समय शोकविह्वल होकर अपने म्यान से भ्रष्ट हो गये। उनका हृदय धड़कने लगा। उनको ज्ञान न रहा। उनके गले की दिव्य माला सूख गई। कपड़े और मुकुट, अङ्गद आदि सब गहने शरीर से गिर पड़े। देवगण कभी तो उनको देख पड़ते थे, और कभी नहीं देख पड़ते थे। वे अदृश्य होकर उदासी से पृथ्वी की ओर देखकर सोचने लगे कि मैंने अपने मन से कौन ऐसा अधर्म सोचा है, जिसके कारण मुझे स्वर्ग से भ्रष्ट होना पड़ा। उसी समय स्वर्गनिवासी राजा, अप्सरा और सिद्ध आदि ने देखा कि राजा ययाति स्वर्ग से भ्रष्ट हो रहे हैं।

पुण्य क्षीण होने पर लोगों को पृथ्वी पर गिराने के लिए जो देवदूत नियुक्त हैं, उनमें से एक ने इन्द्र की आज्ञा के अनुसार ययाति से कहा—राजन्, तुम अत्यन्त घमण्डी हो। तुमने सबका अनादर किया, इसी से तुम्हारा पुण्य क्षीण हो गया और स्वर्गभोग भी समाप्त हो गया। तुम स्वर्ग में रहने योग्य नहीं हो। यहाँ तुम्हें कोई पहचानता भी नहीं। इसलिए इसी दम पृथ्वी पर जाओ। गिरते समय ययाति ने तीन बार पुकारकर कहा—“मैं सज्जनों की मण्डली के बीच गिरूँ।” अब अपनी गति के बारे में सोचते हुए राजा ययाति ने नैमिषारण्य में

- १० यज्ञ कर रहे अपने नाती प्रसिद्ध राजा प्रतर्दन, वसुमना, शिवि और अष्टक को देखा। ये





लोकपाल-सदृश राजा, इन्द्र की प्रसन्नता के लिए, वाजपेय यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ-कुण्ड से उठा हुआ धुआँ स्वर्ग के द्वार तक पहुँचकर धुएँ की नदी या स्वर्ग से पृथ्वी पर गिरनेवाली मन्दाकिनी की धारा के समान जान पड़ता था। महाराज नहुष के पुत्र ययाति वह परम पवित्र यज्ञ का धुआँ सूँघकर, उसी के सहारे, उक्त चारों राजाओं के बीच में गिरे।

प्रतर्दन आदि नरपत्नियों ने अपने नाना ययाति को देखकर पूछा—हे महात्मा, आप कौन हैं? किसके भाई या पुत्र हैं? किस देश या नगर से यहाँ आये हैं? हमें आप मनुष्य नहीं जान पड़ते। देवता, गन्धर्व, यक्ष अथवा राक्षस कोई होंगे। बताइए, आप किसलिए हमारे पास आये हैं?

ययाति ने कहा—हे महात्माओं, मैं ययाति नाम से प्रसिद्ध राजा हूँ। पुण्य क्षीण हो जाने के कारण स्वर्ग से भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर आया हूँ। मैंने गिरते समय प्रार्थना की थी कि मैं सज्जन पुरुषों के बीच में गिरूँ। इसी से यहाँ गिरा हूँ।

राजाओं ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, आपकी इच्छा सत्य हो। हम आपको अपने यज्ञों का फल और धर्म का फल देते हैं; आप लीजिए।

ययाति ने कहा—महाशयो, मैं अर्थ ग्रहण करनेवाला अर्थात् धन आदि का दान लेनेवाला ब्राह्मण नहीं हूँ। मैं तो क्षत्रिय हूँ। खासकर पराया पुण्य क्षीण करना मुझे पसन्द नहीं—उधर मेरी प्रवृत्ति ही नहीं है।

नारदजी कहते हैं—इसी समय ययाति की कन्या माधवी मृगों की तरह, मृगों के साथ विचरती हुई, वहाँ पर पहुँची। प्रतर्दन आदि राजाओं ने माता को देखकर प्रणाम किया और कहा—माता, हम सब आपके पुत्र हाज़िर हैं। आज्ञा दीजिए, आपकी क्या सेवा करें। यह सुनकर माधवी बहुत प्रसन्न हुई। उसने पास जाकर पिता ययाति को प्रणाम किया। फिर पुत्रों के मस्तक सूँघकर कहने लगी—हे पिताजी, ये मेरे चार पुत्र और आपके नाती हैं। ये आपका उद्धार करेंगे। राजन्, मैं मृगों की तरह वन में फिरनेवाली आपकी बेटी माधवी हूँ। मैंने भी धर्म-सञ्चय किया है। मैं उसका आधा फल आपको देती हूँ। मनुष्यों को पुत्रों के किये धर्म का फल मिलता है, और इसी से लोग इच्छा करते हैं कि हमारे नाती, पुत्र आदि हों।

अब प्रतर्दन आदि राजाओं ने माता और मातामह (नाना) को प्रणाम किया। फिर वे ऊँचे और गम्भीर स्वर से पृथ्वीमण्डल को प्रतिध्वनित करते हुए स्वर्ग-भ्रष्ट नाना को अपने पुण्य-फल से तारने की इच्छा प्रकट करने लगे। इसी समय महर्षि गालव भी वहाँ आ गये और राजा ययाति से कहने लगे—महाराज, आप मेरी तपस्या के आठवें हिस्से को ले लीजिए और उसके बल से स्वर्ग को लौट जाइए।

एक सौ बाईस अध्याय

ययाति का फिर स्वर्ग को जाना

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार सब महात्माओं के तप के बल से, दिव्य माला और दिव्य वस्त्र-आभूषण पहने हुए, ययाति राजा फिर स्वर्ग को चले। दिव्य स्थिति में स्थित राजा ययाति का खेद जाता रहा। वे बहुत प्रसन्न हुए। स्वर्ग से भ्रष्ट होने पर भी दिव्यरूपधारी राजा ययाति ने अभी तक पृथ्वी पर पैर नहीं रखे थे। दिव्य गुणों से युक्त ययाति के शरीर से दिव्य गन्ध निकल रही थी।

संसार में सुप्रसिद्ध दानी और यशस्वी वसुमना ने सबसे पहले, ऊँचे स्वर से, ययाति से कहा—हे महात्मा, मैंने किसी वर्ण की निन्दा नहीं की और किसी वर्ण का पुरुष मेरी निन्दा नहीं करता। उसका फल और दान, क्षमा, अग्निहोत्र का फल मैंने आपका दिया; आप उसे ले लीजिए।



अब चित्रियश्रेष्ठ प्रतर्दन ने राजा ययाति से कहा—महाराज ! मैंने धर्म पर अनुराग, युद्ध की प्रवृत्ति और वीर-पद की प्राप्ति से जो चित्रियांचित यश पाया है वह मैं आपका देता हूँ। आप मेरे धर्मपालन और सत्यनिष्ठा के बल से स्वर्ग को जाइए।

फिर उशानर राजा के पुत्र बुद्धिमान् शिवि ने मधुर वाणी से ययाति से कहा—महाराज ! मैं बालक, स्त्री, सम्बन्धा, साले आदि से बातचीत करते समय, युद्धस्थल में, किसी सङ्कट के समय अथवा दूत-क्रीड़ा आदि व्यसनो के समय भी भूठ नहीं वाला हूँ। मेरे उसी सत्य के प्रभाव से आप स्वर्ग को जाइए। मैं राज्य, प्राण, काम-सुख आदि को सहज ही छोड़ सकता हूँ, केवल सत्य को नहीं छोड़ सकता।

१० मेरे उसी सत्य के प्रभाव से आप स्वर्ग को जाइए। मेरे सत्य से धर्म, अग्नि और इन्द्र सन्तुष्ट हुए हैं। उसी सत्य के प्रभाव से आप स्वर्ग को जाइए।

शिवि के बाद माधवी के पुत्र धार्मिकश्रेष्ठ और कई सौ यज्ञ करनेवाले अष्टक ने कहा—राजन् ! मैंने सैकड़ों पुण्डरीक, गंगामेघ और वाजपेय यज्ञ किये हैं। आप उन सब यज्ञों

का फल भोगिए। रत्न, धन और अन्य सब सामग्रों में उन यज्ञों में लगा दी है। उसके फल से आप स्वर्ग-लोक को चले जाइए।

अपने नातियों के कहने के अनुसार महाराज ययाति पृथ्वी छोड़कर स्वर्ग-लोक को चले गये। इस तरह चार राजवंशों में उत्पन्न उन राजाओं ने स्वर्ग से भ्रष्ट नाना को अपने पुण्य के बल से फिर स्वर्ग पहुँचा दिया।

१७

एक सौ तेईस अध्याय

नारद का दुर्योधन को समझाना

नारदजी कहते हैं—सरल स्वभाववाले यज्ञकर्ता अपने नातियों के पुण्य-बल से महामति ययाति फिर स्वर्ग को गये। उस समय उनके शरीर में परम पवित्र सुगन्धित हवा लगने लगी और उनके मस्तक पर फूलों की वर्षा होने लगी। नातियों के पुण्य-फल से प्राप्त अचल अक्षय स्थान में स्थित होकर वे उज्ज्वल श्रेष्ठ कान्ति से शोभित हुए। गन्धर्वों और अप्सराओं के झुण्ड उनके आगे नाचने-गाने लगे। चारों ओर देवताओं के नगाड़े बजने लगे। देवर्षि, राजर्षि और चारण उनकी स्तुति और पूजा करने लगे। देवताओं ने उनका अभिनन्दन किया।

महाराज ययाति को स्वर्ग में पहुँचकर जब शान्ति मिल गई तब लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा उन्हें समझाते हुए कहने लगे—राजन्, तुमने अपने अलौकिक कर्मों से सम्पूर्ण धर्म का उपार्जन करके इस लोक में सबसे श्रेष्ठता और विजय पाई थी। स्वर्ग में भी तुम्हें अक्षय यश प्राप्त हुआ था; किन्तु तुम्हारे ही कर्म के दोष से वह सब नष्ट हो गया। स्वर्गवासियों का ज्ञान तमोगुण से ढका होने के कारण वे तुम्हें पहचान नहीं सके। इसी कारण तुम्हें स्वर्ग से भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर जाना पड़ा। अब तुम फिर अपने नातियों की प्रसन्नता और पुण्य के फल से परम पवित्र अनादि अविनाशी स्थान में आ गये हो। यह स्थान तुम अपने कर्मों से ही जीत चुके थे।

१८

ययाति ने कहा—भगवन्! मुझे एक बड़ा भारी संशय है, कृपा करके उसे दूर कर दीजिए। आपके सिवा और किसी से वह बात पूछने को मेरा जी नहीं चाहता। हे पितामह! मैंने कई हजार वर्ष तक प्रजापालन, यज्ञ, दान आदि करके जो महापुण्य प्राप्त किया था उसका फल इतने थोड़े समय में कैसे समाप्त हो गया? जो वह पुण्य क्षीण न होता तो मुझे स्वर्ग से क्यों नीचे गिरना पड़ता? हे ब्रह्मन्, आपसे छिपा नहीं है कि मैंने धर्म करके अक्षय सनातन लोक प्राप्त किये थे। वे लोक छोड़कर मुझको पृथ्वी पर क्यों जाना पड़ा?

ब्रह्माजी ने कहा—हे ययाति! तुमने कई हजार वर्ष तक प्रजा-पालन, यज्ञ और दान करके जो पुण्य प्राप्त किया था, वह तुम्हारे अभिमान के कारण नष्ट हो गया। इसी कारण तुम्हें स्वर्ग

से भ्रष्ट होना पड़ा। जो पुरुष अभिमान, बल, हिंसा का भाव, शठता या कपट प्रकट करता है वह इस अनादि लोक में नहीं ठहर सकता। अपने से उत्तम, समान या निकृष्ट, किसी का अपमान नहीं करना चाहिए। अभिमान की आग में जले हुए लोग कभी शान्ति नहीं पा सकते। हे ययाति, जो कोई तुम्हारे इस स्वर्ग से पतन और फिर स्वर्गराहण का वृत्तान्त सुनेगा, वह महा-सङ्कट में पड़कर भी उससे सहज ही छुटकारा पा जायगा।

- नारदजी कहते हैं—पहले महाराज ययाति अभिमान के कारण और गालव ऋषि हठ के कारण इस तरह महाविपत्ति में पड़ चुके हैं। इसलिए हे दुर्योधन, तुम्हें अपने हित चाहनेवाले इष्ट-मित्रों की बातों पर ध्यान देना चाहिए। यही तुम्हारा कर्तव्य है। किसी बात के लिए २० अत्यन्त हठ करना सर्वथा अनुचित है। मनुष्य दान, तप या होम आदि जो पुण्य-कार्य करता है उनका क्षय या सम्पूर्ण विनाश नहीं हो जाता। जो व्यक्ति धर्म करता है वही उसका फल भोगता है। जो पुरुष यह बहुत से शास्त्रज्ञान से सम्पन्न, रागरोष-रहित सज्जनों के शास्त्र-निश्चय से युक्त, उपाख्यान सुनता है और युक्ति के साथ धर्म-अर्थ-काम के कार्य करता है, २३ वह सहज ही सारी पृथ्वी का राज्य पा सकता है।

एक सौ चौबीस अध्याय

श्रीकृष्ण का दुर्योधन को समझाना

[नारदजी के यों कह चुकने पर] धृतराष्ट्र ने कहा—हे देवर्षिश्रेष्ठ, आपका कहना बहुत ठीक है। मैं भी यही चाहता हूँ; किन्तु इच्छा रहने पर भी उसके अनुसार काम करना मेरी शक्ति के बाहर है। वैशम्पायन कहते हैं कि अब धृतराष्ट्र ने श्रीकृष्ण से कहा—हे केशव! तुम्हारे यं वचन लोकहितकारी, स्वर्गदायक, धर्मसङ्गत और न्यायपूर्ण हैं; किन्तु हे तात, मैं स्वाधीन नहीं हूँ। दुर्युद्धि दुर्योधन मेरा कहा नहीं मानता, मेरा प्रिय नहीं करता। इसलिए तुम्हीं इसको समझाओ। महामति विदुर, गान्धारी, भीष्म पितामह या अन्य शुभचिन्तकों के प्रिय वचन यह पापी नहीं सुनता। इसलिए हे जनार्दन, तुम्हीं इस पापबुद्धि अज्ञानी दुर्योधन का शासन करो। जो तुम इसे राह पर लगा सकोगे तो बन्धुओं के योग्य बड़ा भारी काम करोगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि तब धर्म-अर्थ के तत्त्वों को जाननेवाले श्रीकृष्ण क्रोधी दुर्योधन की ओर फिरकर मृदु मधुर स्वर से कहने लगे—हे कुरुश्रेष्ठ! तुम युद्ध के लिए हठ कर रहे हो, यह अच्छा नहीं है। मैं तुम्हारे हित और शान्ति के लिए जो कुछ कहता हूँ उसे मन लगाकर सुनो। हे भरतश्रेष्ठ, तुम उस श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हुए हो जिसमें बुद्धिमान् पुरुष ही होते आये हैं। खुद तुम भी शास्त्र-ज्ञान से सम्पन्न, सदाचारी और ऐश्वर्य आदि गुणों से भूषित हो। इस-

लिए मेरा कहना मानकर पाण्डवों से अच्छा व्यवहार करो । भैया ! तुम जिसको कर्तव्य समझ रहे हो उसका अनुमोदन सिवा नीच कुल में उत्पन्न, दुरात्मा, नराधम, निर्लज्ज लोगों के और कोई नहीं करेगा । यह युद्ध का हठ ऐसे ही लोगों के योग्य कार्य है । इस संसार में सज्जनों की प्रवृत्ति धर्म और अर्थ के कामों में ही पाई जाती है । इसके विपरीत दुर्जनों का चरित्र प्रायः अधर्म और अनर्थ से परिपूर्ण होता है । इस समय तुम्हारी बुद्धि में भी वही विपरीत भाव देख पड़ता है । किन्तु ऐसी बुरी प्रवृत्ति अत्यन्त भय का कारण, अधर्म-सङ्गत और महा अनिष्ट पैदा करनेवाली है । ऐसे कामों या विचारों से मनुष्य के प्राण तक चले जाते हैं । तुम्हारी ऐसी अनर्थमयी प्रवृत्ति का कोई विशेष कारण भी नहीं देख पड़ता । खासकर युद्ध में विजय ही प्राप्त कर लेना तुम्हारे हाथ की बात नहीं है । हे महाबाहु, जो यह अनर्थ का विचार छोड़ देगो तो तुम अपना ही भला करोगे । साथ ही अपने भाइयों, भृत्यों और मित्रों का भी कल्याण करोगे । इसलिए अधर्म और अयश के कारणरूप इस विचार को छोड़ दो । पाण्डवों में असीम शूरता, उत्साह, बुद्धि, ज्ञान और धैर्य है । इसलिए उनसे मेल कर लो । मेल करने से राज्य-वृद्धि आदि तुम्हारी सब इच्छाएँ पूरी होंगी । बुद्धिमान् महाराज धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, महामति विदुर, कृपाचार्य, सोमदत्त, वाह्लीक, अश्वत्थामा, विकर्ण, मञ्जय, विविंशति आदि जाति-वालों, भाइयों और मित्रों का हित और प्रिय होगा । तुम कौरवों और पाण्डवों में मेल हो जाने से सारे जगन् को कल्याण और शान्ति प्राप्त होगी ।

हे भरतश्रेष्ठ ! तुम अच्छे कुल में उत्पन्न, श्रीमान्, शास्त्र-ज्ञानसम्पन्न और दयालु हो । इसलिए माता और पिता की आज्ञा मानो । सपूत का यही लक्षण है कि वह पिता की आज्ञा को अपने लिए परम कल्याण का कारण समझता है । न मानोगे तो आपत्ति के समय तुम्हें पिता का कहना याद आवेगा । तुम्हारे पिता यही चाहते हैं कि इस समय पाण्डवों से मेल कर लिया जाय । इसलिए मन्त्रियों सहित तुमको भी यही मान लेना चाहिए । जो आदमी हितचिन्तक सुहृदों की बात नहीं मानता वह अपने कर्म का फल उपस्थित होने पर अन्त को बहुत कष्ट पाता है । वह उसका हठ, खाये हुए महाकाल के फल की तरह, उस समय उसके हृदय को जलाता है । जो व्यक्ति मोहवश होकर प्रियजन के वचनों को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखता, वह दीर्घसूत्री (काम में बहुत देर लगानेवाला) अर्थ से हीन होकर, कार्य सिद्ध न होने पर, पछताता है । जो बुद्धिमान् पुरुष अपने मत को छोड़कर हितचिन्तकों के हितकारी वचनों को मानता और उनके अनुसार काम करता है, वह इस लोक में परम ऐश्वर्य भोगकर सुखी होता है । जो पुरुष अपने प्रतिकूल समझकर मित्रों की बात का अनादर करता है, और दुष्टों के वचनों पर—जो कि उसके प्रतिकूल और अनर्थ की जड़ होते हैं—श्रद्धा दिखाता है, वह अपने शत्रुओं के हाथ में पड़कर घोर कष्ट पाता है । मतलब यह कि अभाग आदमी सचरित्र मित्रों

१०

२०

के पवित्र उपदेश को न मानकर दुर्जनों के मत पर चलता है और अन्त को विपत्ति में पड़कर अपने मित्रों को शोक से व्याकुल बनाता है। वैसे ही जो बुद्धिहीन मूढ़ राजा श्रेष्ठ गुणी मन्त्रियों को छोड़कर दुष्ट शठ मन्त्रियों का आदर करता है वह अवश्य विपत्ति के समुद्र में गिरता है और कभी उससे उबर नहीं सकता।

हे दुर्योधन ! जो राजा कपटी और पर-सन्ताप या ईर्ष्या के भाव से कलुषित होता है, तथा जो अच्छे स्वभाववाले मित्रों और आत्मीयों के हितकारी वचन न मानकर सच्चे हितैषी आत्मीय भवजनों से द्रोह और गैरों का सम्मान करता है उसे सज्जनों के वश में रहनेवाली पृथ्वी त्याग देती है। हे भरतश्रेष्ठ, तुम उन मिह-मदश वीर पुरुष पाण्डवों से विरोध करके अशिष्ट, अस-मर्थ, मूढ़ पुरुषों को अपनाते और उनका आसरा लेते हो। इस जगत में तुम्हारे मित्र और कौन ऐसा होगा जो इन्द्रतुल्य महारथी भाइयों से वैर करके गैरों का आश्रय ढूँढ़ेगा या गैरों से अपनी रक्षा का भरोसा करेगा ? तुम जन्म से ही पाण्डवों को क्लेश देते आ रहे हो; किन्तु धर्मात्मा पाण्डवों ने इतने पर भी कभी तुम पर क्रोध नहीं किया। इसलिए हे महाबाहु, जन्म से तुम्हारे किये हुए कपट के व्यवहार का खयाल न करके श्रेष्ठ यशस्वी और तुम्हारे आत्मीय पाण्डव जैसे तुमसे अच्छा व्यवहार करते आ रहे हैं, वैसे ही तुम भी क्रोध छोड़कर इस समय उनके साथ अच्छा व्यवहार करो।

हे कुरुकुलतिलक ! पात्र और बुद्धिमान् पुरुष प्रायः धर्म, अर्थ और काम से युक्त कार्य ही करते हैं। एक साथ इन तीनों का सम्पादन अमम्भव होने पर वे केवल धर्म और अर्थ का ही अनुसरण करते हैं। धर्म, अर्थ और काम में से एक-एक का अलग-अलग प्राप्त करना हो तो उत्तम स्वभाववाले बुद्धिमान् लोग धर्म का ही पालन करते हैं। मध्यम प्रकृति के लोग कलह की जड़ जो अर्थ है उसी का प्रधान समझते और उसी को पाने का यत्न करते हैं। नीच प्रकृति के अधम मूढ़ पुरुष केवल काम की आराधना करते हैं। जो इन्द्रियों के अधीन मूढ़ पुरुष लोभ के वश होकर, धर्म को छोड़कर, निन्दित उपाय से अर्थ और काम प्राप्त करना चाहता है, वह विनष्ट हो जाता है। अर्थ और काम कभी धर्म के विरोधी नहीं हो सकते, अर्थात् धर्म के बिना अर्थ और काम की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए जो अर्थ और काम प्राप्त करना चाहता हो उसे पहले धर्म करना चाहिए। पण्डितों ने धर्म को ही त्रिवर्ग की प्राप्ति का उपाय कहा है। बुद्धिमान् पुरुष धर्म का आश्रय लेकर त्रिवर्ग प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं और वे सूखी घास के ढेर में लगी आग की तरह दिन-दिन बढ़ते जाते हैं। भैया ! तुम केवल दुरे उपाय से सब राजाओं में सुप्रसिद्ध, असीम समृद्धि से सम्पन्न, विशाल साम्राज्य पाने की इच्छा करते हो। राजन्, जो आदमी सदाचारी सरल पुरुषों से कपट का व्यवहार करता है, वह अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारता है और कुल्हाड़ी से जैसे जङ्गल कट जाता है वैसे ही उसके

काम से उसकी जड़ कट जाती है। जिसकी हानि न चाहे उसे बुरी मलाह न दे। जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है वह कभी कल्याणकारी काम में प्रवृत्त नहीं होता।

हे दुर्योधन, जो पुरुष जितेन्द्रिय और अपना भला चाहनेवाला है वह—वीर पाण्डवों की कौन कहे—अत्यन्त साधारण आदमियों का भी अनादर नहीं करता। क्रोध के वश होनेवाले पुरुष को हित-अहित के विवेक का ज्ञान नहीं रह जाता। लोक और वेद के प्रसिद्ध प्रमाण भी उसे तुच्छ समझ पड़ते हैं। भैया, इस समय अमर पुरुषों का साथ छोड़कर पाण्डवों से मेल कर लेना ही तुम्हारे लिए सर्वथा कल्याण की बात है। पाण्डव जो तुम्हारा प्रिय करने के लिए तैयार हो जायेंगे तो तुम अपनी सब आकांक्षाओं को सहज ही पूर्ण कर लोगे। हे नृपश्रेष्ठ! सोच-कर देखो, तुम जिन पाण्डवों के बाहु-बल से जीते हुए साम्राज्य का भोग कर रहे हो उन्हीं को वञ्चित करके अन्य पुरुषों से अपनी रक्षा की आशा कर रहे हो। दुष्टमति दुःशासन, कर्ण और शकुनि आदि कुमन्त्रियों का साम्राज्य का भार सौंपकर कल्याण प्राप्त करना चाहते हो, यह तुम्हारी भारी भूल है। ये तुम्हारे मन्त्री ज्ञान, धर्म, अर्थ, पराक्रम आदि किसी बात में पाण्डवों के समान नहीं हैं। अधिक क्या कहें, तुम्हारी ओर से लड़ने के लिए जमा हुए ये राजा लोग युद्ध के समय क्रोधित भीमसेन के भयानक मुख की ओर देख तक नहीं सकते। यह सच है कि ये सेनासहित राजा और भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि प्रधान-प्रधान वीर योद्धा तुम्हारे महायक हैं; किन्तु इनमें से कोई भी युद्ध में अर्जुन का सामना नहीं कर सकेगा। ये ही क्यों, सब देवता, दानव, गन्धर्व आदि त्रिभुवन के निवासी भी अर्जुन का परास्त नहीं कर सकते। इसलिए भैया, तुम युद्ध के लिए हठ न करो।

५०

गौर करके देखो, इन एकत्र हुए योद्धाओं में कौन आदमी युद्ध-भूमि में अर्जुन के सामने पड़कर सकुशल जीता-जागता अपने घर को लौट सकता है? इसलिए पहले उस वीर पुरुष को देखकर ठीक कर लो, जिसके विजय प्राप्त करने से तुम विजयी हो सकते हो। व्यर्थ मनुष्यों का विनाश करने से क्या लाभ है? खाण्डव वन को जलाते समय यक्ष, गन्धर्व, असुर, नाग आदि सहित सब देवताओं को हरानेवाले, असाधारण वीर और पराक्रमी अर्जुन से तुम्हारे पक्ष का कौन वीर युद्ध कर सकता है? विराट नगरी में जो अद्भुत युद्ध-घटना हुई थी, उसी से तुम यह निश्चय कर लो कि अकेले अर्जुन असंख्य मनुष्यों से युद्ध करके उन्हें परास्त कर सकते हैं या नहीं। और मनुष्यों की बात जाने दो, स्वयं त्रिपुर-दहन महादेव भी अर्जुन के युद्ध-कौशल और पराक्रम से सन्तुष्ट हो चुके हैं। तुम उन्हीं अलौकिक योद्धा, शूरश्रेष्ठ, अजेय, दुर्धर्ष अर्जुन को जीतने की आशा करते हो यह तुम्हारी निरी दुराशा है। जब मेरे साथ अर्जुन शत्रुओं से लड़ने को खड़े होंगे, तब कौन वीर उन्हें युद्ध के लिए ललकारने का साहस करेगा? तब मनुष्यों की कौन कहे, साक्षात् इन्द्र भी तो उनसे युद्ध नहीं कर सकेगा।

जो आदमी युद्ध में अर्जुन को हरा सकता है वह, समझ लो कि, दोनों हाथों से पृथ्वीमण्डल को ऊपर उठा सकता है, क्रोधित होकर त्रिलोकी की प्रजा को भस्म कर सकता है, अथवा सब देवताओं को भां खर्ग से नीचे गिरा सकता है।

इसलिए भैया ! अपने पुत्र, भाई, जातिवाले और अन्य सम्बन्धी स्वजन आदि की ओर देखो। यं तुम्हारे कारण चौपट न हों; यही तुम्हारा कर्तव्य है। तुम वही करो जिसमें यह प्रतिष्ठित और विस्तृत कुरुवंश बिलकुल परास्त और निःशेष न हो जाय और लोग कीर्तिहीन तथा कुल-घातक कहकर तुम्हारी निन्दा न करें। सन्धि हो जाने पर पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर तुम्हीं ६० को युवराज बनावेंगे और धृतराष्ट्र महाराज बने रहेंगे। इस कारण गले लगने आ रही राजलक्ष्मी को विमुख मत करो, ढकेलों नहीं। पाण्डवों को आधा राज्य देकर आप भी विशाल ऐश्वर्य प्राप्त करो। मेरी आखिरी बात यही है कि हितैषियों की बात मानकर पाण्डवों से मेल कर लेने में ६२ ही तुम्हारे आत्मीय प्रसन्न होंगे और तुम्हारा कल्याण स्थिर होगा।

एक सौ पचीस अध्याय

भीष्म, द्रोण और विदुर का दुर्योधन को समझाना

वैशम्पायन कहते हैं कि वासुदेव के चुप होने पर पितामह भीष्म ने असहनशील दुर्योधन से कहा—बेटा, बन्धुओं के कल्याण की इच्छा से महात्मा श्रीकृष्ण ने जो आज्ञा दी है उसे मान लो। क्रोध के वश न होओ। महात्मा वासुदेव के इस श्रेष्ठ उपदेश को न मानने पर किसी तरह तुम्हारा निस्तार नहीं है। न मानोगे तो किसी तरह सच्चा सुख और कल्याण नहीं मिलेगा। श्रीकृष्ण ने जो कहा है वह धर्म और अर्थ के अनुकूल और यथार्थ अभीष्ट को सिद्ध करनेवाला है। इसलिए व्यर्थ प्रजा का नाश न करके हृदय से सन्धि का प्रस्ताव मान लो। महामनस्वी वासुदेव, प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र और बुद्धिमान विदुर के सत्य और अर्थयुक्त वाक्यों का अनादर करने से बड़ा बुरा होगा। पिता के सामने ही तुम अपनी करतूत से इस असीम समृद्धिशालिनी भरतकुल की राजलक्ष्मी को नष्ट कर दोगे, और अभिमान से बावले होकर पुत्र, भाई, बन्धु, मित्र आदि का और अपना भी जीवन सङ्कट में डाल दोगे। इसलिए मैं बारम्बार मना करता हूँ कि तुम कुलघाती, कायर, कुमति और कुपथगामी होकर माता-पिता को शोकसागर में मत डालो।

भीष्म इतना कहकर चुप हो रहे। दुर्योधन क्रोध के मारे लम्बी साँमें छोड़ने लगा। तब द्रोणाचार्य ने उससे कहा—भीष्म और वासुदेव, दोनों ही महाप्राज्ञ, मेधावी, दम-सम्पन्न और शास्त्र का बहुत ज्ञान प्राप्त किये हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इनके वचन धर्म-अर्थ से सङ्गत ११ होने के सिवा तुम्हारे लिए हितकारी हैं। तुम अनन्य भक्ति के साथ उन वचनों को मान लो।

श्रीकृष्ण और भीष्म ने जो कहा है उसे बंखटके कर डालो; बुद्धिभ्रम में पड़कर वासुदेव का अनादर मत करना। कर्ण आदि जो दुर्बुद्धि पुरुष तुम्हें युद्ध के लिए उत्तेजित कर रहे हैं, वे कभी तुमको विजय नहीं दिला सकेंगे। युद्ध छिड़ जाने पर वे औरों के ऊपर युद्ध का बोझ डालकर आप निश्चिन्त हो जायेंगे। इसलिए पुत्र, भाई आदि आत्मीयों और प्रजा का अनर्थक विनाश मत कराओ। तुम यह निश्चय जानो कि जिस सेना के रक्षक वासुदेव और अर्जुन हैं उसे कभी कोई हरा नहीं सकता। इस समय जो प्रधान हितचिन्तक श्रीकृष्ण और भीष्म के वचनों को नहीं मानोगे तो तुम्हें पछताना पड़ेगा। महात्मा परशुरामजी ने अर्जुन के बारे में जो कहा है, अर्जुन उससे भी हजार गुना श्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्ण के बारे में तो कुछ कहना ही नहीं है। देवता भी उनके प्रताप की आँच नहीं सह सकते। अब और तुमसे प्रिय या हित की बात का प्रस्ताव करना बेकार है। बन्धुओं को जैसा कहना चाहिए था वैसा कहा जा चुका। अब जैसी रुचि हो, वैसा करो। मैं तुमसे अधिक कुछ कहा नहीं चाहता।

वैशम्पायन कहते हैं कि अब महामति विदुर ने क्रोधी दुर्योधन की ओर देखकर कहा—हे भरतश्रेष्ठ, मैं तुम्हारे लिए कुछ शोक नहीं करता। मैं तो तुम्हारे इन बूढ़े पिता और माता के लिए शोक से विह्वल हो रहा हूँ। हाय ! ये तुम्हारे ऐसे कुलाङ्गार, पापी, कुपुत्र को उत्पन्न करने के कारण, अन्त को हतमित्र, हतभाग्य और अनाथ होकर, भिक्षावृत्ति स्वीकार करके, कटे पङ्खवाले पत्तो की तरह, शोक से विह्वल होकर इधर-उधर भटकेंगे।

२१

इसके बाद धृतराष्ट्र ने कहा—बेटा, महात्मा श्रीकृष्ण ने जो योगक्षेम-सम्पादक शुभ वचन कहे हैं उन्हें तुम सुनो और मानो। ऐसा करोगे तो इन अद्भुत कर्म करनेवाले श्रीकृष्ण की सहायता से हमारी सब इच्छाएँ पूरी होंगी; सब राजा तुम्हारे अधीन होकर तुम्हारा सम्मान करेंगे। इस समय तुम श्रीकृष्ण के साथ युधिष्ठिर के पास जाओ। भरतकुल की भलाई के लिए पूर्ण रूप से शान्ति स्थापित करो। बेटा, मेरी समझ में सन्धि करने का यही ठीक समय है। इस कारण इस समय को हाथ से जाने न दो। दयालु श्रीकृष्ण ने तुम्हारे कल्याण की इच्छा से शान्ति की प्रार्थना करते हुए ये बातें कही हैं। जो तुम न मानोगे तो युद्ध में अवश्य तुम्हारी हार होगी।

२७

एक सौ छब्बीस अध्याय

भीष्म और द्रोण का दुर्योधन को फिर समझाना-बुझाना

वैशम्पायन कहते हैं कि धृतराष्ट्र के कह चुकने पर समान रूप से व्यथित भीष्म और द्रोणाचार्य दुर्योधन से कहने लगे—हे दुर्योधन, अभी वासुदेव और अर्जुन ने युद्ध की तैयारी नहीं

की है। अभी गाण्डीव धनुष पर डोरी नहीं चढ़ी है। अभी पुराहित धौम्य ने शत्रु-सेना के विनाश के लिए हवन नहीं किया है। जब तक क्रोधित होकर युधिष्ठिर तुम्हारी सेना को नहीं देखते हैं उससे पहले ही बैर को शान्त कर लो। अभी प्रचण्ड धनुषवाले गदा-पाणि भीमसेन तुम्हारे पक्ष के यादवाओं के सामने नहीं आये हैं। अभी वे भीमसेन दण्ड-पाणि यमराज की तरह गदा हाथ में लिये तुम्हारी सेना के समुद्र को मथते हुए इधर-उधर नहीं विचरे हैं। अभी हाथियों पर चढ़कर लड़नेवाले वीरों के मस्तक, पक्षे हुए फलों के समान, भीमसेन की गदा की चोट से समरभूमि में नहीं गिरें हैं। अभी नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, शिखण्डी, धृष्टकेतु आदि अस्त्रज्ञ वीर—महासागर में भेग की तरह—तुम्हारी सेना के भीतर नहीं घुसे हैं। अभी राजाओं के सुकुमार शरीर तीक्ष्ण वाणों से घायल नहीं हुए हैं। अभी फुरतीले महायादवा अस्त्रज्ञ वीरों ने चन्दन-चर्चित अगुरु-सुगन्धित हार-पदक आदि आभूषणों से अलङ्कृत वक्षस्थलों में

१० लोहे के तीक्ष्ण दृष्टियार नहीं मारें हैं। आगे होनेवाला भयानक हत्याकाण्ड इसी दम रोक दो। तुम सिर झुकाकर राजाधिराज युधिष्ठिर को प्रणाम करो और वे दोनों हाथों से तुमका गले से लगा लें। वे शान्ति के लिए ध्वजा-अङ्गुश-पताका आदि के चिह्नों से युक्त और रत्नों-पथियुक्त तथा जड़ाऊ अँगूठियों से शोभित अपना दाहना हाथ तुम्हारे कंधे पर रखें और पीठ पर फेंकें। साखू-मदश कन्धोंवाले महाबाहु भीमसेन शान्ति के साथ तुमसे कुशल-प्रश्न करें और अर्जुन, नकुल, सहदेव तुमका प्रणाम करें। तुम स्नेह के साथ उनका मस्तक मूँघो और उनसे प्रेम से बोलो। ये सब राजा तुम्हें पाण्डवों से मिलते देखकर आनन्द से आँसू बहावें। सब राजधानी में कुशल-समाचार की घोषणा हो और तुम सन्ताप-रहित

१८ होकर आतृस्नेह के साथ इस साम्राज्य के सुख भाँगो।

एक सौ सत्ताईस अध्याय

दुर्योधन का उत्तर

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, कौरव-सभा के बीच अप्रिय वचन सुनकर राजा दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से कहा—हे केशव, सोच-समझकर तुमको ऐसी बातें कहनी चाहिए थीं। तुम पाण्डवों का पक्ष लेकर नाहक मेरी निन्दा करते हो। किन्तु मैं पृच्छता हूँ कि तुम क्या बलाबल का विचार करके मेरी निन्दा कर रहे हो? न केवल तुम्हीं प्रत्युत विदुर, महाराज, आचार्य और पितामह भी मेरी निन्दा किया करते हैं। परन्तु मैं बहुत सोचकर भी अपना रत्ती भर अपराध नहीं देखता। तो भी तुम सब लोग मुझे भला-बुरा कहते हो।

युधिष्ठिर में जूआ खेलने की लत थी । शकुनि ने उनको खेल में जीत लिया तो उसमें मेरा क्या दोष ? बल्कि मैंने उस समय उनकी जीती हुई सब सम्पत्ति फेर देने की आज्ञा दी थी । हे मधुसूदन ! पाण्डव फिर जुए में सब हारकर वन जाने के लिए बाध्य हुए, तो उसमें ही मेरा क्या दोष है ? वे किस कारण हमें शत्रु समझकर स्वयं अत्यन्त असमर्थ होकर भी हमसे वैर ठानते हैं और युद्ध करने को तैयार हैं ? हमने उनका क्या बिगाड़ा है ? वे हमारे किस अपराध से पाण्डवों के साथ मिलकर हमारे अनिष्ट की चेष्टा कर रहे हैं ? हम लोग युद्ध या धर्म की से डरकर इन्द्र के आगे भी नहीं झुक सकते । हे कृष्ण, युद्ध में हमको हराने की हिम्मत रखने-वाला कोई क्षत्रिय पृथ्वी पर नहीं देख पड़ता । पाण्डवों की कौन कहे, देवता भी युद्ध में भीष्म, द्रोण और कर्ण को मार नहीं सकते । हे केशव, अपना धर्म पालते हुए यथासमय युद्ध में मरने से भी हमें स्वर्ग प्राप्त होगा । युद्ध-भूमि में शर-शय्या पर सोना ही क्षत्रियों का प्रधान धर्म है । हम शत्रुओं के सामने न झुककर अगर युद्ध के मैदान में शरशय्या पर सदा के लिए सो रहेंगे तो भी हमें कुछ परवा नहीं । वीर वंश में उत्पन्न क्षत्रिय जाति का कौन पुरुष, डर के मारे, शत्रु के आगे सिर झुका सकता है ? मातङ्ग मुनि का मत है कि उद्यम को ही पौरुष कहते हैं । इसलिए सदा उद्यम का सहारा लेना चाहिए, दबना अनुचित है । बीच से टूट जाना अच्छा, झुकना ठीक नहीं । हित और मान चाहनेवाले लोग मातङ्ग मुनि के इस उपदेश पर ही चलते हैं । मुझ सखीसे लोग भक्तिवश केवल ब्राह्मणों के ही आगे सिर झुकाते हैं और अन्य सारी चिन्ताएँ छोड़कर एंमा ही व्यवहार करते हैं । यही क्षत्रिय का धर्म है । मुझे यही पसन्द है । मेरे पिता ने पहले जो पाण्डवों को राज्य का अंश देने की अनुमति दी थी, वह मेरे जीते जी पूरी नहीं होगी । हे जनार्दन, धृतराष्ट्र जब तक जीते हैं तब तक हम लोग या पाण्डव कोई राजा नहीं हो सकता ; इनके पीछे निबट लेंगे । हे केशव ! मैं जब बालक और पराधीन था, तब चाहे अज्ञान से हो चाहे भय से, मेरा अदेय राज्य पाण्डवों को दे दिया गया था । इस समय मेरे जीते जी पाण्डव उसको नहीं पा सकते । यहाँ तक कि सुई की नोक भर भी ज़मीन मैं, युद्ध के बिना, पाण्डवों को नहीं दूँगा ।

१०

२०

२५

एक सौ अट्ठाईस अध्याय

दुर्योधन का सभा से उठ जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, दुर्योधन के यों कह चुकने पर महात्मा श्रकृष्ण ने क्रोध से आँखें लाल करके मुसकुराकर कहा—हे दुर्योधन ! धैर्य धरा, बहुत जल्द घोर सङ्ग्राम होगा । तुम भाइयों और मन्त्रियों के साथ युद्ध-भूमि में वीर-शय्या पर सोओगे । हे मूढ़, तुम समझते

हा कि पाण्डवों से तुमने कोई बुरा व्यवहार नहीं किया। अच्छा, इस बारे में सभा के लोग ही विचार करके देखें। यह कौन नहीं जानता कि तुम वीर पाण्डवों के असीम ऐश्वर्य को देखकर जल उठे और फिर शकुनि के साथ पड्यन्त्र करके कपट-शूत रचकर तुम्हीं ने पाण्डवों को खेलने के लिए बुलाया? सरलस्वभाव तुम्हारे श्रेष्ठ सजानीय और आत्मीय भी तुम्हारे अन्याय-पूर्ण कपट-व्यवहार को देखते रहे। शास्त्र में लिखा है कि प.सों के खेल में मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, भेदभाव बढ़ता है और उससे दुष्टों को विपत्ति का सामना करना पड़ता है। तुमने यह सब जानकर भी दुष्टों की सलाह से कपट के पाँसों का खेल रचकर यह घोर अनर्थ खड़ा कर दिया है। कुल और शील में श्रेष्ठ, पाण्डवों को प्राण से भी प्यारी, रानी द्रौपदी को तुमने भरी सभा में बुलवाकर कटु, असह्य वचन कहकर उनका जैसा अपमान किया है वैसा अपनी भाभी का अपमान और कौन करेगा? पाण्डवों के वन जाते समय दुःशामन ने जो बातें कही थीं उन्हें किस कुरुवंशी ने नहीं सुना? तुमने पाण्डवों के साथ जैसा बुरा व्यवहार किया है वैसा व्यवहार अपने भाइयों के साथ और कौन करेगा? हे दुर्योधन! तुमने, कर्ण और दुःशामन ने नृशंस अनार्य पुरुषों की तरह बारम्बार पाण्डवों के लिए, उनके सामने, कटु वचन कहे हैं।

देखो, तुमने लड़कपन में पाण्डवों को उनकी माता कुन्ती के साथ जला डालने का यत्न किया था; परन्तु पाण्डवों के सौभाग्य से तुम्हारा मनोरथ सफल नहीं हुआ। पाण्डव उम्र विपत्ति से छुटकारा पाकर अपनी माता के साथ एकचक्रा नगरी में बहुत दिनों तक ब्राह्मण के घर छद्मवेष से रहे। तुमने विप, साँप आदि अनेक उपायों से पाण्डवों को मार डालने का यत्न किया, किन्तु कृतकार्य नहीं हो सका। तुमने इस तरह बारम्बार पाण्डवों के अनिष्ट की चेष्टा की है। फिर तुम्हारा यह कहना कैसे ठीक हो सकता है कि तुमने पाण्डवों का कोई अपराध नहीं किया?

पाण्डवों के प्रार्थना करने पर भी तुम उन्हें उनका पैतृक अंश, आधा राज्य, नहीं देते हो। किन्तु तुम्हें शीघ्र ही ऐश्वर्यहीन और जीवनरहित होकर सारा राज्य उन्हें दे देना पड़ेगा। कैसे आश्चर्य की बात है कि सदा नराधम और नीच की तरह, तरह-तरह से, पाण्डवों के अनिष्ट की चेष्टा करके भी तुम इस समय अपने को निर्दोष सिद्ध कर रहे हो! तुम्हारे पिता, माता, भीष्म, द्रोण और विदुर तुमसे बारम्बार शान्ति के लिए कह रहे हैं, पर तुम नहीं मानते। हे दुर्योधन, इस समय सन्धि होने से दोनों पक्षों का लाभ है। किन्तु तुम उस पर राजी नहीं होते इससे बढ़कर मूर्खता और क्या हो सकती है! तुम हितैषियों के वाक्य न मानकर धर्म और यश को मिटानेवाला कार्य करना चाहते हो। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि तुम्हारा भला न होगा।

वैशम्पायन कहते हैं कि श्रीकृष्ण के यों कहने पर दुःशामन ने अश्वत्थामा शील दुर्योधन से कहा—राजन्, जो आप राजी-खुशी से पाण्डवों के साथ सन्धि नहीं करेंगे तो कुरुवंश

के लोग आपको बाँधकर पाण्डवों को सौंप देंगे। पिता, पितामह और आचार्य कर्ण को, आपको और मुझे बाँधकर पाण्डवों के पास भेज देंगे।

मर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाला, निर्लज्ज, दुर्मति दुर्योधन भाई की इन बातों से और भी उत्तेजित और क्रोधित होकर अजगर की तरह साँसें लेने लगा। फिर असभ्य पुरुष की तरह श्रीकृष्ण, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य और सोमदत्त आदि माननीय पुरुषों का अनादर करके वह सभा से उठकर चल दिया। उसके पीछे और भाई भी चले गये।

दुर्योधन को क्रोध के मारे भाइयों के साथ सभा से उठकर जाते देखकर पितामह भीष्म ने वासुदेव से कहा—हे जनार्दन, जो पुरुष धर्म-अर्थ का ध्यान छोड़कर क्रोध के अधीन हो जाता है उसके शत्रु उसे शीघ्र ही सङ्कट में पड़ा देखकर हँसते हैं। यह दुरात्मा राजपुत्र दुर्योधन ३० उपाय से अनभिज्ञ, वृथा राज्याभिमानी और क्रोध लोभ आदि शत्रुओं के हाथ का खिलौना है। इसके अनुगामी राजा भी काल से पके हुए फल की तरह [मौत के मुँह में] गिरनेवाले हैं।

ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने भीष्म, द्रोण आदि महात्मा वृद्ध पुरुषों को सम्बोधन करके कहा—हे महात्माओं, आप लोग इस ऐश्वर्य-मदोन्मत्त दुर्योधन का दमन नहीं करते, यह बड़ा अन्याय हो रहा है। जो उपाय करने से कुल का कल्याण हो सकता है वह इस समय के योग्य कर्तव्य मैंने साँच लिया है। हे भरतवंशियों, जो आप लोगों को रुचे तो मैं आपके सामने अनु-कूल और हितकारी वचन कहता हूँ, सुनिश्च। बड़े भोजराज उग्रसेन का पुत्र दुरात्मा कंस पिता की ज़िन्दगी में ही उनका अधिकार और ऐश्वर्य छीनकर आप राजा बन बैठा था। मृत्यु के वशीभूत और बन्धु-बान्धवों के द्वारा त्यागे गये कंस को मैंने, सबके भले के लिए, युद्ध में मार डाला। फिर जातिवालों के साथ सत्कारपूर्वक महात्मा आहुक के पुत्र उग्रसेन को उनका राज्य मैंने अर्पण कर दिया। सब यादव, अन्धक और वृष्णिगण, कुल की रक्षा के लिए, एक कंस को छोड़कर परस्पर मिलकर सुख-समृद्धि भोग रहे हैं।

४०

देवासुर-संग्राम के समय हथियारों के उठने और लोकों का विनाश होने से पहले प्रजापति ब्रह्मा ने कहा था कि इस युद्ध में दैत्य, दानव, असुर हारेंगे, और आदित्य, वसु, रुद्र आदि देवता विजयी होंगे। देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग और राक्षस क्रुद्ध होकर परस्पर एक दूसरे का विनाश करेंगे। ब्रह्मा ने यों साँचकर धर्म से कहा—तुम दैत्यों और दानवों को बाँधकर वरुण के हाथ में सौंप दे। ब्रह्मा की आज्ञा पाकर धर्म ने दैत्यों और दानवों को बाँधकर वरुण के हाथ में सौंप दिया। जलेश्वर वरुण ने उन्हें अपने पाश और धर्म के पाश से बाँधकर यज्ञ-पूर्वक समुद्र के भीतर रख दिया। हे महात्माओं! आप लोग भी कर्ण, शकुनि, दुःशासन और दुर्योधन को बाँधकर पाण्डवों को सौंप दीजिए। कुल की रक्षा के लिए एक व्यक्ति को, गाँव की रक्षा के लिए कुल भर को, जनपद की रक्षा के लिए सारे गाँव को और

आत्म-नृत्ता के लिए सारी पृथ्वी को त्याग देना चाहिए। इसलिए हे महाराज धृतराष्ट्र, आप दुर्योधन को बांधकर पाण्डवों के पास भेज दीजिए और उन्हें अपनाइए। हे क्षत्रिय-
५० श्रेष्ठ, दुर्योधन के कारण सब क्षत्रियों का संहार न होने पावे।

एक सौ उनतीस अध्याय

दुर्योधन को गान्धारी का समझाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, प्रजापालक राजा धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण के वचन सुनकर जल्दी से सब धर्मों के ज्ञाता विदुर से बोलें—हे तात, तुम दूरदर्शिनी गान्धारी के पास जाकर उन्हें यहाँ ले आओ। मैं और वह दोनों मिलकर दुर्योधन को समझावेंगे। जो गान्धारी दुर्बुद्धि, दुष्टों की सङ्गति में भूले हुए, दुरात्मा दुर्योधन को शान्त करके सुमार्ग पर ला सकीं तो हम अपने परम हितैषी वासुदेव की आज्ञा का पालन कर सकेंगे। गान्धारी यदि दुर्योधन की बुलाई हुई इस धार विपत्ति को टाल सकेंगी तो हम लोग मदा मुख से रहकर जीवन बिता सकेंगे।

हे जनमेजय, धृतराष्ट्र की आज्ञा पाते ही विदुर दूरदर्शिनी गान्धारी को वहाँ ले आये। धृतराष्ट्र ने कहा—देखो गान्धारी, तुम्हारा उद्दण्ड पुत्र पेश्वर्य के लोभ से बावला होकर पेश्वर्य और जीवन तक गँवाने को तैयार है। मर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाला मूढमति दुर्योधन हितैषियों के श्रेष्ठ वचनों का अनादर करके, अत्यन्त अशिष्टता के साथ, पापी और दुराचारी सहायकों को साथ लेकर सभा से उठ गया है।

वैशम्पायन कहते हैं कि स्वामी के वचन सुनकर यशस्विनी गान्धारी कल्याण की इच्छा से कहने लगीं—महाराज ! राज्य की इच्छा रखनेवाले, मरने के लिए तैयार, उस अपने बेटे को जल्दी बुलाइए। धर्म-अर्थ का मिटानेवाला, शान्ति-शून्य, असन्तुष्ट पुरुष कभी राज्य नहीं पा सकता; तथापि विनय-विहीन दुर्योधन को राज्य मिल गया है। आप उसके बुरे चरित्र को जानकर भी पुत्रस्नेह के कारण उसका साथ देते जाते हैं। इस कारण इस बारे में आप ही निन्दा के पात्र हैं। महाराज ! पापी दुर्योधन पूर्ण रूप से काम, क्रोध, मोह के वश में है। इस समय बलपूर्वक उसे मना करना आपकी शक्ति के बाहर है। आपने जैसे मूढ़बुद्धि, बुरे मन्त्री और सहायकों को साथ रखनेवाले, दुरात्मा और लोभी को राज्य का अधिकार दिया है वैसे ही उसका फल आप भोग रहे हैं। मैं कह नहीं सकती कि आप किस कारण इस घर की फूट को लापरवाही से देख रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि स्वजन आपको त्याग देंगे, और शत्रु आपका उपहास करेंगे। देखिए, आत्मीय लोगों के साथ साम और दान का व्यवहार करने से अगर आई हुई विपत्ति टल सकती हो और सब काम बनता हो, तो फिर कौन बुद्धिमान पुरुष दण्डनीति का प्रयोग करने को तैयार होगा ?

वैशम्पायन कहते हैं कि वृद्ध राजा-रानी की आज्ञा से विदुर फिर दुर्योधन को सभा-भवन में बुला लाये। दुर्योधन की आँखें लाल हो रही थीं। वह क्रोध के मारे साँप की तरह फुफ-कारता हुआ लम्बी साँसें ले रहा था। माता के वचन सुनने के लिए दुर्योधन फिर सभा में आया। तब पतिव्रता गान्धारी शान्ति की इच्छा से उस, सुमार्ग से हटकर कुपथगामी हो रहे, पुत्र की निन्दा करके कहने लगीं—बेटा, मेरी बातों को मन लगाकर सुनो। सुनेगे और मानेंगे तो अन्त को भाई-बन्धुओं के साथ सुख से सब भोग भोगोगे। भैया! तुम्हारे पिता महाराज धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुर आदि अन्य आत्मीय लोगों ने तुमसे जो कहा है उसे मान लो। सन्धि कर लोगे तो भीष्म पितामह, महाराज धृतराष्ट्र, मैं और द्रोण आदि सब तुमसे सन्तुष्ट रहेंगे—सब की बात रह जायगी। बेटा! केवल इच्छा करने पर ही राज्य का लाभ, राज्य की रक्षा और राज्यसुख का उपभोग निर्भर नहीं है। जितेन्द्रिय बुद्धिमान् पुरुष ही राज्यभोग के योग्य होता है।



२०

काम और क्रोध मनुष्य के कार्य को बिगाड़ देते हैं—अर्थ का नाश कर देते हैं। जो भाग्यशाली राजा इन दोनों शत्रुओं को जीत लेता है वही पृथ्वी के राज्य का सच्चा अधिकारी है।

प्रभुता करना टेढ़ी खीर है। दुरात्मा लोग सहज ही राज्य पा जाते हैं, किन्तु वे उसे अपने पास रखने में समर्थ नहीं होते। उच्च पद की इच्छा रखनेवाले को चाहिए कि पहले अपनी सब इन्द्रियों को वश में करके धर्म और अर्थ के कामों में लगावे। इन्द्रियों का निग्रह हो जाने पर, ईधन से बढ़ी आग की तरह, मनुष्य की बुद्धि बढ़ती है। अशिक्षित और दुष्ट घोड़ा जैसे अनाड़ी सवार को गिराकर मार डालता है वैसे ही वश में न रहनेवाली इन्द्रियाँ मूर्ख पुरुष के प्राणनाश का कारण होती हैं। जो मनुष्य मन को जीते बिना मन्त्रियों को वश में रखना चाहता है, अथवा मन्त्रियों को अपने काबू में किये बिना शत्रुओं को जीतना चाहता है, वह विवश होकर ऐश्वर्य से अष्ट होता है। अपना हित चाहनेवाले को

चाहिए कि पहले मन को ही शत्रु समझकर उस पर आक्रमण करे और फिर मन्त्रियों तथा शत्रुओं को वश करने की चेष्टा में लगे ।

जो मनुष्य जितेन्द्रिय है, धीर है, मन्त्रियों को वश में किये हुए है, और जो देखभाल तथा सोच-समझकर काम करता है और अपने विरोधियों को यथायोग्य दण्ड देता है, उसी के पास ३० राजलक्ष्मी दृढ़ता के साथ रहना चाहती है । महीन छंदवाले जाल को जैसे बड़ी मछलियाँ छिन्न-भिन्न कर देती हैं, वैसे ही शरीर में ही रहनेवाले काम और क्रोध मनुष्य के ज्ञान को नष्ट कर देते हैं । रागद्वेष-शून्य होने के कारण मनुष्य स्वर्ग को आवेंगे, इसी डर के मारे, देवताओं ने काम और क्रोध से स्वर्ग का द्वार बन्द कर दिया है । इसी से मनुष्य के हृदय में स्वभाव से ही काम और क्रोध की अधिकता होती है । जो बुद्धिमान राजा काम, क्रोध, लोभ, दम्भ और दर्प को अच्छी तरह जीतना जानता है वही पृथ्वी का शासन करता है । जो राजा धर्म और अर्थ प्राप्त करने की इच्छा रखता हो और शत्रुओं को हराना चाहता हो उसे सदा इन्द्रियों के दबाने में लगे रहना चाहिए । जो पुरुष काम और क्रोध के वशीभूत होकर आत्मीय स्वजनों और अन्य लोगों से कपट का व्यवहार करता है उसे कभी सहायक नहीं मिलते ।

बेटा ! पाण्डव महाबुद्धिमान्, शत्रुनाश की शक्ति रखनेवाले और असाधारण पराक्रमी शूर हैं । उनसे मेल करके ही तुम सुख से पृथ्वी का राज्य भोग सकोगे । बेटा दुर्योधन, पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण ने ठीक ही कहा है; अर्जुन और वासुदेव को कोई नहीं जीत सकता । इसलिए तुम श्रीकृष्ण की शरण लो । ये महाबाहु सहज ही बड़ से बड़ काम कर सकते हैं । इनको प्रसन्न रखने से निःमन्देह दोनों पक्ष सुखी होंगे । दुर्युद्धि पुरुष का लक्षण यही है कि वह प्राज्ञ, हित चाहनेवाले, विद्वान् बन्धुओं और स्वजनों का कहा न मानकर ऐसे काम करता है जिनसे शत्रुओं का आनन्द बढ़े । भैया, युद्ध में कुछ भी कल्याण की या धर्म-अर्थ के सिद्ध होने की सम्भावना नहीं है । फिर उससे किस तरह सुख मिल सकता है ? विशेपकर युद्ध में इसका कुछ भी निश्चय नहीं कि कौन पक्ष जीतेगा ।

४० इसलिए ऐसे अनर्थ के काम में मन न लगाओ ।

हे शत्रुदमन ! तुम्हारे पिता महाराज, भीष्म और वाह्लीक आदि ने इसी भेदभाव के डर से पाण्डवों को न्याय से प्राप्य उनका हिस्सा दे दिया था । तुम जो इस समय शूर पाण्डवों के बल से शत्रुहीन हो गई पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य कर रहे हो सो उसी व्यवहार का फल है । इसलिए यदि तुम मन्त्रियों और भाइयों के साथ सुख से राज्यसुख भोगना चाहते हो तो पाण्डवों को आधा राज्य दे दो । आधा राज्य पाण्डवों का प्राप्य अंश है । भैया, पृथ्वी का आधा राज्य तुम्हारे लिए काफी है । उससे तुम मजे से भाई, मन्त्री, भृत्य आदि के साथ अपनी जीविका चला सकते हो । इस प्रकार हितैषियों का कहा मानने से संसार में तुम्हारा यश फैल जायगा ।

श्रोमान्, बुद्धिमान्, धीर, जितेन्द्रिय पाण्डवों से विरोध और युद्ध करोगे तो तुम्हें अवश्य इस महाराज्य के सुख और जीवन से हाथ धोने पड़ेंगे ।

मेरा कहा मानो, पाण्डवों को उनका हिंसा दे दो, मित्रों और भाइयों के क्रोध को शान्त करो और यथोचित रूप से प्रजा-पालन में लगे रहो । राज्य से भ्रष्ट होकर पाण्डव तेरह वर्ष तक वन में रहे हैं । तुम यह उनका बड़ा भारी अपकार कर चुके हो । उस अपकार के कारण पाण्डवों के हृदय में जो क्रोध की आग धधक रही है उसे इस समय शान्त कर दो । यही बुद्धि-मानी का काम होगा । तुम पाण्डवों का राज्य हज़म कर लेना चाहते हो, पर यह कभी नहीं हो सकता । क्रोधी कर्ण या तुम्हारा भाई दुःशासन, ये तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं कर सकेंगे । भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण, भीमसेन, अर्जुन और धृष्टद्युम्न आदि वीर याद्वारा अगर क्रुद्ध होकर एक दूसरे से युद्ध करने खड़े होंगे तो यह निश्चय है कि घोर लोकाक्षय होगा । इस कारण क्रोध के वश होकर व्यर्थ कुरुवंश का नाश मत कराओ । तुम्हारे कारण संसार चौपट न होने पावे । ५०

हे मूढ़, तुम समझते हो कि भीष्म, द्रोण आदि याद्वारा तुम्हारे लिए पूरी शक्ति लगाकर पाण्डवों से लड़ेंगे; किन्तु तुम्हारा यह समझना भूल है । ये महात्मा समझते हैं कि इस राज्य पर तुम्हारा और पाण्डवों का समान स्वत्व है । इसके सिवा भीष्म, द्रोण आदि याद्वारा कौरवों और पाण्डवों पर समान प्रीति रखते हैं । पाण्डवों में इतनी विशेषता है कि वे तुमसे बढ़कर धर्मात्मा और विनीत हैं । ये महात्मा वीर लोग तुम्हारे राज्य से वृत्ति पाते हैं, इसलिए तुम्हारी ओर से लड़कर युद्ध में प्राण भले ही दे दें किन्तु युधिष्ठिर पर क्रोध नहीं करेंगे । मेरा कहना इतना ही है कि कोई मनुष्य लोभ से पराई सम्पत्ति नहीं ले सकता । यदि लेता भी है तो उसे भाग नहीं सकता । इसलिए लोभ छोड़कर सन्धि कर लो । ५४

एक सौ तीस अध्याय

दुर्योधन आदि का श्रीकृष्ण को कैद कर लेने की सलाह करना ।

वैशम्पायन कहते हैं—दुर्योधन ने माता के अर्थयुक्त मधुर उपदेश को भी अनादर की दृष्टि से देखा । क्रोध से विह्वल दुर्योधन फिर सभा से उठकर अपने साथी नराधमों के पास चल दिया । वहाँ वह द्यूतप्रिय धूर्त शकुनि के साथ सलाह करने लगा । दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण ने आपस में सलाह करके यह निश्चय किया कि राजा धृतराष्ट्र और भीष्म पितामह से मिलकर चतुर श्रीकृष्ण हमें पकड़ने की इच्छा कर रहे हैं । इसलिए हम उससे पहले ही, इन्द्र ने जैसे बलि राजा को पकड़ लिया था वैसे, बलपूर्वक पुरुषसिंह कृष्ण को कैद कर लें । कृष्ण को पकड़ जाने की खबर पाकर पाण्डव लोग, जिसके दाँत तोड़ दिये गये हों उस साँप

की तरह, बिलकुल उत्साह-हीन और किर्तव्यविमूढ़ हो जायेंगे। क्योंकि ये वासुदेव ही उनके रक्षक और सब कल्याणों की प्राप्ति के सहायक हैं। ऐसा होने पर सोमक भी कुछ उद्योग न करेंगे। महाराज धृतराष्ट्र के हाथ-हाथ करते रहने पर भी हम चतुर और अकेले कृष्ण को बलपूर्वक पहले पकड़कर फिर शत्रुओं से युद्ध करेंगे।

महाबुद्धिमान् और इशारे के जानने में प्रवीण सात्यकि ने उन लोगों का यह दुष्ट विचार १० जान लिया। वे उसी समय सभा-भवन के बाहर निकल गये और कृतवर्मा से सलाह करके कहने लगे कि मैं महाबाहु श्रीकृष्ण को यह खबर देने जाता हूँ। तब तक तुम कवच पहनकर, यादव सेना को युद्ध के लिए सुसज्जित करके, व्यूह-रचना के साथ शीघ्र सभा के द्वार पर आ जाओ। अब पर्वत-कन्दरा में प्रवेश कर रहे सिंह की तरह सात्यकि सभा-भवन के भीतर गये। वहाँ जाकर उन्होंने पहले महात्मा श्रीकृष्ण से और फिर राजा धृतराष्ट्र और विदुर से दुर्योधन के इस दुष्ट विचार का हाल कहा। सात्यकि ने हँसकर कहा—ये दुरात्मा लोग धर्म-अर्थ-काम से हीन और सज्जनों के द्वारा निन्दित, दूत के पकड़ने का, नीच कर्म करना चाहते हैं। परन्तु उनकी यह इच्छा सफल नहीं हो सकती। काम, क्रोध और लोभ के वशीभूत इन दुष्टों का अवश्य, अपने इस बुरे विचार के कारण, विनाश होगा। बालक या जड़मति उन्मत्त पुरुष जैसे जलती हुई आग को कपड़े से बाँधना चाहे वैसे ही ये लोग भी अपनी कुबुद्धि के कारण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को कैद करना चाहते हैं।

दूरदर्शी महाप्राज्ञ विदुर सात्यकि के ये वचन सुनकर सब सभासदों के सामने राजा धृतराष्ट्र से कहने लगे—महाराज, आपके पुत्रों के सिर पर काल मँडला रहा है। देखिए, वे इन्द्र के छोटे भाई नारायण के अवतार श्रीकृष्ण को कैद करने की सलाह करके अत्यन्त अयश देने- २० वाला अनुचित काम करने को तैयार हैं। किन्तु वे मूढ़, प्रज्वलित आग में गिरनेवाले पतङ्ग की तरह, श्रीकृष्ण के सामने आकर क्षण भर भी जीते नहीं रह सकते। प्रभावशाली वासुदेव इच्छामात्र से, हाथियों को मारने के लिए उद्यत क्रोधान्ध सिंह की तरह, दम भर में उन दुष्टों को मार सकते हैं। किन्तु धर्मात्मा वासुदेव कभी ऐसा लोकनिन्दित काम न करेंगे।

अब महात्मा श्रीकृष्ण ने मित्रों के सामने ही धृतराष्ट्र की ओर देखकर कहा—महाराज ! या तो दुर्योधन आदि मेरा निग्रह करें, अथवा मैं उन लोगों का दमन करूँ, आप दोनों बातों के लिए अनुमति दे दीजिए। मैं अकेला ही इन दुष्टों को दण्ड दे सकता हूँ; किन्तु ऐसा निन्दित काम मैं न करूँगा। पाण्डवों की सम्पत्ति लेने का उद्योग करके आपके पुत्र अपना राज्य भी खो देंगे। कौरव जो युद्ध करना चाहते हैं तो युधिष्ठिर का काम सिद्ध हुआ समझना चाहिए। अनुचर, मन्त्री, सहायक आदि समेत आपके पुत्रों को पकड़कर मैं अभी पाण्डवों के हाथ में सौंप सकता हूँ। यह मेरे लिए असाध्य नहीं है और ऐसे दुष्टों के साथ ऐसा व्यवहार करना बुरा भी नहीं।

किन्तु हे भरतश्रेष्ठ, क्रोध और पापबुद्धि से उत्पन्न होने के कारण यह काम मेरे लिए निन्दित है। इसलिए आपके आगे मैं ऐसा नहीं करूँगा। दुर्योधन की जो इच्छा है वही हो। उसमें मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं; बल्कि मैं वैसा करने के लिए आपके पुत्रों को अनुमति देता हूँ।

श्रीकृष्ण के वचन सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर, राज्यलोभी दुर्योधन को उसके मन्त्री, मित्र, भाई, अनुचर आदि के साथ शीघ्र यहाँ ले आओ। देखूँ, शायद फिर कुछ चेष्टा करके उसे सुमार्ग पर ला सकूँ।

३१

बूढ़े राजा की आज्ञा पाकर विदुर फिर दुर्योधन को, उसकी इच्छा न रहने पर भी, सभा-भवन में बुला लाये। कर्ण, दुःशासन और अन्य दुष्ट राजाओं के साथ रहनेवाले दुर्योधन से धृतराष्ट्र ने कहा—अरे पापी, क्रूर, तू नीच कर्म करने में तत्पर पापी सहायकों के साथ मिलकर दारुण पाप करना चाहता है! मैंने सुना है, इन पापी नराधमों की सहायता से तू दुर्धर्ष श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिए तैयार है। तरे ऐसे मूढ़ कुलाङ्गार के सिवा और कौन ऐसे सज्जनों द्वारा निन्दित, अकीर्ति के कारणरूप और असाध्य कार्य को करने का दुराग्रह कर सकता है? हाय! इन्द्र सहित देवता भी जिनको बलपूर्वक पकड़ नहीं सकते उन्हीं केशव को तू, चन्द्रमा को पकड़ने की इच्छा करनेवाले बालक की तरह, पकड़ लेने की इच्छा करता है! तू क्या नहीं जानता कि देव, गन्धर्व, असुर, मनुष्य, नाग आदि कोई भी प्राणी युद्ध में वासुदेव के सामने नहीं ठहर सकता? तू अच्छी तरह समझ ले कि हाथ से हवा या आग को पकड़ना जैसे दुष्कर है, सिर पर पृथ्वीमण्डल को लाद लेना जैसे असाध्य है, वैसे ही बलपूर्वक वासुदेव को पकड़ना भी त्रिकाल में असम्भव है।

अन्धे राजा धृतराष्ट्र जब समझा चुके तब महामति विदुर ने अमहन्शील दुर्योधन को लक्ष्य करके कहा—हे भरतश्रेष्ठ, वानरों का राजा महाबली द्विविद सौभ विमान के द्वार पर पूरे पराक्रम के साथ यत्न करके जिन्हें पकड़ने की इच्छा से शिलाएँ बरसाकर भी सफलता नहीं प्राप्त कर सका, उन्हें तुम बलपूर्वक पकड़ना चाहते हो! निर्मोचन नगर में छः हज़ार महाबली असुर अनेक यत्न करके भी जिन्हें पाशों से नहीं बाँध सकें, उन्हें तुम कैद करना चाहते हो! प्रारज्योतिषपुर में महापराक्रमी नरकासुर अनेक दानवों के साथ कोटि यत्न करके भी जिन्हें नहीं पकड़ सका, उन्हें तुम पकड़ना चाहते हो! जिन असाधारण प्रभाववाले पुरुषोत्तम ने लङ्कपन में ही निशाचरी पूतना, पत्नी का रूप रखनेवाले कागासुर और वकासुर को मार डाला; जिन्होंने गोकुल की रक्षा के लिए बायें हाथ पर इतना बड़ा गोवर्द्धन पहाड़ उठा लिया और जिन्होंने अनिष्ट करनेवाले अरिष्टासुर, धेतुकासुर, चाणूर, केशी आदि महाबली असुरों को मार डाला, उन पराक्रमी श्रीकृष्ण को तुमने अब तक नहीं पहचाना? जिन्होंने महायुद्ध में कंस, जरासन्ध, शिशुपाल, दन्तवक्र आदि राजाओं को नष्ट कर दिया; जिनसे महाबाहु बाणासुर,

४०

- ४८ वरुण और अग्नि ने हार मान ली; जिन्होंने कल्पवृक्ष लाकर इन्द्र का घमण्ड चूर कर दिया; जो स्वयं सबके विधाता हैं और जिनका विधाता दूसरा नहीं है, उन पराक्रमी श्रीकृष्ण को तुमने अब तक नहीं पहचाना ? जो सब पौरुषों के आधार हैं, जो अपनी इच्छामात्र से सहज ही सब काम कर सकते हैं, जो प्रलयकाल के महासागर में शंषशय्या पर सोकर योगनिद्रा को स्वीकार करते हैं, जिन्होंने मधु-कैटभ नाम के असुरों को और हयग्रीव दानव को मारा है, उन महापरा-क्रमी नारायण वासुदेव को तुम अब तक नहीं पहचान सके ? क्रुद्ध विपैले नाग के तुल्य, प्रचण्ड तेज-राशि, अनिन्दित श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिए उनके पास जाते ही तुम अपने अनुचरों
- ५३ और सहायकों समेत वैसे ही भ्रम हो जाओगे जैसे पतङ्ग आग में कूदकर जल जाते हैं ।

एक सौ इकतीस अध्याय

श्रीकृष्ण का अपनी महिमा दिखाकर सभा से जाना

- वैशम्पायन कहते हैं कि अब शत्रुदमन महाप्रभावशाली वासुदेव ने दुर्योधन की ओर देख-कर कहा—हे दुर्योधन ! तुम बड़े मूर्ख हो, इसी कारण मुझे अकेला समझकर हराना या पकड़ना चाहते हो । तुम सच समझो, मैं अकेला नहीं हूँ । सब पाण्डव, अन्धक और वृष्णिवंश के यादव, आदित्य, रुद्र, वसु आदि देवता और ऋषि इसी स्थान पर मेरे समीप हैं । इसके बाद शत्रुसेना का संहार करनेवाले वासुदेव ऊँचे स्वर से हँसे । उस समय उनके शरीर से तेज के समूह निकलने लगे । उनके शरीर से विजली के समान तेजस्वी, अँगूठे बराबर, देवता प्रकट होने लगे । उनके मस्तक में ब्रह्मा, हृदय में रुद्र, भुजाओं में लोकपाल, मुख में अग्नि और अन्य अङ्गों में आदित्य, विश्वदेवा, वसुगण, अश्विनीकुमार, साध्यगण और इन्द्र आदि अन्य सब देवता देख पड़ने लगे । इसी तरह बहुत से यक्ष, राक्षस और गन्धर्व उनके शरीर में देख पड़े । दाहने हाथ में धनुर्धर अर्जुन और बाएँ हाथ में हल-मूसल लिये बलराम प्रकट हुए । उनके पृष्ठ भाग में युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव शस्त्र ताने हुए देख पड़े । उनके अग्रभाग में सशस्त्र अन्धक और वृष्णिवंश के यादव देख पड़े । शङ्ख, चक्र, गदा, शक्ति, शार्ङ्ग धनुष, हल और नन्दक आदि सब प्रज्वलित शस्त्र उनके हाथों में थे । उनके कान, नाक, नेत्र और रोम आदि के छिद्रों से सूर्य की प्रचण्ड किरणों के समान धुएँ सहित आग की लपटें निकलने लगीं । विश्वभूति वासुदेव का यह घोर रूप देखकर भीष्म, विदुर, सञ्जय और तपस्वी ऋषियों के सिवा सब लोग डर गये और उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं । भगवान् नारायण ने उस समय
- १५ द्रोणाचार्य आदि को दिव्य दृष्टि दे दी, जिससे वे निर्भय होकर भगवान् के उस रूप को देखते रहे । हे भरतश्रेष्ठ, कौरवों की सभा में नारायण के उस अद्भुत रूप को देखकर देवता लोग आकाश से फूल बरसाने और नगाड़ें बजाने लगे ।

तब राजा धृतराष्ट्र ने कहा—हे वासुदेव, हे यादवश्रेष्ठ, कृपा करके मुझे इस समय नेत्र दे दीजिए। मैं केवल आपका रूप देखना चाहता हूँ। आप अपना रूप दिखाकर फिर मेरी दृष्टि हर लीजिएगा। मैं और किसी को देखना नहीं चाहता। वासुदेव ने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ, तुम्हारे दो दिव्य नेत्र हो जायँ।

वासुदेव का विश्वरूप देखने की इच्छा रखनेवाले धृतराष्ट्र को नेत्र प्राप्त हो गये। उनके नेत्र प्रकट होते देख सब राजाओं और ऋषियों को बड़ा विस्मय हुआ। सब लोग मधुसूदन की स्तुति करने लगे। उस समय पृथ्वी काँप उठी, समुद्र विचलित हो उठे, सब राजा विस्मित और चकित हो गये। तब पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने अपनी वह विचित्र दिव्य मूर्ति अदृश्य करके पहले का रूप धारण कर लिया। अब वे ऋषियों से आज्ञा लेकर, कृतवर्मा और सात्यकि का हाथ पकड़े हुए, सभा-भवन से निकलकर जाने को तैयार हुए। उस समय बड़ा कोलाहल हुआ। नारद आदि महर्षि उसी समय वहाँ से अन्तर्धान होकर अपने अभीष्ट स्थानों को चल दिये। उन ऋषियों का एकाएक अन्तर्धान होना भी एक आश्चर्य की बात हुई।

इधर कौरवों ने जब वासुदेव को जाते देखा, तब इन्द्र के पीछे चलनेवाले देवताओं की तरह वे उनके पीछे हो लिये। किन्तु महात्मा वासुदेव ने उनकी ओर देखा भी नहीं। वे धुएँ सहित आग की तरह आगे बढ़ने लगे। द्वार पर पहुँचकर श्रीकृष्ण ने देखा कि दारुक सारथी किंकिणी-जाल-मण्डित, सुवर्णजालयुक्त, सफेद, व्याघ्रचर्म से शोभित, शैव्य सुग्रीव आदि चार घोड़ों से युक्त, मेघ के समान गम्भीर शब्दवाला दिव्य रथ लिये खड़ा है। महात्मा श्रीकृष्णचन्द्र यादवश्रेष्ठ कृतवर्मा के साथ उस रथ पर बैठ गये।

रथ पर बैठकर जब वासुदेव चलने लगे तब महाराज धृतराष्ट्र ने उनसे कहा—

हे जनार्दन, पुत्रों पर जितनी मेरी प्रभुता है सो आपने अपनी आँखों देख लिया। यह भी आपने जान लिया कि कौरवों के भले की इच्छा से मैंने अनेक यत्न किये। सब बातों को देखकर



आप मुझे किसी तरह का दोष न दीजिएगा। हे केशव, पाण्डवों के बारे में मेरे हृदय में कोई बुरा विचार नहीं है। मैं हृदय से शान्ति चाहता था। उसके लिए मैंने दुर्योधन से जो कुछ कहा सो आपको और सब कौरवों को अच्छी तरह मालूम है।

वैशम्पायन कहते हैं कि तब महाबाहु जनार्दन ने महाराज धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह, द्रोण, कृपाचार्य, वाह्लीक और विदुर को सम्बोधन करके कहा—कौरव-सभा में कैसी घटना हुई, दुर्मति दुर्योधन ने क्रोध के वश होकर अशिष्ट की तरह कैसा निन्दित काम करने की चेष्टा की और महाराज धृतराष्ट्र ने कैसे अपने को असमर्थ बताया, सो सब आप लोगों ने प्रत्यक्ष देख लिया। अब मैं युधिष्ठिर के पास जाने के लिए आप लोगों से बिदा होता हूँ।

फिर सबसे बिदा होकर कृष्णचन्द्र ने अपना रथ हँकवा दिया। भीष्म, द्रोण, कृप, विदुर, वाह्लीक, धृतराष्ट्र, अश्वत्थामा, विकर्ण, युयुत्सु आदि महाधनुर्धर महारथी योद्धा कुछ दूर तक उनको पहुँचाने गये। भगवान् वासुदेव कौरवों के सामने ही रथ ठहराकर देवी कुन्ती के पास, उनसे बिदा होने को, गये।

एक सौ बत्तीस अध्याय

कुन्ती और श्रीकृष्ण की वानचीन

वैशम्पायन कहते हैं कि वासुदेव ने बुआ के घर में जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया, और फिर संक्षेप में कौरवों की सभा का हाल यों कह सुनाया—बुआ, मैंने और ऋषियों ने बहुत से युक्तियुक्त हितकारी श्रेष्ठ वचन कहकर सन्धि का प्रस्ताव किया, परन्तु दुर्बुद्धि दुर्योधन ने नहीं माना। इससे जान पड़ता है कि वह पापी अपने अनुगामी दुर्बुद्धि राजाओं के साथ शीघ्र ही, पके हुए फल की तरह, युद्धभूमि में मरकर गिरेगा। अब मैं आपसे बिदा होकर पाण्डवों के पास जाऊँगा। आप उनसे जो कुछ कहना चाहती हैं, सो बताइए। मैं आपका सन्देश सुनना चाहता हूँ।

कुन्ती ने कहा—भैया, तुम धर्मात्मा युधिष्ठिर से मेरी ओर से कहना कि हे पुत्र, पृथ्वी-पालन रूप तुम्हारे महान् धर्म की हानि हो रही है। धर्मपालन के अवसर को तुम वृथा न जाने दे। जैसे वेद के अर्थ को न जाननेवाले अज्ञ वेदपाठी की बुद्धि केवल वेदमन्त्रों का लगातार पाठ करने से नष्ट हो जाती है वैसे ही तुम्हारी बुद्धि भी शान्ति-धर्म को ही देखती है। तुम विधाता के द्वारा विहित अपने क्षत्रिय धर्म को देखो। बाहुबल से अपनी जीविका चलाना ही क्षत्रिय का धर्म है। ब्रह्मा ने क्षत्रिय जाति को अपनी भुजाओं से उत्पन्न करके उसकी यही वृत्ति नियत कर दी है। युद्धरूपी क्रूर कर्म और प्रजापालन ही क्षत्रिय का धर्म है। मैंने वृद्धों के

मुँह से इस विषय की एक कथा सुनी है। वह मैं तुमको सुनाती हूँ। पूर्व समय में धनपति कुबेर राजर्षि मुचुकुन्द पर प्रसन्न होकर उन्हें सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का राज्य देने लगे थे, किन्तु उन्होंने नहीं लिया। मुचुकुन्द ने कहा— मैं अपने बाहुबल से जीता हुआ राज्य भोग करने की इच्छा रखता हूँ। राजा के ये वचन सुनकर कुबेर बहुत विस्मित और प्रसन्न हुए। क्षत्रियधर्मनिष्ठ मुचुकुन्द ने अपनी इच्छा के अनुसार बाहुबल से सब पृथ्वीमण्डल को जीतकर साम्राज्य-भोग किया।

राजा यदि अच्छी तरह प्रजा की रक्षा करता है, तो उसे प्रजा के किये धर्म का चतुर्थांश फल मिलता है। वह यदि धर्म का पालन करता है तो उसे स्वर्ग में देवपद मिलता है। और, अगर वह अधर्म करता है तो नरक में जाता है। राजा यदि यथोचित रूप से दण्डनीति का प्रयोग करता



१०

है तो ब्राह्मण आदि चारों वर्ण अपने-अपने धर्म में लगे रहकर पुण्य-सञ्चय कर सकते हैं। जब राजा भली भाँति अपने धर्म के नीतिसङ्गत कार्य करता है तभी श्रेष्ठ सत्य युग का आविर्भाव होता है। हे धर्मज्ञ, समय के अनुसार राजा होता है या राजा के अनुसार समय होता है, यह सन्देह तुम न करना। राजा के अनुसार ही समय होता है। राजा ही सत्य युग, त्रेता युग, द्वापर युग और कलियुग का प्रवर्तक है। जो राजा अपने अच्छे कर्मों से सत्य युग को प्रवृत्त करता है, वह पूर्ण रूप से स्वर्गभोग करता है। ऐसे ही त्रेता युग को प्रवृत्त करनेवाला राजा आंशिक रूप से स्वर्ग भोग करता है। द्वापर युग को प्रवृत्त करनेवाला राजा यथासम्भव पुण्यफल पाता है। किन्तु कलियुग को प्रवृत्त करनेवाला राजा अत्यन्त पापभागी होकर अनन्त समय तक नरक भोगता है। राजा का दोष सारे जगत् को लगता है और जगत् का दोष राजा को लगता है। इसलिए बेटा, तुम अपने बाप-दादे के समय से चले आ रहे राजधर्म को देखो। तुम जिस धर्म को ग्रहण करना चाहते हो वह राजधर्म नहीं है। कर्हणा के वश होकर लगातार कायरपना, दीनता या सरल भाव ग्रहण करने से, प्रजा-पालन से प्राप्त होने-

२०

वाला फल नहीं मिल सकता। तुम इस समय अपनी बुद्धि के अनुसार जो कर रहे हो वह मेरी, महाराज पाण्डु की और पितामह की आशा और आशीर्वाद के विरुद्ध है। मैं नित्य यही प्रार्थना करती रही हूँ कि तुम यज्ञ, दान, तप, शूरता, प्रज्ञा, सन्तान, महिमा, बल और बड़ी आयु से सम्पन्न रहे। ब्राह्मण भी तुम्हारी बड़ी आयु, धन और वंशवृद्धि के उद्देश्य से सदा देवताओं और पिताओं के लिए स्वाहा और स्वधा का अनुष्ठान करते रहे हैं। देवता और पितर भी क्षत्रिय-कुमारों से दान, वेदपाठ, यज्ञ और प्रजापालन की आशा करते हैं। मेरा यह कहना धर्मसङ्गत है या अधर्मयुक्त, सो तुम स्वभाव से ही जानते हो।

हे कृष्णचन्द्र, मेरे पुत्र पाण्डव विद्वान् और अच्छे कुल में उत्पन्न होकर भी इस समय जीविका बिना क्लेश पा रहे हैं। दान देनेवाले शूर राजा के पास भूखे-प्यासे लोग आकर आश्रय प्राप्त करें और प्रसन्न हों, इससे बढ़कर और धर्म क्या होगा? इस संसार में राज्य पाकर धार्मिक पुरुष को चाहिए कि किसी को धन देकर, किसी को बल से और किसी को मधुर वाणी से अपने अनुगत बना ले। ब्राह्मण भिक्षावृत्ति से जीविका चलावे, क्षत्रिय प्रजा-पालन करे, वैश्य धनोपार्जन करे और शूद्र तीनों वर्णों की सेवा करे; यही सनातन धर्म है। भिक्षा माँगने की तुम्हारे लिए मनाही है और खेती-बारी करना तुम्हारे लिए निषिद्ध है। तुम क्षत्रिय हो, इसलिए तुम्हें बाहुबल से ही अपनी जीविका प्राप्त करनी चाहिए। हे महा-बाहु! साम, दान, भेद, दण्ड, नीति आदि किसी उपाय से तुम शत्रु के हाथ में पड़े हुए अपने पिता के राज्य को प्राप्त करो। हे मित्रों को आनन्द देनेवाले, इससे बढ़कर दुःख और क्या होगा कि तुम्हें पैदा करके भी मैं परायें अन्न से पेट भर रही हूँ! इससे तुम राजधर्म के अनुसार युद्ध करो। कायरों की वृत्ति स्वीकार करके अपने पुरखों का नाम डुबाना अथवा क्षीणपुण्य होकर भाइयों के साथ पापमयी नरक-यातना या बुरी गति प्राप्त करना तुम्हारे लिए सर्वथा अयोग्य है।

एक सौ तैंतीस अध्याय

कुन्ती का विदुला की कथा कहना

कुन्ती ने कहा—हे शत्रुदमन, यहाँ पर मैं उदाहरण के तौर पर विदुला-सञ्जय-संवाद कहती हूँ। यह बहुत प्राचीन इतिहास है। इसे कल्याणदायक समझकर तुम अच्छी तरह युधिष्ठिर के आगे कहना। अच्छे कुल में उत्पन्न बुद्धिमती एक विदुला नाम की राजकुमारी थी। वह क्षत्रिय-धर्म में निरत, आत्माभिमानिनी, उग्र स्वभाववाली और राजसमाज में बहुत जानकार कहलाती थी। विदुला का पुत्र युद्ध में सिन्धुराज से हारकर घर में पड़ा हुआ था। दोनभाव से अपने



पुत्र को पड़े देखकर कठिन स्वभाववाली विदुला इस प्रकार उसको फटकारने लगी—अरे शत्रुओं का आनन्द बढ़ानेवाले, तू मेरा पुत्र नहीं है। तू मेरे गर्भ और अपने पिता के वीर्य से नहीं उत्पन्न हुआ। तू कुलाङ्गार कहीं से इस कुल में आ गया है? तुझमें तनिक भी पौरुष नहीं। तेरा आकार, बुद्धि और प्रकृति नगुसकों की सी है। मर्दों में तेरी गिनती करना भी अनुचित है। हाय! तू बिलकुल निराश हो गया है। तेरी भुजाओं में बल नहीं है। अरे दुर्बुद्धि, जो तू अपना भला चाहता है तो पुरुषों के योग्य युद्ध का भार ग्रहण कर। थोड़े में सन्तुष्ट मत हो। अपने को भूल मत जा। डर छोड़कर उत्साह और तत्परता के साथ शङ्का से व्याकुल चित्त को दृढ़ कर। अरे कायर, हारकर स्वाभिमान गवाँकर वन्धुओं को शोकाकुल और शत्रुओं को आनन्दित करता हुआ इस तरह पड़ा न रह। शीघ्र युद्ध के लिए कमर कम-



कर उठ खड़ा हो। सच है, छोटी नदियाँ थोड़े जल में ही भर जाती हैं, चूहे की अञ्जलि थोड़े ही पदार्थ में भर जाती है और कायर लोग थोड़े ही लाभ में तृप्त और सन्तुष्ट हो जाते हैं।

अरे कुलघातक! साँप के मुँह में हाथ डालकर उसके दाँत उखाड़ने में जल्दी प्राण भले ही दे दे, पर कायरपन के साथ मौत के मुँह का कौर न बन। जीवन की आशा छोड़कर पराक्रम दिखा। बाज़ पत्नी की तरह बेखटक इधर-उधर घूमकर, लड़-भगड़कर या चुपचाप, शत्रुओं पर वार करने का अवसर देखता रह। वज्रपात से मरे हुए पुरुष की तरह तू क्यों पड़ा हुआ है? जल्द उठ। शत्रु से हारकर यों सोना ठीक नहीं है। तू इस तरह दीनभाव से अस्त न हो, बल्कि अपने पौरुष से सर्वत्र प्रसिद्ध होने की चेष्टा कर। सन्धि मध्यम उपाय है, भेद अधम और दान नीच उपाय है। इन नीतियों का सहारा लेने की इच्छा मत कर। दण्ड ही उत्तम उपाय है। उसी दण्डनीति के प्रयोग की चेष्टा कर। तेंदू की लकड़ी की तरह घड़ी भर ही चाहे प्रज्वलित रह, परन्तु जीवन की आशा से ज्वालाहीन भूसी की आग की तरह विषाद के धुएँ से अपने को छिपा मत। बहुत समय तक धुआँ देते रहने की अपेक्षा घड़ी भर का प्रज्वलित रहना बहुत अच्छा है। किसी राजा के घर में गंध की तरह सब सहनेवाला, तंज से हीन, कोमल-

प्रकृति का पुत्र कभी न उत्पन्न हो। रण-निपुण वीर पुरुष शत्रु से युद्ध ठानकर, पौरुष दिखाकर, धर्म के श्रृण से उरिन हो जाते हैं। वे आत्मग्लानि के भागी न होकर प्रसन्न रहते हैं। सफलता मिले चाहे न मिले, उसके लिए समझदार आदमी शोक नहीं करते। बेलगातार बल से सिद्ध होनेवाले काम करते रहते हैं; उन्हें धन की वृष्णा नहीं होती। इसलिए हे पुत्र, या तो अपनी भुजाओं का बल दिखा, नहीं तो मर जा। धर्म से विमुख होकर क्यों जीना चाहता है? अरे नपुंसक! तेरे इष्टापूर्त कर्म, कीर्ति और भोगमूल राज्य का ऐश्वर्य, सब कुछ नष्ट हो चुका है। फिर तू क्यों वृथा जी रहा है? वीर पुरुष, गिरते समय भी, शत्रु को लेकर गिरते हैं। अपनी जड़ कट जाने पर भी पुरुष को कभी खेद न करना चाहिए। इसलिए साहसी और बली धोड़ों की तरह उद्योग और विक्रम दिखा; भार वहन कर और पौरुष-सत्व-स्वाभिमान आदि गुणों को प्रहण कर। तेरे कारण कुल डूब रहा है, उसका उद्धार कर।

जन-समाज में जिसके अद्भुत महत् चरित्र की चर्चा नहीं होती, उसकी गिनती न तो स्त्रियों में है और न मर्दों में; उसका जन्म मनुष्यों की गिनती बढ़ाने का कारण मात्र है। दान, सत्य, तप, विद्या और अर्थ प्राप्त करने के कामों में जिसका यश नहीं प्रसिद्ध हुआ, वह माता की विष्टा के समान है। जो पुरुष वेद-शास्त्र का पढ़ना, तप, संपत्ति और पराक्रम आदि बातों में औरों से बढ़ सकता है, वही असली पुरुष है। हे पुत्र, मूर्ख और कायर की तरह अयश बढ़ानेवाली भिन्नावृत्ति का सहारा लेना तेरा कर्तव्य नहीं है। लोगों के अनादर-पात्र, भोजन-वस्त्र से मोहताज, नीच-हृदय, हीन-वीर्य और शत्रुओं का आनन्द बढ़ानेवाले पुरुष को पाकर उसके बन्धु कभी सुखी नहीं होते।

जान पड़ता है, हमें स्थान से भ्रष्ट, राज्य से निर्वासित, सब इच्छाओं से वञ्चित और दीन होकर बिना जीविका के मरना पड़ेगा। हे पुत्र, तू कुलाङ्गार और अपने कुल के अयोग्य काम करने-वाला है। तुझे अपने गर्भ में रखने के कारण मैं पुत्ररूपी कलियुग को पैदा करनेवाली समझी जाऊँगी। मेरी तरह कोई भी स्त्री ऐसे क्रोधशून्य, निरुत्साही, वीर्यरहित पुत्र को न पैदा करे! बेटा, अब पड़े-पड़े धुआँने (शोक से मलिन होने) का समय नहीं है; प्रज्वलित होकर, शत्रुओं का विनाश कर। शत्रुओं के सिर पर क्षणभर प्रज्वलित होकर बुझ जाना भी अच्छा है। [शत्रुओं के प्रति] क्रोधी और क्षमाहीन पुरुष ही सच्चा मर्द है। जिसमें क्षमा तो है किन्तु क्रोध नहीं है उसकी गिनती मर्दों में क्या, स्त्रियों में भी न करनी चाहिए। सन्तोष, दया, शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध की तैयारी न करना और डर, ये चार बातें लक्ष्मी को नष्ट करती हैं। जो मनुष्य निरीह अर्थात् आलसी है, उसको कभी महत्त्व नहीं मिलता। इस कारण तू इस समय पराभव के दोष से आत्मा को बचाकर फिर स्वार्थसाधन में लग जा। हृदय को लोह की तरह कड़ा करके गई हुई सम्पत्ति लेने की चेष्टा कर। प्रजापालन आदि कठिन कामों का भार दोनों में समर्थ होने के

कारण या शत्रु का मुकाबला करने से ही मनुष्य का नाम पुरुष पड़ा है। जो मर्द औरतों के ढंग से जीवन बिताता है वह निरर्थक पुरुष है। शूर, पराक्रमी, सिंह सा बली पुरुष अगर मर जाता है तो भी उसके अधिकार में रहनेवाली प्रजा आनन्द से रहती है। जो क्षत्रिय राजा अपने भोग, सुख और प्रिय परिवार को छोड़कर राजलक्ष्मी की खोज में रहता है वह भट-पट अपने साथियों और बन्धु-बान्धवों को आनन्दित करता है।

तब विदुला के पुत्र सञ्जय ने कहा—माता ! मैं जो तुम्हारी आँखों के आगे से चला जाऊँगा या मर जाऊँगा, तो तुम आभूषण, सुख-भोग, सारी पृथ्वी या जीवन लेकर क्या करोगी ?

विदुला ने कहा—पुत्र, मेरी इच्छा यही है कि तेरे शत्रु निरादर पानेवाले निन्दित पुरुषों के लांकों में जायँ और तेरे मित्र आदर पानेवाले लोगों के लांकों को प्राप्त करें। तू बिना नौकर-चाकरों के, पराये अन्न से पेट पालनेवाले, दान, हीन पुरुषों की वृत्ति को न ग्रहण कर। जैसे सब प्राणी मेवों से और देवता इन्द्र से आशा लगाते और जीविका पाते हैं, वैसे ही ब्राह्मण और मित्र तेरे आश्रय में जीविका पावें। पके हुए फलों से लदे हुए पेड़ के समान जिस मनुष्य का आश्रय लेकर लोग अपनी जीविका चलाते हैं उसी का जीवन सार्थक है। जो पुरुष अपने बाहुबल से अपनी जीविका चलाता है वह इस लोक में भारी यश और परलोक में अच्छी गति पाता है। ४० ४५

एक सौ चौंतीस अध्याय

विदुला का फिर पुत्र को उत्तेजित करना

विदुला ने कहा—बेटा, जो ऐसी दुर्दशा के समय तू पौरुष को छोड़ देगा तो तुझे जल्दी ओछे लोगों के नीच मार्ग में पैर रखना पड़ेगा। जो क्षत्रिय वृथा जीवन की आशा में फँसकर यथाशक्ति पराक्रम के साथ तेज नहीं दिखाता, उसे पण्डित लोग चोर कहते हैं। हाय ! जैसे मृत्यु के मुँह में पड़े हुए पुरुष को दवा नहीं रुचती वैसे ही सच्चे स्वार्थ को सुझानेवाले, गुणपूर्ण, सुभाषित (अच्छे वचन) तुझे नहीं रुचते। सिन्धुराज के पास सहायक और सेना है सही किन्तु कोई उस पर प्रेम नहीं रखता। कमजोरी और उपाय न सूझने के कारण अपनी रक्षा में असमर्थ प्रजा लगातार उस पर विपत्ति आने के समय की बाट जोह रही है। इसके सिवा जो उसके प्रकट शत्रु हैं वे भी, तुझे पौरुष की राह पकड़ते देखकर, यत्न के साथ अपनी सम्पत्ति और सेना बढ़ाकर, उसके विरुद्ध उठ खड़े होंगे। इसलिए तू भी उन लोगों के साथ मिलकर शत्रु के बुरे दिन की राह देखता हुआ पर्वत-दुर्ग का आश्रय ले।

बेटा ! तेरा नाम सञ्जय अवश्य है, किन्तु जय पाने का कोई काम या उद्योग तुझमें नहीं देख पड़ता। इसी लिए कहती हूँ कि अपना नाम सार्थक कर। एक चतुर विद्वान् ब्राह्मण ने

तेरे जन्म के समय कहा था कि यह बालक पहले बड़ा दुःख पाकर अन्त को परम समृद्धि प्राप्त करेगा। आज उस ब्राह्मण की बात याद कर ही तेरी विजय की सम्भावना से मैं ऐसे आग्रह के साथ तुझे उत्तेजित कर रही हूँ। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि जो आदमी आप यथार्थ नीति के अनुसार काम करता है उसके कार्य की सिद्धि में और-और लोग भी सहायक बन जाते हैं।

१० उसका मनोरथ अवश्य पूरा होता है। हार हो या जीत, राज्य मिले या न मिले, दोनों को समान समझकर दृढ़ सङ्कल्प से युद्ध कर। बार-बार हारना भले पड़े, परन्तु युद्ध का उद्योग न छोड़। शम्बर का कहना है कि जब आज या कल खाने का ठिकाना न हो, उससे बढ़कर बुरी दशा नहीं है। उन्होंने ऐसी अवस्था को पति और पुत्र के मरने से भी बढ़कर कष्ट देनेवाली बताया है। मतलब यह कि दारिद्र्य का दुःख मरने का ही दूसरा रूप है।

देख, मैं श्रेष्ठ कुल की बेटी और श्रेष्ठ कुल की बहू हूँ। कमलिनी जैसे एक सरोवर से दूसरे सरोवर में जाती है वैसे ही मैं भी एक कुल से दूसरे कुल में आई हूँ। सुसराल में आकर मैं घर की मालकिन हुई। पति ने भी मेरा बड़ा आदर और प्यार किया। पहले सुहृद्गण मुझे सदा बहुमूल्य माला आदि गहन पहने, शरीर में गन्धद्रव्य लगाये और प्रसन्न देखते थे। वे ही इस समय मेरी यह दारुण दुर्दशा देख रहे हैं। हे सञ्जय, तू जब मुझे और अपनी भार्या को दीन-हीन दुर्बल दशा में देखेगा, तब तुझे जीने से मरना ही अच्छा मालूम होगा। दास, दासी, आचार्य पुरोहित आदि सब जीविका के बिना जब तुझे छोड़ देंगे तब तेरे जीवन का प्रयोजन भी समाप्त हो जायगा। मैं जो फिर तुझे पहले की तरह यश और गौरव बढ़ानेवाले श्रेष्ठ कार्य करते न देखूँगी तो मेरे ही हृदय को कैसे शान्ति मिलेगी? कोई ब्राह्मण यदि मुझसे कुछ माँगेगा तो उससे 'नाहीं' करते मेरी छाती फट जायगी। अब से पहले कभी मेरे या मेरे स्वामी के मुँह से नकार नहीं निकली। इस समय जो औरों के आश्रय में रहकर पेट पालना पड़ेगा तो

२० मैं अवश्य अपने प्राण दे दूँगी। इसलिए इस समय तू ही नाव की तरह हम सबको इस विपत्ति-सागर के पार लगा। उसके लिए अगर तुझे रहने के अयोग्य स्थान अथवा स्थिति में रहना पड़े, या घोर सङ्कट में पड़ना पड़े, तो वह भी तुझे स्वीकार करना पड़ेगा। हम सब परिवार के लोग इस चिन्ता से मृत-सदृश हो रहे हैं; हमारे शरीर में जान डालना तेरा काम है। यदि जीने की इच्छा है तो शत्रुओं को हराने का उद्योग कर; नहीं तो इस तरह नपुंसक-वृत्ति ग्रहण करके सदा खिन्न और दीन रहने से तो मर जाना ही अच्छा है। शूर पुरुष केवल एक शत्रु को जीतकर भी यश प्राप्त कर सकता है। देख, देवताओं के राजा इन्द्र ने वृत्रासुर को मारकर ही महेन्द्र नाम पाया है और वे सब देवताओं के प्रभु होकर सब लोकों के स्वामी हुए हैं। उत्साही वीर पुरुष समर में अपना नाम सुनाकर शत्रु को ललकारते हैं। युद्ध में पराक्रम दिखाकर, शत्रु-सेना के अगले भाग को भगाकर, या उधर के किसी प्रधान योद्धा को मारकर यश प्राप्त कर लेने

पर अन्य शत्रु आप ही आप दबकर अधीन हो जाते हैं। रण में मरने-मार्गने को उद्यत शूर पुरुष की सब इच्छाएँ कायर लोग पूरी करते हैं। साहसी सञ्चरित्र पुरुष, राज्य या जीवन की परवा न करके, शत्रु को पाकर उसे मारे विना नहीं शान्त होते। बेटा, केवल पराक्रम प्रकट करने से ही स्वर्ग का द्वार अथवा राज्य प्राप्त हो सकता है। यह सोचकर जलती हुई लकड़ी के चक्र की तरह शत्रुसेना में घुस पड़। शत्रुओं को मारकर अपने धर्म का पालन कर। मैं तुम्हें शोक से व्याकुल मित्रमण्डली, और आनन्द से उछल रहे शत्रुदल, के बीच अत्यन्त खिन्न और दीन हीन पुरुष की तरह रोते न देखूँ। अपने सौवीर देश की कन्याओं द्वारा पहले की तरह तू बड़ाई और आनन्द प्राप्त कर। दीन होकर शत्रु के देश—सिन्धु देश—की कन्याओं के उपहास का पात्र न बन। तू रूप, गुण, विद्या, कुल, यश और प्रतिष्ठा से युक्त नौजवान है। बैल की तरह पराया बोझ ढोने के निन्दित कार्य से तो तेरे लिए मरना ही भला है। तुम्हें दोन भाव से औरों का आसरा लेते देखकर मुझे भी शान्ति न मिलेगी। इस कुल में कोई भी औरों के पीछे चलनेवाला अनुचर पुरुष नहीं उत्पन्न हुआ। इसलिए औरों के अधीन होकर जीना तेरे लिए उचित नहीं है।

३१

विधाता ने जैसा चिरप्रसिद्ध सनातन धर्म क्षत्रियों के लिए नियत कर दिया है, और पहले के और अब के पण्डित उसके बारे में जैसा वर्णन करते हैं, सो सब मैं जानती हूँ। जो व्यक्ति प्रसिद्ध क्षत्रियवंश में जन्म लेकर सब धर्मों के यथार्थ मर्म को जानता हो, उसे प्राणों के डर से शत्रु के आगे झुकना कभी उचित नहीं। यह उसका कर्तव्य नहीं है। उद्योग ही पौरुष है। इसलिए सदा उद्योग करते रहना चाहिए, सिर नीचा करना सदा निन्दित है। असमय ही मर जाना अच्छा, किन्तु शत्रु के अधीन होना ठीक नहीं। महात्मा वीर पुरुष मस्त गजराज की तरह विचरते हैं। वे केवल धर्म के अनुरोध से ब्राह्मणों के आगे सिर झुकाते हैं। बलपूर्वक और वर्णों को अपने अधीन करना और अधर्म को बंद करना उनका कर्तव्य होता है। वे चाहें सहाय-वान् हों चाहें निराश्रय, सदा यही किया करते हैं।

४१

एक सौ पैंतीस अध्याय

सञ्जय और विदुला के उत्तर-प्रत्युत्तर

सञ्जय ने कहा—हे करुणाहीन, क्रोधी और वीर स्वभाववाली माता, जान पड़ता है कि तुम्हारा हृदय विधाता ने लोहे से बनाया है। अहो ! क्षत्रियों के आचार-व्यवहार कैसे विचित्र हैं ! मैं तुम्हारा एकलौता बेटा हूँ, तो भी तुम दूसरे की माता के समान कठोर वचन कहकर मुझे धोर युद्ध की भूमि में भेजने का उद्योग कर रही हो। मैं पूछता हूँ, जो मैं तुम्हारा प्रिय पुत्र युद्ध में मारा गया तो तुम सारी पृथ्वी, गहने, भोग-सुख या जीवन लेकर क्या करोगी ?

विदुला ने कहा—बेटा, धर्म और अर्थ के उद्देश्य से ही मनुष्य सब कार्यों का आरम्भ करता है। मैं उसी धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिए तुझे युद्ध-भूमि में भेजती हूँ। देख, तेरे पराक्रम दिखाने का यही ठीक समय है। इस समय कर्तव्य-पालन में विमुख होने से लोक-समाज में तेरा अपमान होगा। तू आप ही अपना और मेरा घोर अनिष्ट करेगा। फिर धन-सम्पत्ति या प्रतिष्ठा प्राप्त करने की आशा नहीं रहेगी। यदि तेरी अकीर्ति की सम्भावना समझकर भी पुत्रस्नेह के कारण मैं तुझे अनुचित कार्य से न रोक्कूँ तो वह सच्चे स्नेह का काम न होगा। पण्डितों ने ऐसे स्नेह को सामर्थ्य और कारण से हीन गर्दभो-वात्सल्य (गधी का पुत्रस्नेह) कहा है। इसलिए तू सज्जनों द्वारा निन्दित मूढ़ जनों के मार्ग को छोड़ दे। देख, इस पृथ्वी पर अनेक लोग अविद्या के अँधेरे में डूबे पड़े हैं। तू [उस अविद्या (मोह) के अन्धकार से निकलकर] सदाचार ग्रहण कर। ऐसा करने से ही तू मेरा दुलार पा सकेगा और मैं तुझ पर प्रसन्न होऊँगी। जो कोई ऐसे सदाचारी विनीत पुत्र-पौत्र आदि पर ही प्रीति प्रकट करता है उसी की प्रीति सच्चा स्नेह है। जो कोई उद्योग और विनय से हीन पुत्र-पौत्र आदि पर प्रीति करता है, उसका पुत्र-वान् होना बिलकुल ही नष्ट हो जाता है। जो नराधम मनुष्य के योग्य कर्तव्य न करके निन्दित काम करते हैं, उनको न तो इस लोक में सुख मिलता है और न परलोक में। मतलब यह कि युद्ध और विजय के लिए ही क्षत्रिय का जन्म हुआ है। शत्रु को जीतने से या युद्ध में मरने से, दोनों तरह, क्षत्रिय को इन्द्रलोक मिलता है। शत्रुओं को अपने अधीन करने से क्षत्रिय को जो सुख और समृद्धि मिलती है वह इन्द्रलोक में भी मिलना असम्भव है। मनस्वी पुरुष यदि शत्रु से हार जाता है तो भीतर ही भीतर क्रोध की आग से जला करता है और विजय पाने की इच्छा से या तो युद्ध में लड़कर मर जाता है या शत्रु को मार लेता है। दोनों में से एक बात हुए बिना उसे कल नहीं पड़ती। प्रभावशाली उच्च हृदय के पुरुष थोड़े विभव को नहीं चाहते। जो स्वल्प ऐश्वर्य में सन्तुष्ट और तृप्त हो जाता है उसका विनाश जल्दी हो जाता है। प्रिय वस्तु के अभाव में पुरुष को कभी कल्याण नहीं प्राप्त होता। वह पुरुष उसी तरह चौपट होता है, जिस तरह सागर में जाकर गङ्गा लीन हो जाती है।

सञ्जय ने कहा—माता, पुत्र से तुम्हें ऐसी कठोर बातें न कहनी चाहिएँ। तुम जड़ और गूँगे की तरह चुप रहकर सुभसे करुणा का ही व्यवहार करो।

विदुला ने कहा—बेटा, तेरे ये वचन सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। तू मुझे माता के कर्तव्य में लगाता है, मैं भी तुझे तेरा कर्तव्य सुभाती हूँ। बेटा, तू जब सिन्धुराज के सारे वंश का विनाश करके विजय प्राप्त कर लेगा तब मैं तेरा अभिनन्दन करूँगी और तुझे आदर की दृष्टि से देखूँगी।

सञ्जय ने कहा—माता ! मेरे पास न तो धन है, और न सेना है। फिर मैं किस तरह जय प्राप्त करूँ ? अपनी हालत देखकर मैं इस बारे में हताश हो चुका हूँ। दुष्कर, स्वर्ग-

लाभ की तरह राज्य पाने का इरादा मैंने छोड़ दिया है। हाँ, जो मेरी कार्य-सिद्धि का कोई उपाय हो तो बताओ। मैं उसी के अनुसार आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

विदुला ने कहा—सिद्धि नहीं होगी, यह पहले ही सोचकर अपना अनादर करना ठीक नहीं। क्योंकि घटना-क्रम से कभी असिद्ध प्रयोजन भी पूरा हो जाता है, अर्थात् विगड़ी बात भी बन जाती है। ऐसे ही कभी बना-बनाया खेल विगड़ जाता है। मतलब यह कि ठीक उपाय करने से सिद्धि प्राप्त हो सकती है। अज्ञान के कारण केवल क्रोध के वश होकर ही कोई काम कर बैठना ठीक नहीं। हर एक काम के फल के बारे में स्थिरता नहीं देख पड़ती; निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि फल क्या होगा। जो पुरुष इस तरह फल को अनिश्चित समझकर भी काम करना नहीं छोड़ता उसका मनोरथ सिद्ध हो भी सकता है और नहीं भी। किन्तु जो आदमी फल को अनिश्चित समझकर कार्य का उद्योग ही नहीं करता उसके मनोरथ का सिद्ध न होना निश्चित ही है। परन्तु चेष्टा करने से सिद्धि और असिद्धि दोनों हो सकती हैं। काम में हाथ लगाने के पहले ही सफलता के बारे में अनिश्चय का खयाल करके जो पुरुष उद्योग नहीं करता वह वृद्धि और समृद्धि दोनों को अपने से विमुख कर देता है। इसलिए सफलता पाने का निश्चय करके, हृदय की व्याकुलता मिटाकर, उद्यम के साथ हर एक काम में लग जाना चाहिए।

जो बुद्धिमान राजा पहले देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा-आराधना, स्वस्त्ययन-पाठ आदि माङ्गलिक कृत्यों का अनुष्ठान करके फिर अभीष्ट प्राप्त करने का उपाय करता है वह अवश्य अपने मनोरथ को पूरा कर लेता है। पूर्व दिशा जैसे सूर्य को गले से लगाती है वैसे ही राजलक्ष्मी उसे अपनाती है। हे सज्जय, मैंने उपदेश के तौर पर उपाय और उत्साह बढ़ाने वाले जो वचन कहे हैं उनका प्रभाव तुझ पर पड़ा देख पड़ता है। तू पौरुष करके अच्छी तरह से उद्योग में लग जा। तू यत्न के साथ क्रोधी, लोभी, धनहीन, अपमानित, गर्वित और मूर्धाशील पुरुषों को अपने पक्ष में कर। पेशगी धन देकर, प्रिय वचन कहकर, उपकार करके अपने सहायकों का संग्रह कर। तो फिर, पवन जैसे प्रचण्ड वेग से घनी घटाओं को छिन्न-भिन्न कर देता है, वैसे ही तू शत्रुसेना को नष्ट-भ्रष्ट कर सकेगा। उस समय तुझे सब लोग अगुआ समझेंगे और तुझसे प्रीति का व्यवहार करेंगे।

जब शत्रु समझ लेता है कि मेरा विपत्ती हथेली पर जान लिये मरने-मारने को मुस्तैद है तब वह इस तरह डर जाता है जिस तरह घर में साँप के घुस जाने पर मनुष्य बेचैन हो जाते हैं। पराक्रमी शत्रु को वश में करना असाध्य हो तो दूत के द्वारा उसके पास 'सन्धि' अथवा 'दान' का प्रस्ताव भेजना चाहिए। इससे वह वश में हो जायगा। इस प्रकार शत्रु को खटके से बचकर अपने स्थान में जमने से राजा अपने धन-बल को सुखपूर्वक बढ़ा सकता है। मित्र

भो धनी का ही आश्रय लेते हैं, उसी का आदर करते हैं। वही धनी यदि निर्धन हो जाता है तो वेही मित्र उसके पास नहीं फटकते। उस समय बन्धु-बान्धव भी छोड़कर अलग हो जाते हैं। मित्र और बान्धव उस अवस्था में साथ ही नहीं छोड़ देते बल्कि निन्दा तक करने लगते हैं। जो पुरुष शत्रु को मित्र समझकर उसका विश्वास करता है उसका राज्य पाना असम्भव ४० है, या यों कहे कि वह अपनी राजलक्ष्मी को अपने पास बहुत समय तक नहीं रख सकता।

एक सौ छत्तीस अध्याय

विदुला के उपाख्यान का उपसंहार

विदुला ने कहा—बेटा ! किसी तरह की कोई आपत्ति क्यों न आ पड़े, किन्तु राजा को डरना न चाहिए। अगर डर लगता भी हो तो उसे अपने आकार से प्रकट न करना चाहिए। राजा का डर यदि प्रकट हो जाता है तो राज्य के निवासी, मन्त्री, सैनिक आदि सब अलग-अलग मनमानी करने लगते हैं। कोई शत्रु से जाकर मिल जाता है, कोई उसे छोड़कर चला जाता है और कोई कहा नहीं मानता। जिनका पहले अपमान किया जा चुका है वे बदला लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। जो अत्यन्त हितचिन्तक सुहृद् होते हैं वे ही पास रहते हैं। वे भी, जिसका बखड़ा अलग बँधा हुआ है ऐसी गाय की तरह, कुछ उपाय करने में असमर्थ होकर केवल भला चाहते हैं। प्रभु के साथ-साथ वे भी शोक करते हैं, और कुछ नहीं कर सकते। तूने पहले जिनका आदर-सत्कार किया है वे सुहृद् अभी तेरे पास मौजूद हैं। वे मन-वाणी-काया से तेरे राज्य की रक्षा चाहते हैं। तू स्वयं डर से व्याकुल होकर उन्हें भी डर से विह्वल न बना। तू वही कर जिसमें वे तुझे शङ्कित देख छोड़कर चल न दें।

बेटा ! मैंने तेरे पौरुष, प्रभाव और बुद्धि की परीक्षा करने के लिए, तुझे ढाढ़स देने और तेरा उत्साह बढ़ाने के लिए, ऐसे वचन कहे हैं। यदि तू मेरे उपदेश का मतलब समझा हो, और तुझे वह ठीक जान पड़ा हो, तो धैर्य के साथ विजय प्राप्त करने का उद्योग कर। हे सख्त, तुझे नहीं मालूम कि तुझसे छिपा हुआ मेरे पास बहुत सा धन है। उसे मेरे सिवा और कोई नहीं जानता। मैं वह धन तुझे दूँगी। धन के सिवा तेरे ऐसे अनेक सहायक और बन्धु-बान्धव भी हैं, जिन्होंने सैकड़ों सुख-दुःख सहकर भी अभी तक तेरा साथ नहीं छोड़ा। ऐसे सुहृद्गण कल्याण और ऐश्वर्य की इच्छा रखनेवाले पुरुष के सहायक और सचिव होते हैं।

विदुला का पुत्र स्वभाव से ओछे जी का आदमी था। उसमें साहस कम था। तो भो माता के विचित्र, उत्साहवर्धक, मनोहर, हितकारी वचनों को सुनकर उसने अपने हृदय से

डर और उदासी को बिलकुल दूर कर दिया। सञ्जय ने कहा—हे माता, आप मुझे भावी कल्याण की आशा दिलाकर उत्साहित कर रही हैं, इससे मैं या तो जल में डूबी हुई पृथ्वी की तरह अपने पिता के राज्य का उद्धार करूँगा या युद्ध में प्राण दे दूँगा। मैंने केवल तुम्हारे अन्यान्य उपदेशों को सुनने के लिए ही बीच-बीच में वैसा उत्तर दिया था। दुर्लभ अमृत पीने से जैसे जी नहीं भरता वैसे ही तुम्हारे सुमधुर वाक्यों का रस पीने की प्रबल लालसा बनी रहने के कारण ही मैं अब तक चुप था। अब मैं शत्रु को दण्ड देने और विजय पाने के लिए उद्योग करूँगा।

कुन्ती कहती हैं—हे श्रीकृष्ण! अपनी माता के तीक्ष्ण वाक्य-वाणों के लगने से, संध हुए घोंड़ की तरह, उत्तेजित होकर सञ्जय ने उसी उपदेश के अनुसार काम किया। राजा यदि शत्रु से पीड़ित होकर उदास हो जाय तो मन्त्रों को चाहिए कि उसे यह तेज को बढ़ानेवाला उपाख्यान सुनावे। यह शत्रुदल के दलन का श्रेष्ठ उपाय है। जय की इच्छा रखनेवाले का यह 'जय' नाम का इतिहास अवश्य सुनना चाहिए। इसे एक बार सुननेवाला शीघ्र ही शत्रुओं को मारकर पृथ्वी को अपने अधिकार में कर लेता है। यह उपाख्यान सुनने से गर्भिणी स्त्री शूर-वीर पुत्र पैदा करती है; क्योंकि यह उपाख्यान पुंसवनरूप है। क्षत्रिय की स्त्री एकाग्र होकर इसे सुनती है तो पंसा सत्यपराक्रमी वीर पुत्र पैदा करती है जो विद्वान्, दानी, तपस्वी, ब्रह्मतेज से युक्त, साधुसम्मत, तेजस्वी, महाबली, भाग्यशाली, महारथी, धीर, दुर्धर्ष, विजयी और अजेय होता तथा दुष्टों को दण्ड देनेवाला और धार्मिकों की रक्षा करनेवाला होता है।

२२

एक सौ सैंतीस अध्याय

पाण्डवों को कुन्ती का उपदेश

कुन्ती ने कहा—हे श्रीकृष्ण! तुम मेरी ओर से अर्जुन से कहना कि बेटा, तुम्हारे जन्म लेने के बाद मैं आश्रम में स्त्रियों के बीच में बैठी हुई थी। उसी समय मुझे यह आकाशवाणी सुन पड़ी कि “हे कुन्ती, तुम्हारा यह पुत्र साक्षात् इन्द्र के तुल्य होगा। इसका यश स्वर्गलोक तक फैलेगा। यह भीमसेन की सहायता से सारी पृथ्वी को जीतेगा और शत्रुओं को नष्ट-भ्रष्ट करेगा। यह वासुदेव की सहायता से संग्राम में कौरव-कुल को निर्मूल करके छिने हुए अपने पिता के राज्य को ले लेगा और फिर भाइयों के साथ तीन अश्वमेध करेगा”। हे यदुनाथ! सत्यसन्ध, दुर्धर्ष, बली, सव्यसाची के बल को केवल तुम्हीं जानते हो। ईश्वर करे, उक्त आकाशवाणी सत्य हो। यदि पृथ्वी पर धर्म है तो वह आकाशवाणी पूरी होगी ही। तुम्हीं

उसे सफल करोगे। मैं आकाशवाणी पर दोषारोप नहीं कर सकती। सब प्रजा को धारण करनेवाले धर्म को मेरा प्रणाम है।

हे केशव, तुम सदा उद्योगतत्पर भीमसेन से कहना कि चित्रियों की खियाँ जिसलिए पुत्र पैदा करती हैं वह समय आ गया है। श्रेष्ठ पुरुष वैर (युद्ध) के समय कर्मा ढीले या १० उल्साहहीन नहीं होते। हे माधव, तुम भीमसेन के स्वभाव और निश्चय को अच्छी तरह जानते हो। वे जब तक शत्रुओं का विनाश नहीं कर लेते तब तक शान्त नहीं होते।

हे कृष्णचन्द्र ! तुम महाराज पाण्डु की बहु, सब धर्मों को विशेष रूप से जाननेवाली, यशस्विनी द्रौपदी से कहना—हे मनस्विनी भाग्यशालिनी, तुम श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुई हो। तुम जो मेरे पुत्रों के साथ पतिव्रता स्त्रियों का सा व्यवहार करती हो सो तुम्हारे योग्य ही है।

हे पुरुषोत्तम, तुम माद्री के पुत्रों से कहना—बेटा नकुल, पुत्र सहदेव, तुम वीर पुरुष हो इसलिए जी-जान होकर पराक्रम से प्राप्त किये हुए सुख भोगने की इच्छा करो। जो चित्रिय धर्म धारण किये हुए हैं वे वीर पराक्रम से पाये हुए धन से ही सन्तुष्ट होते हैं। देखो, तुम लोग धर्म का पालन और उन्नति करते हो। तुम्हारे सामने ही शत्रुओं ने द्रौपदी से कठोर वचन कहे थे। भला कौन पुरुष स्त्री के अपमान को सह सकता है ? तुम वनवासी हुए और तुम्हारा राज्य छीन लिया गया, इससे मुझे कुछ भी दुःख नहीं हुआ। किन्तु पतिव्रता द्रौपदी को सभा में रोते-रोते उन दुष्टों की जो सख्त बातें सुननी पड़ीं वे ही मेरे मर्मस्थल में दर्द पहुँचाया करती हैं। पाँच पतियों के रहने पर भी साध्वी द्रौपदी अनाथ की तरह अपमानित हुई, यही मेरे अधिक दुःख का कारण है।

हे महाबाहु ! तुम सब धनुर्धर पुरुषों में श्रेष्ठ अर्जुन से फिर कहना कि हे वीर, तुम १० द्रौपदी के दिखाये मार्ग पर चलो, उसकी मलाह से काम करो। हे वासुदेव, यह तुमसे छिपा नहीं है कि भीमसेन और अर्जुन कुपित होकर देवताओं को भी मार सकते हैं। इससे बढ़कर उनका अपमान और क्रोध का कारण क्या हो सकता है कि उनकी प्यारी पत्नी द्रौपदी उस तरह भरी सभा में खींचकर लाई गई, और दुःशासन ने कौरव-समाज के सामने भीमसेन को वैसे कटु वचन कहे ?

भैया, तुम मेरे पुत्रों को फिर ये सब बातें याद करा देना। मेरी ओर से पाण्डवों, द्रौपदी और उनके पुत्रों से उनकी कुशल पूछना और उनसे मेरे कुशल समाचार कहना। अब तुम जाओ। मार्ग में तुम्हें कोई विघ्न न हो। देखो, मेरे पुत्रों की रक्षा करते रहना।

वैशम्पायन कहते हैं—इसके बाद महाबाहु केशव ने कुन्ती को प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा की। फिर सिंह की सी चाल से वहाँ से निकलकर उन्होंने भीष्म आदि बड़े-बूढ़ों और प्रधान कौरवों को विदा किया। इसके बाद भगवान् कृष्ण ने सात्यकि को और कर्ण को भी

अपने रथ पर बिठा लिया। अब वे वहाँ से चल दिये। वासुदेव के चले जाने पर सब कौरव एकान्त में बैठकर उनके अद्भुत कामों की चर्चा करने लगे। वे कहने लगे—सारी पृथ्वी इस समय मोह और मृत्यु के वश में हो रही है। दुर्योधन की मूर्खता के मारे यह राज्य नष्ट हो जायगा।

इधर यदुकुलश्रेष्ठ श्रीकृष्ण नगर के बाहर पहुँचकर देर तक कर्ण से बात-चात करते रहे। इसके बाद कर्ण को बिदा करके वे बड़ी तेज़ी से अपना रथ हँकवाने लगे। मन के समान तेज़ी से चलनेवाले घोड़े ऐसे दौड़ने लगे मानों हवा से बातें कर रहे हों। फुर्ती से बाज़ की भपट की तरह चलकर, थोड़े ही समय में बहुत सी राह तय करके, उन घोड़ों ने श्रीकृष्ण को उपप्लव्य नगर में पाण्डवों के पास पहुँचा दिया।



३०

३२

एक सौ अड़तीस अध्याय

भीष्म और द्रोण की दुर्योधन से बातचीत और उसे समझाना।

वैशम्पायन कहते हैं कि देवी कुन्ती ने श्रीकृष्ण से जो कुछ कहा, उसे सुनकर भीष्म और द्रोण ने बड़ों का शासन न माननेवाले दुर्योधन से कहा—हे पुरुषसिंह, कुन्ती ने केशव से जो धर्म और अर्थ से युक्त, श्रेष्ठ तथा उग्र वचन कहे उन्हें तुमने भी सुना। कुन्ती की बातों से कृष्णचन्द्र भी सहमत हैं। पाण्डव अपनी माता की आज्ञा का पालन अवश्य करेंगे। वे धर्मबन्धन में बँधे हुए थे, इसी से अब तक सब क्लेश सहते रहे। अब राज्य प्राप्त किये बिना कभी शान्त न होंगे। तुमने सभा में द्रौपदी को जो क्लेश पहुँचाया है उसे केवल धर्म के डर से पाण्डवों ने चुपचाप सह लिया था। इस समय वे प्रतिज्ञा के अनुसार वनवास और अज्ञातवास कर चुके हैं। अब वह धर्म का डर नहीं है। अस्त्रविद्या में प्रवीण अर्जुन, दृढ़ निश्चयवाले भीमसेन, श्रेष्ठ धनुष गाण्डीव, अक्षय तरकस, वानर की ध्वजावाला रथ, असाधारण बलशाली नकुल और सहदेव और अकुण्ठित-शक्ति वासुदेव आदि सहायकों को पाकर राजा युधिष्ठिर कभी

क्षमा नहीं करेंगे। हे महाबाहु, यह बात तुमसे छिपी नहीं है कि अबसे पहले विराट-नगरी में वीर अर्जुन अकेले ही हम सबको हरा चुके हैं। इसके सिवा निवातकवच आदि दानवों को भी उन्होंने मार डाला है। घांपयात्रा के समय तुम सबको जब गन्धर्व-राज चित्रसेन पकड़ ले चला था तब अर्जुन ने ही छोड़ा था। इन्हीं बातों को अर्जुन के पराक्रम का नमूना समझ लो। इस कारण अपने भाइयों सहित तुम पाण्डवों से मिल कर लो और मृत्युमुख में पड़ा इस पृथ्वी को बचा लो। देखो, युधिष्ठिर तुमसे बड़े, धर्मात्मा, प्रिय वचन बोलनेवाले और समझदार हैं। इस कारण पापबुद्धि छोड़कर उनसे मिल कर लेने में ही भला है। युधिष्ठिर तुम्हें जब शस्त्रहीन, शान्तमूर्ति प्रसन्नमुख देखेंगे तभी कुरुकुल की रक्षा होगी। इसलिए तुम पहले की तरह मन्त्रियों के साथ युधिष्ठिर के पास जाकर उन्हें प्रणाम करो और गले से लगाओ। भोम के बड़े भाई युधिष्ठिर स्नेह के साथ दानों हाथों से तुम्हें गले से लगा लें। घुटनों तक लम्बी और स्थूल भुजाओंवाले भोमसेन तुमसे गठे मिलें, और कमल-नयन अर्जुन तुम्हें अभिवादन करें। नकुल और सहदेव तुम्हें बड़ा मानकर प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारी आराधना करें और श्रीकृष्ण आदि राजा लोग तुम्हें इस तरह पाण्डवों से मिलते देखकर आनन्द के आँसू बहावें।

भैया, तुम अभिमान छोड़कर पाण्डवों से सन्धि कर लो और सब भाई एक साथ सारी पृथ्वी का साम्राज्य-भोग करो। युद्ध के लिए एकत्र हुए ये सब राजा लोग हर्ष के साथ एक दूसरे को गले से लगाकर अपने-अपने घर को लौट जायें। युद्ध में कुछ भी लाभ नहीं है। इसलिए मित्रों का रोकना मान लो। संग्राम में क्षत्रियों का सर्वनाश अवश्य होगा। लक्षण ऐसे ही देख पड़ते हैं। देखो, नक्षत्र-तारा-ग्रह आदि ज्योतिर्मण्डल प्रतिकूल देख पड़ता है। मृग और पक्षी भयङ्कर भाव धारण किये नज़र आते हैं। क्षत्रियों के नाश की सूचना देनेवाले और भी अनेक भयङ्कर उत्पात देख पड़ रहे हैं। देखो, हमारे ही रहने के स्थानों में या उनके आस पास अधिकतर ऐसे असगुन और उत्पात प्रकट हो रहे हैं। प्रज्वलित उल्कापात देखकर तुम्हारे पक्ष के सैनिक व्याकुल हो रहे हैं। हमारे सब वाहन उदास होकर रो रहे हैं। नगर और राज-भवन में पहले की वह रौनक नहीं है। सियारनियाँ प्रज्वलित दिशा की ओर मुंह करके अशुभ शब्द करती हैं। अशुभसूचक गिद्ध आदि पक्षी सैनिकों के ऊपर मँड़राते देख पड़ते हैं।

इसलिए तुम पिता, माता, इष्ट-मित्रों और हितैषी बन्धुओं की बात मानो। शान्ति और युद्ध सब तुम्हारे हाथ में है। मित्रों और हितचिन्तकों की बात न मानोगे तो अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से अपनी सेना को पीड़ित और नष्ट होते देखकर तुम्हें पछताना पड़ेगा। संग्राम में आग के समान भयानक तेजवाले भोमसेन का भयङ्कर गर्जन और अर्जुन के गाण्डीव धनुष का शब्द सुनने पर हमारा यह कथन तुमको याद आवेगा। जो तुम हमारे इस समझाने को अपने प्रतिकूल समझोगे तो ऐसा ही होगा।

एक सौ उनतालीस अध्याय

द्रोणाचार्य का कथन

वैशम्पायन कहते हैं—भीष्म और द्रोण की राय सुनकर दुर्योधन उदास हो गया। उसने सिर झुका लिया। वह भौंहेँ सिकोड़कर चुपचाप टेढ़ी नज़र से पृथ्वी की ओर ताकने लगा। उसे उदास देखकर भीष्म और द्रोण ने एक दूसरे की ओर देखा। फिर दुर्योधन से भीष्म ने कहा— बड़ों की सेवा करनेवाले, असूया-हीन, सत्यवादी, ब्रह्मनिष्ठ युधिष्ठिर से हमें युद्ध करना पड़ेगा, इससे बढ़कर दुःख की बात क्या हो सकती है ?

द्रोण ने कहा—मैं अश्वत्थामा की तरह अर्जुन को भी प्यार करता हूँ। अर्जुन अश्वत्थामा से भी अधिक नम्रता के साथ मेरा सम्मान करते हैं। तथापि क्षत्रिय धर्म के अनुरोध से, पुत्र से भी अधिक प्यार, उन्हीं अर्जुन के साथ मुझे युद्ध करना होगा! क्षत्रिय-जीविका कैसी निन्दनीय है! अद्वितीय धनुर्धर अर्जुन मेरी ही वदौलत सर्वश्रेष्ठ योद्धा हुए हैं। यज्ञस्थल में आये हुए मूर्ख की तरह मित्रद्रोही, दुष्ट-प्रकृति, नास्तिक, शठ और कुटिलहृदय पुरुष सज्जनों के समाज में पूजनीय नहीं हो सकता। पापी मनुष्य बार-बार मना करने पर भी पाप ही करता है। वैसे ही पुण्यात्मा पुरुष मदा पुण्य करने की ही इच्छा रखता है। हे भरतश्रेष्ठ, तुमने शठता से पाण्डवों को धोखा दिया, तब भी उन्होंने तुम्हारे अनिष्ट का उपाय नहीं किया। तुम इस अपने ही दोष से नीचा देखोगे। देखो, कुरुश्रेष्ठ पितामह, मैं, विदुर और वासुदेव, सबने तुम्हारे हित की बातें कहीं, पर तुमने किसी की बात नहीं मानी। तुम अपने को महाबलशाली समझकर वैसे ही पाण्डवसेना-सागर के पार जाना चाहते हो जैसे मगर, घड़ियाल और तिमि आदि जल-जन्तुओं से पूर्ण समुद्र को गङ्गा का वेग लाँघ जाना चाहे।

१०

जैसे कोई दूसरे की पहनी माला या कपड़ा पहनकर उसे अपना ही समझे, वैसे ही तुम युधिष्ठिर की राजलक्ष्मी लेकर लोभ के मारे उसे अपनी ही समझ रहे हो। द्रौपदी और अश्व-विद्या के पारदर्शी समझदार भाइयों के साथ धर्मराज युधिष्ठिर वन में रहें, तो भी कोई राजा उन्हें परास्त नहीं कर सकता। सब यत्न दास की तरह जिनकी आज्ञा में चलते हैं उन कुबेर के आगे भी युद्ध में धर्मराज युधिष्ठिर अपनी प्रतिभा का प्रभाव दिखा चुके हैं। कुबेर के भवन से सब रत्न पाकर पाण्डव लोग इस समय तुम्हारे विशाल साम्राज्य पर हमला करना चाहते हैं।

हमने अब तक यथाशक्ति दान, हवन और अध्ययन किया है; धन-दान से ब्राह्मणों को भी प्रसन्न करके हम कृतकार्य हो चुके हैं। हमारी आयु भी समाप्त हो चली है। इसलिए पाण्डवों के साथ जूझने से तुम्हारे ही राज्य, धन, सुख, मित्र आदि का विनाश होगा और तुम्हीं पर विपत्ति आवेगी। तप और व्रत करनेवाली सत्यवादिनी द्रौपदी जिनकी विजय मनाती हैं, वासु-

देव जिनके मन्त्री हैं, धनुष धारण करनेवालों में प्रधान पराक्रमी अर्जुन जिनके भाई हैं, जितेन्द्रिय धीर ब्राह्मण जिनके सहायक हैं, उन कठोर तप करनेवाले, उग्रवीर्य युधिष्ठिर को तुम कैसे जीत सकोगे ? मित्र पर कोई कठिन विपत्ति आ रही हो तो उस समय कल्याण की इच्छा रखनेवाले शुभचिन्तक को जैसा काम करना चाहिए उसके अनुसार मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि युद्ध की ज़रूरत नहीं है । पाण्डवों से सन्धि करके कौरववंश का अभ्युदय होने दो । देखो, २० पुत्र, मित्र, मन्त्री और सेना को लेकर आप भो न डूवो । २२

एक सौ चालीस अध्याय

कर्ण से श्रीकृष्ण का प्रस्ताव

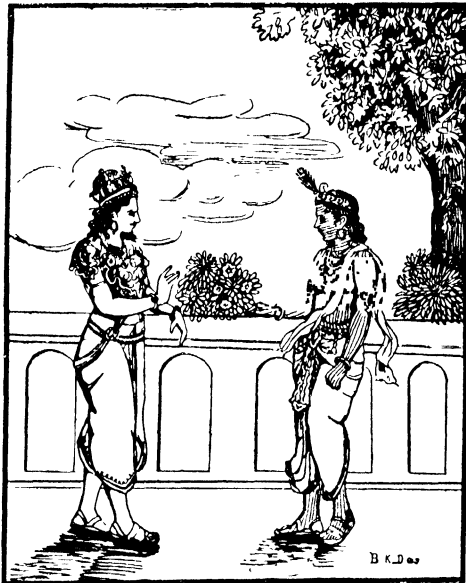
धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय ! मधुसूदन श्रीकृष्ण राजपुत्रों और मन्त्रियों के साथ जब लौटे तब उन्होंने महारथी कर्ण को भी अपने रथ पर बिठा लिया । उस समय उन्होंने कर्ण से मेघ-गम्भीर स्वर में जो कुछ कोमल और तीक्ष्ण वचन कहे उन्हें मैं सुनना चाहता हूँ ।

सञ्जय ने कहा—महाराज, वासुदेव ने कर्ण से कोमल और कठिन दोनों तरह की बातें कहीं । उनकी बातें प्रिय, धर्मसङ्गत, सत्य, हितकारी और हृदय में बैठ जानेवाली थीं । मैं श्रीकृष्णचन्द्र के वचन आपको सुनाता हूँ ।

वासुदेव ने कहा—हे कर्ण, तुमने बहुत से वेदपारगामी ब्राह्मणों की सेवा की है; असूया छोड़कर निष्ठा और श्रद्धा के साथ अनेक तत्त्व उनसे समझे हैं । तुम सनातन वेद का ठीक-ठाक मर्म समझ चुके हो । अत्यन्त सूक्ष्म और जटिल धर्मशास्त्र का ज्ञान भी तुम्हें पूरा-पूरा है । देखो, स्त्रियाँ जब कारी होती हैं तब दो तरह के पुत्र पैदा करती हैं—एक कान्तिन (कन्यावस्था में ही उत्पन्न), दूसरा सहोद (व्याह के बाद जन्म लेनेवाला) । शास्त्रकारों ने उनका पिता उसी कन्या के होनेवाले पति को माना है । तुम भी कन्यावस्था में कुन्ती के गर्भ से पैदा हुए हो । धर्म के अनुसार महाराज पाण्डु ही तुम्हारे पिता हैं । इसलिए चलो, राज्य के स्वामी तुम्हीं होगे । पाण्डव तुम्हारे पिता के कुल के और यादव लोग तुम्हारी माता के कुल के हैं । यं दोनों १० वंश राज्य प्राप्त करने में तुम्हारी सहायता करेंगे । आओ, मेरे साथ चलो । पाण्डव भी तुम्हें कुन्ती का पुत्र और युधिष्ठिर का बड़ा भाई जाने । तुम्हारे छोटे पाँचों भाई, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, विजय अभिमन्यु, आये हुए राजा लोग, राजपुत्र, अन्धक और वृष्णि वंश के सब यादव तुम्हारे चरणों में प्रणाम करेंगे । राजा और राजकुमारियाँ तुम्हारे अभिषेक के लिए सोने, चाँदी और मिट्टी के कलश, सब तरह की ओषधियाँ, बीज, रत्न, लता आदि अभिषेक की सामग्री लेकर उपस्थित हों । ब्राह्मणश्रेष्ठ पुरोहित धौम्य अभिहोत्र करें और चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण

तुम्हारा राज्याभिषेक करें। धर्मात्मा युधिष्ठिर युवराज पद पर बैठकर, रथ पर सफेद चवैर हाथ में लिये, तुम्हारे पीछे-पीछे चले। महावली भीमसेन तुम्हारे मिर के ऊपर सफेद छत्र लगावें। २०

अर्जुन किकिणीजाल-शोभित, व्याघ्रचर्म-मण्डित, सफेद घोड़ों द्वारा सञ्चालित तुम्हारा रथ होंके। अभिमन्यु मदा तुम्हारी सेवा में खड़े रहें। नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, पाञ्चालगण, महारथी शिखण्डी और मैं, सभी तुम्हारे अनुगामी होंगे। दार्शार्थ और दार्शार्थकुल तुम्हारे परिवार में सम्मिलित हो जायेंगे। इसलिए हे महाबाहु! जय होम और अन्य मङ्गलकार्य करते हुए तुम पाण्डवों के साथ राज्यसुख भोगो। द्राविड, कुन्तल, अन्ध्र, तालचर, चूचुप और रंगुप देश के वीर तुम्हारे आगे चलें। वन्दीजन अनेक वचनों से तुम्हारी स्तुति करें और पाण्डव तुम्हारी जय की घोषणा करें। हे कुन्तीपुत्र,



तुम नक्षत्रों से शोभित चन्द्रमा की तरह पाण्डवों के बीच रहकर राजकाज करते हुए कुन्ती का आनन्द बढ़ाओ। आज तुम्हारे मित्र जाग प्रमत्त हैं, शत्रु दुखी और शङ्कित हैं। तुममें और पाण्डवों में भ्रातृभाव स्थापित हो।

२८

एक सौ इकतालीस अध्याय

श्रीकृष्ण की कर्ण का उत्तर

कर्ण ने कहा—हे श्रीकृष्ण! इसमें सन्देह नहीं कि तुम सौहार्द, प्रणय, मित्रता और मेरे भले के लिए ही ऐसी बातें कह रहे हो। मैं यह सब जानता हूँ। मैं धर्म के अनुसार महाराज पाण्डु का ही पुत्र हूँ। माता कुन्ती ने कन्यावस्था में मुझे अपने गर्भ में धारण किया था और जन्म होते ही सूर्यनारायण की आज्ञा के अनुसार वहा दिया था। इससे महात्मा पाण्डु ही मेरे पिता हैं। किन्तु कुन्तीदेवी ने मेरी भलाई के बारे में कुछ भी ध्यान न देकर मुझे त्याग दिया। अधिरथ सूत ने मुझे देखते ही नदी से निकालकर अपनी स्त्री राधा को सौंप दिया।

हे केशव, उस समय स्नेह के मारे राधा के स्तनों में दूध पैदा हो गया। उन्होंने अपने लड़के की तरह मेरा मल-मूत्र उठाया। तब फिर आप ही बताइए, मुझे सरीखा धर्म का जानकार किस तरह उनसे कृतव्रता कर सकता है? इस समय उन्हें छोड़कर उनका पिण्डशोप करना क्या मेरे लिए ठीक होगा? राधा की तरह अधिरथ भी मुझे अपना बेटा जानते हैं और मैं भी उन्हें पिता की तरह मानता हूँ। पुत्रवात्सल्य के वश होकर अधिरथ ने शास्त्रविधि से ब्राह्मणों के द्वारा मेरे जातकर्म आदि संस्कार कराये और मेरा नाम वसुपेण रक्खा। जब मैं जवान हुआ १० तब उन्होंने अपनी जाति की कन्याओं के साथ मेरा व्याह भी कर दिया। इस समय उन स्त्रियों के गर्भ से पुत्र और पोते तक पैदा हो चुके हैं। मेरा हृदय उन्हीं के स्नेह से भरा हुआ है। इसलिए मैं अमित सुवर्ण और अखण्ड भूमण्डल के लालच से अथवा हर्ष या डर से किसी तरह इन सबको नहीं छोड़ सकता।

खासकर धृतराष्ट्र के घराने में दुर्योधन के आश्रित रहकर मैंने तेरह वर्ष तक अकण्टक राज्य भोगा है। अपनी जाति के सूतों के साथ कई यज्ञ भी मैं कर चुका हूँ। मेरा विवाह-सम्बन्ध सूतों के साथ हुआ है और सूतों की ही रीतियाँ मेरे घर में प्रचलित हैं। दुर्योधन मेरे ही भरोसे पाण्डवों से भिड़ने की तैयारी कर चुके हैं। मेरे ही बल-बूते पर उन्होंने पाण्डवों से विरोध करने की हिम्मत की है। द्रुपदयुद्ध में मैं ही अर्जुन से भिड़ने को चुना गया हूँ। इसलिए इस समय वध, बन्धन, डर या लोभ के वश होकर मैं दुर्योधन को धोखा न दे सकूँगा। अर्जुन सं यदि मैं युद्ध नहीं करूँगा तो उनकी और मेरी बदनामी होगी। हे कृष्णचन्द्र, मुझे इसमें सन्देह नहीं कि तुम मेरे हित की बात कह रहे हो। यह भी सत्य है कि पाण्डव तुम्हारे उपदेश के अनुसार चलकर सब काम सिद्ध कर लेंगे। हे यदुश्रेष्ठ, मुझे यही ठीक जान पड़ता है कि तुम २० इन बातों को, जो मुझसे और तुमसे हुई हैं, पाण्डवों से न कहना। धर्मात्मा युधिष्ठिर मुझे अपना बड़ा भाई जानेंगे तो सब राज्य मुझे दे देंगे; किन्तु मैं पहले की प्रतिज्ञा के अनुसार सब साम्राज्य दुर्योधन को सौंप दूँगा। मैं चाहता हूँ कि धर्मराज युधिष्ठिर ही इस साम्राज्य के राजा हों। वासुदेव जिसके नेता हैं, भीम और अर्जुन जिसकी ओर से लड़नेवाले हैं, नकुल-सहदेव और द्रौपदी के पाँच कुमार जिसके पृष्ठरक्षक हैं, वह क्यों नहीं अखण्ड पृथ्वीमण्डल का राज्य बहुत समय तक भोगेंगे? युधिष्ठिर ने जैसा अपार क्षत्रियों का बल एकत्र किया है उसे देखकर कहना पड़ता है कि उन्हें और किसी की सहायता की ज़रूरत नहीं। पाञ्चालराज के पुत्र धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, उत्तमौजा युधामन्यु, महारथी सात्यकि, सत्यधर्मा सोमक-पुत्र, धृष्टकेतु, चेकितान, लोहितवर्ण केकयगण, इन्द्रधनुष के समान विचित्र रङ्गवाले घोड़ों से शोभित महात्मा कुन्तिभोज, महाबली श्येनजित्, विराट के पुत्र शंख और तुम, ये सब प्रधान-प्रधान क्षत्रिय युधिष्ठिर के सहायक हैं।

इस समय दुर्योधन का शस्त्र-यज्ञ होगा। तुम उस यज्ञ के उपदेशक और 'अध्वर्यु' होंगे। कवचधारी कपिध्वज अर्जुन 'होता' बनेंगे। गाण्डीव धनुष 'सुबा' होगा। पौरुष 'धी' होगा। अर्जुन के चलाये पाशुपत आदि अस्त्र यज्ञ में पढ़े जानेवाले 'वेदमन्त्र' होंगे। अर्जुन के सदृश या उनसे भी अधिक पराक्रमी अभिमन्यु 'स्तोता' और गरज रहे भीमसेन 'उद्गाता' बनेंगे। जप-होम-निरत युधिष्ठिर 'ब्रह्मा' की जगह होंगे। शङ्ख, मुरज, नगाड़े आदि के शब्द और वीरों के सिंहनाद ब्राह्मणों के मङ्गलपाठ के समान सुन पड़ेंगे। यशस्वा नकुल और सहदेव 'पशु-बन्धन' का कार्य करेंगे। विचित्र पताका-दण्ड-युक्त रथ 'यूप' संदिखाई पड़ेंगे। कर्ण, नालीक, नाराच, वत्सदन्त आदि बाण 'चमस' के स्थान को पूर्ण करेंगे। तोमर शस्त्र 'सोमरस' के कलश के समान, धनुष 'पवित्रो' के समान, तलवारें 'कपालपात्र' के समान, मस्तक 'पुरोडाश' के पाक-पात्र के समान और रुधिर 'हवि' के समान होगा। स्वच्छ गदा, परिघ और शक्ति आदि शस्त्र हवन की लकड़ियों का काम देंगे। द्रोण और कृपाचार्य के शिष्य 'सदस्य' होंगे। महावीर अर्जुन, द्रोण और अश्वत्थामा आदि के बाण 'परिस्तोम' होंगे। महारथी सात्यकि 'प्रतिप्रास्थानिक' कर्म करेंगे। दुर्योधन इस यज्ञ की दीक्षा लेंगे। यह महासेना उनकी पत्नी होगी। महाबली घटोत्कच बलिदान करेगा। श्रौत यज्ञ में अग्निकुण्ड से उत्पन्न राजकुमार धृष्टद्युम्न को इस यज्ञ की दक्षिणा समर्पित। ३० ४०

हे कृष्णचन्द्र, मैंने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए पाण्डवों को कड़वे वचन कहकर जो बेजा काम किया है, उसके लिए मुझे बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। तुम जब अर्जुन के हाथ से मुझे मरा हुआ देखोगे तब इस यज्ञ का 'पुनश्चिति' कर्म होगा। भीमसेन जब छाती पर चढ़कर दुःशासन का खून पियेंगे तब इस यज्ञ के 'सोमपान' का कार्य होगा। शिखण्डी और धृष्टद्युम्न जब भीष्म और द्रोण को मारेंगे तब इस यज्ञ की समाप्ति होगी। धृतराष्ट्र के पुत्रों और पांडवों की स्त्रियाँ जब स्वामी-पुत्र आदि के मरने से अनाथ होकर गान्धारी के साथ विलाप करेंगी तब इस कुत्ते-कौए-गिद्ध आदि की क्रीड़ा भूमि शस्त्र-यज्ञ का 'अवभृथ स्नान' होगा। हे केशव ! इस समय ऐसा करो जिसमें युद्ध की सराहने योग्य मृत्यु से बचकर विशा-वयो-वृद्ध क्षत्रिय फिर पड़े-पड़े वृथा मृत्यु से न मरें। उन्हें अत्यन्त पवित्र कुक्षेत्र में जमा होकर शस्त्र-मृत्यु से मरने दो। वह उपाय करो, जिसमें सब क्षत्रिय युद्ध में मरकर स्वर्गलोक को जायें। ऐसा करोगे तो जब तक पर्वत-नदी-वन सहित यह पृथ्वी रहेगी तब तक तुम्हारी कीर्ति रहेगी। ब्राह्मण लोग शुभ अवसरों पर इस महाभारत युद्ध की कथा कहेंगे। इसलिए शान्ति का उद्योग छोड़कर अर्जुन को युद्ध-भूमि में क्षत्रिय-धर्म-पालन के लिए ले आओ। ५१ ५७

एक सौ बयालीस अध्याय

श्रीकृष्ण का प्रत्युत्तर

वैशम्पायन कहते हैं कि वीर कर्ण की बातें सुनकर श्रीकृष्ण सुमकाय और कहने लगे—
हे कर्ण ! तुम कभी राज्य नहीं पा सकते; क्योंकि मैं तुमको पृथ्वी का राज्य देता हूँ, परन्तु तुम उसे
लेंने को तैयार नहीं। इसमें मन्दह नहीं कि पाण्डवों की अवश्य जीत हांगी। विश्वकर्मा ने अपनी
माया से जिसे इन्द्रधनुष के समान बनाया है, जिसमें जय-दायक भयानक भूत रहते हैं और जो चारों
ओर याजन भर फैली होतें पर भी वृत्त आदि में नहीं अटकती, वह आग जैसी वानर-चिह्नित
अर्जुन की ध्वजा इस समय उनके श्व पर फहराने लगी है। जब मैंने साथ अर्जुन को ऐन्द्र-
आग्नेय-वायव्य दिव्य अस्त्र चलाते देखेंगे और गाण्डीव धनुष का मेघगर्जन-तुल्य घोर शब्द सुनेंगे
तब सत्य, व्रता या द्वापर नहीं होगा—साक्षान् कलियुग मौजूद होगा। जब देखेंगे कि जप-
होम-तत्पर दुर्धर्ष महाराज युधिष्ठिर युद्ध-भूमि में आकर अपनी सेना की रक्षा करते हैं और अपने
सूर्य के से प्रताप से शत्रु-सेना को पीड़ित कर रहे हैं तब सत्य, व्रता या द्वापर नहीं रहेगा।
जब देखेंगे कि भीमपराक्रमी भीमसेन मतवाले गजराज की तरह दुःशासन का खून पीकर समर-
११ भूमि में नाच रहे हैं तब सत्य, व्रता या द्वापर कोई युग नहीं रहेगा। जब देखेंगे कि भयानक
धनुषवाले मव्यसाची अर्जुन समर में मामने आये हुए द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य,
दुर्योधन और जयद्रथ आदि वीर महारथियों को अपने बाणों से पीछे हटा रहे हैं, तब सत्य,
व्रता या द्वापर नहीं रहेगा। जब देखेंगे कि शत्रुपक्ष के वीरों का मार्गनेवाले महाबली
नकुल और सहदेव युद्ध-भूमि में घोर शस्त्र बरसा-बरसाकर दुर्योधन की सेना का नाश कर
रहे हैं तब सत्य, व्रता या द्वापर नहीं रहेगा।

हे कर्ण ! तुम भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य से कहना कि युद्ध के लिए यही महीना
अच्छा है। इस महीने में घाम, ईधन, खाने-पीने की सामग्री, सब तरह के फल, ओषधि
आदि सामग्री (रमद) सहज में बहुत सी मिल सकती है। मक्खियों का उपद्रव भी आजकल
कम है। कीचड़ का नाम नहीं है। पानी भी साफ और मीठा है। ऋतु न तो बहुत गर्म
है न बहुत ठण्डी। आज से सातवें दिन अमावास्या तिथि हांगी, जिसके स्वामी इन्द्रदेव हैं।
उसी दिन युद्ध का आरम्भ हो जाना चाहिए। युद्ध के लिए आये हुए अन्य राजाओं से भी
कहना कि मैं तुम्हारी इच्छा अच्छी तरह पूरी करूँगा। दुर्योधन के सहायक राजा और
२० राजपुत्र शत्रुओं के प्रहार से मरकर वीरों की गति पावेंगे।

एक सौ तैंतालीस अध्याय

कर्ण का लौट जाना

सञ्जय कहते हैं कि श्रीकृष्ण के हितकारी वचन सुनकर कर्ण ने उनकी प्रशंसा की और फिर कहा—हैं महाबाहु कृष्णचन्द्र, तुम सब जान-बूझकर भी मुझे चकर में डालने का उपाय क्यों कर रहे हो ? मैं, दुर्योधन, दुःशामन और शकुनि, यही चार आदमी इस हानहार लोकतन्त्र का मूल-कारण हैं । इसमें संशय नहीं कि कौरवों और पाण्डवों का विकट युद्ध होगा । पृथ्वी में रक्त की नदी बहेगी । दुर्योधन की आर से लड़नेवाले राजा और राजपुत्र शत्रुओं की आग में भस्म होकर अवश्य काल के मुँह का कौर होंगे । रंगटे खड़े कर देनेवाले वुरे मपने और दारुण उत्पात सदा देख पड़ते हैं । उनसे साफ़ जान पड़ता है कि दुर्योधन की हार और युधिष्ठिर की जीत होगी । देखो, क्रूर ग्रह शनैश्चर प्राणियों के क्लेश पाने की सूचना देता हुआ, प्रजापति जिसके देवता हैं उस, रोहिणी नक्षत्र को पीड़ित कर रहा है । मङ्गल ग्रह वक्रो होकर ज्येष्ठा से अनुराधा नक्षत्र में जा रहा है । इसका फल मित्रों का संहार ही है । पापग्रह राहु विशेष रूप से चित्रा नक्षत्र को पीड़ित कर रहा है । यह उत्पात भी इस बात की सूचना दे रहा है कि कौरवों के ऊपर घोर विपत्ति आनेवाली है । चन्द्रमण्डल में कलङ्क का चिह्न फैलता जा रहा है । राहु सूर्य को ग्रसने के लिए तैयार है । घोर शब्द के साथ आकाश से उल्कापात हो रहे हैं । पृथ्वी बार-बार चलायमान हो रही है । हाथी अशुभ शब्द कर रहे हैं और घाड़ों के आँसू बह रहे हैं । घाड़े जी लगाकर दाना-पानी नहीं खाते-पीते । इन दारुण उत्पातों का फल यही है कि प्राणियों के लिए भयङ्कर डर हो और उनका विनाश हो ।

हे माधव ! दुर्योधन की सेना के मनुष्य, हाथी और घोड़े थोड़ा भोजन करके बहुत मल-त्याग करते हैं । ये सब कौरवों की हार के चिह्न हैं । इसके विरुद्ध पाण्डव-सेना के वाहन (सवारी) और मनुष्य प्रसन्न देख पड़ते हैं और मृग आदि शुभ पशु पाण्डवों की दाहनी ओर जाते और फिरते देख पड़ते हैं । यह पाण्डवों की जीत का मङ्गल है । बाईं ओर देख पड़नेवाले मृग और आकाशवाणी दुर्योधन के हारने की सूचना दे रही है । मार, हँस, मारस, पपीहा और चकोर आदि शुभ पक्षी पाण्डवों के अनुगामी देख पड़ते हैं । गिद्ध, कौए, बगले, बाज़, राक्षस, भेड़िये और मक्खियाँ कौरवों के पीछे चलती देख पड़ती हैं । दुर्योधन की सेना में नगाड़े, बजाने सं भी, अच्छी तरह नहीं बजते । उधर पाण्डवों की सेना के नगाड़े बिना बजाये ही बज उठते हैं । हैं श्रीकृष्ण, दुर्योधन की सेना के पड़ाव में जो जलाशय हैं उनसे बैलों के डहकने का सा शब्द निकलता है । दुर्योधन की सेना के ऊपर आकाश से मूस और खून बरसता है । यह दुर्योधन की हार का लक्षण है । आकाश में दावार, फाटक, खाई आदि सहित गन्धर्वनगर एका-

१०

२०

एक सूर्य सहित प्रकट होते देख पड़ते हैं। सबेरे-शाम दोनों सन्ध्याओं में, उदय और अस्त के समय, सूर्यबिम्ब में काला घेरा पड़ते देख पड़ता है। यह उत्पात भी विकट डर की सूचना देता है। सियारानी घोर शब्द करती है। यह भी कौरवों की हार का लक्षण है। एक पङ्ख, एक आँख और एक पैरवाने पक्षों ज़ोर से चिल्लाते देख पड़ते हैं। यह हार का लक्षण है। काली गरदन और लाल पैरोंवाले भयानक पक्षी शाम को घोर शब्द करते हुए पश्चिम की ओर जाते देख पड़ते हैं। यह भी हार का लक्षण है। दुर्योधन पहले से ही ब्राह्मणों, गुरुओं और भक्त सेवकों से द्वेष करते हैं। यह भी उनकी हार का लक्षण है। पूर्व दिशा का लाल रङ्ग, दक्षिण दिशा का शबल का सा श्याम रङ्ग, पश्चिम दिशा का कच्चे मिट्टी के बरतनों का सा रङ्ग और उत्तर दिशा का शङ्ख का सा रङ्ग देख पड़ता है। दुर्योधन की छावनी के चारों ओर आकाश में दिग्दाह की लाली देख पड़ती है। ये सब उत्पात आनेवाले भारी डर की सूचना दे रहे हैं।

हे वासुदेव, मैंने स्वप्न में देखा है कि राजा युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ हज़ार खम्भे-
३० वाले महल में जा रहे हैं। पक्षों पाण्डव सफ़ेद पगड़ी बाँधे, उसी रङ्ग के कपड़े पहने और सफ़ेद ही आसनों पर बैठे मुझे देख पड़े। मैंने यह भी स्वप्न में देखा कि तुम्हारी देह खून से लथपथ हो रही है और उसमें बहुत सी आँतें लिपटी हुई हैं। महापराक्रमी युधिष्ठिर को देखा कि वे हड्डियों के ढेर पर खड़े, सोने के पात्र में रक्खा हुआ, धी और खीर प्रसन्नता से खा रहे हैं। मैंने युधिष्ठिर को मिट्टी खाते देखा है। इससे मुझे निश्चय है कि वे तुम्हारी सहायता से सारी पृथ्वी प्राप्त करके राज्य करेंगे।

फिर मैंने सपने में देखा कि पराक्रमी भीमसेन गदा हाथ में लिये ऊँचे पहाड़ की चोटी पर चढ़कर सहज ही सारी पृथ्वी को लीले लेंते हैं। इससे भी जान पड़ता है कि वे संग्राम में हम सबको मारेंगे। हे वासुदेव, मैं समझता हूँ कि जहाँ धर्म है वहीं जय है। मैंने यह भी स्वप्न में देखा कि अर्जुन तुम्हारे साथ सफ़ेद हाथी पर सवार हैं। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोग युद्ध में सब राजवंशों का विनाश करोगे। मैंने फिर देखा कि सफ़ेद कवच, केंचूर, माला और कपड़े पहने नकुल, सहदेव और महारथी
४० सात्यकि बढ़िया रथ पर चढ़े हुए हैं; उनके सिर पर सफ़ेद छत्र लगा हुआ है। मैंने स्वप्न में दुर्योधन के सैनिकों को भी देखा। मैंने देखा कि अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा सफ़ेद पगड़ी बाँधे हुए हैं, बाँकी सबके सिर पर लाल पगड़ियाँ हैं। मैंने यह भी देखा कि महावीर भीष्म और द्रोणाचार्य मुझे और दुर्योधन को साथ लिये ऊँट की सवारी से दक्षिण दिशा को जा रहे हैं। हम सब शीघ्र मौत के मुँह में जायेंगे, ये बातें उसी की पूर्व-सूचना हैं। मतलब यह कि मैं, सब राजा और क्षत्रिय अवश्य ही गाण्डीव धनुष की आग में भस्म हो जायेंगे।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे कर्ण ! मेरा कहना तुम्हें नहीं रुचा, इसलिए मनुष्यों का नाश होगा ही । मालूम हो गया, जब विनाश का समय आता है तब बुरी नीति अच्छा जान पड़ती है, और वह हृदय में ऐसी जम जाती है कि हटाये नहीं हटती ।

कर्ण ने कहा—हे जनार्दन, हम जो इस वीर-वंश-विनाशक महायुद्ध से सकुशल जीते बचे तो फिर तुमसे भेंट होगी । और, जो मर गये तो स्वर्ग में तुमसे मिलेंगे । मुझे तो जान पड़ता है कि स्वर्ग में ही हम लोगों की भेंट होगी ।

वैशम्पायन कहते हैं—कर्ण ने यों कहकर श्रीकृष्ण को गले से लगा लिया । फिर वे उनसे विदा होकर, उनके रथ से उतरे और अपने सुनहरे रथ पर बैठकर, उदास भाव से हस्तिनापुर लौट आये ।

उधर सात्यकि के साथ श्रीकृष्ण फुर्ती से अपना रथ हँकवाते हुए युधिष्ठिर के पास चले ।



एक सौ चवालीस अध्याय

कुन्ती और विदुर की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं कि कौरवों के यहाँ सन्धि का प्रस्ताव व्यर्थ होने पर श्रीकृष्ण जब लौट गये तब विदुर ने कुन्ती के पास जाकर शोक प्रकट करते हुए धीमे स्वर में कहा—हे चिरजीवी पुत्रोंवाली कुन्तीदेवी, यह तुमसे छिपा नहीं है कि युद्ध का रुक जाना ही मुझे अभीष्ट था; किन्तु मेरे बार-बार चिल्लाकर मना करने पर भी दुर्योधन मेरी बात नहीं सुनता । धर्म-राज युधिष्ठिर असाधारण बली हैं और धृष्टकेतु, पाञ्चालराज, केकयराजकुमार, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण और सात्यकि आदि महारथी उनके सहायक हैं । वे कहीं दूर नहीं, उपप्लव्य नगर में ही ठहरे हुए हैं । किन्तु प्रबल होकर भी भ्रातृस्नेह और जाति-प्रेम के कारण दुर्बल की तरह धर्म ही चाहते हैं अर्थात् जातिभाइयों की हत्या से बचने के लिए सन्धि का प्रस्ताव कर रहे हैं । परन्तु राजा धृतराष्ट्र बूढ़े होकर भी शान्ति नहीं चाहते और बेटे के मद से मतवाले होकर अधर्म के मार्ग में बढ़े जा रहे हैं । जान पड़ता है कि जयद्रथ, कर्ण, दुःशासन

और शकुनि की दुर्बुद्धि से यह आपस का युद्ध हुए बिना न रहेंगा। जो लोग धर्मात्मा के साथ ऐसा अधर्म का आचरण करते हैं उनका विनाश होता ही है। दुर्योधन अधर्म से धर्मात्मा युधिष्ठिर का राज्य हज़म करना चाहता है, इसलिए वह अधर्म ही उसका नाश करेगा। कौरव लोग ज़बरदस्ती अधर्म का धर्म बताते हैं। उनके इस आचरण को देखकर किसे मन्ताप न होगा? श्रीकृष्ण मेल कराने आये थे, पर उनका उपाय सफल नहीं हुआ। अब ज्योंही वे लौटकर पहुँचेंगे त्योंही पाण्डव युद्ध की तैयारी कर देंगे। लड़ाई में कौरवों का नाश होगा। उनके अन्याय से और भी असंख्य वीर युद्धभूमि में मरेंगे। इसी चिन्ता के मारे न तो मुझे दिन को नींद आती है न रात को।

१० हित चाहनेवाले विदुर के ये वचन सुनकर कुन्ती बहुत ही दुःखित हुई। वे लम्बो माँमें लेती हुई सोचने लगीं कि अनर्थ के कारणरूप अर्थ राज्य-पंथर्य) को धिक्कार है! उसी के कारण यह असंख्य जाति-भाइयों का नाश होगा! आत्मीय लोग ही अपने मंगे लोगों की हत्या करेंगे।



पाण्डव, चेदि पाञ्चाल, यादव आदि सब जातिवाले और नातेदार कौरवों से युद्ध करेंगे। इससे बढ़कर दुःख की बात और क्या होगी? युद्ध में जातिनाश का दोष देख पड़ता है और युद्ध न करने से मंगे पुत्रों को दुःख और पराभव सहना पड़ेगा। यह सच है कि निर्धन जीविकाहीन पुरुष का मरना ही अच्छा है, किन्तु असंख्य जाति-भाइयों की हत्या करके जय प्राप्त करना भी सराहनीय नहीं है। इन दोनों मझूटों की चिन्ता से मेरा मन दुःख के समुद्र में गोते खा रहा है। इधर महायोंद्रा भीष्म, द्रोण और कर्ण को दुर्योधन के पक्ष में देखकर मुझे बड़ा डर लगता है। किन्तु यह निश्चय है कि आचार्य द्रोण शिष्यों पर कृपा करते हैं; वे अपने प्यारे शिष्यों से जी लगाकर युद्ध नहीं करेंगे। पितामह भीष्म भी पाण्डवों को मनेह की

दृष्टि से देखते हैं। [वे भी पाण्डवों का बुरा नहीं कर सकते।] एक पापबुद्धि कर्ण ही ऐसा है जो दुर्बुद्धि दुर्योधन के मोह में पड़कर सदा पाण्डवों से कुदृष्टा रहता है। वह



पाण्डवों के अनिष्ट की चिन्ता किया ही करता है। कर्ण बलवान् और वीर है। एक उसी से मुझे बड़ा खटका है। इससे इस समय कर्ण से जाकर मिलूँगी। मैं पता लगाऊँगी कि पाण्डवों के सम्बन्ध में उसका क्या इरादा है। फिर सब गुप्त वृत्तान्त सुनाकर ऐसा उपाय करूँगी जिससे वह पाण्डवों का विरोध करना छोड़ दे। उसके जन्म का हाल आदि से अन्त तक उसे बता दूँगी। जब मैं पिता कुन्तिभोज के रनिवास में कन्यावस्था में थी तब दुर्वासा ऋषि ने मेरी सेवा से सन्तुष्ट होकर मुझे एक मन्त्र का उपदेश देकर यह वरदान दिया था कि तुम २० पुत्र की इच्छा करके, इस मन्त्र के बल से, चाहे जिस देवता को अपने पास बुला सकोगी। वह वरदान मिलने पर खीस्वभावसुलभ चञ्चलता और लड़कपन के मारे मैंने उस मन्त्र की जाँच करनी चाही। मन्त्र और ब्राह्मण के वचन की सचाई जाँचने के लिए मेरे मन में ऐसा कौतूहल उत्पन्न हुआ कि मुझसे रहा नहीं गया। विश्वासपात्र धाय और सखियाँ सदा मेरी देखभाल रखती थीं। खासकर पिता की बदनामी, अपने लिए कलङ्क और अधर्म के डर से पहले तो मैं हिचकी, पर अन्त को कौतूहल को न रोक सकी। कन्यावस्था में ही दुर्वासा को प्रणाम करके मैंने वही मन्त्र पढ़ा और सूर्यदेव का आवाहन किया। उन्हीं सूर्य से कर्ण का जन्म हुआ है। कर्ण कन्यावस्था में उत्पन्न मेरा पुत्र है। फिर वह भाइयों के हित के लिए मेरी बात क्यों नहीं मानेगा !

यह निश्चय करके कुन्ती कर्ण के पास गङ्गातट पर गई। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि सत्यव्रत महावीर कर्ण पूर्व को मुंह किये, ऊपर को हाथ उठाये, सूर्य की उपासना में लगे हैं और गायत्री का जप कर रहे हैं। कुन्ती उनके पास जाकर पीछे खड़ी खड़ी जप समाप्त होने की बात जोहने लगी। जब प्रचण्ड सूर्य की किरणों से कमलमाला के समान कुन्ती मुरझाने लगी तब कर्ण के दुपट्टे की छाँह में हट आई।

जब तक पीठ नहीं तपी तब तक गायत्री का जप करके महातेजस्वी, बलवान्, व्रतधारी कर्ण ने मुँह फिराया तो कुन्तीदेवी को खड़े देखा। एकाएक उन्हें वहाँ देखकर कर्ण को अचरज हुआ। उन्होंने यथोचित रूप से हाथ जोड़कर कुन्ती को प्रणाम किया। ३१

एक सौ पैंतालीस अध्याय

कर्ण और कुन्ती का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, कर्ण ने कहा—देवी, मैं राधा और अधिरथ का पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ। आप किसलिए मेरे पास आई हैं ? कहिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

कुन्ती ने कहा—कर्ण, तुम सूत-कुल में नहीं उत्पन्न हुए। न तुम्हारी माता राधा हैं और न अधिरथ तुम्हारे पिता हैं। तुम मेरे—कुन्ती के—पुत्र हो। तुम मेरे कानीन और बड़े बेटे हो। मैंने कन्यावस्था में अपने पिता कुन्तिभोज के घर तुम्हें उत्पन्न किया है। हे वीर, सब

- जगत् का प्रकाशित करनेवाले भगवान् सूर्य ने तुम्हें मेरे गर्भ से उत्पन्न किया है। तुम सब शास्त्र धारण करनेवाले वीरों में श्रेष्ठ हो। तुम जन्म के समय ही कवच और कुण्डल पहने, देवकुमार-सदृश शोभाशाली और बड़े दुर्धर्प थे। तुम अपने भाइयों को नहीं जानते इसी से मोहवश दुर्योधन की सेवा कर रहे हो; यह तुम्हारे योग्य नहीं है। धर्मशास्त्र में लिखा है कि माता-पिता को प्रसन्न करना ही मनुष्य का मुख्य धर्म है। इसलिए जो राजलक्ष्मी अर्जुन ने अपने बाहुबल से जीतकर युधिष्ठिर को दी थी, और जिसे दुष्टों ने युधिष्ठिर के हाथ से ले लिया है, वह तुम्हारी ही है। तुम दुर्योधन से वह राजलक्ष्मी लेकर राज्यसुख भोगो। कौरव लोग आज कर्ण और अर्जुन का मिलना देखें। तुम दोनों भाइयों को परस्पर भाई-चारे के बन्धन में बँधते देखकर दुष्ट लोग शोक से सिर झुका लें। कृष्ण-वलराम की तरह कर्ण-
- १० अर्जुन में स्नेह हो। तुम दोनों भाई मिलकर क्या नहीं कर सकते? बेटा, जैसे महायज्ञ में वेदी पर देवताओं के बीच ब्रह्मा की शोभा होती है, वैसे ही पाँचों भाइयों के बीच तुम्हारी शोभा होगी। कर्ण, तुममें सब गुण हैं और तुम अपने श्रेष्ठ भाइयों में बड़े हो। मैं चाहती हूँ कि
- १२ पराक्रमी कुन्तीपुत्र को लोग अब सूतपुत्र न कहें।

एक सौ छियालीस अध्याय

कर्ण का कुन्ती को उत्तर

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, इसी समय सूर्यदेव ने अपने मण्डल से पिता की तरह प्रेमपूर्ण स्वर में कर्ण से कहा—हे पुरुषसिंह, कुन्ती सच कहती हैं; तुम माता का कहा मानो। माता का कहा मानने से सब तरह तुम्हारा भला होगा।

माता कुन्ती और पिता सूर्य के ये कहने पर भी सत्यव्रत कर्ण अपने निश्चय से तनिक भी नहीं डिं। कर्ण ने कुन्ती से कहा—हे क्षत्रियाणी, आपकी आज्ञा मानना मेरे लिए धर्म का द्वार अवश्य है, पर मुझे उस पर विश्वास नहीं होता। आपने लड़कपन में मुझे त्याग दिया, जाति से भ्रष्ट कर दिया। यश से तो मुझे अलग कर ही दिया, किन्तु एक प्रकार से मेरे प्राण भी ले लिये थे। मैं क्षत्रिय के कुल में उत्पन्न होकर भी आपके कारण क्षत्रिय के योग्य संस्कारों से हीन रहा। पापबुद्धिवाला शत्रु भी आपसे बढ़कर मेरा अर्हित नहीं कर सकता। पहले समय पर दया न करके इस समय आप अपने मतलब से मेरे पास आई हैं और दुर्योधन का साथ छोड़ने को कहती हैं। पहले तो आपने माता की तरह मेरे हित का उपाय नहीं किया, और अब केवल अपने स्वार्थ के लिए आप मा-बेटे का सम्बन्ध जताने आई हैं। श्राकृष्ण-समेत अर्जुन से किसे डर न होगा? इस कारण, इस समय, जो मैं भाई-चारा प्रकट करके पाण्डवों से मिल जाऊँ तो कौन यह न समझेगा कि मैंने डरकर ऐसा किया है? कोई नहीं जानता कि मैं

पाण्डवों का भाई हूँ। अब युद्ध के समय भाई-भार प्रकट करके जा मैं पाण्डवों से मिलूँ तो सब क्षत्रिय मुझे क्या कहेंगे? दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के बेटे सब तरह की सुखभोग की सामग्री देकर बराबर मेरा आदर और सत्कार करते आ रहे हैं, उसे मैं इस समय विफल कैसे कर सकता हूँ? जो लोग शत्रुओं से वैर बाँधकर सदा मेरी खुशामद करते हैं; जो लोग—वसुगण जैसे इन्द्र को मानते हैं वैसे ही—मुझे माननीय मानकर प्रणाम करते हैं, और जो लोग मुझे दुस्तर समर-समुद्र के पार जाने की नाव समझकर—उसके पार जाने की आशा से—मेरा आश्रय लिये हुए हैं, उन्हें मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? उनकी आशा को मैं कैसे चौपट कर सकता हूँ? जो लोग दुर्योधन के आश्रय में थे उनके कर्तव्य-पालन का समय आ गया है। मैं प्राणों की ममता छोड़कर उनकी सहायता करने में मन लगाऊँगा। जो चञ्चल



बुद्धिवाले दुराचारी लोग सदा स्वामी के द्वारा अच्छी तरह प्रतिपालित और निहाल होकर एन मौक पर, उसके उपकार भुलाकर, उसे छोड़ देते हैं उनका न तो यह लोक बनता है और न परलोक।

मैं झूठ नहीं कहता, दुर्योधन आदि के लिए अपना सब बल और शक्ति लगाकर आपके बेटों से मैं युद्ध करूँगा। मतलब यह कि सज्जनों की तरह दया, धर्म और चाल-चलन की रक्षा करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। इस कारण आपकी आज्ञा को, सचमुच हितकारिणी समझकर भी, मैं नहीं मान सकता। पर आपका मेरे पास आना और सिफारिश करना वृथा न होगा। मैं युद्ध में एक अर्जुन को छोड़कर आपके अन्य चार पुत्रों—युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव—को जान से नहीं मारूँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि युद्ध में युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव को मारने की शक्ति रखकर भी उन्हें छोड़ दूँगा। मैं युधिष्ठिर की सेना में एक अर्जुन से ही मरने-मारनेवाला युद्ध करूँगा। क्योंकि अर्जुन को मार लेने से ही मैं अपने को निहाल समझूँगा। अथवा अर्जुन जो मुझको मार सके तो मुझे अपार यश और स्वर्ग प्राप्त होगा। हं यशस्विनी, आपके पाँच बेटे हर हालत में बने रहेंगे। मैंने जो अर्जुन को मारा तो भी और अर्जुन ने मुझको मारा तो भी पाँच पाण्डव रहेंगे।

पुत्रों के नाश की शङ्का और दुःख से काँप रही कुन्ती ने अपने इरादे से न डिगनेवाले वीर कर्ण को हृदय से लगाकर कहा—बेटा, तुम जो कहते हो वही होता देख पड़ता है; कौरवों का नाश रुक नहीं सकता। क्या किया जाय, होनी बड़ी प्रबल है। हे शत्रुदमन, तुमने अर्जुन को छोड़कर बाकी चार भाइयों को न मारने की प्रतिज्ञा करके उन्हें अभय दिया है—यह भूल न जाना। हे कर्ण, तुम आरोग्य रहो; तुम्हारा भला हो। मैं जाती हूँ।

कर्ण ने फिर प्रणाम करके कुन्ती का सत्कार किया। कुन्ती अपने घर का गई और २७ कर्ण अपने महल की ओर गये।

एक सौ सैंतालीस अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर के पास पहुँचना

वैशम्पायन कहते हैं—उधर शत्रुओं की पीड़ा पहुँचानेवाले भगवान् वासुदेव ने उपप्लव्य नगर में पाण्डवों के पास पहुँचकर हस्तिनापुर का सब हाल कह सुनाया। बहुत देर तक बात-



चीत और सलाह करके कृष्ण-चन्द्र विश्राम करने का अपने डेरे में गये। पाण्डवों ने सन्ध्या के समय विराट आदि राजाओं को विदा करके, सन्ध्याव दन करके श्रीकृष्ण को बुलाया। फिर उसी वार में श्रीकृष्ण और पाण्डवों से बातचीत होने लगी।

युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रीकृष्ण, कौरव-सभा में दुर्योधन के साथ आपकी जो बातचीत हुई उसे फिर कहिए।

श्रीकृष्ण ने कहा—मैंने दुर्योधन से सत्य, राक्षक और हित की ही बातें कहीं, किन्तु उस दुर्बुद्धि ने एक न सुनी।

युधिष्ठिर ने कहा—हे वासुदेव, पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण ने उम्र अनीलि-परा-यण क्रांती दुर्योधन से क्या कहा? पिता धृतराष्ट्र और माता गान्धारी ने क्या कहा? हमारे लिए सदा शोक करनेवाले, श्रेष्ठ धर्मात्मा, चाचा विदुर ने और अन्य राजाओं ने क्या कहा?

हे जनार्दन ! कुरुश्रेष्ठ भीष्म, धृतराष्ट्र और अन्य सभासद राजाओं ने काम-लोभ-क्रोध के वशीभूत दुर्मति दुर्योधन से जो कुछ कहा सो आप सुना तो चुके हैं किन्तु मैं उन बातों को अच्छी तरह समझ नहीं सका । इसलिए उन्हें दुबारा कहिए । हे प्रभु, आप ही हमारे लिए एकमात्र आश्रय हैं । हम आपका ही प्रभु और गुरु समझते हैं । इसलिए वह उपाय कीजिए जिसमें व्यर्थ समय नष्ट न हो ।

वासुदेव ने कहा—हे धर्मराज ! कौरव-सभा में दुर्योधन से लोगों ने जो कुछ कहा, सो मैं सुनाता हूँ; सुनकर विचार कीजिए । दुर्योधन से मुझे जो कुछ कहना था वह कह चुकने पर वह हँस पड़ा । तब भीष्म ने क्रोधित होकर कहा—दुर्योधन, कुल को बचाने के लिए जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे मन लगाकर सुनो । मेरी बातें सुनकर तुम अपने कुल की रक्षा और भलाई का उपाय करो । भैया, मेरे पिता महाराज शान्तनु सब लोकों में प्रसिद्ध थे । पहले उनके मैं ही एक पुत्र था । पण्डित लोग एक पुत्र का होना और न होना बराबर बताते हैं । इसी से एक और पुत्र के लिए पिताजी बहुत ही उत्कण्ठित हो उठे । किस तरह दूसरा पुत्र उत्पन्न करके मैं कुल की रक्षा कर सकूँगा, किस तरह मेरी नामवरी हांगी, यही सोच उन्हें रहता था । पिता के हृदय का हाल जानकर मैं [व्यासदेव की माता] सत्यवती को अपनी माता बनाने के लिए दाशराज से ले आया । मैंने गद्दी छोड़ने और कारे ही बन रहने की कठिन प्रतिज्ञा करके पिता का यह दूसरा व्याह कर दिया । उसी प्रतिज्ञा के कारण मैं राजगद्दी पर नहीं बैठा और जन्म भर ब्रह्मचारी रहा । यह बात तुम अच्छी तरह जानते हो । मुझे राज्य न करने से कभी खेद नहीं हुआ । मैंने बराबर प्रसन्नता के साथ अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया ।

२०

हे राजकुमार, कुछ समय के बाद माता सत्यवती के गर्भ से धर्मात्मा महाबाहु विचित्र-वीर्य का जन्म हुआ । पिता का स्वर्गवास होने पर मैंने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य को गद्दी पर बिठाया और आप सेवक-भाव से गद्दा के नीचे बैठकर उनकी सेवा और सहायता करने लगा । जब विचित्रवीर्य विवाह योग्य हुए तब मैं बहुत से राजाओं को जीतकर स्वयंवर-सभा से उनके योग्य दो स्त्रियाँ ले आया और व्याह भी कर दिया । यह हाल भी तुम कई बार सुन चुके हो । उसके बाद परशुराम से मुझे द्वन्द्व युद्ध करना पड़ा । उस समय परशुरामजी के डर से नगरनिवासियों ने विचित्रवीर्य को नगर से बाहर भेज दिया । अबोध भाई विचित्रवीर्य को, अधिक स्त्रोसङ्ग करने के कारण, यक्ष्मा रोग हो गया । इस प्रकार विचित्रवीर्य का देहान्त हो जाने पर कौरवों की राजगद्दी खाली हो गई । इन्द्र ने वर्षा करना बन्द कर दिया । तब सारी प्रजा भूख और डर से व्याकुल होकर मेरे पास दौड़ी आई । सब लोग जमा होकर मुझसे आग्रह कर कहने लगे—हे शान्तनुकुलवर्द्धन, राजा के न होने से आपकी प्रजा नष्ट-भ्रष्ट हो रही है । इस कारण हमारी भलाई के लिए अब आप राज्य को सँभालिए । आपकी कृपा

और प्रताप से यह अनावृष्टि का उत्पात शान्त हो जायगा। हे भोष्मजी, भयङ्कर व्याधियों ने प्रजा को घेर रक्खा है। रोगों से भी असंख्य प्रजा मर रही है। जो प्रजा अभी जीती जागती है उसकी रक्षा का उपाय कीजिए। हे वीर, आपकी दया के सिवा हमारे कष्ट मिटने का दूसरा उपाय नहीं है। इसलिए कृपा करके धर्म के अनुसार प्रजा का पालन कीजिए। आपके रहते साम्राज्य का विध्वंस न होना चाहिए।

प्रजा के इस तरह दीनता के साथ बहुत-बहुत विनय करने पर भी मेरा मन नहीं डिगा। क्योंकि, मैं समझता था कि अपनी प्रतिज्ञा तोड़ना सदाचार के विरुद्ध है। तब सब नगरवासी लोग, मेरी सौतेली मा सत्यवती, नौकर-चाकर, पुराहित और बहुत शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण, दुःखित चित्त से, मेरे पास आये और अनुरोध करते हुए कहने लगे—हे सत्यव्रत, हमारे भन्ने के लिए तुम राजगद्दी पर बैठो। तुम्हारे मौजूद रहते यदि तुम्हारे पितामह महाराज प्रतीप का सुरक्षित यह विशाल साम्राज्य तहस-नहस हो जाय तो निःसन्देह बड़े ख़द की बात होगी।

तब मैं बहुत ही दुःखित और व्याकुल हो हाथ जोड़कर उनसे बारम्बार कहने लगा कि मैंने पिता के वड़पन और कुल की रक्षा के लिए राजगद्दी पर न बैठने की और विवाह न करने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है। उसे तोड़कर इस समय कैसे राजा बन जाऊँ? साधारण भाव से सबसे यों कहकर अन्त को हाथ जोड़कर माता को प्रसन्न करने के लिए मैंने कहा—हे जननी, मैं कुरुवंश में उत्पन्न महात्मा शान्तनु का पुत्र हाँकर कैसे अपनी प्रतिज्ञा तोड़ूँ? विशेष कर मैंने आपके लिए ही यह प्रतिज्ञा की थी। माता! मैं आपका दास हूँ, आपका ही अन्न खाकर पलता हूँ, तो भी आपकी यह आज्ञा मानना मेरी शक्ति के बाहर है।

हे दुर्योधन, माता और पुरवासियों को इस प्रकार शान्त करके मैंने अपने भाई की स्त्रियों के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करने के लिए महर्षि वेदव्यास से प्रार्थना की। इसके लिए माता ने भी उनसे बहुत कुछ कहा। हे भरतश्रेष्ठ, तब महर्षि ने मेरी प्रार्थना और माता की आज्ञा मानकर तीन बेटे उत्पन्न किये। उनमें तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र सबसे बड़े होने पर भी अन्ध हुए; इसी से उन्हें राज्य नहीं मिला। सब लोगों में प्रसिद्ध वीर पाण्डु को राजगद्दी मिली। इसलिए इस समय उनके बेटे पाण्डव ही गद्दी के वारिस हैं। अब तुम भगड़ा न करके आधा राज्य उनका बाँट दो। सच पूछो तो मेरे जीते इस राज्य पर किसी का अधिकार नहीं है। इसलिए मेरी बात न टालो। मैं पाण्डवों और कौरवों का समान हितैषी हूँ। बेटा, मैं पाण्डवों पर और तुम पर एक सा स्नेह रखता हूँ। तुम्हारे पिता-माता और महात्मा विदुर का भी यही मत है। तुम्हें बूढ़ों की बात माननी चाहिए। इसलिए बेखटके मेरे कहे के अनुसार काम करो। अपने प्राण और सर्वस्व को तथा और लोगों को व्यर्थ नष्ट करनेवाला हठ छोड़ दो।

एक सौ अड़तालीस अध्याय

द्रोणाचार्य, विदुर और गान्धारी के वचनों का वर्णन

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे युधिष्ठिर, भीष्म की बात पूरी होने पर सब राजाओं के सामने द्रोणाचार्य ने दुर्योधन से कहा—भैया, महाराज प्रतीप के वंशधर शान्तनु और उनके पुत्र देवव्रत भीष्म ने कुल की रक्षा और भलाई के लिए आज तक जैसा उपाय किया है वैसा ही मृत्युप्रतिज्ञ, जितन्द्रिय महाराज पाण्डु ने भी किया है। उन्होंने छोटे भाई विदुर और बड़े भाई धृतराष्ट्र को राज्य का सब काम सौंप दिया और आप दोनों स्त्रियों को साथ लेकर वन को चले गये। बुद्धिमान विदुर विनीत भाव से मिहानसन के नीचे बैठकर धृतराष्ट्र की सेवा करने और चँवर डुलाने लगे। सारी प्रजा भी महाराज धृतराष्ट्र को राजा समझकर उनका सम्मान करने लगी।

हे दुर्योधन, इस प्रकार वीर पाण्डु राजा धृतराष्ट्र और विदुर को, धरोहर के तौर पर, राज्य सौंपकर पृथ्वी में विचरने लगे। खजाना जमा करना, धन देना, सेवकों की देख-रेख और सबका भरण-पोषण, ये काम ईमानदार विदुर के सिर आ पड़े। शत्रुदमन भीष्म ने सुलह, लड़ाई और राजाओं से वर्ताव आदि का भार अपने ऊपर ले लिया। महाबली धृतराष्ट्र गद्दी पर बैठकर विदुर की सहायता से राज्य के और सब काम करने लगे। तुम्हारे पिता और चाचा ने यों मिलकर राज्य की रक्षा की है। उसी श्रेष्ठ कुल में तुम भी उत्पन्न हुए हो। तुम्हें इस तरह अपने कुल में फूट डालना या भगड़ा खड़ा करना कभी उचित नहीं। अब बुरी प्रवृत्ति को छोड़कर अपने भाई पाण्डवों से मेल कर लो और आनन्द के साथ राज्य करो। मैं डर या लोभ से ऐसा नहीं कहता। इसमें मेरा कोई स्वार्थ भी नहीं। मुझे भीष्म से जीविका मिलती है। मैं तुमसे जीविका भी नहीं चाहता। याद रखो, जिधर भीष्म हैं उधर ही द्रोण हैं। इस कारण जो भीष्म ने कहा है वही करो। पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। मैं तुम लोगों का भी गुरु हूँ और पाण्डवों का भी। मुझे दोनों के ऊपर एक सा स्नेह है। अश्वत्थामा के समान ही अर्जुन मुझे प्यारे हैं। अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। स्मरण रहे, जहाँ धर्म है वहीं जय है।

महात्मा द्रोणाचार्य जब चुप हो गये तब विदुर ने भीष्म पितामह की ओर देखकर कहा—हे पितामह देवव्रत, मैं जो कहता हूँ वह ध्यान देकर सुनिए। पहले आप डूब रहे कुरु-वंश को विनाश से बचा चुके हैं, फिर इस समय मेरी बात पर क्यों नहीं ध्यान देते? मैं बार-बार चिल्लाकर कह रहा हूँ, पर आप उपेक्षा कर रहे हैं। श्रेष्ठ कुरुकुल में इस कुलाङ्गार दुर्योधन को क्या अधिकार है? यह होता कौन है? यह लोभी और कृतघ्न है। प्रकृति इसकी नीच है। लोभ ने इसकी बुद्धि को बिगाड़ दिया है। यह सब जानकर भी आप इसकी पाप-बुद्धि का विरोध नहीं करते। यह धर्म और अर्थ के ज्ञान में निपुण पिता के शास्त्रानुकूल उप-

देश को भी नहीं सुनता। मैं मच कहता हूँ, अकेले इस दुर्योधन के कारण सब कौरवों का नाश होनेवाला है। महाराज, आप ऐसा कीजिए जिसमें कुरुकुल सर्वनाश से बच जाय। चित्रकार जैसे बड़े यत्न से रङ्ग भरकर चित्र बनाता है वैसे ही आपने इस राज्य की रचना और रक्षा की है। आपकी ही सहायता से मैं और धृतराष्ट्र दोनों इस राज्य को चलाते रहे हैं। प्रजापति जैसे प्रजा का उत्पन्न करके फिर उसका संहार करते हैं वैसे आपको अपने बढ़ाये इस राज्य और कुल का क्षय न करना चाहिए—अर्थात् कुल का सर्वनाश न होने देना चाहिए। जो आप यह समझते हों कि कुल का नाश होने ही वाला है, और आपकी बुद्धि नष्ट हो गई हो तो मुझे और धृतराष्ट्र को साथ लेकर वन को चल दीजिए; नहीं तो कपटी दुर्मति दुर्योधन को बाँधकर कैद में डाल दीजिए और पाण्डवों के साथ स्वयं इस साम्राज्य की रक्षा कीजिए। हं वीर, ध्यान देकर कुछ उपाय कीजिए। इस युद्ध में पाण्डवों, कौरवों और अन्य राजाओं का सर्वनाश होता देख पड़ता है। महामति विदुर यों कहकर चुप हो गये और चिन्ता में डूबकर वारम्बार लम्बी साँसें लेने लगे।

अब सुबल की बेटी देवी गान्धारी वंश नाश के डर से व्याकुल और कुपित होकर सब राजाओं के सामने दुर्योधन से कहने लगीं—अरे पापबुद्धि दुर्योधन! मैं सभा में बैठे हुए इन राजाओं, ब्रह्मर्षियों



और अन्य लोगों के आगे तेरे और तेरे मन्त्रियों के दोष कहती हूँ, उन्हें सुन। अरे दुरात्मा, हमारे कुल का धर्म यही है कि कुल परम्परा से कुरुवंश के लोग राज्य करें। पर तू उस रीति को नहीं मानता और इस राज्य को नष्ट करने पर तैयार है। अरे मूढ़, बुद्धिमान महाराज धृतराष्ट्र और उनके भाई दूरदर्शी विदुर की जिन्दगी में तू राजा कैसे बनना चाहता है? यह तेरा मोह है। महात्मा

भीष्म के जीते रहते महानुभाव धृतराष्ट्र और विदुर भी पराधीन हैं, वे भी अपने मन से कुछ नहीं कर सकते। महात्मा भीष्म धर्मज्ञ हैं, इसी से अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर राज्य नहीं करना चाहते। इसी कारण महात्मा पाण्डु को यह राज्य मिला था। पाण्डु के पुत्र पाण्डव और उनके पुत्र-पौत्र ही

इस राज्य के मन्त्रों वारिम हैं। इस समय सत्यप्रतिज्ञ भीष्म, महामति विदुर और महाराज धृतराष्ट्र जो कह रहे हैं वही करना चाहिए। अपने धर्म का पालन करते हुए अर्थ-नाश न होने देना—पाण्डवों को राज्य दे देना—ही ठीक है। इस समय इन हित-चिन्तक स्वजनों के कह अनुसार काम करने से ही धर्म का सम्मान होगा। महात्मा भीष्म और धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर को राजा बनाकर, न्याय की रक्षा करें और धर्मराज भी धर्म के अनुसार इस राज्य का पालन करें।

३६

एक सौ उनचास अध्याय

धृतराष्ट्र का उपदेश

श्राकृष्ण कहते हैं कि हे धर्मराज, गान्धारी के कह चुकने पर सब राजाओं के सामने महाराज धृतराष्ट्र ने दुर्योधन से कहा—बेटा, जो तुम्हारे जी में कुछ भी पिता की भक्ति हो तो मेरी बातों को मन लगाकर सुनो और उन्हीं के अनुसार काम करो। प्रजापति सोम इस कुरु-वंश के आदि-पुरुष हैं। सोम से छोटी पीढ़ी में महाराज नहुष के पुत्र ययाति हुए। ययाति के पाँच पुत्र थे। उनमें महातेजस्वी यदु सबसे बड़े थे। सबसे छोटे राजा पुरु से यह कौरव-वंश चला है। दानवों के राजा वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा के गर्भ से पुरु का जन्म हुआ था।

महात्मा यदु देवयानी के पुत्र और शुक्राचार्य के नातो थे। दुर्युद्धि और घमण्ड के मारे यदु ने पिता की आज्ञा नहीं मानी। वे पिता, भाई और अन्य क्षत्रियों को अपमानित करके, अपने बाहुबल से सब राजाओं को जीतकर, हस्तिनापुर में रहने लगे। हे दुर्योधन, श्रेष्ठ राजा ययाति ने यह देखकर बड़े बेटे यदु को शाप देकर राज्य के अधिकार से भी अलग कर दिया। यदु के जो और भाई बल के घमण्ड से उनके अनुगामी हुए उन्हें भी, नागाज्ञ होकर, ययाति ने शाप दिया। सबसे छोटे पुत्र पुरु ने पिता का कहना माना और वही राजगद्दी पर बैठे। यदि बड़ा बेटा बड़ों की आज्ञा न मानता हो और उद्वण्ड हो तो उसे राज्य नहीं मिलता और अच्छे स्वभाववाला छोटा बेटा बड़े-बूढ़ों की सेवा करने और पिता की आज्ञा मानने से राज्य पा सकता है, जैसा कि यदु के रहते पुरु का राजा होना प्रसिद्ध है।

१०

इस राज्य पर तुम्हारा या मेरा अधिकार क्यों नहीं है, सो सुनो। मेरे प्रपितामह, जगत्प्रसिद्ध, सब धर्मों के जानकार महाराज प्रतीप धर्मानुसार राज्य करते थे। उनके देवतुल्य तीन पुत्र हुए। सबसे बड़े देवापि, मँझले वाल्मीकि और छोटे मेरे बाबा बुद्धिमान् शान्तनु थे। महातेजस्वी देवापि बालक-बूढ़े-जवान स्त्री-पुरुष सबके प्रीतिपात्र थे। धर्मात्मा, सत्यवादी, सत्य-प्रतिज्ञ, पिता की सेवा और आज्ञा का पालन करनेवाले, उदार और सच्चरित्र होने के कारण पुर तथा नगर की प्रजा उन्हें बहुत चाहती थी और प्रसिद्ध प्रतिष्ठित सज्जन लोग उनको मानते थे; परन्तु उनके शरीर में एक दोष यह था कि कोढ़ के चिह्न थे। तीनों भाइयों में परस्पर बड़ा स्नेह था।

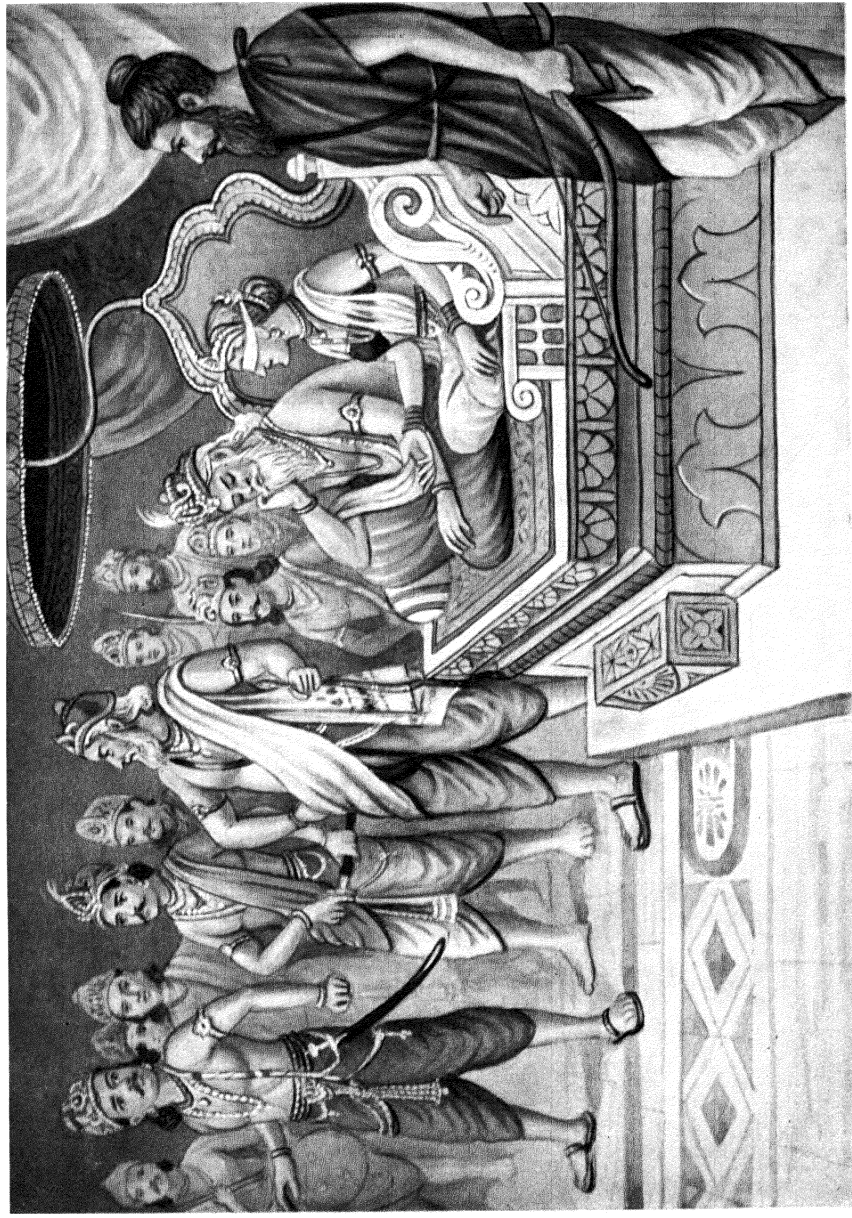
२०

यथासमय बूढ़े महाराज प्रतीप ने बड़े बेटे को राजगद्दी देने के लिए सब सामग्री मँगाकर इकट्ठी की। तब ब्राह्मण लोग, बड़े-बूढ़े और पुरवासी-नगरनिवासी लोग राजा के पास आकर देवापि को गद्दी पर न बैठाये जाने के लिए कहने लगे—महाराज, राजकुमार, देवापि में सभी गुण हैं, परन्तु उनको कोढ़ है। इस कारण वे गद्दी पर बैठने के अधिकारी नहीं हैं। अङ्गहीन राजा को देवता बधाई नहीं देते। हे दुर्योधन, प्रजा के द्वारा प्यारे बेटे का राज्याभिषेक रूकने देखकर महाराज प्रतीप के आँसू भर आये। वे अपने बेटे के लिए खेद प्रकट करने लगे। ब्राह्मणों ने देवापि का राज्याभिषेक रोक दिया। दुःख के मारे राजा मर गये। तब तप करने के लिए देवापि वन का चले गये। मँझले भाई वाल्मीकि पहले ही पिता, माता, भाई और राज्य छोड़-छोड़कर नाना के पास रहने लगे थे; क्योंकि नाना ने उन्हें गोद लेकर अपने भरे-पूरे राज्य का वारिस बना दिया था। इस कारण पिता के मरने पर, मँझले भाई वाल्मीकि की राय से, जगत्प्रसिद्ध महाराज शान्तनु राजगद्दी पर बैठकर धर्म के अनुसार प्रजा का पालन करने लगे। भैया, वैसे ही अङ्गहीन—अन्धा—होने के कारण मैं भी राजगद्दी पर नहीं बैठ सका। पाण्डु यद्यपि मुझसे छोटे थे, तो भी उन्हें राजा का पद मिला। इसलिए पाण्डु के बाद उनके बेटों के ३० निवा इस राज्य पर और किसी का दावा नहीं चल सकता। जब मैंने राज्य नहीं पाया तब तुम भी राजा या राजपुत्र नहीं हो। फिर किस कारण तुम राज्य लेना चाहते हो? सच तो यह है कि तुम ज़वर्दस्ती करके पराई सम्पत्ति छीन लेना चाहते हो। महात्मा युधिष्ठिर राजा के बेटे हैं और न्याय के अनुसार यह राज्य उन्हीं का है। इस कुरुकुल के शासक और स्वामी वही हैं। देखो, राजा युधिष्ठिर सत्यवादी, सावधान, शास्त्र की आज्ञा पर चलनेवाले, बन्धुओं का उपकार करनेवाले, प्रजा के प्यारे, मित्रों पर दया रखनेवाले, जितेन्द्रिय और सज्जनों के सहायक हैं। क्षमा, सहनशीलता, दम, सरलता, सत्य, शास्त्रज्ञान, सावधानी, विवेक, दया और बड़ों की आज्ञा मानना आदि सभी राजगुण युधिष्ठिर में हैं। किन्तु तुम राजपुत्र न होने के सिवा लोभो, भाइयों और बन्धुओं के प्रति पापयुद्धि रखनेवाले, खोटे स्वभाव के और घमण्डी हो। यह राज्य क्रम से पाण्डवों का ही है। तुम पराया राज्य कैसे ले सकते हो? इसलिए मोह छोड़कर वाहन, वस्त्र, धन आदि के साथ आधा राज्य पाण्डवों को बाँट दो, और आधा राज्य लेकर अपने ३६ भाइयों के साथ अपना निर्वाह करो। यही उचित है और तुम्हारे लिए हितकर है।

एक सौ पचास अध्याय

श्रीकृष्ण की सलाह

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे धर्मराज! भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र और गान्धारी के समझाने पर भी दुर्योधन को हाश नहीं हुआ। क्रोध से आँखें लाल किये हुए वह पापी उन सबका अनादर



करके वहाँ से उठकर चल दिया। काल के मुँह के कौर हो रहे अन्य राजा भी उठकर उसके पीछे चल खड़े हुए। दुर्युद्धि दुर्योधन ने मोह के वश हो रहे उन राजाओं का आज्ञा दी कि आज पुण्य नक्षत्र है, इसलिए तुम लोग आज ही कुरुक्षेत्र को खाना हो जाओ। काल के वश हो रहे सब राजा उसकी आज्ञा से प्रसन्नतापूर्वक भीष्म को सेनापति बनाकर अपनी सब सेना के साथ कुर्ती से कुरुक्षेत्र को जाने लगे। कौरव पक्ष की ग्यारह अर्जुनहिणी सेना के आगे तालचिह्न-युक्त ध्वजावाले रथ पर बैठे हुए भीष्म पितामह चले।

राजन, कुरुसभा में जो कुछ हुआ; भीष्म, द्रोण, विदुर, धृतराष्ट्र और गान्धारी ने मेरे सामने दुर्योधन से जो कुछ कहा; सो मैंने तुमसे कह दिया। अब तुमको जो करना हो वह करो। महाराज, मैंने कौरवों और पाण्डवों में मेल कराने की इच्छा से, और कुरुवंश में सत्यानाशी फूट को रोकने तथा प्रजा का नाश न होने देने के लिए, पहले देवताओं और मनुष्यों के ऐसे तुम लोगों के कामों का वर्णन करके सामनीति का प्रयोग किया। जब उममें सफलता न हुई तब भेद डालने की इच्छा से सब राजाओं का एकट्ठा करके मैंने धार, दारुण, अलौकिक करतव्य दिखाये। सभा में स्थित सब राजाओं को झिड़ककर, दुर्योधन को तिनके की तरह तुच्छ बताकर, और शकुनि तथा कर्ण को धमकाकर काम निकालना चाहा। बारम्बार जुए आदि का वर्णन करके मैंने दुर्योधन वगैरह की निन्दा की और ऐसे वचनों से राजाओं को दुर्योधन के पक्ष से फाड़ने का उपाय किया। भेद नीति से भी जब काम नहीं चला तब मैंने दाननीति से काम लिया। वंश का धरलू भगड़ा मिटाने और काम सिद्ध करने के लिए मैंने कहा—“हे दुर्योधन! पाण्डव लोग बड़े पराक्रमी होकर भी मान और प्रभुता छोड़कर, तुम्हीं को राज्य देकर, धृतराष्ट्र, विदुर और भीष्म के अधीन रहने को तैयार हो जायेंगे। राज्य के स्वामी तुम्हीं बने रहो। उन पाँचों भाइयों को जीविका और रहने के लिए पाँच गाँव दे दो। पाण्डवों का पालन करना तुम्हारा और तुम्हारे पिता का कर्तव्य है”। हे धर्मराज, दुर्योधन इस पर भी राजी न हुआ। अब चौथे उपाय दण्डनीति के सिवा काम बनने का कोई उपाय नहीं रह गया।



काल के वश हो रहे सब राजा अपनी सेना लेकर दुर्योधन की आज्ञा से युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र को गये हैं। हे धर्मपुत्र, कुरुसभा का सब वृत्तान्त मैंने कह दिया। सत्यानाश के लिए उद्योग करनेवाले, काल के वश हो रहे, कौरवगण बिना युद्ध के तुम्हें राज्य न देंगे।

सैन्यनिर्याणपर्व

एक सौ इक्यावन अध्याय

पाँचों पाण्डवों की बातचीत और युद्ध की तैयारी

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, श्रीकृष्ण के वचन सुनकर उनके सामने ही धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों से बोले—भाइयों, कुरुसभा में जा बातचीत हुई और श्रीकृष्ण ने जो विचार प्रकट किये, सो सब तुमने अच्छी तरह सुन लिया। इसलिए अब तुम लोग युद्ध के लिए मेरी सेना को अलग-अलग हिस्सों में बाँटकर तैयार करो। विजय प्राप्त करने के लिए यह सात अक्षौहिणी सेना जमा हुई है। महाराज द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, चेकितान, सात्यकि, शिखण्डी और भीमसेन, ये सात आदमी इस सात अक्षौहिणी सेना के भिन्न-भिन्न भागों के सञ्चालक बनाये जायें। ये सातों सेनापति वेद के जानकार, युद्धविद्या में निपुण, शूर, वीर, युद्ध में प्राण देने के लिए तैयार, मन्त्रिन्, नीति के ज्ञाता, लोकलज्जा से युक्त होने के कारण युद्ध से मुँह न माड़नेवाले, बाण-विद्या और अस्त्र-विद्या के अच्छे ज्ञाता और सब प्रकार के शस्त्रों से युद्ध करने में होशियार हैं। महर्देव! अब एक ऐसा आदमी बताओ, जो सातों सेनापतियों का मुखिया—प्रधान सेनापति—बनाया जाय; जो बाणरूप चिनगारियों वरमानेवाले भीष्म-रूप अग्नि की आँच को युद्ध में सह सकता हो। वतलाओ, ऐसा प्रधान सेनापति कौन बनाया जाय ?

महर्देव ने कहा—राजन्, जिनका महारा पाकर हम अपने पैतृक राज्य को पाने का उद्योग कर रहे हैं, जो हमारे सुख या दुःख को अपना ही सुख-दुःख समझते हैं, ऐसे रणबाँकुरे अस्त्र-निपुण महावीर मत्स्यराज विराट इस महायुद्ध में भीष्म आदि महाशत्रियों से टकरा ले सकते हैं।

वैशम्पायन कहते हैं कि नकुल ने कहा—महाराज! अवस्था में बड़े, धीर, शास्त्रज्ञानी, कुर्लीन, लोकलज्जा रखनेवाले, महाबली, पराक्रमी, महर्षि भरद्वाज से सब अस्त्र सीखनेवाले, बड़े दुर्धर्ष, सत्यपरायण, महावीर भीष्म और द्रोण की बराबरी का दावा रखनेवाले, पिता की तरह सदा हम लोगों की रक्षा और देखरेख करनेवाले, श्रेष्ठ अस्त्रों के जानकार, सैकड़ों शाखाओं से युक्त महावृत्त की तरह पुत्र-पौत्र-परिवार से पूर्ण और सब राजाओं से मान पानेवाले महाराज द्रुपद हमारे पक्ष के प्रधान सेनापति हों। वे भीष्म और द्रोण के हमले को सहज ही सँभाल सकते हैं।

अर्जुन ने कहा—महाराज, मेरी ममझ में अग्नि-तुल्य दिव्य पुरुष महाबाहु धृष्टद्युम्न प्रधान सेनापति होने योग्य हैं। वे ऋषियों की प्रसन्नता और तपोबल के प्रभाव से दिव्य घाड़ों-

वालं रथ पर सवार, धनुष और कवच धारण किये अग्निकुण्ड में प्रकट हुए हैं। उनके रथ का शब्द मेघ के गरजने के समान गम्भीर है। उनका डीलडौल, पराक्रम, हृदय, भुजा, कन्ध और गरजना सिंह का सा है। वे वीर, वली और तेजस्वी हैं। भौंहें, दाँत, ठोड़ी, बाहु, मुँह, आँखें, चरण आदि उनके सब अङ्ग सुडौल हैं। गजराज-सदृश धृष्टद्युम्न पर कोई शस्त्र कारगर हाने का नहीं। फुरतीले, विचित्र युद्ध करनेवाले, सत्यवादी और जितेन्द्रिय धृष्टद्युम्न का जन्म आचार्य द्रोण को मारने के लिए ही हुआ है। मेरी समझ में भीष्म के वज्र जैसे, सर्पसदृश, प्रज्वलित और यमदूत के समान बाणों को धृष्टद्युम्न ही सह सकते हैं। भीष्म पितामह के भयङ्कर बाणों को या तो परशुराम ने सहा था, और या अभेद्य कवच पहननेवाले धृष्टद्युम्न सह सकते हैं। और कोई ऐसा वीर नहीं जो भीष्म के पराक्रम को सह सके। मेरी समझ में दलपति मस्त हाथी के समान धृष्टद्युम्न को ही प्रधान सेनापति बनाना ठीक होगा।

अब भीमसेन ने कहा—हे राजेन्द्र, सिद्धों और महर्षियों का कहना है कि शिखण्डी का जन्म भीष्म पितामह को मारने के लिए ही हुआ है। वे जब संग्राम में अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करेंगे तब महात्मा परशुराम के समान जान पड़ेंगे। राजन्, मुझे ऐसा कोई वीर नहीं देख पड़ता जो शिखण्डी को घायल कर सके या युद्ध से हटा सके। इन्द्रयुद्ध में भीष्म का मारनेवाला शिखण्डी के सिवा और कोई नहीं। मेरी राय है कि शिखण्डी को प्रधान सेनापति बनाया जाय।

सबकी सलाह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—महात्मा वासुदेव मारे संसार के बल और पराक्रम को जानते हैं। इस समय वे जिसे बतावेंगे उसी को मैं अपना प्रधान सेनापति बनाऊँगा। चाहे अस्त्रविद्या में निपुण हो और चाहे अस्त्रकला का बिलकुल न जानता हो, बूढ़ा हो चाहे जवान, जिसे श्रीकृष्ण बतावेंगे उसी को मैं प्रधान सेनापति का पद दूँगा। श्रीकृष्ण ही हमारी जीत या हार की जड़ हैं। हमारे प्राण, राज्य, भाव-अभाव, सुख-दुःख और सिद्धि या असिद्धि सब कुछ श्रीकृष्ण के ही हाथ में है। हमारे लिए यही धाता और विधाता हैं। श्रीकृष्ण जिसे कहें वही हमारा सेनापति हो। अब रात हो गई। हम लोग श्रीकृष्ण के अधीन हैं; इन्हीं के बताये हुए पुरुष को अपना सेनापति बनाकर सबेरे स्वस्थयन करके पूजे हुए शस्त्र-अस्त्र लेकर हम युद्ध-भूमि को चलेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं कि धर्मराज के वचन सुनकर, अर्जुन की आंखें देखकर, श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्, इन लोगों ने सेनापति बनाने के लिए जिन पुरुषों के नाम लिये वे सब सेनापति-पद के लायक, युद्ध में निपुण और शत्रुओं को हराने में समर्थ हैं। लोभी और पापी धृतराष्ट्र के बेटों की तो कोई बात ही नहीं, युद्ध में इन्हें देखकर इन्द्र आदि देवता भी डर जायेंगे। हे भरतकुलतिलक! शान्ति स्थापित करने के लिए यद्यपि मैंने कोई बात उठा नहीं रखी, पर कुछ फल नहीं हुआ। इतना लाभ अवश्य हुआ कि हम अपने धर्म का पालन कर चुके और इसी कारण इस युद्ध के लिए लोग हमें वुरा न कहेंगे। अबाध और बालप्रकृति दुर्योधन अपने को

अस्त्र-शस्त्र-विद्या का बेजोड़ जानकार और बलवान् समझता है। मौत उसके सिर पर नाच रही है, इसी से उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो रही है। अब तुम अपनी सेना सजाओ। महावीर अर्जुन, क्रांती भीमसेन, कालसदृश नकुल, यमराज-तुल्य सहदेव, युयुधान, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु, राजा विराट, द्रुपद, द्रौपदी के पाँचों पुत्रों और अन्य अनेक अचौहिणीपति नरेन्द्रों से धृतराष्ट्र के बेटों का युद्ध करना कैसा, इन लोगों की ओर वे आँख उठाकर देख तक न सकेंगे। हमारे पक्ष के बलवान् दुर्धर्ष यादवाओं की सेना युद्ध-भूमि में कौरवों को और उनकी सेना को मारकर विजय प्राप्त करेगी ही। मैं भी धृष्टद्युम्न को प्रधान सेनापति बनाने की सम्मति देता हूँ।

श्रीकृष्ण की राय सुनकर सब लोग प्रसन्नता से आनन्द-कोलाहल करने लगे। वह कोलाहल चारों ओर फैल गया। फुर्ती से इधर-उधर दौड़कर सब सैनिक “तैयारी करो, युद्ध की तैयारी करो” कहते हुए अपना उत्साह दिखाते लगे।



घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघार, रथों के पहियों की घरघराहट, शङ्ख और नगाड़ों का शब्द चारों ओर दूर तक गूँज उठा। पैदल, रथ, हाथी, घोड़े आदि से भरी वह सेना लहरावाले और उमड़ रहे समुद्र के समान जान पड़ने लगी। कुछ लोग इधर से उधर दौड़ जा रहे थे, कुछ एक दूसरे का लाम पर चलने के लिए गुला रहे थे, और कुछ लोग कवच पहन रहे थे। युद्ध के लिए रवाना हो रहे पाण्डवों की दुर्धर्ष सेना गङ्गा की बाढ़ के समान जान पड़ने लगी। उस सेना के अगले हिस्से में भीमसेन, कवच पहने नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों बेटे,

धृष्टद्युम्न, प्रभद्रक और पाञ्चाल देश के वीर चले। प्रसन्नतापूर्वक जा रहे वीरों के मिहनाद का शब्द, पौर्णिमा के दिन बढ़े हुए समुद्र के गर्जन के समान, आकाश तक भर गया।

कवच पहने हुए, प्रसन्नचित्त, शत्रुसेना का नाश करनेवाले यादवाओं के बीच में राजा युधिष्ठिर चले। छकड़े, बाज़ार, डेरे, छोलदारियाँ, कनाते, वेश्याओं के डेरे, सवारियाँ, वाहन, खज़ाना, यन्त्र (तोप वगैरह), शस्त्र-अस्त्र, घोवों का इलाज करनेवाले वैद्य आदि उस फौज के साथ थे। नौकर-चाकर, निकम्मे और दुबले सैनिक, सच बोलनेवाली द्रौपदी और उनके दास-

दासी आदि सबको राजा युधिष्ठिर ने उपप्लव्य नगर में ही रहने दिया। जगह-जगह दीवार, खाई और शूरसेना के प्रबन्ध द्वारा धन और स्त्री आदि की रक्षा का बन्दोबस्त करके सेना लेकर पाण्डव युद्ध के लिए रवाना हुए। उन्होंने ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन कराया और उन्हें गाय, सोना, रत्न आदि देकर प्रसन्न किया। फिर ब्राह्मणों के मुँह से अपनी बड़ाई सुनते हुए वे मणियाँ और सोने से सजे हुए रथों पर सवार हुए। कंकयदेश के राजकुमार, धृष्टकेतु, काशिराज, विभूतिमान और अजेय शिखण्डी आदि योद्धा गहने, अस्त्र-शस्त्र, कवच आदि पहनकर प्रसन्नता से महाराज युधिष्ठिर के साथ चले। सेना के पिछले हिस्से में राजा विराट, महाराज द्रुपद, सुधर्मा, कुन्तिभोज और धृष्टदुम्न के सब बेटे चले। इस सेना में चालीस हजार रथ, साठ हजार हाथी, दो लाख घोड़े और चार लाख पैदल थे। अर्जुन और श्रीकृष्ण के साथ अनाधृष्टि, चेकितान, धृष्टकेतु और सात्यकि चले।

साँड़ और सिंह की तरह गरजते हुए पाण्डव लोग कुरुक्षेत्र में पहुँचकर शङ्ख बजाने लगे। वासुदेव और अर्जुन ने भी अपने-अपने शङ्ख बजाये। वज्र की ध्वनि के समान गम्भीर श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शङ्ख का शब्द सुनकर सब सैनिक प्रसन्न और उत्साहित हुए। उन वीरों के सिंहनाद और शङ्ख की ध्वनि से पृथ्वी, अन्तरिक्ष और समुद्र आदि स्थान गूँजने लगे।

७१

एक सौ बावन अध्याय

कुरुक्षेत्र में पाण्डवों का पड़ाव

वैशम्पायन कहते हैं—राजा युधिष्ठिर ने ममान, देवस्थान, ऋषियों के आश्रम और तीर्थ-

भूमि को बचाकर ऐसे समतल स्थान में अपनी सेना का पड़ाव डाला जिसमें बहुत सी घास और ईंधन मौजूद था। हजारों राजाओं को साथ लिये हुए राजा युधिष्ठिर ने जब देखा कि सब वाहन और मनुष्य सुख से विश्राम कर चुके हैं तब वे अपने सैनिकों के साथ उस अपार सेना के ठहरने का सुभीता देखने-भालने लगे। इधर-उधर दुर्योधन की सेना के जो सिपाही, ठहरे थे उन्हें युधिष्ठिर के सैनिकों ने अपने ठहरने के स्थान से भगा दिया। अर्जुन सहित श्रीकृष्ण



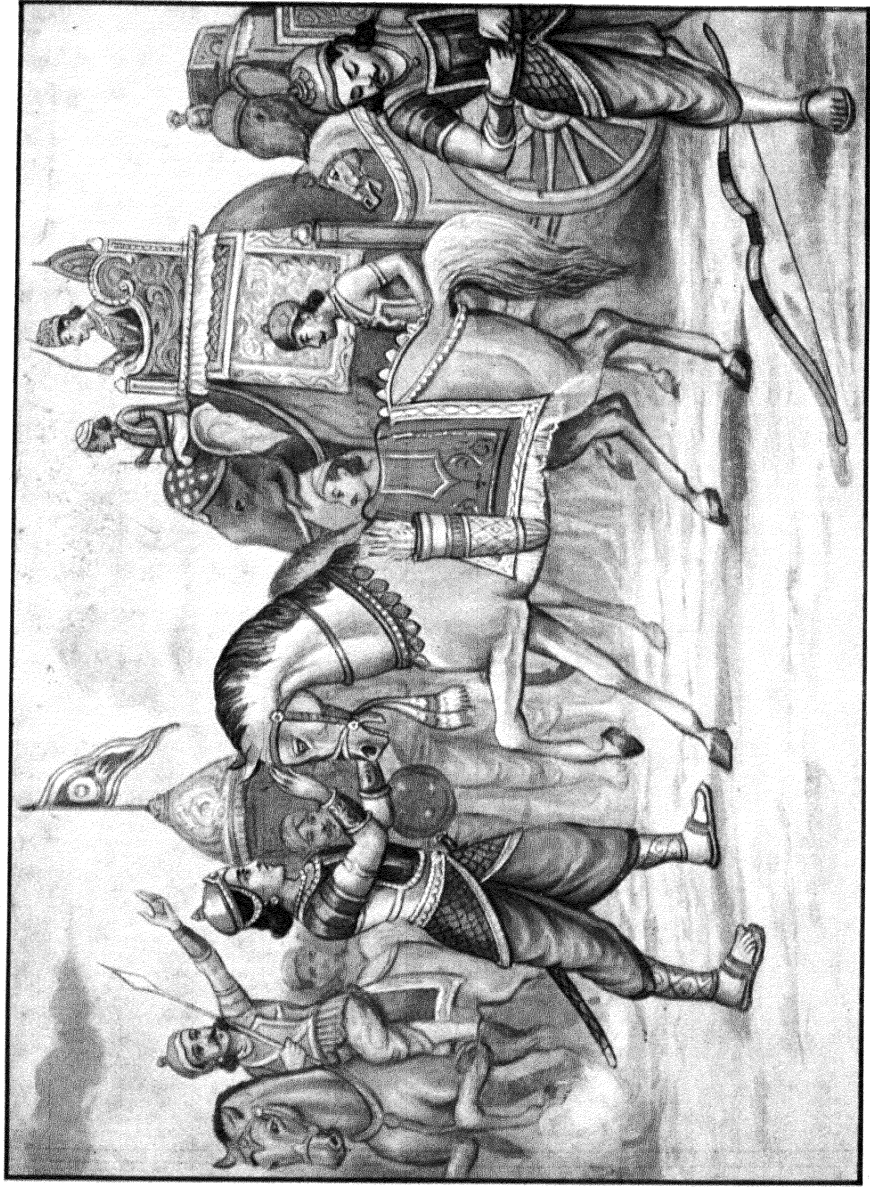
चाराँ और धूम-फिरकर छावनी डालने योग्य स्थान देखने लगे। वीर धृष्टद्युम्न, सात्यकि और पराक्रमी युयुधान सेना के पड़ाव की नाप-जोख करने लगे। श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अच्छे जलवाली, पवित्र नदी हिण्यवती के समीप खाई खुदवाई। इस नदी में न कड़कूथे और न कीचड़ था। वहाँ पर कुछ सेना भी अपने बचाव के लिए तैनात कर दी गई, जिसमें शत्रुपक्ष के लोग न तो पड़ाव में घुसकर हाल-चाल ले सकें और न गुप्त रूप से कुछ उपद्रव कर सकें। पाण्डवों के ऐसे ही अन्य राजाओं के भी डेरें बनाये गये। खाने-पीने की सामग्री, चारा, ईंधन १० (रसद) आदि से भर-पूर और सुरक्षित सैकड़ों-हज़ारों डेरें अलग-अलग लगाये गये। उन्हें देखने से जान पड़ता था मानों पृथ्वी पर हज़ारों विमान आकाश से उतर आये हैं।

उन डेरों में तलव पानेवाले सैकड़ों चतुर कारीगर और शास्त्र के जानकार चिकित्सक (वैद्य) नियुक्त हुए। उन वैद्यों के पास सब तरह का चिकित्सा का सामान था। महाराज युधिष्ठिर ने हर एक डेर में धनुष, डोरी, कवच, अन्यान्य अस्त्र, धी, गुड़, मर्जरम के बुरादे के बड़े-बड़े ढेर, पानी, घाम, ईंधन, भूसी, आग, महायन्त्र, नाराच, तोमर, परश्वध, कवच, तरकस और ऋषि आदि सामग्रियों के ढेर लगवा दिये। वहाँ कँटीले कवच पहने सैकड़ों पहाड़ के समान ऊँचे हाथी भूमते देख पड़ते थे। पाण्डवों के वहाँ पड़ाव डालने की ख़बर पाकर हर एक देश से सोमपान करनेवाले, बहुत-बहुत दक्षिणा देकर यज्ञ करनेवाले, ब्रह्मचर्य में रहकर विद्या पढ़नेवाले राजा लोग—सेना और वाहन साथ लेकर—पाण्डवों का विजयी बनाने के लिए १८ उनकी सहायता करने को वहाँ आने लगे।

एक सौ तिरपन अध्याय

कुरुक्षेत्र के लिए दुर्योधन की यात्रा

जनमेजय ने कहा—भगवन्! अपने बेटों के साथ विराट और द्रुपद, केकय, वृष्णिगण और आदित्यों के समान तेजस्वी अन्य अनेक राजाओं के साथ, सूर्य से रक्षित इन्द्र की तरह, श्रीकृष्ण द्वारा पालित राजा युधिष्ठिर को युद्ध के लिए सेना लेकर कुरुक्षेत्र में आये हुए सुनकर राजा दुर्योधन ने क्या किया? युधिष्ठिर की सहायता के लिए जमा हुए सब महावीर क्षत्रिय इन्द्र को भी नीचा दिखाने में समर्थ थे; उन्हें युद्ध के लिए तैयार देखकर इन्द्र आदि देवता भी डर सकते थे। पाण्डव, श्रीकृष्ण, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, युधामन्यु और अभिमन्यु आदि लोक-प्रसिद्ध वीरों के ऊपर देवता भी हमला करने में असमर्थ थे। इसलिए उस समय कुरुक्षेत्र में भयङ्कर युद्ध की तैयारी होने पर आगे जो कुछ हुआ सो मैं विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ।



वैशम्पायन कहते हैं कि श्रीकृष्ण के लौट जाने पर राजा दुर्योधन ने कर्ण, दुःशामन और शकुनि से कहा—हे वीरों, श्रीकृष्ण जो काम करने आये थे उसमें सफलता न पाने के कारण वे क्रोधित होकर पाण्डवों के पास लौट गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे अब हमारे पक्ष को अपने क्रोध की आग में भस्म करने की पूरी तैयारी करेंगे। पूरे तौर पर श्रीकृष्ण की मन्शा यही है कि मेरे साथ पाण्डवों का युद्ध हो। भीमसेन और अर्जुन उन्हीं के कहे पर चलते हैं। राजा युधिष्ठिर भीमसेन का बहुत मानते हैं। मैं उन्हें और उनके भाइयों को कपट के जुए में धोखा देकर कष्ट पहुँचा चुका हूँ। विराट और द्रुपद से भी मेरी पुरानी शत्रुता है। श्रीकृष्ण के आज्ञाकारी द्रुपद और विराट ही इस समय पाण्डवों की सेना के मन्त्रचालक हैं। इसलिए यह भयानक संग्राम बहुत जल्द होगा। अब तुम लोग भी आलस्य छोड़कर बड़ी लगन के साथ युद्ध की तैयारियाँ करो। कुरुक्षेत्र के मैदान में बहुत से लम्बे-चौड़े डेर बनवाओ। वे ऐसे हों कि शत्रु लोग उन पर चढ़ाई न कर सकें।

उनमें तरह-तरह के असंख्य शस्त्र भगवा दो। चारों ओर ऊँची पक्की दीवारें और खाइयाँ बनवाओ। हर एक छावनी पर ध्वजा-पताकाएँ लगवा दो। ऐसे स्थान पर छावनियाँ बनाओ जहाँ जल पास हो। उन शिविरों में युद्ध का सामान और रसद पहुँचाने के रास्ते ऐसे हों कि शत्रु चढ़ करके उन्हें बन्द न कर सकें। उन शिविरों में जाने के लिए नगर के बाहर चौड़ी और समतल सड़कें बनाओ। इस बात की घोषणा जल्दी कर दो कि सबेरे ही युद्ध के लिए कूच किया जायगा।

कर्ण आदि मन्त्रियों ने 'जो आज्ञा' कहकर सबेरे लाम पर जाने की

घोषणा करा दी और कुरुक्षेत्र में राजाओं के रहने के लिए शिविर बनवाने का भी इन्तज़ाम कर दिया। इधर राजा की आज्ञा सुनते ही अन्य राजा लोग अपने सिंहासनों से उठ खड़े हुए। वे लोग सोने के बजुल्ला आदि पहने, चन्दन-अगुरु आदि सुगन्धित वस्तुओं से सुवासित, बेलन ऐसी दृढ़ भुजाओं की मलते हुए युद्ध के लिए उत्साह प्रकट करने लगे। सब वीर अच्छे



कपड़े, गहने पहनकर और कवच तथा तरह-तरह की पगड़ियाँ बाँधकर कूच की तैयारी करने लगे। रथी लोग रथों को, घोड़ों के सवार घोड़ों को और हाथियों के सवार हाथियों को सजाने लगे। राजाओं के नौकर-चाकर लोग विचित्र सोने के कवच और शस्त्र-अस्त्र आदि युद्ध का सामान पहुँचाने में लग गये। पैदल सिपाही सोने से चित्रित अनक शस्त्र बाँधकर युद्ध के लिए तैयार होने लगे। महाराज धृतराष्ट्र की राजधानी में प्रसन्न मुखवाले लोगों की इतनी भीड़-भाड़ हुई कि मेला सा जान पड़ने लगा। योद्धाओं से भरी दुर्योधन की राजधानी पूर्णिमा का बड़े हुए समुद्र के समान जान पड़ने लगी। इधर-उधर आ-जा रहे लोग आवर्त (भँवर) के समान देख पड़ते थे। रथ, हाथी और घोड़े मछलियों के समान जान पड़ते थे। शङ्ख और नगाड़े आदि का शब्द समुद्र के गर्जन का शब्द समझ पड़ता था। धन-रत्नों का खज़ाना ही समुद्र के भीतर के रत्नों का ढेर था। विचित्र गहने और कवच तरङ्गों के समान थे। बहुत से चमकीले शस्त्र फंसे की जगह थे। बड़े-बड़े महल समुद्र के भीतर की पहाड़ों की क़तार जान पड़ते थे। नगर की मड़के और बाज़ार समुद्र में मिलनेवाली नदियों के समान देख पड़ते थे।

एक सौ चौवन अध्याय

युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण और अर्जुन का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय, धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के मुँह से सुनी हुई बातें याद करके फिर उनसे कहा—हे श्रीकृष्ण, दुर्योधन ने सन्धि के प्रस्ताव के उत्तर में ऐसी बातें कैसे कहीं! कृपा कर बताओ, इस समय हमें क्या करना चाहिए? क्या करने से हम धर्म की रक्षा कर सकेंगे? दुर्योधन, कर्ण और शकुनि का, मेरा और मेरे भाइयों का मतलब तुम अच्छी तरह जानते हो। बुद्धिमान् विदुर और महावीर भीष्म की बातें भी तुमने सुनी हैं। आर्या कुन्ती की इच्छा तुम्हें अच्छी तरह मालूम है। सब बातों पर अच्छी तरह गौर करके, और युद्ध के सिवा जो और कोई भलाई का उपाय सूझ पड़े तो उस पर भी विचार करके, तुम मुझे कर्तव्य का उपदेश करो जिसमें हमारा भला हो और धर्म की हानि न हो।

युधिष्ठिर के वचन सुनकर वासुदेव ने ऊँचे स्वर से गम्भीर वाणी में कहा—हे धर्मराज, मैंने आपकी ओर से धर्मार्थयुक्त जो हितकारी वचन कहे, उन्हें कपटी दुर्योधन ने नहीं माना। बुद्धिमान् विदुर ने, पितामह भीष्म ने और मैंने उसे बहुत समझाया पर उसने ध्यान ही नहीं दिया। वह सबका अनादर करके अपने हठ पर अड़ा हुआ है। हे

युधिष्ठिर, वह दुरात्मा न तो धर्म ही चाहता है और न यश ही। वह समझता है कि एक कर्ण के बल से ही मैं सबको सहज में जीत लूँगा।

उस पापी ने मुझे पकड़ लेने की आज्ञा दी थी, पर कुछ नहीं कर सका। उस समय १० भीष्म या द्रोण ने भी कुछ युक्तिसङ्गत खण्डन नहीं किया। एक विदुर को छोड़कर और सब लोग दुर्योधन के वश में हैं। असह्यनशील दुर्योधन के पिटू, शकुनि, कर्ण, दुःशासन आदि मूर्खों ने आपके सम्बन्ध में बहुत सी अनुचित बातें कहीं। दुर्योधन आदि ने आपके लिए जो कटु वचन कहे हैं उन्हें कहने की ज़रूरत नहीं। मैं आपसे संचेप में यह कहे देता हूँ कि दुर्योधन आपसे अच्छा सलूक नहीं करता और न कभी करेगा। आपके सैनिक राजाओं में जो पाप और अकल्याण नहीं है वह सब दुरात्मा दुर्योधन में मौजूद है। मेरी राय यही है कि राज्य छोड़कर सन्धि करना या चुप रहना उचित न होगा; इसलिए युद्ध करना ही ठीक है—यही धर्म है।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजा लोग श्रौतृष्ण के ये वचन सुनकर चुपचाप राजा युधिष्ठिर के मुँह की ओर ताकने लगे; किसी ने कुछ नहीं कहा। राजा युधिष्ठिर ने राजाओं के अभिप्राय को समझकर और भीमसेन, अर्जुन, नकुल, महर्देव आदि की इच्छा जानकर युद्ध के लिए तैयारी करने की आज्ञा दे दी। युद्ध की आज्ञा पाते ही पाण्डव-सेना में आनन्द और उत्साह का कोलाहल छा गया; चारों ओर हर्षसूचक शब्द और किलकारियाँ सुन पड़ने लगीं।

जिनको न मारना चाहिए उन जाति-भाइयों को मारना हांगा, यह सोचकर युधिष्ठिर ने लम्बी सांस लेकर भीम और अर्जुन से कहा—भाइयों, जिस अनर्थ से बचने के लिए हमने वनवास आदि के अनेक दुःख चुपचाप सह लिए, वही अनर्थ आज मामने आ गया। इस २० भयङ्कर युद्ध को रोकने के लिए बारम्बार बहुत उपाय करके भी मैं कुछ नहीं कर सका। मैंने अपनी ओर से युद्ध की तैयारी नहीं की, फिर भी भयङ्कर संग्राम होनेवाला है। पूजनीय, मारे जाने के अयोग्य पुरुषों से हम लोग कैसे युद्ध करेंगे? यदि बड़े-बड़े पितामह गुरु, गुरुपुत्र आदि को मारकर जय प्राप्त करेंगे भी तो हमें उसमें क्या सुख मिलेगा?

वैशम्पायन कहते हैं कि युधिष्ठिर का जो चिन्ता से व्याकुल देखकर, श्रौतृष्ण के वचनों की याद दिलाते हुए, अर्जुन ने कहा—महाराज, महात्मा वासुदेव के मुँह से आर्या कुन्ती और विदुरजी की बातें सुनकर उन पर आप विचार कर चुके हैं। मुझे निश्चय जान पड़ता है कि उनका कहना सब तरह धर्म-सङ्गत है। इस कारण इस समय संग्राम से मुँह मोड़ना कभी आपके योग्य काम नहीं है। अर्जुन के ये वचन सुनकर मुसकाते हुए श्रौतृष्ण ने उनका अनुमोदन किया। अब युद्ध का पक्का इरादा करके पाण्डव उस रात को सुख से सो रहे। २७

एक सौ पचपन अध्याय

दुर्योधन की युद्ध की तैयारी

वैशम्पायन कहते हैं—उधर सबेरा होने पर राजा दुर्योधन ने अपनी ग्यारह अक्षौहिणी सेना के मनुष्य, रथ, हाथी, घोड़े आदि का इकट्ठा करके उन्हें—योग्यता के अनुसार—अगले, पिछले और बीच के भाग में रहने की आज्ञा दी। ग्यारहों अक्षौहिणी सेना भिन्न-भिन्न भागों में बँट गई; सब सैनिक लोग युद्ध की मजाबट के साथ कूच करने के लिए तैयार होने लगे। अनुकूप (रथ के नीचे की लकड़ी), बड़े-बड़े बाण-कोप, वस्त्र (शस्त्र-विशेष), तोमर, उपासङ्ग (घोड़ों और हाथियों पर लादे जानेवाले बाणों के तरकम), शक्ति, निपङ्ग (पैदलों की कमर में रहनेवाले छोटे तरकम), तलवार, ध्वजा, पताका, बाण, धनुष, विचित्र रस्सियाँ, पाश, परिच्छद, कचग्रहन्तप (वे शस्त्र, जिनसे शत्रु के बाल पकड़कर उसे पटक देते हैं), तेल, गुड़, बालू, साँपों से भरे घड़े, गाल, जिनके अगले हिस्से में घण्टियाँ लगी रहती हैं ऐसे शस्त्र, पट्टिश, छुरे आदि लांहे के शस्त्र, गुड़ का गर्म शरवत (शत्रुओं पर फेंकने के लिए), यन्त्र से



फेंके जानेवाले पत्थर के गोले, भिन्दिपाल (गोफिये), शूल, मोम, मुद्गर, बर्छी, हल के आकार के शस्त्र, ज़हर के बुझे तोमर, अड्डुश और कुल्हाड़ी के आकार के तोमर, सूँ (गर्म तेल आदि शत्रुओं पर डालने के लिए), पिटारियाँ (शस्त्र आदि रखने के लिए), काँटेदार कवच, काठ के भीतर छिपे हुए शस्त्र, लांहे के काँटे और कीलें, प्रास, कुल्हाड़ी, कुदाल, पुराना घी और तेल से तर रेशमी कपड़े (जिन्हें जलाकर उनकी राख घाव में भरी जाय), सींग, ऋष्टि, भाले आदि अनेक प्रकार के असंख्य युद्ध के सामान से सजे हुए याँझा लोग, चमकदार मणि और गहने पहनकर, अपने शरीर पर सोने के जाल डालकर,

११ प्रज्वलित अग्निघों के समान, व्याघ्रचर्म से मढ़े हुए रथों पर सवार हुए। अच्छे कुलों में उत्पन्न, शस्त्र-क्षेत्र में कुशल, अश्वविद्या के जानकार, कवचधारी वीर पुरुष सारथी के काम पर तैनात हुए।

धनुष-बाण आदि अस्त्र-शस्त्रों से भरे, पताकाओं से शोभित, ढाल-तलवार, पट्टिश, घण्टा, चामर आदि से युक्त और बढ़िया चार-चार घोड़ों से जुते असंख्य रथ देख पड़ने लगे। बाँदा लोग उन रथों में अशुभ हटानेवाले यन्त्र और आपधियाँ बाँधने लगे। घोड़ों के मस्तकों पर कलेंगी और मोतियों के गुच्छे आदि लगाये गये। वे बड़े-बड़े रथ सुरक्षित मजे हुए नगरों के समान जान पड़ते थे। हर एक रथ में एक अश्वविद्या में चतुर सारथी और आस-पास दो अच्छे वीर चक्र-रक्षक थे। हाथियों का शृङ्गार किया गया और रत्न-जड़े गहने पहनाये गये। वे रत्न की खानोंवाले पहाड़ों के समान जान पड़ने लगे। हर एक हाथी की रक्षा के लिए दो अङ्गुश लिये, दो धनुष-बाण लिये, दो तलवारें लिये, एक त्रिशूल लिये और एक शक्ति लिये, इतने आदमी तैनात हुए। दुर्योधन की सेना में चारों ओर हाथियों के दल देख पड़ने लगे। उन हाथियों पर तरह-तरह के शस्त्र भी लदे थे। कवच पहने सवार लोग असंख्य घोड़ों पर सवार हुए। उनकी वरछियों में भण्डियाँ फहरा रही थीं। उनके घोड़े सब तरह की चालें चलनेवाले, अच्छी तरह सिखाये गये, सोने के गहने पहने और शक्तिशाली थे। तरह-तरह की पाशाकें पहने, कवचधारी, हथियार बाँधे, सोने की माला पहने पैदलों के दल भी युद्ध के लिए मज-धजकर तैयार हो गये। हर एक रथ के साथ दस हाथी, हर हाथी के साथ दस सवार और हर सवार के साथ दस पैदल उसकी रक्षा के लिए नियुक्त हुए। कहीं-कहीं ऐसा क्रम था कि हर एक रथ के साथ पचास हाथी, हर एक हाथी के साथ सौ घोड़े और हर एक घोड़े के साथ सात पैदल उसकी रक्षा करने को खड़े थे। पाँच सौ हाथियों, पाँच सौ रथों, पाँच सौ घोड़ों और पचीस सौ पैदलों की एक 'सेना' होती है। दस सेनाओं की एक 'पृतना' और दस पृतनाओं की एक 'वाहिनी' होती है। साधारण रूप से फौज को सेना, वाहिनी, पृतना, ध्वजिनी, चमू, अचौहिणी और वरुथिनी कहते हैं।

२०

इसी तरह अठारह अचौहिणी सेना मजकर लड़ाई के लिए तैयार हो गई। दुर्योधन की ओर ग्यारह अचौहिणी और पाण्डवों की ओर सात अचौहिणी सेना थी। पचपन पैदलों की टुकड़ी को 'पत्ति' कहते हैं। तीन पत्तियों का एक 'सेनामुख' होता है। उसे 'गुल्म' भी कहते हैं। तीन 'गुल्मों' का एक 'गण' होता है। कुरु-सेना में इस तरह के दस-दस हजार गण थे। पराक्रमी राजा दुर्योधन ने बुद्धिमान राजा लोगों को छाँट-छाँटकर सेनापति बनाया। दुर्योधन ने पहले से ही अलग-अलग अच्छे वीर सेनापतियों को बुलाकर अपने यहाँ रख लिया था। इस समय वह नित्य सबके सामने दोनों वक्ता भीष्म, कृप, द्रोण, जयद्रथ, शल्य, काम्बोजनरेश सुदक्षिण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शकुनि और महावली बाह्लीक, इन ग्यारह जनों का विशेष सत्कार और आदर करने लगा। इन वीर पुरुषों के साथी और अनुगामी लोग भी दुर्योधन की भलाई के लिए कौरव-सेना में शामिल हो गये।

३०

३५

एक सौ छप्पन अध्याय

दुर्योधन का भीष्म पितामह को प्रधान सेनापति बनाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, अब राजा दुर्योधन अन्य राजाओं के साथ पितामह भीष्म के पास गया और हाथ जोड़कर कहने लगा—हं पितामह, मेरी सेना लड़ने के लिए तैयार है, किन्तु एक उपयुक्त सेनापति के बिना वह सुस्त हो रही है। सेना कितनी ही अधिक क्यों न हो, योग्य सेनापति के बिना वह युद्ध में चींटियों के दल की तरह नष्ट हो जाती है। दो पुरुषों की युद्ध कभी समान नहीं होती। यदि दोनों ओर योग्य और शूर सेनापति होते हैं तो वे परस्पर स्पर्धा करके अधिक वीरता और पराक्रम दिखाते हैं। सुना जाता है, पहले समय में कुशमयी ध्वजा लिये हुए ब्राह्मण लोग हैहयवंश के क्षत्रियों से लड़ने गये थे। उन ब्राह्मणों के साथ वैश्य और शूद्र भी थे। एक ओर तीनों वर्ण थे और दूसरी ओर केवल क्षत्रिय थे।

उनमें परस्पर युद्ध होने पर तीनों वर्ण क्षत्रियों से हारकर बारम्बार युद्धभूमि से भागने लगे। तब ब्राह्मणों ने क्षत्रियों से ही इसका कारण पूछा। धर्म के जानकार क्षत्रियों ने उनको ठीक बात बता दी। क्षत्रियों ने कहा—हम लोग युद्ध में एक बुद्धिमान पुरुष को अगुआ बनाकर उसी की



राय से सब काम करते हैं; किन्तु तुम लोग अलग अलग ढाई चावल की खिचड़ी पकाते हो। यही तुम्हारे हारने का कारण है। हं पितामह, तब ब्राह्मणों ने एक नीति-विशारद पराक्रमी ब्राह्मण को सेनापति बना लिया। अन्त को ब्राह्मणों की जय हुई। इसी प्रकार जो लोग चतुर, शूर, हित-चिन्तक और ईमानदार व्यक्ति को अपना सेनापति बनाते हैं वे युद्ध में सहज ही अपने शत्रु को जीत लेते हैं।

हे पितामह ! आप दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य के समान रण-नीति के जानकार, धर्मात्मा, मेरे हितचिन्तक

और दुर्धर्ष हैं। शत्रुओं में से कोई आपका मार नहीं सकता; क्योंकि मृत्यु आपकी इच्छा के अधीन है। जैसे किरणवाले तेजस्वी पदार्थों के सूर्य, वृक्ष-ओषधियों के चन्द्रमा, यज्ञों के कुबेर,



देवताओं के इन्द्र, पहाड़ों के सुमेरु, पत्तियों के गरुड़, सब देवयानियों के कार्तिकेय और वसुगण के अग्निदेव स्वामी और रत्नक हैं, वैसे ही आप हमारे रत्नक और सेनापति बनिए । इन्द्र द्वारा रचित देवताओं की तरह आपके द्वारा रचित हम लोगों पर सब देवता भी हमला करने में समर्थ न होंगे । देवताओं की सेना के आगे कार्तिकेय की तरह आप हमारी सेना के आगे चलिए । हम लोग बड़े साँड़ के पीछे बलवान् बैलों की तरह आपके पीछे चलेंगे ।

दुर्योधन की प्रार्थना सुनकर भीष्म ने कहा—हे भरतकुलश्रेष्ठ, तुम्हारा कहना ठीक है । मेरी दृष्टि में जैसे तुम हो वैसे ही पाण्डव भी हैं । मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पाण्डवों का अच्छा उपदेश देना और तुम्हारी ओर से युद्ध करना अपना काम समझता हूँ और ऐसा ही करूँगा । पुरुषसिंह अर्जुन के सिवा पृथ्वी पर मेरे समान योद्धा कोई नहीं है । बुद्धिमान् अर्जुन यद्यपि बहुत से दिव्य अस्त्रों को जानते हैं, तथापि आमने-सामने वे मुझसे युद्ध नहीं करेंगे । देवता-असुर-राक्षस-मनुष्य आदि से भरे इस जगत् को मैं और वह, दोनों, अस्त्र-बल से क्षण भर में जीवहीन कर सकते हैं, किन्तु मैं प्रीतिपात्र पाण्डवों में से किसी की हत्या न करूँगा । हे दुर्योधन, यदि पाण्डव मुझे पहले ही युद्ध में मार न डालेंगे तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अस्त्र चलाकर नित्य उनके पक्ष के दस हजार योद्धाओं को मारूँगा । इसके सिवा मैं एक प्रतिज्ञा से तुम्हारा सेनापति होना भी अङ्गीकार कर सकता हूँ । प्रतिज्ञा यह है कि पहले चाहे कर्ण युद्ध कर ले और चाहें मैं कर लूँ; क्योंकि वह सदा युद्ध में मुझसे लाग-डाँट दिखाया करता है । २०

कर्ण ने कहा—राजन्, मैं पितामह भीष्म के जीवन-काल में युद्ध न करूँगा । इनके मारे जाने पर अर्जुन से लड़ूँगा ।

अब राजा दुर्योधन ने विधि से सेनापति के पद पर पितामह भीष्म का अभिषेक किया और ब्राह्मणों को धन-रत्नों की दक्षिणा दी । उस समय भीष्म बहुत ही अच्छे लगे । राजा की आज्ञा से सावधान बाजे बजानेवाले लोग सैकड़ों-हज़ारों शङ्ख, तुरही और नगाड़े आदि बजाने लगे । वीरों के सिंहनाद और वाहनों के गम्भीर शब्द से चारों दिशाएँ गूँज उठीं । उस समय हाथियों की चिंथाड़ के साथ ही आकाश में बिना मेघ के बिजली की सी कड़क सुन पड़ी जिसे सुनकर योद्धा लोग मूर्च्छित हो गये । बिना बादल के ही आकाश से रक्त की वर्षा हुई । आकाश से उल्का-पात हुआ और अशुभ आकाशवाणी सुनाई पड़ी । पृथ्वी में बारम्बार भूकम्प होने लगा । डर की सूचना देनेवाली सियारनियाँ बारम्बार अशुभ शब्द करने लगीं । राजा दुर्योधन ने जिस समय सेनापति के पद पर पितामह का अभिषेक किया उसी समय ये भयङ्कर उत्पात होने लगे । ३०

राजा दुर्योधन ने ब्राह्मणों को गाय-सोना-रत्न आदि देकर सन्तुष्ट किया । वे लोग स्वस्त्वयन पढ़कर उसे जय के आशीर्वाद देने लगे । भीष्म को सेनापति बनाकर, सबके आगे

करके, कुरुक्षेत्र के लिए दुर्योधन चल पड़ा। उसके भाई और वह असंख्य सेना उसके साथ चली। राजा दुर्योधन ने कुरुक्षेत्र में पहुँचकर, कर्ण के साथ इधर-उधर देख-भाल करके, सम-तल मैदान में सेना के रहने के लिए छावनी की रचना कराई। सुहावने, बहुत सी घास और ईंधन से भरे पुरे स्थान में नाप-जोख के साथ डरे खड़े किये गये। ऊसर स्थान छोड़ दिये गये।

३६ राजा दुर्योधन की सेना का महाशिविर दूसरा हस्तिनापुर सा बस गया।

एक सौ सत्तावन अध्याय

बलराम का आना और पाण्डवों से मिलकर तीर्थयात्रा के लिए चल देना

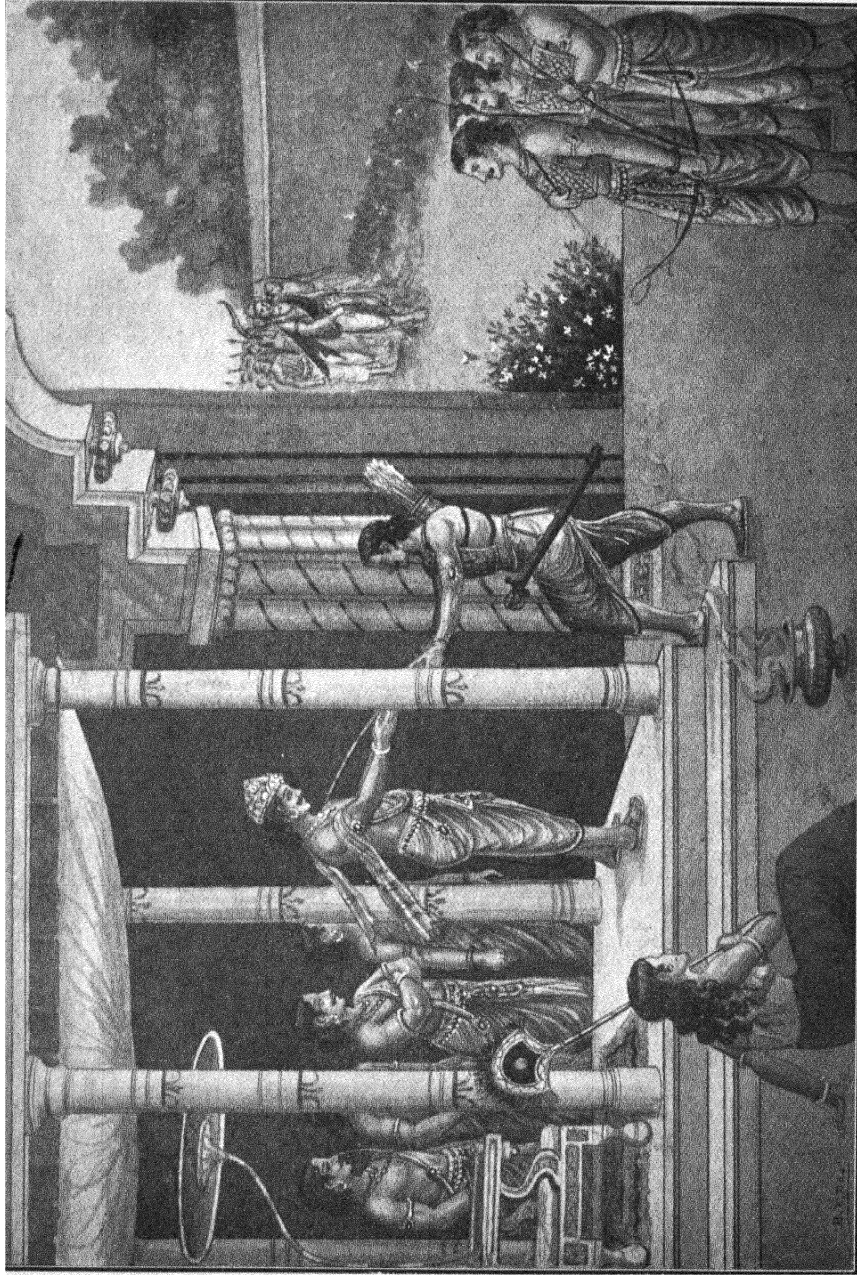
जनमेजय ने पूछा—भगवन् ! शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, भरतवंश के बाबा, राजाओं में ध्वजा के समान उच्च, बृहस्पति के समान बुद्धिमान्, पृथ्वी के समान क्षमा करनेवाले, समुद्र के समान गम्भीर, हिमालय के समान अचल, प्रजापति के समान उदार, सूर्य के समान तेजस्वी, इन्द्र के समान बाण-वर्षा करके शत्रु का नाश करने में समर्थ महात्मा भीष्म को भयानक रोमहर्षण रण-यज्ञ की दीक्षा लेते सुनकर महाबाहु राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव और श्रीकृष्ण ने परस्पर क्या कहा ?

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, आपत्ति-काल के धर्म और अर्थ को अच्छी तरह जाननेवाले बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को और भगवान् वासुदेव का बुलाकर धैर्य के साथ कहा—हे वासुदेव, हे भीमसेन-अर्जुन-नकुल और सहदेव, तुम लोग कवच पहनकर सावधान रहो और चारों ओर घूम फिरकर अपनी सेना की देखभाल करते रहो। पहले हम लोगों को पितामह भीष्म से संग्राम करना होगा। इसलिए अब सातों अचौहिणियों के सात सेनापति निश्चित कर लो। इस पर श्रीकृष्ण ने कहा—राजन्, आपने इस समय के अनुकूल और अपने योग्य बात कही है। आपकी यह सावधानी उचित और काम सिद्ध करनेवाली होने के कारण मुझे भी पसन्द है। इसलिए, आप झटपट अपनी सेना के १० सात दलों में सात सेनापति तैनात कर दीजिए।

अब राजा युधिष्ठिर ने महावीर द्रुपद, विराट, सात्यकि, धृष्टशुम्भ, धृष्टकेतु, शिखण्डी और जरासन्ध के बेटे सहदेव को सेनापति के पद पर स्थापित किया। ये सब महावीर, युद्ध के बारे में विशेष उत्साह रखनेवाले क्षत्रिय, सेनापति के पद पर अभिप्रेत होने से, बड़े अच्छे जैचने लगे। फिर द्रोणाचार्य को मारने के लिए अग्नि-कुण्ड से उपजे हुए धृष्टशुम्भ को राजा युधिष्ठिर ने प्रधान सेनापति बनाया। वीर अर्जुन इन सब सेनापतियों की देखभाल करनेवाले सेनापति-पति (सेनापतियों के अफसर) बनाये गये। धृष्टशुम्भ भी उनके मातहत हुए। अर्जुन को भी



भीष्म और द्रोण की राय सुनकर दुर्योधन का उदास होना—पृ० १७६५



सलाह देने का भार कृष्णचन्द्र का दिया गया। महाबाहु श्रीकृष्ण ने इसके सिवा अर्जुन का रथ हाँकने का काम करना भी स्वीकार कर लिया। इस तरह सात सेनापतियों के ऊपर धृष्टद्युम्न, धृष्टद्युम्न के ऊपर अर्जुन और उन पर भी देख-रेख करने के लिए श्रीकृष्ण नियुक्त हुए।

हे जनमेजय ! इसी समय नीलाम्बर पहने, कैलास पर्वत के समान गोरे, मदिरा-पान से लाल हो जानेवाली आँखों से मनोहर बरामजी, वंश का नाशक भयङ्कर युद्ध उपस्थित देखकर, पाण्डवों के डेर में पहुँचे। इन्द्र के साथ जैसे देवता होते हैं वैसे ही बलदेवजी के साथ अक्रूर, गद, साम्ब, उद्धव, प्रद्युम्न, आहुक, चारुदेष्ण आदि वृष्णिवंश के बलवान् वीर थे। वे सिंह की सी चाल से पैर रखते हुए ज्योंही पाण्डवों के डेर में पहुँचे त्योंही उन्हें देखकर धर्मराज युधिष्ठिर, श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीमसेन और अन्य सब लोग, अपना-अपना आसन छोड़कर, खड़े हो गये। सब ने यथोचित रूप से बलभद्रजी का आदर-सत्कार किया। राजा युधिष्ठिर ने स्नेहपूर्वक उनसे हाथ मिलाया। फिर वे बृह् राजा विराट और द्रुपद को प्रणाम करके युधिष्ठिर के साथ बैठ गये।



२५

बलभद्रजी ने श्रीकृष्ण की ओर देखकर कहा—बहुत जल्दी यह बड़ा भयङ्कर संग्राम होगा। यह होनी ही जान पड़ती है, इसलिए इसे टालना असम्भव है। मैं चाहता हूँ कि तुम लोग अपने भाई-बन्धुओं के साथ जीते-जागते इस युद्ध के पार लग जाओ। मुझे आशा है कि मैं लौटकर तुम सबको आराग्य और राज्ञों-खुशी देखूँगा। मैं समझता हूँ, इन सब जमा हुए क्षत्रियों का अन्त समय आ गया है। यह बड़ा ही भयङ्कर संग्राम होगा; मांस और रक्त की काँच मच जायगी। मैंने वासुदेव को कई बार एकान्त में समझाया कि 'भैया, कौरव और पाण्डव दोनों तुम्हारे सम्बन्धी और समान स्नेह-पात्र हैं। सम्बन्धी जानकर दुर्योधन और पाण्डव दोनों की समान रूप से सहायता करो'। किन्तु कृष्ण को अर्जुन बहुत प्यारे हैं, इसलिए इन्होंने मेरे कहे पर ध्यान नहीं दिया। जब कृष्ण तुम्हारे पक्ष में हैं तब मुझे निश्चय है कि तुम्हीं जीतेगे। मैं कृष्ण को बहुत ही प्यार करता हूँ। इनके लिए मैं सारे संसार को छोड़

३०

सकता हूँ । इसी लिए मैं कृष्ण की इच्छा का विरोध नहीं कर सकता । गदा-युद्ध में चतुर भीमसेन और दुर्योधन दोनों मेरे शिष्य हैं; इसलिए दोनों पर मेरा समान स्नेह है । मैं किसी का पत्त न लेकर तीर्थ-यात्रा करने जाता हूँ । कौरवों का विनाश होते मुझसे न देखा जायगा, इसलिए तब तक मरस्वती-तट के तीर्थों में जाकर घूमूँगा ।

वैशम्पायन कहते हैं—महाबाहु बलभद्र, पाण्डवों से विदा हाकर, राह से श्रीकृष्ण को ३५ लौटाकर तीर्थयात्रा के लिए चले गये ।

एक सौ अट्ठावन अध्याय

रुक्मी का जाना और लौट जाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन ! इसी समय बड़े यशस्वी, इन्द्र के मित्र, मत्स्यरूप, दाक्षिणात्य के राजा, भोजवंशी भीष्मक के पुत्र रुक्मी पाण्डवों के पास आये । इन्होंने गन्धमादन पर्वत पर रहनेवाले एक श्रेष्ठ कृपुरुष से धनुर्वेद के चारों अङ्ग सीखे थे । संसार में गाण्डीव, विजय और शार्ङ्ग, यही तीन धनुष सबसे बढ़िया हैं । गाण्डीव धनुष वरुण का, विजय धनुष महेन्द्र का और शार्ङ्ग धनुष विष्णु का, यही तीनों दिव्य धनुष हैं । विजय धनुष शार्ङ्ग और गाण्डीव से किसी बात में कम नहीं है । ग्वाण्डव-दाह में गाण्डीव धनुष अग्नि से अर्जुन को मिला था । दिव्य लक्ष्मणोंवाला विजय धनुष कुबेर से रुक्मी को मिला था । शार्ङ्ग धनुष श्रीकृष्ण को उम समय मिला था जब उन्होंने मुर असुर के फन्दों को काटकर मुर और भैम नाम के दानवों को मारा था । वहीं उन्हें सोलह हजार अच्छी स्त्रियाँ और मणि-मय कुण्डल आदि रत्न भी मिले थे । रुक्मी उसी मेष-सदृश गम्भीर ध्वनिवाले विजय धनुष को लिये सारे जगत् को कँपाते हुए पाण्डवों के पास आये ।

रुक्मी की बहन रुक्मिणी को जब श्रीकृष्ण हर लाये थे तब रुक्मी ने श्रीकृष्ण को जीता न छोड़ने की प्रतिज्ञा करके उनका पीछा किया था । रुक्मी के साथ असंख्य वीरोंवाली चतुरङ्गिणी सेना भी, बढ़ी हुई गङ्गा के प्रवाह की तरह, श्रीकृष्ण पर चढ़ आई थी । परन्तु योगेश्वर श्रीकृष्ण ने रुक्मी को जीतकर पकड़ लिया और फिर छोड़ दिया । तब, प्रतिज्ञा पूरी न कर सकने से लजाकर, रुक्मी अपने पिता की राजधानी कुण्डिन नगर में नहीं गये । जहाँ श्रीकृष्ण ने उन्हें हराया था वहीं भोजकट नाम का नया नगर बसाकर वे रहने लगे । उसी भोजकट नगर से एक अचौहिणी सेना साथ लेकर रुक्मी आये । कवच, धनुष, तलव्राण, खड्ग, सूर्य के रङ्ग का रथ और ध्वजा आदि युद्ध के सामान समेत रुक्मी, कृष्णचन्द्र का प्रिय करने के लिए, पाण्डवों के पास उपस्थित हुए ।

धर्मराज युधिष्ठिर ने आसन से उठकर उनका सत्कार किया । पूजा और प्रशंसा हो चुकने पर, पाण्डवों को बधाई देकर और कुछ विश्राम करके, रुक्मी ने सब वीर राजाओं के आगे २० अर्जुन से कहा—हे अर्जुन, जो तुम युद्ध से डरते हो तो तुम्हारी सहायता करने के लिए मैं

मौजूद हूँ। मैं तुम्हारी ओर से ऐसा युद्ध करूँगा कि शत्रु के छक्के छूट जायँगे। बल और पराक्रम में मेरे समान और कोई पुरुष नहीं है। जिन वीरों को तुम मेरे हिस्से में कर देगें उन्हें मैं ज़रूर मारूँगा। द्रोणाचार्य कृपाचार्य, भीष्म या कर्ण, जिसे कहेंगे उसे मैं सहज ही यमलोक भेज दूँगा। अथवा इन सब राजाओं को बैठे रहने दो, मैं अकेला ही तुम्हारे शत्रुओं को मारकर पृथ्वीमण्डल का राज्य तुम्हें दिला दूँगा।

धर्मराज, कृष्णचन्द्र और अन्य राजाओं के आगे रुक्मी के ये वचन सुनकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर की ओर देखा। फिर वे मित्रता का भाव प्रकट करके, हँसते हुए, रुक्मी से कहने लगे—हे भोजराज, मैंने कुरुवंश में जन्म लिया है। मैं वीर पाण्डु का पुत्र और द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ। भगवान् वासुदेव मेरे सहायक हैं; गाण्डीव मेरा धनुष है। मुझ मरीखा यशस्वी पुरुष इस अयश के देनेवाले वाक्य को कैसे ज़वान पर ला सकता है कि मैं युद्ध से डरता हूँ? घोष-यात्रा के समय बड़े बली गन्धर्वों से जब मैं लड़ा था तब किसने मेरी सहायता की थी? खाण्डव-दाह के समय जब मैंने भयङ्कर युद्ध करके इन्द्र आदि देवताओं को हराया था तब मेरा कौन सहायक था? निवातकवच और कालकेय नाम के दानवों से युद्ध करते समय मुझे किसने सहायता दी थी? विराट नगर में जब कौरव-वीरों के साथ अकेले मैंने संग्राम किया था तब मेरी सहायता करनेवाला कौन था? मैंने रुद्र, इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और माधव से युद्ध की कला और अस्त्रविद्या सीखी है। मेरे पास दिव्य गाण्डीव धनुष, कभी खाली न होनेवाले तरकस और दिव्य अस्त्र हैं। फिर मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि युद्ध से मुझे डर लगता है? हे महाबाहु, न मैं युद्ध से डरता हूँ और न मुझे सहायता की ज़रूरत है। आप अपनी इच्छा के अनुसार चाहे यहाँ ठहरिए चाहे जाइए।

३०

हे जनमेजय, तब रुक्मी अपनी समुद्र-तुल्य अपार सेना उधर से लौटाकर राजा दुर्योधन के पास गये। दुर्योधन से भी रुक्मी ने वैसी ही बातें कहीं जैसी पाण्डवों से की थीं। अपने को वीर समझनेवाले दुर्योधन ने भी वैसा ही उत्तर दिया जैसा अर्जुन ने दिया था। तब रुक्मी भी बलराम की तरह युद्ध से उदास होकर तीर्थयात्रा के लिए चले गये। रुक्मी और बलभद्र के जाने पर पाण्डव लोग फिर आपस में युद्ध के सम्बन्ध में तरह-तरह के प्रबन्ध और सलाह करने लगे। राजमण्डली से भरी हुई पाण्डवों की सभा चन्द्रमा और तारागणों से शोभित आकाश के समान देख पड़ती थी।

४०

एक सौ उनसठ अध्याय

धृतराष्ट्र और सञ्जय का संवाद

जनमेजय ने कहा—भगवन्, काल के वश हो रहे कौरवों ने कुरुक्षेत्र में युद्ध की संज्ञाएँ जमा होने पर फिर क्या किया? कृपा करके श्री कुरुक्षेत्र, ०. P.

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन् ! उधर कुरुक्षेत्र में लड़ाई के लिए सब सेना जमा हुई, इधर राजा धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—हे सञ्जय, कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ जमा होने पर आगे जो कुछ हुआ सो मुझसे कहो। मेरी समझ में उपाय व्यर्थ है, दैव (हानी) ही मुख्य है। युद्ध का फल मौत अर्थात् विनाश जानकर भी जुए में फँस रहे दुर्योधन को मैं रोक नहीं सका और अपने वंश का हित करने में भी असमर्थ हो रहा हूँ। हे सूत, मेरी बुद्धि दोषों को देखकर भी दुर्योधन के आगे कुन्द हो जाती है। दुर्योधन के पास आ जाने पर पुत्र-स्नेह के मारे मेरी बुद्धि मोहित हो जाती है और मैं उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर पाता। अब जो कुछ होना है वह होगा ही। युद्ध में मरना क्षत्रिय का उत्तम धर्म माना गया है।

सञ्जय ने कहा—राजन्, आपने जो कहा और जो कुछ आप चाहते हैं सो आपके योग्य ही है। इस कुल-क्षय का दोष दुर्योधन के सिर मढ़ना भी ठीक नहीं। महाराज, जो मैं आपसे कहता हूँ उसे ध्यान देकर सुनिए। जो मनुष्य अपने बुरे आचरण से अशुभ फल पाता है वह दैव को या देवताओं को दोष नहीं दे सकता। जो व्यक्ति मनुष्यों के साथ बुरा व्यवहार करता है वह सब लोगों का वध्य है। राजन्, अनुचरों-सहित पाण्डवों ने केवल आपके खयाल से अथवा यों कहा कि आपके न बोलने के कारण जुए में हारकर तरह-तरह के तिरस्कार सहें थे। इस समय आप स्थिर और एकाग्र होकर घोंड़, हाथी, राजा, सैनिक आदि के विनाश का हाल मुझसे सुनिए। युद्ध में चौपट होने की घटनाएँ सुनकर अब उदास न हूजिए। देखिए, यह जीव पाप-पुण्य कर्मों का स्वाधीन कर्ता नहीं है। सूत में बँधी हुई कठपुतली की तरह विवश होकर हरएक मनुष्य हरएक काम करता है। कुछ काम ईश्वर के बनाये नियम के अनुसार अर्थात् ईश्वर की मर्जी से किये जाते हैं; कुछ काम मनुष्य अपनी इच्छा से करता है और कुछ काम पूर्व-संस्कार के अनुसार होते हैं। इस तरह काम तीन प्रकार के होते हैं। इस कारण इस समय अनर्थरूप विपत्ति के आ पड़ने पर भी आप खेद न कीजिए और स्थिर होकर आग का सब हाल सुनिए।

उलूकदूतागमनपर्व

एक सौ साठ अध्याय

दुर्योधन का उलूक को दूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजना

सञ्जय ने कहा—महाराज, महात्मा पाण्डवों ने कुरुक्षेत्र में हिरण्वती नदी के किनारे अपनी सेना ठहराई और फिर कौरवों ने भी कुरुक्षेत्र में पहुँचकर दूसरी ओर अपनी सेना के डेरे डाल दिये। राजा दुर्योधन ने छावनी स्थापित करके आये हुए राजाओं का सम्मान के साथ ठहराया और मौके-मौके पर रक्षा के लिए सिपाहियों की चौकियाँ बिठा दीं। रसद और शस्त्र-

अस्त्र आदि की रक्षा का प्रबन्ध करके कर्ण, शकुनि और दुःशासन को बुलाकर उनसे आगे के काम के बारे में सलाह की। कर्ण आदि की सलाह से दुर्योधन ने एकान्त में उलूक को बुलाया। उलूक के आने पर उससे दुर्योधन ने कहा—हं कैतव्य, तुम सोमकों (पाञ्चालों) और पाण्डवों के पास जाकर वासुदेव के आगे युधिष्ठिर से कहो कि बहुत दिनों का सोचा हुआ संसार के लिए भयङ्कर कौरवों और पाण्डवों का युद्ध इस समय होनेवाला है। सञ्जय ने कौरवों के आगे वासुदेव की, तुम्हारी और तुम्हारे भाइयों की अपने मुँह की गई अपनी बड़ाई सुनाई थी; उसे ज्यों की त्यों कर दिखाने का समय आ गया है। इस समय तुम लोग अपनी प्रतिज्ञाएँ पूरी करो। हं उलूक, तुम बड़े पाण्डव युधिष्ठिर से कहना कि आप धर्मात्माओं में श्रेष्ठ होकर भी पाञ्चालों, केकयों और अपने भाइयों के साथ अधर्म करने पर क्यों उतारूँ ? आप निर्दय पुरुष की तरह मारें जगत् का विनाश कैसे पसन्द करते हैं ? मैं तो समझता था कि आप सब प्राणियों के रक्षक और उन्हें अभय देनेवाले हैं। सुना जाता है कि पहले देवताओं ने जब राज्य छीन लिया था तब प्रह्लाद ने यह गाथा कही थी कि हे देवगण, जो मनुष्य गुप्त रूप से पाप करके दिखावे के लिए भण्ड की तरह धर्म के चिह्न रखता है वह विडालव्रती कहलाता है। इस बारे में एक समय देवर्षि नारद ने मेरे पिता के आगे जो उत्तम उपाख्यान कहा था सो मैं सुनाता हूँ।

एक दुष्ट बिलाव गङ्गा के किनारे सब प्रकार की उल्लू-कूद छोड़कर, ऊपर को हाथ उठाये रहकर, लोगों को दिखाने के लिए तप कर रहा था। अपने शिकार पक्षी आदि को विश्वास दिलाने के लिए उसने यह प्रसिद्ध कर दिया कि मैंने हिंसा छोड़कर अब धर्म-कर्म करने का निश्चय कर लिया है। कुछ दिन तक उसकी यह लीला देखकर पक्षियों को विश्वास हो गया। वे लोग उसकी बड़ाई और आदर करने लगे। बिलाव ने सोचा कि इतने दिन के बाद अब मेरी कामना सिद्ध हुई और मुझे अपने इस कपट-व्रत का फल प्राप्त होगा।



कुछ दिन के बाद वहाँ कुछ मूसे आये। उन्होंने व्रत-धर्म कर रहे उस बिलाव को देखकर सोचा कि हमारे शत्रु भी बहुत हैं और परिवार भी बहुत बड़ा है। हमारे मामा यं बिलावराम २०

हम बूढ़ों और बच्चे की रक्षा करेंगे और हम इनके पास मजे में रहेंगे। इससे पास आकर उन्होंने उस बिलाव से कहा—मामाजी, आप धर्मात्मा हैं; धर्म-कर्म किया करते हैं। आपको हम अपना शुभचिन्तक और आश्रयदाता समझते हैं। हम आपके भरोसे यहाँ सुख से रहना और विचरना चाहते हैं। इसी लिए हम लोग आपकी शरण में आये हैं। अब आप देवताओं की रक्षा करनेवाले इन्द्र की तरह हमारी रक्षा कीजिए।

मूसों के वैरी बिलाव ने उन मूखों की ये बातें सुनकर उनसे कहा—तपस्या और दूसरों की रक्षा, ये दोनों काम एक साथ नहीं हो सकते। किन्तु तुम लोग शरण में आये हो, इसलिए तुम्हारी रक्षा करना मेरा धर्म है। मैं एक शर्त पर तुम्हारी रक्षा करूँगा। दृढ़ अहिंसा का व्रत करने से और कठिन तप करने से मैं इतना निर्बल हो गया हूँ कि चल-फिर तक नहीं सकता। इसलिए तुम्हें मेरा एक काम यह करना होगा कि नित्य मुझे लादकर नदी-किनारे तक पहुँचाना पड़ेगा। मूसों ने यह शर्त मञ्जूर कर ली और अपने ३० परिवार को उस बिलाव के हाथ में सौंप दिया।

अब वह पापी बिलाव नित्य मूसों को खाने लगा और दिन-दिन मोटा, मजबूत, बलवान् और सुन्दर होने लगा। उधर मूसों की संख्या दिन-दिन कम होने लगी। सब मूसे



मिलकर तब आपस में कहने लगे—देखो, हमारे मामा बिलावराम दिन-दिन मोटे होते चले जा रहे हैं, और हमारा परिवार घटता जा रहा है। यह सुनकर डिण्डक नाम के एक समझदार और हाशियार मूसे ने कहा—तुम सब मिलकर नदी के किनारे चलो। आज मैं अकेला बिलाव के साथ जाऊँगा। सब मूसे उसकी बड़ाई करके उसकी आज्ञा से गङ्गातट पर गये। बिलाव को यह कुछ हाल मालूम न था। वह डिण्डक को भी खा गया। तब मूसे फिर आपस में सलाह करने लगे। उस समय एक बूढ़े कोकिल नाम के मूसे ने कहा—हे भाइयों, हमारे मामा में धर्म का नाम तक नहीं है। वह कपट की मित्रता में अपने

दुराचरण को छिपाये हुए है। धोखा देने के लिए उसने बड़ी-बड़ी जटाएँ बढ़ा रखी हैं।

मूल-फल खानेवाले की बाट में रोएँ नहीं होते । बिलाव नित्य मोटा होता जाता है और हम मूसे दिन-दिन घटते जाते हैं । आज सात-आठ दिन से डिण्डक का भी पता नहीं है । कोकिल ४० की बातें सुनकर सब मूसे प्राण लेकर इधर-उधर भाग गये । दुरात्मा बिलाव भी, भण्डाफोड़ हो जाने से, अपने स्थान को चला गया ।

हे युधिष्ठिर, आप भी विडालव्रत धारण किये हुए हैं । बिलाव ने मूसों के साथ जो व्यवहार किया था, वही आप अपनी जातिवालों के साथ कर रहे हैं । आपकी बातें और तरह की हैं और काम और तरह के हैं । आपका वेद पढ़ना और शान्ति की निष्ठा बाहरी आडम्बर या दिखावा है । आप धर्मात्मा समझे जाते हैं, इसलिए कपट-व्यवहार छोड़कर, क्षत्रिय धर्म को ग्रहण कीजिए और अपने योग्य काम कीजिए । बाहुबल से पृथ्वी जीतकर ब्राह्मण-पितरों का दान आदि से सन्तुष्ट कीजिए । आप माता के हितैषी हैं । आपकी माता कई वर्षों से कष्ट पा रही हैं । इस समय युद्ध में शत्रुओं को जीतकर सपूत की तरह उनके आसू पोंछिए और उनका हित तथा सम्मान कीजिए । आपने हमसे पाँच गाँव माँगे थे, किन्तु हमने दिये नहीं; यही आपके क्रोध और युद्ध की तैयारी का कारण है । मैंने आपके ही कारण दुष्ट भाववाने विदुर को त्याग दिया है । इस समय आप लाक्षाभवन में जलाये जाने का स्मरण करके मदों की तरह पराक्रम दिखाइए । आपने कृष्ण के मुँह से हमारे पास कहला भेजा था कि मैं शान्ति और युद्ध दोनों के लिए तैयार हूँ । इस समय उसी युद्ध का समय आ गया है । युद्ध ही क्षत्रिय के लिए परम लाभ और उमका धर्म है । यही मोचकर मैंने संग्राम का सब सामान जमा किया है और युद्ध करने को मैं तैयार हूँ । आप क्षत्रिय हैं । आपने भी द्रोणाचार्य और ५० कृपाचार्य से अस्त्रविद्या सीखी है । समझ में नहीं आता कि तुल्य बलवाले और तुल्य वंश में उत्पन्न होकर भी आपने वासुदेव का आसरा क्यों लिया है !

हे उलूक, तुम पाण्डवों के आगे ही वासुदेव से कहना कि हे कंशव, आप अपने लिए और पाण्डवों के लिए मुझसे जी खोलकर युद्ध कीजिए । कुरुसभा में जैसे माया का रूप दिखाया था वैसे ही वह रूप रखकर अर्जुन के साथ युद्ध-भूमि में मेरे सामने आइए । इन्द्रजाल, माया या भयानक कपट-विद्या आदि बातें संग्राम में हथियारबन्द वीर का कोप बढ़ाने के सिवा उसे डरा नहीं सकतीं । हम भी माया के प्रभाव से इसी शरीर से बहुतरे बहुरूप दिखाकर स्वर्ग, आकाश, रसातल और इन्द्र की पुरी आदि में जा सकते हैं । परन्तु यह कोई बहादुरी नहीं । माया से या डर दिखाने से सिद्धि नहीं मिलती और न कोई डर सकता है । एक विधाता ही इच्छा करने से सब प्राणियों को अपने वश में कर सकते हैं । हे यादव, आप जो कहा करते हैं कि मैं युद्ध में धृतराष्ट्र के पुत्रों का नाश कराकर पाण्डवों को राज्य दिलाऊँगा; मैं जिनका सहायक हूँ उन्हीं अर्जुन के साथ दुर्योधन का वैर हुआ है; सो आपकी ये बातें मैं सज्ज के

६० मुँह से सुन चुका हूँ। हे कृष्ण! समय आ गया है, अब आप सब प्रकार की तैयारी के साथ युद्ध में जुटकर, पराक्रम दिखाकर, अपना कहा पूरा कर दिखाइए। अब अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करना और पौरुष दिखाना आपका काम है। जो व्यक्ति पौरुष दिखाकर शत्रुओं के शोक को बढ़ाता है उसी का जन्म सफल है। हे कृष्ण, अभी तक तो आपका यश अकारण ही सब जगह फैल गया है, आपने उसके योग्य कोई काम नहीं किया है। हमें तो यह जान पड़ता है कि जिन लोगों में आपके बल और यश की प्रसिद्धि है वे पुरुषचिह्न धारण करनेवाले नपुंसक हैं। आप कंस राजा के नौकर हैं, इस कारण मुझ सरोखा चक्रवर्ती राजा आपके साथ युद्ध नहीं कर सकता। वह तो उसके लिए सब तरह अपमान की बात होगी।

हे उलूक! तुम उम बे-मूँछवाले, सूर्य, पेदू, भीमसेन से बारम्बार कहना कि हे पार्थ, तुमको विराट नगर में बल्लव नाम से रसेइया बनकर जो रहना पड़ा था वह मेरी ही करामात थी। तुमने सभा में जो प्रतिज्ञा की थी वह देखो भूट न होने पावे। इस समय हो सके तो दुःशामन का ग्वन पियो। हे कुन्तीपुत्र, तुम कहा करते थे कि मैं धृतराष्ट्र के पुत्रों को लड़ाई में मारूँगा। अब उसका समय आ गया है, अपना कहना सत्य कर दिखाओ। तुम खाने पीने में बहादुरी दिखा सकते हो, यह सच है; लेकिन कहाँ युद्ध और कहाँ खाना-पीना! अब मर्द बनकर युद्ध करो और हिम्मत दिखाओ। याद रखो, मेरे हाथ से मरकर छाती से गदा लगाकर तुम्हें युद्धभूमि में सेना पड़गा। तुमने सभा में जो शेखी मारी थी वह बेकार होगी।

७० हे कैतव्य, तुम मेरी आज्ञा से कहना कि हे नकुल, तुम जमकर युद्ध करो। हम तुम्हारा बल देखेंगे। तुम इस समय युधिष्ठिर पर अनुराग, मेरे साथ अपना द्वेष और द्रौपदी के क्लेश याद करो। हे उलूक, तुम राजाओं के बीच में सहदेव से कहना कि हे सहदेव, तुमने अब तक जो बहुत से क्लेश सहे हैं उन्हें याद करके लड़ने के लिए तैयार हो जाओ। हे दूत, विराट और द्रुपद से भी मेरा यह सन्देश कहना कि जब से संसार में प्रजा उपजी है तब से आज तक महागुणी सेवकों ने स्वामियों को और स्वामियों ने सेवकों को नहीं पहचाना। इसी कारण तुम लोग मुझे निन्दा के योग्य समझकर गुणहीन युधिष्ठिर के पक्ष में चले गये हो। मेरे मारने और हराने के लिए तुम एकत्र हुए हो तो अच्छी बात है। अपनी ओर से और पाण्डवों की ओर से मेरे साथ युद्ध करने में कोई कसर न रखना। हे उलूक, मेरी ओर से तुम धृष्टद्युम्न से कहना कि हे पाञ्चाल-राजकुमार, तुम्हें समर में द्रोणाचार्य के सामने पहुँचने पर अपने हित का ज्ञान होगा। तुम्हें मालूम हो जायगा कि तुमने पाण्डवों का पक्ष लेकर अपनी बुराई ही की है। अपने मित्र पाण्डवों सहित मुझसे युद्ध करो और गुरु के मारने का कठिन पाप करने को तैयार रहो। हे कैतव्य, इसके बाद शिखण्डी से कहना कि धनुषधारियों में श्रेष्ठ, महाबाहु भीष्म तुमको खीसमझकर युद्ध में नहीं मारेंगे। इसलिए तुम बेखटके हौसले के साथ युद्ध करो। हम तुम्हारा पराक्रम देखेंगे।

अब दुर्योधन ने हँसकर उलूक से कहा—हे कैतव्य, तुम वीर होने का दम भरनेवाले अर्जुन से वासुदेव के सामने कहना कि हे धनञ्जय, तुम या तो हमें हराकर निष्कण्टक साम्राज्य करो ८० और या हमारे हाथ से मरकर पृथ्वी पर सदा के लिए सो जाओ। इस समय नगर से निकाले जाने, वनवास और द्रौपदी के दुःख आदि का स्मरण करके कुछ कर दिखाओ। जत्रियों की स्त्रियाँ जिस समय के लिए पुत्र पैदा करती हैं वह समय आ गया है। इस समय तुम बल, वीर्य, शूरता और अस्त्रकला दिखाकर युद्ध में अपना क्रोध ठण्डा करो। ऐश्वर्य से भ्रष्ट, क्लेशों से दुःखित, दीन और बहुत दिन तक अपनी जन्म-भूमि से निकाले जाने पर किसकी छाती नहीं फटेगी ? पुरुरीतनी राज्य छिन जाने पर किम कुलीन, पराई सम्पत्ति लेने से विमुख, पराक्रमी पुरुष के हृदय में क्रोध की आग नहीं जल उठेगी ? तुम पहले जो डाँग हाँक चुके हो उसे पूरा कर दिखाओ। जो पुरुष कहने के अनुसार काम न करके केवल अपने मुँह से अपनी बड़ाई करता है, उसे अच्छे लोग कायर कहते हैं। इस समय तुम शत्रुओं के हाथ में पड़े हुए राज्य को, और स्थान को फिर प्राप्त करो। युद्ध की इच्छा रखनेवाले के यही दो मतलब होते हैं, इस कारण इनके लिए तुम पौरुष दिखाओ। जुए में तुम लोग हारे और द्रौपदी भी दुर्दशा के साथ सभा में लाई गई। जो अपने को मर्द समझता है वह इन बातों को नहीं सह सकता। निकाले जाने के कारण तुम बारह वर्ष वन में और एक वर्ष छिपकर राजा विराट के यहाँ रहे हो। इस समय राज्य से निकाले जाने के क्लेश, वनवास के दुःख और द्रौपदी के अपमान को याद करके कुछ कर दिखाओ। जो लोग बारम्बार तुम्हारे लिए कड़वे वचन कहते हैं उन पर क्रोध दिखाओ; ८० क्योंकि क्रोध ही पौरुष है। हे पार्थ, तुम पौरुष के साथ हिम्मत करके युद्ध करो। संसार के सब लोग तुम्हारे क्रोध, बल, वीर्य, ज्ञान, उद्योग और अस्त्रकौशल को देखें। पुरुष बनकर युद्ध करो और पौरुष दिखाओ। सब अस्त्र-शस्त्र साफ़ किये जा चुके हैं। उनकी पूजा भी की जा चुकी है; कुरुक्षेत्र का मैदान साफ़ पड़ा है—कीचड़ बगैरह का नाम भी नहीं, तुम्हारे घोड़े मोटे-ताजे हैं और सहायक योद्धा जमा हो चुके हैं। इसलिए तुम कल सबेरे केशव के साथ युद्ध के मैदान में उतरा। अभी संग्राम में पितामह भीष्म से तुम्हारा सामना नहीं हुआ। फिर तुम गन्धमादन की चोटी पर चढ़ने की इच्छा रखनेवाले किसी मन्दबुद्धि मनुष्य की तरह वृथा अपनी बड़ाई अपने आप क्या कर रहे हो ! इस समय डाँग हाँकना छोड़कर युद्ध में पौरुष दिखाओ। तुम दुर्धर्ष वीर कर्ण, श्रेष्ठ बली शल्य और इन्द्रतुल्य द्रोणाचार्य को परास्त किये बिना कैसे राज्य पाने की इच्छा कर रहे हो ? धनुर्वेद और वेद के आचार्य, युद्ध करने में चतुर, अजेय, सेनापति द्रोणाचार्य को हराने की इच्छा बिलकुल ही बेकार है। हमने कभी यह नहीं सुना कि पर्वतराज सुमेरु को हवा ने गिरा दिया। तुम द्रोण आदि वीरों को हराने की डाँग हाँकते हो; किन्तु जो तुम्हारा यह कथन सच हो तो सुमेरु का हवा के वेग से उड़ जाना, आकाश

का पृथ्वी पर गिर पड़ना और असमय में ही दूसरा युग हो जाना भी सम्भव सम्भा जायगा । हे अर्जुन ! चाहे तुम हो चाहे और कोई हो, युद्ध में द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म के सामने १०० जाकर जीवन की इच्छा रखनेवाला कौन पुरुष घर को लौट सकता है ? जिसे ये लोग मारना चाहें, या जिसको बाण मारें वह पृथ्वी पर रहकर कभी जीता नहीं बच सकता । हे मूढ़, तुम कुँए के मेढक की तरह क्या यह नहीं जानते कि—देवताओं द्वारा रक्षित सुरपुरी के समान—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा के, काम्बोज, शक, खश, शाल्व, मत्स्य, मध्यकुरु, म्लेच्छ, पुलिन्द, द्रविड़, आन्ध्र और काश्मी आदि देशों के नरेशों द्वारा रक्षित, देवसेना के समान जीती न जानेवाली, महासेना एकत्र हुई है ? हम युद्ध में तुम्हारे खाली न होनेवाले तरकस, अग्नि के दिये हुए रथ और दिव्य केतु की महिमा देखेंगे । तुम व्यर्थ का अहङ्कार छोड़कर युद्ध करो । वृथा अपनी बड़ाई आप क्यों कर रहे हो ? डींग हाँकने से कुछ मतलब नहीं निकल सकता । हर एक पुरुष स्वयं अपनी बड़ाई कर सकता है, किन्तु जो ऐसा करने से ही कोई काम सिद्ध हो सकता तो सभी लोग बाहवाही लूट लेते । यद्यपि तुम्हारे सहायक वासुदेव, चार हाथ के लम्बे गाण्डीव धनुष और अप्रतिम प्रभाव को मैं जानता हूँ, तो भी देखो, तुम्हारा राज्य तुमसे छीनकर उसे भोग रहा हूँ ।

एकमात्र विधाता में ही यह सामर्थ्य है कि जो चाहते हैं कर लेते हैं, मनुष्य कभी सङ्कल्पमात्र से हर एक काम को सिद्ध नहीं कर सकता । मैंने तेरह वर्ष तक तुम्हारे राज्य का भोग किया, तुम केवल विलाप करते हुए उसे देखते रहे, कुछ कर नहीं सके । इस समय तुम्हें १० तुम्हारे भाइयों-सहित यमनांक को भेजकर फिर वह निष्कण्टक राज्य करूँगा । जब तुम दास-भाव की बाड़ी लगाकर हार गये थे, तब तुम्हारा गाण्डीव धनुष और भीमसेन का बल कहाँ चला गया था ? उस समय तुम्हें द्रौपदी ने ही छुटकारा दिलाया था । मैंने जो तुमको निस्सार तिल कहा था, सो भूट नहीं था ; क्योंकि तुम लोगों ने विराट राजा के यहाँ सेवकों की नौकरी की । भीमसेन को जो विराट के यहाँ रसेाईय का काम करके शकना पड़ा सो मेरे ही पौरुष का फल था । तुम भी राजा विराट की नाट्यशाला में हिजड़े के वेष से चोटी रखाकर उत्तरा को नाचना-गाना सिखाते रहे । क्षत्रिय लोग क्षत्रिय को ऐसा ही दण्ड देते हैं । मैं तुम्हारे या वासुदेव के डर से कभी तुम लोगों को राज्य न दूँगा । तुम केशव को साथ लेकर मुझसे युद्ध करो । संग्राम में शस्त्र लिये हुए पुरुष को माया, इन्द्रजाल, कुहक या और तरह की विभोषिका कभी नहीं डरा सकती । हज़ार कृष्ण या सौ अर्जुन भी युद्ध में मेरे सामने नहीं ठहर सकते । मेरे अमोघ बाणों से पीड़ित होकर उन्हें इधर-उधर भागना पड़ेगा । तुम चाहे भीष्म से युद्ध करो, चाहे सिर की टक्कर से पहाड़ तोड़ डालो और चाहे हाथों के सहारे १२० अपार सेना-सागर के पार पहुँचने की चेष्टा करो, लेकिन मेरे हाथ से छुटकारा न पा सकोगे ।

हे अर्जुन, मेरी सेना समुद्र के समान है। इसमें कृपाचार्य महामीन हैं। विविशति महासर्प हैं। भीष्म इसका वेग हैं। द्रोणाचार्य महाप्राह के तुल्य हैं। कर्ण तिमिङ्गिल के समान हैं। शल्य भेंवर के तुल्य हैं। काम्बोज-नरेश बड़वानल के समान हैं। बृहद्रथ उवाल (ज्वार) के समान हैं। भगदत्त तूफान के समान हैं। सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा तिमि आदि भयानक जलचर जीवों के तुल्य हैं। श्रुतायु, कृतवर्मा और दुःशासन इस सागर का महाप्रवाह हैं। शल, सुषेण और विचित्र शस्त्र-अस्त्र नाग और घड़ियाल के समान हैं। युयुत्सु और दुर्मर्षण जल हैं। जय-द्रथ पर्वत के तुल्य हैं। पुरुमित्र इसकी गहराई और शकुनि इसकी उत्पत्ति का स्थान हैं। तुम जब शस्त्र-प्रवाहवाले इस अक्षय महासागर में उतरांगें तब तुम्हारे बन्धु-बान्धव नष्ट होंगे और तुम थक जाओगे; इससे तुम्हें बहुत सन्ताप होगा। स्वर्ग से लौटाये गये पापी की तरह तुम्हारा मन पृथ्वी का राज्य पाने की आशा से फिर जायगा। जिसने तप नहीं किया वह जैसे स्वर्ग को नहीं पा सकता वैसे ही तुम्हें राज्य मिलना भी अत्यन्त दुष्कर और असम्भव है।

१२५

एक सौ इकसठ अध्याय

उलूक का पाण्डवों के पास जाकर दुर्योधन का संदेशा कहना

सञ्जय कहते हैं कि महाराज, अब कैतव्य उलूक पाण्डवों के डेरे में गया और उनसे मिलकर युधिष्ठिर से कहने लगा—राजन्, आप जानते हैं कि दूत लोग अपनी ओर से कुछ नहीं कहते; स्वामी जां कुछ कहने को कहता है, वही कहते हैं। मैं आपके आगे महाराज दुर्योधन की बातें जैसी की तैसी कहता हूँ; सुनकर मुझ पर क्रोध न कीजिएगा।

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हं उलूक, तुम डर्रा नहीं। तुम बेखटक उस लोभी अदूरदर्शी दुर्योधन की बातें कहो।

तब उलूक ने यशस्वी श्रोकृष्ण, महात्मा पाण्डव, सृञ्जय, मत्स्य, पुत्र-सहित विराट, दुपद और अन्य राजा लोगों के सामने कहा—हं युधिष्ठिर, आप जुए में हारे और द्रौपदी भी सभा में सबके सामने लार्ई गई। इसके लिए हर एक पुरुष, जिसे पौरुष का अभिमान है, क्रोध कर सकता है। आप लोगों ने बारह वर्ष वनों में घूमकर बिताये; और एक वर्ष तक राजा विराट के घर में दास बनकर आप लोग छिपे रहे। इस समय पहले के क्रोध, राज्य-हरण, वनवास के कष्ट और द्रौपदी के अपमान तथा कष्ट को स्मरण करके अपना पौरुष दिखाइए। भोमसेन ने असमर्थ होकर भी दुःशासन का रक्त पीने की प्रतिज्ञा की थी। इस समय हो सके तो वे उस प्रतिज्ञा को पूरी करें। अस्त्र-शस्त्र साफ़ किये जा चुके हैं, उनकी पूजा भी हो चुकी है। कुरुक्षेत्र के मैदान में कीचड़ नहीं है। सब मार्ग समतल हैं। आप लोगों के घोड़े आदि वाहन भी नीराग और हृष्ट-पुष्ट हैं। इसलिए कृष्ण को साथ लेकर कल से ही युद्ध आरम्भ कर दीजिए।

१०

हे कुन्ती-नन्दन ! आपने युद्ध के मैदान में भीष्म को नहीं देखा, फिर गन्धमादन पर चढ़ने की इच्छा रखनेवाले मूर्ख (लेंगड़े) आदमी की तरह वृथा अपने मुँह अपनी बड़ाई क्यों कर रहे हैं ? अहङ्कार



छोड़कर पौरुष दिखाइए। अत्यन्त दुर्धर्ष कर्ण, श्रेष्ठ बली शल्य और इन्द्रतुल्य द्रोणाचार्य को युद्ध में हराये बिना आप कैसे राज्य प्राप्त करने की इच्छा करते हैं ? ब्रह्म-विद्या और धनुर्वेद के आचार्य, दोनों विद्याओं में पारदर्शी, युद्ध-सञ्चालन में समर्थ, चोभ से रहित, अक्षय बल से पूर्ण महात्मा द्रोणाचार्य को हराने की आपकी इच्छा वृथा और असम्भव है। सुमेरु को हवा के वेग से उखड़ जाते हमने कभी नहीं सुना। आपका कहना (प्रतिज्ञा करना) सच हो तो सुमेरु हवा के झोंकों से उखड़ जायगा, आकाशमण्डल पृथ्वी पर गिर पड़ेगा और असमय में ही दूसरा युग आ जायगा। द्रोण के हाथ में पड़कर कौन पुरुष जीने की आशा कर

सकता है ? घोड़े का सवार, हाथी का सवार या रथ का सवार, कोई भी योद्धा द्रोण के सामने पड़कर कुशल के साथ घर को लौटकर नहीं जा सकता। भीष्म या द्रोण जिसे मारना चाहें, या बाणों से जिस पर चोट करें वह जीता नहीं बच सकता। आप लोग कुएँ के भीतर रहनेवाले मेंढक की तरह क्या यह नहीं जानते कि देवताओं द्वारा सुरक्षित सुरपुरी की तरह पूर्व, पश्चिम, दक्षिणात्य और उत्तर के काम्बोज, शक, ग्वश, शात्व, मत्स्य, म्लेच्छ, पुलिन्द, द्रविड़, आन्ध्र और काञ्ची आदि देशों के नरेशों से सुरक्षित, देवसेना-सदृश, अजेय महासेना मेरी ओर से लड़ने को जमा हुई है ? हे अल्पबुद्धि पाण्डव, आप गङ्गा-प्रवाह की तरह असह्य असंख्य योद्धाओं और

२२ भयङ्कर हाथियों के दल से बलशाली मुझसे क्या सम्भकर युद्ध करना चाहते हैं ?

महाराज, युधिष्ठिर से इतना कहकर उलूक ने फिरकर अर्जुन से कहा—हे अर्जुन, तुम भी वृथा अहङ्कार छोड़कर युद्ध करो। व्यर्थ अपनी बड़ाई क्यों कर रहे हो ? शेखी मारना अनुचित है। अगर आप ही अपनी बड़ाई करने से कार्य सिद्ध हो सकता तब सभी लोग निहाल हो जाते। तुम्हारे सहायक वासुदेव, चार हाथ का धनुष और अप्रतिम प्रभाव मुझसे छिपा नहीं है। मैं जानता हूँ कि तुम बेजोड़ योद्धा हो। किन्तु इतने पर भी मैं तुम्हारा

राज्य छीनकर उसे भोग रहा हूँ । एकमात्र विधाता में ही सङ्कल्प से सब कार्य सिद्ध करने की सामर्थ्य है । मनुष्यों में यह शक्ति नहीं कि वे जो चाहें, कर ले । मैं तेरह वर्ष से तुम्हें शोक के समुद्र में डालकर तुम्हारा राज्य भोग रहा हूँ । इस समय तुम्हें और तुम्हारे भाइयों को मारकर आगे भी निष्कण्टक राज्य करता रहूँगा । जब तुम लोग जुए में हारकर दाम हो गये थे तब तुम्हारा गाण्डीव धनुष, भीमसेन की गदा और बल-पराक्रम कहाँ चला गया था ? उस समय द्रौपदी ने ही तुम्हें छुटकारा दिलाया था । मैंने तुम लोगों को निस्सार तिल कुछ झूठ नहीं कहा था ; क्योंकि तुम लोग विराट के भवन में बार क्षत्रिय के अयाग्य एक साल तक सेवकों का काम करते रहे हो । भीमसेन जो विराट के घर में रसोई का काम करके चूर-चूर हो जाते थे सो मेरे बल का ही फल था । तुमने भी नपुंसक का वेष बनाकर, चोटी रखाकर, कुमारी उत्तरा को नाचने-गाने की तालीम दी है । क्षत्रिय लोग क्षत्रिय को ऐसा ही दण्ड देते हैं । मैं तुम्हारे या वासुदेव के डर से कभी राज्य न दूँगा । तुम केशव को साथ लेकर युद्ध की तैयारी करो । माया, इन्द्रजाल, कुहक या अन्य प्रकार की विभीषिका आदि बातें युद्ध में हथियारबन्द पुरुष को कभी नहीं डरा सकतीं । हज़ारों वासुदेव और सैकड़ों अर्जुन भी मेरे सामने ठहर नहीं सकते । वे मेरे अचूक बाणों की चोट न सह सकने के कारण इधर-उधर भाग खड़े होंगे । तुम चाहे भीष्म से युद्ध करो, चाहे सिर की टकर से पहाड़ तोड़ डालो और चाहे हाथों के सहारे अपार सेना-समुद्र के पार जानें की चेष्टा करा, लेकिन मेरे सामने आने पर जीते न बचोगे । हे कुन्ती के पुत्र, मेरी सेना समुद्र के समान है । उसमें कृपाचार्य महामीन, विविंशति महासर्प, भीष्म वेग, द्रोण महाप्राह, कर्ण तिमिङ्गिल, शल्य भवैर, काम्बोज बड़वानल, बृहद्बल उबाल (तरङ्ग), भूरिश्रवा तिमि-तुल्य, युयुत्सु और दुर्मर्षण जल, भगदत्त आँधी (तूफान), श्रुतायु, कृतवर्मा और दुःशासन महाप्रवाह, सुपेण, शल और विचित्र शस्त्र नाग और नक, जयद्रथ पर्वत, पुरुमित्र गहराई और शकुनि प्रपात हैं । तुम जब शस्त्रप्रवाह से भरे इस अपार समुद्र में उतरोगे—जब तुम्हारे भाई-बन्धु मारे जायेंगे और तुम्हारा पौरुष शिथिल होगा, तब तुम्हें बहुत पछतावा होगा । स्वर्ग से भ्रष्ट अशुद्ध पापी की तरह तुम्हारा मन राज्य पाने की आशा को छोड़ देगा । जिसने तप नहीं किया वह जैसे स्वर्ग को नहीं पा सकता वैसे ही तुम्हें राज्य मिलना भी अत्यन्त कठिन और असम्भव है ।

४३

एक सौ बासठ अध्याय

भीमसेन, युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण का प्रत्युत्तर

सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा—महाराज, क्रोधित सौंप के समान अर्जुन को वाक्य-बाणों से पीड़ा पहुँचाते हुए उलूक ने इस तरह सँदेशा कह सुनाया । पाण्डव लोग पहले से ही क्रोधित

हो रहे थे, इस समय दुर्योधन का सँदेशा सुनकर उनके क्रोध की सीमा नहीं रही। सभी मारे क्रोध के अपने आसनों से उठ खड़े हुए, हाथ मलने और क्रोधित साँप की तरह एक दूसरे के मुख की ओर ताकने लगें। क्रोधित साँप की तरह साँसें ले रहे भीमसेन सिर झुकाये, लाल-लाल आँखें किये, टेढ़ी दृष्टि से शकुनि के बेटे उलूक की ओर देखने लगे। केशव ने भीमसेन को क्रोध से अत्यन्त विह्वल देख मुसकाकर कहा—“हे उलूक, तुम जल्दी जाकर दुर्योधन से कहो कि हम उनकी बातें सुनकर उनका मतलब समझ गये। जो उनकी इच्छा है उसी के अनुसार काम होगा।” अब श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिर की ओर देखने लगें।

उलूक ने सृञ्जयगण, श्रीकृष्ण, पुत्रों-सहित राजा द्रुपद, राजा विराट और अन्य राजाओं के सामने अर्जुन से दुर्योधन के वाण-सदृश तीखे वचन कहे। इसके बाद श्रीकृष्ण और भीमसेन १० आदि को भी उसने वे वचन सुनाये जो उनसे कहने के लिए दुर्योधन ने कहे थे। क्रुद्ध विपैले साँप के समान उत्तेजित हो रहे अर्जुन उसके भयङ्कर पापमय वचन सुनकर बहुत ही विगड़ और अपने माथे का पसीना पोंछने लगे। महारथी पाण्डवों की सभा में स्थित सब लोग अर्जुन की वह दशा देखकर क्रोध से अधीर हो उठे। महात्मा वासुदेव और अर्जुन के लिए दुर्योधन ने जिन



आक्षेपमय शब्दों का प्रयोग किया था उन्हें सुनकर उस सभा के सब शूरवीर क्रोध से जल उठे। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, महारथी सात्यकि, केकय देश के पाँचों राजकुमार, राजस घटोत्कच, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, धृष्टकेतु, पराक्रमी भीमसेन और महारथी नकुल-सहदेव की आँखें क्रोध के मारे लाल हो गईं। वे सब लाल चन्दन लगे और बजुल्ला आदि से सुशोभित हाथ उठाकर आसनों से उठ खड़े हुए और क्रोध के मारे ओठ चाटते हुए दाँत पीसने लगे।

उन सबके आकार और भाव को जाननेवाले भीमसेन क्रोध के मारे आग के समान लाल होकर वेग से खड़े हो गये और आँखें निकालकर दाँत कटकटाते तथा

हाथ मलते हुए कहने लगें—रं मूर्ख कैतव्य, दुर्योधन ने हमें कमजोर समझकर भड़काने के लिए २० जो वचन कहे उन्हें हमने सुन लिया। सुन मन्दमति, मैं जो कहता हूँ उसे अपने बाप शकुनि,

दुरात्मा सूतपुत्र कर्ण और अन्य राजाओं के सामने दुर्योधन से कहना कि अरे दुष्ट, हम अपने बड़े भाई की प्रसन्नता के खयाल से आज तक तेरे बुरे व्यवहारों को सहते रहे; इसे तू अपना सौभाग्य तो समझता नहीं और हमें असमर्थ मानता है। बुद्धिमान् महात्मा धर्मराज ने वंश की भलाई के लिए शान्ति स्थापित करने की इच्छा से वासुदेव को तेरे पास भेजा, पर तूने उनका कहना भी न माना। तेरे सिर पर मौत सवार है। कल सवेरे युद्ध छिड़ेगा। मैंने तुझे और तेरे भाइयों को मारने की प्रतिज्ञा की है। अरे पापी, मैं अपनी प्रतिज्ञा ज़रूर पूरी करूँगा। तू इसमें तनिक भी सन्देह न कर। समुद्र चाहे अपनी मर्यादा को छोड़ दे, पर्वत चाहे फट जायें, मगर मेरी प्रतिज्ञा कभी भूठ न होगी। यदि यमराज, कुबेर या साक्षान् रुद्र भी तेरी सहायता करें, तो भी पाण्डव लोग अपनी प्रतिज्ञाओं के अनुसार काम किये बिना न रहेंगे। मैं जी भरकर दुःशासन का खून पिऊँगा। उस समय कोई भी क्षत्रिय, साक्षान् भोष्म की सहायता लेकर, अगर मुझे रोकने आवेगा तो मैं उसे मारे बिना नहीं छोड़ूँगा। मैं क्रम खाकर कहता हूँ कि क्षत्रियों के बीच मैंने जो वचन कहे थे उन्हें मैं ज़रूर पूर्ण करूँगा।

भीमसेन के ये वचन सुनकर असह्यशील सहदेव ने भी क्रोध से आँखें लाल करके वीर सैनिकों के सामने शूरवीरों के समान वचन कहे—अरे पापी उलूक ! सुन, अपने पापी ३० वाप शकुनि से कहना कि तेरे साथ अगर राजा धृतराष्ट्र का सम्बन्ध न होता तो हम सब कुरु-वंशियों में यह फूट और विरोध कभी न होता। तू बड़ा पापी और कुलघातक है। धृतराष्ट्र के कुल और संसार के विनाश के लिए ही तू साक्षान् वीर और पाप का अवतार उत्पन्न हुआ है। हे उलूक, तेरा पापी बाप जन्म से ही हम लोगों के साथ बुराई और उग्र व्यवहार करता आता है। अब मैं उस शत्रुता का अन्त कर दूँगा। पहले तुझे तेरे बाप के सामने ही मारूँगा; उसके बाद सब क्षत्रिय सैनिकों के सामने उस दुष्ट शकुनि की हत्या करूँगा।

भीमसेन और सहदेव के कह चुकने पर अर्जुन ने तनिक मुसकाकर भीमसेन से कहा—हे वीर, जिन लोगों के साथ आपकी शत्रुता है वे यहाँ पर मौजूद नहीं हैं। वे मौत के फन्दे में फँसे होने पर भी इस समय अपने घरों में आराम से हैं। दूत अपने मालिक की बात ही कहता है। इसलिए उलूक को कुछ कठोर वचन कहना ठीक नहीं। भयङ्कर पराक्रमवाले भीमसेन से यों कहकर अर्जुन ने धृष्टद्युम्न आदि अपने वीर मित्रों से कहा—आप लोगों ने उस दुर्योधन के वचन, खासकर वे वचन जो उसने मेरा और वासुदेव का तिरस्कार करके कहे हैं, सुन लिये। ४० हमारा हितैषी होने के कारण उन वचनों को सुनकर आप लोग क्रोध से अधीर हो उठे हैं। मैं वासुदेव के प्रभाव और आप लोगों की सहायता से सब राजाओं और क्षत्रियों को कुछ भी नहीं गिनता। मैं आप लोगों से अनुमति लेकर दुर्योधन को उसके वाक्यों का उत्तर उलूक के द्वारा भेजता हूँ। हे उलूक, तुम दुर्योधन से कहना कि अर्जुन ने कहा है—तुमने अपने मुँह अपनी

बड़ाई करके जो दुर्वचन कहे हैं उनका उत्तर मैं कल युद्धभूमि में गाण्डीव धनुष के द्वारा ही दूँगा । ऐसी बातों का जवाब ऐसी ही बातों से देना वीरों का नहीं, कायरों का काम है ।

अर्जुन का यह उत्तर सुनकर सब राजाओं को बड़ा अचरज हुआ । वे उनकी बड़ाई करने लगे । फिर क्रोध से लाल आँखें करके, बारम्बार साँस लेंते और ओठ चाटते हुए, श्रीकृष्ण ५० और भाइयों की ओर देखकर, हाथ उठाकर युधिष्ठिर ने कहा—हे उलूक, जो राजा अपने को तुच्छ समझ लेता है वह श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता । इसलिए दुर्योधन से कहने के वास्ते मैं जो उनकी बातों का उत्तर देता हूँ उसे सुनो । हे उलूक, तुम कुरुभमा में जाकर, सब सभासदों को उनकी अवस्था के अनुसार मेरी ओर से सम्मानित करके, कृतघ्न दुर्मति कुलवातक और वैर-विरोध के अवतार दुर्योधन से कहना कि हे पापरूप, तुम पाण्डवों के साथ सदा से नीच और क्रूर व्यवहार करते आ रहे हो । जो पुरुष बेखटके अपनी प्रतिज्ञा का पालन करता हुआ अपने बल-वृत्ते पर शत्रुओं को युद्ध के लिए ललकारता है वही सच्चा क्षत्रिय है । हे कुलकलङ्क, तुम वैसे ही क्षत्रिय की तरह हमें युद्ध के लिए ललकारो । माननीय और अमाननीय लोगों को आगं करके युद्ध के लिए ललकारना ठीक नहीं । अपने और अपने भृत्य-सहचरों के बल-वृत्ते पर युद्ध के लिए पाण्डवों को ललकारो और क्षत्रिय के योग्य काम करो । जो पुरुष आप असमर्थ होकर दूसरों के भरोसे पर शत्रु से भिड़ना चाहता है वही हिजड़ा है । तुम पराये बल-वृत्ते पर अपने को बहुत कुछ समझते हो । इस कारण तुम ऐसे अशक्त का हम ऐसे बलवानों के आगे गरजना और हमें बुरा-भला कहकर युद्ध के लिए ललकारना बिलकुल कायरपन है ।

अब श्रीकृष्ण ने कहा—हे उलूक, इसके उपरान्त तुम दुर्योधन से मेरे ये वचन कहना कि हे दुर्योधन, सबेरे ही युद्ध आरम्भ होगा । उसमें तुम अपना बल दिखाकर अपनी मर्दानगी साबित करना । हे दुर्मति, हे मूढ़, तुम यही सोचकर नहीं डरते कि श्रीकृष्ण खुद युद्ध नहीं करेंगे, अर्जुन का रथ हाँकेंगे । मैं चाहूँ तो क्रुद्ध होकर दम भर में तुम्हारे दल के सब राजाओं को, आग जैसे घास के ढेर को जला देती है वैसे ही, नष्ट कर सकता हूँ । यह निश्चय समझो कि अन्त को तुम्हारे दल का कोई भी राजा जीता न बचेगा । मैं युधिष्ठिर की आज्ञा ६० से वीर अर्जुन को प्रसन्न करने के लिए उनका रथ हाँकूँगा । याद रखना, जो तुम तीनों लोकों में भागे-भागें फिरोगे, या पाताल में भी घुस जाओगें तो तुमको सबेरे वहाँ भी अर्जुन का रथ देख पड़ेगा । तुम भीमसेन की प्रतिज्ञा को कोरी बकवास समझते हो, यह तुम्हारी भूल है । तुम समझ लो कि भीमसेन दुःशासन का रक्त पीकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके । तुम सदा से प्रतिकूल और कठोर वचन बोलते आ रहे हो; किन्तु अर्जुन, भीमसेन, युधिष्ठिर, ६३ नकुल या सहदेव, कोई भी तुम्हें कुछ नहीं समझता ।

एक सौ तिरसठ अध्याय

उलूक का दुर्योधन के पास लौटकर जाना

सञ्जय कहते हैं—महाराज, दुर्योधन ने अर्जुन के लिए जो कठोर वचन कहला भेजे थे उन्हें उलूक के मुँह से सुनकर अर्जुन की आँखें लाल हो आईं। वे टेढ़ी नज़र से उलूक की ओर देखने लगे। फिर वासुदेव की ओर देखकर और उलूक का हाथ पकड़कर अर्जुन ने कहा—तुम दुर्योधन से कहना कि जो मनुष्य अपने बल पर भरोसा करके निडर होकर शत्रुओं को युद्ध के लिए ललकारता और उनसे भिड़ जाता है वही मर्द है। जो अधम क्षत्रिय दूसरों के बल-भरोसे पर शत्रु को युद्ध के लिए बुलाता है वह असमर्थ होने के कारण संसार में अधम गिना जाता है। हे दुर्योधन, तुम पराये बल पर अपने को बलवान् समझते हो और खुद कायर असमर्थ होकर भी दूसरों को नपुंसक कहते हो। सब राजाओं का हित चाहनेवाले, जितेन्द्रिय, माननीय, बुद्धिमान्, बूढ़े पितामह भीष्म की मरण की दीक्षा देकर (अर्थात् सेनापति बनाकर) तुम इस तरह बढ़-बढ़कर बातें कर रहे हो। हे दुर्मति, हे कुल-वातक ! तुम्हारे जी का भाव हम समझ गये हैं। तुमने सोचा है कि पाण्डव लोग दया और स्नेह के मारे वृद्ध पितामह की हत्या नहीं करेंगे। यही समझकर तुमने उन्हें युद्ध में आगे कर दिया है। किन्तु हे दुर्योधन, जिन भीष्म के बल पर तुम शेखी मार रहे हो उन्हें सब क्षत्रिय वीरों के सामने सबसे पहले मैं मारूँगा। हे उलूक, तुम जाकर कौरवों के सामने दुर्योधन से कहना कि तुमने जो सबेरे युद्ध आरम्भ होने की बात कही है वह अर्जुन का मञ्जूर है।

कौरव-सभा के बीच कौरवों का प्रसन्न करते हुए महापराक्रमी भीष्म ने दुर्योधन को सुनाकर कहा है—“हे उलूक, तुम पाण्डवों से जाकर मेरा मन्देश कहो कि सृञ्जय-सेना और शास्त्रेय सेना को मारने का ज़िम्मा मैंने लिया है। मैं द्रोणाचार्य के बिना भी सारी सेना अथवा जगत् को नष्ट कर सकता हूँ। हे दुर्योधन, तुम पाण्डवों से मत डरो।” भीष्म के ये वचन सुनने से ही तुम समझ रहे हो कि पाण्डव विपत्ति में पड़ गये और तुम्हें राज्य मिल गया। इसी से हमें तुच्छ समझकर, ऐंठ में आकर, तुम अपने ऊपर आई हुई विपत्ति को देखकर भी नहीं देखते। हे दुर्योधन, मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि तुम सब लोगों के सामने सबसे पहले ही कौरवों के एकमात्र आश्रय वृद्ध पितामह को मारकर रथ से गिरा दूँगा। इसलिए तुम सूर्योदय के बाद ध्वजा लगे रथ पर बैठकर, अपनी सारी सेना साथ लेकर, यत्न के साथ वृद्ध पितामह की रक्षा करना। कल जब तुम पितामह के शरीर को मेरे तीक्ष्ण बाणों से घायल और जर्जर देखोगे तभी तुम्हें मालूम होगा कि मेरा यह कहना सच था या कोरी ढींग थी। और, कुरु-सभा के बीच मैं कुपित भीमसेन ने तुम्हारे भाई अदूर-

दर्शी, अधर्मी, नित्य वैर का भाव रखनेवाले, पापी, पुरुषाभिमानी दुःशासन के बारे में जो प्रतिज्ञा की थी, उसे भी तुम शीघ्र ही सफल होते देखोगे ।

हे दुर्योधन ! तुम भी अपने अभिमान, क्रोध, कठोरता, निष्ठुरता, आत्मसम्भावना (अपने को सबसे बढ़कर समझना), नीचता, क्रूरता, धर्मद्वेष, अधर्म, औरों की निन्दा, बड़े-बूढ़ों की बात न मानना, कर्ण आदि के विजय पाने की आशा पर विश्वास, अपनी सेना अधिक देखकर अकड़ना और सारी अनीति आदि दुर्गुणों का तीव्र फल देखोगे । वासुदेव मेरे सहायक हैं । हे नराधम ! मैं जब क्रोधित हूँ तब तुम अपने जीवन की या राज्य पाने की आशा किस तरह कर रहे हो ? जब तुम भीष्म, द्रोणाचार्य और सूतपुत्र कर्ण को वीरों की तरह संग्राम में मरते देखोगे तब तुम्हें अपने जीवन, अपने पुत्रों के जीवन और राज्य-लाभ की ओर से निराशा हो जायगी । हे दुर्योधन, तुम अपने भाइयों और पुत्रों के मरने की खबर सुनकर और खुद भी भीमसेन के हाथ से मार जाकर मौत की सेज पर अपने कुकर्मों को याद करके पछताओगे । हे उलूक, मैं कभी किसी बारे में दुबारा प्रतिज्ञा नहीं करता । मैं सच कहता हूँ, जो कुछ मैंने कहा है वह सब सत्य करके दिखा दूँगा ।

युधिष्ठिर ने कहा—उलूक, तुम जाकर मेरी ओर से कहना कि हे दुर्योधन, तुम अपने चरित्र के समान मेरे चरित्र को मत समझो । झूठ और सच में जितना अन्तर है उतना ही अन्तर तुम्हारे और मेरे चाल-चलन में है । मैं तो चींटी और कीड़े-मकोड़ों का भी अनिष्ट करना नहीं चाहता । फिर मैं जाति-वध ऐसा भयङ्कर काम कैसे करना चाहता ? इसी लिए मैंने पहले तुमसे सिर्फ पाँच गाँव माँगे थे कि तुम्हारी और सारे कुल की हत्या न करनी पड़े । किन्तु तुम अपनी मूर्खता के कारण राज्य के लोभ के वश होकर अपनी बड़ाई, और बढ़-बढ़कर बाते, करते हो । तुमने वासुदेव की हित की बाते भी नहीं मानीं । अब बहुत कहना व्यर्थ है, अपनी इच्छा पूरी करने के लिए भाई-बन्धुओं से युद्ध करो । हे उलूक, तुम मेरा अहित करने में तत्पर दुर्योधन से कहना कि हे दुर्योधन, तुम्हारी बाते सुनकर मैं तुम्हारा मतलब समझ गया । तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही काम होगा ।

अब राजकुमार भीमसेन ने कहा—हे उलूक ! तुम पापी, दुर्बुद्धि, शठ, कपट-चतुर, दुराचारी दुर्योधन से कहना कि तुम या तो हस्तिनापुर के महलों में ही रहोगे या मरकर गिद्धों के पेट में जाओगे । मैं कसम खाकर कहता हूँ कि मैं कुरु-सभा में जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ उसे ज़रूर पूर्ण करूँगा । समर में दुःशासन को मारकर उसका रक्त पियूँगा और तुम्हारी जाँघ तोड़कर तुम्हारे और भाइयों की भी हत्या करूँगा । अरे मूढ़, मैं धृतराष्ट्र के सब बेटों की और अभिमन्यु सब राजपुत्रों की साक्षात् मृत्यु हूँ । अधिक क्या कहूँ, मैं तुमको तुम्हारे भाइयों सहित मारकर धर्मराज के सामने तुम्हारे सिर पर पैर रखूँगा ।

नकुल ने कहा—हे उलूक, तुम दुर्योधन से कहना कि मैंने तुम्हारा सँदेशा सुन लिया; जैसा तुमने कहा है वैसा ही मैं सब काम करूँगा। सहदेव ने कहा—हे उलूक, तुम दुर्योधन से कहना कि हे धार्तराष्ट्र, तुम जो चाहते हो वही होगा। इस समय तुम जैसे खुशी से अपने मुँह अपनी बड़ाई करते हुए कड़वी बातें कह रहे हो वैसे ही पुत्र, जातिवाले, भाई और अनुचर आदि के साथ मरते समय तुम्हें शोक के समुद्र में डूबना पड़ेगा। बूढ़े राजा विराट और द्रुपद ने कहा—सज्जनों की सेवा करना हमें सदा पसन्द है। कल यह बात प्रकट हो जायगी कि हम दास हैं या प्रभु। सबका पौरुष भी कल प्रकट हो जायगा। शिखण्डी ने कहा—हे उलूक, सदा पाप-विचार में डूबे हुए दुर्योधन से तुम कहना कि मैं युद्ध में जो भयानक और असाध्य काम करूँगा वह तुम प्रत्यक्ष देखोगे। जिनके बल पर तुम युद्ध में विजय का निश्चय किये हुए हो उन तुम्हारे बूढ़े पितामह को मारकर मैं रथ से गिराऊँगा। विधाता ने भीष्म को मारने के लिए ही मुझे पैदा किया है। इसलिए मैं सब वीरों के सामने ही महात्मा भीष्म को मारूँगा। धृष्टद्युम्न ने कहा—तुम मेरी आज्ञा के अनुसार दुर्योधन से कहना कि मैं युद्ध में अनुचरों-बान्धवों-सहित द्रोणाचार्य को अवश्य मारूँगा।

४०

सबके पीछे युधिष्ठिर ने करुणा के भाव से कहा—हे उलूक, तुम दुर्योधन से कहना कि भाइयों को मारने की मेरी विलकुल इच्छा नहीं थी; किन्तु तुम्हारी दुर्बुद्धि से वही होगा। धृष्टद्युम्न आदि प्रधान पुरुषों ने जो प्रतिज्ञाएँ की हैं, उनका अनुमोदन मुझे लाचार होकर करना पड़ेगा। उलूक, अब तुम जाओ, अथवा यहाँ रहना चाहो तो रह सकते हो। हम तुम्हारे हितैषी बान्धव हैं।

अब युधिष्ठिर से अनुमति लेकर उलूक चल दिया। उसने दुर्योधन के पास जाकर उससे वासुदेव, भीमसेन, धर्मराज, नकुल, सहदेव, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और अर्जुन के उत्तर तथा पौरुष आदि का हाल विस्तार के साथ कहा। उलूक के



५०

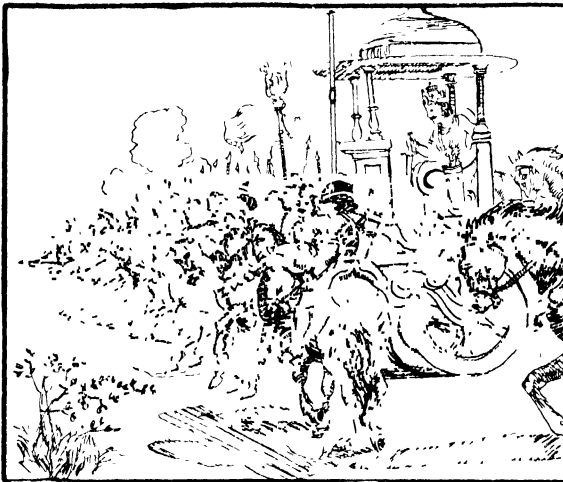
मुँह से सब हाल सुनकर दुर्योधन ने शकुनि, दुःशासन और कर्ण से कहा—तुम लोग सब राजाओं की, अपनी और मित्रों की सेना को आज्ञा दे दो कि वे सूर्योदय के पहले ही युद्ध के लिए तैयार

रहें। कर्ण ने उसी समय राजा की यह आज्ञा दूतों के हाथ सब सेना के पास भेज दी। दूत लोग रथ, ऊँट, घोड़े, खरूचर आदि पर बैठकर, छावनी भर में घूम-घूमकर सब राजाओं से (७) कहने लगे कि आप लोग सूर्योदय के पहले ही युद्ध की तैयारी कर दें।

एक सौ चौंसठ अध्याय

युधिष्ठिर की युद्ध की तैयारी

सञ्जय कहते हैं—हे भरतश्रेष्ठ, इधर उलूक के जानें पर युधिष्ठिर ने भीमसेन आदि महारथी सेनापतियों के अधीन अपनी सेना को युद्ध की तैयारी के लिए आज्ञा दे दी। उस



समय सेना की टुकड़ियों समुद्र की लहरों के समान जान पड़ने लगीं। अग्निवर्ण धृष्टशुम्भ सेना के अगले भाग में द्रोणाचार्य से युद्ध करने के लिए स्थिर हुए। धृष्टशुम्भ ने बल और उत्साह के अनुसार रथियों को उनके कर्तव्य का उपदेश किया। उन्होंने द्वन्द्वयुद्ध के लिए जोड़ियाँ बना दीं। कर्ण से अर्जुन का, दुर्योधन से भीमसेन का, शल्य से धृष्टकेतु का, कृपाचार्य से उत्तमौजा का, अश्वत्थामा से

नकुल का, कृतवर्मा से शैव्य का, जयद्रथ से मात्यकि का, भोष्म से शिखण्डी का, शकुनि से सहदेव का, शल से चेकितान का, त्रिगर्त-गण के साथ द्रौपदी के पाँचों बेटों का, वृषसेन और अन्य राजाओं के साथ अभिमन्यु का युद्ध निश्चित हुआ। धृष्टशुम्भ अभिमन्यु को अर्जुन से भी बढ़कर समझते थे। सेनापति बुद्धिमान् धृष्टशुम्भ ने इस तरह अलग-अलग सेनाओं का विभाग करके अपने हिस्से में द्रोणाचार्य को रक्खा। युद्ध के लिए इस तरह निश्चय करके, व्यूह-रचना और सैन्य-संस्थापन करके, पाण्डवों की विजय की

१२ इच्छा से धृष्टशुम्भ युद्ध-भूमि में तैयार हो रहे।

रथातिरथसंख्यानपर्व एक सौ पैंसठ अध्याय

पितामह भीष्म और दुर्योधन का संवाद

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, महावीर अर्जुन जब युद्ध में भीष्म के वध की प्रतिज्ञा कर चुके तब मन्दमति दुर्योधन आदि मेरे पुत्रों ने क्या किया ? मैं पिता भीष्म को युद्ध में वासुदेव की सहायता से अर्जुन के बाणों से मरा पड़ा सा देख रहा हूँ । महा बुद्धिमान् भीष्म ने अर्जुन की यह प्रतिज्ञा सुनकर क्या कहा ? कौरव-श्रेष्ठ भीष्म ने सेनापति होकर आगे क्या यत्न किया ?

सञ्जय महातेजस्वी कुरुवृद्ध भीष्म की बातें धृतराष्ट्र को याँ सुनाने लगे कि राजन्, महा-पराक्रमी भीष्म ने सेनापति का पद स्वीकार करके दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए कहा—हे दुर्योधन, आज मैं देवताओं के सेनापति शक्तिपाणि कुमार को नमस्कार करके तुम्हारा सेनापति होता हूँ । मैं सेना के सञ्चालन का जानकार और तरह-तरह के व्यूहों की रचना में निपुण हूँ । वृत्ति लेकर काम करनेवाले और अवैतनिक, दोनों तरह के सिपाहियों को काम में लगाना या उनसे काम लेना मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ । हे कुरुनन्दन ! मैं बृहस्पति के समान चढ़ाई, युद्ध और शत्रुओं के अस्त्रों को निष्फल करना पूर्ण रूप से जानता हूँ । देवता, गन्धर्व और मनुष्य, इन तीनों की व्यूह-रचना मुझे मालूम है । मैं अपने व्यूहों की सहायता से पाण्डवों को भ्रम में डालकर शास्त्र-विधि के अनुसार तुम्हारी सेना की रक्षा और शत्रुसेना से युद्ध करूँगा । अब तुम सब तरह की चिन्ता मन से हटा दो ।

११

दुर्योधन ने कहा—हे पितामह, आपको सेनापति पाकर देवताओं और दैत्यों से भी मैं नहीं डरता । आप और द्रोण मेरे पक्ष में हैं, इसलिए मैं अवश्य विजय पाऊँगा । मैं आपकी सहायता से देवताओं का राज्य भी प्राप्त कर सकता हूँ । हे सेनापति, आप शत्रुओं की और हमारी सब बातें जानते हैं । मैं अपने और शत्रुपक्ष के रथी और अतिरथी योद्धाओं की संख्या सुनना चाहता हूँ । कृपा करके कहिए ।

पितामह ने कहा—हे दुर्योधन, तुम्हारी सेना में हजारों लाखों रथी और अनेक अतिरथी हैं । उनकी संख्या सुनो । राजन् तुम, दुःशासन आदि भाइयों सहित, सबसे श्रेष्ठ रथी हो । तुम्हारे सब भाई वार करना और उससे बचना बखूबी जानते हैं । अस्त्र-विद्या में सभी द्रोणाचार्य के प्रिय शिष्य हैं और रथ या हाथी पर बैठकर गदा, प्रास, ढाल-तलवार आदि शस्त्रों का युद्ध कर सकते हैं । वे शत्रुसेना को रोक सकते हैं, उस पर प्रहार कर सकते हैं और अपनी सेना को सँभाल सकते हैं । उनका पाण्डवों से घोर वैमनस्य है । वे लड़ाके वीर पाञ्चालों की सेना को मारेंगे ।

२०

मैं तुम्हारी सेना का सम्भालक हूँ। मैं पाण्डवों को तुच्छ समझकर शत्रु-सेना का नाश करूँगा। मेरे गुणों को तुम जानते ही हो। अपने मुँह से अपने गुणों का वर्णन करना ठीक नहीं। भोजपति कृतवर्मा श्रेष्ठ योद्धा और अतिरथी हैं। वे निस्सन्देह तुम्हारा कार्य सिद्ध करेंगे। बड़े-बड़े योद्धा उन पर आक्रमण नहीं कर सकते। उनका बाण बहुत दूर तक जाता है और उनका धनुष भी पक्का है। इन्द्र जैसे दानवों की सेना को मारते हैं वैसे ही कृतवर्मा पाण्डवों की सेना का विनाश करेंगे। मद्राज शल्य भी अतिरथी हैं। वे हर युद्ध में श्रीकृष्ण की बराबरी का दावा रखते हैं। अपने सगे भानजों को छोड़कर वे तुम्हारे पक्ष में आये हैं। वे समुद्र की लहरों के समान शत्रुओं को बाण-वर्षा में बहाते हुए पाण्डवों से विकट युद्ध करेंगे। तुम्हारे परम हितचिन्तक मित्र और अस्त्रविद्या में निपुण भूरिश्रवा भी अतिरथी हैं। वे रथों के रक्षकों के भी समूह की रक्षा करनेवाले बड़े वीर हैं और युद्ध में शत्रुओं की बहुत सी सेना मार गिरावेंगे। सिन्धुराज जयद्रथ रथी से दृढ़ शक्ति रखते हैं। वे भी पाण्डवों से घोर युद्ध करेंगे। वन में द्रौपदी-हरण करने पर पाण्डवों ने जयद्रथ को जीतकर बड़ा अपमान किया था। जयद्रथ ने घोर तप करके महादेव से दुर्लभ वर प्राप्त किया है। वे भी उस पिछले वर को याद करके पाण्डवों से भयङ्कर युद्ध करेंगे।

एक सौ छठा अध्याय

दुर्योधन की सेना के और भी रथी, अतिरथी आदि का वर्णन

भीष्म पितामह ने कहा—राजन्, काम्बोज देश के राजा सुदक्षिण एकरथ हैं। वे तुम्हारे लिए शत्रुओं से विकट युद्ध करेंगे। उस समय कौरव लोग युद्ध के मैदान में उन्हें, वासुदेव के समान, पराक्रम प्रकट करते देखेंगे। उनके साथ काम्बोज देश के, बहुत तेज़ चलनेवाले, विचित्र शस्त्रों से युद्ध करनेवाले दुर्धर्ष वीर हैं। माहिष्मती पुरी के राजा नील रथी हैं। वे बहुत से वीरों के साथ पाण्डवों से युद्ध करेंगे। सहदेव के साथ उनकी पुरानी शत्रुता है। इस कारण इस समय वे तुम्हारा कार्य सिद्ध करने के लिए विशेष यत्न करेंगे। महाराज, जैसे क्रीड़ा कर रहे यूथपति दो गजराज हाथियों के झुण्ड में विचरते हैं, वैसे ही महापराक्रमी अवन्ती देश के राजा विन्द और अनुविन्द युद्धभूमि में विचरकर गदा, प्रास, खड्ग, नाराच, तोमर आदि शस्त्रों से पाण्डवों की सेना का विनाश करेंगे। त्रिगर्त देश के पाँच राजकुमार विराट नगर में गांधन-हरण के समय से पाण्डवों के शत्रु हो गये हैं। हे राजेन्द्र, जैसे मगर आदि जलचर जीव तरङ्गयुक्त गङ्गाजी के प्रवाह को मथते हैं, वैसे ही वे पाण्डवों की सेना को दल-मल डालेंगे। वे पाँचों रथी हैं। उनमें सत्यरथ ही मुख्य है। हे भारत, भीमसेन और अर्जुन ने

दिविजय के समय उनका जो अप्रिय किया है उसे याद करके इस समय वे खूब युद्ध करेंगे और पाण्डवों के प्रधान-प्रधान वीरों को मारेंगे।

तुम्हारा नवयुवक पुत्र लक्ष्मण और दुःशासन का पुत्र, ये दोनों भी युद्ध से विमुख न होनेवाले, युद्धनिपुण, वेगशाली और सेना-सञ्चालन में चतुर रथी हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ, एकरथ महाराज दण्डधार अपनी सेना साथ लेकर युद्ध करेंगे। अयोध्या के राजा महाबली पराक्रमी बृहद्रथ रथी हैं। वे अपने बन्धुओं का हर्ष बढ़ाते हुए तुम्हारे हित के लिए घोर युद्ध करेंगे। महर्षि गौतम के वीर्य से, अजेय कार्तिकेय की तरह, शरस्त्व से उत्पन्न होनेवाले कृपाचार्य महारथी हैं। वे तुम्हारे लिए प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करेंगे और, अग्नि की तरह, समर में विविध धनुष आदि शस्त्र धारण करनेवाले वीरों की सेना का नाश करेंगे।

२२

एक सौ सड़सठ अध्याय

अन्य रथी आदि का वर्णन

पितामह ने कहा—राजन, तुम्हारे मामा शकुनि एकरथ हैं। उन्होंने पाण्डवों से वैर पैदा किया है, इसलिए उनके साथ कठिन युद्ध करेंगे। उनके सैनिक वायुवेग से हमला करनेवाले और जमकर युद्ध करनेवाले हैं। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा महारथी हैं। वे धनुष-बाण से लड़नेवाले सब योद्धाओं में मुख्य, विचित्र युद्ध करनेवाले और शस्त्र का दृढ़ प्रहार करनेवाले हैं। उनके बाण भी अर्जुन के बाणों की तरह धनुष से लगातार निकलकर शत्रु-सेना पर बरसते हैं। उनके बल-वीर्य का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। वे चाहें तो तीनों लोकों को अस्त्र के प्रभाव से भस्म कर दें। उनमें ऋषियों का क्रोध, तेज और तप है। द्रोणाचार्य की कृपा से उन्होंने सब दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लिये हैं; किन्तु उनमें प्रधान दोष यह है कि जीवन उन्हें अत्यन्त प्रिय है। वे मरने से बहुत डरते हैं और इसी कारण युद्ध से जो चुराते हैं। इसी दोष के कारण उन्हें मैं रथी या अतिरथी कुछ नहीं समझता। पाण्डवों की और कौरवों की सेनाओं में अश्वत्थामा के समान पराक्रमी और युद्धनिपुण दूसरा नहीं है। वे एक ही रथ से देवताओं की सेना को भी मार सकते हैं। उनका शरीर ऐसा मोटा-ताड़ा और दृढ़ है कि वे एक हाथ मारकर पहाड़ों को भी फोड़ सकते हैं। महावीर अश्वत्थामा में असंख्य गुण हैं। वे युद्धस्थल में विचरते समय साक्षात् मृत्यु का अवतार जान पड़ते हैं। सिंहप्रोव महातेजस्वी अश्वत्थामा क्रोध के समय प्रलयकालीन अग्नि से प्रतीत होते हैं। वही इस महाभारत युद्ध को समाप्त करेंगे।

१०

अश्वत्थामा के पिता महातेजस्वी द्रोणाचार्य बूढ़े होने पर भी जवानों से बढ़कर हैं। इस युद्ध में वे भारी-भारी काम करेंगे। सेना रूपी ईधन में प्रज्वलित और अस्त्र-वेग की हवा से बड़े हुए अग्नि-तुल्य द्रोणाचार्य युद्ध में पाण्डवों की असंख्य सेना भस्म कर डालेंगे। पुरुषश्रेष्ठ भरद्वाजानन्दन द्रोणाचार्य सब महारथियों में श्रेष्ठ हैं। वे तुम्हारे हित के खयाल से अद्भुत और शत्रुओं के लिए भयङ्कर कर्म करेंगे। वे सब मूर्खाभिषिक्त चित्रियों के गुरु हैं। वे समर में सृज्यवंशियों को ज़रूर मारेंगे; किन्तु अर्जुन उनके प्रिय शिष्य हैं, इस कारण वे पराक्रमी अर्जुन के गुणों पर रीझकर उन्हें कभी न मारेंगे। महात्मा द्रोण सदा अर्जुन के गुणों की तारीफ़ किया करते हैं। वे अर्जुन को अपने बेटे अश्वत्थामा से भी अधिक गुणी और याददा समझते हैं। महारथी द्रोणाचार्य एक ही रथ से, दिव्य अस्त्रों के प्रभाव से, देवताओं, गन्धर्वों और मनुष्यों का संहार कर सकते हैं।

- राजन्, तुम्हारे पक्ष के राजसिंह पौरव को मैं महारथी समझता हूँ। आग जैसे सूखी २० घास के ढेर की जलाती है, वैसे ही वे पाञ्चाल-सेना को मारेंगे। बड़े बली एकरथ राजकुमार सत्यश्रवा भी युद्धभूमि में शत्रु-पक्ष को घटाते हुए विचरेंगे। कर्ण के पुत्र श्रेष्ठ रथी वृषसेन अपने युद्ध-कौशल और पौरुष से तुम्हारे शत्रुओं की सेना का नाश करेंगे। महारथी जलसन्ध जोवन का मोह छोड़कर पाण्डवों से लड़ेंगे। युद्ध-निपुण, पर-वीर-धाती, महाबाहु माधव हाथी पर या रथ पर बैठकर शत्रु-सेना को मारते-मारते अपने प्राण तक देने में पीछे न हटेंगे। मैं उन्हें रथी मानता हूँ। वे बल-पराक्रम में अद्वितीय और विचित्र युद्ध में निपुण हैं; वे निडर होकर तुम्हारे शत्रुओं से भयानक युद्ध करेंगे। हे दुर्योधन, वीर बाह्लीक अतिरथी हैं। वे कभी युद्ध से विमुख नहीं हुए। लड़ते समय युद्धभूमि में उनका रूप यमराज का सा भयङ्कर हो जाता है। महात्मा बाह्लीक रणभूमि में आँधी की तरह चलकर तुम्हारी शत्रु-सेना का संहार ३० करेंगे। राजन्, तुम्हारे सेनापति महारथी सत्यवान युद्ध में अद्भुत काम करेंगे। वे युद्ध को देखकर डरने का नाम भी नहीं जानते, बल्कि हँसकर उत्साह के साथ शत्रुसेना पर वार करते हैं; वे सहज ही शत्रु-संहार करके विजय के साथ घर को लौट आते हैं। उन्हें तुम शत्रु-सेना के बीच श्रेष्ठ वीर पुरुषों के योग्य काम करते देखोगे। क्रूर काम करनेवाला महारथी राक्षसराज अलम्बुष पाण्डवों के साथ अपने पुराने वैर को याद करके शत्रु-सेना का नाश करेगा। अलम्बुष सब राक्षसों में प्रधान, रथी, मायावी और वैर को कभी न भूलनेवाला है। हाथी की सवारी पर से लड़ने में अद्वितीय और रथ पर से युद्ध करने में निपुण प्रागज्योतिषपुर के राजा भगदत्त और अर्जुन का युद्ध बहुत दिन तक हो चुका है। अन्त को अपने मित्र इन्द्र के सम्मान की रक्षा के लिए भगदत्त ने अर्जुन से मित्रता करके सन्धि कर ली थी। वही युद्ध-विशारद भगदत्त इस समय, ३८ ऐरावत पर सवार इन्द्र की तरह, हाथी पर चढ़कर अर्जुन से लड़ेंगे।

एक सौ अड़सठ अध्याय

पितामह भीष्म और कर्ण का विवाद

पितामह ने कहा—हे कौरव, अचल और वृषक नाम के दोनों दुराध्व भाई रथी हैं। वे गान्धार-वीरों में मुख्य, बलवान्, तरुण, दर्शनीय, पुरुषसिंह तुम्हारे शत्रुओं को चौपट कर डालेंगे। हे कुरुराज ! पाण्डवों से लड़ने के लिए सदा तुम्हें उत्साहित करनेवाले, मूर्ख, निन्दक, रणकर्कश, कठोर, अपने मुँह अपनी बड़ाई करनेवाले, अभिमानी, नीच-प्रकृति और तुम्हारे मन्त्री, अगुआ, बन्धु, प्यारे सखा कर्ण को मैं पूरा रथी या अतिरथी कुछ नहीं समझता। स्वाभाविक कवच-कुण्डल पास न रहने से और अपने को भूठ-मूठ ब्राह्मण बताकर परशुरामजी से शाप पाने के कारण कर्ण को मैं अर्धरथी समझता हूँ। यह अर्जुन के सामने संग्राम में जाकर फिर जीता न बचेगा।

भीष्म के ये वचन सुनकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने कहा—पितामह, आपने कर्ण के बारे में जो कुछ कहा सो ठीक है। हर एक युद्ध में अभिमान दिखाकर कर्ण भाग खड़ा होता है। वह निन्दक और प्रमादवश हो जाने के कारण मेरी राय से भी अर्धरथी है।

सञ्जय कहते हैं कि ये बातें सुनकर कर्ण क्रोध से बेचैन हो उठा। वह आँखें निकालकर भीष्म से कहने लगा—पितामह, आप मुझसे अकारण द्वेष रखने के कारण हर घड़ी मुझ पर वाक्य-बाण बरसाया करते हैं। आप मुझे निकम्मे कायर की तरह समझकर सदा मेरा अपमान किया करते हैं। मैं दुर्योधन का खयाल करके आपकी सब बातें सह लेता हूँ। आप मुझे अर्धरथी कहते हैं, इसलिए सब लोग अर्धरथी ही मानकर मेरा अपमान करेंगे; क्योंकि सभी लोग जानते हैं कि भीष्म कभी भूठ नहीं बोलते। आप सदा कौरवों का अहित सोचा करते हैं, किन्तु राजा दुर्योधन इस बात को नहीं समझते। आप मेरे गुण (युद्धविद्या) के कारण मुझसे डाह करते हैं।



युद्ध के समय आपस में फूट डालने के लिए लोग इसी तरह निन्दा करके अपने विरोधी पटैत का तेज और उत्साह मिटाया करते हैं। अवस्था की अधिकता से, बाल पकने से, धन से या बन्धुओं के बहुत होने से क्षत्रिय महारथियों में नहीं गिना जा सकता। बल से क्षत्रिय, वेदज्ञान से ब्राह्मण, धन से वैश्य और अवस्था से शूद्र बड़े समझे जाते हैं। आप स्नेह और द्वेष के वश होकर अपनी इच्छा के अनुसार रथी और अतिरथी वीरों की ग़लत गिनती कर रहे हैं। हे दुर्योधन, आप सब बातों पर विशेष रूप से विचार करके अपना अनिष्ट चेतनेवाले इन दूषित-प्रकृति पितामह को त्याग दें। हे पुरुषसिंह, एक ही स्वामी के पुराने सैनिक भी अगर फूट जाते हैं तो फिर उन्हें मिलाना या सँभालना कठिन हो जाता है। फिर इस समय आपके यहाँ तो अनेक देशों से अनेक राजाओं की सेना आई है। वे सैनिक यदि ऐसी बातों के कारण फूट जायँगे तो बड़ी आफ़त हो जायगी; उन्हें अपने पक्ष में लाना असाध्य काम हो जायगा। मैं देखता हूँ कि आपके पक्ष के इन वीरों में परस्पर वैमनस्य बढ़ता और फूट का रङ्ग चढ़ता जा रहा है। खासकर भीष्म मुँह पर ही मेरा तेज मिटानेवाले कटु वचन कह रहे हैं। भीष्म रथी-अतिरथी-महारथी आदि का हाल क्या जानें ! कहाँ रथी-महारथी आदि की विज्ञता और कहाँ भीष्म !

राजन्, मैं अकेला पाण्डवों की सेना पर आक्रमण करूँगा और उसे रोकूँगा। जैसे सिंह को देखकर साँड़ भागते हैं वैसे ही युद्धभूमि में मुझको देखते ही पाण्डव और पाञ्चाल लोग भाग खड़े होंगे। मेरे बाण अचूक हैं। राजन् ! कहाँ युद्ध, मार-धाड़, सलाह आदि की बातें और कहाँ बूढ़े, मृत्यु के मुँह का कौर, बुद्धिहीन पितामह भीष्म ! मिथ्यादृष्टि के कारण भ्रम में पड़े हुए पितामह अकेले ही सारी पृथ्वी के वीरों से संग्राम कर सकने की डींग हाँका करते हैं। ये अपने सिवा और किसी को वीर या पुरुष ही नहीं समझते। बूढ़े की बात सुनने का शास्त्र में विधान होने पर भी अत्यन्त बूढ़ों की बात न सुननी चाहिए; क्योंकि वे सठिया जाते हैं, फिर से बालक-तुल्य नासमझ हो जाते हैं। हे नरेश, मैं ही अकेला पाण्डवों की सारी सेना को मारूँगा, किन्तु इस युद्ध में सेनापति होने के कारण विजय का सब यश और गौरव भीष्म को ही मिलेगा। इस कारण मैं भीष्म के जीते जी युद्ध न करूँगा। भीष्म के मरने पर सब महारथियों से मैं अकेला युद्ध करने को तैयार हूँ।

भीष्मजी ने कहा—हे राधा कं बेटे कर्ण, मुझे बहुत दिन से मालूम है कि कौरवों और
३० पाण्डवों के इस युद्ध में समुद्र-तुल्य शत्रुसेना से युद्ध करने का भार मेरे सिर आ पड़ेगा। इस रोमहर्षण संग्राम के समय मैं आपस की फूट या विरोध नहीं होने देना चाहता। इसी से तुम अब तक जीते देख पड़ते हो। हे सूतपुत्र ! मैं बूढ़ा हूँ, और मेरे आगे तुम बालक या नौजवान हो; तो भी मैं तुम्हारी युद्ध करने की श्रद्धा और जीवन की आशा मिटा सकता हूँ। पर इस समय ऐसा करना मैं नहीं चाहता। भगवान् परशुरामजी अपने सब दिव्य अस्त्रों का प्रयोग

करके भी मुझे विचलित नहीं कर सके, तब तुम भला मेरा क्या कर सकते हो ! रे नीच, कुल-घाती ! सज्जन पुरुष कभी अपने मुँह से अपनी बड़ाई या अपने गुणों का वर्णन नहीं करते । किन्तु तुम्हारी इन बातों से अत्यन्त उत्तेजना और सन्ताप पैदा होने के कारण मुझे अपने मुँह से तुमको अपने पराक्रम का कुछ परिचय देना पड़ता है । काशी-नरेश की कन्याओं के स्वयंवर में मैं अकेला गया और वहाँ आये हुए सब राजाओं को जीतकर उन कन्याओं को बलपूर्वक रथ पर बिठाकर ले आया । तुम ऐसे और तुमसे भी अधिक पराक्रमी और प्रसिद्ध योद्धा राजाओं को मैं युद्धभूमि में हरा चुका हूँ । हे कर्ण, मैं सच कहता हूँ, तुम्हारे ही कारण कौरवों ने अन्याय करके यह घोर विपत्ति अपने ऊपर बुलाई है । हे वैरनिष्ठ, तुम्हारे भी मरने का समय आ पहुँचा है । इस कारण सँभलकर युद्ध करना । सदा तुम जिन



अर्जुन की बराबरी का घमण्ड किया करते हो उनसे युद्ध करने का समय आ गया है । अब स्थिर होकर उनका सामना करना । हे दुर्मति, देखूँगा कि तुम इस युद्ध से कैसे जीते बचते हो !

इस प्रकार दोनों वीरों को परस्पर विवाद करते देख भगड़ा शान्त करने के लिए दुर्योधन ने कहा—हे पितामह, यह भारी युद्ध का समय है इसलिए मेरा खयाल करके आप वही कीजिए जिसमें मेरा भला हो । आप दोनों वीर मेरा बड़ा भारी कार्य सिद्ध करेंगे । अब आप मेरे शत्रु-पक्ष के रथी, अतिरथी आदि का वर्णन कीजिए; क्योंकि रात बीतते ही सबेरे युद्ध छिड़ जायगा । ४२

एक सौ उनहत्तर अध्याय

पाण्डव पक्ष के रथी, अतिरथी आदि का वर्णन

भीष्मजी ने कहा—राजन् ! तुम्हारे पक्ष के रथी, अतिरथी, महारथी और अर्धरथी वीरों का वर्णन मैं कर चुका । अब तुम अगर पाण्डवों के रथी, अतिरथी आदि का वर्णन

सुनना चाहते हो तो सुनो । राजा युधिष्ठिर खुद श्रेष्ठ रथी हैं । वे अग्नि की तरह तुम्हारी सेना को भस्म करते हुए युद्ध-भूमि में बिचरेंगे । महा बल और पराक्रम से परिपूर्ण, दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले, भीमसेन में आठ रथियों की शक्ति है । वे गदा और बाण के युद्ध में अद्वितीय और अलौकिक तेजस्वी हैं । नकुल और सहदेव दोनों रथी हैं । वे तेज और रूप में अश्विनीकुमारों के समान हैं । तुम्हारी बदैलत मिले हुए क्लेशों को याद करते हुए वे सेना के अगले भाग में घुसकर साक्षान् रुद्र की तरह सैनिकों का नाश करेंगे । पाण्डव लोग शालवृक्ष के समान ऊँचे और नाप में साधारण मनुष्यों से वित्ता भर बड़े हैं । सभी पाण्डव ब्रह्मचारी, तपस्वी, बली, पराक्रमी, दिग्विजय के समय सब राजाओं का हरानेवाले १० और वेग, प्रहार तथा युद्ध में असाधारण क्षमता रखनेवाले हैं । हे कौरव, कोई भी पुरुष न तो उनके धनुषों पर डोरी चढ़ा सकता है और न उनकी गदा के प्रहार और बाणों का सह सकता है । वे बाल्यावस्था में ही गदा उठाने, बाण चलाने, निशाना मारने, मर्मपीड़ा पहुँचाने, मुक्के-बाज़ी और वेग में अधिक उत्कर्ष प्राप्त कर चुके हैं । वे तुम्हारी सारी सेना को मारेंगे । इसलिए मैं फिर कहता हूँ कि तुम उनसे युद्ध करने का इरादा छोड़ दो । हे राजेन्द्र, राजसूय यज्ञ में जैसे उन्होंने दिग्विजय किया था, वैसे ही अब भी तुम्हारे सामने वे सब राजाओं को और उनकी सेना को मारेंगे । शूतक्रीड़ा के समय कहे गये कठोर वचनों को, और द्रौपदी के क्लेशों को याद करके वे साक्षान् रुद्र की तरह संहार करते हुए युद्ध-भूमि में बिचरते देख पड़ेंगे । लाल आँखोंवाले अर्जुन वासुदेव की सहायता पाकर अजेय और असह्य हो रहे हैं । मुझे दोनों दलों में उनके समान कोई नहीं देख पड़ता । देवता, मनुष्य, नाग, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व आदि में अर्जुन के समान रथी न तो हुआ है और न आगे होगा । बुद्धिमान् अर्जुन का रथ दिव्य और सुसज्जित है, धनुष सर्वश्रेष्ठ तेजामय गाण्डीव है, और वासुदेव सहायक हैं । उनके घोड़े हवा के वेग से २० चलनेवाले, कवच अभेद्य, तरकस अक्षय और गदा बहुत भयङ्कर है । वे स्वयं अद्वितीयोद्धा हैं । माहेन्द्र, पाशुपत, कैवर्ष, याम्य, वारुण आदि दिव्य अस्त्र और वज्र आदि शस्त्र उनके अधिकार में हैं । उन्होंने एक रथ पर बैठकर हिरण्यपुर-निवासी हज़ारों निवातकवच आदि, देवताओं के लिए भी अजेय, दानवों का संग्राम में मारा है । इसलिए उनके समान रथी और कौन है? वे वीर बिना किसी रुकावट के अपनी सेना की रक्षा और तुम्हारी सेना का नाश करेंगे । मैं या द्रोणाचार्य, इन दोनों के सिवा कोई तीसरा आदमी ऐसा नहीं जो अर्जुन की बाणवर्षा को सह सके । गर्मी के अन्त में हवा जैसे मेघों की सहायता करती है वैसे ही वासुदेव अर्जुन की सहायता करेंगे । अर्जुन जवान और अस्त्रविद्या में निपुण हैं किन्तु मैं और द्रोणाचार्य दोनों बूढ़े हैं ।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, सब राजा लोग भीष्म के मुँह से ये बातें सुनकर और पहले के देखे हुए पाण्डवों के बल-पराक्रम का स्मरण करके घबरा गये । उनके बजुल्ले, माला,

लाल चन्दन आदि से विभूषित मोटे मजबूत हाथ शक्तिहीन और शिथिल से हो गये। उस समय जान पड़ा कि वे मानों पाण्डवों की मूर्ति और पराक्रम को प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

२८

एक सौ सत्तर अध्याय

पाण्डव पक्ष के अन्य वीरों का वर्णन

भीष्मजी ने कहा—राजन्, द्रौपदी के पाँचों पुत्र महारथी हैं। विराट के पुत्र उत्तर रथी हैं। महाबाहु अभिमन्यु—अर्जुन और वासुदेव के समान—बाण चलाने में फुरतीले, चित्रयुद्ध-निपुण और दृढ़व्रत होने के कारण महारथी हैं। वे अपने पिता अर्जुन के क्लेशों को याद करके युद्ध में पराक्रम प्रकट करेंगे। महाशूर सात्यकि यादवों में श्रेष्ठ, असहनशील, क्रोधी और निडर हैं। मेरी राय में सात्यकि, उत्तमौजा और युधामन्यु, ये तीनों अमित पराक्रमी और रथी हैं। इन लोगों के पास कई हज़ार घोड़े, रथ, हाथी और सैनिक हैं। ये सब युधिष्ठिर के लिए ज़िन्दगी की परवा छोड़कर लड़ेंगे। ये वीर हवा और आग की तरह परस्पर सहायता करते हुए पाण्डवों के साथ तुम्हारी सेना को चौपट करेंगे। युद्ध में अर्जुन, महारथी, महापराक्रमी पुरुषश्रेष्ठ राजा विराट और राजा द्रुपद दोनों बूढ़े होने पर भी क्षत्रिय-धर्म का पालन करते हुए स्नेह के मारे अपने सम्बन्धी पाण्डवों की विजय के लिए जी-जान से यत्न करेंगे। राजन्, कारणवश कायर भी वीरता प्रकट करते हैं और वीर भी कायर बन जाते हैं। आर्य-चरित्र, महाधनुर्धर ये दोनों राजा एक पक्ष में होकर भयङ्कर पराक्रम प्रकट करेंगे और प्राण देकर भी पाण्डवों की विजय का यत्न करने में पीछे नहीं हटेंगे। अलग-अलग एक-एक अचौहिणी सेना साथ लिये हुए ये दोनों बूढ़े राजा युद्धभूमि में, अपने वंश के गौरव और सम्बन्ध के सम्मान की रक्षा का खयाल करके, अद्भुत काम कर दिखावेंगे।

१०

१४

एक सौ इकहत्तर अध्याय

पाण्डव पक्ष के वीरों का वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—हे भारत, पाञ्चालराज के बेटे शत्रुविजयी शिखण्डी पाण्डवों की सेना के प्रधान रथी हैं। प्रभद्रकण्ण और बहुत सी पाञ्चाल सेना साथ लिये हुए शिखण्डी युद्ध में प्रवृत्त होकर तुम्हारी सेना के भीतर अपना उत्तम यश फैलाते हुए अपने रथों से बड़े-बड़े अद्भुत काम कर दिखावेंगे। राजन्, द्रोणाचार्य के शिष्य महारथी धृष्टद्युम्न पाण्डवों के प्रधान सेनापति हैं। मेरी समझ में वे अतिरथी हैं। प्रलयकाल में रुद्र जैसे प्रजा का संहार करते हैं वैसे ही धृष्टद्युम्न भी क्रोधित होकर कौरव-सेना का नाश करेंगे। युद्ध-प्रिय लोग धृष्टद्युम्न की

- देवसेना-सदृश अपार सेना की उपमा समुद्र से देते हैं। धृष्टद्युम्न का पुत्र अभी बालक होने के कारण अधिक परिश्रम नहीं कर सकता; इस कारण उसे मैं अर्धरथी गिनता हूँ। शिशुपाल के पुत्र महारथी धृष्टकेतु पाण्डवों के पुराने सम्बन्धी हैं। वे भी इस समय अपने पुत्र के साथ पाण्डवों का प्रिय करने के लिए युद्ध में अद्भुत कर्म करेंगे। महाराज क्षत्रदेव पाण्डवों की और
- १० प्रधान रथी और क्षत्रिय-धर्म के अनुरागी हैं। महातेजस्वी जयन्त और महारथी सत्यजित् आदि वीर पाञ्चालगण क्रुद्ध गजराज की तरह घोर युद्ध करेंगे। महाबल-पराक्रमी राजा अज और भोज पाण्डवों के हित के लिए युद्ध में प्रवृत्त होकर पराक्रम दिखावेंगे। ये सब योद्धा फुरतीले, विचित्र युद्ध में निपुण, पराक्रमी और जमकर युद्ध करनेवाले हैं। युद्धप्रिय केकय-राजकुमार काशिक, नील, सूर्यदत्त, शङ्ख और मदिराश्व, ये पाँचों भाई रथी और अस्त्र-निपुण हैं। इनमें योद्धाओं के सभी लक्षण मौजूद हैं। महाराज वार्द्धक्षेमि को मैं महारथी मानता हूँ। राजा चित्रायुध रथी हैं। वे अर्जुन के भक्त और संग्राम में यश प्राप्त करनेवाले कर्म करने में निपुण हैं। पुरुषश्रेष्ठ चेकितान और सत्यधृति भी पाण्डव-पक्ष के महारथी हैं। व्याघ्रदत्त और चन्द्र-सेन श्रेष्ठ रथी हैं। वासुदेव और भीमसेन के समान महावीर पराक्रमी राजा सेनाबिन्दु भरसक
- २० पराक्रम प्रकट करके तुम्हारी सेना से घमासान युद्ध करेंगे। तुम जैसे अपने यहाँ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और मुष्को प्रशंसनीय योद्धा समझते हो वैसे ही सेनाबिन्दु को भी समझो। काशी के राजा सेनाबिन्दु का दूसरा नाम क्रोधहन्ता भी है। वे एकरथ हैं और बहुत फुरती के साथ बाण चलाते हैं। हे दुर्योधन! युद्धप्रिय, युवा, प्रबल पराक्रमी, पाञ्चाल-राजकुमार सत्यजित् अक्रले आठ रथियों का काम कर सकते हैं। इस समय वे धृष्टद्युम्न के समान अतिरथी हो गये हैं। वे भी पाण्डवों के यश के लिए अद्भुत युद्ध करेंगे। पाण्डवों पर प्रेम रखनेवाले, शूर, महावीर्य पाण्ड्यनरेश रथी हैं। दृढ़ धनुष धारण करनेवाले पाण्ड्यनरेश भी पाण्डवों के प्रिय के लिए प्रशंसनीय अद्भुत युद्ध करेंगे। हे कौरवश्रेष्ठ, श्रेणिमान् और वसुदान नाम के राजाओं
- २७ को मैं अतिरथी समझता हूँ। वे भी पाण्डवों का पक्ष लेकर तुमसे युद्ध करेंगे।

एक सौ बहत्तर अध्याय

पाण्डवों के पक्ष के वीरों का वर्णन

भीष्मजी ने कहा—हे भरतकुलश्रेष्ठ, पाण्डव पक्ष के महारथी रोचमान युद्ध में इन्द्र के समान अद्भुत काम कर दिखावेंगे। महाबली और पराक्रमी भीमसेन के मामा कुन्तिभोज, जिन्हें पुरुजित् भी कहते हैं, अतिरथी हैं। वे वीर, महाधनुर्धर, अस्त्रज्ञ, चित्रयोधी और शक्ति-शाली होने के कारण वैसे ही तुम्हारी सेना से युद्ध करेंगे जैसे इन्द्र दानवों से लड़ते हैं।

उनके साथ युद्ध-निपुण अनेक योद्धा हैं। पाण्डवों के हितचिन्तक कुन्तिभोज, भानजों के लिए, अद्भुत युद्ध करेंगे। युद्धप्रिय, मायावी, राक्षसश्रेष्ठ घटोत्कच भीमसेन का पुत्र है; उसे भी मैं किसी महारथी से कम नहीं समझता। वह भी अपने साथी वीर राक्षसों को लेकर तुम्हारी सेना से दारुण युद्ध करेगा। राजन्, ये और वासुदेव प्रमुख अन्य अनेक देशों के राजा पाण्डवों की ओर से लड़ने के लिए जमा हुए हैं।

ये सब मेरे कहे हुए प्रधान रथी, अतिरथी, महारथी और अर्धरथी अर्जुन के बल से सुरक्षित रहकर युधिष्ठिर की भयानक सेना का सञ्चालन करेंगे। जय की इच्छा रखनेवाले १० और युद्ध की मायाओं में निपुण इन सब वीरों के साथ युद्ध करके या तो मैं जय प्राप्त करूँगा या मर जाऊँगा। सन्ध्याकाल में एकत्र उदित चन्द्रमा और सूर्य के समान, चक्र और गाण्डीव धारण करनेवाले, श्रीकृष्ण और अर्जुन सर्वश्रेष्ठ महारथी हैं। श्रीकृष्ण, अर्जुन और उक्त सब रथी, अतिरथी आदि से मैं अकेला युद्ध करूँगा और उन्हें रोकूँगा।

राजन्, मैंने पाण्डव पक्ष के प्रधान-प्रधान रथी, अतिरथी और अर्धरथी वीरों का वर्णन तुम्हारे आगे कर दिया। मैं जब तक जीता रहूँगा तब तक उक्त सब वीरों को और वासुदेव सहित अर्जुन को अपने दिव्य अस्त्रों के प्रभाव से रोकता रहूँगा; किन्तु केवल द्रुपदकुमार शिखण्डी के ऊपर मैं प्रहार न करूँगा। सब लोग जानते हैं कि मैं राज्य का अधिकार छोड़कर पिता का प्रिय करने को जीवन भर के लिए ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर चुका हूँ। इसी कारण मैंने अपने भाई चित्राङ्गद को कौरवों का राजा और बालक विचित्रवीर्य को युवराज बना दिया था। पृथ्वी भर के सब राजा मुझे बाल-ब्रह्मचारी समझकर देवव्रत कहते हैं। इस कारण मैं स्त्री पर या पहले स्त्री रहनेवाले पुरुष पर कभी हाथ नहीं उठा सकता। हे दुर्योधन, तुमने सुना भी होगा कि शिखण्डी पहले स्त्री था, बाद को पुरुष हो गया है। इसलिए शिखण्डी के साथ मैं युद्ध नहीं करूँगा। हे कुरुकुलश्रेष्ठ, मैं लड़ने के लिए अपने आगे उपस्थित अन्य सब राजाओं को मारूँगा—केवल युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव मेरे लिए अवध्य हैं; मैं उन्हें जान से नहीं मारूँगा। २१

अम्बोपाख्यानपर्व

एक सौ तिहत्तर अध्याय

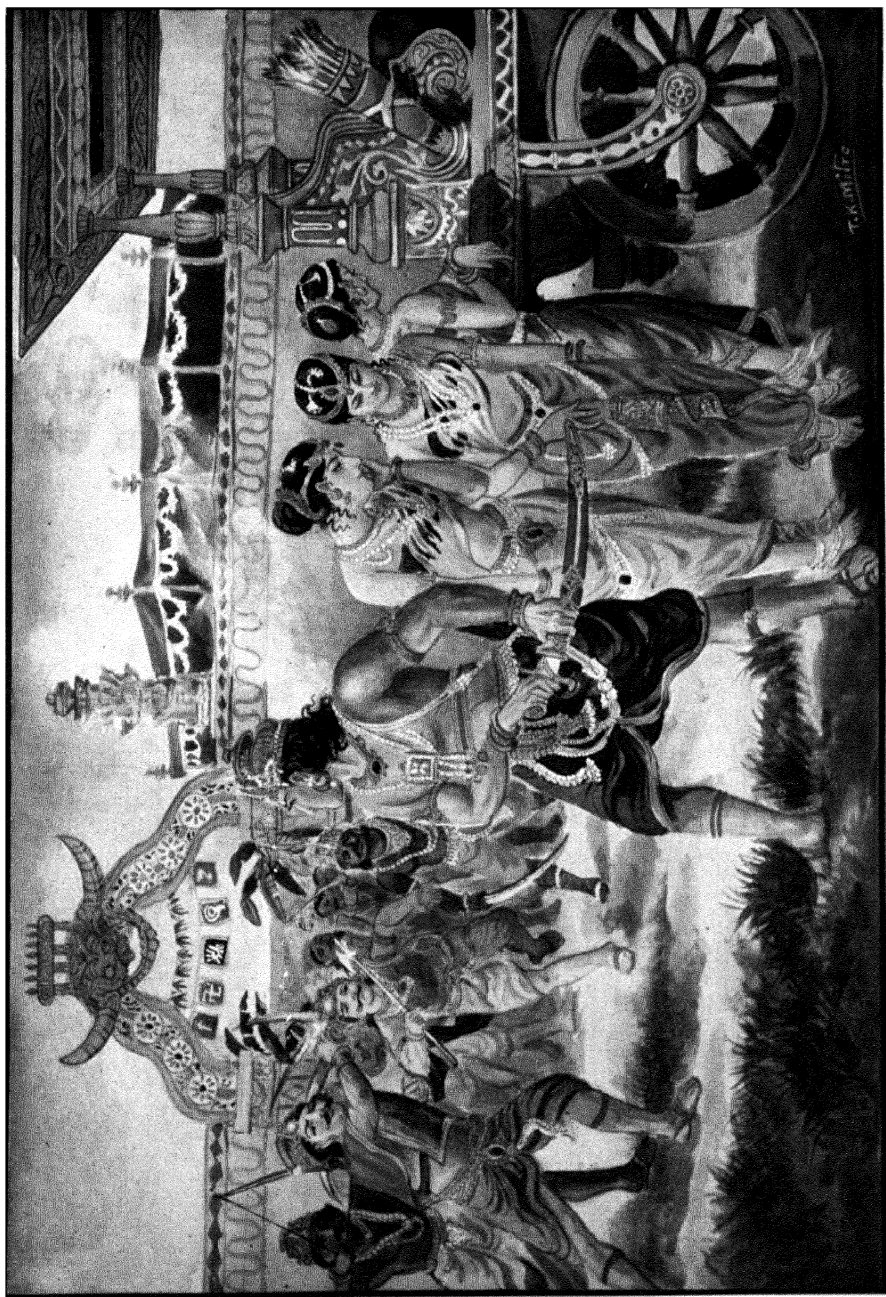
अम्बा की कथा का आरम्भ

दुर्योधन ने कहा—हे पितामह, आप पहले सोमकों और पाञ्चालों को मारने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। भला क्रूरकर्मा आततायी शिखण्डी को, युद्ध में अपने ऊपर बाण-वर्षा करते देखकर भी, आप क्यों न मारेंगे ?

भीष्मजी ने कहा—हे दुर्योधन ! जिस कारण मैं शिखण्डी को न मारूँगा, वह कहता हूँ। तुम इन सब राजाओं के साथ ध्यान से सुनो। मेरे पिता जगत्प्रसिद्ध महाराज शान्तनु का स्वर्गवास होने पर मैंने, पहले की प्रतिज्ञा के अनुसार, छोटे भाई चित्राङ्गद को राजगद्दी पर बिठा दिया। कुछ समय के बाद चित्राङ्गद की भी मृत्यु हो गई। तब मैंने माता सत्यवती की सम्मति से विधिपूर्वक बालक विचित्रवीर्य को राजगद्दी का स्वामी बनाया। विचित्रवीर्य धर्मानुसार मेरे छोटे भाई थे, इसी लिए वे सदा सब कामों में मेरी आज्ञा लेते थे। मैंने विचित्रवीर्य का व्याह करने का विचार किया। इसी समय सुना कि काशिराज की अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका नाम की तीन परमसुन्दरी कन्याओं का स्वयंवर होनेवाला है। अम्बा सबसे बड़ी, अम्बालिका सबसे छोटी और अम्बिका मझेली थी। पृथ्वीमण्डल के सब राजा स्वयंवर का निमन्त्रण पाकर काशीपुरी में पहुँचे। मैं भी अकेला ही रथ पर सवार होकर काशी गया। वहाँ जाकर मैंने सब अलङ्कारों से शोभित तीनों कन्याओं को स्वयंवर की सभा में देखा। पराक्रम ही उन कन्याओं का मूल्य था। मैंने बलपूर्वक हरकर उन तीनों कन्याओं को रथ पर बिठा लिया। फिर मैं बार-बार ललकारकर कहने लगा कि शान्तनु का पुत्र भीष्म तुम लोगों के सामने कन्याओं को हरं लिये जाता है। तुम लोग कन्याओं को छोड़ा लेने का यत्न करो।

राजा लोग मेरे इस काम को और ललकारने को नहीं सह सके। वे अस्त्र-शस्त्र उठा-उठाकर अपने सारथियों का युद्ध के लिए रथ सजाने की आज्ञा देने लगे। इसके बाद वे सब राजा हाथियों ऐसे रथों पर चढ़कर मेरे सामने आ गये। उनके साथ के वीर योद्धा भी हाथियों और हृष्ट-पुष्ट घोड़ों पर चढ़-चढ़कर शस्त्र ताने हुए मुझ पर आक्रमण करने के लिए दौड़ पड़े। उन सबने चारों ओर से मुझे घेर लिया। हे भरतकुलतिलक, तब अवज्ञा की हँसी हँसकर मैंने दम भर में अपने प्रज्वलित तीक्ष्ण अव्यर्थ बाणों से उन राजाओं की सुवर्ण-मण्डित ध्वजाओं के दण्ड काट-काटकर पृथ्वी पर गिरा दिये। मैंने बाणवर्षा करके एक ही एक बाण से उनके वाहनों और सारथियों को मार गिराया। जिस तरह इन्द्र सब दानवों को सहज में जीत लें उसी तरह मैंने युद्ध में सब राजाओं को नीचा दिखा दिया। मेरी फुर्ती और युद्धकौशल देखकर सब राजा युद्ध से भाग खड़े हुए। सब राजाओं को हराकर मैं उन कन्याओं को लिये हुए हस्तिनापुर को लौट आया। हे दुर्योधन, मैंने भाई के व्याह के लिए वे तीनों कन्याएँ माता

२३ सत्यवती को सौंप दीं और उस अद्भुत युद्ध का हाल भी उनसे कह दिया।



शान्तनु का पुत्र भीष्म तुम लोगों के सामने कन्याओं को हरे लिए जाता है । तुम लोग कन्याओं के छुड़ा लेने का यत्न करो ।

(पृ० १२३०)

एक सौ चौहत्तर अध्याय

अम्बा और भीष्म का संवाद

भीष्मजी कहते हैं कि हे कुरुकुल-तिलक, दाशराज-नन्दिनी वीर-जननी माता सत्यवती के पास पहुँचकर, उन्हें प्रणाम करके, मैंने कहा—माता, मैं सब राजाओं का हराकर विचित्र-वीर्य के लिए स्वयंवर से काशिराज की तीन कन्याएँ हर लाया हूँ। इनका मूल्य पराक्रम था, इसलिए बाहुबल के द्वारा इन्हें ले आया हूँ। हे दुर्योधन, इस आनन्द-ममाचार को सुनकर सत्यवती की आँखों में आनन्द के आँसू भर आये। उन्होंने स्नेह से मेरा मस्तक सूँघकर कहा—बेटा, बड़े भाग्य की बात है कि तुमने सब राजाओं को जीतकर अपना यश प्रसिद्ध कर दिया। विवाह का समय उपस्थित होने पर, सत्यवती की अनुमति से, काशिराज की बड़ी कन्या अम्बा ने लज्जा के साथ मुझसे कहा—हे भीष्म, आप सब शास्त्रों के मर्म और धर्म के जानकार हैं। इसलिए मैं जो धर्म-सङ्गत वचन कहती हूँ उनका अनुमोदन कीजिए। मैं पहले मन ही मन शाल्व राजा को अपना पति मान चुकी हूँ, और वे भी गुप्त रूप से मुझे अपनी पत्नी स्वीकार कर चुके हैं। इस घटना का कुछ वृत्तान्त पिता को भी नहीं मालूम है। हे धर्म-परायण, आप धर्म का उल्लङ्घन करके किस तरह दूसरे की इच्छा रखनेवाली स्त्री को अपने घर में रखेंगे? हे भीष्म! आप पवित्र कुरुकुल में उत्पन्न हुए हैं, इसलिए मुझे अपने घर में रखना आपके लिए और भी अनुचित है। हे भरतकुल-तिलक, इस बारे में विशेष रूप से विचार करके वह उपाय कीजिए जिसमें कल्याण हो और धर्म की हानि न हो। हे भीष्म, महाराज शाल्व अवश्य मेरी राह देख रहे होंगे; इसलिए आप मुझे उनके पास जाने दीजिए। हे महाबाहु, आप मुझ पर प्रसन्न हों। मैंने सुना है, आप पृथ्वीमण्डल पर सत्यव्रत कहलाते हैं।

१०

एक सौ पचहत्तर अध्याय

शाल्व के अस्वीकार करने पर अम्बा का मुनियों के आश्रमों में जाकर अपना हाल कहना और सहायता मांगना

भीष्म पितामह कहते हैं—राजन्! इसके बाद मैंने माता सत्यवती, मन्त्रीगण, ऋत्विज, पुरोहित आदि से सब हाल कहकर, उनकी अनुमति से, काशिराज की बड़ी लड़की अम्बा को शाल्व राजा के पास जाने की आज्ञा दे दी। अम्बा के साथ वृद्ध ब्राह्मण लोग और उसकी धाय भी गई। राजधानी से निकलकर अम्बा यथासमय शाल्व के पास पहुँची और उनसे कहने लगी—हे पुरुषश्रेष्ठ, मैं आपके पास पहले की स्वीकृति के अनुसार आई हूँ। अब आप मुझे पत्नीरूप से ग्रहण कीजिए।

हे दुर्योधन, तब शाल्व ने मुसकुराकर अम्बा से कहा—हे सुन्दरी, तुम पहले दूसरे के घर रह चुकी हो, इसलिए मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं कर सकता। तुम फिर भीष्म के पास चली जाओ। भीष्म ने हाथ पकड़कर तुम्हें रथ पर जब बिठाया था तब तुम प्रसन्नता के साथ बैठ गई थीं। भीष्म उस युद्ध में तुम्हें जीतकर ले गये हैं, इसलिए मैं तुम्हें अपने घर में नहीं रख सकता। तुम्हारी ऐसी अन्यपूर्वा (दूसरे की) स्त्री को मुझ सरीखा ज्ञानी और औरों को धर्म का उपदेश करनेवाला पुरुष कैसे अपनी स्त्री बना सकता है! हे भद्रे, तुम भीष्म के पास या जहाँ जी चाहें वहाँ चली जाओ; देर न करो।

राजन्, तब शाल्व पर आसक्त और कामदेव के बाणों से पीड़ित अम्बा ने शाल्व से कहा—हे शत्रुओं को दुःख देनेवाले महाराज, ऐसी बात न कहिए। आपका यह कहना ठीक नहीं

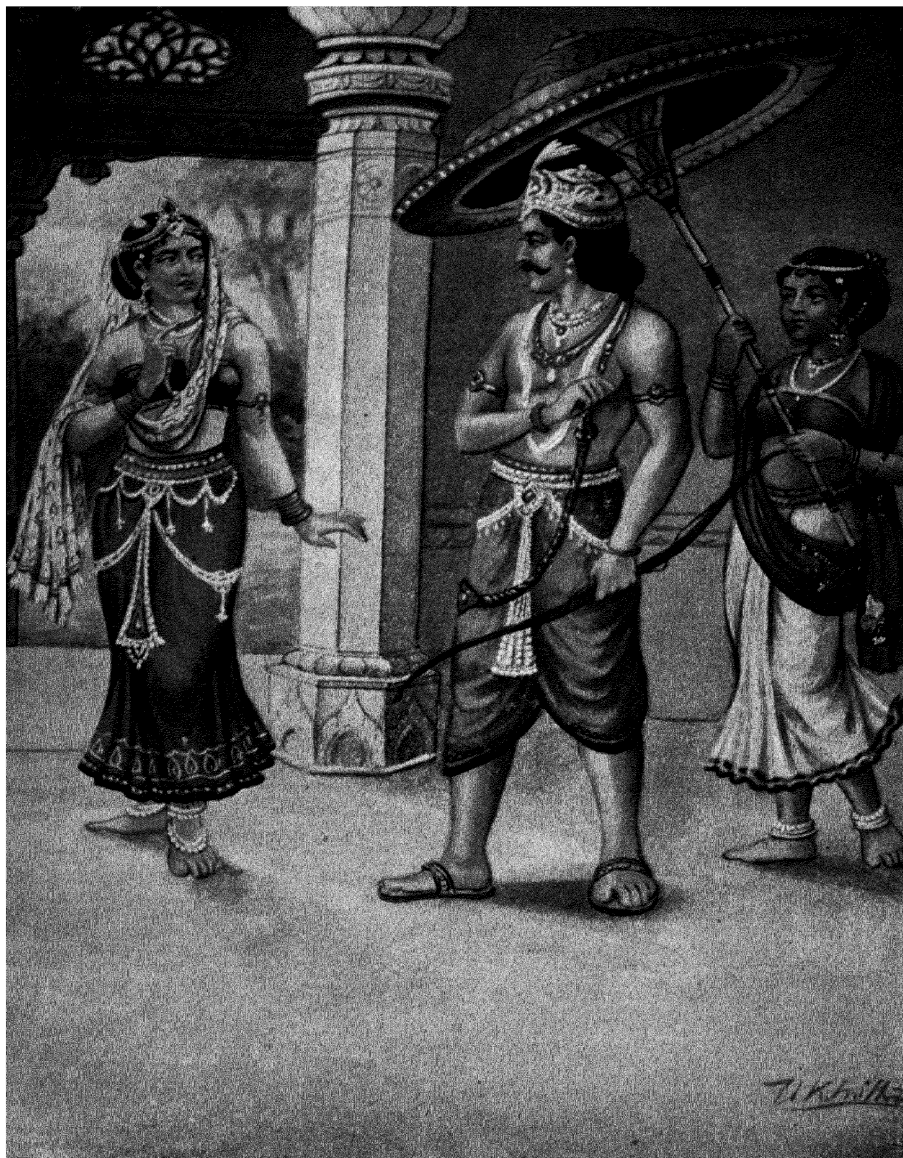
१०



है। भीष्म जिस समय मुझे बलपूर्वक हर ले चले थे उस समय, या और कभी, मेरे हृदय में उनके प्रति अनुराग का सञ्चार नहीं हुआ। वे जिस समय अन्य राजाओं को हराकर बलपूर्वक मुझे हरे लिये जा गये थे उस समय मैं रो रही थी। वे मुझे हरकर ले गये, इसमें मेरा कुछ अपराध नहीं है। मैं दूषित नहीं हुई हूँ। आप के ही ऊपर मुझे अनुराग है। इसलिए मुझे स्वीकार कीजिए। निरपराध और शरण में आई हुई स्त्री का त्याग करना धर्म के विरुद्ध और निन्दनीय कार्य है। मैं भीष्म से आज्ञा लेकर उनकी सम्मति से यहाँ आई हूँ। यह भी मैंने सुना है कि महात्मा भीष्म अपने लिए नहीं, अपने

भाई के लिए हम तीनों बहनों को हर ले गये थे। वे स्वयं मुझसे ब्याह करना नहीं चाहते। मेरी छोटी बहनों का ब्याह भी उन्होंने अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य के साथ कर दिया है। राजन्, मैं अपने सिर की कसम खाकर कहती हूँ कि आपके सिवा दूसरे पुरुष को मैं नहीं चाहती। अपनी कसम खाकर कहती हूँ कि मैं अन्यपूर्वा (दूसरे की) स्त्री नहीं हूँ। मैं इस समय आपके प्रणय और प्रसाद की इच्छा से स्वयं आई हूँ। इसलिए मुझे आप स्वीकार कर लीजिए।

हिन्दी-महाभारत



काशा राज की कन्या अम्बा ने करुणस्वर से बहुत कहा-सुना,
किन्तु शाल्व ने उसे स्वीकार नहीं किया—पृ० १८३३

हे दुर्योधन, अम्बा के बारम्बार प्रार्थना करने पर भी शाल्व ने उसे इस तरह त्याग दिया जैसे साँप केचुल को छोड़ देता है। जब शाल्व किसी तरह स्वीकार करने को राज़ी नहीं हुए तब अम्बा निष्फल क्रोध से आँखों में आँसू भरकर कहने लगी—राजन्, आपने मुझे त्याग दिया तो कोई हर्ज नहीं। यदि मैं सत्यवादिनी हूँ तो जहाँ जाऊँगी वहीं सज्जन मेरी रक्षा करेंगे। २०

हे कुरुकुलकुमार, काशिराज की कन्या अम्बा ने कहण स्वर से बहुत कहा-सुना, किन्तु शाल्व ने उसे स्वीकार नहीं किया। वे अम्बा से बारम्बार कहने लगे—हे सुन्दरी, तुम यहाँ से जाओ। तुम भीष्म की ग्रहण की हुई स्त्री हो। मैं भीष्म के कोप से बहुत डरता हूँ। अदूर-दर्शी शाल्व के यों कहने पर बड़े दुःख के कारण कुररी की तरह राती हुई अम्बा शाल्व के नगर से निकल आई। बाहर आकर दुखिया अम्बा सोचने लगी कि पृथ्वी पर मेरी ऐसी अभागिन और दुर्दशा से दुःखित स्त्री दूसरी न होगी। मैं बन्धु-बान्धवों से बिछुड़ गई और शाल्व ने भी मुझे नहीं रक्खा। भीष्म को शाल्व के ऊपर अपना अनुराग जताकर और उनसे आज्ञा लेकर यहाँ आई थी, इसलिए अब हस्तिनापुर को लौटकर जाना भी व्यर्थ है। वहाँ भी मुझे स्थान न मिलेगा। मैं इस समय अपनी निन्दा करूँ या भीष्म को दोष दूँ? अथवा अपने मूढ़ पिता को बुरा कहूँ, जिन्होंने मेरा स्वयंवर रचा? सबसे अधिक दोष तो मेरा ही है। जिस समय राजाओं के साथ भीष्म लड़ रहे थे उस समय मैं भीष्म के रथ से उतरकर शाल्व के पास नहीं चली गई, उसी चूक का यह फल भोग रही हूँ। मेरे मूढ़ पिता को धिक्कार है! क्योंकि उन्होंने बल-वीर्य के मूल्य पर बेचकर मुझे इस दुर्गति में डाल दिया कि कोई नहीं ग्रहण करता। भीष्म को भी धिक्कार है! शाल्व को भी धिक्कार है! मुझे भी धिक्कार है! और, विधाता को भी धिक्कार है! इन्हीं सबकी दुर्नीति के दोष से मैं ऐसी घोर विपत्ति में पड़ी हूँ। यह अवश्य है कि मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार फल पाता है; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस अन्याय के मुख्य कारण भीष्म ही हैं। इसलिए युद्ध या तपस्या, किसी भी उपाय से भीष्म से बदला लेना मुझे उचित प्रतीत होता है। पहले मैं पता लगाऊँगी कि युद्ध में भीष्म को कौन राजा जीत सकता है। ३०

यों सोचती हुई अम्बा नगर से बाहर एक तपोवन में जाकर पुण्यात्मा तपस्वियों के आश्रम में पहुँची। उसने तपस्वियों के आगे, हरण से लेकर अब तक की, अपनी सब कहानी कही। उस रात को अम्बा वहीं रही। उस ऋषि-मण्डली में एक ब्रह्मविद्या के आचार्य और श्रौत-स्मार्त कर्मों में निपुण महातपस्वी शैखावत्य नाम के वृद्ध ऋषि बैठे थे। वे शोक और दुःख से व्याकुल सीधी-सादी अम्बा को खेद और क्रोध के कारण बार-बार गर्म साँसें छोड़ते देखकर कहने लगे—हे कल्याणी, तुम्हारा शोक मिटाना हम आश्रमवासी ऋषियों की शक्ति के बाहर है। अम्बा ने दृढ़ता के साथ उनसे कहा—हं महाभाग, मुझ दुखिया पर ४०

दया कीजिए। मैंने जन्म भर ब्रह्मचारिणी रहकर तप करने का निश्चय किया है। अत्यन्त



कठिन तप भी मैं करूँगी। मैंने मोहवश पूर्व-जन्म में जो पाप किये हैं उन्हीं का यह फल इस जन्म में भोग रही हूँ। फिर पिता आदि आत्मीय जनों के पास जाने को जी नहीं चाहता। शाल्व ने भी मुझे त्याग दिया है। इस समय सब ओर से निराश और निराश्रय होकर मैंने तप करने का ही निश्चय कर लिया है। आप लोग देव-तुल्य हैं; इसलिए कृपा करके मुझे इस आश्रम में स्थान दीजिए।

महात्मा शैखावत्य ऋषि ने लोक और वेद के अनेक दृष्टान्त और युक्तियों दिखाकर अम्बा को समझाया, आश्वास दिया। इसके बाद वे अन्य ब्राह्मणों से

४५ मिलकर अम्बा का दुःख दूर करने के बारे में सलाह करने लगे।

एक सौ छिहत्तर अध्याय

ब्राह्मणों का कर्तव्य-निश्चय; राजर्षि होत्रवाहन तथा महात्मा अकृतवण की सलाह

भौष्मजी कहते हैं कि इसके बाद उस कन्या का कार्य सिद्ध करने के विचार से सब मुनि मिलकर सलाह करने लगे। किसी ने कहा कि इसे पिता के घर पहुँचा दो। किसी ने कहा कि चलकर भौष्म को उलाहना देकर समझाओ। किसी ने कहा कि शाल्व से अनुरोध करो। किसी ने कहा कि शाल्व ने जवाब दे दिया है, इसलिए उनके पास जाना ठीक न होगा। उन ब्रह्मचारी तपस्वियों ने कुछ देर तक आपस में यों तर्क-वितर्क करके अम्बा से कहा—भट्टे, तुम्हारा यह काम हमारी शक्ति के बाहर है; हम कुछ नहीं कर सकते। इसलिए हम तुम्हें जो हित की बात बताते हैं उसे सुनो। जन्म भर कठोर तप या संन्यास का इरादा छोड़ दो और अपने पिता के घर जाओ। तुम्हारे पिता काशिराज ही इस बारे में कुछ कर देंगे। तुम भी वहाँ जानें सं सब कल्याण प्राप्त करोगी और सुख से रह सकोगी। देखो,



माता, सब राजाओं को हराकर विचित्रवीर्य के स्वयंवरसे काशिराज की
तीन कन्याएँ हर लाया हूँ ।

(पृ० १८३१)

तुम स्त्री-जाति हो। पिता से बढ़कर कन्या का रक्तक दूसरा नहीं है। पिता या पति ही इस लोक में स्त्री की अनन्य गति है। अच्छी दशा में पति और सङ्कट की दशा में पिता स्त्री-जाति का आश्रय-स्थल होता है। फिर तुम सुकुमारी राजकुमारी हो, इसलिए तुम संन्यास का कठिन व्रत, क्लेशदायक होने के कारण, पाल नहीं सकोगी। आश्रम में रहने से लोकापवाद आदि और दोष भी उत्पन्न हो सकते हैं। पिता को यहाँ उन दोषों से तो बची रहेगी।

कुछ और ऋषियों ने कहा—हे राजकुमारी, इस निर्जन गहन वन में अकेली रहेगी तो शिकार वगैरह के लिए इधर आनेवाले राजा और राजकुमार तुम्हें प्राप्त करने की इच्छा करेंगे। इसलिए तुम वन में रहकर जन्म भर तप करने का इरादा छोड़ दो।

अम्बा ने कहा—हे तपस्वियों, मैं अब लौटकर पिता के घर नहीं जा सकती; वहाँ कौन मुँह लेकर जाऊँ? वहाँ जाऊँगी तो भाई-बन्धु अवश्य अनादर और घृणा की दृष्टि से देखेंगे। लड़कपन भर पिता के घर में रही हूँ। अब वहाँ न जाकर आप लोगों के आश्रम में रहकर इसलिए तप करूँगी कि दूसरे जन्म में भी ऐसी विपत्ति का सामना न करना पड़े।

भीष्मजी कहते हैं—हे दुर्योधन, ऋषि लोग इस तरह कर्तव्य के विषय में सोच ही रहे थे कि परम तपस्वी राजर्षि होत्रवाहन वहाँ आ पहुँचें। मुनियों ने उनका स्वागत किया, आसन दिया। जल, भोजन आदि से विधिपूर्वक सत्कार होने के बाद कुछ देर तक विश्राम करके जब राजर्षि होत्रवाहन बैठे तब फिर वे सब ऋषि अम्बा के बारे में बातचीत करने लगे। राजर्षि होत्रवाहन अम्बा के नाना थे। इस कारण सब हाल सुनकर और अम्बा की वह दशा देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे अम्बा को गोद में बिठाकर धीरज देने लगे। उन्होंने फिर अम्बा के



मुँह से सब वृत्तान्त विस्तार के साथ सुना। उसके बाद अत्यन्त दुःख से विद्वल राजर्षि अपने मन में कर्तव्य का निश्चय करके अम्बा से बोले—बेटी, तुम अब पिता के घर न जाना। मैं तुम्हारा नाना हूँ, इसलिए तुम्हारे सब दुःख और क्लेश दूर करने की चेष्टा करूँगा। तुम मेरे

साथ चलो। तुम्हारा सूखा हुआ मुखड़ा देखने से ही तुम्हारे हृदय के दुःख की याह लगती है। इस समय तुम मेरे कहने से महात्मा परशुराम के पास जाओ। वे तुम्हारे सब शोक और दुःख को मिटा देंगे। भीष्म अगर उनका अनुरोध न मानेंगे तो युद्ध में उनके हाथ से मारे जायेंगे। इसलिए तुम प्रलयकाल के अग्नि के समान प्रचण्ड और तेजस्वी परशुराम के पास चलो। वे तुम्हारा शोक शान्त करेंगे।

सिर झुकाये आँसू बहाती हुई अम्बा ने नाना को प्रणाम करके मधुर स्वर से कहा— नानाजी, आपकी आज्ञा से मैं उन्हीं जगत्प्रसिद्ध भार्गव की शरण में चलींगी। किन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ कि कहाँ, किस तरह, कब जाने से उनसे मेरी भेंट होगी और किस तरह वे मेरा यह दारुण दुःख दूर करेंगे।

होत्रवाहन ने कहा—हे कल्याणरूपिणी, सत्यसन्ध भार्गव महेन्द्राचल के शिखर पर रहते हैं। वहाँ वेदज्ञ ऋषियाँ, गन्धर्वों और अप्सराओं का निवास है। वहाँ जाकर तुम उन्हें दुष्कर तपस्या में तत्पर देखोगी। तुम वहाँ जाकर, सिर झुकाकर, उन्हें प्रणाम करना और अपना हाल तथा मेरा सँदेसा कहना। वे सब धनुर्धर पुरुषों में श्रेष्ठ वीरवर परशुराम मेरे सखा और स्नेह रखनेवाले हितचिन्तक हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मेरा नाम लेने से वे तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे।

राजर्षि होत्रवाहन इस तरह कह रहे थे कि परशुराम के प्रिय शिष्य अकृतव्रण अचानक वहाँ आ गये। सभा में स्थित सब ऋषि और वृद्ध राजर्षि होत्रवाहन उनके सम्मान के लिए उठ खड़े हुए। सब लोग सत्कार करके उनको घेरकर बैठ गये। इसके बाद प्रसन्नतापूर्वक सब लोग तरह-तरह की बातें करने लगे। बातचीत के बाद होत्रवाहन ने अकृतव्रण से पूछा—
४० वेदज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ हे महाबाहु, महाप्रभावशाली परशुराम इस समय कहाँ हैं ?

अकृतव्रण ने कहा—राजन्, महात्मा परशुराम के आप प्रिय मित्र हैं, इसलिए वे सदा आपकी चर्चा किया करते हैं। मुझे जान पड़ता है, कल सबेरे वे आपसे मिलने के लिए यहाँ आवेंगे। इसी स्थान में आप उनके दर्शन पावेंगे। राजन्, यह कन्या किसकी है ? आपके साथ इसका क्या सम्बन्ध है ? और यह वन में क्यों आई है ?

होत्रवाहन ने कहा—महाशय, यह काशिराज की प्यारी कन्या मेरी नातिन है। इसका नाम अम्बा है। कुछ दिन हुए, इन तीनों बहनों का स्वयंवर किया गया था। कन्या-लाभ के लिए पृथ्वी के सब राजा उस स्वयंवर-सभा में आये थे। बड़ी भीड़ और धूमधाम हुई थी। महावीर भीष्म सब राजाओं को जीतकर इन तीनों बहनों का हरकर हस्तिनापुर ले गये और माता सत्यवती की सलाह से अपने भाई विचित्रवीर्य के साथ तीनों कन्याओं को ब्याह का
५० उद्योग करने लगे। यह जानकर अम्बा ने मन्त्रियों के सामने भीष्म से कहा कि हे वीर, मैं

मन में शाल्व को अपना पति मान चुकी हूँ । इस कारण दूसरों को चाहनेवाली स्त्री के साथ अपने भाई का व्याह करना आपके योग्य कार्य नहीं है ।

यह सुनकर, मन्त्रियों से सलाह लेकर, भीष्म ने सत्यवती की राय से अम्बा को छोड़ दिया । भीष्म के हाथ से छुटकारा पाकर अम्बा प्रसन्नतापूर्वक शाल्व के पास गई और कहने लगी कि महाराज, भीष्म ने मुझे त्याग दिया है, अब आप मेरे धर्म की रक्षा कीजिए; क्योंकि मैं पहले से ही मन में आपको अपना पति मान चुकी हूँ । हे अकृतव्रण, किन्तु शाल्व ने अम्बा के चरित्र को दूषित समझकर उसे नहीं स्वीकार किया । वहाँ से भो निराश होकर यह तपस्या करने यहाँ आई है । यहाँ वंश का परिचय पाकर मुझे मालूम हुआ कि यह मेरी नातिन है । यह कन्या भीष्म को ही अपने सब दुःखों और दुर्गतियों का आदि-कारण बताती है ।

अम्बा ने कहा—हे तपोधन, मेरे नाना महाराज होत्रवाहन ने बिलकुल ठीक कहा है । लज्जा के कारण और अपमान के डर से मैं फिर अपने पिता की नगरी में नहीं जा सकती । अब भगवान् परशुराम जां करने के लिए मुझसे कहेंगे उसी को मैं अपना कर्तव्य समझूँगी ।

५६

एक सौ सतहत्तर अध्याय

परशुरामजी का आगमन

अकृतव्रण ने कहा—अम्बा, तुम्हें दो ओर से दो तरह का दुःख है । उनमें से तुम किसको मिटाने की इच्छा रखती हो ? जो तुम चाहो कि शाल्व को तुमसे व्याह करने के लिए विवश किया जाय तो महात्मा परशुराम तुम्हारी प्रसन्नता और भलाई के लिए वह भी करेंगे; अथवा जो तुम भीष्म की हार देखना चाहती हो तो गुरुवर वह भी कर सकते हैं । राजर्षि होत्रवाहन के और तुम्हारे वचनों को सुनकर आज ही कर्तव्य का निश्चय कर लेना आवश्यक जान पड़ता है ।

अम्बा ने कहा—भगवन्, मुझे राजा शाल्व के ऊपर आसक्त न जानकर ही भीष्म हर ले गये थे । यह जानकर, न्याय के अनुसार, भीष्म या शाल्व के साथ जैसा व्यवहार करना आपको उचित जान पड़े, वैसा ही निश्चय कीजिए । मैं अपने दुःख का कारण कह चुकी ।

अकृतव्रण ने कहा—हे राजकुमारी, तुम धर्म की ओर दृष्टि रखकर जो कह रही हो वह ठीक है । अब तुम मेरी बात सुनो । हे कल्याणरूपिणी ! अगर भीष्म तुम्हें हस्तिनापुर न ले जाते तो शाल्व, परशुरामजी की आज्ञा से, तुम्हें सादर ग्रहण कर लेते । भीष्म तुम्हें बलपूर्वक हर ले गये, इसी से शाल्व को तुम्हारे चरित्र पर सन्देह हो गया है । भीष्म को अपने पौरुष का बड़ा घमण्ड है और वे सर्वत्र विजयी होते हैं । इसलिए उन्हें दण्ड देना ही ठीक जान पड़ता है ।

१०

अम्बा ने कहा—हे तपोधन, संग्राम में भीष्म को हराना या मारना ही मेरा उद्देश्य है। भीष्म या शाल्व, जिसे आप मेरे इस दुःख का कारण और दोषी समझिए उसी को दण्ड दीजिए।

इस तरह बात-चीत करने में वह दिन और रात भी बीत गई। सबरे जटा-बल्कल-धारी, तेज की राशि, महातपस्वी परशुराम अपने शिष्यों के साथ राजर्षि होत्रवाहन के पास आये। वे परशु, खड्ग, धनुष आदि धारण किये हुए थे। वे सब मुनि, होत्रवाहन, अम्बा और अकृतव्रण आदि सब लोग उन्हें देखकर उठ खड़े हुए। सबने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और यथोचित मत्कार के साथ उनकी पूजा की। इसके बाद परशुरामजी आसन पर बैठे और २० होत्रवाहन के साथ बात-चीत करने लगे। सृञ्जयराज होत्रवाहन ने अवसर देखकर मधुर स्वर में कहा—भगवन् ! यह काशिराज की कन्या, मेरी नातिन, अम्बा है। इसका जो उपकार आपको करना होगा सो इसी के मुँह से सुनिए।

परशुरामजी ने अपना प्रयोजन कहने के लिए अम्बा को आज्ञा दी। अम्बा उनके पास जाकर, कमल-सदृश कामल हाथों से उनके पैर छूकर, सामने खड़ी हो गई और शोक के आँसू



बहाती हुई कहने लगी—मैं आपकी शरण में आई हूँ। परशुरामजी ने कहा—हे कल्याणरूपिणी, तुम जैसे राजर्षिहोत्रवाहन को प्यारी हो वैसे ही मुझे भी प्यारी हो। इसलिए तुम मेरे आगे अपने दुःख का सब हाल कहो। मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।

अम्बा ने कहा—भगवन्, मैं आपकी शरण में हूँ। आप मुझे इस शोक-सागर के पार लगाइए। भीष्मजी कहते हैं कि हे दुर्योधन, परशुरामजी अम्बा के असाधारण रूप, जवानी और सुकुमारता को देखकर बहुत चिन्तित हुए। बहुत देर तक वे सोचते रहे कि अम्बा क्या कहेगी। फिर कृपा-पूर्ण स्वर में उन्होंने कहा—

तुम्हारी क्या इच्छा है, शीघ्र कहो। तब अम्बा ने आदि से अन्त तक उनसे अपने दुःख का ३० सब हाल कहा। सब हाल सुनकर, कर्तव्य निश्चय करके, परशुरामजी ने कहा—बेटी, मैं भीष्म

के पास दूत भेजूँगा; वे अवश्य मेरा कहा मान लेंगे। यदि मेरा कहा नहीं मानेंगे तो मैं अपनी अस्त्र-विद्या के बल से युद्ध में उन्हें और उनके मन्त्रियों को अवश्य मारूँगा। अथवा जो तुम वहाँ व्याह करना नापसन्द करो तो कहो, मैं शाल्व को तुमसे व्याह करने की आज्ञा दूँ।

अम्बा ने कहा—शाल्व के ऊपर तो पहले से ही मुझे अनुराग है। यही सुनकर भीष्म ने मेरा छुटकारा कर दिया है। इसके बाद मैंने शाल्व के पास जाकर उनसे अपने जी का हाल कहा और व्याह करने के लिए प्रार्थना की। किन्तु उन्होंने मेरे चरित्र पर सन्देह करके मुझे त्याग दिया। आप अपनी बुद्धि से इन बातों पर विचार करके कर्तव्य ठीक कीजिए। महावीर भीष्म मुझको बलपूर्वक हर ले गये, और विवश होकर मैं अपनी इच्छा पूरी नहीं कर सकी। इस कारण भीष्म ही मेरे दुःखों की जड़ हैं। आप युद्ध में उन्हें मारिए। उन्हीं के कारण ऐसे दुःख में पड़कर मैं उन्हीं का अनिष्ट करने के लिए उद्यत हूँ। भीष्म अत्यन्त लोभी, नीच-प्रकृति और सदा विजय प्राप्त करने के कारण घमण्डी हैं। इसलिए उन्हें दण्ड देकर उनका गर्व चूर्ण करना ही मुझे ठीक जान पड़ता है। उन्होंने मेरा अपकार किया है, इस कारण पहले से ही उन्हें मरवाने का विचार मैं कर चुकी हूँ। आप मेरे इस मनोरथ को पूरा कीजिए। इन्द्र ने जैसे वृत्रासुर को मारा था वैसे ही आप भी भीष्म को मारिए।

४२

एक सौ अठहत्तर अध्याय

परशुरामजी का कुरुक्षेत्र में जाना और भीष्म से बातचीत करना

भीष्मजी कहते हैं कि हे दुर्योधन, अम्बा के बारम्बार यों कहने और रोने पर महात्मा परशुराम ने कहा—हे काशिराज की कन्या, मैंने शस्त्र त्याग कर दिया है। वेदज्ञ ब्राह्मणों के प्रयोजन के बिना मैं कभी शस्त्र धारण नहीं कर सकता। युद्ध के सिवा और जो कहो सो करने के लिए मैं तैयार हूँ। देखो, महाबाहु भीष्म और शाल्व दोनों मेरा कहा मान लेंगे। इसलिए मैं उसी की चेष्टा करूँगा; तुम शोक मत करो। मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि ब्राह्मणों की आज्ञा के बिना मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा, इसी से लाचार हूँ।

अम्बा ने कहा—भीष्म ही मेरे दुःख और दुर्भाग्य की जड़ हैं। आप मेरा दुःख दूर करना स्वीकार कर चुके हैं, इसलिए भीष्म को मारिए। परशुरामजी ने कहा—बेटी, भीष्म पूजनीय और सज्जन हैं। वे मेरे कहने से तुम्हारे चरणों पर सिर रखने के लिए भी तैयार हो जायेंगे। अम्बा ने कहा—जो आप मेरा हित करना चाहते हैं तो संग्राम में भीष्म को मारिए। अङ्गीकृत वचन का पालन करना आपका अवश्य कर्तव्य है।

भीष्मजी कहते हैं कि इस तरह बातचीत हो रही थी कि इसी समय धर्मपरायण अकृत-
त्रण ने कहा—भगवन्, यह कन्या आपकी शरण में आई है, इसका त्याग न कीजिएगा।
१० जायगा और आपकी प्रतिज्ञा भी सत्य होगी। पहले क्षत्रिय जाति का संहार करके आप
ब्राह्मणों के आगे प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, ब्रह्मद्वेपी होगा उसे
मैं अवश्य मारूँगा। इसके सिवा जो तेजस्वी और पराक्रमी क्षत्रिय पृथ्वी भर के सब क्षत्रियों
को जीत लेगा उस अपने प्रतिद्वन्द्वी को भी युद्ध करके मारूँगा। भीष्म ऐसे ही समर-विजयी
क्षत्रिय हैं। इस कारण भी भीष्म के साथ युद्ध करना और उन्हें मारना आपका कर्तव्य है।

परशुरामजी ने कहा—हे तपोधन, मैं अपनी पहले की प्रतिज्ञा स्मरण करके इस तरह
कार्य सिद्ध करने की चेष्टा करूँगा जिसमें शान्ति-भङ्ग न हो। काशिराज की कन्या भीष्म को
मारने का आग्रह कर रही है; किन्तु यह काम बहुत ही कठिन है। इस कारण इस कन्या को
अपने साथ लेकर मैं खुद वीर भीष्म के पास जाऊँगा। तुम लोग जानते ही हो कि मेरे चलाये
हुए अमोघ बाण शरीरधारियों को मारे बिना नहीं लौटते। इसलिए अपने बाहुबल का घमण्ड
रखनेवाले विजयी भीष्म अगर मेरा कहा नहीं मानेंगे तो मैं अवश्य युद्ध में उन्हें मारूँगा।

२० ऋषियों के सामने यों कहकर रात बीतने पर महात्मा परशुराम ने युद्ध-यात्रा का उद्योग
किया। ऋषि लोग भी हवन और जप करके, मेरे मारने की इच्छा से, परशुरामजी के साथ
चले। अम्बा और उन तपोधन ऋषियों का साथ लिये हुए महात्मा परशुराम कुरुक्षेत्र में
पहुँचे। सब लोग वहाँ सरस्वती नदी के किनारे ठहर गये।

भीष्मजी कहते हैं—राजन्, समतल भूमि में ठहरकर महात्मा परशुराम ने तीसरे दिन
मुझसे कहला भेजा कि मैं आया हूँ, मुझसे आकर मिलो। महात्मा परशुराम को अपने राज्य
के भीतर आया हुआ सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। उसी समय देवतुल्य ब्राह्मण, ऋत्विज,
पुरोहित आदि को साथ लेकर, अतिथि-सत्कार में देने के लिए एक गाय लेकर, मैं उनके पास
गया। मेरी की हुई पूजा स्वीकार करके भार्गव ने कहा—हे भीष्म, तुम दूसरे पर आसक्त हृदय-
वाली काशिराज की कन्या को स्वयं अकाम होकर भी क्यों पहले हर लाये थे? और फिर उसका
त्याग क्यों कर दिया? तुमने इस कन्या को [समाज और] धर्म से भ्रष्ट कर दिया है। तुम इसे
हर लाये हो, इसलिए इसके साथ व्याह करना कोई नहीं स्वीकार करेगा। इसी कारण शाल्व ने
भी इसे स्वीकार नहीं किया। मैं तुमका आज्ञा देता हूँ कि इसे ग्रहण करके इसके और अपने
३० धर्म की रक्षा करो। हे वीर, इसका यों अपमान करना तुम्हारे लिए अनुचित है।

भीष्मजी कहते हैं कि तब मैंने परशुरामजी को उदास और कुछ कुपित देखकर कहा—
ब्रह्मन्, मैं इस कन्या का व्याह अपने भाई विचित्रवीर्य के साथ नहीं कर सकता। हे गुरुवर,

यह पहले मुझसे कह चुकी है कि मैं शाल्व को चाहती हूँ और उन्हें अपने मन में पति मान चुकी हूँ। इसी कारण मैंने इसे शाल्व के पास जाने की अनुमति दे दी। यह शाल्व के पास चली गई थी। इस समय मैं भय, दया, धन-लोभ या काम के वश होकर त्रिभुज के धर्म को नहीं छोड़ सकता। मेरा यही सदा का व्रत है।

हे दुर्योधन, तब क्रोध से आँखें लाल करके परशुरामजी ने मुझसे कहा—मेरी आज्ञा न मानोगे तो मैं अभी तुम्हारे भृत्य, मन्त्री, अनुचर आदिके साथ मार डालूँगा। परशुरामजी क्रोध से आँखें लाल करके बारम्बार यही कहने लगे। तब मैंने उनके चरणों में सिर रखकर फिर कहा—भगवन्, आप मुझसे युद्ध करने के लिए क्यों उद्यत हैं? मैं आपका शिष्य हूँ। बाल्यावस्था में मैंने आपसे धनुर्वेद के चारों अङ्ग सीखे हैं।



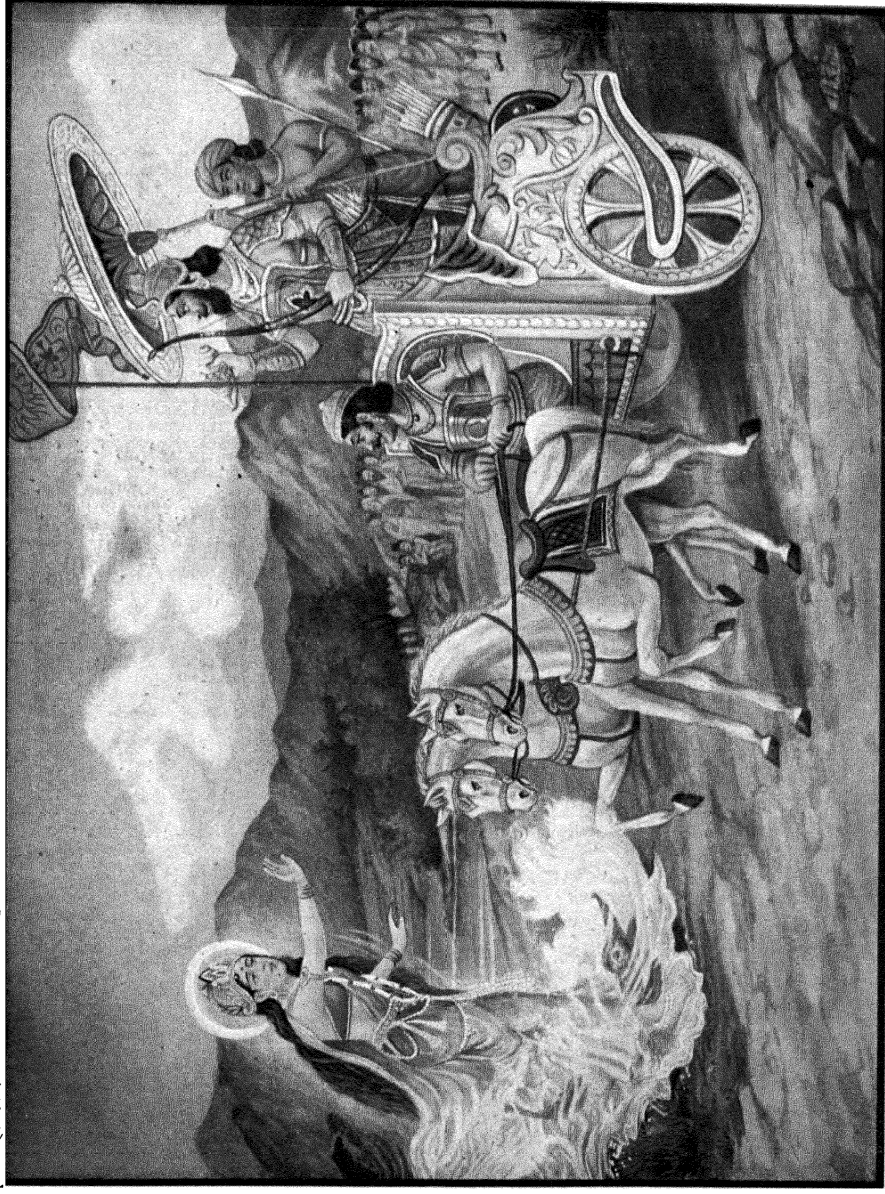
क्रोध से आँखें लाल किये हुए परशुरामजी ने कहा—भीष्म, तुम मुझे गुरु मानते हो, किन्तु मेरी बात मानकर मुझे प्रसन्न करना नहीं स्वीकार करते। अम्बा को ग्रहण करने के सिवा मुझे शान्त करने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए इसे ग्रहण करके अपने वंश को विनाश से बचाओ। यह तुम्हारे ही कारण स्वामी के सुख से वञ्चित होकर दुःख भोग रही है।

४०

हे कुरुश्रेष्ठ, शत्रुदलदलन परशुरामजी के ये वचन सुनकर मैंने फिर उनसे कहा—ब्रह्मन्, आप व्यर्थ परिश्रम और यत्न क्यों करते हैं? यह बात किसी तरह नहीं हो सकती। आप मेरे पुराने गुरु हैं, इसी लिए मैं अनुनय-विनय करके आपको मनाता हूँ। ब्रह्मन्, मैं इस कन्या का पहले ही त्याग कर चुका हूँ। स्त्रियों का चरित्रदोष घोर अनर्थ का कारण होता है। उस दोष को जानकर भी कौन पुरुष दूसरे को चाहनेवाली सर्पिणी-तुल्य स्त्री को अपने घर में रखेगा? मैं इन्द्र के डर से भी अपने धर्म को नहीं छोड़ सकता। अब चाहे आप प्रसन्न होकर अपना हठ छोड़िए, और चाहे अपनी इच्छा के अनुसार और कुछ कीजिए। पुराण में महात्मा मरुत्त का यह कथन प्रसिद्ध है कि जो गुरु कार्य-अकार्य के ज्ञान से शून्य, गर्वित और विषयगामी हो, उसे त्याग देना चाहिए। आप गुरु हैं, इसी से प्रसन्नतापूर्वक मैंने आपका

सम्मान किया ; किन्तु आप मुझसे गुरु का सा व्यवहार नहीं करते । इसलिए मैं आपके साथ युद्ध करने को भी तैयार हूँ । मैं गुरु, ब्राह्मण, खासकर तपोवृद्ध ब्राह्मण को नहीं मारता । इसी कारण आपको क्षमा कर दिया था । किन्तु धर्मशास्त्र में लिखा है कि क्षत्रियधर्म का अनुगामी पुरुष अगर क्षत्रिय की तरह युद्धभूमि में आये हुए और क्रोध करके बाणवर्षा करते हुए ब्राह्मण को मार डालता है तो उसे ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगता । मैं भी अपने धर्म का पालन करने-वाला क्षत्रिय हूँ । कोई पुरुष अपने साथ जैसा व्यवहार करे, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करने से अधर्म या अकल्याण नहीं होता । धर्म और अर्थ के निर्णय में निपुण और देश-काल को जाननेवाला पुरुष अर्थ या धर्म के बारे में सन्देह उपस्थित होने पर अगर अर्थसिद्धि का अनुष्ठान न करके धर्म का ही पालन करता है तो वह कल्याण का भागी होता है । इस कारण मैं विवाह-रूप अर्थसिद्धि के लिए गुरुवाक्य न मानकर प्रतिज्ञारूप धर्म का ही पालन करूँगा । आप संशय-युक्त अर्थ के लिए मुझसे न्यायविरुद्ध व्यवहार करते हैं, अर्थात् अनुचित आज्ञा देते हैं, इसलिए मैं आपके साथ युद्ध करूँगा । युद्ध के समय आप मेरा अलौकिक पराक्रम और बाहुबल देखिएगा । अब आप युद्ध के लिए तैयार हो जाइए । मैं कुरुक्षेत्र में आपके साथ युद्ध करके अपनी शक्ति के योग्य काम करूँगा । आप मेरे बाणों से जर्जर होकर प्राणत्याग करेंगे और वीरों के योग्य लोकों में जाकर अपने तप का फल भोगेंगे । हे महाबाहु ! अब मैं जाता हूँ, आप भी जाइए । कुरुक्षेत्र के मैदान में फिर भेंट होगी । आपने पहले जिस स्थान पर पिता का दाह-कार्य किया था, वहीं पर आपको मारकर मैं भी क्षत्रियों के विनाश का बदला लूँगा । हे युद्ध-प्रिय, आप शीघ्र कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में चलिए । मैं आपका पहले का दर्प दूर करूँगा । आप इसके लिए सदा घमण्ड किया करते हैं कि आपने अकंले इक्कास बार क्षत्रियकुल का संहार किया है; किन्तु उस समय मेरे समान योद्धा क्षत्रिय कोई नहीं था । तेजस्वी क्षत्रिय पीछे से उत्पन्न हुए हैं, उस समय आप तृणों में प्रज्वलित हुए थे अर्थात् बलहीनों को आपने मारा है । इस समय आपके युद्ध के घमण्ड और युद्ध की इच्छा को मिटानेवाला भीष्म उत्पन्न हो चुका है । इसमें सन्देह नहीं कि मैं इस समय युद्ध में आपका सारा दर्प चूर्ण कर दूँगा ।

पितामह कहते हैं कि तब परशुरामजी ने क्रोध की हँसी हँसकर कहा—शाबाश ! बड़े भाग्य और खुशी की बात है कि तुम मुझसे युद्ध करने की इच्छा प्रकट कर रहे हो । मैं तुमसे युद्ध करने के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में चलता हूँ, तुम भी शीघ्र वहाँ आओ । तुम्हारी माता गङ्गा तुम्हें मेरे असंख्य तीक्ष्ण बाणों से मरकर गिद्ध, कौए आदि का भोजन बनते देखेंगी । हे क्षत्रिय ! तुम ऐसे मन्दमति, युद्ध की इच्छा रखनेवाले, मरने के लिए तैयार पुरुष को उत्पन्न करनेवाली गङ्गा देवी सर्वथा रोने के योग्य न होने पर भी तुम्हें मेरे बाणों से पीड़ित और प्राण-हीन देखकर इस समय आँसू बहावेंगी । हे युद्ध की इच्छा प्रकट



माता गङ्गा प्रकट होकर मेरे सामने आईं और मुझसे कहने लगी—बेटा, तुम यह क्या कर रहे हो । पृ० १८४३

करनेवाले भीष्म, अब तुम जाकर रथ आदि युद्ध की सामग्री के साथ तैयार होकर कुरुक्षेत्र में आओ और मुझसे संग्राम करो ।

हे दुर्योधन, मैंने उन्हें प्रणाम करके कहा—भगवन्, आपकी आज्ञा के अनुसार ही सब काम होगा । इसके बाद परशुरामजी युद्ध के लिए कुरुक्षेत्र के मैदान में गये । इधर मैंने हस्तिनापुर में आकर माता से सब हाल कहा, उनसे आज्ञा ली और फिर ब्राह्मणों से स्वस्त्यन कर्म कराया । इसके बाद मैंने सफेद चमकीला कवच पहना, धनुष लिया और मैं व्याघ्रचर्म-मण्डित, शस्त्रों से परिपूर्ण, दृढ़, चाँदी से मढ़े हुए रथ पर सवार हुआ । उस रथ में सफेद बड़िया घोड़े जोते गये । कुलीन, वीर, अश्वविद्या के ज्ञाता, सुशील और अनेक युद्ध देखे हुए सारथी ने रथ हाँका । शून्य लोग मेरे सिर पर सफेद छत्र लगाये हुए थे और सफेद चँवर डुलता रहे थे । मैं सफेद ही कपड़े पहने और सफेद ही पगड़ी बाँधे हुए था । ब्राह्मण और वन्दीजन मुझे जय के आशीर्वाद देते हुए मेरी स्तुति कर रहे थे । वेदपाठी ब्राह्मण मेरी यात्रा के समय पुण्याह-पाठ करने लगे ।

इस प्रकार हस्तिनापुर से चलकर मैं कुरुक्षेत्र में पहुँचा । मन और हवा के समान वेग से चलनेवाले घोड़ों ने चतुर सारथी के हाँकने पर बहुत शीघ्र मुझे अभीष्ट स्थान पर पहुँचा दिया । मैं और प्रतापी परशुरामजी दोनों ही इस प्रकार युद्ध का निश्चय करके पवित्र कुरुक्षेत्र के मैदान में अपना-अपना पराक्रम दिखाने के लिए उपस्थित हुए । परशुरामजी के सामने पहुँचकर मैंने अपना श्रेष्ठ शङ्ख बजाया । उस समय वनवासी ऋषि, ब्राह्मण और इन्द्र आदि सब देवता वह श्रेष्ठ युद्ध देखने के लिए घटनास्थल के पास आ गये । आकाश से देवताओं के बरसाये हुए फूल और मालाएँ युद्ध-भूमि में गिरने लगीं । देवताओं ने दिव्य नगाड़े बजाये, और बादल गरजने लगे । भार्गव के अनुगामी सब तपोधन ऋषि, दर्शक होकर, युद्ध-भूमि में खड़े हुए ।

इसी समय सब प्राणियों की भलाई चाहनेवाली माता गङ्गा प्रकट होकर मेरे सामने



आईं और मुझसे कहने लगीं—बेटा, तुम यह क्या कर रहे हो ! मैं खुद परशुराम के पास जाकर बारम्बार प्रार्थना करूँगी कि भगवन्, क्षमा कीजिए । भीष्म आपका शिष्य और इसी से

पुत्र-तुल्य है, उससे युद्ध न कीजिए । पुत्र, तुम ब्राह्मण और गुरु परशुराम से युद्ध करने का हठ न करो । रुद्र के समान अमित पराक्रमी, क्षत्रियकुल के काल, परशुराम को तुम क्या नहीं जानते जो उनसे लड़ना चाहते हो ? यों कहकर भागीरथी बारम्बार मुझे मना करने लगीं ।

तब मैंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और विशेष रूप से स्वयंवर आदि का सब
 ८० हाल कहकर परशुरामजी की अनुचित आज्ञा और अम्बा के शाल्व पर अनुरक्त होने का वृत्तान्त भी सुना दिया । सब बातें सुनकर गङ्गा माता परशुरामजी के पास गईं और उन्हें प्रसन्न तथा शान्त करने के अभिप्राय से कहने लगीं—भगवन् ! भीष्म आपका शिष्य है, उससे युद्ध मत कीजिए । परशुरामजी ने कहा—भगवती भागीरथी ! भीष्म मेरा कहा नहीं करते, इसलिए मैं उनसे युद्ध करने आया हूँ । आप उन्हीं को युद्ध करने से रोकिए ।

वैशम्पायन कहते हैं कि तब पुत्रस्नेह के कारण गङ्गा फिर भीष्म के पास आई और बोलीं—
 ८५ बेटा, मेरा कहा मानो, युद्ध मत करो; किन्तु क्रोध से विद्वल भीष्म ने उनका कहा नहीं माना ।
 इतने में महापतस्वी भार्गव ने भीष्म के सामने आकर उन्हें युद्ध के लिए ललकारा ।

एक सौ उन्नासी अध्याय

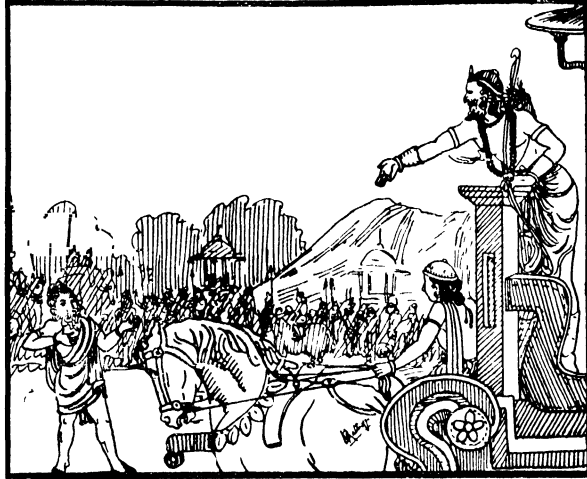
भीष्म और परशुरामजी के युद्ध का आरम्भ

भीष्मजी कहते हैं कि हे दुर्योधन, फिर मैंने युद्ध के लिए उद्यत परशुरामजी से मुसकाकर कहा—भगवन्, आप पृथ्वी पर खड़े हैं और मैं रथ पर बैठा हूँ । इस तरह आपसे युद्ध करना अनुचित समझकर मैं नहीं लड़ूँगा । जो आप मुझसे युद्ध करना चाहते हैं तो कवच धारण कीजिए और रथ पर बैठिए ।

परशुरामजी ने हँसकर मुझसे कहा—हे भीष्म, पृथ्वी ही मेरा रथ है । चारों वेद घोड़े, वायु सारथी और वेदमाता त्रिमूर्ति गायत्री कवच हैं । इन्हीं से सुरक्षित होकर मैं तुमसे लड़ूँगा । हे दुर्योधन, इतना कहकर भगवान् परशुराम बाण बरसाने लगे ।

इसके बाद मैंने देखा कि वे इच्छामात्र से कल्पित दिव्य रथ पर बैठे हुए हैं । उस रथ में दिव्य घोड़े लगे हुए थे । वह रथ एक नगर के समान विस्तृत, अद्भुत, दर्शनीय, सब शस्त्रों से परिपूर्ण और प्रकाशमान था । भगवान् परशुराम के शरीर पर सुवर्णमय और चन्द्रमा-सूर्य के चिह्नों से शोभित दृढ़ कवच भी देख पड़ा । धनुष धारण किये, तरकस बाँधे, गोह के चमड़े के अंगुलि-त्राण पहने परशुरामजी को रथ पर देखकर मुझे आश्चर्य सा हुआ । उनके रथ का वेदज्ञ, प्रिय सखा अकृतत्राण हाँक रहे थे । परशुरामजी क्रोध के साथ बारम्बार युद्ध के लिए मुझे लल-

कारने लगे । मैं भी बड़ी प्रसन्नता और उत्साह के साथ अकेला ही उन महाबली, पराक्रमी, १० सूर्य-सदृश तेजस्वी, क्षत्रियों के काल परशुरामजी के सामने पहुँचा । फिर मैंने उनके रथ के घोड़ों को तीन बाणों से पीड़ित करने के उपरान्त धनुष रख-कर, रथ से उतरकर, गुरु-सम्मान के लिए पैदल ही परशुरामजी के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया । यथोचित सत्कार करके मैंने परशुरामजी से कहा—भगवन्, आप मेरे समान या मुझसे अधिक पराक्रमी हैं, यह जानकर मैं आपसे युद्ध करूँगा । हे गुरुवर, मुझे जय का आशीर्वाद दीजिए ।

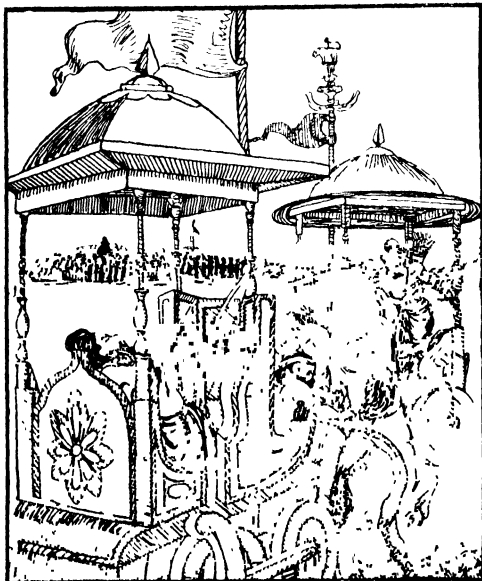


परशुरामजी ने कहा—बेटा, जय और अभ्युदय चाहनेवाले पुरुष का सदा ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए । जो लोग अपने से बड़े या श्रेष्ठ पुरुष से युद्ध करना चाहें उनका यही धर्म है । तुम अगर युद्ध के पहले इस तरह मेरे पास आकर शिष्टाचार का पालन न करते तो मैं तुम्हें शाप दे देता । अब जाओ, यत्न और धैर्य के साथ युद्ध में प्रवृत्त होओ । किन्तु मैं तुम्हें जय का आशीर्वाद नहीं दे सकता; क्योंकि तुम्हें जीतने के लिए ही यह युद्ध कर रहा हूँ । तुम्हारे इस आचरण से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ । जाओ, धर्म के अनुसार युद्ध करा ।

तब मैं उन्हें प्रणाम करके, फिर अपने रथ पर सवार होकर, शङ्ख बजाने लगा । इसके बाद परस्पर जय की इच्छा रखनेवाले हम दोनों का वह बहुत दिन तक चलनेवाला युद्ध छिड़ गया । पहले परशुरामजी ने नव सौ साठ तीक्ष्ण और तिरछी धारवाले बाणों से मुझे घायल किया । मेरे रथ के घोड़े और सारथी भी उनके बाणों से घायल होकर अपना काम करने में असमर्थ हो गये । पर मेरे होश-हवास में कुछ फर्क नहीं पड़ा । मैंने देवताओं और ब्राह्मणों को प्रणाम करके परशुरामजी से कहा—भगवन्, आपने यद्यपि गुरु की मर्यादा छोड़ दी है, तो भी मैं आपको आचार्य मानता हूँ । मैं इस समय धर्म के अनुसार जो कहता हूँ, वह सुनिए । मैं आपके शरीर में स्थित वेद, ब्रह्मतेज और आपकी की हुई तपस्या पर नहीं प्रहार करता । शस्त्र धारण करने से ब्राह्मण क्षत्रिय भाव को प्राप्त हो जाता है । मैं आपके उसी क्षत्रिय भाव पर २०

चोट करता हूँ। अब आप मेरे धनुष का पराक्रम और बाहुओं का बल देखिए। मैं अभी आपका धनुष काटे डालता हूँ। हे दुर्योधन, इतना कहकर मैंने तुरन्त एक तीक्ष्ण भल्ल बाण से उनका धनुष काटकर पृथ्वी पर गिरा दिया।

फिर मैं सम्मुख युद्ध में कङ्कपत्र-युक्त तीक्ष्ण सैकड़ों बाण छोड़ने लगा। वायुवेग से जाते हुए वे बाण उनके शरीर में घुसकर साँपों की तरह रक्त पीते हुए देख पड़ने लगे। परशु-



रामजी के शरीर से रक्त की धाराएँ बह निकलीं, और वे उस सुमेरु पर्वत की तरह जान पड़ने लगे जिससे गेरु की धारा बह रही हो। लाल फूलों के गुच्छों से शोभित अशोक या फूले हुए ढाँक के पेड़ की तरह अटल भाव से खड़े हुए भार्गव ने क्रोधित होकर दूसरा धनुष लिया और वे सुवर्ण-पुङ्ख-युक्त तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। साँप और आग की तरह वेग से दौड़कर मर्मस्थल पर चोट करनेवाले उन बाणों के लगने से मैं बहुत ही विचलित हो उठा। फिर अपने काँ किसी तरह सँभालकर मैंने क्रोध करके सौ बाण उनका मारे। उन सूर्य, साँप और आग के समान बाणों की चोट से वे अचेत हो गये। हे भरतकुल-

तिलक, तब मेरा क्रोध दूर हो गया और मैं करुणा और शोक से व्याकुल होकर कहने लगा कि युद्ध और क्षत्रिय-धर्म का अधिकार है! क्षत्रिय-धर्म से विवश होकर मैंने धर्मात्मा ब्राह्मण गुरु को बाणों से पीड़ा पहुँचाकर घोर पाप किया है। शोक से व्याकुल होकर मैं इसी तरह बारम्बार विलाप करने लगा। उसके बाद फिर मैंने परशुरामजी पर प्रहार नहीं किया। इसी समय

३८ भगवान् सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों से पृथ्वीमण्डल का तपाकर अस्ताचल को चले गये।

एक सौ अस्सी अध्याय

युद्ध का वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—फिर मेरे निपुण सारथी ने अपने, मेरे और घोड़ों के घाव अच्छे किये। दूसरे दिन सूर्योदय के समय, जब घोड़े सुस्ताकर नहलाये गये और वे पानी पी

चुके तब फिर युद्ध होने लगा । प्रतापी भार्गव ने मुझे कवच धारण कर और रथ पर बैठकर आते देखते ही अपना भी रथ युद्ध के लिए तैयार किया । उन्हें युद्ध की इच्छा से आते देखकर फिर मैं धनुष रखकर, रथ से उतरकर, उनके पास प्रणाम करने गया । प्रणाम के उपरान्त रथ पर बैठकर निर्भय भाव से युद्ध करने के लिए मैं उनके सामने पहुँचा ।

मैंने बाण बरसाना शुरू किया और वे भी बाणवर्षा करने लगे । वे क्रोध से विह्वल होकर लगातार मेरे ऊपर, विपैले साँपों के समान, भयङ्कर बाण छोड़ने लगे । मैं भी तीक्ष्ण भल्ल बाणों से आकाश में ही बारम्बार उनके बाणों को काटकर गिराने लगा । परशुरामजी ने मुझ पर जितने दिव्य अस्त्र चलाये, उन्हें मैंने अपने दिव्य अस्त्रों से व्यर्थ कर दिया । इस घटना से आकाशमार्ग में भयानक शब्द प्रतिध्वनित होने लगा ।

१०

इसके बाद उनके ऊपर मैंने वायव्य अस्त्र छोड़ा; उन्होंने गुह्यकाश से उस अस्त्र का निष्फल कर दिया । फिर मैंने मन्त्र पढ़कर आग्नेय अस्त्र छोड़ा; उन्होंने वारुणाश्व से उसे बेकार कर दिया । इसी तरह हम दोनों वीर एक दूसरे के बाणों और अस्त्रों को नष्ट करने लगे । फिर उन्होंने मेरी बाईं ओर आकर मेरी छाती में कई बाण मारे । मैं शिथिल और मूर्च्छित सा होकर रथ के सहारे टिक रहा । सारथी मुझे मूर्च्छित देखकर शीघ्र रथ को हटा ले गया । मुझे बाणों से घायल, मूर्च्छित और युद्ध से विमुख देखकर काशिराज की कन्या अम्बा और अक्रुतव्रण आदि परशुरामजी के अनुचर प्रसन्न होकर चिल्लाने लगे ।

जब मुझे होश आया तब मैंने सारथी से कहा—हे सूत ! मेरी पीड़ा दूर हो गई, मैं युद्ध करने के लिए तैयार हूँ, इसलिए मुझे फिर परशुरामजी के पास ले चलो । तब सारथी हवा के समान चलनेवाले सुन्दर घोड़ों को हाँककर युद्धभूमि की ओर ले चला । घोड़े भी मानों नाचते हुए उधर चले । मेरा रथ जब परशुरामजी के पास पहुँचा तब फिर मैं क्रोधित होकर, जय की इच्छा से, उनके ऊपर घोर बाणवर्षा करने लगा । उन्होंने एक साथ तीन-तीन बाण चलाकर मेरे हर एक बाण के तीन-तीन टुकड़े कर डाले ।

२०

फिर मैंने उन्हें मारने की इच्छा से एक काल-सदृश अत्यन्त प्रज्वलित बाण उनके ऊपर चलाया । वह बाण प्रबल वेग से उनकी छाती में धँस गया और वे भी मूर्च्छित होकर गिर पड़े । सूर्य के अस्त होने से जैसे सारा जगत् व्याकुल हो उठता है वैसे ही परशुरामजी के गिरने से चारों ओर हाहाकार मच गया । उन्हें मूर्च्छित देखकर काशिराज की कन्या और सब तपस्वी घबराकर उनके पास गये । वे लोग उन्हें हृदय से लगाकर शीतल हाथ फेरने और जय के आशीर्वादों से उन्हें आश्वास देने लगे । इतने में परशुरामजी होश में आकर उठ बैठे । उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाकर क्रोध से विह्वल स्वर में कहा—भीष्म, ठहर जाओ, तुमको मैं मारता हूँ । अब उन्होंने बाण चलाया और वह मेरे शरीर के वामभाग में लगा । मैं आँधी से खड़े पेड़ की तरह

चकर खाकर बहुत ही घबरा गया । इसके बाद परशुरामजी मेरे घोड़ों को मारकर मेरे रोम-रोम

३०



में बाण मारते हुए मुझे घायल करने लगे । मैंने भी फुर्ती के साथ बाण चलाकर उनके सब बाणों को आकाश में ही रोक दिया । हम दोनों के बाण बीच के अवकाश में छा गये । बाणों के जाल में सूर्य छिप गये । बादलों की आड़ में हवा मानों रुक गई ।

इसके बाद सूर्य की किरणों और बाणों के टकराने से तथा वायु के वेग से आग पैदा हो गई । वे सब बाण उसी आग में जल गये । अब परशुरामजी ने अत्यन्त क्रोध करके लाखों, करोड़ों, अयुतों और खबों बाण छोड़े । मैं भी सर्प-सदृश बाणों के प्रहार से उन्हें काट-काटकर गिराने लगा । उन कटे हुए बाणों का, पहाड़ की तरह, पृथ्वी पर ढेर लग गया । हे

दुर्योधन, इसी तरह हम दोनों का घोर युद्ध होने लगा । फिर सन्ध्या का समय उपस्थित होने पर गुरु और शिष्य दोनों ने युद्ध रोक दिया ।

एक सौ इक्यासी अध्याय

युद्ध का वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—उसके दूसरे दिन प्रातःकाल फिर मैं परशुरामजी के सामने जाकर उनसे युद्ध करने लगा । दिव्य अस्त्रों को जाननेवाले महावीर परशुराम हर रोज़ अनेक प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग करने लगे । मैं भी प्राणों का मोह छोड़कर उनसे लड़ने और अपने दिव्य अस्त्रों से उनके अस्त्रों को व्यर्थ करने लगा । प्राणों की ममता छोड़कर लड़नेवाले महातेजस्वी परशुरामजी अपने अस्त्रों को मेरे अस्त्रों से व्यर्थ होते देखकर क्रोध से विह्वल हो उठे । महात्मा परशुराम ने तब एक घोर, कालरूपिणी, प्रज्वलित उल्का के समान शक्ति मुझ पर चलाई । अपने तेज से जगत् को प्रकाशित कर रहो वह, प्रलयकाल के सूर्य के समान, शक्ति मेरी ओर तीव्र वेग से चली । मैंने भी अपने तीक्ष्ण बाण चलाकर उसके तीन टुकड़े कर डाले । इससे कट-कुटकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ी । उस समय पवित्र सुगन्धित हवा चलने लगी ।



क्रोधित परशुरामजी ने उस शक्ति को व्यर्थ होते देखकर और बारह भयङ्कर शक्तियाँ मेरे ऊपर चलाईं। तेज और तेज़ी के कारण उन शक्तियों की ओर आँख उठाकर देखना भी असम्भव था। मैंने देखा कि प्रलय के लिए उदय हुए बारह सूर्यों के समान तेज की राशि, अनेक रूपवाली, वे बारहों शक्तियाँ अग्निशिखा की तरह चारों ओर से आ रही हैं। यह देखकर मैं बहुत ही घबरा गया। हे दुर्योधन, मैंने अपने बाणों से परशुरामजी के अन्य अस्त्रों को नष्ट करने के साथ ही बारह बाणों से उन शक्तियों को भी व्यर्थ कर दिया। यह देखकर महात्मा परशुराम ने बहुत ही आश्चर्य और कोप करके सुवर्णदण्डयुक्त, काञ्चनपट्टमण्डित, उत्का के समान प्रज्वलित, घोररूपवाली और अनेक शक्तियाँ चलाईं। हे नरेन्द्र, मैंने ढाल पर उन्हें रोका और खड्ग से काट डाला। वे शक्तियाँ कटकर, व्यर्थ होकर, युद्धभूमि में गिर पड़ीं। मैं फिर अपने दिव्य अस्त्रयुक्त बाणों से भार्गव के सारथी का और घोड़ों को घायल करने लगा। हैहयवंश के श्रेष्ठ राजा सहस्रबाहु अर्जुन को मारनेवाले महात्मा परशुराम, केचुल छोड़े हुए साँपों की तरह, उन सुवर्णभूषित शक्तियों को कटकर गिरते देख क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गये और लगातार दिव्य अस्त्रों से युक्त बाण बरसाने लगे। टीढ़ीदल की तरह चले आ रहे वे बाण मेरे शरीर, सारथी, रथ और घोड़ों के ऊपर छा गये। उन बाणों से मेरे रथ का धुरा और अन्य अङ्ग कट गये। तब मैं भी उनके ऊपर बाण बरसाकर उन्हें घोर रूप से घायल करने लगा। उनके शरीर से रक्त की धाराएँ बह चलीं। मेरे बाणों से जैसे वे घायल और पीड़ित हो रहे थे, वैसे ही उनके बाणों से मैं भी विह्वल हो रहा था। इसी तरह युद्ध होते-होते सूर्य अस्त हो चले और हमारा युद्ध भी बन्द हो गया।

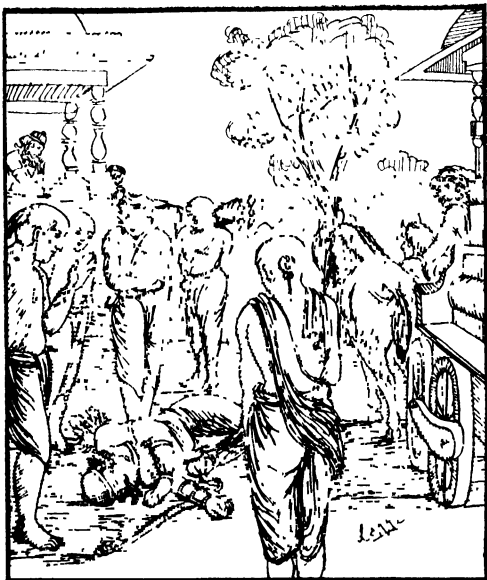
एक सौ वयासी अध्याय

धर्मासन लड़ाई का वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—दूसरे दिन, सूर्य के निकलने पर, फिर मैं परशुरामजी से युद्ध करने लगा। वे रथ पर चढ़कर, पर्वत के शिखर पर स्थित मेघ की तरह, मेरे ऊपर असंख्य बाण बरसाने लगे। मेरा प्रिय सारथी बाणों से पीड़ित होकर रथ के ऊपर से गिर पड़ा और दम भर में मर गया। यह देखकर मैं बहुत घबराया और डरा।

सारथी के मारे जाने पर परशुरामजी अपने वेगशाली तीक्ष्ण बाण मुझ पर बरसाने लगे। वे बाण मेरे हृदय में घुस गये और मैं वेदना से पीड़ित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। मुझे मरा समझकर परशुरामजी को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे बारम्बार मेघ की तरह गरजने लगे। उनके साथी ऋषि आदि भी सिंहनाद के साथ अपना आनन्द प्रकट करने लगे। मेरे पास खड़े हुए कुरुवंशी तथा आये हुए अन्य दर्शक लोग मुझे पृथ्वी पर गिरा देखकर अत्यन्त व्याकुल हुए।

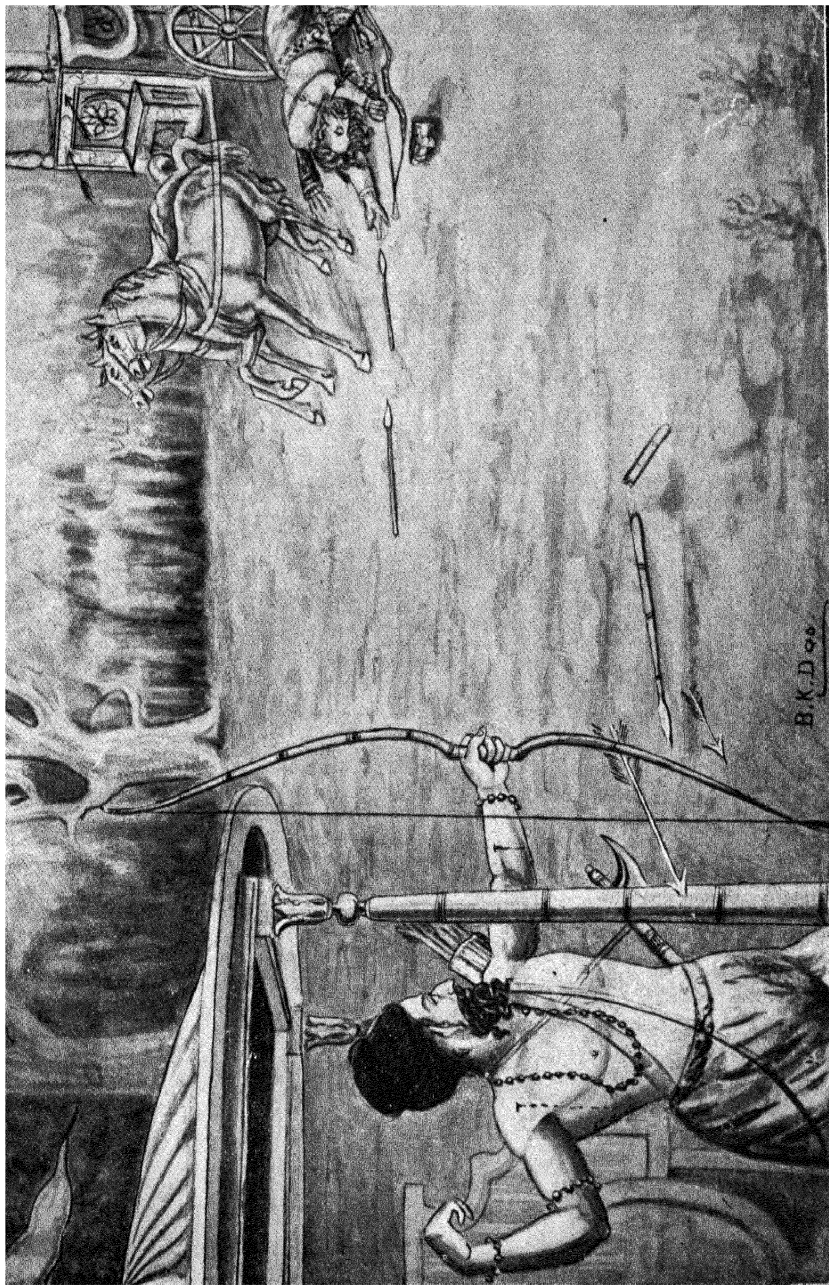
इसके बाद अग्नि के समान तेजस्वी आठ ब्राह्मण मुझे देख पड़े। मैंने देखा, उन्होंने मुझे चारों ओर से घेरकर अपनी भुजाओं के बीच में ले लिया। इस तरह आकाश-मार्ग



में मुझे लेकर शीतल जल छिड़ककर वे मेरी रक्षा करने लगे। आकाशमार्ग में स्थित होकर मैंने एक साँस ली। तब उन ब्राह्मणों ने कहा—हे भीष्म, तुम्हें कुछ भय नहीं है। तुम कल्याण और विजय प्राप्त करोगे। राजन्, उनके इन वचनों को सुनकर मुझे सन्तोष हुआ। मैंने उठकर देखा कि माता गङ्गा मेरे रथ पर खड़ी हुई हैं। वे मेरे लिये और घोड़े ले आई थीं। मैं माता के चरणों में प्रणाम करके ब्राह्मणरूपधारी पितरों (वसु देव-ताओं) के लाये हुए रथ पर सवार हुआ। घोड़े, रथ और अन्य युद्ध-सामग्री सहित मेरी रक्षा गङ्गाजी करने लगीं। तब हाथ जोड़कर मैंने उनको बिदा कर दिया।

दिन डूबनेवाला था। उस समय मैं आप ही सारथी का भी काम करता हुआ भार्गव से युद्ध करने लगा। मैंने एक बहुत ही प्रबल, वेगशाली, हृदयभेदी बाण परशुरामजी के हृदय को ताककर मारा। वह बाण लगने से परशुरामजी ऐसे पीड़ित हुए कि उनके हाथ से धनुष गिर पड़ा और वे घुटनों के बल पृथ्वी पर गिरकर अचेत हो गये। उस समय आकाश से उल्कापात होने लगे। बिजलियाँ चमकने लगीं। आकाश में प्रचण्ड शब्द सुन पड़ने लगा। मेघों से रक्त बरसने लगा। सूर्य को एकाएक राहु ने ग्रस लिया। बारम्बार भूकम्प होने लगा। प्रबल आँधी उठती देख पड़ी। गिद्ध, कङ्क आदि मांसभोजी पक्षी प्रसन्न होकर इधर-उधर दौड़ते और उड़ते दिखाई पड़ने लगे। दिग्दाह दिखाई पड़ा और गीदड़ों के दल चिल्लाहट मचाने लगे। बिना बजाये ही नगाड़े कठोर शब्द से बज उठे। हे सौम्य, परशुरामजी के मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरने से इस तरह के सैकड़ों अशुभ उत्पात देख पड़े।

कुछ समय के बाद परशुरामजी की बेहोशी दूर हो गई; वे एकाएक उठ खड़े हुए। युद्ध की इच्छा से क्रोधित परशुरामजी फिर मेरे सामने आये। उनको मुझसे लड़ने के लिए फिर महा-धनुष चढ़ाते देखकर दयालु ऋषियों ने उनके पास जाकर मना किया कि अब युद्ध न करो।



वे बाण मेरे हृदय में घुस गये और मैं बेदना से पीड़ित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ।

सन्ध्या भी हो आई थी, इसलिए क्रोधविह्वल होने पर भी परशुरामजी ने उन ऋषियों का कहना मानकर कालाग्नितुल्य बाण धनुष से उतार लिया। आकाश में धूल छा रही थी, सूर्य भी अपनी किरणें समेटकर अस्ताचल पर पहुँच गये थे। शान्ति देनेवाली रात्रि आ गई; सुखदायक शीतल हवा चलने लगी। हम लोगों ने युद्ध बन्द कर दिया। इसी तरह हम दोनों तेईस दिन तक युद्ध करते रहे। सवेरे युद्ध शुरू होता था और सन्ध्या को बन्द हो जाता था।

३०

एक सौ तिरासी अध्याय

भीष्म को वसु देवताओं के दर्शन मिलना

भीष्मजी कहते हैं—एक रात को ब्राह्मणों, देवताओं, चत्रियों, राज्ञों, भूतों और पितरों आदि को प्रणाम करने के बाद एकान्त में लेटकर मैं सोचने लगा कि परशुरामजी से युद्ध करते बहुत दिन हो गये, किन्तु किसी तरह मैं उन्हें हरा नहीं सका। यदि मैं उन्हें हरा सकता हूँ तो प्रसन्न होकर देवता लोग मुझे स्वर्ग में दर्शन दें। यों सोचकर मैं दाहनी करवट से सो रहा।

अचेत होकर रथ से गिरने के समय मुझे उठाने, पकड़ने, बचाने और अभय-दान करनेवाले वे ही आठों ब्राह्मण स्वर्ग में मुझे देख पड़े। चारों ओर से मुझे घेरकर वे कहने लगे—हे भीष्म, तुम हमारा अवतार हो, इसलिए हम सदा तुम्हारी रक्षा किया करते हैं। परशुराम कभी तुम्हें हरा नहीं सकेंगे, तुम्हीं उन्हें परास्त करोगे। तुम्हें कुछ डर नहीं है—उठो। पहले जन्म में तुम यह, विश्वकर्ता प्रजापति का, प्रस्वाप अस्त्र जानते थे। इस समय वही अस्त्र अपने आप तुम्हें ज्ञात हो जायगा। पृथ्वी पर परशुराम या और कोई मनुष्य उस अस्त्र को नहीं जानता। उसका स्मरण और प्रयोग करने से वह आप ही तुम्हारे पास आ जायगा। उस अस्त्र के बल से तुम परशुराम को जीतेगे और अन्य महावीर अजेय पुरुषों को भी परास्त कर सकोगे। उस अस्त्र से परशुराम का प्राणान्त नहीं होगा और



१०

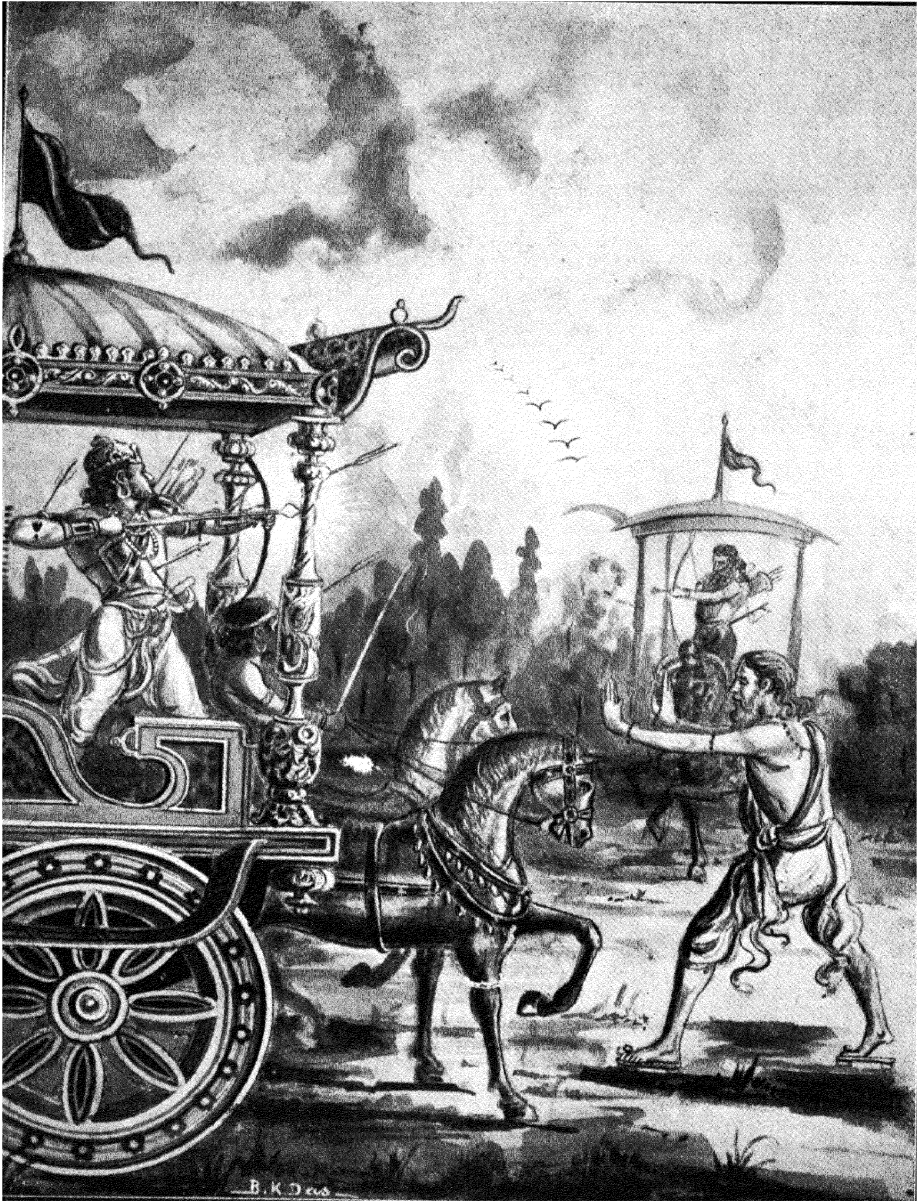
तुम पाप से बच जाओगे। परशुराम तुम्हारे अस्त्र के प्रभाव से पीड़ित होकर युद्ध-भूमि में सो जायेंगे। इस प्रकार उन्हें जीतकर फिर सम्बोधन अस्त्र से जगा देना। आज ही सबेरे रथ पर बैठकर तुम परशुराम पर प्रस्वाप अस्त्र का प्रयोग करना। सोने की और मरने की दशा एक सी होती है। इस प्रकार तुम्हारा प्रयोजन भी सिद्ध हो जायगा और परशुराम की मृत्यु भी नहीं होगी। परशुराम किसी को मारे मर नहीं सकते, इस कारण विजय-प्राप्ति के लिए तुम प्रस्वाप अस्त्र का प्रयोग करो। हे दुर्योधन, एक ही प्रकार के रूपवाले वे तेजस्वी आठों ब्राह्मण यह कहकर अन्तर्धान हो गये।

एक सौ चौरासी अध्याय

युद्ध का वर्णन

भीष्मजी कहते हैं—सबेरा होने पर उठकर रात के उस स्वप्न को याद कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद फिर सब प्राणियों का भय से विह्वल बनानेवाला मेरा और परशुरामजी का युद्ध होने लगा। परशुरामजी मेरे ऊपर उग्र बाणों की वर्षा करने लगे। मैं भी अपने बाणों से उन्हें निष्फल करने लगा। पहले दिन की घटना से अत्यन्त क्रोधित परशुरामजी ने इन्द्र के वज्र और यमराज के दण्ड के समान भयानक एक शक्ति मेरे ऊपर चलाई। अग्नि के समान प्रज्वलित, चारों ओर अपने तेज से लपलपाती हुई वह शक्ति बिजली के वेग से आकर मेरे कन्धे में लगी। मेरे घायल शरीर से, पर्वत से गेरू के झरने की तरह, लगातार रक्त की धारा बहने लगी। तब मैंने अत्यन्त क्रोध करके विपैले साँप और मृत्यु के समान भयङ्कर एक बाण उनके ऊपर चलाया। वह बाण परशुरामजी के मस्तक में लगा और वे एक शिखरवाले पर्वत के समान शोभायमान हुए। उन्होंने भी क्रुपित होकर बलपूर्वक अपना धनुष खींचा और शत्रुओं को १० मारनेवाला कालान्तकतुल्य एक बाण छोड़ा। वह बाण साँप की तरह फुफकारता हुआ आकर मेरी छाती में घुस गया। उस बाण के लगने से रक्त बह चला और मैं बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर मैंने होश में आकर प्रज्वलित वज्र के समान एक शक्ति उनके हृदय में ताककर मारी। उसके लगने से वे विचलित हो गये। उस समय भार्गव के प्रिय सखा अक्रुतव्रण हृदय से लगाकर, मधुर वचनों से, उन्हें ढाढ़स बँधाने लगे।

महावीर परशुराम ने सँभलकर क्रोध के मारे मुझ पर ब्रह्मास्त्र चलाया। मैंने भी उस अस्त्र को शान्त करने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। महाराज, वह अस्त्र आकाश में प्रज्वलित हो उठा। उसके भयङ्कर तेज को देखकर लोगों ने समझा कि प्रलय होनेवाला है। अस्त्र-तेज से युक्त मेरे और उनके दोनों बाण आकाश में ही टकराकर जल उठे—हम लोगों के पास तक नहीं आये। उनके तेज को देखकर संसार के सब प्राणी शङ्कित हो गये। सब ऋषि,



देवर्षि नारदने मेरे पास आकर कहा—भैया भीष्म,.....तुम इस समय उस
अस्त्र का प्रयोग मत करो ।

(पृ० १८५३)

*

गन्धर्व और देवता भी उन बाणों के तेज से पीड़ित होकर मानों जलने लगे। पर्वत, वन, वृक्ष आदि सहित सारी पृथ्वी काँप उठी और संसार के सब प्राणी “त्राहि-त्राहि” करने लगे। २० आकाशमण्डल में आग सी लग गई और दिशाओं में धुआँ उठने लगा। आकाशचारी लोग यह उत्पात देखकर अपने-अपने स्थानों से भाग चले। चारों ओर हाहाकार मच गया। मैंने ठीक अवसर देखकर, ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुसार, प्रस्वाप अस्त्र छोड़ने का इरादा किया। उसी समय वह अद्भुत अस्त्र मेरे हृदय में भासित हो उठा। २३

एक सौ पचासी अध्याय

परशुरामजी का शस्त्र-त्याग

भीष्मजी कहते हैं—उस समय “हे भीष्म, तुम प्रस्वाप अस्त्र न छोड़ना!” इस प्रकार का कोलाहल आकाश में सुन पड़ने लगा। परन्तु उस पर ध्यान न देकर मैं परशुरामजी पर छोड़ने के लिए प्रस्वाप अस्त्र का सन्धान करने लगा। इसी बीच में देवर्षि नारद ने मेरे पास आकर कहा—भैया भीष्म, आकाश में स्थित देवता लोग तुम्हें प्रस्वाप अस्त्र न छोड़ने की आज्ञा दे रहे हैं। इसलिए तुम इस समय उस अस्त्र का प्रयोग मत करो। परशुरामजी महा-तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, ब्राह्मण और [नारायण का अवतार होने के सिवा] तुम्हारे माननीय गुरु हैं। इस कारण किसी तरह उनका अपमान मत करो।

उसी समय वे आठों ब्राह्मण फिर मुझे आकाश में देख पड़े। उन्होंने मुसकाकर मुझसे कहा— हे भीष्म, देवर्षि नारद जो कहते हैं वही करो। इनकी आज्ञा लोंकों के लिए मङ्गल-दायिनी होती है। हे दुर्योधन, उन ब्राह्मणों के यों कहने पर मैंने प्रस्वाप अस्त्र का उपसंहार कर लिया और ब्रह्मास्त्र को ही उद्दीपित किया। महात्मा परशुराम ने प्रस्वाप अस्त्र का प्रयोग न होते देखकर निष्फल क्रोध से गरजकर कहा—भीष्म ने मुझ मन्दमति को जीत लिया!

इसी बीच में परशुरामजी ने देखा कि उनके पिता और माननीय पितामह वहाँ पर आ गये। वे परशुरामजी के सामने जाकर समझाते हुए मधुर वचनों से कहने लगे—बेटा, भीष्म ऐसे क्षत्रिय से युद्ध करने का साहस अब कभी न करना। युद्ध करना क्षत्रिय का ही धर्म है। १० ब्राह्मणों का परम धन और धर्म वेद-शास्त्र का पढ़ना और व्रतचर्या ही है। इसी कारण हम पहले भी शस्त्र-धारण का उग्र कार्य छोड़ देने के लिए कह चुके हैं; पर तुमने नहीं माना। भीष्म के साथ युद्ध करके तुम उसका फल पा चुके। अब कभी युद्ध न करना। जाओ, धनुष को छोड़कर तपस्या में मन लगाओ। देखो, शान्तनु को पुत्र भीष्म को देवताओं ने यह कहकर युद्ध से रोक दिया है कि ‘हे भीष्म, यह युद्ध बन्द कर दे। हमारा तुमसे बारम्बार कहना है कि

अपने गुरु परशुराम से युद्ध मत करो । हे कुरुश्रेष्ठ, युद्ध में गुरु को जीतना तुम्हारा न्यायोचित कार्य नहीं कहा जा सकता । हे भीष्म, युद्धभूमि में ब्राह्मण और गुरु का सम्मान करके इस इरादे को छोड़ दो । हे परशुराम, हम तुम्हारे पितर और माननीय हैं । इसी लिए तुमसे युद्ध बन्द करने के लिए कह रहे हैं । पुत्र ! भीष्म वसुओं का अवतार हैं । बड़े भाग्य की बात है कि तुम उनसे लड़कर भी अब तक जीवित हो । शान्तनु और गङ्गा के पुत्र, महा-यशस्वी, वसुओं के अवतार इन भीष्म को तुम कैसे जीत सकते हो ? इसलिए युद्ध बन्द कर दो । विधाता ने इन्द्र के पुत्र, पाण्डवश्रेष्ठ, महाबली, सनातन देव प्रजापति नर के अवतार २० अर्जुन के हाथ से ही भीष्म की मृत्यु लिखी है ।

पितरों के ये वचन सुनकर परशुरामजी ने उनसे कहा—मैं युद्ध से विमुख न होऊँगा; मेरा यही व्रत है । आज तक मैंने कभी युद्ध से मुँह नहीं मोड़ा । आप लोग जाकर भीष्म को चाहे युद्ध से हटा दीजिए; मैं युद्ध से हट नहीं सकता ।

हे दुर्योधन, तब नारद को साथ लेकर ऋचीक आदि महर्षि मेरे पास आये और कहने लगे—हे भीष्म, युद्ध बन्द कर दो; ब्राह्मण और गुरु परशुराम का सम्मान करो ।

राजन्, तब मैंने भी क्षत्रिय-धर्म के अनुसार उनसे कहा—मान्यवरो, मेरा यह नियम है कि मैं विमुख होकर या पीठ में बाण की चोट खाकर संग्राम से नहीं लौटता । मेरा दृढ़ सङ्कल्प है कि मैं लोभ, दीनता, भय, आदि किसी कारण से क्षत्रिय-धर्म को नहीं छोड़ूँगा ।

अब नारद आदि ऋषि और मेरी माता गङ्गाजी युद्धभूमि में आकर हम दोनों के बीच में खड़ी हो गई । किन्तु मैं पहले की ही तरह दृढ़ निश्चय से धनुष पर बाण चढ़ाये युद्ध के लिए डटा खड़ा रहा । तब उन लोगों ने परशुरामजी से कहा—हे परशुराम, ब्राह्मण का हृदय मक्खन की तरह मुलायम कहा गया है । इसलिए तुम्हीं शान्त होकर युद्ध से हट जाओ । भीष्म का ३० तुम नहीं मार सकते और भीष्म तुम्हें नहीं मार सकते । इसलिए यह संग्राम व्यर्थ है । हे दुर्योधन, यों कहकर बीच में अड़कर उन ऋषियों ने परशुरामजी से धनुष रखवा दिया ।

इसी समय फिर वे, आठ ग्रहों के समान उदय को प्राप्त, तेजस्वी आठों ब्राह्मण मुझे देख पड़े । उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कहा—‘हे भीष्म, अब तुम विनीत भाव से अपने गुरु परशुराम के पास जाकर युद्ध शान्त करो, जिसमें सब लोको का हित हो ।’ परशुरामजी को पितरों के अनुरोध से शस्त्र-त्याग करते देखकर मैंने उन ब्राह्मणों का कहा मान लिया । मेरे शरीर में भी हज़ारों घाव थे । उसी हालत से परशुरामजी के पास जाकर मैंने उनके चरणों में प्रणाम किया । भक्ति के साथ मुझे प्रणाम करते देखकर महातपस्वी परशुराम ने भी प्रसन्नतापूर्वक हँसकर मुझसे कहा—हे वीर भीष्म, इस पृथ्वी पर तुम्हारे समान बली और योद्धा क्षत्रिय दूसरा नहीं है । इस युद्ध में तुमने मुझे सन्तुष्ट कर दिया । मैं आज्ञा देता हूँ, अपनी नगरी को जाओ ।

इसके बाद उन सब महात्माओं के बीच मेरे सामने काशिराज की कन्या अम्बा को बुलाकर वे दीन भाव से इस प्रकार कहने लगे ।

३७

एक सौ छियारी अध्याय

अम्बा का परशुरामजी से निराश होकर फिर तप करने के लिए जाना

परशुरामजी ने कहा—राजकुमारी, सबके सामने मैंने यथाशक्ति पौरुष दिखाया और दिव्य अस्त्रों से युद्ध किया । मैं भीष्म को परास्त नहीं कर सका । मैं अपनी सारी शक्ति और पूरा बल लगाकर तुम्हारी इष्टसिद्धि के लिए उद्योग कर चुका । मुझमें इतनी ही शक्ति और इतना ही बल है । इसलिए अब तुम्हारा जहाँ जी चाहे वहाँ जाओ । अथवा इसके सिवा और जो कुछ कहो वह मैं करूँ । इस समय तुम भीष्म की ही शरण में जाओ; तुम्हारे लिए दूसरा उपाय नहीं है । तुम्हारे सामने ही दिव्य अस्त्र और बाण चलाकर भीष्म ने मुझे जीत लिया है । हे दुर्योधन, इतना कहकर परशुरामजी लम्बी साँस लेकर चुप हो रहे ।

तब अम्बा ने कहा—भगवन्, इसमें सन्देह नहीं कि युद्ध में देवता भी उदारमति भीष्म को जीत नहीं सकते । आपने उत्साहपूर्वक यथाशक्ति मेरे काम के लिए उद्योग किया; किन्तु भीष्म का पौरुष और अद्भुत अस्त्र-बल अत्यन्त अनिवार्य होने के कारण आप उन्हें हरा नहीं सके; परन्तु मैं अब भीष्म की शरण में नहीं जाऊँगी । इस समय मैं कहीं जाकर ऐसा उपाय करूँगी जिसमें भीष्म को मारकर अपनी इच्छा पूरी कर सकूँ । राजन्, क्रोध से आँखें लाल किये हुए अम्बा इतना कहकर मेरे वध की इच्छा से तप करने के लिए वहाँ से चल दी ।

१०

इसके बाद परशुरामजी यथोचित रूप से मेरा सम्मान करके, मुझसे विदा होकर, ऋषियों के साथ महेन्द्र पर्वत को चले गये । मैं भी रथ पर चढ़कर अपने नगर में आया । ब्राह्मण लोग मेरी स्तुति करने लगे । माता सत्यवती के पास जाकर मैंने आदि से अन्त तक सब हाल कहा । उन्होंने मेरा अभिनन्दन किया । अब मैंने अम्बा के कामों की खबर लाने के लिए निपुण, बुद्धिमान्, जासूसों को आज्ञा दी । वे मेरा प्रिय करने के लिए अम्बा का पीछा करके जहाँ वह जाती थी, जो करती और कहती थी, सो सब नित्य मेरे पास कहला भेजते थे । भैया, अम्बा जब से तपस्या का इरादा करके वन को गई तब से मैं व्यथित, दीन और किंकर्तव्यविमूढ़ सा होकर चिन्ता करने लगा । तपस्या में तत्पर व्रतधारी ब्राह्मणों के सिवा कोई क्षत्रिय आज तक अपने पराक्रम से मुझे जीत नहीं सका । इसके बाद मैंने तपस्वी नारद और व्यासजी के आगे सब वृत्तान्त कहा । उन्होंने मुझसे कहा—भीष्म, काशिराज की कन्या के तप का हाल सुनकर तुम खेद न करो । कोई भी पौरुष के द्वारा दैव को मिथ्या नहीं कर सकता ।

उधर अम्बा यमुना के किनारे तपोवन में जाकर अलौकिक उग्र तप करने लगी। उसका शरीर क्षीण और रूखा हो गया, केशों की जटाएँ बन गईं, शरीर में मैल जम गया। यों पेड़ की



तरह खड़े रहकर, खाना-पीना छोड़कर, केवल हवा के सहारे वह छः महीने तक तप करती रही। फिर उपवास के साथ यमुना-जल के भीतर, केवल जल का आचमन करके, एक वर्ष तक तप करती रही। फिर एक वर्ष तक पेड़ से गिरे सूखे पत्ते चबाकर और एक वर्ष तक तीव्र क्रोध के मारे अँगूठे के बल पृथ्वी पर खड़े रहकर तप किया। अम्बा ने इस तरह बारह वर्ष तक घोर तप करके तीनों लोकों को सन्ताप से व्याकुल कर दिया। अम्बा के भाई-बन्धुओं ने विशेष यत्न किया, पर वे उसे उसके इरादे से डिगा नहीं सके।

इसके बाद अम्बा वत्सभूमि नाम के तपोवन में पहुँची। उस तपोवन में अनेक तपस्वी और सिद्ध-चारण आदि रहते हैं। वहाँ पर वह पवित्र तीर्थों में स्नान करती हुई अपनी इच्छा के अनुसार इधर-उधर विचरने लगी। इस तरह दुष्कर व्रत और तप करती हुई अम्बा क्रमशः नन्दाश्रम, उल्काश्रम, च्यवनाश्रम, ब्रह्मस्थान, प्रयाग, देवयजनतीर्थ, देवारण्य, भोगवती, विश्वामित्राश्रम, माण्डव्याश्रम, दिलीपाश्रम, रामहृद और पैल-गर्ग के आश्रम में गई। इन स्थानों में स्नान करके उसने कठोर तप किया। इसी समय मेरी माता गङ्गाजी ने जल के भीतर प्रकट होकर अम्बा से कहा—हे राजकुमारी, तुम ऐसा क्लेश क्यों सह रही हो ?

अम्बा ने हाथ जोड़कर कहा—हे कमल-नयनी, महाबली परशुराम भी भीष्म से हार गये। भीष्म को कोई हरा नहीं सकता। इस कारण मैं खुद उन्हें मारने के लिए तप कर रही हूँ। पृथ्वी भर में घूमकर, तप करके, जिस तरह होगा, मैं भीष्म को परास्त करूँगी। भीष्म की मृत्यु ही मेरी इस तपस्या का फल और उद्देश्य है।

गङ्गाजी ने कहा—भद्रे, तुम्हारा यह अनुष्ठान अत्यन्त कुटिल और अनुचित है। इस कारण कभी तुम्हारा मनोरथ पूरा न होगा। जो तुम भीष्म को मारने के लिए तप करते-करते अपना शरीर छोड़ देगी तो कुटिलगति, कुतीर्थसम्पन्न भयानक जल-जन्तुओं से पूर्ण, भयङ्कर

नदी की योनि पाओगी। केवल चार महीने, बरसात भर, तुम जल से भरी रहेगी। हे दुर्योधन, मुसकाती हुई माता गङ्गाजी यों कहकर अन्तर्धान हो गईं।

अम्बा फिर कभी आठवें और कभी दसवें महीने कुछ जल पीकर तप करने लगी। कुछ दिन के बाद उसने जल का आचमन भी छोड़ दिया। तीर्थयात्रा के लोभ से अम्बा फिर वत्स-भूमि में आकर रहने लगी। वहाँ तप के प्रभाव से उसने आधे शरीर से तो कन्या का रूप रक्खा और आधे शरीर से वह जल-जन्तुपूर्ण, दुस्तर, कुटिल बरसाती नदी होकर प्रबल वेग से बहने लगी। ४१

एक सौ सत्तासी अध्याय

अम्बा का चिता में जलना और राजा दुपद के यहाँ उत्पन्न होना

भीष्म पितामह कहते हैं कि इसके बाद तपस्वी ऋषियों ने अम्बा को दृढ़ सङ्कल्प के साथ तप में तत्पर देखकर मना करते हुए कहा—हे राजकुमारी, तुम तप करना छोड़ दे; हमसे कहो, हम तुम्हारा कार्य कर देंगे।

अम्बा ने कहा—ऋषिगण, भीष्म ने पहले हर लाकर और फिर त्यागकर मुझे स्वामी-मुख और गृहस्थाश्रम के धर्म से वञ्चित कर दिया है। इस समय उन्हीं की मृत्यु के लिए मैं यह घोर तप कर रही हूँ। और किसी का अनिष्ट करना मेरा उद्देश्य नहीं है। मैं भीष्म को मारकर ही दम लूँगी। यही मेरा प्रधान सङ्कल्प है। मैं उन्हीं के कारण ऐसे कठिन क्लेश सह रही हूँ, पति-मुख से भ्रष्ट हुई हूँ। मैं उनके दोष से 'न स्त्री और न पुरुष' होकर समय बिता रही हूँ। मैंने निश्चय कर लिया है कि भीष्म को मारे बिना कभी न रहूँगी। स्त्री-भाव से खिन्न होकर मैंने पुरुषों के समान पौरुष का काम करने का निश्चय कर लिया है। मैं भीष्म से बदला लेना चाहती हूँ, इस कारण आप लोग मुझे मना न करें।

उस समय स्वयं भगवान् शङ्कर उन ब्राह्मणों के बीच अम्बा के सामने अपने रूप से प्रकट हुए और अम्बा से कहने लगे—पुत्री! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, इसलिए मुझसे वरदान माँगो। अम्बा ने कहा—भगवन्, मुझे भीष्म को मारने की इच्छा है। शिवजी ने कहा—तुम अवश्य भीष्म को मार सकोगी। अम्बा ने फिर कहा—दीनमाथ! मैं स्त्री हूँ, इसलिए किस तरह जय प्राप्त कर सकूँगी? स्त्री-स्वभाव से और इतने दिन तप करने के कारण मेरा हृदय बिलकुल ही शान्त हो रहा है। आप कह चुके हैं कि मैं भीष्म को मार सकूँगी। इसलिए ऐसा उपाय कीजिए जिसमें आपका दिया यह वर सत्य हो। मैं युद्ध में भीष्म को मार सकूँ, यही मेरी इच्छा है। रुद्र ने कहा—भद्रे, मेरा वचन भूठ नहीं हो सकता; वह अवश्य सत्य होगा। तुम

[दूसरे जन्म में] पुरुषत्व प्राप्त करके युद्ध में भीष्म को मारोगी । उस जन्म में भी तुम्हें इस



जन्म का सब वृत्तान्त स्मरण रहेगा । तुम राजा द्रुपद के यहाँ जन्म लेकर महारथी, शीघ्रता के साथ युद्ध करनेवाले, फुरतीले पुरुष का रूप धारण करोगी । हे कल्याणी, मेरा यह कहना मिथ्या नहीं होगा । हे दुर्योधन, भगवान् शङ्कर इतना कहकर ब्राह्मणों के सामने अन्तर्धान हो गये ।

इसके बाद तपस्विनी अम्बा ने वन से सूखी लकड़ियाँ लाकर उसी समय यमुना के किनारे एक बड़ी सी चिता लगाई और उसमें आग लगा दी । चिता के जल उठने पर अम्बा ने ब्राह्मणों के आगे क्रोध के साथ कहा—मैं भीष्म को मारने के लिए इस आग

१८ में प्रवेश करती हूँ । बस अम्बा उस चिता में बैठ गई ।

एक सौ अट्ठासी अध्याय

राजा द्रुपद के यहाँ कन्या का उत्पन्न होना

दुर्योधन ने पूछा—हे पितामह, शिखण्डी पहले कन्या था; वह पुरुष कैसे हो गया ?

भीष्मजी ने कहा—राजेन्द्र, द्रुपद राजा की रानी के कोई पुत्र नहीं था । इसी समय पुत्र-प्राप्ति के लिए राजा द्रुपद घोर तप करके शङ्कर की आराधना करने लगे । मेरा वध भी राजा को अभीष्ट था, इसलिए वे कन्या नहीं, पुत्र ही चाहते थे । राजा द्रुपद ने कठोर तप से शङ्कर को प्रसन्न करके उनसे कहा—भगवन्, मेरे एक ऐसा पुत्र हो जो भीष्म को मारे । मैं यही वर माँगता हूँ । महादेवजी ने कहा—राजन्, तुम्हारे एक कन्या होगी, पर वह पीछे से पुरुष हो जायगी । मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता । इसलिए अब तप मत करो ।

राजा द्रुपद लौटकर अपने नगर में गये । उन्होंने रानी से कहा—प्रिये, मैंने बड़े यत्न से तप करके महादेवजी को प्रसन्न किया तब उन्होंने मुझे यह वर दिया है कि तुम्हारे एक

कन्या होगी, जो अन्त को पुरुष हो जायगी। मैंने उनसे फिर पुत्र के लिए प्रार्थना की; किन्तु उन्होंने कहा कि मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता।

इसके उपरान्त द्रुपद की रानी ने ऋतु के समय विधिपूर्वक स्वामी की सेवा करके गर्भ धारण किया। वह गर्भ दिन-दिन बढ़ने लगा। पुत्र की इच्छा रखनेवाले राजा द्रुपद पुत्र-स्नेह के कारण सब तरह से अपनी रानी की सेवा का प्रबन्ध करके हर समय उनकी इच्छाएँ पूरी करने के लिए तैयार रहते थे। रानी के यथासमय एक परम सुन्दरी कन्या पैदा हुई; किन्तु रानी ने प्रसिद्ध कर दिया कि मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है। पुत्रहीन राजा द्रुपद को शङ्कर के वरदान पर विश्वास था, इसलिए उन्होंने कन्या का होना छिपाकर पुत्र की तरह उसके सब जातकर्म आदि संस्कार किये। रानी ने भी उस कन्या का सबसे छिपाकर असली हाल किसी पर प्रकट नहीं होने दिया। राजा द्रुपद के सिवा और किसी को यह गुप्त रहस्य नहीं मालूम हुआ। उस कन्या का नाम मर्दों का सा शिखण्डी रक्खा गया। केवल मुझे ही गुप्तचर के द्वारा, नारदजी के कहने से और अम्बा की तपस्या का हाल मालूम होने से, शिखण्डी का रहस्य विदित हो गया था।

८

२०

एक सौ नवासो अध्याय

शिखण्डी का विवाह

भीष्मजी ने कहा—हे दुर्योधन, इसके बाद राजा द्रुपद पुरुषवेष में छिपी हुई कन्या को चित्र-रचना और अन्य अनेक शिल्पों की शिक्षा दिलाने लगे। द्रोणाचार्य उसे अस्त्र-शस्त्र की कला सिखाने के लिए नियुक्त हुए। राजा द्रुपद की रानी ने पुत्र की तरह अपनी कन्या के ब्याह के लिए राजा से अनुरोध किया। कन्या को जवान देखकर राजा और रानी दोनों को चिन्ता हुई।

राजा ने रानी से कहा—प्रिये, शङ्करजी की आज्ञा से मैंने कन्या को छिपा रक्खा है। अब वह शोक बढ़ानेवाली कन्या जवान हुई है। रानी ने कहा—महाराज, भगवान् शङ्कर तीनों लोकों के ईश्वर हैं; उनकी बात भूठी या निष्फल होना असम्भव है। मैं इस समय जो कहती हूँ वह सुनकर उसके अनुसार काम कीजिए। मुझे दृढ़ निश्चय है कि महादेवजी का कहा कभी मिथ्या न होगा। इसलिए इस समय विधिपूर्वक पुत्र की तरह कन्या का ब्याह कर दीजिए।

द्रुपद और उनकी रानी दोनों ने यह निश्चय करके, सब राजाओं के कुल आदि की जाँच करके, कन्या के लिए कन्या की खोज करना शुरू किया। इसके बाद द्रुपद ने बड़े पराक्रमी और दुर्जय दशार्ण देश के राजा हिरण्यवर्मा से उनकी कन्या माँगी। हिरण्यवर्मा ने खुशी के साथ अपनी कन्या शिखण्डी को ब्याह दी। ब्याह के बाद शिखण्डी काम्पल्य नगर (द्रुपद की

१०

राजधानी) को लौट आया। यथासमय हिरण्यवर्मा की कन्या जवान हुई और उसे मालूम हो गया कि शिखण्डी पुरुष नहीं, स्त्री है। तब उसने लज्जित होकर यह हाल अपनी धाय और सखियों से कह दिया। धाय और सखियाँ यह हाल सुनकर बहुत दुःखित हुईं। उन्होंने कुछ दासियों के द्वारा यह समाचार हिरण्यवर्मा के पास कहला भेजा। सब हाल सुनकर दशार्ण-नरेश क्रोधित हो उठे। उस समय भी शिखण्डी अपना स्त्री-भाव छिपाकर, पुरुष वेष से, अपने पिता राजा द्रुपद के यहाँ सुखपूर्वक रहता था।

कुछ दिन के बाद यह हाल जानने पर क्रोध करके हिरण्यवर्मा ने राजा द्रुपद के पास अपना दूत भेजा। दूत ने द्रुपद के पास आकर एकान्त में कहा—महाराज, दशार्ण-नरेश ने आपसे कहा है कि हे द्रुपद, तुमने दुर्बुद्धिवश मेरा अपमान किया है, मुझे धोखा दिया है। इससे मुझे अत्यन्त सन्ताप और क्रोध हुआ है। तुमने जिस दुर्बुद्धि के वश होकर अपनी कन्या के साथ मेरी कन्या का ब्याह करके मुझे धोखा दिया है उसका फल तुम्हें शीघ्र ही भोगना पड़ेगा। अपने सब कार्य और सुख-भोग कर लो; मैं शीघ्र ही तुम्हारे अनुचरों, मन्त्रियों और श्रुत्यों सहित तुमको मार डालूँगा।

एक सौ नब्बे अध्याय

राजा हिरण्यवर्मा का फिर दूत भेजना

भीष्मजी कहते हैं—हे दुर्योधन, दूत के ये वचन सुनकर पकड़े गये चौर की तरह राजा द्रुपद कुछ उत्तर न दे सके। उन्होंने मधुरभाषी दूतों को बुलाकर अपने सम्बन्धी को शान्त करने के लिए भेजा। राजा ने उनके द्वारा कहला भेजा कि राजन्, आपको भूठी खबर मिली है। शिखण्डी स्त्री नहीं, पुरुष ही है।

दशार्णराज ने फिर पता लगाया। उन्हें मालूम हुआ कि शिखण्डी असल में कन्या ही है। तब उन्होंने रानी की सलाह से यह हाल अपने मित्रों के पास कहला भेजा और फिर सेना जमा करके राजा द्रुपद के साथ युद्ध करने का इरादा किया। हिरण्यवर्मा कर्तव्य-निश्चय के लिए अपने मन्त्रियों के साथ सलाह करने लगे। वहाँ हिरण्यवर्मा के सम्बन्धी सब राजाओं ने यह निश्चय किया कि अगर शिखण्डी वास्तव में पुरुष न हो, तो हम लोग द्रुपद को कैद करके, शिखण्डी को और उन्हें मार डालेंगे और उनका राज्य दूसरे राजा को दे देंगे। हिरण्यवर्मा ने फिर शीघ्रगामी दूतों द्वारा राजा द्रुपद से कहला भेजा कि हे द्रुपद, तुमने जो पाप किया है उसके बदले में मैं शीघ्र आकर तुमको मारूँगा।

उन दूतों ने द्रुपद के पास आकर सब हाल कहा। द्रुपद स्वभाव से ही डरपोक थे। वे बहुत ही डरे। शोक से विह्वल द्रुपद ने हिरण्यवर्मा के दूतों को बिदा कर दिया और फिर

एकान्त में अपनी रानी से कहा—प्रिये, प्रबल पराक्रमी सम्बन्धी हिरण्यवर्मा सेना जमा करके हम पर चढ़ाई का उद्योग कर रहे हैं। समझ में नहीं आता कि इस समय इस कन्या के बारे में क्या करना चाहिए। रानी, हिरण्यवर्मा तुम्हारे पुत्र शिखण्डी को कन्या समझ रहे हैं। वे समझते हैं कि हमने कन्या को पुत्र बताकर उन्हें धोखा दिया है। इसी कारण अपने मित्रों को साथ लेकर सेना सहित वे मुझे मारने के लिए आ रहे हैं। भद्रे, इस बारे में सच और भूठ जो हो वह कह दो। यह शिखण्डी कन्या है। इसके कारण मुझ पर आफत आ रही है। तुम्हारी भी बदनामी होगी। अतएव सबकी भलाई के लिए सच बात कह दो। उसे सुनकर मैं जो कर्तव्य समझूँगा वही करूँगा। और, हे शिखण्डी, तुम मत डरो। मेरे पुत्र नहीं है, इसलिए तुम पर मुझे अपार स्नेह है। मैं इस विपत्ति से तुमको बचाने का उपाय अवश्य करूँगा। हे रानी, मैंने दशार्णनरेश को धोखा दिया है। बताओ, अब क्या करना चाहिए। तुम्हारी बात सुनकर मैं वही करूँगा जिसमें भलाई होगी।

हे दुर्योधन, यद्यपि राजा का सब हाल मालूम था, तो भी सर्वसाधारण के आगे अपने को दोष से बचाने के लिए उन्होंने रानी से यों पूछा।

२२

एक सौ इक्यानवे अध्याय

शिखण्डी का वन-गमन

भीष्मजी कहते हैं—तब शिखण्डी की माता ने पति से अपनी सन्तान के बारे में सच्चा-सच्चा हाल कह दिया कि महाराज, मेरे कोई पुत्र नहीं था, इस कारण सौतेले के डर से मैंने कन्या को पुत्र बताया था। आपने भी प्रीतिपूर्वक मेरी बात का अनुमोदन करके पुत्र की तरह कन्या के जातकर्म आदि सब संस्कार किये और अन्त को हिरण्यवर्मा की बेटी के साथ उसका ब्याह कर दिया। मैंने भी उसका अनुमोदन किया। देववाक्य के अनुसार यह कन्या पुरुष हो जायगी, यह सोचकर ही मैंने इसका पुरुष प्रसिद्ध किया था।

अब राजा द्रुपद निपुण मन्त्रियों से सब हाल कहकर दशार्णराज के कोप से प्रजा की रक्षा की सलाह करने लगे। वास्तव में उन्होंने हिरण्यवर्मा के साथ छल नहीं किया था। अब उस सम्बन्ध को तोड़ देने का उन्होंने विचार किया। द्रुपद का नगर पहले से ही सुरक्षित था, तथापि इस समय आनेवाली विपत्ति का खयाल करके वे और भी सावधानी से उसकी रक्षा का प्रबन्ध करने लगे। राजन्, हिरण्यवर्मा से विरोध होने के कारण द्रुपद को और उनकी रानी को बड़ा खेद हुआ। इसके बाद वे सम्बन्धी के साथ होनेवाले युद्ध को रोकने के लिए देवाराधना करने लगे। उन्हें आराधना करते देखकर रानी ने कहा—सुख के समय भी देवा-
राधना करनी चाहिए, फिर दुःख और विपत्ति के समय तो देवाराधना करना अत्यन्त आवश्यक

१०

है। आप ब्राह्मणों और देवताओं की पूजा कीजिए। हिरण्यवर्मा से होनेवाले भय को दूर करने के लिए होम करना और दक्षिणा देना भी उचित होगा। इस समय वही उपाय करना चाहिए जिसमें युद्ध किये बिना ही यह सङ्कट टल जाय। देवताओं के प्रसन्न होने पर मनोरथ का सिद्ध होना असम्भव नहीं है। दैव और पौरुष अगर बिना विरोध के एक साथ होते हैं तो अवश्य इच्छा पूरी होती है। आप मन्त्रियों के साथ सलाह करके नगर की रक्षा और यथेष्ट रूप से देवताओं की आराधना कीजिए।

सबको शोक से व्याकुल होकर इस प्रकार बातचीत करते देखकर शिखण्डिनी को बड़ी लज्जा मालूम हुई। उसने सोचा कि ये सब लोग मेरे ही लिए क्लेश भाग रहे हैं और दुःखित हो रहे हैं, इसलिए मेरा मर जाना ही अच्छा है। अब उसने प्राण दे देने का निश्चय कर लिया। शोक से व्याकुल शिखण्डिनी घर छोड़कर चुपचाप एक घने वन में चली गई।

स्थूणाकर्ण नाम का एक समृद्धिशाली यत्न उस वन की रक्षा करता था। उसके डर से २० उस वन में कोई नहीं जाता था। उस वन में उशीर से सुगन्धित, अगुरु-धूम से सुवासित, जैची



दीवारों और फाटकों से शोभित, एक सफेद महल था। द्रुपद की कन्या उसी में जाकर रही और मरने की इच्छा से खाना-पीना छोड़कर अपना शरीर सुखाने लगी।

एक दिन स्थूणाकर्ण ने उसे देखा। तब वह कोमल मधुर स्वर से कहने लगा—हे सुन्दरी, तुम किसलिए यह उग्र व्रत कर रही हो? बतलाओ, मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूरी करने को तैयार हूँ। शिखण्डिनी ने कहा—आप मेरा कार्य नहीं सिद्ध कर सकते। यत्न ने कहा—हे राजकुमारी, मैं यत्तराज कुबेर का सेवक हूँ। इसलिए सहज ही मुँहमाँगा वर दे सकता हूँ। तुम अपना अभीष्ट बताओ, देने योग्य न होने पर भी मैं उसे दूँगा।

तब शिखण्डिनी ने अपना सब हाल सुनाकर कहा—प्रबल पराक्रमी दुर्धर्ष राजा हिरण्यवर्मा क्रोधित होकर मेरे पिता पर चढ़ाई किये हुए आ रहे हैं। मेरे पिता पुत्र-हीन हैं। मैं आपसे यही माँगती हूँ कि वे इस विपत्ति से बच जायें। आप मेरी और मेरे पिता-माता



एक दिन स्थूपाकर्ण ने उसे देखा । तब वह भोमल मधुर स्वर से कहने लगा—
हे सुन्दरी, तुम किस लिए यह उग्र व्रत कर रही हो ?

(पृ० १८६२)

की रक्षा कीजिए । हे निष्पाप, आप प्रतिज्ञा कर चुके हैं कि मेरा दुःख दूर करेंगे । इसलिए ऐसी कृपा कीजिए कि मैं स्त्री से पुरुष हो जाऊँ । हे यत्न, राजा हिरण्यवर्मा आकर मेरे नगर को नष्ट-भ्रष्ट न करने पावें; उसके पहले ही आप मुझ पर कृपा कीजिए ।

३०

एक सौ बानवे अध्याय

शिखण्डी के वृत्तान्त का उपसंहार

भीष्मजी कहते हैं कि हे दुर्योधन, तब यत्न ने होनहार से मोहित होकर शिखण्डिनी से कहा—हे सुन्दरी, मैं अवश्य तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा; किन्तु उसके लिए एक शर्त होगी । मैं कुछ समय के लिए अपना पुरुषचिह्न तुमको दूँगा । निर्दिष्ट समय पर तुम्हें, मेरा चिह्न मुझे देकर, अपना स्त्री-चिह्न मुझसे ले लेना पड़ेगा । इसके लिए तुम प्रतिज्ञा करो । मैं आकाशचारी और जहाँ चाहे वहाँ जा सकनेवाला यत्न हूँ । इसलिए तुम मेरी कृपा से पुरुष होकर अपने नगर और बान्धवों की रक्षा करो । तुम उक्त प्रतिज्ञा करो, मैं तुम्हें पुरुष-चिह्न देकर तुम्हारा हित करने को तैयार हूँ ।

शिखण्डिनी ने कहा—मैं निर्दिष्ट समय पर आपका पुरुषचिह्न आपको फेर दूँगी । आप कुछ दिन तक मेरे लिए स्त्री-चिह्न धारण कीजिए । हिरण्यवर्मा जब प्रसन्न होकर अपने नगर को लौट जायेंगे तब मैं फिर स्त्री हो जाऊँगी और आप पुरुष बन जाइएगा ।

भीष्मजी कहते हैं—परस्पर यों प्रतिज्ञा करके दोनों ने अपने-अपने चिह्न बदल लिये । स्थूणाकर्ण स्त्रीरूप हो गया और शिखण्डी, तेजस्वी यत्न का रूप पाकर, पुरुष हो गया । शिखण्डिनी पुरुषचिह्न पाकर बहुत प्रसन्न हुई । नगर में पहुँचकर उसने सब हाल कहा । १० सुनकर राजा द्रुपद अत्यन्त आनन्दित हुए । उस समय उन्हें भगवान् भवानीपति की बात याद आ गई । तब द्रुपद ने हिरण्यवर्मा के पास दूत के हाथ कहला भेजा कि महाराज, मेरा पुत्र सचमुच पुरुष है । आप इस पर विश्वास कीजिए ।

दशार्णनरेश जब काम्पित्य नगर के पास पहुँच गये तब उन्होंने एक ब्राह्मण को, उचित सत्कार करके, राजा द्रुपद के पास भेजा । उन्होंने उस ब्राह्मण के द्वारा कहला भेजा कि हे मूढ़ द्रुपद, तुमने मुझे धोखा देकर अपनी कन्या के साथ मेरी कन्या का व्याह किया है । मैं उसका उचित दण्ड देने के लिए आया हूँ, तैयार रहो ।

वह पुरोहित जब द्रुपद की सभा में पहुँचा तब द्रुपद और उनके पुत्र ने गाय, अर्घ्य, पाद्य आदि देकर उसका सम्मान किया । ब्राह्मण ने उनकी पूजा नहीं स्वीकार की । वह हिरण्यवर्मा का सँदेसा इस प्रकार कहने लगा—राजा हिरण्यवर्मा ने कहा है कि हे दुर्बुद्धि द्रुपद, २०

तुम आकर मुझसे युद्ध करो। मैं शीघ्र ही तुम्हारे मन्त्री, बन्धु-बान्धव, पुत्र आदि को और तुमको मारकर अपना क्रोध शान्त करूँगा।

हिरण्यवर्मा के कहने से, मन्त्रियों के सामने, सभा में ब्राह्मण ने जब इस प्रकार तिरस्कार के वचन कहे तब द्रुपद ने नम्रता के साथ कहा—ब्रह्मन्, आपने मेरे सम्बन्धी हिरण्यवर्मा के कहने से जो कुछ कहा है उसका उत्तर मेरा एक दूत जाकर उन्हें देगा।

इसके बाद द्रुपद ने एक वेद-पाठी बुद्धिमान् ब्राह्मण को दूत बनाकर हिरण्यवर्मा के पास भेजा। उसने द्रुपद के कथनानुसार दशार्णनरेश से कहा—महाराज, आप चलकर परीक्षा कर लीजिए। राजकुमार शिखण्डी कभी स्त्री नहीं हैं। जान पड़ता है, किसी दुष्ट ने आपसे झूठ-मूठ कह दिया है। उसकी बात विश्वास के योग्य नहीं है।

हिरण्यवर्मा बड़े असमञ्जस में पड़ गये। उन्होंने उसी समय कुछ सुन्दरी स्त्रियों को इसलिए भेजा कि वे जाकर शिखण्डी की जाँच करके बतलावें कि वह पुरुष है या स्त्री। उन स्त्रियों ने आकर परीक्षा की। जाँच-पड़ताल करके वे हिरण्यवर्मा के पास गईं और कहने लगीं—शिखण्डी सचमुच पुरुष हैं। यह खबर सुनकर हिरण्यवर्मा बहुत प्रसन्न हुए और राजा द्रुपद से मिले। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद वे अपने दामाद शिखण्डी को हाथी, घोड़े, गाय, दास-दासी, धन-रत्न आदि देकर और झूठ बोलने के लिए अपनी बेटी को डौंटकर अपनी राजधानी को जाने की तैयारी करने लगे। राजा द्रुपद ने उनका यथोचित सत्कार किया। हे दुर्योधन, इस प्रकार हिरण्यवर्मा का क्रोध शान्त हो गया और वे सन्तुष्ट होकर अपने देश को लौट गये। इससे शिखण्डी को बड़ा हर्ष और सन्तोष हुआ।

हे कुरुकुलश्रेष्ठ, उधर कुछ समय के बाद एक दिन यत्तराज कुबेर घूमते-फिरते हुए दैव-योग से स्थूणाकर्ण के घर की ओर आ निकले। उन्होंने ऊपर से देखा कि वह घर बहुत ही विचित्र और सुन्दर बना हुआ था। मालाओं और चन्द्रातपों (चन्दोवों) से उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी। अगुरु और गूगल का धुआँ उसमें छाया हुआ था। ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं। मांस और खाने-पीने की स्वादिष्ट सामग्री उसमें भरी हुई थी। मणि, रत्न, सुवर्ण आदि से अलंकृत और फूलों की सुगन्ध से मनोहर वह उज्ज्वल भवन सब जगह साफ़-सुथरा था। जगह-जगह चन्दन-गुलाब-क्यैड़े आदि के जल का छिड़काव किया हुआ था। उस घर को देखकर कुबेर ने अपने साथ के यत्नों से कहा—हे यत्नो, स्थूणाकर्ण का यह घर बहुत ही सुसज्जित और भला देख पड़ता है किन्तु वह मूढ़ मेरे पास अभी तक नहीं आया। मेरी अवाई का हाल जानकर भी वह मुझसे मिलने नहीं आता, इसलिए मैं उसको दण्ड दूँगा।

यत्नों ने कहा—हे यत्तराज, स्थूणाकर्ण ने न जाने किस कारण मोहित होकर द्रुपद राजा ४० की कन्या शिखण्डीनी को अपना पुरुषचिह्न देकर उसका स्त्रीचिह्न ले लिया है। इस समय स्त्रीरूप

से वह अपने घर में है और लज्जा को मारे आपके सामने नहीं आ सकता। आप चाहें तो विमान से उतरकर उसकी दशा देख लें और उसके मुँह से सब हाल सुनकर जो कर्तव्य समझें, करें। कुबेर ने कहा—हे यत्ती, तुम स्थूणाकर्ण को मेरे पास ले आओ। मैं उसे उचित दण्ड दूँगा।

अनुचर के मुँह से यह वृत्तान्त सुनकर स्थूणाकर्ण अपने प्रभु के पास गया। लज्जा से सिर नीचा किये हुए स्थूणाकर्ण प्रणाम करके कुबेर के सामने खड़ा हो गया। कुबेर ने क्रोध के कारण काँपते हुए स्वर से शाप देकर कहा—हे स्थूण ! तुमने शिखण्डी को अपना पुरुषचिह्न देकर, उसका स्त्रीचिह्न आप लेकर, यत्ती का अपमान और अत्यन्त पाप किया है। इसलिए मैं शाप देता हूँ कि तुम सदा स्त्री बने रहोगे। तुमने अत्यन्त निन्दनीय काम किया है, इसलिए तुम सदा के लिए स्त्री हो जाओगे और शिखण्डी पुरुष हो जायगा।

तब यत्ती ने कुबेर को प्रसन्न करते हुए बारम्बार यह प्रार्थना की कि इस शाप का अन्त करने की कृपा कीजिए। कुबेर ने उस यत्ती को शाप से छुटकारा देते हुए कहा—अच्छा, जब शिखण्डी मारा जायगा तब स्थूणाकर्ण फिर पुरुष हो जायगा। कुबेर के ये वचन सुनकर स्थूणा- ५०
कर्ण की घबराहट कुछ कम हुई। उसके बाद स्थूणाकर्ण की की हुई पूजा स्वीकार करके यत्ती के साथ यत्तराज चले गये। कुबेर के शाप से व्यथित होकर स्थूणाकर्ण उसी वन में रहने लगा।

उधर शिखण्डी, प्रतिज्ञा के अनुसार, यथासमय स्थूणाकर्ण के पास पहुँचा और कहने लगा—लीजिए, मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने आ गया।

शिखण्डी को सरलता के साथ आया हुआ देखकर उसके सत्यपालन से सन्तुष्ट स्थूणाकर्ण ने कहा कि हे राजपुत्र, मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। हे दुर्योधन, फिर स्थूणाकर्ण ने आदि से अन्त तक अपना वृत्तान्त सुनाकर शिखण्डी से कहा—कुबेर ने तुम्हारे कारण मुझे शाप दे दिया है। इसलिए अब तुम जाओ और जी भरकर पुरुषजन्म का सुख भोगो। तुम्हारे साथ मेरी भेंट होना और फिर कुबेर का यहाँ अचानक आ जाना, ये दोनों घटनाएँ मेरे पूर्व कर्मों का फल हैं। यह मेरे भाग्य का दोष है। भाग्य में जो बदा है, वह अवश्य होगा; उसे कोई नहीं टाल सकता।

हे दुर्योधन, स्थूणाकर्ण के शापग्रस्त होने का हाल सुनकर शिखण्डी का बड़ा हर्ष हुआ। वह नगर में लौट आया। आते ही उसने चन्दन, माला आदि षोडशोपचार सामग्रियों से ब्राह्मणों और देवताओं की पूजा की। चैत्य, चतुष्पथ आदि स्थानों में उत्सव, हवन होने लगे। शिखण्डी को सिद्धमनोरथ और कृतकृत्य देखकर राजा द्रुपद को और उनके भाई-बन्धुओं को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद द्रुपद ने धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिखण्डी को द्रोणाचार्य के हाथ में सौंप दिया। हे दुर्योधन, उसी शिखण्डी ने तुम लोगों के साथ द्रोणाचार्य से धनुर्वेद के चारों अङ्ग सीखे हैं। ६०

अन्धे, बहरे, गूँगे या पागल बनकर पता लगानेवाले जो जासूस मैंने द्रुपद के नगर में भेजे थे उन्होंने ने आकर यह सब वृत्तान्त मुझसे कहा था। काशिराज की कन्या शिखण्डी के रूप से

मुझे मारने के लिए राजा द्रुपद के घर में पैदा हुई है। वह शिखण्डी युद्ध के लिए मेरे सामने आवेगा तो मैं न तो उसकी ओर देखूँगा और न उस पर प्रहार करूँगा। पृथ्वी पर मेरा यह व्रत प्रसिद्ध है कि मैं स्त्री, स्त्री-पूर्व (पहले का स्त्री) पुरुष, स्त्री-नामधारी पुरुष या स्त्रीवेष पुरुष पर कभी बाण नहीं चलाता। हे दुर्योधन, मुझे शिखण्डी के जन्म का वृत्तान्त ऐसा ही मालूम है। इसी कारण मैं उसे न मारूँगा। मैं जो शिखण्डी पर चोट करूँगा तो सज्जन मेरी निन्दा करेंगे। इसी कारण उसे युद्ध के लिए सामने आये हुए देखकर भी मैं नहीं मारूँगा।

राजा दुर्योधन ने भीष्म के मुँह से यह वृत्तान्त सुनकर सोचा कि महावीर भीष्म ने ऐसी ७० प्रतिज्ञा करके अपने योग्य काम किया है।

एक सौ तिरानवे अध्याय

भीष्म और दुर्योधन का संवाद

सज्जय कहते हैं कि महाराज धृतराष्ट्र, रात वीतने पर आपके पुत्र दुर्योधन ने अपने सब वीर सैनिकों के सामने भीष्म पितामह से फिर पूछा—हे पितामह, हमारे पक्ष के योद्धा आप सब लोग दिव्य अस्त्रों के प्रयोग में निपुण हैं। अब यह बताइए कि आप कितने दिन में युधिष्ठिर की अपार सेना का संहार कर सकते हैं। उसमें असंख्य हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्य हैं। महारथियों की भी संख्या बहुत है। भीमसेन, अर्जुन, धृष्टद्युम्न आदि महाबली पराक्रमी लोकपाल-सदृश वीर पुरुष उसके रत्नक हैं। युधिष्ठिर की सेना उमड़ रहे समुद्र के समान, अनिवार्य, दुर्धर्ष और देवताओं का भी सामना करने में समर्थ है। उसको आप कितने समय में मार सकते हैं? युद्धप्रिय कर्ण, महाधनुर्धर द्रोणाचार्य, महाबली कृपाचार्य और ब्राह्मणश्रेष्ठ वीर अश्वत्थामा कितने समय में उस सेना का विनाश कर सकते हैं? यह जानने के लिए मेरे मन में बड़ा कौतूहल हो रहा है।

भीष्मजी ने कहा—हे कुरुश्रेष्ठ, शत्रुओं का बल जानने के लिए उत्सुक होना तुम्हारे योग्य कार्य है। मैं संग्राम में जैसा पौरुष, शस्त्रबल और बाहुबल दिखाऊँगा, सो कहता हूँ, सुनो। युद्धधर्म का सिद्धान्त यही है कि निष्कपट पुरुष के साथ निष्कपट युद्ध और मायावी १० के साथ मायायुद्ध करना चाहिए। उसके अनुसार मैं नित्य पाण्डवसेना के दस हजार योद्धाओं और एक हजार रथियों को मारूँगा। भैया! मैं कवच पहनकर, रथ पर बैठकर, उत्साह के साथ, पूर्वोक्त समय और विभाग के अनुसार, शत-सहस्र-घाती बाणों की वर्षा करके एक महीने में पाण्डवों की सब सेना मार सकूँगा।

सज्जय कहते हैं कि राजन्, दुर्योधन ने भीष्म के ये वचन सुनकर द्रोणाचार्य से पूछा—हे आचार्य आप कितने समय में पाण्डवों की सेना को मार सकेंगे ?

द्रोणाचार्य ने हँसकर कहा—दुर्योधन ! मैं बूढ़ा हो गया हूँ; इस कारण मेरा तेज, बल और चेष्टा भी घट गई है। तो भी शायद मैं भीष्म की तरह एक महीने में अपने तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों की सेना को मार सकूँगा। इतनी ही मेरी शक्ति और बल की चरम सीमा है।

इसके बाद कृपाचार्य ने कहा—हे महाबाहु, मैं दो महीने में पाण्डवों की सब सेना को मार सकूँगा। अश्वत्थामा ने कहा—मैं दस दिन में पाण्डवों की सेना का संहार कर सकूँगा। कर्ण ने कहा—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि पाँच ही दिन में पाण्डवों की सेना को नष्ट कर दूँगा। २०

कर्ण के ये वचन सुनकर भीष्म ठठाकर हँसे और कहने लगे—हे कर्ण ! वासुदेव के द्वारा रचित अर्जुन को अभी तुमने युद्ध के मैदान में नहीं देखा, इसी से ऐसा समझ रहे हो। जब अर्जुन का सामना होगा तब ऐसी डोंग न हाँक सकोगे। २२

एक सौ चौरानवे अध्याय

युधिष्ठिर और अर्जुन का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, धर्मराज युधिष्ठिर को शत्रुओं की इस बातचीत का हाल जब मालूम हुआ तब उन्होंने अपने भाइयों को एकान्त में बुलाकर कहा—भाइयो, मैंने दुर्योधन की सेना में जिन जासूसों को भेजा था उन्होंने आकर मुझसे कहा है कि महाराज, दुर्योधन ने पितामह भीष्म से पूछा कि आप कितने दिन में पाण्डव-सेना का संहार कर सकते हैं। भीष्म ने उत्तर दिया कि मैं एक महीने में सारी पाण्डव-सेना को मार सकता हूँ। फिर द्रोणाचार्य ने भी एक महीने में हमारी सेना को मारने की प्रतिज्ञा की। कृपाचार्य ने दो महीने में यह कार्य करने की शक्ति अपने में बताई। अश्वत्थामा ने दस ही दिन में यह कार्य कर देना स्वीकार किया। फिर दिव्य अस्त्रों के जाननेवाले कर्ण ने, दुर्योधन के पूछने पर, पाँच ही दिन में सारी शत्रुसेना को मार सकने की अपनी शक्ति बतलाई। इसलिए हे अर्जुन, मैं सुनना चाहता हूँ कि तुम कितने समय में कौरवों की सेना को मार सकते हो।



अर्जुन ने श्रीकृष्ण की ओर देखकर कहा—महाराज ! वे सब विचित्र युद्ध करनेवाले, अस्त्रज्ञ, महात्मा अवश्य उतने ही समय में हमारी सेना को मार सकते हैं; किन्तु आप चिन्ता न कीजिए । सच कहता हूँ, वासुदेव की सहायता पाकर एक ही रथ से भूत-भविष्य-वर्तमान चराचर जगत् और तीनों लोकों का मैं पल भर में अपने बाणों से भस्म कर सकता हूँ । किरातरूपी भगवान् शङ्कर ने द्वन्द्वयुद्ध से सन्तुष्ट होकर मुझे जो घोर अस्त्र दिया है, वह मेरे पास है । भगवान् रुद्र प्रलय के समय सब सृष्टि का संहार करने के लिए उसी अस्त्र का प्रयोग करते हैं । कर्ण तो कोई चीज़ नहीं है; भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामा भी उस अस्त्र को नहीं जानते । किन्तु उस दिव्य अस्त्र से साधारण मनुष्यजाति का विनाश करना ठीक नहीं है । इसलिए मैं सरल युद्ध से शत्रुओं को परास्त करूँगा । देखिए, ये सब श्रेष्ठ वीर पुरुष आपके सहायक हैं । ये लोग दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता, युद्ध के उत्साह से परिपूर्ण, कभी न हारनेवाले, वेदों और उपवेदों के पारदर्शी वीर युद्ध में देवताओं की सेना को भी मार सकते हैं । शिखण्डी, युयुधान, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, नकुल, सहदेव, युधामन्यु, उत्तमौजा, भीष्म और द्रोण के तुल्य विराट और द्रुपद, महाबाहु शङ्ख, महाबली घटोत्कच, उसका पुत्र अञ्जनपर्वा, प्रबल पराक्रमी युद्धकोविद सात्यकि, अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र आदि वीर आपके पक्ष में हैं । इनके सिवा आप स्वयं दृष्टिमात्र से त्रिलोक को भस्म कर सकते हैं । आप क्रोध की दृष्टि से जिस पुरुष की ओर देख लीजिए वह कभी जीता नहीं बच सकता ।

एक सौ पञ्चानवे अध्याय

दुर्योधन का अपनी सेना को तीन भाग करके स्थापित करना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय ! सूर्य की विमल प्रभा आकाश में फैल जाने पर सब राजा लोग नहा-धोकर दुर्योधन की आज्ञा से पवित्रतापूर्वक माला, सफेद कपड़े, आभूषण आदि पहनकर—शस्त्र और ध्वजा आदि से सुसज्जित होकर—स्वस्तिवाचन और हवन के बाद ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण कर युद्ध के लिए तैयार हो गये । वे सब वेदपाठी, शूर, सच्चरित्र, सुशील, योद्धाओं के गुणों और लक्ष्णों से अलंकृत वीर पुरुष परस्पर श्रद्धा का भाव दिखाते हुए शत्रुसेना को जीतने के उत्साह से पाण्डवसेना के सामने चले । सब योद्धा एकाम्र और गम्भीर भाव से सुशोभित हो रहे थे । अवनती देश के राजा विन्द और अनुविन्द, कंकय और वाह्लीक देश के राजा द्रोणाचार्य के पीछे चले । अश्वत्थामा, भीष्म, जयद्रथ, दक्षिण-पश्चिम-उत्तर-पूर्व के अनेक राजा, पहाड़ी जातियों के वीर, शक, किरात, यवन, शिविगण, वसातिगण और अपनी सेना सहित गान्धारराज शकुनि, ये लोग सेना के दूसरे भाग में रहकर द्रोणाचार्यवाले दल के पीछे चले ।

अपनी सेना के साथ कृतवर्मा, महारथी त्रिगर्तराज, शल, भूरिश्रवा, शल्य, कोशलेश बृहद्रथ और दुर्योधन के सौ भाई तीसरे दल में दुर्योधन के साथ चले । इस प्रकार महारथी धृतराष्ट्र के पुत्र १० अपनी सम्मिलित सेना लेकर कुरुक्षेत्र के पश्चिम अर्धभाग में स्थित हुए ।

हे जनमेजय, दुर्योधन ने सेना के लिए जो सुसज्जित शिविर बनवाये थे वे देखने में दूसरे हस्तिनापुर की बस्ती जान पड़ते थे । चतुर नगरनिवासी भी उस महाशिविर में और हस्तिनापुर की बस्ती में कुछ अन्तर नहीं जान सके । इसके सिवा राजाओं के रहने के लिए जो सैकड़ों-हज़ारों दुर्ग बनाये गये थे वे भी असली दुर्गों के समान जान पड़ते थे । वह सेना की मण्डलाकार छावनी युद्धभूमि के पाँच योजन स्थान को घेरे हुए थी । राजाओं ने बड़े उत्साह से अपनी-अपनी सेना के साथ उन विविध पदार्थों से पूर्ण सेनानिवेशों में डेरा डाला था । राजा दुर्योधन ने हाथी, घोड़े, मनुष्य आदि के साथ आये हुए उन राजाओं के खाने-पीने का बढ़िया प्रबन्ध कर रक्खा था । वह स्वयं कारीगर, मज़दूर, नौकर-चाकर, सूत-मागध-बन्दीजन, बनिये-बैपारी, वेश्याएँ, बाज़ार, जासूस, दर्शक आदि की देखभाल और रक्षा का प्रबन्ध करता था । १८

एक सौ छियानवे अध्याय

युधिष्ठिर का अपनी सेना के तीन विभाग करके युद्ध की तैयारी करना

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, उधर राजा युधिष्ठिर ने भी इसी तरह धृष्टद्युम्न आदि वीरों को युद्ध-भूमि में भेजा । उन्होंने चेदि, काशी और करुष आदि के सञ्चालक पराक्रमी शत्रुनाशन धृष्टकेतु, विराट, द्रुपद, युयुधान, शिखण्डी, युधामन्यु और उत्तमौजा आदि सब पुरुषों को युद्ध-भूमि में जाने के लिए आज्ञा दी । वे सब वीर सुवर्ण के कुण्डल और विचित्र कवच पहनकर घी की आहुति से प्रज्वलित अग्नि की तरह, आकाश में उदय हुए ग्रहों की तरह, शोभायमान हुए । धर्मराज युधिष्ठिर ने हाथी, घोड़े, सेना, वाहन, नौकर-चाकर, शिल्प-जीवी आदि सहित उन सब राजाओं को आदर-सत्कार और तरह-तरह की खाने-पीने की सामग्रियों से सन्तुष्ट करके युद्धयात्रा की अनुमति दी । धृष्टद्युम्न अपनी सेना के साथ आगे चले । उनके पीछे दूसरे दल में सहायक रूप से बृहन्त, अभिमन्यु और द्रौपदी के पाँचों पुत्र चले । भीमसेन, सात्यकि और अर्जुन उनके रक्षक नियुक्त हुए ।

तब योद्धा लोग घोड़ों को गहने पहनाकर सजाने लगे । इधर-उधर चल-फिर रहे सैनिकों का सिंहनाद आकाश में गूँज उठा । उनके पीछे राजा विराट, राजा द्रुपद और अन्य १० राजाओं के साथ महाराज युधिष्ठिर खुद चले । धनुर्धर पुरुषों से परिपूर्ण और धृष्टद्युम्न के बाहुबल से रक्षित पाण्डवों की सेना गङ्गा के प्रवाह के समान जान पड़ने लगी ।

अब बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने दुर्योधन की सेना के वीरों को भ्रम में डालने के लिए दूसरे प्रकार से सेना की योजना की। धनुष धारण करनेवालों में प्रधान द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और दस हजार घोड़े, दो हजार हाथी, पाँच सौ रथ और दस हजार पैदल सेना के साथ प्रभद्रकगण महाबली भीमसेन के सहकारी नियुक्त हुए। विराट, जयत्सेन, युधामन्यु, उत्तमौजा, श्रीकृष्ण और अर्जुन मध्यभाग की सेना में स्थित हुए। शूर पुरुष जिन पर सवार थे ऐसे बीस हजार घोड़े, पाँच हजार हाथी, पाँच हजार रथ और धनुष धारण किये २० हजारों वीर्यशाली पैदल योद्धा उनके आगे और पीछे चले।

राजा युधिष्ठिर खुद सेना के तीसरे भाग में स्थित हुए। कई हजार राजा, कई हजार हाथी, हजारों घोड़े, रथ और लाखों पैदल वीर उनके चारों ओर देख पड़ते थे। बहुत से सेनापतियों सहित चेकितान, चेदिराज धृष्टकेतु तथा सैकड़ों-हजारों रथों पर बैठे हुए यादवों सहित प्रधान योद्धा सात्यकि उनके साथ चले। रथों पर स्थित पुरुषश्रेष्ठ त्रजदेव सेना के अग्रभाग की और ब्रह्मदेव पिछले हिस्से की रक्षा में नियुक्त हुए। बैपारी-बनिये, वेश्या, वाहक (कुली) आदि के लिए हजारों हाथी, दस हजार घोड़े और छकड़े नियुक्त हुए। धर्मराज युधिष्ठिर अपने साथ दुर्बल और बीमार सैनिक, बालक, स्त्री, हाथियों पर लदी हुई रसद और कोष आदि लेकर धीरे-धीरे सबके पीछे चले। युद्धप्रिय सत्यभृति, सौचित्ति, श्रेणिमान्, वसुदान, काशिराज के पुत्र विभु आदि राजा अपने साथ बीस हजार रथ, किङ्किणीजाल-मण्डित दस करोड़ घोड़े और हल के ३१ समान दाँतोंवाले, मेघतुल्य, मद बहानेवाले बीस हजार हाथी लेकर धर्मराज के पीछे चले। धर्मराज की सात अचैाहिणी सेना के अन्तर्गत, वर्षाकाल के मेघों के समान मद-धारा बहानेवाले सत्तर हजार युद्ध के हाथी, चलनेवाले पहाड़ों की तरह, उनके पीछे चले। उनके बाद सैकड़ों-हजारों-लाखों मनुष्यों के झुण्ड प्रसन्न चित्त से हजारों नगाड़े और शङ्ख बजाते चले।

हे जनमेजय ! महाराज युधिष्ठिर की सेना इतनी बड़ी थी, जिसकी सहायता से उन्होंने ३५ दुर्योधन की सेना के साथ युद्ध किया।



संक्षिप्त हिन्दी महाभारत

महर्षि वेदव्यास-प्रणीत महाभारत का अनुवाद भीष्मपर्व

जम्बूखण्डनिर्माणपर्व पहला अध्याय

कौरवों और पाण्डवों का परस्पर युद्ध के नियम निश्चित करना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन् ! कौरव, पाण्डव, सोमक और अन्य अनेक देशों से आये हुए राजाओं ने परस्पर किस तरह युद्ध किया ?

वैशम्पायन ने कहा—राजन् ! तपोवन कुरुक्षेत्र में वीर कौरवों, पाण्डवों और शूरश्रेष्ठ सोमकों ने जिस तरह युद्ध किया, सो मैं कहता हूँ—सुनिष्ट । वेदपाठी, युद्धविशारद, महाबली पाण्डव विजय के लिए उत्सुक होकर अपनी सेना और सोमक वीरों के साथ कुरुक्षेत्र में जाकर कौरवों के पास गये । अत्यन्त दुर्द्धर्ष कौरव-सेना के सामने जाकर वे पश्चिम भाग में, पूर्वमुख हो, ठहर गये । इसके बाद युधिष्ठिर ने समन्तपञ्चक के बाहर विधिपूर्वक हज़ारों शिविर स्थापित कराये । राजन्, सारी पृथ्वी से योद्धा लोग और सेना वहाँ पर आने लगी । उस समय पृथ्वी भर पर केवल बालक और बूढ़े लोग ही रह गये । पुरुष, घोड़े, रथ और हाथी आदि से सब पृथ्वी खाली सी जान पड़ने लगी । जम्बूद्वीप में जहाँ तक सूर्य नारायण तपते

हैं वहाँ तक के सब वीर जवान कौरव-पाण्डवों के युद्ध में सम्मिलित होने के लिए आ गये। सब वर्णों के लोग उस युद्ध में शामिल होने के लिए आये। उन्होंने बहुत से देश, नदी, पर्वत, वन आदि को व्याप्त कर लिया। राजा युधिष्ठिर ने उन सबको और उनके १० वाहनों को बढ़िया खाने-पीने की सामग्री मिलाने और रहने की व्यवस्था कर दी। धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने पत्त के सैनिकों को, चिह्नस्वरूप, नये 'नाम' और आभूषण भी दिये जिनके द्वारा यह जान पड़े कि वे पाण्डव पत्त के हैं।

उधर राजा दुर्योधन हज़ार हाथियों के घेरे के बीच अपने सौ भाइयों के साथ विराजमान था। उसके सिर पर सफ़ेद छत्र लगा हुआ था। महामनस्वी दुर्योधन ने भी अर्जुन की ध्वजा



के अग्रभाग को देखकर अपने पत्त के राजाओं के साथ, पाण्डवों के सुकाबले में, सेना की व्यूह-रचना की। युद्धप्रिय पाञ्चालगण राजा दुर्योधन को देखकर बहुत खुश हुए। वे प्रसन्नतापूर्वक शङ्ख और हज़ारों नगाड़े बजाने लगे। अपनी सेना को प्रसन्न और उत्साहित देखकर महात्मा कृष्णचन्द्र और पराक्रमी पाण्डव बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद श्रीकृष्ण और अर्जुन आनन्द के साथ

रथ पर चढ़कर अपने-अपने शङ्ख बजाने लगे। श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शङ्ख और अर्जुन के देवदत्त शङ्ख का गम्भीर शब्द सुनकर कौरवपत्त के सैनिक दहल उठे। उनका एक साथ मल-मूत्र निकल पड़ा। मृगों के झुण्ड जैसे सिंह का शब्द सुनकर डर जाते हैं, वैसे ही वे श्रीकृष्ण और अर्जुन की शङ्खध्वनि को सुनकर अत्यन्त भयभीत हो उठे। सुस्ती के मारे उनके चेहरे उतर गये। इस समय सेना के चलने-फिरने से इतनी धूल उड़ी कि उसमें छिपकर सूर्य २० अस्त से हो गये। इसी समय मेघ घिर आये और उनसे जल की जगह मांस और रक्त की वर्षा होने लगी। यह बहुत ही अद्भुत घटना हुई। आँधो उठ खड़ी हुई और सैनिकों के ऊपर कड़कियाँ-रोड़े बरसाने लगी। उस समय युद्ध के लिए प्रसन्नता प्रकट कर रही दोनों

सेनाओं का वह अद्भुत समागम देखकर जान पड़ता था कि गलयकाल में दो समुद्र उमड़ रहे हैं। कौरव पक्ष में भी इतनी सेना आकर जमा हुई थी कि पृथ्वी खाली सी हो गई। केवल बालक और बूढ़े ही बच गये। जवान पुरुष, रथ, हाथी और घोड़ा एक भी नहीं रह गया।

इसके बाद कौरवों, पाण्डवों और सोमकों में धर्मानुसार परस्पर, निम्नलिखित, युद्ध के नियम निश्चित हुए। यह तय हुआ कि आरम्भ किया हुआ युद्ध जिस समय बन्द हो जाया करेगा उस समय हम परस्पर पहले की ही तरह मित्रता का व्यवहार करेंगे। परस्पर समान और समान योग्यता रखनेवाले पुरुष ही एक दूसरे से न्यायानुसार युद्ध करेंगे। कोई किसी से अन्यायपूर्वक युद्ध नहीं करेगा। कोई किसी को युद्ध में धोखा नहीं देगा। वाणी का युद्ध करनेवालों से केवल वाणी का ही युद्ध किया जायगा। जो लोग सेना के व्यूह से भागकर या और किसी कारण से बाहर निकल जायेंगे उन पर कोई प्रहार नहीं करेगा। रथी रथी के साथ, हाथी का सवार हाथी के सवार के साथ, घोड़े का सवार घोड़ेसवार के साथ और पैदल सिपाही पैदल सिपाही के साथ योग्यता, इच्छा, उत्साह और बल के अनुसार युद्ध करेगा। पहले सावधान करके पीछे प्रहार किया जायगा। विश्वास रहने से असावधान, विद्वल और डरे हुए व्यक्ति पर प्रहार नहीं किया जायगा। जो पुरुष किसी दूसरे के साथ युद्ध कर रहा होगा, जो असावधान होगा और जो समर से विमुख होगा उस पर कोई वार नहीं करेगा। जिसका कवच कट गया होगा, जिसका शस्त्र टूट गया होगा या शस्त्र न रह जाने के कारण जो निहत्था होगा, ऐसे लोगों पर कभी कोई प्रहार नहीं करेगा। सारथी पर, जिन पर बोझ लादा जाय ऐसे हाथी-घोड़े-बैल आदि पर, शस्त्र बनाने की जीविकावाले या शस्त्र पहुँचानेवाले पर और शङ्ख तथा नगाड़े आदि बजानेवाले लोगों पर कभी कोई प्रहार नहीं करेगा।

महाराज, इस तरह परस्पर युद्ध के नियम निश्चित हो गये। कौरव, पाण्डव और सोमकगण एक दूसरे को देखकर परम प्रसन्न हुए। फिर सब पुरुषश्रेष्ठ वीर प्रसन्नता और उत्साह के साथ अपने-अपने सैनिकों समेत अपने-अपने स्थान में ठहर गये।

३४

दूसरा अध्याय

व्यासजी का धृतराष्ट्र के पास आना, सञ्जय को दिव्य दृष्टि देना
और दुर्निमित्तों का वर्णन करना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन् ! इधर सब वेदज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ, त्रिकालज्ञ, प्रत्यक्षदर्शी महर्षि वेदव्यास ने दोनों पक्षों की सेनाओं को देखकर जान लिया कि यह घोर संग्राम होगा। तब वे शोक से व्याकुल और पुत्रों के अन्याय को सोचते हुए, एकान्त में स्थित, महाराज धृतराष्ट्र

के पास गये और उनसे कहने लगे—राजन्, तुम्हारे पुत्रों और अन्य राजाओं के मरने का समय आ गया है। इस युद्ध में वे परस्पर भिड़कर मारे जायेंगे। समय को इस विपरीत भाव को



समझकर तुम शोक न करना। राजन्, अगर तुम यह घोर संग्राम देखना चाहो तो मैं तुमको दिव्य दृष्टि देने को तैयार हूँ। तुम यहीं से सब संग्राम देख लेना।

धृतराष्ट्र ने कहा—हे ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ, मैं जाति के हत्याकाण्ड को अपनी आँखों नहीं देखना चाहता। मेरी यह इच्छा है कि आपके तेज के प्रभाव से मैं इस युद्ध का सब वृत्तान्त आदि से अन्त तक सुन सकूँ।

वर देने में समर्थ महर्षि वेदव्यास ने धृतराष्ट्र को युद्ध का वृत्तान्त सुनने के लिए उत्सुक देखकर सञ्जय को वर देते हुए कहा—महाराज, ये सञ्जय तुम्हारे आगे युद्ध का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कहेंगे। इनसे युद्ध का वृत्तान्त तनिक भी नहीं छिपा

१० रहेगा। इन्हें दिव्य दृष्टि प्राप्त होगी और ये सर्वज्ञ होंगे। गुप्त या प्रकट सब बातें इन्हें विदित होती रहेंगी। दिन को या रात को जो कुछ होगा और दूसरों के मन की जो बात होगी, वह भी सञ्जय को मालूम हो जायगी। इनके शरीर में कोई शस्त्र नहीं छू जायगा। इन्हें थकन भी नहीं होगी। इस युद्ध से कंवल ये सञ्जय जीते बचेंगे। हे भरतश्रेष्ठ! मैं शीघ्र ही पाण्डवों और कौरवों की इस कीर्त्ति को, ग्रन्थ बनाकर, प्रसिद्ध कर दूँगा। तुम शोक मत करो। यह सब 'होनी' की लीला है। तुम या कोई भी इस सर्वनाश को नहीं रोक सकेगा। सध समझो, जिधर धर्म है उसी पक्ष की जय होगी।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, कुरुवंश के प्रपितामह भगवान् वेदव्यास ने इतना कहकर फिर राजा धृतराष्ट्र से कहा—राजन्, इस युद्ध में बड़ा भारी हत्याकाण्ड होगा। इस समय महाभयङ्कर उत्पात होते देख पड़ते हैं। बाज़, गिद्ध, कौए, कङ्क पक्षी और बगलों के झुण्ड के झुण्ड ध्वजाओं के अग्रभागों पर गिरते हैं। मांस खानेवाले पक्षी, युद्ध को निकटवर्ती जानकर, आनन्द प्रकट कर रहे हैं। वे अवश्य हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों का मांस खायेंगे। कङ्क पक्षी दोपहर के समय दक्षिण दिशा की ओर दौड़ते हुए भयसचक भयानक कट-कट शब्द करते

हैं। हे भारत, मैं प्रतिदिन देखता हूँ कि उदय और अस्त के समय सूर्य को कबन्ध घेरते हैं। २०
सबेरे और शाम को, बीच में काले और किनारों पर सफेद, लाल मण्डल सूर्य को घेरे रहते हैं
और आसपास विजली चमका करती है। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र दिन-रात प्रज्वलित रहते हैं।
दिन और रात में कुछ अन्तर नहीं देख पड़ता। यह उत्पात तुम्हारे वंश के लिए बहुत ही
भयङ्कर है। कार्तिक की पूर्णिमा को पद्मवर्ण नभस्थल में अलक्ष्य, प्रभाहीन, लाल रङ्ग के चन्द्रमा
का उदय हुआ है। इससे बड़े बलवान् महावीर राजा और राजपुत्र मारे जायेंगे। रात को
आकाश में लड़ते हुए वराह और बिलाव का कठोर शब्द मुझे सुन पड़ता है, जो जन-जय की
सूचना देता है। देवताओं की मूर्तियाँ कभी काँपती हैं, कभी पसीजने लगती हैं, कभी मुँह से
रक्त उगलती हैं और कभी गिर पड़ती हैं। राजन्, बिना बजाये ही नगाड़े बजने लगते हैं।
क्षत्रियों के रथ बिना घोड़े जोते ही चलने लगते हैं। कोयल, शतपत्र, चाष, भास, तोता, सारस,
मोर आदि पक्षी दारुण स्वर से बोल रहे हैं। लोहे के रङ्ग के मुँहवाली एक प्रकार की
टीड़ियाँ घोड़ों की पीठों पर उड़ती देख पड़ती हैं। अरुणोदय के समय असंख्य टीड़ियाँ
देख पड़ती हैं। सबेरे और शाम को दिग्दाह देख पड़ता है (अर्थात् आग लगने का सा
प्रकाश और लाली देख पड़ती है)। मेघों से धूल और मांस की वर्षा होती है। त्रिलोकी ३०
भर में जिनके पातिव्रत्य की बड़ाई होती है उन अरुन्धती (तारा) ने भी वशिष्ठ (तारा)
को पीछे छोड़ दिया है। शनैश्चर ग्रह रोहिणी नक्षत्र को पीड़ा पहुँचा रहा है। चन्द्रबिम्ब
के भीतर का चिह्न अपने स्थान पर नहीं देख पड़ता। आकाशमण्डल में मेघ न रहने पर भी
घोर मेघगर्जन का सा शब्द सुन पड़ता है। घोड़ों की आँखों से आँसू निकल रहे हैं।
इसलिए राजन्, निश्चय जानो कि बड़ी विपत्ति आनेवाली है। ३३

तीसरा अध्याय

उत्पातों का और शुभसूचक चिह्नों का वर्णन

व्यासजी कहते हैं—राजन्, गाथों के गर्भ से गधे पैदा होते हैं [या उनका परस्पर
सङ्गम होता है]। माताओं के साथ पुत्र रमण करते हैं। वनों के वृक्षों में ऋतु के बिना ही
उस ऋतु के फूल और फल देख पड़ते हैं। स्त्रियों के भयानक आकार की सन्तानें पैदा
होती हैं। मांसभोजी पक्षियों के साथ सियार और कुत्ते, एक ही जगह, खाते हैं। ऐसे
विचित्र प्राणी जन्म ले रहे हैं जिनके तीन साँग, चार आँखें, पाँच पैर, दो सिर और दो
लिङ्ग, दो पूँछें, तीन पैर और चार दाँत हैं। वे मुँह फैलाये रहते हैं और अमङ्गलसूचक शब्द
करते हैं। गरुड़ पक्षियों के साँग, तीन पैर और चोटी देख पड़ती है। इसी प्रकार ब्रह्म-

वादियों की स्त्रियों के गरुड़ पत्नी और मोर, घोड़ियों के गायों के बछड़े, कुतियों के सियार और हथिनियों के कुत्ते पैदा होते हैं। तेते लगातार अशुभ और कर्कश शब्द बोलते हैं। किसी-किसी स्त्री के एक साथ चार-चार पाँच-पाँच कन्याएँ पैदा होती हैं। वे कन्याएँ पैदा होते ही नाचती, गाती, बाजे बजाती और हँसती हैं। चाण्डाल आदि के घर में उत्पन्न काने-कुबड़े आदि बालक-बालिका हँसते, नाचते और गाते हैं। यह भी महाभयसूचक उत्पात है। वे सब काल के द्वारा प्रेरित होकर हाथ में शस्त्र लिये हुए मूर्तियाँ लिखते और बनाते हैं। दण्ड हाथ में लिये बालक एक दूसरे को मारने के लिए दौड़ते हैं और युद्ध करने की इच्छा से १० कृत्रिम नगरों को रौंदते हैं। वृत्तों में कमल और कोकावेली के फूल निकलते हैं। हवा बड़े वेग से चलती है। धूल इतनी उड़ती है कि किसी तरह शान्त ही नहीं होती। लगातार भूकम्प होता है। राहु सूर्य के पास जाता है। कंतु चित्रा नक्षत्र में स्थित है। इसमें सन्देह नहीं कि कुरुवंश के नाश के लिए ही ये उत्पात देख पड़ते हैं। धूमकेतु पुष्य नक्षत्र में स्थित है। इसका फल यह है कि दोनों पक्षों की बहुत सी सेना चौपट होगी। मङ्गल वक्रा होकर मघा नक्षत्र में और उसी तरह बृहस्पति श्रवण नक्षत्र में स्थित है। शनैश्चर उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में स्थित होकर उसे सता रहा है। शुक्र पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में है और चारों ओर घूमकर उपग्रह के साथ उत्तराभाद्रपद नक्षत्र को देख रहा है। कंतु ग्रह ध्रुव से युक्त अग्नि के समान प्रज्वलित होकर, इन्द्र जिसके देवता हैं उस, तेजस्वी ज्येष्ठा नक्षत्र के ऊपर आक्रमण कर रहा है। चित्रा और स्वाती के बीच में स्थित राहु सदा वक्रा होकर रोहिणी और सूर्य-चन्द्र को पीड़ा पहुँचाता हुआ प्रज्वलित होकर ध्रुव की बाईं ओर जा रहा है। उसी सर्वतोभद्र चक्र के बीच मघा में स्थित पावक-प्रभ मङ्गल ग्रह बारम्बार वक्रा होकर बृहस्पतियुक्त श्रवण का पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। पृथ्वी सब प्रकार के अन्नों से परिपूर्ण हो रही है। जब कं पेड़ों में पाँच-पाँच बालियाँ और धान के पेड़ों में सैकड़ों बालियाँ देख पड़ती हैं। यही दोनों अन्न प्रधान हैं और इन्हीं के ऊपर सब लोगों का जीवन निर्भर है। बछड़ों के दूध पी चुकने के बाद गायों के थनों से रक्त की धारा २० निकलती है। धनुषों से आग की चिनगारियाँ निकलती हैं और खड्ग प्रज्वलित हो रहे हैं। सब शस्त्र मानों उपस्थित संग्राम को स्पष्ट देख रहे हैं। शस्त्रों, कवचों, जल और ध्वजाओं की आभा अग्नि की सी देख पड़ती है। इससे जान पड़ता है कि बड़ा भारी जनक्षय होगा।

जिस समय पाण्डवों के साथ कौरवों का घोर संग्राम होगा, उस समय पृथ्वी पर रक्त की नदियाँ बह जायँगी और उनमें ध्वजाएँ डोंगियों के समान देख पड़ेंगी। मृगों और पक्षियों के मुँह से आग सी निकल रही है और वे भयानक शब्द कर रहे हैं। यह उत्पात भी कौरवों के लिए महाभय की सूचना दे रहा है। एक पङ्ख, एक आँख और पैरवाले आकाशचारी पत्नी रात के समय क्रोधित होकर दारुण शब्द करते हैं और मुँह से रक्त उगलते हैं। श्रवण में स्थित

बृहस्पति और चित्रा में स्थित शनैश्चर शतपद चक्र में तिर्यग्बेध से विशाखा नक्षत्र को बेध रहे हैं। संवत्सरपर्यन्त एक राशि में रहनेवाले ये दोनों ग्रह अरुण प्रभा के साथ प्रज्वलित से हो रहे हैं। इन्होंने सप्तर्षियों की प्रभा को फीका कर दिया है। बेशुमार धूल उड़कर प्रभा-हीन सब दिशाओं में छा रही है। उत्पातसूचक भयानक मेघ रात को रक्त की वर्षा करते हैं। राहु ग्रह चित्रा के अंश में स्थित होकर रोहिणी को और स्वाती के अंश में स्थित होकर कृत्तिका को पीड़ा पहुँचा रहा है। उत्पातसूचक धूमकेतु का उदय होता है। बारम्बार वेग से आँधी चलती है। इन उत्पातों से भयङ्कर युद्ध होने की सूचना मिल रही है। पापग्रह बुध पूर्वाषाढ़, ३० पूर्वाफाल्गुनी और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रों के ऊपर जाकर प्राणियों के लिए महाभय की सूचना दे रहा है। एक तिथि का क्षय होने पर चौदहवें दिन, तिथि का क्षय न होने पर पन्द्रहवें दिन, अथवा एक तिथि बढ़ने पर सोलहवें दिन चन्द्रमा या सूर्य को ग्रहण लगता है। किन्तु एक ही महीने में दो-दो तिथियों का क्षय होकर तेरहवें-तेरहवें दिन पूर्णिमा या अमावस को चन्द्रमा और सूर्य का ग्रहण मैंने कभी नहीं देखा। इस समय बहुत दिनों के बाद यह दुर्योग हुआ है। इससे जान पड़ता है कि बड़ा भारी लोकक्षय होगा। कृष्ण चतुर्दशी के दिन मांस की घोर वर्षा हुई है। राक्षसों के मुख रक्त से परिपूर्ण होने पर भी वे तृप्त नहीं होते। नदियों का जल लाल हो रहा है और वे उलटी बह रही हैं। कुओं के पानी में फेना उतरा रहा है और उनका जल हवा लगने से ऐसा उछल रहा है जैसे बैल कूदते हों। इन्द्र के वज्र के समान प्रभावाले तारे घोर शब्द के साथ टूट-टूटकर गिर रहे हैं। यह रात कीतने पर तुम्हारे पुत्रों को महा अन्याय का फल भोगना पड़ेगा। इस उत्पात का फल जो महर्षियों ने कहा है वह यह है कि हजारों राजाओं का रक्त यह पृथ्वी पियेगी। घोर उल्कापात के साथ चारों ओर अन्धकार छा रहा है। कैलास, मन्दर पर्वत और हिमाचल आदि बड़े पहाड़ों से हजारों घोर शब्द प्रकट हो रहे हैं और उनके शिखर टूट-टूटकर गिर रहे हैं। भूकम्प होता है और चारों महासागर बढ़कर, अपनी हद को छोड़कर, उमड़ रहे हैं; मानों सारी पृथ्वी को डुबा देंगे। आँधी वृत्तों को तोड़ती हुई, कड़क बरसाती हुई, ज़ोर से चल रही है। वज्रपात से टूट-टूटकर वृत्त और देवमन्दिर गाँवों और नगरों में गिर रहे हैं। ब्राह्मणों के हवन करने पर अग्नि की शिखा बाईं ओर को घूमती हुई निकलती है और उसमें नीला, लाल और पीला रङ्ग देख पड़ता है। अग्नि से भयानक शब्द के साथ दुर्गन्ध निकल रही है। स्पर्श, गन्ध, रस आदि में ४० विपरीत भाव देख पड़ रहा है। ध्वजाएँ बारम्बार हिलती हैं और उनसे धुआँ निकल रहा है। भेरी और पटह अङ्गारों की वर्षा करते हैं। ऊँचे वृत्तों के ऊपर बाईं ओर से घूम-घूमकर कौए बैठते हैं और अत्यन्त अमङ्गल शब्द कर रहे हैं। कुछ कौए बारम्बार काँव-काँव करके ध्वजाओं के अग्रभाग पर आ बैठते हैं और राजाओं के विनाश की सूचना दे रहे हैं। दुर्दान्त हाथी

काँपते और चिन्तायुक्त से होकर मल-मूत्र त्याग कर रहे हैं। वोड़े अत्यन्त दीन भाव धारण किये हुए हैं। हाथियों के पसीना निकल रहा है। [इस प्रकार स्वर्ग, आकाश और पृथ्वी पर त्रिविध उत्पात हो रहे हैं जिनसे राजाओं के लिए महाभय की सूचना मिल रही है।] राजन्, अब तुम इन उत्पातों को देखकर समयानुसार ऐसा कोई उपाय करो। जिसमें यह लोक-क्षय न हो।

वैशम्पायन कहते हैं कि अपने पिता वेदव्यास के ये वचन सुनकर धृतराष्ट्र ने कहा— भगवन्, यह लोक-क्षय होना मेरी समझ में दैवकृत है। राजा लोग क्षत्रिय-धर्म के अनुसार युद्ध में मरकर वीरों के योग्य लोकों में जाकर सुख भोगेंगे। यहाँ उनकी परम कीर्ति होगी और परलोक में उन्हें सुख भोगने को मिलेगा।

५०

धृतराष्ट्र के ये वचन सुनकर कवीश्वर व्यासदेव ने दम भर सोचकर कहा—हे राजेन्द्र, इसमें संशय नहीं कि काल इस संसार का विनाश करता है और फिर जगत् की सृष्टि करता है। इस लोक में कोई वस्तु सदा रहनेवाली नहीं है। तुम इस अनिष्ट घटना को रोकने में समर्थ हो। इसलिए इस समय कौरव, पाण्डव, सम्बन्धी और सुहृद् आदि को धर्म का मार्ग दिखाओ और उस पर चलने के लिए उनसे अनुरोध करो। जाति का वध बड़ा ही क्षुद्र और नीच कार्य है। उसे रोकें। चुप रहकर मेरा अप्रिय मत करो। वेद में हत्याकाण्ड—जाति-वध—की बड़ी निन्दा की गई है। यह कभी हितकारी नहीं हो सकता। राजन्, साक्षात् काल ही तुम्हारे यहाँ पुत्र के रूप से पैदा हुआ है। मनुष्य का शरीर कुल-धर्म का पालन करता है। जो कोई अपने कुल-धर्म रूप शरीर को नष्ट करता है उसे वह कुल-धर्म ही चौपट कर देता है। तुम कालप्रेरित होकर, आपत्काल न होने पर भी आपत्काल की तरह, उत्पथगामी हो रहे हो; अर्थात् जाति-वध में लगे हुए हो। अपने कुल और अन्य राजाओं के संहार के लिए काल की प्रेरणा से तुम कुमार्ग में चलाये जा रहे हो। राज्य का लोभ ही इस महान् अनर्थ का मूल कारण है। तुम एकदम धर्म का लोप करने पर उतारू हो। मेरा कहा मानो, पुत्रों को धर्म का मार्ग दिखाओ। राजन्, तुम वह राज्य लेकर क्या करोगे जिससे पापभागी होना पड़ेगा और अकीर्ति मुफ्त में होगी? जो मेरा कहा मानोगे तो तुम्हें यश, धर्म और कीर्ति प्राप्त होगी। अन्त का स्वर्गलोक में जाओगे। इसलिए ऐसा करो, जिसमें पाण्डवों को राज्य मिले और कौरव कल्याण तथा सुख प्राप्त करें।

६०

व्यासदेव के यों कहने पर राजा धृतराष्ट्र ने प्रशंसा करके भी उनकी बातों के ऊपर उपेक्षा का भाव दिखाकर कहा—भगवन्, आपकी तरह मैं भी स्थिति और विनाश का यथार्थ हाल जानता हूँ। हे तात, सब संसार के लोग स्वार्थ-साधन के मोह में पड़कर स्वार्थ साधने की ही धुन में लगे रहते हैं। मैं संसार के ही भीतर हूँ। आपका प्रभाव अतुल है। आप धीर पुरुष हैं। मेरी एक मात्र गति और मुझे उपदेश देनेवाले आप ही हैं। इसी लिए मैं आपको

मनाता हूँ। हे महर्षि, मेरे बेटे मेरे वश में नहीं हैं। मैं स्वयं अधर्म करना नहीं चाहता। आप हमारे धर्म, यश, कीर्ति, धैर्य, स्मृति आदि के मूल कारण हैं। आप कौरवों और पाण्डवों के माननीय पितामह हैं। इसलिए पाण्डवों की तरह कौरवों पर भी आपका कृपा करनी चाहिए।

व्यासजी ने कहा—राजन्, तुम्हारे मन में जो सन्देह है उसे प्रकट करो। मैं तुम्हारे संशयों को मिटा दूँगा। धृतराष्ट्र ने कहा—भगवन्, युद्ध में विजय प्राप्त करनेवालों को जो शुभ लक्षण देख पड़ते हैं, उन्हें कहिए। उन्हें सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है।

व्यासजी ने कहा—राजन्, हवन के उपरान्त अग्नि की निर्मल प्रभा देख पड़ती है। अग्नि की लपट दक्षिणावर्त उठती है। बिना धुएँ की आग की ज्वालाएँ ऊपर उठती हैं। आहुति छोड़ने के समय आग से अत्यन्त पवित्र गन्ध निकलती है। यही विजय का लक्षण है। जिधर शङ्ख और मृदङ्ग का शब्द बढ़ा भारी और गम्भीर होता है, सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश अत्यन्त उज्ज्वल होता है उधर ही जय होना निश्चित है। युद्ध में जिनके जाते समय कौए अनुकूल शब्द करते हैं उनकी जय अवश्य होती है। पीछे कौओं का बोलना शुभ है और आगे बोलना अशुभ है। ब्राह्मणों का कहना है कि राजहंस, तोते, कौँच, शतपत्र आदि पक्षी शुभ शब्द करते हुए जिनकी प्रदक्षिणा करते हैं उनको अवश्य जय प्राप्त होती है। अलङ्कार, कवच, ध्वजा, सिंहनाद और घोड़ों के शब्द आदि से जिनकी सेना परम शोभायमान और दुर्निरीक्ष्य होती है उन्हीं को जय मिलती है। हे भारत, जिधर योद्धाओं के वचन हर्षपूर्ण होते हैं और वीरों के कण्ठ की मालाएँ नहीं मुरझाती वे ही सुख से संग्राम-सागर के पार पहुँचते हैं। जो योद्धा शत्रु-सेना में प्रवेश करके “मारे डालता हूँ” इत्यादि उत्साह के वाक्य कहते हैं, और शत्रुसेना में घुसने के लिए उत्सुक होकर “तुम्हारी सेना नष्ट हुई” इत्यादि वाक्य कहते हैं वे जय प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। जिस पक्ष के योद्धा कहते हैं कि “युद्ध न करना, मारे जाओगे” वह पक्ष अवश्य ही हार जाता है। जिनकी जय होनेवाली होती है उनके शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि के कार्यों में कुछ भी विकार नहीं देख पड़ता—हृदय में सदा हर्ष बना रहता है। हवा का अनुकूल होकर चलना, अनुकूल वर्षा होना, पक्षियों का अनुकूल चलकर शब्द करना और इन्द्रधनुषों का पीछे उदय होना, ये लक्षण विजय के सूचक हैं। राजन्, इन बातों का प्रतिकूल होना हार का और मृत्यु का लक्षण समझना चाहिए।

सेना थोड़ी हो चाहे बहुत, योद्धा लोगों में हर्ष और उत्साह देख पड़ना ही जय का मुख्य कारण है। एक सैनिक भी अगर उत्साहहीन होकर भाग खड़ा हो तो बहुत सी सेना भी भाग खड़ी होती है। सेना के पैर उखड़ जाने पर बड़े-बड़े शूरवीर भी पीछे हट जाते हैं। जब बड़ी भारी सेना भाग खड़ी होती है तब, डरकर भागे हुए मृगों के झुण्ड की तरह, पानी के महाप्रवाह की तरह, वह लौटाई नहीं जा सकती। उस संघर्ष के समय बड़े-बड़े चतुर रण-

पण्डित सेनापति भी उस बेसिलसिले भागती हुई सेना को सँभालने और एकत्र करने में असमर्थ हो जाते हैं; बल्कि सब सेना को भागते देखकर वे आप ही डरकर, निरुत्साह होकर, भागने को तैयार हो जाते हैं। उन्हें डरे हुए और भागते देखकर बची हुई सेना और भी डर जाती है। तब बड़े-बड़े शूर भी उस महासेना को नहीं रोक सकते। बुद्धिमान राजा को चाहिए कि सदा सावधान रहकर चतुरङ्गिणी सेना को सत्कारपूर्वक अपने वश में रखे, और फिर पहले साम, दान आदि उपायों से विजय प्राप्त करने की चेष्टा करे। भेद से जय प्राप्त करने का उपाय मध्यम है। युद्ध करके जय प्राप्त करना अधम उपाय है। जब कोई उपाय काम न करे तब युद्ध करना चाहिए। वास्तव में युद्ध में अनेक दोष हैं। सबसे बड़ा और पहला दोष यह है कि उसमें मनुष्यों का नाश होता है।

राजन् ! एक दूसरे को अच्छी तरह जाननेवाले, उत्साही, स्त्री-पुत्र आदि में आसक्ति न रखनेवाले, दृढ़ निश्चयवाले, दृष्ट, कभी पीठ न दिखानेवाले पचास वीर पुरुष भी बड़ी भारी सेना को नष्ट कर देते हैं। तत्परता से युद्ध करनेवाले पाँच, छः, सात मनुष्य भी विजय प्राप्त कर सकते हैं। इन गुणों से हीन हजारों मनुष्य भी भाग खड़े होते हैं। असंख्य स्वर्णचूड़ पत्तियों के झुण्ड को गरुड़ अकेले ही मार भगाते हैं। इस प्रकार अकेले अपने द्वारा भारी सेना को विनाश को देखकर गरुड़ बहुत बड़ी सेना की प्रशंसा नहीं करते। राजन्, सेना बहुत होने से ही सदा जय नहीं होती। जय अनिश्चित है। वह दैव के अधीन है। जो लोग संग्राम में विजय पाते हैं वे कृतकृत्य हो जाते हैं।

चौथा अध्याय

धृतराष्ट्र और सञ्जय का संवाद। पृथ्वी के गुणों का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, महात्मा वेदव्यास इतना कहकर जब चले गये तब उनके वचन सुनकर राजा धृतराष्ट्र ने कुछ देर तक सोचा। फिर बारम्बार साँस छोड़ते हुए धृतराष्ट्र ने ज्ञानी सञ्जय से कहा—सञ्जय, संग्रामप्रिय महाबली पराक्रमी राजा लोग युद्ध में जीवन का मोह और आशा छोड़कर विविध अस्त्र-शस्त्रों के द्वारा एक-दूसरे की हत्या करेंगे। वे परस्पर मारे जाकर यमपुरी को भर भले देंगे, किन्तु शान्त भाव नहीं धारण करेंगे। राजा लोग पृथ्वी के ऐश्वर्य की इच्छा से एक दूसरे को नहीं देख सकते; एक दूसरे का प्राणान्तक शत्रु हो रहा है। इस नीच व्यवहार—युद्ध—से कोई लौटना नहीं चाहता। इससे मुझे जान पड़ता है कि पृथ्वी में बहुत से गुण हैं। तुम मेरे आगे पृथ्वी के गुणों का वर्णन करो। तुम उन अमित तेजस्वी महर्षि व्यासदेव के प्रसाद से दिव्य बुद्धि और ज्ञानमयी दिव्य दृष्टि प्राप्त कर चुके हो। कुरुक्षेत्र में हजारों, लाखों, करोड़ों वीर क्षत्रिय आकर युद्ध के लिए जमा

हुए हैं। मैं सुनना चाहता हूँ कि वे कहाँ-कहाँ से आये हैं। उनके देशों और नगरों की आकृति-प्रकृति सुनने की मुझे बड़ी इच्छा है।

सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, आप बड़े समझदार हैं। मैं आपको प्रणाम करके पृथ्वी के गुणों का वर्णन करता हूँ, सुनिए। राजन्, प्राणी दो प्रकार के हैं। स्थावर और जङ्गम,

अर्थात् स्थिर और चलनेवाले। जङ्गम तीन प्रकार के हैं। अण्डे से पैदा होनेवाले, पसीने से पैदा होनेवाले और (जरायु) भिल्ली से पैदा होनेवाले। सब जङ्गम जीवों में जरायु से पैदा होनेवाले पशु और मनुष्य श्रेष्ठ हैं। उनमें विविध रूप-धारी यज्ञ के साधन रूप पशु प्रधान हैं। पशु चौदह प्रकार के हैं। उनमें सात पशु वन के रहनेवाले और सात पशु गाँवों के निवासी हैं। सिंह, बाघ, बराह, भैंसे, हाथी, रीछ और वानर, ये सात जङ्गली पशु हैं। गाय, बकरी, भेड़ा, मनुष्य, घोड़े, खच्चर और गधे, ये सात गाँवों के निवासी हैं। राजन्, वेद में इन



१०

चौदह पशुओं का वर्णन है। इनके अनेक उपभेद भी हैं। ग्रामवासियों में मनुष्य और वन-वासियों में सिंह प्रधान हैं। ये सब जीव एक दूसरे के द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं। स्थावर प्राणी उद्भिज् (पृथ्वी फोड़कर निकलते) हैं। उनकी पाँच जातियाँ हैं— वृक्ष, लता (जो बहुत दिनों तक पंड़ पर ठहरें, जैसे गिलोय आदि), गुल्म, बल्ली (एक साल तक ज़मीन पर फैलनेवाली कुँहड़े आदि की) और त्वक्सार तृण (बाँस आदि)। ये स्थावर-जङ्गमरूप उन्नीस भूत (प्राणी) हैं। पञ्चमहाभूत (आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु) मिलाकर ये चौबीस हैं। चौबीस वर्णवाली गायत्री अपने वर्णों से इन्हीं चौबीस भूतों का बोध कराती है। सब गुणों से युक्त पवित्र वेदमाता गायत्री के इस भेद को जो कोई जानता है उसका विनाश नहीं होता। राजन्, भूमि से ही सबकी उत्पत्ति होती है और भूमि में ही सब लीन हो जाते हैं। भूमि ही सब प्राणियों का अधिष्ठान है। भूमि ही नित्य है। जिसके अधीन भूमि

है उसके वश में सब स्थावर-जङ्गमरूप जगत् है। भूमि पर अत्यन्त लोभ होने से ही राजा २१ लोग एक-दूसरे की हत्या करने को तैयार हो जाते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

नदी और पर्वत आदि का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! इस पृथ्वी पर जो नदी, पर्वत, जनपद, वन आदि हैं उनके नाम और परिमाण विशेष-रूप से कहो।

सञ्जय ने कहा—राजन्, उक्त पञ्च महाभूतों के मेल, से ही जगत् के सब पदार्थ बने हैं। इसी से बुद्धिमान विद्वान् लोग पृथ्वी के सब पदार्थों को समान कहते हैं। आकाश, वायु, तेज, जल और भूमि, ये पाँचों महाभूत उत्तरोत्तर अधिक गुण-सम्पन्न हैं। तत्त्वज्ञानी ऋषियों का कहना है कि पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पाँचों गुण हैं। जल में शब्द, स्पर्श, रूप और रस, ये चार ही गुण हैं; गन्ध नहीं है। तेज में शब्द, स्पर्श और रूप, ये तीन ही गुण हैं। वायु में शब्द और स्पर्श, ये दो गुण हैं। आकाश का गुण केवल शब्द है। महाराज, यह सारा संसार पञ्चभूतमय है। जब ये पाँचों गुण सम भाव से, परस्पर प्रशान्त रूप से, रहते हैं तब सृष्टि की स्थिति बनी रहती है। उसी तरह जब इनमें विषमता हो जाती है तब देहधारियों के शरीर छूट जाते हैं। ये सब गुण क्रमशः एक-एक से उत्पन्न होते हैं और अन्त को उसी क्रम से एक-एक में लीन हो जाते हैं। इन सबका परिमाण करना अत्यन्त १० कठिन है। इन गुणों का रूप ईश्वरकृत है। पाञ्चभौतिक धातु सभी स्थानों में देख पड़ते हैं। मनुष्य तर्क के द्वारा उनके प्रमाणों का निर्देश करते हैं। किन्तु जो भाव (संसार की उत्पत्ति-सम्बन्धी पदार्थ) अचिन्त्य हैं उनका निरूपण तर्क के द्वारा न करना चाहिए। जो विषय या पदार्थ इन्द्रियों से परे हैं उसी को अचिन्त्य समझना चाहिए।

राजन्, अब मैं जम्बूद्वीप का वर्णन करता हूँ; सुनिए। इस जम्बूद्वीप का दूसरा नाम सुदर्शन द्वीप है। यह चक्र के आकार का गोल और दुर्लक्ष्य है। इसके सब स्थानों में नदियाँ हैं, जल भरा हुआ है। इसमें मेघ की तरह ऊँचे पहाड़, तरह-तरह के नगर, रम्य जनपद और फल-पुष्प-पूर्ण वृक्ष असंख्य हैं। इस धनधान्य-पूर्ण द्वीप को चारों ओर से खारी समुद्र घेरे हुए है। जैसे शीशे में मनुष्य अपना मुख देखता है, वैसे ही सुदर्शन द्वीप का प्रतिबिम्ब चन्द्रमा के मण्डल में देख पड़ता है। जम्बूद्वीप के [दो अंशों में प्लक्षस्थान, दो अंशों में शात्मलिस्थान,] दो अंशों में पिप्पल-स्थान और दो अंशों में महाशशस्थान है। इस स्थान में भी सब प्रकार की ओषधियाँ और पर्वत १८ हैं। इसमें नदियाँ भी हैं। अब मैं जम्बूद्वीप को शेष खण्डों का वर्णन संक्षेप में करता हूँ; सुनिए।

छठा अध्याय

भारत आदि नव खण्डों का, सीमा के पर्वतों का और सुमेरु का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, तुम संक्षेप में जम्बूद्वीप का वर्णन कर चुके; अब उसका वर्णन विस्तार के साथ करो। तुम सब तत्त्वों को अच्छी तरह जानते हो। महाशशस्थान में जितनी पृथ्वी है उसका परिमाण और हाल पहले कहकर फिर पिप्पलस्थान का वर्णन करना।

सञ्जय ने कहा—राजन् ! हिमालय, हेमकूट, निषध, वैदूर्यमय नील पर्वत, चन्द्रतुल्य श्वेतपर्वत और सब धातुओं के विचित्र शिखरों से शोभित शृङ्गवान् नाम का पर्वत—ये छः सीमापर्वत पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक फैले हुए हैं। इन पर्वतों पर सिद्धगण और चारण रहते हैं। इन पर्वतों के बीच का अन्तर हजारों योजन का है। वह बीच का पवित्र स्थान रहने का योग्य है। वे ही सात खण्ड हैं। उनमें अनेक जातियों के प्राणी रहते हैं। यह भरतखण्ड है। इसके बाद हैमवत खण्ड है। हेमकूट पर्वत के बाद हरिवर्ष नाम का खण्ड है। नील पर्वत के दक्षिण और और निषध पर्वत के उत्तर और माल्यवान् नाम का पहाड़ है। यह पहाड़ पूर्व सागर तक फैला है। गन्धमादन पर्वत पश्चिम समुद्र तक फैला है। माल्यवान् के बाद ही गन्धमादन पर्वत है। नील और निषध पर्वत के बीच में दोपहर के सूर्य के समान प्रभाशाली, बिना धुएँ की आग के तुल्य सुवर्णमय, हजारों योजनों तक फैला हुआ, मण्डलाकार सुमेरु पर्वत है। सुमेरु की ऊपर की चोटी बयालीस हजार योजन चौड़ी है। १० पृथ्वी के नीचे का हिस्सा भी चौरासी हजार योजन चौड़ा है। इस पर्वत के ऊपर, नीचे और आसपास सब लोक हैं। सुमेरु के चारों ओर भद्राश्व, केतुमाल, जम्बूद्वीप (अर्थात् भरतखण्ड) और उत्तर कुरु, ये चार द्वीप हैं। उत्तर कुरु द्वीप में पुण्यात्मा लोग रहते हैं।

एक समय पत्तिराज गरुड़ के पुत्र सुमुख ने सुमेरु पर्वत पर सुवर्ण के शरीरवाले कौओं को देखकर सोचा कि इस सुमेरु पहाड़ पर उत्तम, मध्यम और अधम पक्षियों में कुछ भी अन्तर नहीं देख पड़ता। इसलिए मैं इसे छोड़कर चला जाऊँगा [यों सोचकर सुमेरु को छोड़कर पत्तिराज सुमुख उत्तर कुरु देश को चले गये]। महाराज ! ज्योतिर्मण्डली में श्रेष्ठ सूर्य, चन्द्रमा, सब नक्षत्र और वायु उस सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते रहते हैं। वहाँ के वृक्ष सुन्दर फलों और फूलों से लदे रहते हैं। वहाँ के दिव्य भवन सुवर्णमय और सुवर्ण की सामग्री से सजे हुए हैं। वहाँ देवता, गन्धर्व, असुर, अप्सरा, राक्षस आदि देवयोनियाँ नित्य विहार करती हैं। ब्रह्मा, रुद्र और इन्द्र बहुत सी दक्षिणावाले विविध यज्ञ करते हैं। नारद ऋषि तथा तुम्बुरु, विश्वावसु और हाहा-हूहू आदि गन्धर्व उनके गुणों का बखान करते हैं। महामनस्वी सप्तर्षिगण और प्रजापति कश्यप वहाँ हर पर्व पर जाते हैं। राजन्, उस सुमेरु पर्वत की चोटी पर दैत्यों के साथ शुक्रा-

चार्य रहते हैं। ये सब रत्न और रत्नों की खान पहाड़ उन्हीं के अधिकार में हैं। यत्तराज कुबेर उन्हीं शुक्र से धन का चौथाई हिस्सा पाते हैं और उसका सोलहवाँ हिस्सा मनुष्यों को देते हैं।

उस सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग में, सब प्रकार के सब ऋतुओं के दिव्य फूलों से परिपूर्ण, शिलाओं पर स्थित परम रमणीय कर्णिकार वन है। वहाँ पार्वती के साथ महादेवजी पैरों तक लटक रही कनैर के फूलों की माला पहने बिचरते और विहार करते हैं। सब भूतगण उनके साथ रहते हैं। उनके तीनों नेत्र उदय हो रहे सूर्य के समान चमकीले हैं। उत्तम व्रत करनेवाले, उग्र तपस्वी, सत्यवादी, महात्मा सिद्धों को उनके दर्शन मिलते हैं। बुरे चरित्रवाले दुष्ट लोग उन महेश्वर के दर्शन नहीं पा सकते। उस सुमेरु के शिखर से वे पवित्र जलवाली गङ्गाजी निकली हैं जिनके तट पर पुण्यात्मा जन रहते हैं। वे लगातार गम्भीर शब्द करती हुई प्रबल वेग से चन्द्रकुण्ड में गिरती हैं। गङ्गाजी से ही वह समुद्र-तुल्य पवित्र कुण्ड उत्पन्न हुआ है। बड़े-बड़े पर्वत जिनके वेग का रोकने में असमर्थ हैं उन गङ्गाजी को भगवान्

३० शङ्कर ने सैकड़ों-हज़ारों वर्षों तक अपने मस्तक पर ही धारण कर रक्खा था।

राजन्, जम्बूखण्ड के बीच सुमेरु के पश्चिम किनारे पर केतुमाल नाम का महा जनपद है। वहाँ के पुरुषों के शरीर का रङ्ग तपे हुए सोने के समान है। वहाँ की स्त्रियाँ अप्सराओं के समान सुन्दरी हैं। उन लोगों की आयु दस हज़ार वर्ष की है। उन्हें रोग और शोक नहीं होता। वे सदा प्रसन्न देख पड़ते हैं। उनके पास ही गन्धमादन पहाड़ के शिखर पर यत्तराज कुबेर राक्षसों और अप्सराओं के साथ विहार करते हैं। गन्धमादन के उत्तर भाग में असंख्य छोटे-छोटे पहाड़ हैं। वहाँ के पुरुष साँवले, तेजस्वी और बड़े पराक्रमी हैं। वहाँ की स्त्रियों का शरीर नीलकमल के रङ्ग का है—उनकी सरत देखनेवालों को मोहने-

श्वेतखण्ड है। उसके उत्तर अंश में हिरण्यखण्ड है। उसके उत्तर अंश में अनेक जनपदों से शोभित ऐरावतखण्ड है। इन खण्डों के दक्षिण भाग में भरतखण्ड है। इन खण्डों का आकार धनुष का सा है। राजन् ! श्वेतखण्ड, हिरण्यखण्ड, इलावृतखण्ड, हरिखण्ड और हैमवतखण्ड, ये पाँच खण्ड बीच में हैं। दक्षिण और भरतखण्ड और उत्तर और ऐरावतखण्ड है। इलावृतखण्ड सबके बीच में है। ये खण्ड उत्तरोत्तर हर एक की अपेक्षा धर्म, अर्थ, काम, आरोग्य, आयु और परिमाण में अधिक हैं। इन खण्डों के निवासी परस्पर किसी तरह का झगड़ा न करके बड़े सुख से रहते हैं।

४० महाराज, इस तरह यह पृथ्वी बहुत से पर्वतों से घिरी हुई है। हेमकूट अथवा कैलास नाम का जो अत्यन्त विशाल पर्वत है उस पर यत्तराज कुबेर यत्नों के साथ रहकर सदा विहार करते हैं। कैलास के उत्तर और मैनाक पर्वत के समीप एक हिरण्यशृङ्ग नाम का बड़ा भारी



वहाँ पार्वती के साथ महादेवजी पैरों तक लटक रही कनैर की माला पहने विहार करते हैं । पृ० १८८४

मणिमय पर्वत है। उसके पास सुवर्ण की बालू से परिपूर्ण परम रमणीय बिन्दुसर नाम का दिव्य सरोवर है। वहीं राजा भगीरथ ने बहुत दिनों तक तप किया और गङ्गाजी के दर्शन पाये थे। उस सरोवर के किनारे पर मणिमय यूप और सुवर्णमय चैत्यभवन हैं। इन्द्र ने वहीं पर यज्ञ करके सिद्धि पाई है। परम तेजस्वी भगवान् रुद्र ने उसी स्थान में रहकर प्रजा की सृष्टि की है। उसी स्थान में नर, नारायण, ब्रह्मा, मनु और परम तेजस्वी शङ्कर की सब लोग उपासना करते हैं। त्रिपथगामिनी गङ्गाजी ब्रह्मलोक से चलकर पहले उसी स्थान पर गिरी हैं। वहीं से उनकी वस्त्राकसारा, नलिनी, सरस्वती, जम्बूनदी, सीता, गङ्गा और सिन्धु नाम से प्रसिद्ध सात धाराएँ बही हैं। ईश्वर ने ही लोकोपकार के लिए यह अचिन्त्य दिव्य विधान किया है—पवित्र जलवाली गङ्गाजी की सात धाराएँ बहाई हैं। लोग जहाँ पर इन्द्र की उपासना करते हैं वहीं पर, सहस्र युग बीतने पर, अदृश्य सरस्वती की धारा देख पड़ती है। ये सातों दिव्य गङ्गाएँ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं।

५०

हिमालय पर राक्षस, हेमकूट पर यक्ष, निषध पर साँप और नाग, तपोवन गोकर्ण पर्वत पर तपस्वी और नील पर्वत पर ब्रह्मर्षि लोग रहते हैं। शृङ्गवान् पर्वत देवताओं के विचरने का स्थान कहा जाता है। महाराज, मैंने जिन सात खण्डों का वर्णन किया है, उन्हीं में सब स्थावर-जङ्गम जीव रहते हैं। उनकी देवी और मानुषी समृद्धि अनेक प्रकार की देख पड़ती है। उसकी संख्या करना असम्भव है; किन्तु हित चाहनेवाले मनुष्य का उसके ऊपर सर्वथा श्रद्धा रखनी चाहिए। राजन्, अब मैं आपके प्रश्न के अनुसार महाशशस्थान का वर्णन करता हूँ—सुनिष्ट। शशस्थान के दक्षिण और उत्तर ओर दो खण्ड हैं। उसके आस-पास नागद्वीप और काश्यपद्वीप कानों की तरह स्थित हैं। ताम्रपर्णी नदी और मलयपर्वत उसके सिर के समान जान पड़ते हैं। यह शश (खरगोश) के आकार का द्वीप जम्बूद्वीप के दूसरे द्वीप के समान है।

५६

सातवाँ अध्याय

उत्तरकुरु और भद्राश्वखण्ड का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, तुम महाबुद्धिमान् हो। अब सुमेरु के उत्तर ओर स्थित उत्तरकुरु देश और पूर्व ओर स्थित स्थान का वर्णन करो। माल्यवान् पर्वत का हाल भी कहो।

सञ्जय ने कहा—महाराज, सुमेरु के उत्तर ओर और नीलगिरि के दक्षिण ओर सिद्ध-जन-सेवित परम पवित्र उत्तरकुरु प्रदेश है। वहाँ के वृक्ष सदा सुमधुर रसयुक्त स्वादिष्ट फलों और सुगन्धित फूलों से शोभित रहते हैं। वहाँ कुछ वृक्ष ऐसे भी हैं जो सब इच्छाओं को

पूर्ण करते हैं। वहाँ के क्षीरी नाम के वृक्ष छः रसों से युक्त अमृत-सदृश दूध की धारा बर-
साते हैं। उन वृक्षों में फल के स्थान पर कपड़े और गहने उत्पन्न होते हैं। वहाँ की भूमि
मणिमय है। महीन बालू सोने की रेती के समान चमकीली है। [कोई-कोई भूखण्ड तो
मणि, रत्न, हीरे और पद्मराग मणि का बना हुआ और परम रमणीय है।] वहाँ के सरोवरों
में स्वच्छ जल भरा हुआ है, कीचड़ नाम लेने का भी नहीं। उनका जल सभी ऋतुओं में
सुखदायक स्पर्शवाला है। जीव जब स्वर्ग के सुख भोग कर पुण्य क्षीण होने पर वहाँ से भ्रष्ट
होते हैं तब उत्तरकुरु प्रदेश में ही उनका जन्म होता है। उनका रूप मनोहर होता है। उन
सबका जन्म शुद्ध उच्च कुल में होता है। वहाँ की स्त्रियाँ रूप में अप्सराओं का भी मात करती
हैं। वहाँ के लोग क्षीरी वृक्षों का अमृत-तुल्य दूध पीते हैं। वहाँ के स्त्री-पुरुष चकई-चकवे के
जोड़े की तरह एक साथ पैदा होकर समान रूप से बढ़ते हैं। सब तुल्य रूप और गुणों से
सम्पन्न तथा एक से वेप और आभूषणों से शोभित रहते हैं। वे सब नीराग और सदा प्रसन्न
१० रहते हैं। उनकी आयु ग्यारह हजार वर्ष की होती है। वहाँ कोई किसी का त्याग नहीं
करता। उनमें से किसी की मृत्यु हो जाती है तो तीक्ष्ण तुण्डवाले भयङ्कर भारुण्ड नाम के
पत्नी उनकी लाश ले जाकर पर्वत की कन्दराओं में डाल आते हैं।

राजन्, मैंने संक्षेप से उत्तरकुरुखण्ड का हाल कह सुनाया। अब सुमेरु के पूर्व भाग का
हाल कहता हूँ। वहाँ भद्राश्व नाम का एक स्थान है। उसमें एक भद्रशाल नाम का वन है।
उस वन में एक योजन ऊँचा कालाम्र नाम का वृक्ष है। उसके आस-पास सिद्ध और चारण रहते
हैं। उस शुभ वृक्ष में सदा फूल और फल देख पड़ते हैं। वहाँ के सफेद रङ्ग के पुरुष बड़े तेजस्वी
और महान् पराक्रमी होते हैं। स्त्रियों के शरीर का रङ्ग कुमुद पुष्प का सा साफ और रूप बहुत
ही सुन्दर होता है। उनके शरीर चन्द्र के समान, कान्तियुक्त और मुखमण्डल सुशीतल चन्द्र-
बिम्ब के समान होते हैं। उन सबकी जवानी सदा बनी रहती है। वे नाचने-गाने में निपुण
होती हैं। उनकी आयु दस हजार वर्ष की है। वहाँ के नर-नारी कालाम्र वृक्ष के फलों का
रस पीते हैं। नीलगिरि के दक्षिण और निपथ पर्वत के उत्तर ओर सुदर्शन नाम का, सब
इच्छाओं के अनुसार फल देनेवाला, एक जामुन का पेड़ है। वह वृक्ष सदा बना रहता है।
२० उसी पेड़ के कारण सुदर्शन द्वीप का दूसरा नाम जम्बूद्वीप भी है। उस वृक्ष के आस-पास सिद्ध
और चारण रहते हैं। वह वृक्ष सौ हजार योजन ऊँचा है। वह मानों आकाश को छुये लेता
है। उस वृक्ष के फलों का विस्तार दो हजार पाँच सौ 'अरतिन' (मुट्ठी से कुछ कम) है।
उन फलों के गिरते समय बड़ा शब्द होता है। उन फलों में रस ही रस भरा रहता है। उन
फलों से सोने के रङ्ग का रस निकलकर नदी के रूप में बहता है। वह नदी सुमेरु की प्रद-
क्षिणा करती हुई उत्तर कुरुप्रदेश में बहती है। उन फलों का रस पीने से जम्बूद्वीप निवासियों

के मन में शान्ति रहती है। उन्हें प्यास नहीं लगती; वे कभी बूढ़े भी नहीं होते। उस रस के संसर्ग से नदी-किनारे की मिट्टी, वीरबहूटी के रङ्ग का, जाम्बूनद सुवर्ण बन जाती है। देवता और उनकी स्त्रियाँ उसी सुवर्ण के सुन्दर गहने पहनती हैं। वहाँ के मनुष्य जन्मकाल से ही दोपहर के सूर्य के समान तेजस्वी होते हैं।

महाराज, माल्यवान् पर्वत के शिखर पर संवत्के नाम के कालाग्नि सदा विराजमान रहते हैं। माल्यवान् के आस-पास छोटे-छोटे पहाड़ों का सिलसिला दूर तक देख पड़ता है। ग्यारह हजार योजन तक माल्यवान् पर्वत फैला हुआ है। वहाँ उत्पन्न होनेवाले मनुष्यों के शरीर का रङ्ग सोने का सा होता है। वे सब ब्रह्मचारी होते हैं। जो लोग इस लोक में शुभ कर्म करके ब्रह्मलोक को जाते हैं वे ही, पुण्य क्षीण होने पर, ब्रह्मलोक से गिरकर माल्यवान् पर्वत पर पैदा होते हैं। वे सबके साथ अच्छा व्यवहार करनेवाले मनुष्य तीव्र तपस्या करते हैं और लोक-रक्षा के लिए अन्त को सूर्यमण्डल में प्रवेश करते हैं। उनमें से छाल्छठ हजार आदमी अरुण के आगे सूर्यमण्डल के आस-पास चलते हैं। इस प्रकार छाल्छठ हजार वर्ष तक सूर्य के ताप में तपकर अन्त को वे चन्द्रमण्डल में प्रवेश करते हैं।

३०

३२

आठवाँ अध्याय

सुमेरु के उत्तर भाग के तीनों खण्डों का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! तुम खण्ड, पर्वत और पर्वतनिवासी लोगों के नाम कहा। सञ्जय ने कहा—राजन्, श्वेत पर्वत के दक्षिण और नील पर्वत के उत्तर में रमण्य नाम का एक खण्ड है। इसी का दूसरा नाम श्वेतखण्ड है। वहाँ के रहनेवाले सब विशुद्ध वंशों में उत्पन्न हैं। वे प्रियदर्शन और सदा सन्तुष्टचित्त हैं। उनका कोई शत्रु नहीं। वे प्रसन्नतापूर्वक ग्यारह हजार पाँच सौ वर्ष तक जीते रहते हैं। नील पर्वत के दक्षिण और निपथ पर्वत के उत्तर और हिरण्मय नाम का खण्ड है। वहाँ हैरण्वती नदी बहती है। इस खण्ड में पत्तियों के राजा गरुड़ रहते हैं। वहाँ के सब मनुष्य यत्नों की उपासना करनेवाले, धनी, प्रियदर्शन, महाबली, नित्य प्रसन्न रहनेवाले और श्रेष्ठ होते हैं। इन खण्डों के रहनेवालों की आयु दो हजार पाँच सौ वर्ष की होती है।

हे नरश्रेष्ठ, शृङ्गवान् पर्वत के तीन विचित्र शिखर हैं। एक मणिमय है, दूसरा सुवर्णमय है और तीसरा सब रत्नों से परिपूर्ण है। रत्नमय शिखर पर सुन्दर भवन बने हैं, जो उसकी शोभा को और भी बढ़ाते हैं। वहाँ स्वयंप्रभा शाण्डिली नाम की देवी का निवास है। शृङ्गवान् के उत्तर और समुद्र के किनारे पर ऐरावत नाम का खण्ड है। न तो वहाँ सूर्य का प्रकाश १०

पहुँचता है और न वहाँ के मनुष्य बूढ़े ही होते हैं। नक्षत्रों सहित चन्द्रमा ही वहाँ प्रकाश पहुँचाते हैं। वहाँ के मनुष्यों का जन्म से ही पद्म का सा रङ्ग और कमल जैसी आँखें होती हैं। उनके शरीर से कमल के फूल की गन्ध निकलती है। वे देवलोक से भ्रष्ट होने पर वहाँ जन्म लेनेवाले पुण्यात्मा होते हैं। वे जितेन्द्रिय और देवतुल्य होते हैं। न तो उन्हें भूख-प्यास सताती है और न उनको पसीना आता है। उन पापरहित पुरुषों को सुगन्ध बहुत प्रिय होती है। उनकी आयु तेरह हजार वर्ष की होती है। राजन्, चारसागर के उत्तर और जो स्थान है वहाँ भगवान् पुण्डरीकाक्ष रथ पर विराजमान हैं। वह रथ अग्नि के रङ्ग का, मन के समान वेगवाला, जाम्बूनद सुवर्ण से अलङ्कृत, भूतयुक्त और दिव्य है। उसमें आठ पहियें लगें हैं। वही भगवान् सब प्राणियों के प्रभु और विभु (सर्वव्यापक) हैं। उन्हीं से जगत् उत्पन्न होता और उन्हीं में लीन हो जाता है। वही हर एक काम करनेवाले और करानेवाले हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और यज्ञ उन्हीं के स्वरूप हैं। अग्नि उनका मुख है।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, सञ्जय से यह सब वर्णन सुनकर महामनस्वी धृतराष्ट्र फिर अपने पुत्रों के बारे में सोचने लगे। कुछ देर तक सोचकर धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, इसमें सन्देह नहीं कि प्रबल काल ही इस जगत् का संहार करके फिर उसे उत्पन्न करता है। इस जगत् का कोई पदार्थ नित्य नहीं है। भगवान् नर और नारायण सर्वज्ञ हैं; वही सब संसार का संहार करते हैं। देवगण उन्हें वैकुण्ठ और मनुष्य उन्हें विष्णु कहते हैं।

नवाँ अध्याय

भरतखण्ड के देश, नदी, पर्वत आदि का विस्तार से वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय, जिस भरतखण्ड में यह अपार सेना युद्ध के लिए जमा हुई है, और जहाँ का साम्राज्य प्राप्त करने के लिए मेरा पुत्र दुर्योधन और पाण्डव इतना प्रयत्न कर रहे हैं, तथा मेरा मन भी जिस भरतखण्ड के लिए लुभा रहा है, उसका हाल तुम विस्तार के साथ कहो। मैं तुमको सबसे श्रेष्ठ बुद्धिमान् समझता हूँ।

सञ्जय ने कहा—महाराज, मैं जो कहता हूँ उसे मन लगाकर सुनिए। पाण्डवों को इस भारतवर्ष के साम्राज्य का लोभ नहीं है। दुर्योधन और शकुनि को ही इसके ऊपर बड़ा लोभ है। अन्य अनेक जनपदों के स्वामी क्षत्रिय राजा इस भारतवर्ष के ऊपर लोभ की दृष्टि डालकर एक दूसरे को शत्रु बने बैठे हैं। हे भरतश्रेष्ठ, मैं अब इस भारतवर्ष का वृत्तान्त विस्तार के साथ कहता हूँ। इन्द्र, वैवस्वत मनु, महाराज पृथु, महामना इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, सुचुकुन्द, उशीनर के पुत्र शिवि, महाराज ऋषभ, पुरूरवा, नृग, कुशिक, गाधि, सोमक, दिलीप तथा और अनेक प्रबल पराक्रमी राजाओं को यह भरतखण्ड प्रिय रहा है।

मैंने इस खण्ड का हाल जो सुना है सो सब आपके आगे कहता हूँ । इस भारतवर्ष में महेन्द्र, १० मलय, सद्य, शुक्तिमान, गन्धमादन, विन्ध्य और पारियात्र ये सात कुलाचल अर्थात् बड़े पर्वत हैं । इन पर्वतों के आस-पास और भी हजारों रत्नपूर्ण, विचित्र शिखरवाल, छोट-छोटे, अज्ञात पर्वत हैं । उनमें साधारण जातियों के लोग रहते हैं ।

महाराज ! इस भारतवर्ष में आर्य, स्लेच्छ और सङ्कर जातियों रहती हैं । उन जातियों के लोग जिन नदियों के पानी को पीते हैं उन प्रधान और अप्रधान नदियों के नाम मैं कहता हूँ—सुनिए । इस भरतखण्ड में गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, बाहुदा, महानदी, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, द्रुपदी, विपाशा, विपापा, स्थूलवालुका, कृष्णवेणा, इरावती, वितस्ता, पयोष्णी, देविका, वेदस्मृता, वेदवती, त्रिदिवा इक्षुला, कृमि, करीषिणी, चित्रसेना, चित्रवाहा, गोमती, धूतपापा, वन्दना, गण्डकी, कौशिकी, कृत्या, निचिता, लोहतारिणी, रहस्या, शतकुम्भा, सरयू, चर्मण्वती, वेत्रवती, हस्तिसेमा, दिक्, शरावती, भीमरथी, वेणा, पयोष्णी, कावेरी, चुलुका, वाष्णी, शतबला, नीवारा, अहिता, सुप्रयागा, पवित्रा, कुण्डवी, सिन्धु, राजनी, पुरमालिनी, २० पूर्वाभिरामा, वीरा, भीमा, ओधवती, पाशाशिनी, पापहारिणी महेन्द्रा, पाटलावती, करीषिणी, असिकी, कुशचीरा, मकरी, प्रवरा, मेना, हेमा, धृतवती, पुण्यवती, अनुष्णा, शैव्या, कापी, सदानीरा, अधृष्या, कुशधारा, सदाकान्ता, शिवा, वीरवती, वस्त्रा, सुवस्त्रा, गौरी, कम्पना, हिरण्वती, वरा, वीरकरा, पञ्चमी, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, कपिञ्जला, उपेन्द्रा, बहुला, कुवीरा, अम्बुवाहिनी, विनदी, पिञ्जला, वेणा, तुङ्गवेणा, विदिशा, कृष्णवेणा, ताम्रा, कपिला, खलु, सुवामा, वेदाश्वा, हरिश्रावा, शीघ्रा, पिच्छला, भारद्वाजी, कौशिकी, शोणा, चन्द्रमा, दुर्गा, चित्रशिला, ब्रह्मवेध्या, बृहद्रुती, यवन्ता, रोही, जाम्बूनदी, सुनसा, तमसा, ३० दासी, वसा, वराणसी, नीला, धृतवती, पर्णाशा, मानवी, वृषभा, ब्रह्ममेध्या, बृहद्ध्वनि, निरामया, कृष्णा, मन्दगा, मन्दवाहिनी, ब्रह्माणी, महागौरी, दुर्गा, चित्रात्पला, चित्ररथा, मञ्जुला, वाहिनी, मन्दाकिनी, वैतरणी, कोपा, शुक्तिमती, अनङ्गा, वृषसा, लोहित्या, करतोया, वृषका, कुमारी, ऋषिकुल्या, मारिषा, सरस्वती, मन्दाकिनी, सुपुण्या, सर्वगङ्गा—इतनी नदियाँ हैं । इनके सिवा और भी हजारों नदियाँ हैं, जिन्हें साधारण रूप से सब लोग नहीं जानते । मैंने अपनी स्मरणशक्ति के अनुसार सब जानी हुई नदियों के नाम आपको सुना दिये । ये नदियाँ विश्व की माता हैं । इनमें स्नान करने से महाफल प्राप्त होता है ।

महाराज, अब मैं भारतवर्ष के जनपदों और देशों के नाम आपके आगे कहता हूँ, सुनिए । कुरु-पाञ्चाल, शाल्व, माद्रेय-जाङ्गल, शूरसेन, पुलिन्द, बोध, माल, मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुन्ति, कान्तिकोशल, चेदि, मत्स्य, करूप, भोज, सिन्धु-पुलिन्द, उत्तम, दशार्ण, मेकल, ४० उत्कल, पाञ्चाल, कोशल, नैकपृष्ठ, धुरन्धर, गोध, मद्रकलिङ्ग, काशि, अपरकाशि, जठर, कुक्कुर,

दशार्णकुङ्कुर, कुन्ति, अवन्ति, अपरकुन्ति, गोमन्त, मन्दक, सण्ड, विदर्भ, रूपवाहिक, अश्मक, पाण्डुराष्ट्र, गोपराष्ट्र, करीति, अधिराज्य, कुशाष्ट्र, मल्लराष्ट्र, वारवाह्य, अयवाह, चक्र, चक्राति, शक, विदेह, मगध, स्वत्त, मलज, विजय, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, यक्षलोम, मल्ल, सुदंष्ट्र, प्रह्लाद, माहिक, शशिक, वाह्लिक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पञ्चाल, चर्ममण्डल, अटवीशिखर, मेरुभूत, उपावृत्त, अनुपावृत्त, खराष्ट्र, केकय, कुन्दापरान्त, माहेय, कत्त, सामुद्रनिष्कुट, ५० अन्ध्र, अन्तर्गिरि, वह्निर्गिरि, अङ्गमलज, मगध, मानवर्जक, समन्तर, प्रावृषेय, भार्गव, पुण्ड्र, भर्ग, किरात, सुदृष्ट, यामुन, शक, निषाद, निषध, आनर्त, नैर्ऋत्य, दुर्गाल, प्रतिमत्स्य, कुन्तल, कोशल, तोरग्रह, शूरसेन, ईजिक, कन्यकागुण, तिलभार, मसीर, मधुमन्त, सुकन्दक, काश्मीर, सिन्धुसौवीर, गान्धार, दर्शक, अभीसार, उलूत, शैवाल, वाह्लिक, दार्वा, वानव, दर्ब, वातज, आमरथ, उरग, बहुवाध, सुदाम, सुमल्लिक, वध, करीपक, कुलिन्द, उपत्यक, वनायु, पार्श्वरोम, कुशविन्दु, दश, कच्छ, गोपालकत्त, जाङ्गल, कुरुवर्णक, किरात, बर्बर, सिद्ध, वैदेह, ताम्रलिप्तक, उड्ड, म्लेच्छ, सैसिरिध्र और पार्वतीय इत्यादि ।

राजन्, इनके सिवा दक्षिण दिशा के जनपदों के नाम सुनिए । द्रविड़, कर्ल, प्राच्य, भूषिक, वनवासिक, कर्णाटक, माहिषक, विकल्प, मूषक, भिल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नभकानन, ६० कौटुक, चोल, कोंकण, मालव, समङ्ग, करक, कुक्कुर, अङ्गार, मारिप, ध्वजिनी, उत्सवसङ्केत, त्रिगर्त, शास्वसेनि, व्यूक, कोंकवक, प्रोष्ठ, समवेगवश, विन्ध्यचुलिक, पुलिन्द, वल्कल, मालव, वल्लव, अपरवल्लव, कुलिन्द, कालद, कुण्डल, करट, मूषक, तनवाल, सनीप, घट, सृञ्जय, आठिद, पाशिवाट, तनय, सुनय, ऋषिक, विदर्भ, काक, तङ्गण, अपरतङ्गण, उत्तर और अपर म्लेच्छ, यवन, चीन, काम्बोज, दारुण, सकृद्ग्रह, कुलत्थ, हूण, पारसीक, रमण-चीन, दशमालिक, चत्रियों के सीमान्त पर उपनिवेश, वैश्यों और शूद्रों के जनपद, शूद्र, आभीर, दरद, काश्मीर, पत्ति, खाशीर, अन्तचार, पल्लव, गिरिगह्वर, आत्रेय, भरद्वाज, स्तनपोषिक, प्रोषक, कलिङ्ग, किरात, तोमर हन्यमान और करभञ्जक इत्यादि । राजन् ! इन सब देशों में चत्रिय, वैश्य, शूद्र, आभीर और अन्य म्लेच्छ जातियाँ रहती हैं । यह देशों की नामावली मैंने संक्षेप में आपको ७० सुना दी है । इन देशों के सिवा और भी अनेक देश पूर्व और उत्तर में हैं ।

महाराज, अच्छी तरह भूमि का पालन करने से वह कामधेनु का समान धन-सम्पत्ति और सुख देती है । पृथ्वी से ही धर्म, अर्थ, काम का महाफल मिलता है । इसी लिए धर्म और अर्थ के ज्ञाता महाबली शूर राजा लोग वसु (धन) और वसुन्धरा (पृथ्वी) के लिए लड़कर युद्ध में प्राण त्याग देते हैं । देवताओं और मनुष्यों की सब इच्छाएँ पृथ्वी से ही पूरी होती हैं । हे भरतश्रेष्ठ, मांस के टुकड़े के लिए जैसे कुत्ते लड़ते देख पड़ते हैं, वैसे ही राजा लोग पृथ्वी के टुकड़ों के लिए आपस में लड़ते-झगड़ते और छीना-झपटी करते हैं । सृष्टि के आदि

से अब तक कोई भी भोग करके तृप्त नहीं हुआ । वास्तव में मनुष्य की इच्छाओं का अन्त ही नहीं है । इसी कारण इस समय कौरव और पाण्डव भी साम, दान, भेद, दण्ड आदि उपायों से भूमि प्राप्त करने के यत्न में लगे हुए हैं । हे पुरुषश्रेष्ठ महाराज, अच्छी तरह पालित और सुरक्षित पृथ्वी ही प्राणियों के लिए पिता, भाई, पुत्र, स्वर्ग और सर्वस्व है ।

७६

दसवाँ अध्याय

आयु के परिमाण का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! इस भारतवर्ष, हैमवतवर्ष और हरिवर्ष के मनुष्यों की आयु, बल और भूत-भविष्य-वर्तमान शुभाशुभ-फल आदि मुझे सुनाओ ।

सञ्जय ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ ! इस भारतवर्ष में क्रमशः सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग नाम के चार युग होते हैं । सत्ययुग के लोगों की आयु चार हजार वर्ष की, त्रेतायुग के लोगों की आयु तीन हजार वर्ष की और द्वापर युग के लोगों की आयु दो हजार वर्ष की होती है । कलियुग के लोगों की आयु का कुछ ठोक नहीं है । इस युग में कुछ जीव गर्भावस्था में ही और कुछ पैदा होते ही मर जाते हैं । सत्ययुग में महाबली, महासत्त्व, प्रज्ञा-सम्पन्न, धनी, प्रियदर्शन, मुनि लोग उत्पन्न होते हैं । उनकी सन्तानें भी ऐसी ही होती हैं । त्रेतायुग में उत्साही, महात्मा, परम धार्मिक, सत्यवादी, प्रियदर्शन, लम्बे-चौड़े डील-डौल के, महावीर्य, युद्धविशारद, चक्रवर्ती क्षत्रिय लोग पैदा होते हैं । द्वापरयुग में सभी वर्ण पैदा होते हैं । वे बड़े उत्साही, कीर्णशाली और एक दूसरे को जीतने की इच्छा रखनेवाले हुआ करते हैं । द्वापरयुग में ही मनुष्यों के गुण घटने लगते हैं । कलियुग में जो लोग जन्म लेते हैं वे थोड़े तेजवाले, क्रोधी, लोभी, क्रूर और मिथ्यावादी होते हैं । उनके मन में सदा ईर्ष्या, अभिमान, क्रोध, कपट, असूया, राग-द्वेष और लोभ का आविर्भाव हुआ करता है । उत्तम गुणसम्पन्न हैमवतवर्ष और हरिवर्ष की स्थिति भी ऐसी ही जानिए ।

११

१५

भूमिपर्व

ग्यारहवाँ अध्याय

शाकद्वीप का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, तुमने जम्बूखण्ड का हाल तो सुना दिया । अब जम्बू-खण्ड का परिमाण और विस्तार, समुद्र का परिमाण, शाकद्वीप, कुशद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कौश्व-द्वीप और चन्द्र, सूर्य, राहु आदि का सब हाल मुझसे कहो ।

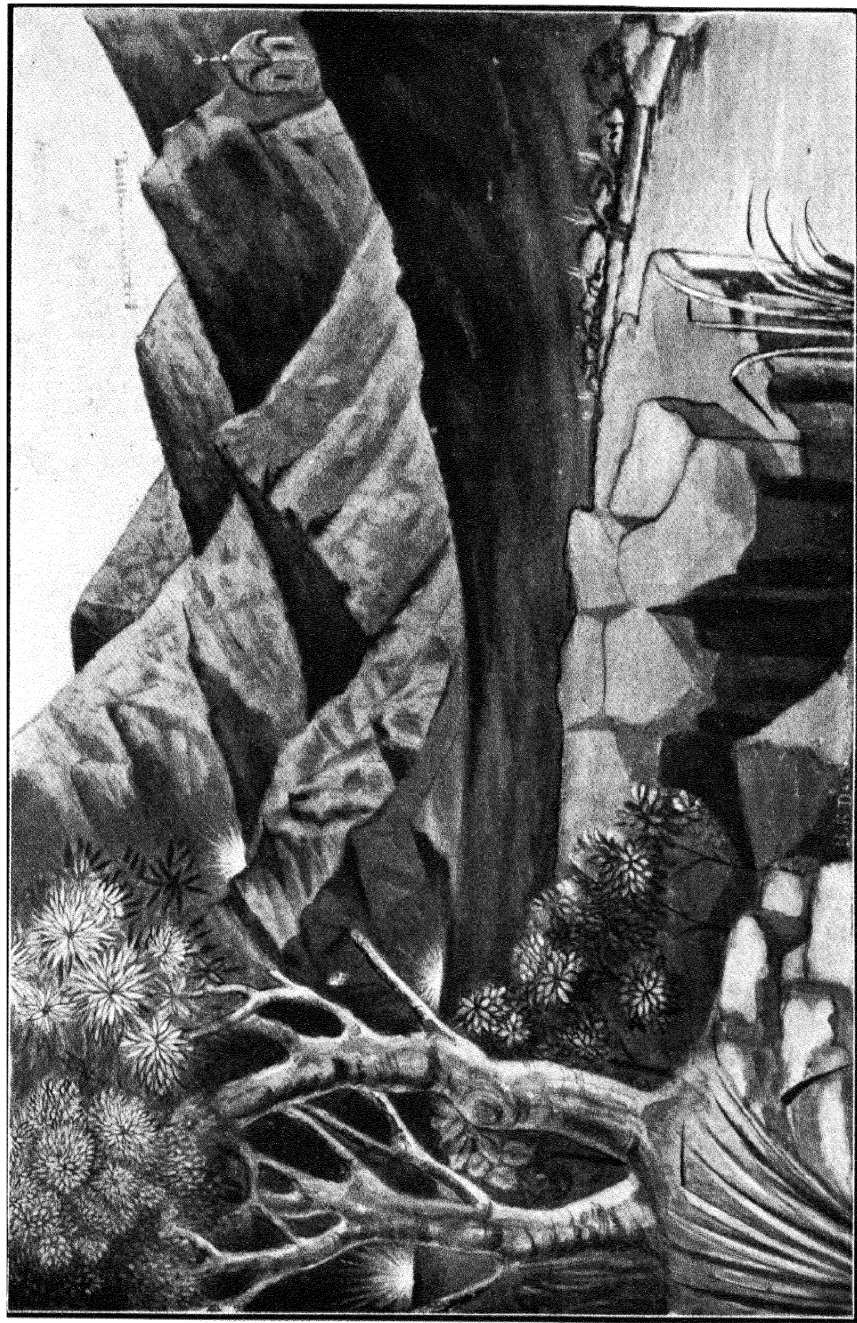
सञ्जय ने कहा—राजन्, इस पृथ्वी को बहुत से द्वीपों ने घेर रक्खा है। अब मैं आपसे सातों द्वीप, चन्द्र, सूर्य और राहु का वर्णन करता हूँ। जम्बूद्वीप का परिमाण अठारह हजार छः सौ योजन का है। उसे खारी समुद्र घेरे हुए है। खारी समुद्र का परिमाण उससे दूना, अर्थात् सैंतीस हजार दो सौ योजन का है। इस समुद्र में अनेक जनपद और मणि-विद्रुम आदि रत्न हैं। अनेक धातुओं से शोभित और सिद्ध-चारण-सेवित बहुत से पर्वत भी इसमें हैं। राजन्, अब शाकद्वीप का वर्णन सुनिए। शाकद्वीप का घेरा जम्बूद्वीप से दूना है। शाकद्वीप को चारसागर घेरे हुए है। इस द्वीप में बहुत से पवित्र जनपद हैं। वहाँ रहनेवाले लोग १० अमर हैं। वे सब तंजस्वी और क्षमाशील हैं। वहाँ दुर्भिक्ष कभी नहीं पड़ता। महाराज, मैंने आपसे संक्षेप में शाकद्वीप का हाल कहा है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महाप्राज्ञ, तुमने संक्षेप से शाकद्वीप का हाल कहा। अब विस्तार के साथ इसका वर्णन करो।

सञ्जय ने कहा—महाराज, शाकद्वीप में विविध मणिरत्न-शोभित सात पर्वत और विविध रत्नों की खानें तथा नदियाँ भी हैं। वहाँ के सब पदार्थ बहुगुणपूर्ण हैं। वहाँ का श्रेष्ठ पर्वत मेरु है, उसमें देवता और ऋषि रहते हैं। मेरु के पश्चिम में, पूर्व को विस्तीर्ण, मलय नाम का पर्वत है। वहीं से मेघ उत्पन्न होकर सर्वत्र जल की वर्षा करते हैं। उसके बाद जलधार नाम का पर्वत है। इन्द्र वहीं से जल लेकर वर्षा ऋतु में बरसाते हैं। उसके पास ही बहुत ऊँचा रैवतक नाम का पर्वत है। ब्रह्माजी के विधान के अनुसार रेवती नक्षत्र वहाँ दिव्य रूप से विराजमान है। सुमेरु के उत्तर और अत्यन्त ऊँचा, नवीन मेघ के रङ्ग का, उज्ज्वल कान्ति-वाला श्याम नाम का महापर्वत है। वहाँ रहने से ही प्रजा का रङ्ग श्याम हुआ है।

२० धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, तुम्हारे इस कथन पर मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है। वहाँ के मनुष्य किस तरह साँवले हो गये ?

सञ्जय ने कहा—महाराज ! सभी द्वीपों में ब्राह्मण गोरे, क्षत्रिय साँवले और वैश्य मिश्र रङ्ग के होते हैं। हे भरतश्रेष्ठ, श्यामगिरि में अर्थात् उसके पास की भूमि में उत्पन्न होने के कारण वहाँ के लोग साँवले होते हैं। इसी से उस पर्वत का नाम श्याम है। अब अन्य पर्वतों का वर्णन सुनिए। श्यामगिरि के बाद अत्यन्त ऊँचा दुर्गशैल है। उस पर्वत पर बड़े-बड़े सिंह रहते हैं। उसके बाद केसर पर्वत है; वहाँ से वायु प्रकट होता है। ये सब पर्वत क्रमशः एक दूसरे से दूरे हैं। इन पहले कहे गये सातों पर्वतों में महामेरु, महाकाश, जलद, कुमुद, उत्तर, जलधार और सुकुमार नाम के सात वर्ष हैं। रैवतक पर्वत का कौमारवर्ष, श्यामगिरि का मणिकाञ्चनवर्ष, केसर का मौदाकीवर्ष है। उसके बाद महापुमान् नाम का एक पर्वत है। यह पर्वत शाकद्वीप की लम्बाई और चौड़ाई को घेरे हुए है। इस खण्ड में



शाक द्वीप में विविध मणिरत्न-शोभित सात पर्वत और विविध रत्नों की खानें तथा नदियाँ भी हैं ।

एक ऐसा शाकवृक्ष है जिसका परिमाण जम्बूद्वीप के समान है। सब प्रजा उस वृक्ष के अधीन है। उक्त पर्वत में अत्यन्त पवित्र जनपद बसे हुए हैं। वहाँ के लोग महादेवजी की उपासना करते हैं। उस द्वीप में सिद्ध, चारण और देवगण आया-जाया करते हैं। वहाँ चारों वर्णों की प्रजा है। उन सबकी आयु बहुत बड़ी है। वे अपने-अपने धर्म में अत्यन्त अनुराग रखते हैं। वहाँ न तो चोरों का भय है, न बुढ़ापा है और न मृत्यु है। जैसे वर्षाकाल में नदियाँ बढ़ती हैं, ३० वैसे ही वहाँ की प्रजा क्रमशः बढ़ती है। वहाँ असंख्य शाखाओंवाली गङ्गा, सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, वेणिका, मणिजला, महानदी और चतुर्वर्धनिका आदि महानदियाँ बहती हैं। इनके सिवा और भी सैकड़ों-हज़ारों पवित्र जलवाली नदियाँ हैं। इन्द्र उन नदियों का जल लेकर वर्षा करते हैं। उन श्रेष्ठ नदियों के नाम गिनाना और उनके परिमाण का वर्णन करना सहज नहीं है। वहाँ लोक-सम्मत चार जनपद हैं, जिनके नाम मङ्ग, मशक, मानस और मन्दग हैं। मङ्ग प्रदेश में अपने कर्मों में निरत ब्राह्मण रहते हैं। मशक प्रदेश में सर्वकामप्रद धार्मिक-श्रेष्ठ चित्रित रहते हैं। मानस प्रदेश में सर्वकाम-सम्पन्न वैश्य और मन्दग प्रदेश में परम धार्मिक शूद्र रहते हैं। हे राजेन्द्र ! इन प्रदेशों में न तो राजा है, न राजदण्ड है और न दण्ड के योग्य काम करनेवाले लोग हैं। वहाँ के रहनेवाले धर्मज्ञ लोग अपने-अपने धर्म का पालन करते हुए एक दूसरे की रक्षा करते हैं। महाराज, उज्ज्वल प्रभासम्पन्न शाकद्वीप का इतना ही हाल कहा जा सकता है और इतना ही सुनने का विषय है।

४०

बारहवाँ अध्याय

क्रौञ्च आदि द्वीपों का वर्णन

सञ्जय ने कहा—राजन्, अब मैं उत्तर दिशा में स्थित द्वीपों का वर्णन करता हूँ, सुनिए। इन द्वीपों में घृतसमुद्र, दधिसमुद्र, सुरासमुद्र और जलसमुद्र हैं। इन द्वीपों और सागरों का परिमाण परस्पर एक-एक से दूना है। इनमें समुद्रों से घिरे हुए द्वीप भी हैं। मध्यम द्वीप में मनःशिला धातु का गौर नामक पर्वत है। पश्चिम द्वीप में कृष्ण पर्वत है, जिसमें नारायण रहते हैं। भगवान् नारायण स्वयं वहाँ के रत्नों की रक्षा करते हैं और प्रसन्न होकर वहाँ के निवासियों को सुख देते हैं। कुशद्वीप में वहाँ की प्रजा कुशस्तम्ब की और शाल्मलि द्वीप में वहाँ की प्रजा शाल्मलि वृक्ष की पूजा करती है। क्रौञ्चद्वीप में श्रेष्ठ रत्नों की खान महाक्रौञ्च पर्वत है। वहाँ के चारों वर्ण उसी पर्वत की पूजा करते हैं।

राजन्, कुशद्वीप में विविध धातु-मण्डित और विद्रुमयुक्त प्रथम पर्वत गोमन्त है। इस पर्वत पर भगवान् नारायण मुक्त पुरुषों के साथ रहते हैं। इस द्वीप में दूसरा पर्वत हेममय

१० हेमगिरि है। तीसरा पर्वत दीप्तिशाली कुमुद गिरि है। चौथा पर्वत पुष्पवान् है। पाँचवाँ पर्वत कुशेशय है। छठा पर्वत हरिगिरि है। कुशद्वीप में ये छः श्रेष्ठ पर्वतराज हैं। इनका फ़ासला परस्पर दूना है। कुशद्वीप के पहले वर्ष का नाम उद्भिद् है। दूसरे वर्ष का नाम वेणु-मण्डल है। तीसरे वर्ष का नाम सुरथाकार है। चौथे वर्ष का नाम कम्बल है। पाँचवें वर्ष का नाम धृतिमान् है। छठे वर्ष का नाम प्रभाकर है। सातवें वर्ष का नाम कापिल है। वहाँ यही सात वर्ष अर्थात् खण्ड प्रधान हैं। इन सब वर्षों में देवता, गन्धर्व और मनुष्य प्रसन्न-चित्त से विहार किया करते हैं। इनमें रहनेवाले लोग अजर-अमर हैं। इन वर्षों (खण्डों) में दस्यु या श्लेच्छ जाति के लोग नहीं रहते। इन वर्षों के लोग गोरे रङ्ग के और सुकुमार हैं।

महाराज ! अब मैं अन्य द्वीपों का हाल, जैसा सुन रक्खा है, सुनाता हूँ। क्रौञ्चद्वीप में क्रौञ्च नाम का महापर्वत है। उसके बाद वामन पर्वत है। उसके बाद अन्धकार पर्वत है। उसके बाद पर्वतराज मैनाक है। मैनाक के बाद गोविन्द और उसके बाद निविड़ नाम का पर्वत है। इन पर्वतों का परिमाण एक दूसरे से दूना है। इन पर्वतों में जो देश हैं २० उन्हें सुनिए। क्रौञ्च पर्वत के निकट कुशल नाम का देश है और वामन पर्वत के पास मनोनुग देश है। हे कुरुकुलश्रेष्ठ, उसके बाद उष्ण देश है। उष्ण देश के बाद प्रावरक देश है। उसके बाद अन्धकारक देश है। उसके बाद मुनिदेश है। मुनिदेश के बाद दुन्दुभिस्वन देश है। उसके बाद सिद्धों और चारणों की निवासभूमि गौरप्राय देश है। महाराज, इन देशों में देवता और गन्धर्व रहते हैं।

पुष्कर द्वीप में विविध मणियों और रत्नों से युक्त पुष्कर नाम का एक पर्वत है। वहाँ भगवान् प्रजापति सदा रहते हैं। देवता और महर्षि उनकी पूजा करते और मधुर वाणी से स्तुति करके उन्हें प्रसन्न करते हैं। महाराज, यह जम्बूद्वीप ही तरह-तरह के श्रेष्ठ रत्नों का आकर है।

पूर्वोक्त द्वीपों के रहनेवाले लोगों में ब्रह्मचर्य, सत्य, दम, आरोग्य और आयु आदि बातें उत्तरोत्तर दूनी हैं। इन द्वीपों में एक ही जनपद, एक ही कार्यक्रम और एक ही धर्म है। सब लोगों के ईश्वर प्रजापति स्वयं दण्ड धारण किये हुए इन द्वीपों की रक्षा करते हैं। राजन् ! वे प्रजापति ही राजा हैं, कल्याणस्वरूप हैं, कल्याणदायक हैं। वही पिता हैं, वही पितामह हैं। ३० चेतन और जड़, दोनों प्रकार की प्रजा की रक्षा वही करते हैं। इन द्वीपों के निवासियों के पास पका-पकाया भोजन अपने आप आ जाता है और वे उसे ही खाकर रहते हैं।

राजन् ! श्वेतद्वीप के बाद समा नाम की, चौकोर और तेंतीस मण्डलवाली, बस्ती देख पड़ती है। हे कौरव ! इस स्थान में लोकप्रसिद्ध वामन, ऐरावत, सुप्रतीक और प्रभिन्नकरटामुख नाम के चार दिग्गज हैं। इन दिग्गजों के परिमाण और आधार का अनुमान करना असम्भव है। वे नीचे, ऊपर और आस-पास अनन्त विस्तृत हैं। वहाँ चारों ओर से बड़े वेग से हवा चलती है।

वे गज पहले उस हवा को रोकते हैं और फिर प्रफुल्ल-कमल-तुल्य अपनी सूँड़ों से उस हवा को संयत रूप से फैलाते हैं। वही हवा जगत् में फैलकर सब प्रजा के प्राणों की रक्षा करती है।

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय, तुमने द्वीपों की स्थिति का वर्णन तो विस्तार के साथ किया; अब चन्द्र, सूर्य और राहु आदि का वर्णन करो।

सञ्जय ने कहा—महाराज ! मैं द्वीपों का हाल कह चुका, अब राहु का वर्णन सुनिए। सुना है, राहु ग्रह का आकार गोल है। उसका व्यास बारह हजार योजन और परिधि छत्तीस हजार योजन है। अन्यान्य पौराणिक पण्डितों का कहना है कि राहु का परिमाण छः हजार योजन है। चन्द्रमा का व्यास ग्यारह हजार योजन और परिधि तैंतीस हजार योजन है। किसी-किसी के मत में चन्द्रमा का परिमाण उनसठ हजार योजन है। सूर्य का व्यास दस हजार योजन और परिधि तीस हजार योजन है। किसी-किसी के मत में सूर्य का परिमाण अट्ठावन योजन है। सूर्यमण्डल का परिमाण इतना ही निर्दिष्ट है। राहु दोनों से बड़ा है, इसलिए चन्द्रमा और सूर्य के मण्डलों को ढक लेता है। महाराज, चन्द्रमा और सूर्य तथा राहु का हाल संक्षेप से मैंने सुना दिया। अब आप स्वयं शान्त भाव धारण करके अपने पुत्र दुर्योधन को आश्वासन दीजिए। जो क्षत्रिय इस भूमिपर्व को सुनता है उसे लक्ष्मी और सिद्धि प्राप्त होती है। उसकी आयु, तेज और बल बढ़ता है। जो राजा पर्व के दिन संयत होकर इस कथा को सुनता है उसके पिता, पितामह आदि पुरखे प्रसन्न होते हैं। हम लोग जिस भारतवर्ष में बसते हैं, उसमें रहनेवाले पहले के लोग जिन पुण्य-कार्यों को कर गये हैं, वे सब आपके सुने हुए हैं।

भगवद्गीतापर्व

तेरहवाँ अध्याय

सञ्जय-कृत भीष्मवध-वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं कि हे जनमेजय ! अब भूत-भविष्य के ज्ञाता, प्रत्यक्षदर्शी, सञ्जय समर-भूमि से लौटकर एकाएक चिन्ताकुल धृतराष्ट्र के पास पहुँचे और कहने लगे—महाराज, मैं सञ्जय आपको प्रणाम करता हूँ। हे भरतश्रेष्ठ ! भरतवंश के पितामह, महाराज शान्तनु के पुत्र, भीष्मजी मारे गये। जो योद्धाओं के अगुआ और धनुर्धर वीरों के रक्तक आश्रय-स्वरूप थे, वही कुरु-पितामह भीष्म इस समय शर-शय्या पर पड़े हुए हैं। आपके पुत्र दुर्योधन ने जिनके भरोसे जुआ खेला था, उन्हीं भीष्म को समर में शिखण्डी ने मार गिराया। जिन महारथी ने काशी पुरी में अकेले रथ पर बैठकर सब राजाओं को परास्त किया, जिन्होंने परशुराम से बिना किसी प्रकार के क्षोभ के निडर होकर युद्ध किया, जिन्हें साक्षात् परशुराम भी नहीं मार

- सके, वही महाबली भीष्म आज शिखण्डी के हाथों मरे पड़े हैं । जो शूरता में महेन्द्र के तुल्य, स्थिरता में हिमालय के सदृश, गम्भीरता में समुद्र के समान और सहनशीलता में पृथ्वी के बराबर थे, वही बाणरूपी दाढ़, धनुषरूपी मुख और खड्गरूपी जिह्वा से भयानक वीर आज शिखण्डी के हाथों मारे गये । जिन्हें युद्ध के लिए उद्यत देखकर पाण्डवों की सेना डर और घबराहट के मारे वैसे ही काँप उठी थी जैसे सिंह को देखकर गाय काँपने लगती है वही शत्रुवीर-घाती महावीर भीष्म दस दिन आपकी सेना की रक्षा करते हुए, अनेक कठिन कर्म करके, अब सूर्य के समान अस्त हो गये । जिन्होंने इन्द्र की तरह वेखटके हज़ारों बाण बरसाकर दस दिन में दस करोड़ (या लाख) योद्धाओं को मार डाला वही भीष्म आज, आपकी कुमन्त्रणा के कारण, आँधी में टूटे पंड़ की तरह पृथ्वी पर पड़े हैं । वे कदापि ऐसी दशा के योग्य न थे ।

चौदहवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र के प्रश्न

- धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! इन्द्र-सदृश, कुरु-कुल-चूड़ामणि, मेरे चचा भीष्म किस तरह शिखण्डी के हाथों मारे गये और रथ से गिरे ? पिता की प्रसन्नता के लिए जन्म भर ब्रह्मचारी रहनेवाले देवतुल्य भीष्म के बिना इस समय मेरे पुत्रों और योद्धाओं का क्या हाल है ? महा-प्राज्ञ, बड़े उत्साही, महाबली, महात्मा भीष्म के मारे जाने पर तुम्हारे मन की क्या दशा हुई थी ? उन कुरुकुलाप्रगण्य पुरुषश्रेष्ठ भीष्म के मरने की खबर सुनने से मुझे घोर दुःख हो रहा है । भीष्मजी जब युद्धयात्रा पर थे तब कौन-कौन वीर उनके पीछे गये थे, कौन-कौन वीर उनके आगे चले थे, कौन-कौन उनके साथ बने रहे और कौन-कौन लौट आये ? जब वे शत्रुसेना में घुसे थे तब किन-किन वीरों ने उनके पृष्ठभाग की रक्षा की थी ? जैसे सूर्यदेव अँधेरे को दूर करते हैं वैसे ही महावीर भीष्म जब शत्रुसेना को मारने और शत्रुओं के हृदय में भय उत्पन्न करनेवाले दुष्कर काम करने लगे थे तब शत्रुसेना के किन-किन वीरों ने उनका सामना किया ? हे सञ्जय, तुमने क्या पास रहकर सब युद्ध देखा था ? पाण्डवों ने किस तरह पिता-मह को रोका ? पाण्डवों की महासेना जिन भीष्म को युद्ध के लिए उद्यत और कालानल के समान दुर्धर्ष देखकर मर रहे पुरुष की तरह तड़पने लगती थी वे, दस दिन तक शत्रुसेना को मारकर, दुष्कर कर्म करके, कैसे सूर्य की तरह अस्त हो गये ? अर्जुन ने किस तरह उन उत्तम रथ पर बैठे हुए, शत्रुओं के सिरो को तीक्ष्ण बाणों से काटनेवाले, वेगशाली, हीमान्, अपराजित, असाधारण, पुरुषसिंह, दुर्धर्ष भीष्म को रोका ? पितामह के बाण ही दाँत थे, धनुष ही मुख था, और खड्ग ही जिह्वा थी । उग्र धनुष और तीक्ष्ण बाण धारण करनेवाले तथा इन्द्र की तरह

असंख्य बाण बरसाकर दस दिन में दस करोड़ (या लाख) यादवाओं के मारनेवाले भीष्म पितामह, मंत्री कुमन्त्रणा के कारण, मरकर आज आँधी से टूटे हुए पेड़ की तरह अपने अयोग्य गति को पहुँचे ।

हे सञ्जय, पाञ्चाल-सेना के वीर किस तरह भीमपराक्रमी भीष्म को रोकने में समर्थ हुए ? पाण्डव लोग किस तरह भीष्म से युद्ध करने में प्रवृत्त हुए ? द्रोणाचार्य के जीने-जी भीष्म क्यों नहीं जय प्राप्त कर सके ? भारद्वाज द्रोणाचार्य और कृपाचार्य के पास रहने पर भी श्रेष्ठ यादवा भीष्म किस तरह मारे गये ? पाञ्चालराज के पुत्र शिखण्डी ने किम तरह उन अतिरथी भीष्म को युद्ध में मारा, जिनका सामना देवता भी नहीं कर सकते थे !

२०

युद्ध में महापराक्रमी परशुरामजी की बराबरी का दावा रखनेवाले, समर में परशुरामजी से भी न हारनेवाले, इन्द्र के समान पराक्रमी भीष्म युद्ध में किस तरह मारे गये ? हे सञ्जय, मैं उनके मरने का समाचार पाकर बहुत ही दुःखित हूँ । तुम सब वृत्तान्त विस्तार के साथ मुझे सुनाओ । दुर्योधन की आज्ञा से मेरे पक्ष के कौन-कौन वीर भीष्म की सहायता कर रहे थे ? जिस समय शिखण्डी आदि पाण्डव पक्ष के यादवा भीष्म के सामने आये थे उस समय कौरव वीर क्या भीष्म को छोड़कर हट गये थे ? मेरा हृदय अत्यन्त कठिन और पत्थर का बना हुआ है, इसी कारण श्रेष्ठ वीर भीष्म के मरने का समाचार सुनकर भी फट नहीं जाता । उन अप्रमेय बलशाली भरतश्रेष्ठ भीष्म में सत्य, मेधा, नीति आदि सद्गुण सदा विराजमान रहते थे । फिर वे किस तरह युद्ध में मारे गये ? जिन महामंघ-सदृश भीष्म ने प्रत्यक्षा के शब्दरूपी गम्भीर गर्जन के साथ धनुष के टङ्कारशब्द-रूपी विजली की कड़क से सब दिशाओं को प्रतिध्वनित कर दिया, जलधारा-सदृश बाणवर्षा से सृष्टियों, पाञ्चालों और पाण्डवों की सेना को छा लिया, और दानव-दलन इन्द्र के समान शत्रुपक्ष के रथी, अतिरथी आदि यादवाओं को मारकर तहस-नहस कर दिया, वे वीर भीष्म कैसे मारे गये ? उनके अस्त्रों का सागर अपार था । उसमें बाण ही ग्राह्य थे, धनुष ही तरङ्गें थीं, गदा और खड्ग ही मगर थे, हाथी और घोड़े ही आवर्त (भँवर) थे, पैदल सिपाही ही मछली के समान थे, शङ्ख और दुन्दुभि आदि का शब्द ही गर्जन था । उम द्वीप और नौका-रहित अस्त्रसागर में भीष्म ने वेग के साथ शत्रुपक्ष के हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि को डुबा दिया होगा । वही भीष्म किस तरह मारे गये ? जिनका क्रोध आग से भी बढ़कर भीषण था, जिनका तेज शत्रुओं के लिए असह्य और ताप पहुँचानेवाला था, उन भीष्म के वेग को, समुद्र के वेग को तट की भूमि के समान, किस-किस वीर ने रोका ?

३०

शत्रुवीरघाती भीष्म जब दुर्योधन के हित के लिए युद्ध में प्रवृत्त हुए तब कौन वीर उनके आगे-आगे थे ? किन वीरों ने उनके रथ के दक्षिण चक्र की रक्षा की थी ? किन वीरों ने दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ उनके पीछे आक्रमण करनेवाले शत्रुओं को रोका था ? किन वीरों ने उनके बायें पहिये की रक्षा की थी ? किन वीरों ने उनके बायें पहिये का बचाव करते समय सृञ्जय वीरों

से युद्ध किया था ? किन वीरों ने अत्यन्त दुर्गम अग्रवर्ती सेना के अग्रभाग की रक्षा की थी ? किन वीरों ने कष्ट और दुर्गति सहकर भी भीष्म पितामह के पार्श्व भाग की रक्षा की थी ? किन-किन वीरों ने हमारे पक्ष की सेना में रहकर शत्रुदल के वीरों का सामना किया था ? हे सज्जय, सब वीरों ने भीष्म की किस तरह रक्षा की ? भीष्म पितामह के बाहुबल से सुरक्षित होकर भी कौरवपक्ष के वीर किस कारण पाण्डव सेना को परास्त नहीं कर सके ? पाण्डव ही किस तरह प्रजापति-तुल्य प्रतापी पितामह के ऊपर प्रहार कर सके ?

- जिन द्रोपस्वरूप भीष्म के सहारे कौरवों ने शत्रुपक्ष की सागर-समान सेना में प्रवेश करने का साहस किया था उन्हीं भीष्म के डूबने की खबर तुम दे रहे हो ? मेरा बलवान् पुत्र जिन भीष्म के बल का आश्रय लेकर पाण्डवों को कुछ नहीं समझता था वही भीष्म किस तरह शत्रुओं के हाथों मारे गये ? पूर्व समय में दानव-दमन के लिए देवताओं ने जिन महाव्रत-धारी युद्धदुर्मद भीष्म से सहायता मांगी थी, जिन भीष्म के जन्म के समय लोक-प्रसिद्ध शान्तनु का शोक, दुःख और दीनता दूर हो गई थी, उन महाप्राज्ञ, अपने धर्म में तत्पर, वेद-वेदाङ्ग के तत्त्व के ज्ञाता भीष्म के मरने की बात तुम कैसे कह रहे हो ? सब अस्त्रों की विद्या में पारदर्शी, शान्त, दान्त, मनस्वी भीष्मजी क्या मरे, मेरे पक्ष की बची हुई सब सेना चौपट हो गई । बूढ़े कुलगुरु भीष्म को मारकर पाण्डव लोग राज्य पाने की इच्छा कर रहे हैं, यह देखकर मुझे जान पड़ता है कि धर्म की अपेक्षा अधर्म ही प्रबल है । सब अस्त्रों के जाननेवाले परशुरामजी भी एक समय अम्बा के लिए युद्ध छानकर जिनसे परास्त हो चुके हैं उन देवराज-सदृश धनुर्धरश्रेष्ठ भीष्म की मृत्यु का समाचार सुनने की अपेक्षा अधिक दुःख का समाचार मेरे लिए और क्या हो सकता है ? शत्रुवीरदलन क्षत्रियकुल-नाशकारी परशुरामजी के हाथ से भी जो पितामह नहीं मरे, वही आज शिखण्डी के हाथ से मारे गये ! इससे जान पड़ता है कि शिखण्डी तेज और बल में परशुरामजी से भी बढ़कर है । उसने जब दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता महावीर भरतश्रेष्ठ भीष्म को मारा था तब कौन-कौन वीर उसके साथ थे ?

हे सज्जय ! पाण्डवों के साथ भीष्म ने जैसा युद्ध किया सो मुझसे कहो । इस समय मेरे पुत्र की सारी सेना अनाथ विधवा की तरह, रक्तहीन गो-कुन की तरह, बहुत ही घबरा गई होगी । युद्धकाल में सब वीरों को जिनके बाहुबल का भरोसा था उन भीष्म को परलोकवासी हुआ सुनकर मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है । उन महावीर भीष्म के जीवनकाल में हम कैसे समर्थ और शक्तिशाली थे ! अगाध जल में नाव के डूब जाने पर पार जाने की इच्छा रखनेवाले लोग जैसे दुःखित होते हैं, भीष्म के मरने से वैसे ही विपन्न और दुःखित मेरे पुत्र हो रहे होंगे । हे सज्जय, पुरुषश्रेष्ठ भीष्म के मरने की खबर सुनकर भी मेरा हृदय नहीं फटता, इसलिए उसे अवश्य

मारे गये ! हे सञ्जय, भीष्म को भी समर में मरा हुआ सुनकर मुझे निश्चय हो गया कि कोई अस्त्रविद्या, शौर्य, तप, मेधा या धृति के द्वारा मृत्यु के हाथ से बच नहीं सकता । महावीर्यशाली दुरतिक्रम काल सभी को ग्रस लेता है । मैं पुत्र-शोक से अत्यन्त सन्तप्त होने पर भी आनेवाले महान् दुःख का खयाल न करके भीष्म के द्वारा अपने पक्ष के बचाव की आशा किये हुए था । मुझे भीष्म का बड़ा भरोसा था । ६०

हे सञ्जय, दुर्योधन ने जब भीष्म को सूर्य की तरह पृथ्वी पर गिरते देखा तब उसने क्या कहा ? मुझे जान पड़ता है, इस युद्ध में दोनों पक्षों के राजाओं की सेना न बचेगी । ऋषियों ने क्षत्रिय-धर्म बड़ा कठोर बताया है । क्योंकि उसी क्षत्रिय-धर्म के अनुसार पाण्डव लोग भीष्म को मारकर राज्य पाने की इच्छा करते हैं; अथवा यों कहो कि हम लोग ही महाबली भीष्म की हत्या कराकर राज्य करने की इच्छा करते हैं । पाण्डवों ने तो क्षत्रिय-धर्म का पालन मात्र किया है; उनका कुछ अपराध नहीं । कष्ट-समय अर्थात् आपत्काल में आर्य को यही करना चाहिए । पराक्रम ही परम शक्ति है । भीष्मजी महापराक्रमी थे । उन महापराक्रमी, हीमान्, अपराजित और शत्रुसेना को मारनेवाले भीष्म को पाण्डवों ने किस तरह रांका ? किस तरह उन पर आक्रमण किया ? उस समय सब सेना किम तरह संयुक्त हुई थी ? नामी वीरों ने परस्पर किस तरह युद्ध किया ? कुरुपितामह भीष्म को शत्रुओं ने किस तरह मारा ? भीष्म के मरने पर दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और मायावी शकुनि ने क्या कहा ? जिस भयङ्कर युद्ध-सभा में मनुष्यों, हाथियों और घोड़ों के शरीर चौसर की विसात की तरह बिछे थे, बाण शक्ति महाखड्ग तोमर आदि शस्त्र पाँसे के समान थे और प्राणों की वाज़ी लगी थी, उममें पुरुषश्रेष्ठ भीष्म के सिवा और किन युद्धविशारद क्षत्रियों ने क्रीड़ा की थी ? उनमें कौन जीते, कौन हारे और कौन मरकर गिरे ? ये सब बातें मेरे आगे कहो । युद्धभूमि के आभूषण-स्वरूप भीमकर्मा-भीष्म के मरने की खबर सुनकर मेरे हृदय में अशान्ति की आग सुलग उठी है । मेरे हृदय में जो पुत्रों की हानि की आग उठी है उसे मानों घी डालकर तुम प्रज्वलित कर रहे हो । सब लोकों में प्रसिद्ध जिन महापुरुष भीष्म ने सेनापति-पद का भारी बोझ अपने सिर पर लिया था उन्हें मरा हुआ देखकर जिस तरह मेरे पुत्रों ने पश्चात्ताप किया, सो मुझे सुनाओ । उस घोर संग्राम में जो घटनाएँ हुई हैं, वे मेरे आगे कहो । दुरात्मा दुर्योधन की बुद्धि के कारण जो नीतिसङ्गत या अनीतिपूर्ण घटनाएँ हुई हैं, जय-लाभ की इच्छा रखनेवाले अस्त्रधारी भीष्म ने जो-जो तेजस्विता के कार्य किये हैं और कौरव-पाण्डवों की सेना में जिसने जिससे जैसा युद्ध किया है, सो सब मेरे आगे विस्तार के साथ कहो । ७०

पन्द्रहवाँ अध्याय

सञ्जय-कृत युद्ध-वर्णन का आरम्भ

सञ्जय ने कहा—महाराज, आपने अपने योग्य ही प्रश्न किये; किन्तु इस कुफल के लिए केवल दुर्योधन के सिर पर दोष की गठरी लादना ठीक नहीं। जो मनुष्य अपने दोषों के कारण अशुभ फल भोगता है उसका, और के ऊपर उस पाप की, आशङ्का करना अनुचित है। राजन् ! जो व्यक्ति मनुष्य-समाज में निन्दनीय व्यवहार करता है, वह सबका वध है। आपकी और आपके मन्त्रियों की धूर्तता को बुद्धिमान् पाण्डव अच्छी तरह जानते हैं; किन्तु केवल आपका ही मुँह देखकर वे बहुत समय तक वन में रहे और सब कुछ सहते रहे।

राजन् ! मैंने प्रत्यक्ष और योगबल से हाथी, घोड़े, राजा आदि का जो हाल देखा है सो सुनिष्ट। वृथा शोक न कीजिए। हे नराधिप, इस समय जो हो रहा है सो मैं पहले से ही यागदृष्टि से देख चुका हूँ। मैंने जिनके प्रभाव से दिव्य ज्ञान, अतीन्द्रिय दृष्टि, परचित्त-विज्ञान, आकाशगति, दूर-श्रवण, शास्त्रबहिर्भूत व्यक्तियों की उत्पत्ति का ज्ञान और त्रिकाल का ज्ञान प्राप्त

किया है उन्हीं महात्मा व्यासदेव के वरदान से अस्त्र-शस्त्र मेरे शरीर को स्पर्श नहीं कर सकते। अब उन्हीं आपके पिता बुद्धिमान् व्यासजी को प्रणाम करके कौरवों और पाण्डवों के अद्भुत रोमहर्षण युद्ध का वृत्तान्त वर्णन करता हूँ। सुनिष्ट।

महाराज, दोनों ओर की सेनाएँ जब मोर्चेबन्दी करके अपने-अपने स्थान में युद्ध के लिए उद्यत हुईं तब दुर्योधन ने कहा—हे दुःशासन, तुम भीष्म पितामह की रक्षा के लिए शीघ्र रथों को तैयार कराओ; सेना को सुसज्जित और सावधान होने की आज्ञा दो। बहुत दिनों से मैंने सेना सहित कौरवों और पाण्डवों की जिस भिड़न्त को सोच रक्खा था वह आज



उपस्थित है। इस युद्ध में भद्राशयी भीष्म की रक्षा करना ही हमारा प्रधान कार्य है। सुरक्षित रखने पर वे पाण्डव योग्य और सञ्जय कृति का विज्ञान वाचस्पति का सर्वज्ञ। निराश्रय

भीष्म ने यह प्रतिज्ञा की है कि “मैं युद्ध में शिखण्डी पर वार नहीं करूँगा। मैंने सुना है, शिखण्डी पहले स्त्री था; इसी लिए युद्ध में शिखण्डी को मैं नहीं मारूँगा”। पितामह की इस प्रतिज्ञा के कारण मेरे पक्ष के सब वीर मिलकर उनकी रक्षा और शिखण्डी को मारने का प्रयत्न करें। पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा से आये हुए सब वीर, सब अस्त्र-कुशल योद्धा, पितामह की रक्षा करें। महाबली सिंह भी अरक्षित दशा में तुच्छ भेड़िये के हाथ मारा जा सकता है। इस समय हमें यह यत्न करना चाहिए कि सिंहरूप भीष्म को शृगालरूप शिखण्डी मार न सके। देखो, युद्धस्थल में अर्जुन शिखण्डी की रक्षा कर रहे हैं। युधामन्यु अर्जुन के बायें पहिये की और उत्तमौजा उनके दहिने पहिये की रक्षा कर रहे हैं। इस समय ऐसा उपाय करो जिसमें पितामह के द्वारा उपेक्षित, और अर्जुन के द्वारा सुरक्षित, शिखण्डी भीष्म को मार न सके। २०

सोलहवाँ अध्याय

सैन्य-वर्णन

मञ्जय कहते हैं—राजन ! रात बीतने पर राजाओं के “तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ” इस शब्द से, शङ्खों और दुन्दुभियों की ध्वनि से, सैनिकों के सिंहनाद से और रथों के पहियों की घरघराहट से दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। घोड़ों के हिनहिनाने से, हाथियों के चिगघाड़ने से, योद्धाओं के गम्भीर गर्जन और खम ठोकने के शब्द से दसों दिशाएँ भर गईं। सूर्योदय के उपरान्त दोनों पक्ष की सेना दुर्दर्ष अस्त्र-शस्त्र और कवच आदि से लैस होकर युद्ध के मैदान में डट गई। युद्ध-भूमि में सुवर्ण-शोभित हाथी दामिनीयुक्त मेघों के समान, सैनिकों से घिरे हुए रथ विविध नगरों के समान और पितामह भीष्म पूर्णचन्द्र के समान शोभायमान हुए। धनुष, ऋष्टि, खड्ग, गदा, तोमर और अन्यान्य चमकीले शस्त्र धारण किये योद्धा, लाखों हाथी, रथी, घोड़े और पैदल सिपाही मण्डल बाँधकर खड़े हुए। विविध १० आकार की ध्वजाएँ फहरा रही थीं। दोनों ओर की मणि-सुवर्ण-मण्डित हज़ारों ध्वजाएँ जलती हुई आग के समान और अमरावती में स्थित इन्द्र की पताका के समान शोभित हुईं। युद्ध की इच्छा रखनेवाले वीर, अस्त्र-शस्त्र लिये, उत्सुकता के साथ उन पताकाओं की शोभा देख रहे थे। प्रधान योद्धा लोग कवच, शस्त्र, तल, तूणीर आदि से सज्जित होकर सेना के अगले भाग में खड़े हुए थे। शकुनि, शल्य, जयद्रथ, अवन्तिराज दोनों भाई बिन्द और अनुबिन्द, केकय-गण, काम्बोजराज सुदक्षिण, कलिङ्गराज श्रुतायुध, राजा जयत्सेन, बृहद्रथ और कृतवर्मा यादव, ये बड़ी-बड़ी दक्षिणा देकर यत्न करनेवाले, परिघतुल्य भुजदण्डवाले पुरुषश्रेष्ठ दस राजा आपकी और दस अचौहिणी सेना के नायक बनाये गये। इनके सिवा दुर्योधन के वशवर्ती नीति-विशारद

- अनेक राजा तथा राजपुत्र अपनी-अपनी सेना लिये वहाँ उपस्थित देख पड़े। वे सब मने-हर माला पहने, कृष्णजिन-शोभित, ब्रह्मलोक जाने की दीक्षा लिये हुए प्रसन्नचित होकर दस
- २० अर्जुन की सेना के साथ युद्धभूमि में खड़े थे। इनके सिवा पितामह भीष्म की अधिनायकता में दुर्योधन की एक अर्जुन की सेना खड़ी हुई। राजन् ! महारथी भीष्म सफेद पगड़ी और सफेद कवच धारण किये सफेद घोड़ों से शोभित रथ पर पूर्ण चन्द्रमा के समान विराजमान हुए। तालचिह्न-युक्त ध्वजा से शोभित रजतमय रथ पर चढ़े हुए, सफेद मेघ के बीच स्थित चन्द्रमा के समान, पितामह भीष्म को दोनों पक्ष के यादवा देखने लगे। भीष्म को सेनापति के रूप से सेना के अग्रभाग में देखकर धृष्टद्युम्न आदि मृजय और पाण्डव घबरा गये। सिंह को देखकर जैसे लुट मृग घबरा जाते हैं वैसे ही धृष्टद्युम्न आदि मृजयगण भीष्म को देखकर चिन्तित हो गये। महाराज, जैसे आपके पक्ष की समृद्धि-सम्पन्न ग्यारह अर्जुन की सेना प्रधान-प्रधान पुरुषों के द्वारा रक्षित थी, वैसे ही पाण्डव-पक्ष की सात अर्जुन की सेना भी प्रधान पुरुषों के बाहुबल से सुरक्षित थी। राजन्, दोनों पक्ष की सेना उन्मत्त मकरध्वन्दयुक्त, महा-प्राहपरिवृत, युगान्तकाल के क्रोध को पहुँचे हुए दो महाभागों के समान देख पड़ रही थी।
- २७ राजन्, मैंने कौरवों की इतनी बड़ी सेना एकत्र होते कभी न तो देखी है और न सुनी है।

सत्रहवाँ अध्याय

युद्ध के लिए कौरवों की सेना का निकलना

सञ्ज कहते हैं—महाराज, व्यासजी ने जा कहा था उसी के अनुसार सब राजा लोग एकत्र होकर युद्ध के लिए आये। उस दिन चन्द्रमा पितृलोक के निकटवर्ती हुए। सातों महाग्रह अग्नि के समान प्रज्वलित होकर आकाश में देख पड़े। उदय होने पर सूर्यमण्डल प्रज्वलित ज्वालाओं से युक्त और बीच से दो टुकड़े हुआ सा देख पड़ा। मांस और रक्त खाने-पीनेवाले सियारों और कौओं के झुण्ड मुर्दों और घायलों का मांस खाने के लिए उत्सुकता दिखाते हुए, दिग्दाह-युक्त दिशा की ओर मुँह करके, धार अशुभ शब्द करने लगे। पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण नित्य सबेरे उठकर शुद्ध-चित्त से जय तो पाण्डवों की मनाते थे; किन्तु अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आपकी ओर से पाण्डवों के साथ युद्ध करते थे।

पितामह ने पहले सब राजाओं को बुलाकर कहा—हे नरपतियो, क्षत्रिय के लिए स्वर्ग जाने की लुली राह सङ्ग्राम ही है। उसी द्वार से तुम लोग इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक को जाओ। नाभाग, ययाति, मान्धाता, नहष, नग आदि प्राचीन राजा लोग इसी तरह के

कार्य से सिद्धि प्राप्त करके उक्त परम पवित्र स्थानों को गये हैं। बीमार होकर घर में पड़े-पड़े १० मरना क्षत्रिय के लिये अधर्म है। युद्ध में प्राणत्याग करना ही क्षत्रिय का सनातन धर्म है।

महाराज, भीष्म के ये कहने पर राजा लोग बढ़िया रथों पर सवार हो-होकर अपनी-अपनी सेना के अगले भाग में आ गये। उस समय उनकी बड़ी शोभा हुई। केवल कर्ण अपने सहचरों और मित्रों के साथ युद्ध-भूमि की ओर नहीं गये। भीष्म से उनकी कहा-सुनी हो चुकी थी, और भीष्म के जीते-जी युद्ध न करने की प्रतिज्ञा वे कर चुके थे। कर्ण के सिवा अन्य सब राजा और आपके सब पुत्र सिंहनाद से दसों दिशाओं को कँपाते हुए युद्ध के लिए खड़े हुए। सफ़ेद छत्र, पताका, ध्वजा, हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि के द्वारा सेना की बड़ी शोभा हुई। भेरी, पणव, दुन्दुभि और रथों के पहियों का शब्द गूँज उठा।



सेने के बजुल्ले पहने हुए महारथी लोग अम्रियुक्त पर्वत के समान शोभायमान हुए। कौरवसेना के अधिपति पितामह भीष्म पञ्चतारामण्डित महातालकेतु-युक्त आदित्यवर्ण रथ पर सूर्य के समान शोभा को प्राप्त हुए। राजन्, आपके पक्ष के राजा लोग भीष्म के चारों ओर अपनी-अपनी जगह पर तैनात हो गये। गोवासन देश के महाराज शैव्य, राजोचित पताका से शोभित गजराज पर सवार होकर, अपने अधीन राजाओं के साथ युद्ध के लिए चले। पद्मवर्ण अश्वत्थामा रथ पर सवार होकर सबके आगे चलने लगे। उनकी पताका में सिंह की पूँछ का चिह्न था। श्रुतायुध, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, शल्य, भूरिश्रवा और विकर्ण, ये सात महाधनुर्धर योद्धा अच्छे कवच पहनकर अश्वत्थामा और भीष्म के आगे-आगे चले। उनकी सुवर्णदण्ड-मण्डित ऊँची ध्वजाएँ रथों पर फहरा रही थीं। आचार्य-प्रधान द्रोण की ध्वजा सुवर्णमय वेदी, कमण्डलु और धनुष के चिह्न से युक्त देख पड़ती थी। विपुल सेना का सञ्चालन करनेवाले दुर्योधन की ध्वजा में मणिमय नाग का चिह्न था। दुर्योधन के आगे पौरव, कलिङ्गराज, काम्बोजराज सुदक्षिण, महाबली क्षेमधन्वा और शल्य चले। मगध-

नरेश वृषभ्वज महामूल्य रथ पर सवार होकर शरद् ऋतु के मेघ के समान पूर्व दिशा की सेना के आगे-आगे शत्रु-सेना के सामने आये। अङ्गदेश के राजा वृषकेतु और महात्मा कृपाचार्य सब सेनाओं की रक्षा करने लगे। यशस्वी जयद्रथ रथ पर बैठकर चले। उनकी ध्वजा में चाँदी के वराह का चिह्न था। एक लाख रथ, आठ हजार हाथी और साठ हजार घोड़सवार उनके साथ थे। वे सेना के आगे रहकर असंख्य रथ, हाथी और घोड़ों से शोभित सेना की रक्षा करने लगे। कलिङ्गेश्वर के साथ साठ हजार रथ और यन्त्र-तोमर-तूषीर-पताका आदि से शोभित पर्वताकार दस हजार हाथी थे। वे भी अग्निवर्ण ध्वजा, सफेद छत्र, कण्ठाभरण, चमर, व्यजन आदि से शोभित होकर युद्ध के लिए चले। इन्द्र के समान तेजस्वी राजा भगदत्त अपने हाथी पर चढ़कर चले। राजा केतुमान् भी विचित्र अंकुश से शोभित हाथी पर चढ़कर मेघ के ऊपर विराजमान आदित्य के समान शोभायमान हुए। भगदत्त के ही समान तेजस्वी वीर विन्द और अनुविन्द नाम के दोनों भाई भी गजराजों पर चढ़कर चले। द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, गुरु-पुत्र अश्वत्थामा, बाह्लीक और कृपाचार्य ने उस व्यूह की रचना की थी। उस व्यूह में असंख्य रथ और हाथी उसके अङ्ग जान पड़ते थे। राज-समाज उस व्यूह का सिर था। घोड़े उसके पङ्ख थे। वह सर्वतोमुख सेना का

३८ व्यूह हैसता हुआ सा आगे बढ़ने लगा।

अठारहवाँ अध्याय

कौरवों की सेना का वर्णन

सञ्जय कहते हैं—महाराज, इसके बाद दम भर में योद्धा लोगों का कोलाहल सुन पड़ने लगा। क्षण भर में ही शङ्खों और दुन्दुभियों की ध्वनि, हाथियों की चिंगाड़, घोड़ों की हिन-हिनाहट, योद्धाओं के गर्जन और रथों के पहियों की घरघराहट से पृथ्वी मानों फटने लगी और आकाशमण्डल गूँज उठा। दोनों पक्षों की सेना परस्पर की भिड़न्त से काँप उठी। उस समय युद्ध-भूमि में सुवर्ण-भूषित हाथी और रथ बिजली समेत मेघों के समान देख पड़ने लगे। दोनों ओर की—प्रवर्लित अग्नि के समान—अनेक प्रकार की ध्वजाएँ इन्द्रभवन में स्थित महेन्द्र-केतु के समान शोभायमान हुईं। अग्नि और सूर्य के समान प्रभायुक्त कवचों से भूषित वीर अग्नि और सूर्य के समान देख पड़ने लगे। कौरव पक्ष के योद्धाओं ने विचित्र आयुध, धनुष और प्रत्यक्षा आदि को सँभाला। महाधनुर्धर ऋषभाक्षगण सेना के अगले भाग में स्थित हुए।

१० महाराज ! आपके पुत्र दुर्जय, दुःशासन, दुर्मुख, दुःसह, विविंशति, चित्रसेन, विकर्ण, सत्यव्रत,

पुरुमित्र, जय, भूरिश्रवा, शल और इनके अधीन बीस हजार रथी भीष्म के पिछले भाग की रक्षा करने लगे। अभीषाह, शूरसेन, शिबि, वसति, शाल्व, मत्स्य, अम्बष्ठ, त्रिगर्त, कैकेय, सौवीर, कैतव और पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, इन बारह देशों के वीर जीवन की आशा छोड़कर रथों के द्वारा पितामह की रक्षा करने लगे। मगधराज दस हजार वेगशाली कुरुसेना साथ लेकर, भीष्म के पास रहकर, उनकी रक्षा करने लगे। इस सारी सेना के साठ लाख आदमी रथों के पहियों की और हाथियों के पैरों की रक्षा करने लगे। लाखों पैदल सिपाही धनुष, ढाल-तलवार, नखर और प्रास आदि शस्त्र लेकर युद्ध के लिए आगे बढ़े। राजन्, आपके पुत्र की ग्यारह अक्षौहिणी सेना यमुना से मिलने को चली हुई गङ्गा के समान देख पड़ने लगी।

१८

उन्नीसवाँ अध्याय

पाण्डवों की सेना का युद्ध के लिए निकलना

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! इस ग्यारह अक्षौहिणी सेना को व्यूह-रचना करके खड़ी देखकर और मानुष, दैव, गान्धर्व, आसुर आदि व्यूहों की रचना के ज्ञाता पितामह भीष्म को युद्ध के लिए तैयार देखकर भी बुद्धिमान युधिष्ठिर ने अपनी सेना थोड़ी होने पर क्या खयाल करके भीष्म से युद्ध की तैयारी और व्यूह की रचना की ?

सञ्जय ने कहा कि महाराज, राजा दुर्योधन की सेना को व्यूह-रचना-पूर्वक सुसज्जित देखकर धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने भाई से कहा—हे अर्जुन, महर्षि बृहस्पति का मत है कि शत्रु-सेना की अपेक्षा अपनी सेना थोड़ी हो तो उस सेना को समेटकर शत्रु से युद्ध करना चाहिए। यदि शत्रु-सेना से अपनी सेना अधिक हो तो सेनापति का अधिकार है कि वह इच्छानुसार अपनी सेना को फैलाकर शत्रु से युद्ध करे। जब थोड़ी सेना को बहुत सेना से युद्ध करना पड़े तब उसे सूचीमुख व्यूह की रचना करनी चाहिए। हमारी सेना शत्रुसेना की अपेक्षा संख्या में थोड़ी है; इसलिए तुम भी, बृहस्पति की नीति के अनुसार, सूचीमुख व्यूह की रचना करो।

यह सुनकर अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, मैं आपके लिए इन्द्र के बताये अचल दुर्जय दुर्भेद्य वज्र नाम के व्यूह की रचना करता हूँ। संग्राम में शत्रुपक्ष के लिए आंधी की तरह दुःसह, युद्धलक्षण-निपुण, थोड़ा पुरुषों में अग्रगण्य, महाबली भीमसेन हमारे पक्ष के अग्र थोड़ा होकर शत्रुपक्ष के तेज को नष्ट करेंगे। क्षुद्र मृग जैसे सिंह को देखकर डर से भाग खड़े होते हैं वैसे ही दुर्योधन आदि कौरव भीमसेन के सामने नहीं ठहर सकेंगे। देवता जैसे इन्द्र का

१०

आश्रय लेंते हैं वैसे ही हम लोग बेखटक होकर अपने पक्ष के रक्षक, योद्धाओं में श्रेष्ठ, भीमसेन का आश्रय लेंगे। इस पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं है जो क्रोधित भीमसेन से आँख मिला सके।



अब महावीर अर्जुन अपनी सेना का व्यूह बनाने लगे। परिपूर्ण और स्थिर गङ्गाप्रवाह की तरह पाण्डवों की महासेना, कौरव-सेना को अपनी ओर आते देखकर, मन्द गति से आगे बढ़ने लगी। महापराक्रमी भीमसेन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और धृष्टकेतु उस सेना के आगे-आगे चलने लगे। महाराज विराट और एक अचौहिणी सेना के साथ धर्मराज युधिष्ठिर चले। उनके साथ पुत्र और भाई भी चले। महातेजस्वी नकुल और सहदेव भीमसेन की दाहनी-बाईं ओर उनके रथ के पहियों की रक्षा करते चले। अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्र उनके पिछले भाग की रक्षा में

नियुक्त हुए। महारथी धृष्टद्युम्न प्रभद्रकगण के साथ उन सबकी रक्षा करने लगे। अर्जुन के द्वारा सुरक्षित शिखण्डी भी भीष्म-वध के लिए बड़े यत्न के साथ उनके पीछे चले। महाबली युयुधान अर्जुन के पिछले भाग की रक्षा करने लगे। पाञ्चालनन्दन युधामन्यु, उत्तमौजा, कैकेय, धृष्टकेतु और महावीर चेकितान अपने अनुचरों सहित उनके रथ के पहियों की रक्षा करने लगे। ये सब योद्धा ध्यान से आपकी सेना को देखने लगे। महाराज, फिर अर्जुन ने भीमसेन से कहा—ये सब धृतराष्ट्र के पुत्र हैं। ये आपके हिस्से में हैं। यह सुनकर पाण्डवों की सेना के सब लोग उनकी बड़ाई करने लगे।

महाराज युधिष्ठिर बहुत बड़े मस्त हाथी पर चढ़कर बीच की सेना में विराजमान हुए। महामनस्वी राजा द्रुपद एक अचौहिणी सेना साथ लिये महापराक्रमी राजा विराट के साथ चले। इन वीरों के रथों में सूर्य और चन्द्र के समान प्रभाशाली, सुवर्णमण्डित, विविध चिह्नों से युक्त पताकाएँ लगी हुई थीं। इसके बाद महारथी धृष्टद्युम्न सब सेना, भाई और पुत्र आदि को साथ लेकर महाराज युधिष्ठिर की रक्षा करने लगे। अर्जुन का वानरचिह्नयुक्त भवजावाला रथ

पाण्डव-सेना के सब रथों से श्रेष्ठ था। उसकी ध्वजा सब ध्वजाओं से ऊँची थी। असंख्य पैदल सेना भीमसेन की रक्षा करने के लिए खड्ग, शक्ति और ऋष्टि आदि अनेक शस्त्र लिये आगे-आगे चलने लगी। सुवर्णजालमण्डित गजराजों के कपोलों पर मद बह रहा था, उससे कमल की सुगन्ध निकल रही थी। बरसते हुए मेघ या पर्वत के समान दस हज़ार हाथी महाराज युधिष्ठिर के पीछे चले।

३०

महाबाहु भीमसेन परिघ-सदृश भयानक गदा हाथ में लेकर महासेना को लिये हुए शत्रुसेना के सामने जाने के लिए तैयार हुए। जिस समय वे शत्रुसेना का संहार करने लगे उस समय सूर्य के समान दुष्प्रेक्ष्य हो उठे। किसी में साहस न था कि उनकी ओर आँख उठाकर देख भी लेता। अर्जुन ने वज्रव्यूह की रचना की थी। वह व्यूह निर्भय, सर्वतोमुख और घोर था। धनुष उसमें बिजली के समान चमकते थे। उस व्यूह की रक्षा खुद अर्जुन कर रहे थे। मनुष्यों के लिए अजेय उस व्यूह में अपनी सेना को सुरक्षित रखकर पाण्डव लोग आपकी सेना के सामने डट गये।

अब सूर्योदय होने पर सब सैनिक सन्ध्यावन्दन करने लगे। उस समय आकाशमण्डल में मेघ न रहने पर भी बिजली कड़कने लगी और सामने से वेग के साथ धूल उड़ाती और कड़कड़ियाँ बरसाती घोर आँधी चलने लगी। सारे जगत् में अँधेरा सा छा गया। पूर्व दिशा में भारी उल्कापात हुआ। सूर्य की ओर शब्द करके वह उल्का पृथ्वी पर गिरी।

हे भरतश्रेष्ठ, सेना के सुसज्जित होने पर सूर्यदेव प्रभाहीन हो गये। पृथ्वी महाशब्द के साथ काँपने और फटने लगी। सब दिशाओं में बारम्बार निर्घात शब्द होने लगा और ऐसी धूल छा गई कि कुछ भी नहीं सूझ पड़ता था। किंकिणीजालशोभित, सुवर्णमालायुक्त, बढ़िया कपड़ों और छोटी भण्डियों से अलंकृत, सूर्य के समान तेज से युक्त ध्वजाएँ एकाएक हवा के वेग से काँपने लगीं। आँधी चलने पर ताड़ के वन की जो दशा होती है वही दशा सारे जगत् की हो गई। महाराज, पुरुषश्रेष्ठ युद्धप्रिय पाण्डव लोग गदा हाथ में लिये भीमसेन को आगे चलते देखकर प्रसन्न हुए और अपनी सेना के विरोधियों के विरुद्ध व्यूहरचना करके इस तरह स्थित हुए मानों शत्रुसेना को निगल जायँगे।

४५

बीसवाँ अध्याय

कौरवों की सेना के जाने का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! सूर्योदय के बाद सेनापति भीष्म की अनुगामिनी कौरव-सेना और भीमसेन के द्वारा सुरक्षित पाण्डवों की सेना, दोनों में से किस पक्ष की सेना

ने पहले प्रसन्नतापूर्वक युद्ध के लिए ललकारा ? चन्द्र, सूर्य और वायु किसके अनु-
कूल और किसके प्रतिकूल देख पड़े ? मांसभोजी पशु-पक्षी किस सेना की ओर
चिखाने लगे ? किस पक्ष के नौजवानों में प्रसन्नता और उत्साह देख पड़ता था ?
ये सब बातें विस्तार के साथ मुझसे कहो ।

सञ्जय ने कहा—राजन्, दोनों पक्ष की सेना जब परस्पर समीप पहुँच गई तब दोनों
पक्ष के वीर व्यूह बनाकर जङ्गलों की कृतार के समान जान पड़ने लगे । दोनों ओर की
सेना प्रसन्न और उत्साहित थी । दोनों ओर विचित्र हाथी, घोड़े और रथ असंख्य थे । दोनों
पक्ष के सैनिक अपरिमित, भयङ्कर, दुर्विपक्ष देख पड़ते थे । दोनों पक्षों में सत्पुरुष थे जो स्वर्ग
प्राप्त करने के लिए तैयार थे । आपके पुत्र पश्चिमाभिमुख और पाण्डव पूर्वाभिमुख थे ।
कौरवों की सेना दैत्येन्द्र-सेना की तरह और पाण्डवों की सेना देवसेना की तरह शोभित हो रही
थी । हवा पाण्डवों के पीछे की ओर चल रही थी । मांसाहारी पशु-पक्षी आपकी सेना की
ओर मुख करके गरज रहे थे । दुर्योधन पक्ष के हाथी पाण्डवों के गजराजों की तीव्र मद-गन्ध
के सहने में असमर्थ थे । कौरव-सेना के बीच पद्मवर्ण, सुवर्ण की जञ्जीर से शोभित और जाल-
मण्डित मस्त गजराज पर दुर्योधन विराजमान थे । बन्दी और मागध उनकी स्तुति कर रहे थे ।
सुवर्ण की माला और चन्द्रमा की तरह सफेद छत्र उनके मस्तक पर था । गान्धारराज शकुनि
पहाड़ी गान्धार देश के लोगों की सेना साथ लिये दुर्योधन को चारों ओर से घेरे हुए चलते
थे । सफेद छत्र, धनुष, पगड़ी, ध्वजा, कैलास-सदृश सफेद घोड़े और खड्ग आदि युद्धसामग्री
से सुशोभित होकर पितामह भीष्म सब सेना के आगे चल रहे थे । उनके साथ की सेना
में आपके पुत्र, बाह्लीक, शल, अम्बष्ठ, सैन्धव, सौवीर और महाशूर पञ्चनद प्रदेश के श्रेष्ठ शूर
१० थे । महात्मा द्रोणाचार्य लाल घोड़ोंवाले रथ पर चढ़कर धनुष हाथ में लिये सब राजाओं
के पीछे-पीछे महाराज के समान चलने लगे । वृद्धत्तर के पुत्र, भूरिश्रवा, पुरुमित्र और जय, ये
सेना के बीच में और युद्ध की इच्छा रखनेवाले शाल्व, मत्स्य, केकय आदि देशों के वीर भी
हाथियों की सेना साथ लिये युद्धभूमि में डटे हुए थे । प्रधान धनुर्धर, विचित्र युद्ध में प्रवीण,
महात्मा कृपाचार्य अपने साथ में शक, किरात, यवन आदि की सेना लिये सेना के उत्तर भाग
में स्थित हुए । अर्जुन की मृत्यु या अर्जुन को जीतने के लिए ही जिनकी सृष्टि हुई है और
अर्जुन के अस्त्रविद्या के गुरु ने ही जिन्हें अस्त्रविद्या सिखाई है, वे संशप्तकों के अयुत रथी और
शूर त्रिगर्तगण बहुत सी सेना सहित दुर्योधन के साथ चले ।

राजन्, अत्यन्त उत्तम एक-लाख हाथियों का व्यूह पितामह ने बनाया था । एक-एक
हाथी के साथ सौ-सौ रथ थे । एक-एक रथ के साथ सौ-सौ घोड़े थे । हर घोड़े के साथ
दस-दस धनर्द्धर वीर थे । हर धनर्द्धर घोड़ा के साथ चार-चार तालवाले थे । इस प्रकार

व्यूह-रचना करके पितामह भीष्म युद्ध में प्रवृत्त हुए। वे एक ही प्रकार के व्यूह से नहीं लड़े। कभी मानुष, कभी दैव, कभी गान्धर्व और कभी आसुर व्यूह की रचना करके उन्होंने घोर युद्ध किया। समुद्र के समान शब्दपूर्ण महारथों से युक्त उन व्यूहों की सेना पश्चिमाभिमुख स्थित थी। महाराज, आपकी सेना जैसी असंख्य और भयानक है वैसी पाण्डवों की सेना नहीं है। किन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुन जिसके अगुआ हैं वही, मेरी राय में, बड़ा और दुर्जय है।

२०

इक्रीसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर और अर्जुन की बातचीत

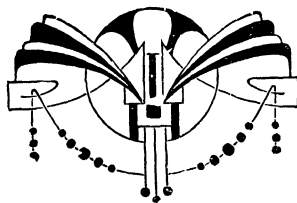
सञ्जय कहते हैं कि महाराज, दुर्योधन की भारी सेना को युद्ध के लिए तैयार और भीष्म को अभेद्य व्यूह की रचना करते देखकर राजा युधिष्ठिर ने खिन्न स्वर में कहा—हे अर्जुन, पितामह भीष्म जिनके पक्ष के थोड़ा हैं उनसे हम लोग किस तरह युद्ध कर सकेंगे? शत्रुदमन महाबली महात्मा भीष्म के रचे हुए, शास्त्रानुसार कल्पित, अक्षोभ्य और अभेद्य व्यूह को देखकर हम लोग अपनी सेना सहित प्राणों के सङ्कट में पड़ गये हैं। अब बताओ, इस समय हम कैसे इस महाव्यूह से अपनी रक्षा कर सकेंगे।

महाराज, राजा युधिष्ठिर को कौरव-सेना के कारण यों विषाद में पड़े देखकर अर्जुन ने कहा—महाराज! संख्या में थोड़े लोग जिस ढङ्ग से प्रज्ञा, शौर्य, गुण और संख्या में अधिक लोगों को हरा सकते हैं वह ढङ्ग सुनिए। महर्षि नारद, पितामह



भीष्म और द्रोणाचार्य इसे जानते हैं। पहले देवासुर-संग्राम में पितामह ब्रह्मा ने महेन्द्र आदि देवताओं से कहा था कि विजय की इच्छा रखनेवाले लोग जैसे सत्य, दया, धर्म के द्वारा जय

- १० प्राप्त करते हैं वैसे बल और वीर्य के द्वारा नहीं। इसलिए धर्माधर्म और लोभ के विषय को अच्छी तरह जानकर, अहङ्कार-शून्य होकर, उद्यम के साथ युद्ध करो। जहाँ धर्म है वहीं जय है। महर्षि नारद का कहना है कि 'जहाँ कृष्ण हैं वहीं जय है। अन्यान्य गुण जैसे श्रीकृष्ण में हैं वैसे ही विजय भी उनमें है। वे जहाँ जाते हैं वहीं विजय भी उनके साथ जाती है। अतएव जहाँ शत्रुओं के बीच श्रीकृष्ण हमारे साथी हैं वहाँ हमारी ही जय निश्चित है। श्रीकृष्ण कभी व्यथित होनेवाले नहीं हैं। उनका तेज अनन्त है। अव्यर्थलक्ष्य इन्हीं श्रीकृष्ण ने पहले जनार्दन हरि का रूप रखकर, देवताओं और असुरों के सामने प्रकट होकर, पूछा था कि कौन जय प्राप्त करेगा। इस प्रश्न के उत्तर में जिन्होंने कहा था कि हम श्रीकृष्ण के अनुगत हैं, हमीं जय प्राप्त करेंगे, वे ही विजयी हुए थे। इन्द्र आदि देवताओं ने श्रीकृष्ण के ही प्रसाद से त्रैलोक्य का राज्य पाया है। हे भरतकुलश्रेष्ठ, वही त्रिदिवेश्वर वासुदेव जब आपकी विजय की आशा कर रहे हैं तब आपको काहे की
- १७ चिन्ता है ? आप क्यों दुःख करते हैं ?



बाईसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर आदि की युद्ध-यात्रा

सञ्जय कहते हैं—महाराज, इसके उपरान्त कुरुकुल-प्रधान युधिष्ठिर आदि पाण्डव अपनी सारी सेना का, भोष्म के विरुद्ध, व्यूह बनाकर धर्मयुद्ध के द्वारा स्वर्ग या राज्य प्राप्त करने के लिए तैयार हुए। सबके बीच में शिखण्डी को रखकर स्वयं अर्जुन उनकी रक्षा करने लगे। भीमसेन सेना के अगले भाग में स्थित धृष्टद्युम्न की और इन्द्र के समान प्रधान धनुर्धर युयुधान दक्षिण भाग से सब सेना की रक्षा करने लगे। राजा युधिष्ठिर हाथियों के झुण्ड के बीच महेन्द्रयान सट्टश, युद्ध की सामग्रियों से परिपूर्ण, सुवर्णरत्नचित्रित, सुवर्णभाण्डयुक्त श्रेष्ठ रथ पर सवार हुए। उनके माथे पर हाथीदाँत की मूठवाला, ऊँचा, सफेद छत्र लगा हुआ था। महर्षिगण स्तुति करते हुए उनकी प्रदक्षिणा करने लगे। पुरोहित लोम शत्रुघ्न की घोषणा के साथ आशीर्वाद देने लगे। ब्रह्मर्षि और सिद्धगण जप, मन्त्र और महौपधियों के द्वारा स्वस्त्ययन और स्तुति करने लगे। इसके बाद कुरुश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को हज़ारों गायें, कण्ठाभरण और अनेक प्रकार के फल-फूल आदि से सन्तुष्ट करके देवराज की तरह युद्धयात्रा की। महाबाहु, पृथ्वी पर अद्वितीय धनुर्धर यादवा, महावीर अर्जुन ने भयानक रूप धारण किये हुए आपके पुत्रों की सेना को नष्ट करने की इच्छा से बायें हाथ में गाण्डीव धनुष लिया; और हज़ार सूर्यों की तरह उज्ज्वल, अग्नि की तरह शिखायुक्त, शतकिंकिणोशोभित, सुवर्णमण्डित, अच्छे पहियोंवाले, सफेद घोड़ों से युक्त, कपिध्वज रथ पर चढ़कर युद्धयात्रा की। उनके रथ पर स्वयं श्रीकृष्ण सवार हुए। सिंह के समान निर्भय, इन्द्र के समान पराक्रमी, मस्त हाथी के समान दर्पी, १० महाबली, पराक्रमी और बिना शत्रु लिये केवल बाहुओं से ही मनुष्यों और हाथियों का संहार करने में समर्थ भीमसेन—नकुल और सहदेव के साथ—अर्जुन के रथ की रक्षा करने लगे। सेना के अगले भाग में भीमसेन को आते देखकर आपके दल के यादवाओं की दशा डर के मारे दलदल में फँसे हुए हाथियों की सी हुई।

अब भगवान् श्रीकृष्ण ने सेना के बीच में स्थित दुर्धर्प राजकुमार अर्जुन से कहा—हे अर्जुन ! वह देखो, सेना के बीच में सूर्य के समान तप रहे और हमारी सेना को सिंह के समान देख रहे कुरुकुलकंठु पितामह भीष्म खड़े हैं। इन्होंने तीन सौ अधमेध यज्ञ किये हैं। मेघ जैसे सूर्य को छिपाये हों, वैसे ही यह कौरवपक्ष की सेना उनके चारों ओर रहकर उनकी रक्षा कर रही है। हे पुरुषश्रेष्ठ, इस सेना को मारकर भरतश्रेष्ठ भीष्म के साथ युद्ध करो। १६

तेईसवाँ अध्याय

दुर्गादेवी की स्तुति

सञ्जय कहते हैं कि राजन्, इसके बाद दुर्योधन की सेना को युद्ध के लिए तैयार देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को हित के लिए कहा—हे अर्जुन ! संग्राम के आरम्भ में, शत्रुओं की पराजय के लिए, पवित्रतापूर्वक दुर्गास्तोत्र का पाठ करा ।

महाराज ! बुद्धिमान श्रीकृष्ण के उपदेश करने पर अर्जुन रथ से उतरकर, हाथ जोड़कर, भगवती कात्यायनी की स्तुति इस प्रकार करने लगे—हे सिद्धसेनानि, हे आर्ये, मन्दराचल पर निवास करनेवाली, कुमारी, काली, कपालिनी, कपिला, कृष्णपिङ्गला भगवती, आपको प्रणाम है । हे तारिणी, वरवर्णिनी, भद्रकाली, महाकाली, चण्डी, चण्डरूपिणी, कात्यायनी, महाभागा, आपको प्रणाम है । हे कराली, विजया, जया, मयूरपिच्छध्वजाधारिणी, अनेक आभूषण पहननेवाली, अत्यन्त उत्कट त्रिशूल-खड्ग और खेटक धारण करनेवाली । श्रीकृष्ण की बड़ी बहन, नन्दगोप के कुल में जन्म लेनेवाली, महिष का रक्त पीनेवाली, कौशिकी, पीताम्बर पहननेवाली, अट्टहास करनेवाली, कोकमुखा, गणप्रिया देवी, आपको नमस्कार है । उमा, शाकम्भरी, श्वेता, कृष्णा, कैटभनाशिनी, हिरण्यक्षा, विरूपाक्षा, धूम्राक्षा, आपको नमस्कार है । वेदश्रुति, महा-
१० पुण्या, ब्रह्मण्या, अग्निवधू, जम्बू-कटक-चैत्य आदि स्थानों में नित्य रहनेवाली देवी, आप सब विद्याओं में ब्रह्मविद्या और सब शरीरधारियों में महानिद्रा के स्वरूप से स्थित हैं । हे भगवती, स्कन्दजननी, दुर्गा, दुर्गम स्थान में रहनेवाली, आप स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, सावित्री, वेदमाता और वेदान्तस्वरूपिणी हैं । मैं विशुद्ध चित्त से आपकी स्तुति करता हूँ । आशीर्वाद दीजिए कि आपकी कृपा से विजय प्राप्त कर सकूँ । भक्तों की रक्षा के लिए आप सदा दुर्गम मार्ग और भयानक स्थान तथा पाताल-तल में रहती हैं और संग्राम-भूमि में दानवों को हराती हैं । आप जम्भनी, मोहिनी, माया, हा, श्री, सन्ध्या, प्रभावती, सावित्री, जननी, तुष्टि, पुष्टि, धृति, चन्द्र-सूर्य-विवर्द्धिनी, दीप्ति और सम्पन्न पुरुषों की सम्पत्ति हैं । सिद्ध-वारण सदा रणक्षेत्र में आपके दर्शन पाते हैं ।

अर्जुन की भक्ति देखकर मनुष्य-वत्सला कात्यायनी प्रसन्न हुई और श्रीकृष्ण के आंग प्रकट होकर अर्जुन से कहने लगीं—‘हे पाण्डव, तुम नारायण की सहायता से शीघ्र ही संग्राम में शत्रुओं को जीत लोगे । तुम युद्ध में शत्रुओं के लिए अजेय हो । तुमको तो सात्त्विक इन्द्र भी नहीं जीत सकते ।’ अब वरदायिनी भगवती अन्तर्द्वान हो गई ।

वरदान पाकर अर्जुन ने अपने को विजयी समझ लिया । वे श्रीकृष्ण के साथ रथ पर बैठकर दिव्य शङ्ख बजाने लगे । जो कोई सबेरे उठकर इस दुर्गास्तव को पढ़ता है उसे

यक्ष, राक्षस, पिशाच, शत्रु, माँप, हिंसक पशु और राजकुल आदि से डर की आशङ्का नहीं रहती। वह मनुष्य विवाद में विजय पाता है, बन्धन से छुटकारा पाता है तथा सङ्कट और आपत्ति से छूट जाता है। यदि चोर डाकू घेर लें तो इस स्तोत्र को पढ़ने से वे सब भाग जाते हैं। यह स्तोत्र पढ़ने से युद्ध में विजय, लक्ष्मी, आरोग्य, बल और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है।

राजन, मैंने बुद्धिमान महात्मा व्यासदेव की कृपा से युद्ध का सब हाल देखा है। आपके दुरात्मा पुत्र काल-पाश में फँसे हुए हैं। इसी से मोह-वश होकर वे महर्षि नर और नारायण (अर्जुन और श्रीकृष्ण) को नहीं पहचान सके। व्यास, नारद, कण्व, परशुराम आदि महर्षियों ने आपके पुत्र को बहुत सम-भाया, परन्तु अपनी मूढ़ता के कारण दुर्योधन ने उनका कहा नहीं माना। महाराज, जहाँ धर्म है वहीं शक्ति और कान्ति है। जहाँ लोकलज्जा है वहीं श्री और बुद्धि है। सच तो यह है कि जहाँ धर्म है वहीं श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं वहाँ जय है।



चौवीसवाँ अध्याय

दोनों पक्ष की सेना के अभ्युदय का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, किस पक्ष के वीरों ने पहले प्रसन्नतापूर्वक युद्धभूमि में प्रवेश और आक्रमण किया ? किस पक्ष के लोग उत्साहित और किस पक्ष के लोग उदास देख पड़े ? किस दल के वीरों ने हृदय को कँपा देनेवाले उस युद्ध में पहले-पहल प्रहार किया ? किस ओर के गरज रहे योद्धाओं की मालाएँ नहीं सूखीं ? किस पक्ष के लोगों की मालाओं की सुगन्ध में विकार नहीं आया ? किस दल के वीरों के अनुकूल हवा चल रही थी ? तुम यं सब बातें मुझे सुनाओ।

सञ्जय ने कहा—राजन्, उस समय दोनों पक्ष के योद्धा प्रसन्न और उत्साहित दिखाई पड़ रहे थे। दोनों आर के वीरों की मालाएँ और उनकी गन्ध असली हालत में थी। दोनों पक्ष के लोग व्यूह बनाकर एकत्र हो परस्पर घोर युद्ध कर रहे थे। हे भरतश्रेष्ठ, दोनों ओर के वीर एक दूसरे को देखकर सिंहनाद कर रहे थे। दोनों पक्ष के योद्धा रण में शूरता दिखानेवाले थे। शङ्ख, नगाड़े आदि वाजों का शब्द चारों ओर गूँज रहा था। उस शब्द को हाथियाँ, घोड़ों, रथों और पैदलों का शब्द और भी बढ़ा रहा था। वह दृश्य अद्भुत ही था।

पचीसवाँ अध्याय

अर्जुन का विपाद

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय, धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में युद्ध के लिए एकत्र हुए कौरवों और पाण्डवों ने आगे फिर क्या किया ?

सञ्जय ने कहा कि राजन्, राजा दुर्योधन पाण्डव-सेना को व्यूह-रचना किये खड़ी देख-कर द्रोणाचार्य के पास जाकर कहने लगे—हं आचार्य ! देखिए, आपके शिष्य बुद्धिमान् द्रुपद-



पुत्र धृष्टद्युम्न ने पाण्डवों की महती सेना को व्यूह बना करके ठीक स्थान पर स्थापित किया है। इस सेना में भीम और अर्जुन के समान युद्ध करनेवाले शूर और धनुर्धर देख पड़ते हैं। युयुधान, विराट, महारथी द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान महाबली काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज पुरुपश्रेष्ठ शैब्य, विक्रमशाली युधामन्यु, महावीर उत्तमौजा, अभिमन्यु, द्रौपदी के पाँचों पुत्र आदि सब महारथी वीर पाण्डवों की सेना में हैं। अब हमारी सेना के प्रधान जो वीर सेनापति हैं उनके नाम भी सुनिए। हे द्विजश्रेष्ठ ! आप, भीष्म पितामह, कर्ण, युद्ध में जय प्राप्त करनेवाले कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त के पुत्र भूरि-

श्रवा, जयद्रथ और अन्य बहुत से शूरवीर अनेक अस्त्र-शस्त्र लिये मेरे निमित्त प्राण तक देने को तैयार हैं। वे सब युद्ध में निपुण हैं। भीष्म-द्वारा रक्षित हमारी सेना अपार है और भीमसेन-

द्वारा रक्षित पाण्डवों की सेना, उसके मुकाबिले में, थोड़ी है। इस समय आप लोग अपने-अपने १० निर्दिष्ट स्थान पर, व्यूह के प्रवेश-द्वारों में, स्थित होकर भीष्म पितामह की ही रक्षा करें।

अब महाप्रतापी कुरुवृद्ध पितामह ने दुर्योधन को प्रसन्न करने के लिए सिंहाद करने के साथ ही ऊँचे स्वर से शङ्ख बजाया। इसके बाद शङ्ख, भेरी, पणव, नगाड़े, गोमुख आदि हज़ारों बाजे एकाएक बजाये जाने लगे। इससे बड़ा शोर-गुल हुआ।

उधर सफेद घोड़ों से युक्त बड़े रथ पर बैठे हुए माधव और अर्जुन ने अपने दिव्य शङ्ख बजाये। श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य शङ्ख, अर्जुन ने देवदत्त शङ्ख, भीमसेन ने पैण्ड्र नाम का महाशङ्ख, राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय नाम का शङ्ख, नकुल ने सुघोष शङ्ख और सहदेव ने मणिपुष्पक शङ्ख बजाया। इसी प्रकार काशिराज, शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि, द्रुपद, अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्रों ने अलग-अलग अपने-अपने शङ्ख बजाये। वह शङ्खों की तुमुल ध्वनि पृथ्वीमण्डल और आकाशमण्डल को प्रतिध्वनित करती हुई आपके पुत्रों के हृदयों को चीरने लगी।

महाराज ! अब कपिध्वज अर्जुन कौरवों को यथास्थान स्थित देखकर, शास्त्रों का चलना आरम्भ होते समय, अपने धनुष को उठाकर, श्रीकृष्ण से कहने लगे—हे वासुदेव, दोनों २० सेनाओं के बीच में मेरा रथ ले चलिए। मैं देखना चाहता हूँ कि दुर्बुद्धि दुर्योधन का प्रिय करने की इच्छा से लड़ने के लिए यहाँ पर कौन लोग आये हैं। इस समय किन लोगों के साथ मुझे युद्ध करना होगा और कौन लोग मुझसे युद्ध करेंगे, यही मैं जानना चाहता हूँ।

सञ्जय कहते हैं कि गुडाकेश अर्जुन के ये वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले जाकर खड़ा कर दिया और अर्जुन से कहा—हे पार्थ ! भीष्म, द्रोण आदि सब यादवा, राजा लोग और कौरव ये सब जमा हैं, देख लो।

अर्जुन ने देखा कि उनके पिता, पितामह, आचार्य, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र, मित्र, ससुर और सुहृद् आदि सब आत्मीय और माननीय लोग मरने-मारने के लिए खड़े हैं। तब करुणा के आवेश से खिन्न होकर अर्जुन ने कहा—हे वासुदेव, ये सब स्वजन युद्ध के लिए उपस्थित हैं। इन्हें देखकर मेरा शरीर काँप रहा है, हाथ-पैर सुन्न हो रहे हैं, रोमाञ्च हो आया है। हाथ से गाण्डीव गिरा पड़ता है, मुँह सूखा जा रहा है, त्वचा माँतों जली जा रही है। मेरा मन भ्रान्त सा हो रहा है। मुझसे रथ पर बैठे नहीं रहा जाता। हे केशव, मुझे सब लक्षण विप- ३० रीत ही देख पड़ते हैं। युद्ध में भाई-बन्धुओं को मारने से मुझे कुछ कल्याण नहीं देख पड़ता। हे श्रीकृष्ण ! इस तरह मैं न तो विजय चाहता हूँ, न राज्य और न सुख ही। हे गोविन्द ! हम लोग भाई-बन्धुओं को मारकर राज्य, सुखभोग या जीवन लेकर क्या करेंगे ? जिनके लिए हम राज्य, भोग और सुख की चाह करते हैं वे आचार्य, पिता, पुत्र, पितामह, मामा, ससुर, पाँते, साले, समर्थी, नातेदार आदि सब तो युद्ध में, प्राणों की और धन की ममता छोड़कर, लड़ने को तैयार हैं।

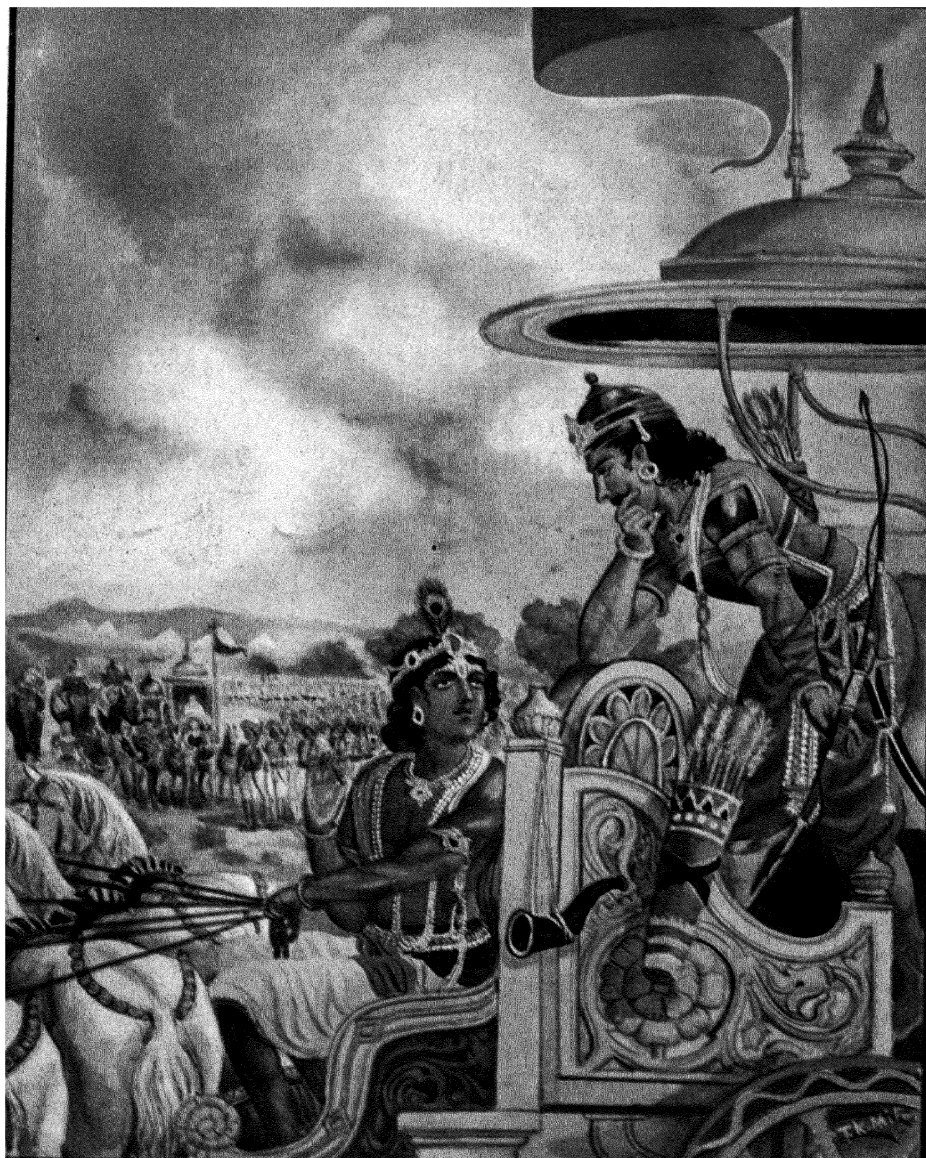
- हं मधुसूदन ! इस तुच्छ पृथ्वी की कौन कहे, मैं तो त्रिलोकी के राज्य के लिए भी इन लोगों को मारना नहीं चाहता; ये लोग मुझे भले ही मार डालें। हे जनार्दन, धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने से ही हमें क्या प्रसन्नता होगी ? इन आततायियों को मारकर हम पाप के ही भागी होंगे। इस-लिए बन्धु-बान्धवों सहित धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारना ठोक नहीं है। हे माधव, इन लोगों को मारकर हम कैसे सुखी हो सकेंगे ! इन लोगों का चित्त लोभ के वश में हो रहा है, इसी कारण यद्यपि ये लोग कुलक्षय के दोष और मित्रद्रोह के पातक का नहीं देख पाते, तथापि हमको तो इस पाप से अलग हो जाना चाहिए; क्योंकि हम कुलक्षय के दोष को जानते हैं। भगवन्, कुल का नाश होने पर सनातन कुलधर्मों का नाश होता है। कुलधर्म के नष्ट होने पर कुल को अधर्म छा लेता है। अधर्म के बढ़ने पर कुलस्त्रियाँ दूषित होती हैं। हे ४० वार्ष्णेय, कुलस्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसङ्कर संतान पैदा होती है। वर्णसङ्कर उत्पन्न होने पर कुल का संहार करनेवालों समेत सारा कुल नरकगामी होता है। कुल का विनाश करनेवालों के पितर, पिंड और तर्पण लुप्त हो जाने के कारण, नरक में गिरते हैं। कुलनाशक लोगों के इन वर्ण-सङ्करकारी दोषों से सनातन जातिधर्म और कुलधर्म मिट जाते हैं। हे जनार्दन, हम लोगों ने सुना है कि जिन मनुष्यों के कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं वे चिरकाल तक नरक में पड़े रहते हैं। बड़े खेद की बात है कि हम राज्यसुख के लोभ से स्वजनों को मारने का पाप करने को उद्यत हैं। यदि मैं किसी प्रकार से अपना बचाव न करूँ, निहत्था खड़ा रहूँ और उस दशा में ये धृतराष्ट्र के पुत्र शस्त्र लेकर मुझको मार डालें तो वह मेरे लिए बहुत ही अच्छा होगा। सञ्जय कहते हैं—महाराज ! ४१ युद्धभूमि में श्रीकृष्ण से यों कहकर, धनुष और बाण फेंककर, शोकाकुल अर्जुन रथ पर बैठ गये।

छब्बीसवाँ अध्याय

साख्ययोग का वर्णन

सञ्जय कहते हैं कि राजन् ! इस प्रकार करुणा के वशीभूत होकर, आँखों में आँसू भरें हुए, विप्र अर्जुन से श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, इस बुरे समय में तुम्हें यह कापुरुषों का सा, निन्दनीय, स्वर्ग की गति में विप्र डालनेवाला मोह कैसे हुआ ? हे अर्जुन ! तुम इस समय यह कायरपना, यह छीबों का सा भाव, छोड़ो। तुम ऐसे वीर पुरुषों के योग्य यह भाव नहीं है। हे परन्तप, हृदय की चुद्र दुर्बलता को छोड़कर उठो।

अर्जुन ने कहा—हे शत्रुनाशन ! पूजा के योग्य भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य के ऊपर मैं किस तरह प्रहार करूँगा ? किस तरह उनसे युद्ध करूँगा ? महानुभाव बड़े-बूढ़ों की हत्या न करके जो इस लोक में भीख माँगकर खाना पड़ें तो वह बहुत अच्छा है। लालची गुरुजन



आंखों में आंसू भरे हुए, खिन्न अर्जुन से श्रीकृष्ण ने कहा।—पृ० १११६

का वध करके इस लोक में रुधिर-लिप्त भोग भोगने को मिलेंगे । मैं वैसा सुख नहीं चाहता । मुझे पता नहीं कि इस युद्ध में किस पक्ष की हार-जीत होगी; और मेरे लिए हार अच्छी है या जीत । जिनके मारे जाने पर हम स्वयं जीना नहीं चाहते वे ही धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे सामने लड़ने को खड़े हैं । भगवन्, मेरी प्रकृति इस समय करुणा के दोष से बेकाम हो रही है और मंरा चित्त धर्म के विषय में कुछ काम नहीं देता । मैं आपका शरणागत शिष्य हूँ । मैं आपसे पूछता हूँ, मेरे लिए जो निश्चित रूप से सबसे अच्छा हो उसी का उपदेश कीजिए । पृथ्वी का निष्कण्टक समृद्ध राज्य और देवताओं का आधिपत्य मिलने पर भी मेरे इस, इन्द्रियों को निकम्मा करनेवाले, शोक को मिटानेवाला कोई उपाय नहीं देख पड़ता । इसलिए मैं युद्ध न करूँगा ।

सञ्जय कहते हैं कि हे शत्रुदमन, हृषीकेश गोविन्द से यों कहकर अर्जुन चुप हो गये । तब श्रीकृष्ण ने हँसकर दोनों सेनाओं के बीच सुस्त हो रहे अर्जुन से कहा—हे अर्जुन, १० जिनका शोक न करना चाहिए उनका शोक करते हुए तुम ऐसी बातें कह रहे हो जो सुनने में तो समझदारी की जान पड़ती हैं, परन्तु वास्तव में समझदारी की हैं नहीं । देखो, जो पण्डित हैं वे जीते या मरे किसी के लिए शोक नहीं करते । पहले भी मैं, तुम और ये सब राजा लोग मौजूद थे, और इसके बाद भी मैं, तुम और ये सब रहेंगे । देहधारी आत्मा को इस देह में जैसे बचपन, जवानी, बुढ़ापा आदि दशाएँ प्राप्त होती हैं वैसे ही एक शरीर छोड़कर दूसरे शरीर को प्राप्त होना है । जो धीर पुरुष है वह उसमें घबराता नहीं । विषयों के साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध ही शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि का देनेवाला है । हे अर्जुन, उक्त सम्बन्ध कभी होता है और कभी नष्ट हो जाता है, अतएव अनित्य है । हे भारत, इसलिए तुम उसे सहो । हे पुरुषश्रेष्ठ, यह अनित्य सम्बन्ध अपने संयोग-वियोग से जिस पुरुष को दुखी नहीं कर पाता वही सुख और दुख को समान समझनेवाला धीर पुरुष अमृतभाव अर्थात् मुक्ति को प्राप्त होता है । तत्त्वदर्शी पुरुषों ने यह सिद्धान्त किया है कि जो नहीं (असत्) है वह हो नहीं सकता, और जो है (सत्) उसका अभाव नहीं होता । आत्मा सर्वत्र व्याप्त है, उसका विनाश नहीं है । उस अव्यय पुरुष को कोई नष्ट नहीं कर सकता । यह देह अनित्य है, किन्तु शरीरी जीवात्मा नित्य है । वह अविनाशी और अप्रमेय है । इसलिए हे भारत, तुम युद्ध करो । जो कोई इस जीवात्मा को मारनेवाला समझता है, और जो कोई इसे मरनेवाला समझता है, वे दोनों अज्ञानी हैं; क्योंकि जीवात्मा न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है । जीवात्मा का न तो जन्म या मरण है और न वह बारम्बार उत्पन्न या वर्द्धित होता है । वह अजन्मा, नित्य और पुराणपुरुष है । शरीर के नष्ट हो जाने पर भी जीवात्मा का विनाश नहीं होता । जो पुरुष जीवात्मा को अविनाशी, अज, अव्यय और नित्य जानता है वह २० न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा किसी को मरवाता है । मनुष्य जैसे पुराने

कपड़े उतारकर नये कपड़े पहनता है वैसे ही यह आत्मा जीर्ण शरीर को छोड़कर दूसरा नया शरीर ग्रहण कर लेता है। आत्मा को राख काट नहीं सकते, आग उसे जला नहीं सकती, जल उसे गोला नहीं कर सकता, हवा उसे सुखा नहीं सकती। (वह अच्छेय, अदाह्य, अक्लेय और अशोष्य है।) वह नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और सनातन है। वह आँख आदि इन्द्रियों की पहुँच से बाहर, अचिन्त्य और विकाररहित है। इस कारण तुम जीवात्मा को ऐसा समझकर शोक और मोह न करो। जीवात्मा को जो तुम नित्यजात समझते हो, या नित्यमृत ही समझते हो, तो भी हे महाबाहु! उसके लिए तुमको शोक न करना चाहिए; क्योंकि जो उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है और वैसे ही जो मरता है उसका जन्म निश्चित है। अतएव इस अवश्य होनेवाली बात के लिए शोक करना अयोग्य है।

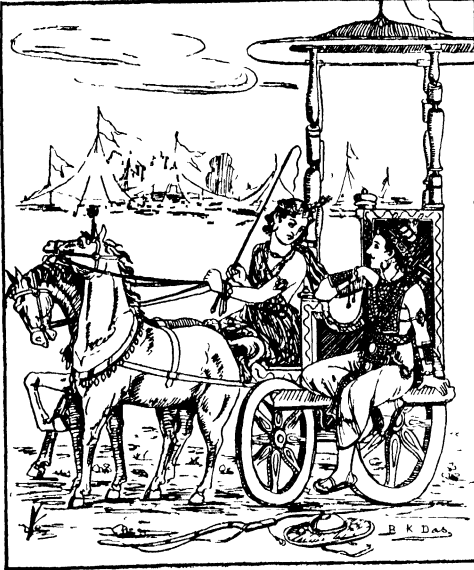
हे भारत, सब प्राणियों का आदि और अन्त अव्यक्त है; केवल जन्म और मृत्यु के मध्य का समय व्यक्त (प्रकट) है। इसलिए उसके बारे में शोक करना वृथा है। कोई इस जीवात्मा को आश्चर्य सा देखता है, कोई आश्चर्य सा वर्णन करता है और कोई आश्चर्य सा सुनता है। कोई ऐसे भी हैं कि जीवात्मा का वर्णन सुनकर भी इसके बारे में कुछ नहीं जान सकते। हे भारत, यह देहधारी जीवात्मा सभी देहों में नित्य अवध्य है। इस कारण किसी प्राणी के लिए शोक करना तुम्हें उचित नहीं। इसके सिवा अपने अर्थात् क्षत्रिय के धर्म का भी खयाल करके तुम्हें इस तरह मोहाभिभूत या कातर न होना चाहिए। क्षत्रिय के लिए धर्म-युद्ध से बढ़कर और कोई अच्छा काम हो ही नहीं सकता। हे पार्थ! युद्ध तो आप से ही प्राप्त, खुला हुआ स्वर्ग का द्वार है; वह बड़भागी क्षत्रियों को मिलता है। जो तुम यह धर्मयुद्ध नहीं करोगे तो अपने कर्तव्य और कीर्ति को गँवाकर पाप के भाग बनोगे। चिरकाल तक लोगों में तुम्हारी बदनामी की चर्चा होती रहेगी। तुम्हें यह मालूम ही है कि प्रतिष्ठित और कीर्तिशाली पुरुष के लिए बदनामी मौत से भी बढ़कर है। जो लोग अब तक तुम्हारा बहुत सम्मान करते आये हैं वही महारथी योद्धा समझेंगे कि तुम डर के मारे युद्ध नहीं करते हो। जिनकी दृष्टि में तुम बहुत कुछ थे उन्हीं की दृष्टि में तुम कुछ भी न रहोगे। शत्रु-पक्ष के लोग तरह-तरह से तुम्हारी निन्दा करेंगे। तुम्हारी सामर्थ्य की निन्दा होने से बढ़कर दुःख की बात क्या है? मारे जाओगे तो स्वर्ग मिलेगा और जो शत्रुओं पर विजय पाओगे तो पृथ्वीमण्डल का राज्य करोगे। इसलिए हे अर्जुन, युद्ध का दृढ़ निश्चय करके तैयार हो जाओ। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय को समान समझकर युद्ध करो। इस तरह तुम पाप के भागी नहीं बनोगे।

हे पार्थ, यह मैंने तुमको सांख्यशास्त्र (आत्मतत्त्व के ज्ञान) की बुद्धि बताई है। अब इसी बुद्धि को कर्मयोग के अनुसार तुमसे कहता हूँ। इस बुद्धि से युक्त होकर तुम कर्म-बन्धन से छूट जाओगे। यह कर्मयोग का अनुष्ठान कभी विफल नहीं होता और इसमें दोष भी

नहीं होता । इस धर्म का थोड़ासा अनुष्ठान भी मनुष्य को बड़ो बड़ी विपत्तियों से बचा लेता है । हे कुरुनन्दन, इस कर्मयोग में निश्चयात्मिका एक ही बुद्धि होती है । किन्तु जिन लोगों में ४० निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं है, अर्थात् जो विवेकहीन या अव्यवस्थित-चित्त हैं, उनकी बुद्धियाँ अनन्त और बहुत शाखाओंवाली होती हैं । जो लोग लम्बी-चौड़ी और कानों को सुख देनेवाली वाक्या-वाली पर लट्ठू हैं, बहुफलदायक कर्मकाण्डमूलक वेदवाक्य ही जिन्हें प्रीतिप्रद हैं, जो लोग फल-माधन के सिवा और कुछ भी नहीं स्वीकार करते और इच्छाओं के दास हैं उन अविवेकी मूढ़ पुरुषों की बुद्धि एकाग्रता के विषय में स्थिर नहीं होती; जो लोग स्वर्ग को ही परम पुरुषार्थ-माधक समझते हैं, जन्म-कर्म-फलदायक और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के माधन स्वरूप बहुविध क्रिया-प्रकाशक वाक्यों की ओर जिनका चित्त आकृष्ट हो रहा है और जो भोग तथा ऐश्वर्य के भूखे हैं, उन अविवेकी मूढ़ पुरुषों की बुद्धि समाधि या एकाग्रता के विषय में स्थिर नहीं होती । कामना-परतन्त्र लोगों के लिए वेद-शास्त्र कर्मफल का प्रतिपादन करते हैं । हे अर्जुन ! तुम शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्व धर्मों का सहते हुए धैर्यशील, योगक्षेम-रहित, प्रमादशून्य और निष्काम बनो । यद्यपि बड़े भारी जलाशय में बहुत अधिक पानी रहता है फिर भी मनुष्य उस सब जल को अपने व्यवहार में नहीं लाता, वह तो उतने ही पानी से काम लेता है जितने में कि उसके नहाने-धोने और खाने-पीने आदि का काम हो जाय; वम, इतना ही प्रयोजन व्युत्पन्न मतिवाले ब्राह्मण का सब वेदों में है; अर्थात् वेद के एक अङ्ग उपनिषद् का श्रवण करने से ही सम्पूर्ण वेदों का प्रयोजन सिद्ध हो जायगा क्योंकि सिद्धि के लिए पूरे वेदों के अनुष्ठान की न तो आवश्यकता है और न एक जन्म में उनका अनुष्ठान ही पूरा हो सकता है । हे अर्जुन, तुम्हें कर्म करने का ही अधिकार है । कर्म करो, किन्तु कर्मफल की इच्छा मत करो । तुम कर्मफल का कारण मत बनो और कर्म-त्याग में तुम्हारी आसक्ति न हो । तुम आसक्ति छोड़कर, ईश्वरानुरक्त होकर, सिद्धि और असिद्धि को समान समझते हुए, कर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त होओ । सिद्धि और असिद्धि को समान समझना ही तो योग है । हे धनञ्जय, बुद्धियोग की अपेक्षा फलापेक्षी कर्म अत्यन्त निकृष्ट है । इसलिए तुम फल की इच्छा छोड़कर बुद्धि का ही आश्रय लो । फल की चाह रखनेवाले कृपण या दीन हैं । कर्मयोग-विपरिणी बुद्धि से युक्त पुरुष इस लोक में पुण्य और पाप दोनों को छोड़ देता है । इसलिए तुम कर्मयोग के लिए यत्न करो । ईश्वर की आराधना और कर्तव्य कर्म के संपादन द्वारा बन्धन के कारण रूप कर्मों से अपने को मुक्त करने का कौशल ही योग है । कर्मयोगी ज्ञानी पुरुष कर्म के फल को त्याग-कर, जन्म-मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करते हुए, अनामय अमृत पद को प्राप्त होते हैं । जब तुम्हारी बुद्धि मोह की दलदल से निकल आवेगी तब तुम्हें सुनने योग्य और सुने हुए विषय से वैराग्य हो जायगा । तुम्हारी बुद्धि अनेक प्रकार के वैदिक और लौकिक विषयों को

सुनकर चकरा सी गई है। जब तुम्हारी बुद्धि निश्चल होकर समाधि में स्थित होगी तब तुम्हें योग अर्थात् तत्त्वज्ञान प्राप्त होगा।

अर्जुन ने पूछा—हे वासुदेव, समाधिस्थ और स्थितप्रज्ञ व्यक्ति का लक्षण क्या है ? स्थितबुद्धि पुरुष की भाषा, अवस्था तथा व्यवहार क्या और कैसा होता है ?



वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन !

जो व्यक्ति सब तरह की वासनाओं को त्याग देता है, जिसकी आत्मा अपने में ही सन्तुष्ट रहती है, वही स्थितप्रज्ञ कहलाता है। जिसका चित्त दुःख में खिन्न नहीं होता और जो सुख की इच्छा नहीं रखता वही स्थितप्रज्ञ है। जो पुत्र आदि पर ममता या स्नेह नहीं रखता और जो इष्ट या अनिष्ट विषय उपस्थित होने पर हर्ष या द्वेष नहीं प्रकट करता, वही स्थितप्रज्ञ है। जो पुरुष इन्द्रियों को उनके विषयों से उसी तरह खींच लेता है जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है उसी की प्रज्ञा स्थित समझनी चाहिए। निराहार देहधारी

व्यक्ति की इन्द्रियाँ भी विषयों को छोड़ देती हैं; आतुर या निराहार व्यक्ति सामर्थ्य न होने के कारण विषयों से हट जाता है; किन्तु वह स्थितप्रज्ञ नहीं कहा जा सकता। हे अर्जुन, ये प्रबल इन्द्रिया विषयत्याग के लिए लगातार यत्न करनेवाले विद्वान् पुरुष के भी मन को विषयों की ओर लगा देती हैं। रोगों या निराहार पुरुष की इन्द्रियाँ विषय-प्रहण में असमर्थ होकर विषयों को छोड़ देती हैं सही, किन्तु विषयों की वासना नहीं हटती। स्थितप्रज्ञ पुरुष ईश्वर का साक्षात्कार पा करके विषयवासना से बच जाते हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि यत्न-तत्पर विवेकी पुरुष के भी मन को इन्द्रियाँ बलपूर्वक चञ्चल कर देती हैं। इसलिए उन इन्द्रियों को संयत करके ईश्वरपरायण और समाहित होने पर जिसकी इन्द्रियाँ विषयों की ओर चलायमान नहीं होतीं उसी की प्रज्ञा निश्चल है, वही स्थितप्रज्ञ है। विषयों के चिन्तन से उधर आसक्ति होती है। आसक्ति से इच्छा होती, इच्छा से क्रोध, क्रोध से मोह, मोह से स्मृतिभ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से विनाश होता है। जिसने आत्मा या मन को वश में कर

लिया है, वह राग-द्वेष-हीन और आत्मवशोभूत इन्द्रियों के द्वारा विषय-भोग करके भी आत्मप्रसाद प्राप्त करता है। आत्मप्रसाद के अवलम्बन से सब तरह के दुःख नष्ट हो जाते हैं। जिसे आत्मप्रसाद अर्थात् सन्तोष प्राप्त हो जाता है उसकी बुद्धि शीघ्र ही स्थिर हो जाती है। जो अयुक्त अर्थात् अजितेन्द्रिय है वह बुद्धिहीनता के कारण कुछ विचार नहीं कर सकता। जो विचार नहीं कर सकता उसे शान्ति नहीं मिलती और जो अशान्त है उसे सुख कहाँ ?

विषयों में विचरनेवाली इन्द्रियों का अनुगामी मन मनुष्य की प्रज्ञा को वैसे ही चारों ओर डबा-डाल करता रहता है, जैसे नदी में नाव को आधी इधर-उधर हिलाती रहती है—स्थिर नहीं होने देती। इसलिए हे महाबाहु अर्जुन, स्थिरबुद्धि और दृढ़ज्ञ वही है जिसकी कि इन्द्रियाँ विषयों से हटाई जाकर वश में कर ली गई हैं। जिनकी बुद्धि अज्ञान के अन्धकार से ढकी हुई है उनके लिए यह ब्रह्मनिष्ठा रात्रि के समान है। उस ब्रह्मनिष्ठा की रात में जितेन्द्रिय योगी जागते रहते हैं। और, सब प्राणी जिस विषयनिष्ठा रूप दिन में जागते रहते हैं, वह दिन ही तत्त्वदर्शी मुनि के लिए रात्रिरूप है। सब नदियाँ जैसे अचलप्रतिष्ठ आपूर्यमाण समुद्र में जाकर मिल जाती हैं वैसे ही सब काम (अर्थात् विषयवासनाएँ) जिसमें लीन हो जाते हैं वही योगी शान्ति पाता है—मुक्त होता है। कामकामी अर्थात् भोगार्थी पुरुष उस शान्ति या मुक्ति को नहीं पा सकता। हे पार्थ, जो पुरुष सब इच्छाएँ त्यागकर—निःस्पृह, निरहङ्कार, निर्मम होकर—इन्द्रिय-विषयों का उपभोग करता है वही शान्ति पाता है। हे अर्जुन, यह ब्राह्मी स्थिति (ब्रह्म में लीन होने की अवस्था) है। ब्रह्मज्ञाननिष्ठ पुरुष इस स्थिति को पाकर मोहित नहीं होते। अन्तकाल में भी इस ब्रह्मनिष्ठा में स्थित होनेवाला पुरुष ब्रह्म को प्राप्त होता है, अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाता है।

७२

सत्ताईसवाँ अध्याय

कर्मयोग का वर्णन

अर्जुन ने कहा—हे केशव ! यदि तुम्हारा यह मत है कि कर्म की अपेक्षा ज्ञान ही श्रेष्ठ है, तो फिर मुझे इस घोर कर्म, हत्याकाण्ड, में क्यों नियुक्त करते हो ? तुम कभी तो ज्ञान की ओर कभी कर्म की प्रशंसा करके मेरी बुद्धि को मानों मोह में डाल रहे हो। इसलिए निश्चय करके मुझसे एक ही बात कहो, जिससे मुझे कल्याण प्राप्त हो।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि इस लोक में निष्ठा दो तरह की है। विमल चित्तवाले सांख्य मतावलम्बियों का ज्ञानयोग और कर्मयोगियों का कर्मयोग मार्ग है। पुरुष कर्म किये बिना नैष्कर्म्य (ज्ञान) को नहीं प्राप्त होता। ज्ञान प्राप्त किये बिना

केवल संन्यास से भी सिद्धि नहीं प्राप्त की जा सकती । कोई पुरुष पल भर भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता । इच्छा न रहने पर भी प्रकृति के गुण विवश करके उससे कर्म करा लेते हैं । जो व्यक्ति कर्मेन्द्रियों को संयत करके मन ही मन इन्द्रियों के विषयों का ध्यान करता है, वह मूढ़ात्मा पुरुष कपटाचारी कहलाता है । जो व्यक्ति ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से कर्मेन्द्रियों से कर्म करता है वही कर्मयोगी श्रेष्ठ है । तुम लगातार कर्म करो । कर्म छोड़ देने से तो कर्म करना ही श्रेष्ठ है । कर्मत्याग कर देने से तुम शरीर धारण भी नहीं कर सकते । यज्ञ या विष्णु के लिए जो कर्म किया जाता है उसके सिवा और सब कर्म बन्धनस्वरूप हैं । इस कारण तुम आसक्ति छोड़कर भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करो । पूर्व समय में प्रजापति ब्रह्मा ने यज्ञ सहित सब प्रजा को उत्पन्न करके कहा कि तुम इसी यज्ञ के द्वारा फूलों-फलों ।

१० यह यज्ञ ही तुम्हारे मनोरथों को पूरा करेगा । तुम लोग यज्ञ के द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट करो और वे देवता तुम्हारी वृद्धि करें । इस तरह एक दूसरे को परिवर्द्धित अथवा सन्तुष्ट करने से दोनों को परम कल्याण प्राप्त होगा । यज्ञ से सन्तुष्ट देवगण तुम्हें अभिलषित फल देंगे । जो पुरुष देवताओं के दिये हुए भोग्य पदार्थों को, देवताओं को अर्पण किये बिना, स्वयं भोग करता है वह चोर है । सज्जन पुरुष यज्ञ से वचा हुआ पदार्थ खा करके सब पातकों से छुटकारा पा जाते हैं । जो लोग केवल अपने ही लिए 'रसोई' करते और खाते हैं वे पापी पाप ही भोजन करते हैं । देखो, प्राणी अन्न से, अन्न मेष से, मेष यज्ञ से, यज्ञ कर्म से, कर्म वेद से और वेद ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं । इसी कारण सर्वगत ब्रह्म नित्य यज्ञ में प्रतिष्ठित है । जो व्यक्ति इस संसार में विषयासक्त होकर, पूर्वोक्त रूप से प्रवृत्त, कर्मादि के चक्र का अनुगामी नहीं होता वह पापी है; उसका जीवन वृथा है । जिसे अपने आत्मा में ही प्राप्ति, आनन्द और सन्तोष है उसके लिए कुछ भी कर्तव्य कार्य नहीं है । न तो कर्म करने में उसे पुण्य है, और न कर्म के त्याग देने में उसे पाप है । उसे मोक्ष के लिए ब्रह्मा से लेकर जड़पर्यन्त किसी का आश्रय नहीं लेना पड़ता । हे अर्जुन, पुरुष को आसक्ति त्यागकर कर्म का अनुष्ठान करने से मोक्ष प्राप्त होता है । इसलिए तुम आसक्ति छोड़कर कर्म करो । जनक आदि महात्मा पुरुषों ने कर्म करके ही सिद्धि

२० पाई है । अतएव दूसरों के भले के लिए भी तुम कर्म करो । श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करते हैं वही-वही, उनकी देखा-देखी, दूसरे लोग भी करते हैं । श्रेष्ठ पुरुष जिसे प्रमाण मानता है, उसी के अनुगामी अन्य लोग भी होते हैं । इस कारण, लोगों के धर्म की रक्षा के लिए ही, तुम कर्म करो । देखो, मैं अपने लिए पृथ्वीमण्डल में अप्राप्य कुछ नहीं देखता; इसी से मेरे लिए कर्तव्य कर्म भी कुछ नहीं है; तो भी मैं कर्म करता हूँ । यदि मैं आलस्य छोड़कर कर्म न करूँ तो सभी लोग, मेरे अनुगामी होकर, कर्म करना छोड़ दें । इस प्रकार मेरे कर्म न करने से इन सब लोगों के नष्ट होने की आशङ्का है । ऐसा करने से मैं वर्णसङ्कर का करनेवाला और प्रजा

की मलिनता का मूल कारण बन जा सकता हूँ। इसलिए मूढ़ लोग जैसे फल की इच्छा से कर्म करते हैं वैसे ही ज्ञानी पुरुष आसक्ति त्यागकर, लोगों के धर्म की रक्षा के लिए, कर्म करते रहते हैं। ज्ञानी लोग कर्म में आसक्त, निर्बोध पुरुषों की बुद्धि को भ्रम में न डालकर स्वयं तरह-तरह के कर्म करते हुए उन्हें कर्म करने में लगाते हैं। सभी कर्म प्रकृति के गुणरूप इन्द्रियों के द्वारा होते हैं; किन्तु जिनकी बुद्धि अहङ्कार से अभिभूत हो रही है वे लोग अपने को ही उन कर्मों का करनेवाला समझते हैं। इन्द्रियाँ ही विषयों की इच्छा करती हैं, यह जानकर गुण-कर्म-विभाग के तत्त्व को जाननेवाला पुरुष विषयों में आसक्त नहीं होता। जो लोग प्रकृति के सत्व आदि गुणों में विमुग्ध होकर इन्द्रियों के वशीभूत होते हैं वैसे अल्पदर्शी विमूढ़ व्यक्तियों को, सर्वज्ञ पुरुष का कर्तव्य है कि, कभी कर्म से विचलित न करे।

तुम मुझसे सब कर्म अर्पण करके तथा यह सोचकर कि मैं अन्तर्यामी पुरुष के अधीन होकर कर्म करता हूँ,—कामना, ममता और शोक त्यागकर—समर के लिए तैयार हो जाओ। ३० जो लोग असूयाहीन और श्रद्धायुक्त होकर सदा मेरे अनुगामी होते हैं, वे सब कर्मों के बन्धन से बच जाते हैं। जो लोग असूया के वश होकर इस मेरे मत को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं और मेरे मत के अनुसार नहीं चलते, उन सर्वज्ञान-विमूढ़ पुरुषों को अचेत और नष्ट समझो; अर्थात् वे ब्रह्म और कर्म के विषय में विमोहित होकर नष्ट होते हैं। ज्ञानी व्यक्ति भी अपने स्वभाव के अनुरूप कर्म करते हैं। इसलिए जब सभी प्राणी स्वभाव के अनुगामी होते हैं तब इन्द्रियनिग्रह करने से क्या हो सकता है? हर एक इन्द्रिय में अनुकूल विषय के प्रति आसक्ति और प्रतिकूल विषय के प्रति द्वेष है। ये दोनों बातें मात्तप्राप्ति में बाधक हैं। इसलिए इनके वशीभूत होना ठीक नहीं। अच्छी तरह अनुष्ठित परायण धर्म की अपेक्षा कुछ गुण-हीन होने पर भी अपना धर्म श्रेष्ठ है। परायण धर्म अत्यन्त भयङ्कर है। इसलिए अपने धर्म के पालन में मर मिटना भी श्रेयस्कर है।

अर्जुन ने पूछा—हे वासुदेव ! यह पुरुष किसकी प्रेरणा से, इच्छा न होने पर भी, बलपूर्वक नियुक्त सा होकर पापकर्म करता है ?

वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन ! यह काम ही क्रोध के रूप में परिणत, रजोगुण से उत्पन्न, अत्यन्त उग्र और महापापरूप है। इसे वृत्त करना बहुत कठिन है। यही मुक्ति के मार्ग में बाधा पहुँचानेवाला वैरी है। जैसे धुएँ से आग, मैल से दर्पण और जरायु (एक प्रकार की महीन फिल्ली) से गर्भ ढका रहता है, वैसे ही यह ज्ञानियों का चिरशत्रु, दुष्पूराणीय, अग्निरूप काम (कामना) ज्ञान को ढके रहता है। यह इन्द्रिय, मन और बुद्धि से उत्पन्न होता है; ये ही इसके स्थान हैं। यह काम आश्रयभूत इन्द्रिय आदि के द्वारा ज्ञान को आच्छन्न करके शरीरधारी आत्मा को मोहित करता है। इस कारण तुम पहले इन्द्रियों का दमन करके फिर ४०

ज्ञान और विज्ञान को नष्ट करनेवाले पापरूप काम का विनाश करो। देह आदि विषयों की अपेक्षा इन्द्रियों श्रेष्ठ हैं। इन्द्रियों की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है। मन की अपेक्षा निश्चल अर्थात् स्थिर बुद्धि श्रेष्ठ है। उस बुद्धि की अपेक्षा जो श्रेष्ठ है वही आत्मा है। हे अर्जुन! तुम आत्मा को इस तरह जानकर, स्थिर बुद्धि के द्वारा चित्त को स्थिर बनाकर, इस ४३ दुरासद दुर्द्धर्ष कामरूप शत्रु को नष्ट करो।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ज्ञानयोग का वर्णन

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, पूर्व समय में मैंने आदित्य से इस अविनाशी योग का वर्णन किया था। आदित्य ने मनु को और मनु ने राजा इक्ष्वाकु को इस योग का उपदेश किया। उसके बाद परम्परा के द्वारा पाकर निमि आदि राजर्षियों ने भी इस योग को जाना। बहुत समय बीतने पर यह योग नष्ट हो गया, अर्थात् लुप्तप्राय हो गया। उसी पुरातन योग का इस समय तुम्हारे आगे मैंने वर्णन किया है। तुम मेरे भक्त और सखा हो; इसी कारण यह उत्तम और रहस्ययोग तुमको बताया है।

अर्जुन ने कहा—हे केशव! आदित्य का जन्म अन्य समय हुआ, और आपका जन्म अन्य समय में हुआ। फिर मैं किस तरह जानूँ कि आपने यह योग आदित्य से कहा था ?

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, मैंने कई बार जन्म लिया है। तुम भी अनेक बार जन्म ले चुके हो। हे परन्तप! तुम उन सब जन्मों का हाल नहीं जानते, मैं जानता हूँ। मैं अजन्मा, अविनाशी और सब प्राणियों का ईश्वर होकर भी अपनी प्रकृति के आश्रित होकर अपनी माया से ही जन्म लेता हूँ। जिस समय धर्म का क्षय और अधर्म का आविर्भाव होता है उसी समय मैं अपने को उत्पन्न करता हूँ। सज्जनों की रक्षा और अधर्मी दुष्टों का नाश करने के लिए, धर्म को स्थापित करने के लिए, मैं हर एक युग में जन्म लेता हूँ। जो पुरुष मेरे इन अलौकिक जन्म और कर्मों को यथार्थ रूप से जानने में समर्थ होते हैं वे, शरीर त्याग करने पर, मुझे पाते हैं। उन्हें फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। अनेक सज्जनों ने राग, डर, क्रोध आदि त्याग करके एकाग्रचित्त, एकान्त आश्रित भाव और ज्ञान तथा तपस्या के द्वारा पवित्र होकर सायुज्य नाम की १० मुक्ति पाई है। जो लोग मुझे जिस प्रकार से भजते हैं, उन्हें मैं उसी प्रकार भजता हूँ। हे पार्थ, सभी मनुष्य मेरे ही मार्ग का अनुगमन करते हैं। मनुष्य-लोक में सब कर्म शीघ्र ही सफल होते हैं और उनकी सिद्धि प्राप्त होती है। इसी कारण मनुष्य, कर्मों की सिद्धि चाहते हुए, इस लोक में देवताओं की पूजा करते हैं; किन्तु वास्तव में वे सब मेरे ही उपासक हैं। हे पार्थ, गुण और

कर्म के विभाग के अनुसार मैंने ही ब्राह्मण आदि चारों वर्णों की सृष्टि की है। मैं उनका कर्ता भी हूँ और अकर्ता भी। मैं संसार की सृष्टि करनेवाला होकर भी अलित हूँ। कर्म मुझे स्पर्श नहीं कर सकते; क्योंकि मुझमें कर्मफल की इच्छा नहीं है। जो पुरुष मुझे इस तरह जानता है, वह कर्मबन्धन में नहीं बँधता। मोक्ष की इच्छा रखनेवाले पूर्वकाल के लोगों ने मुझे इसी तरह जानकर कर्म किये हैं। बड़े-बूढ़े जिस तरह कर्म करते आये हैं उसी तरह तुम भी कर्म करो।

इस लोक में क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इसकी सीमांसा करने में ज्ञानी लोग भी मोहित हैं। मैं अब वही कर्म तुमसे कहता हूँ जिसे जानकर तुम अशुभ से, संसार से, मुक्त हो जाओगे, सुनो। कर्म की गति बहुत ही अगम्य है, इस कारण मनुष्य को कर्म (विहित कर्म), अकर्म (निषिद्ध कर्म) और विकर्म (कर्मत्याग) तीनों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। जो मनुष्य कर्म करते रहते भी अपने को कर्म न करनेवाला और कर्म के न करते रहते भी कर्म-युक्त समझता है, वही मनुष्यों में धोमान्, यागी और सब कर्म करनेवाला है। फल की इच्छा से जिसके सब कर्म नहीं किये जाते, उसे ही विद्वान् ज्ञानी लोग पण्डित कहते हैं। उसके सब कर्म ज्ञान की आग में भस्म हो जाते हैं। जो मनुष्य कर्मफल की आसक्ति को छोड़कर निराश्रय और नित्य तृप्त (प्रसन्न) रहता है, वह कर्म करता हुआ भी वास्तव में कुछ नहीं करता; अर्थात् उसके कर्म उसके लिए बन्धन का कारण नहीं होते। जिसका चित्त और शरीर शुद्ध है, जो कामना और सब प्रकार के विषयों को त्याग हुए है, वह केवल शरीर से कर्म करके भी पाप का भागी नहीं होता। जो कुछ मिल जाता है उसी में जो व्यक्ति तृप्त है तथा जो जाड़ा-गर्मी-सुख-दुःख आदि द्वन्द्व धर्मों को सहनेवाला, मत्सर-रहित, सिद्धि और असिद्धि में समान भाव रखनेवाला है, वह कर्म करके भी संसार के बन्धन में नहीं बँधता। जो पुरुष राग-द्वेष आदि को त्यागकर निष्काम हो चुका है, जिसका चित्त सदा ज्ञान में स्थित है, वह यदि यज्ञार्थ कर्मों को करता है तो वे सब कर्म लीन हो जाते हैं। सुक्-सुवा आदि पात्र ब्रह्म हैं, हवनीय पदार्थ घृत आदि ब्रह्म हैं, अग्नि भी ब्रह्म है और उसमें हवन करनेवाला भी ब्रह्म है। ऐसे कर्म-रूप ब्रह्म में जिसके चित्त की एकाग्रता रहती है, वह उस एकाग्रता अर्थात् समाधि के द्वारा ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। कुछ योगी लोग दैवयज्ञ की उपासना करते हैं। कोई-कोई योगी पूर्वोक्त प्रकार से यज्ञादि सब कर्मों को, यज्ञरूप उपाय के द्वारा, ब्रह्मरूप अग्नि में हवन कर देते हैं। कोई योगी श्रोत्र आदि इन्द्रियों को संयमरूप अग्नि में, कोई योगी शब्द आदि विषयों को इन्द्रियरूप अग्नि में हवन कर देते हैं। कोई-कोई सज्जन ज्ञानी, ध्येय विषय के द्वारा, प्रज्वलित आत्मध्यानरूप योगाग्नि में ज्ञानेन्द्रियों के, कर्मेन्द्रियों के और प्राणवायु के कर्मों की आहुति दे देते हैं। कोई-कोई व्रतधारी यतिगण द्रव्यदान, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि तपस्वरूप यज्ञ, चित्त-वृत्ति-निवारण द्वारा समाधिरूप यज्ञ, वेदाध्ययनरूप यज्ञ और वेदार्थज्ञानरूप यज्ञ आदि कई एक यज्ञ

करते हैं। कोई प्रयत्नशील तीक्ष्णव्रतधारी पुरुष अपान वायु में प्राण वायु का हवन करके पूरक तथा प्राण में अपान वायु का हवन करके रेचक और प्राण तथा अपान की गति रोककर कुम्भक रूप प्राणायाम करते हैं। और, कोई नियताहारी होकर अन्तःकरण वृत्ति में प्राणेन्द्रियों की आहुति देते हैं। ये सब यज्ञवेत्ता ज्ञानी इन यज्ञों के द्वारा पाप का नाश करते हैं। ये सब पुरुष यज्ञ करते हुए 'यज्ञशंप' रूप अमृत भोजन करके सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ, यज्ञ हीन व्यक्ति के लिए यह अल्पसुखवाला मनुष्यलोक ही नहीं रहता; फिर उसके लिए स्वर्ग आदि के सुख की सम्भावना कहाँ ? इस प्रकार तरह-तरह के यज्ञों का वर्णन वेद में विस्तार के साथ किया गया है। ये सब यज्ञ कर्म से उत्पन्न हैं; आत्मा के साथ इनका कोई संसर्ग नहीं है तुम यह जानकर मुक्ति प्राप्त करोगे। हे शत्रुदमन पार्थ, द्रव्यमय दैव आदि यज्ञों की अपेक्षा ज्ञानयज्ञ ही श्रेष्ठ है; क्योंकि फलसहित सभी कर्मों की समाप्ति ज्ञान में ही होती है।

हे अर्जुन ! तुम तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के समीप जाकर प्रणाम, प्रश्न और सेवा करके ज्ञान सीखो। वे तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर तुम्हें ज्ञान का उपदेश देंगे। हे पाण्डव, ज्ञान प्राप्त करने पर फिर तुमको मोह न होगा। तुम अपने से सब प्राणियों को अभिन्न देखकर, अन्त के परमात्मा से आत्मा को अभिन्न देखोगे। जो तुम सब पाप करनेवालों से भी बढ़कर पापी होता भी उस ज्ञानरूप नौका के द्वारा पापसागर के पार पहुँच जाओगे। प्रज्वलित आग जैसी लकड़ियों के ढेर का जला डालती है वैसे ही ज्ञानरूप आग सब प्रकार के कर्मों को भस्म कर देती है। इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र वस्तु दूसरी नहीं है। मोक्ष की इच्छा रखने वालों को कर्मयोग में सिद्धि पाने पर आप ही आत्मज्ञान हाँ जाता है। जो पुरुष इन्द्रियों के वश में करके श्रद्धा के साथ गुरुजन की आज्ञा का पालन और सेवा करता है, वही ज्ञान प्राप्त कर शीघ्र ही मोक्ष पद को पाता है; किन्तु ज्ञान और श्रद्धा से खाली, संशयाकुल पुरुष विन होता है। संशयात्मा व्यक्ति का यह लोक और परलोक कुछ नहीं बनता; उसे सुख भी नहीं मिलता। जिसने योग के द्वारा सब कर्मों को ईश्वर में अर्पण कर दिया है, और ज्ञान के द्वारा जिसके सब संशय मिट गये हैं, उसे कर्म बाँध नहीं सकते। इसलिए आत्मज्ञानरूप खड्ग व ४२ द्वारा अज्ञान से उत्पन्न हृदय के संशय को काटकर कर्मयोग का अनुष्ठान करो और उठो।

उनतीसवाँ अध्याय

कर्म-संन्यास योग

अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण, आप कर्मों का न्यास (त्याग) और कर्मयोग दोनों का उपदेश कर रहे हैं। इनमें कौन श्रेष्ठ है, सो निश्चय करके कहिए।

भगवान् ने कहा—हे पार्थ ! कर्मत्याग और कर्मयोग, दोनों के द्वारा मुक्ति मिलती है ; किन्तु दोनों में कर्मयोग ही प्रधान है । द्वेष और इच्छा से शून्य व्यक्ति ही नित्य संन्यासी है । क्योंकि इस तरह के निर्द्वन्द्व पुरुष ही संसार के बन्धन से बचे रहते हैं । मूढ़ लोग ही संन्यास और योग के जुड़े-जुड़े फल बतलाते हैं, ज्ञानी लोग नहीं । जो व्यक्ति संन्यास और योग, दोनों में से केवल एक का ही अनुष्ठान विशेष रूप से करते हैं, वे दोनों के ही यथार्थ फल को पाते हैं । संन्यासियों को मिलनेवाला मोक्षपद कर्मयोगी पुरुष को भी मिलता है । जो लोग कर्मसंन्यास और कर्मयोग दोनों को एक भाव से देखते हैं, वे ही सचमुच तत्त्वदर्शी हैं; किन्तु कर्मयोग के बिना निरं संन्यास से मोक्ष की प्राप्ति बड़ी कठिनाई से होती है । कर्मयोगी बहुत शीघ्र ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं । जो व्यक्ति योगी होकर विशुद्धात्मा बन चुका है, जिसने शरीर और इन्द्रियों को वश में कर लिया है और जो अपने आत्मा को सब प्राणियों के आत्मा के समान जानता है, वह संसार-निर्वाह के लिए कर्म करके भी उसमें लिप्त नहीं होता । तत्त्वदर्शी कर्मयोगी पुरुष देखकर, सुनकर, छूकर, सूँघकर, खाकर, चलकर, सोकर, बातचीत कर और त्याग, ग्रहण, उन्मेष-निमेष आदि सभी प्रकार के कर्म करके समझता है कि मैं कुछ भी नहीं करता—इन्द्रियों ही अपने अपने विषय में प्रवृत्त होती हैं । जो आसक्ति से बचकर, ब्रह्म में कर्मफलों को समर्पण करता हुआ कर्म करता है, वह उसी तरह पाप में लिप्त नहीं होता जैसे कमल का पत्ता जल में नहीं लिप्त होता । कर्मयोगी पुरुष आसक्ति त्यागकर—मन की शुद्धि के लिए—शरीर, मन, बुद्धि और विशुद्ध इन्द्रियों के द्वारा कर्म किया करते हैं । ईश्वर-परायण व्यक्ति कर्मफल-परित्यागपूर्वक मुक्ति प्राप्त करते हैं । किन्तु ईश्वर-विमुख व्यक्ति कर्मफल की इच्छा करके कामनावश संसार-बन्धन में बँध जाता है । देहधारी लोग इन्द्रियों को वश में करके, मन से सब कर्मों का त्याग करके, नव-द्वार-युक्त देहपुर में सुख से रहते हैं । वे कर्म में अपने को या अन्य को प्रवृत्त नहीं करते । लोककर्ता ईश्वर सब जीवों के कर्तृत्व और कर्मों की सृष्टि नहीं करता, और किसी को कर्मफल का भागी नहीं बनाता । अविद्या प्रकृति ही जीव को कर्म में प्रवृत्त करती है । ईश्वर किसी के पाप या पुण्य का ग्राहक नहीं है; ज्ञान पर अज्ञान का पर्दा रहने से सब जीव मोह के द्वारा बन्धन को प्राप्त होते हैं । जिनका ज्ञान अपने अज्ञ-भाव को नष्ट कर चुकता है, उनका ब्रह्मज्ञान सूर्य के समान प्रकाशमान होता है । ईश्वर में ही जिनकी अचल बुद्धि और निष्ठा है, जो ईश्वर को ही आत्मा मानते हैं और जिनका ईश्वर ही परम आश्रय है, वे ज्ञान के द्वारा पापशून्य होकर मुक्ति पाते हैं ।

१०

ब्रह्मज्ञानी लोग विद्या-विनय-सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को समान दृष्टि से देखते हैं अर्थात् सब में ब्रह्म को देखते हैं । इस प्रकार जिनका चित्त सर्वत्र तुल्यभाव से स्थित है वे जीवन्मुक्त होते हैं । समदर्शी पुरुष ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं; क्योंकि निर्दोष

ब्रह्म सर्वत्र समभाव से स्थित है। जो व्यक्ति ब्रह्म के ज्ञाता होकर ब्रह्म में स्थित होते हैं, वे प्रिय या अप्रिय वस्तु को मिलने-न मिलने में हर्ष या उद्वेग नहीं प्रकट करते; क्योंकि वे मोह त्याग-
 २० कर स्थिर बुद्धि को प्राप्त हो चुकते हैं। जो बाह्य विषय में आसक्त नहीं होते उनका चित्त सदा शान्ति-सुख का अनुभव करता है और वे अन्त को ब्रह्म में समाधि लगाकर अविनाशी सुख भोगने को समर्थ होते हैं। पण्डित लोग विषयों से उत्पन्न सुख में आसक्त नहीं होते; क्योंकि वे सुख तो दुःख ही का कारण और नष्ट होनेवाले होते हैं। जो पुरुष इस लोक में, जीवित अवस्था में, काम और क्रोध के वेग को सह सकते हैं वे ही योगी और सुखी हैं। जो लोग आत्मा में ही सुख पाते हैं, आत्माराम हैं और आत्मा से ही दृष्टि रखते हैं, वे ब्रह्मनिष्ठ योगी ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। जो लोग पाप के नाश करने, संशय के छंदन करने, चित्त को वश में करने और सबका हित करने में तत्पर हैं वे तत्त्वदर्शी पुरुष ही मुक्ति प्राप्त करते हैं। जिन संन्यासियों ने चित्त को वश में कर लिया है तथा काम और क्रोध से छुटकारा पाकर आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वे इस लोक और परलोक दोनों में मुक्ति पाते हैं। जो मोक्षपरायण मुनि इन्द्रिय, मन और बुद्धि को वश में करके इच्छा, भय और क्रोध को दूर कर चुके हैं और जो चित्त से बाह्य विषयों को वहिष्कृत, दोनों नेत्रों को भौंहों के बीच में स्थापित तथा नाक के भीतर विचरनेवाले प्राणवायु और अपानवायु की वृत्ति को तुल्यभावापन्न कर चुके हैं, वे ही जीवन्मुक्त हैं। सभी लोग मुझे यज्ञ और तपस्या का भोग करनेवाला, सब प्राणियों
 २८ का महान् ईश्वर और सुहृद् समझकर शान्ति पाते हैं।

तीसवाँ अध्याय

आत्मसंयम योग

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! जो कर्मफल की इच्छा न रखकर कर्तव्य कर्म करता है, वही संन्यासी है और वही योगी है। केवल अग्निहोत्र और कर्मों का त्याग करनेवाला पुरुष कभी योगी या संन्यासी नहीं कहा जा सकता। पण्डित लोग कर्मफल-त्याग-रूप संन्यास को ही योग कहते हैं। इसलिए कर्मफल की इच्छा रखनेवाला पुरुष कभी योगी नहीं हो सकता। ज्ञानयोग के दर्जे पर चढ़ने की इच्छा रखनेवाले व्यक्ति के लिए उसका कारण या उपाय कर्मयोग ही है। इसी प्रकार ज्ञानयोग में आरूढ़ हो जाने पर सब कर्मों की निवृत्ति ही ज्ञान-परिपाक का कारण कही गई है। आसक्ति का मूल जो विषयभोग और उसका सङ्कल्प है, उसका त्याग करके जो मनुष्य इन्द्रिय-भोग्य विषयों में, या उनके साधनों में, आसक्त नहीं होता वह योगारूढ़ कहा जाता है। आत्मा ही आत्मा का बन्धु और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। इसलिए

आप ही आत्मा का उद्धार करना चाहिए; उसे अवसन्न करना ठीक नहीं। जिस आत्मा ने आत्मा को जय, अर्थान् सब इन्द्रियों को अपने वश में, कर लिया है वह आत्मा ही आत्मा का बन्धु है; और जिस आत्मा ने इन्द्रियों को वश में नहीं किया, वह आत्मा ही आत्मा का शत्रु के समान अपकार करता है। जाड़ा, गर्मी, सुख, दुःख, मान और अपमान उपस्थित होने पर, जित्तात्मा शान्तचित्त व्यक्ति का आत्मा ही सात्त्वान् आत्मभाव का अवलम्बन करता है। जिसका अन्तःकरण ज्ञान और विज्ञान से तृप्त हो चुका है, वह निर्विकार और जितेन्द्रिय है। जो लोहा, मिट्टी, पत्थर और सुवर्ण को समान समझता है, वैसा योगी ही योगारूढ़ कहाता है।

जो सुहृद्, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य, बन्धु, साधु और असाधु सभी व्यक्तियों का तुल्य समझता है, वह सबसे विशिष्ट अर्थान् श्रेष्ठ है। योगारूढ़ व्यक्ति निःसङ्ग, संयतचित्त और संयतदेह होकर, लगातार एकान्त में रहकर, आशा और परिग्रह को त्यागकर, चित्त को समाधिस्थ अर्थान् एकाग्र करे। वह न तो बहुत ऊँचे और न बहुत नीचे कुशासन पर मृगछाला बिछाकर और उसके ऊपर कपड़ा डालकर स्थिर आसन से बैठे। उसके ऊपर बैठकर चित्त की एकाग्रता के साथ, चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को संयत करके, चित्त की शुद्धि के लिए योग का अनुष्ठान करे। उस निर्भय, ब्रह्मचर्य में स्थित, प्रशान्तचित्त योगी का मन अपनी वृत्तियों से खिंच जाना चाहिए। उसकी देह का मध्यभाग, मस्तक और गर्दन सीधी तथा स्थिर रहनी चाहिए। वह दृष्टि को, इधर-उधर न चलाकर, नासिका के अग्रभाग में स्थित करे। इस प्रकार मुझमें मन लगाकर एकाग्रभाव से योगाभ्यास करनेवाला आसन पर बैठे। योगी पुरुष सदा इस प्रकार संयतचित्त होकर जब आत्मा को समाहित कर लेता है तब निर्वाण-प्राप्ति का साधन जो मेरा स्वरूप है, उसमें स्थित शान्ति को प्राप्त करता है। हे पाण्डव! बहुत भोजन करने-वाला, भूखा रहनेवाला, बहुत सोनेवाला या बहुत जागनेवाला आदमी इस योग के अभ्यास को नहीं कर सकता। जो नियमित रूप से भोजन करता, साता, चलता-फिरता, कार्य और चेष्टा करता तथा जागता है, वही इस संसारबन्धन को काटनेवाले योग का अभ्यास कर सकता है। जब बाहरी चिन्ता दूर होकर साधक का चित्त आत्मा में अच्छी तरह लग जाता है, तब वह सब कामों से निःस्पृह साधक योगी कहलाता है। चित्त की प्रक्रिया को जाननेवाले योग के ज्ञाता पुरुषों ने योगियों के चित्त के बारे में कहा है कि जैसे वायुरहित स्थान में दीपक की ज्योति निरचल रहती है, वैसे ही योगाभ्यास करनेवाले संयतचित्त योगी का चित्त एकाग्र रहता है। जिस अवस्था में योगी का अन्तःकरण किसी विषय की ओर न ढिगकर सर्वथा उपरत रहता है; जिस अवस्था में ज्ञानी पुरुष समाधि में ज्योतिःस्वरूप आत्मा की उपलब्धि करके अपने आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है; जिस अवस्था में योगी विषय और इन्द्रिय के परं तथा आत्मरूप बुद्धि के विषयीभूत नित्य सुख का अनुभव करता हुआ आत्मस्वरूप से विचलित नहीं होता और जिस

१०

२०

अवस्था में जाड़ा-गर्मी आदि दुःख अभिभूत नहीं कर सकते तथा जिस अवस्था में दुःख का लेश भी नहीं रहता, उस अवस्था का नाम योगावस्था है। सङ्कल्प-जनित इच्छाओं और सब काम्य वस्तुओं का त्याग करके, विषयदोषदर्शी अन्तःकरण के द्वारा सर्वत्र विचरनेवाली इन्द्रियों को संयत कर, अत्यन्त प्रयत्न के साथ, साधक शास्त्र और आचार्य के उपदेश से उत्पन्न निश्चय के बल से योगाभ्यास करे। स्थिर बुद्धि के द्वारा अन्तःकरण को आत्मसमाहित करके धीरे-धीरे विषयों से निवृत्त हो; अन्य किसी विषय का चिन्तन न करे। अन्तःकरण चञ्चल हो तो उसे, विषयों से हटाकर, आत्मा में समाहित करे। इसके द्वारा रजोगुण तिराहित, चित्त प्रशान्त और संसार-दोष विनष्ट होता तथा ब्रह्मभाव की प्राप्ति के कारण निरतिशय सुख की प्राप्ति होती है। इस तरह चित्त को वश में करने से योगी व्यक्ति पापशून्य होकर ब्रह्मसाक्षात्कार-स्वरूप अनुपम सुख का अनुभव करते हैं; और योग में एकाग्र चित्त से सर्वत्र समदर्शी होकर आत्मा को सर्व-भूत-मय और सब प्राणियों को आत्ममय देखते हैं। हे अर्जुन, मैं ही सबका आत्मा हूँ। जो व्यक्ति मुझको सबमें और सब वस्तुओं को मुझमें देखता है उसे मैं जैसे अदृश्य नहीं होता, वैसे ही वह भी मेरी दृष्टि के बाहर नहीं होता। जो अद्वैतवादी योगी पुरुष मुझे सब प्राणियों में व्याप्त समझकर मेरी उपासना करता है वह मुझमें लीन हो जाता है। जो मनुष्य सब प्राणियों के सुख-दुःख को अपने ही सुख-दुःख के समान देखता है, वही श्रेष्ठ योगी है।

अर्जुन ने कहा—हे पुरुषोत्तम! आपने साम्य बुद्धि से प्राप्त होनेवाले जिस योग का उपदेश किया है उसकी स्थिर स्थिति को मैं, चञ्चलता के मारे, नहीं देख सकता। अन्तःकरण स्वभाव से ही चञ्चल, देह और इन्द्रियों को लुब्ध करनेवाला, दुर्जय और दुर्मेघ है। जिस तरह हवा घड़े के भीतर रोककर रक्खी नहीं जा सकती वैसे ही मन का नियंत्रण करना भी बहुत कठिन है।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन, चञ्चल मन का दमन सहज में होनेवाला नहीं; किन्तु अभ्यास और वैराग्य के द्वारा वह संयत किया जा सकता है। जिसका चञ्चल चित्त हो उसका योगावस्था को प्राप्त होना कठिन है। जो पुरुष यत्न के साथ अन्तःकरण को संयत कर चुका है, वह पूर्वोक्त उपाय से योगलाभ करने में समर्थ होता है।

अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण! जो श्रद्धायुक्त तो है किन्तु यत्न नहीं करता और जिसका चित्त योग से भ्रष्ट हो गया है, वह योगसिद्धि के लाभ में असमर्थ होकर कैसी गति पाता है? कर्मफल की इच्छा और कर्म के अनुष्ठान से रहित व्यक्ति क्या छिन्न-भिन्न हुए मेघ की तरह विनष्ट हो जाता है? हे मधुसूदन, आपके सिवा और कोई मेरे संशय को दूर करने में समर्थ नहीं है। इसलिए आप ही मेरे सन्देह को मिटाइए।

भगवान् ने कहा—हे पार्थ, शुभ अनुष्ठान में लगे रहने से कभी दुर्गति नहीं होती। ४० इसलिए इस तरह के योगभ्रष्ट पुरुष इस लोक में पतित या परलोक में नरकगामी नहीं होते।

वे तो अश्वमेध यज्ञ आदि शुभ अनुष्ठान करनेवाले व्यक्तियों के उपभोग्य स्वर्गलोक में जाकर, वहाँ सैकड़ों वर्ष तक रहकर, अन्त को सदाचारी धनी पुरुषों के घर में या बुद्धिमान् योगियों के वंश में उत्पन्न होते हैं। योगियों के कुल में जन्म पाना अत्यन्त दुर्लभ है। हे भारत ! योग-भ्रष्ट व्यक्ति उसी कुल में जन्म लेकर—पूर्व जन्म की एष्टि बनी रहने के कारण—मुक्ति पाने के लिए पहले की अपेक्षा और भी अधिक यत्न करते हैं। वे यदि विघ्नवश वैसा करने की इच्छा नहीं करते तो पूर्व देहकृत अभ्यास या पूर्वसंस्कार उन्हें ब्रह्मनिष्ठ बनाते हैं। तब वे योग-जिज्ञासु होकर वेदाक्त कर्मफल से भी बढ़कर फल को प्राप्त होते हैं। मतलब यह कि निष्पाप योगी बड़े यत्न से इसी तरह कई जन्मों में सिद्धि प्राप्त कर अन्त को श्रेष्ठ गति (मुक्ति) पाता है। हे अर्जुन ! मेरे मत से योगी पुरुष तपस्वी से भी श्रेष्ठ है, ज्ञानी से भी श्रेष्ठ है और कर्म करने-वालों से भी श्रेष्ठ है। इसलिए तुम भी योगी बने। जो श्रद्धा-सम्पन्न होकर मुझमें हृदय लगाकर मुझे भजता है, वह सब प्रकार के योगियों से श्रेष्ठ है।

४७

इकतीसवाँ अध्याय

विज्ञान योग का वर्णन

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! तुम मुझसे लौ लगाकर और शरणागत होकर, योगाभ्यासपूर्वक, जिस उपाय से मुझे अच्छी तरह जान सकोगे सो मैं तुमसे कहता हूँ—सुनो। मैं तुमसे जो विज्ञानयुक्त ज्ञान कहता हूँ, यह जान लेने से, तुम्हारे लिए और कुछ जानने योग्य नहीं रह जायगा। हजारों में कोई एक पुरुष सिद्धि के लिए यत्न करता है और हजारों यत्न करने-वालों में कोई एक आदमी मेरे यथार्थ रूप को जान पाता है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार, इन आठ रूपों में मेरी प्रकृति बँटी हुई है। यह प्रकृति निकृष्ट है। इसके सिवा जीवस्वरूपिणी और एक उत्कृष्ट प्रकृति है। उसी के द्वारा इस विश्व का सञ्चालन होता है। ये दोनों ही प्रकृतियाँ जड़-चेतन और सम्पूर्ण पदार्थों का कारण हैं। इनमें से पहले की अष्टरूप प्रकृति देहरूप में परिणत हुआ करती है। अन्य जीवस्वरूपिणी प्रकृति मेरे अंश से उत्पन्न और भोक्तरूप से देह में प्रविष्ट होकर स्थावर-जङ्गममय भूत-परम्परा को धारण करती है। हे अर्जुन ! ये दोनों ही प्रकृतियाँ मेरा कार्य हैं, अतएव मैं ही सम्पूर्ण विश्व का चरम कारण और संहारक हूँ। मुझसे बढ़कर श्रेष्ठ कारण और कुछ नहीं है। धागे में गुड़ी हुई मणियों की तरह जगत् मुझमें ग्रथित हो रहा है। हे पाण्डव ! मैं जल का गुण रस हूँ, चन्द्रमा और सूर्य की प्रभा हूँ। वेद में प्रणव (ॐकार) मैं हूँ। आकाश में शब्द मैं हूँ। पुरुष में पौरुष मैं हूँ। पृथ्वी में विकार-वर्जित गन्ध मैं हूँ। अग्नि में तेज मैं हूँ। मैं सब

- प्राणियों का जीवन और अक्षय-जीवस्वरूप हैं। हे भारत! मैं तपस्वियों का तप, बुद्धिमानों की
- १० बुद्धि, तेजस्वियों का तेज, बलवानों का काम-राग-वर्जित बल और प्राणियों का धर्मानुगत काम मैं हूँ। सात्विक, राजसिक या तामसिक, सभी भाव मुझसे उत्पन्न हुए हैं। मेरे ही अधीन सब प्राणी, इन त्रिविध गुणमय भावों के प्रभाव से विमोहित होने के कारण, मुझे जान नहीं पाते। मैं तो इन त्रिविध गुणों से परे हूँ, उनका नियन्ता हूँ और उन गुणों से होनेवाले विकार के संसर्ग से रहित हूँ। मेरी यह मायाशक्ति लोकगति से गुणशालिनी और अत्यन्त दुरवगाह (जटिल) है। मेरे अनुगत भक्त के सिवा और कोई इसका निर्णय नहीं कर सकता—इसकी यथार्थ स्थिति को जान नहीं सकता। जो लोग पापी और विवेकशून्य हैं, जिनका शास्त्र और गुरु के उपदेश से उत्पन्न ज्ञान माया के प्रभाव से निरस्त हो गया है, और इसी कारण जो लोग दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध और निर्दयता आदि आसुरी भावों के वशीभूत हो रहते हैं, वे कभी मेरी उपासना नहीं करते। आर्त, आत्मज्ञान का इच्छुक, इस लोक और परलोक के भोगों के साधन-स्वरूप अर्थलाभ के लिए समुत्सुक और आत्मज्ञानी, इन चारों ने पूर्वजन्म में पुण्य किया होता है तो ये मेरी उपासना करते हैं। इनमें से अत्यन्त मात्रा में भक्ति रखनेवाला और नित्य-योग-सम्पन्न व्यक्ति ही श्रेष्ठ है। ज्ञानी पुरुष जैसे मुझे प्रिय समझते हैं वैसे ही वे भी मुझे प्रिय होते हैं। ऊपर कहे गये चारों प्रकार के व्यक्ति उदार होते हैं और मोक्ष पाते हैं, किन्तु ज्ञानी पुरुष को मैं अपने आत्मा के ही तुल्य मानता हूँ। वह अनन्य भाव से मुझमें ही चित्त लगाकर, मुझे ही सर्वश्रेष्ठ गति मानकर, आत्मयुक्त भाव से मेरा ही आश्रय लेता है। ज्ञानी व्यक्ति बहुत जन्मों के बाद 'यह सब चराचर जगत् वासुदेव ही है' ऐसा निश्चय करके मुझे प्राप्त होता है; परन्तु वैसा महात्मा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है। जो लोग पुत्र, कीर्ति या शत्रु-जय आदि की वासना के प्रभाव से विवेक-विहीन और अपनी प्रकृति के वशीभूत होकर, उपासना आदि
- २० नियमों से, मुझे छोड़कर अन्य देवताओं की उपासना करते हैं, उनमें से जो भक्त जिस देवता के रूप में मेरी पूजा करता है उसकी उस-उस देवता के सम्बन्ध की श्रद्धा को मैं ही, अन्तर्यामी रहकर, दृढ़ बनाता हूँ। वे उसी श्रद्धा के साथ उन-उन देवताओं की आराधना करके मेरे ही दिये हुए काम्य विषयों का उपभोग करते हैं। किन्तु उन अल्पबुद्धिवाले पुरुषों को मिले हुए फल, भोग के उपरान्त, नष्ट हो जाते हैं। देवयाजकगण [नश्वर] देवलोक को प्राप्त होते हैं; किन्तु मेरे भक्त मुझी को प्राप्त होते हैं। मैं अव्यक्त हूँ और प्रपञ्च से परे हूँ। किन्तु अनभिज्ञ पुरुष मेरे नित्य और शुद्ध स्वरूप को न जानने के कारण मेरे मनुष्य, मीन, कच्छप आदि रूपों की कल्पना करते हैं। मैं योगमाया के प्रभाव से सदा आच्छन्न हूँ; कभी सब लोगों के निकट प्रकाशमान नहीं होता। इसी कारण लोग मायामूढ़ होकर मुझे नहीं जान पाते। हे अर्जुन! मुझे कोई नहीं जानता; परन्तु मैं सब भूत, भविष्य, वर्तमान चराचर प्राणियों के विषय

में पूर्ण ज्ञान रखता हूँ। सब प्राणी संसार में जन्म पाकर इच्छा-द्वेष और शीत-उष्ण आदि द्वन्द्व धर्मों से उत्पन्न मोह में अभिभूत होते हैं। जिन पुण्यात्मा पुरुषों के पाप का अन्त हो चुका है, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों से उत्पन्न मोह मिट चुका है, वे दृढ़व्रत महात्मा मुझे भजते हैं। जो लोग मेरा आश्रय लेकर अजर-अमर होने के लिए यत्न करते हैं वे सम्पूर्ण कर्मयोग और अखण्ड ब्रह्म को जानते हैं। जो लोग अधिदैव, अधिभूत और अधियज्ञ सहित मुझको जानते हैं, वे योगी मृत्यु-समय में भी मुझे नहीं भूलते।

३०

वत्सीसवाँ अध्याय

महापुरुष योग का वर्णन

अर्जुन ने पूछा—हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म, अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञ क्या है ? हे मधुसूदन, इस शरीर में वह कौन अधियज्ञ किम तरह जाना जाता है ? जिनात्मा लोग मृत्यु समय में किस तरह आपको जान लेते हैं ?

श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा—हे अर्जुन ! जो परम और अच्य है, वही ब्रह्म है। उस परब्रह्म के अंशस्वरूप जीव को, जो इस शरीर में रहता है, अध्यात्म कहते हैं। जिसके द्वारा प्राणियों की उत्पत्ति और वृद्धि होती है और जो देवताओं के उद्देश से विहित हुआ करता है उस द्रव्य के उत्सर्ग को कर्म कहते हैं। प्राणियों के अधिष्ठित इस नश्वर शरीर आदि को अधिभूत कहते हैं। जो प्राणियों की इन्द्रियों के प्रवर्तक, देवताओं के अधीश्वर और हिरण्यगर्भ नाम से विख्यात हैं, वही अधिदैव हैं। मैं ही अधियज्ञ हूँ; क्योंकि मैं सब यज्ञों के अधिष्ठाता और फलदाता के रूप से इस देह में विराजमान हूँ। मैं अन्तर्यामी और परमेश्वर हूँ। लोग अन्त-समय में मुझे स्मरण करते हुए शरीर त्यागकर उत्तरायण मार्ग से गमन करने पर निःसन्देह मेरे स्वरूप को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं।

हे पार्थ ! अन्तकाल में पूर्व-वासना ही स्मरण का कारण होती है, और विवश हो पड़ने पर स्मरण की आशा नहीं रहती। इसी कारण प्राणी अन्त-समय में जिस वस्तु को याद करता हुआ शरीर त्याग करता है उसी वस्तु के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। इसलिए तुम सब समय मेरा ही स्मरण करो। तुम इस प्रकार अपने चित्त को शुद्ध करके युद्ध करो। इस तरह आत्मा, मन और बुद्धि को मुझमें अर्पित करके निःसन्देह मुझे ही प्राप्त होओगे। हे पार्थ ! जो मनुष्य अभ्यास-योगयुक्त और अनन्यगामी चित्त से प्रकाशमय परम पुरुष का चिन्तन करता है, वह उन्हीं में लीन होता है। वह परम पुरुष सर्वज्ञ, सनातन, सबका नियामक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म-तम, सबका विधाता, बुद्धि और मन से अगोचर, सूर्य के समान प्रकाश-पूर्ण और अज्ञान-रूप

मोहान्धकार से परे है। जो पुरुष अन्त-समय में सावधान और भक्तियुक्त होकर, योग-बल से प्राणवायु को दोनों भौहों के बीच स्थापित करके, विक्षेप-विहीन हृदय में ध्यान करता है वह

१० उन्हीं परम पुरुष परमेश्वर को प्राप्त करता है।

हे पार्थ ! वेदज्ञ लोगों के मत से जो अक्षय ब्रह्म है, वीतराग यति लोग जिसमें अपने चित्त को लगाते हैं और जिसे जानने के लिए लोग गुरुकुल में ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हैं, उस परब्रह्म के पद को पाने का उपाय मैं तुम्हारे आगे संक्षेप में कहता हूँ—सुनो।

जो पुरुष चक्षु आदि सब इन्द्रियों के द्वारों को रोक करके अन्तःकरण को हृदय में समाहित करता है और प्राणवायु को दोनों भौहों के बीच स्थापित करके योगधारण-पूर्वक, एकाक्षर-सम्पन्न प्रणव का उच्चारण और प्रणव का प्रतिपाद्य जो मैं हूँ उसका स्मरण करता हुआ, शरीर त्यागता है वह उत्तम गति पाता है। जो प्रतिदिन लगातार अनन्य भाव से हृदय में मेरा स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगी के लिए मैं सुलभ हूँ। वह महापुरुष मुझे पा जाने पर, मोक्षलाभ के उपरान्त, फिर दुःखपूर्ण नश्वर जन्म नहीं प्राप्त करता। हे पार्थ, ब्रह्म-लोक पर्यन्त सब लोक ऐसे हैं कि वहाँ से आकर जीव को फिर जन्म लेना पड़ता है; किन्तु मुझे प्राप्त होने पर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।

मनुष्यलोक के एक वर्ष में देवलोक का एक दिन-रात होता है। देवलोक के दिन-रात के परिमाण से बारह हजार वर्ष बीतने पर एक चौजुग होती है। दो हजार चौजुग बीतने पर ब्रह्मा का एक दिन-रात होता है। ऐसे ही दिन-रातों के एक सौ वर्ष ब्रह्मा की परमायु है। दिन-रात्रि के तत्त्व के ज्ञाता पण्डितों ने इस तरह ब्रह्मा के दिन और रात का परिमाण कहा है। ब्रह्मा का दिन जब होता है तब चराचर सब प्राणी कारणरूप 'अव्यक्त' से प्रकट होते हैं, और रात्रि के समय उसी कारणात्मा में लीन हो जाते हैं। उसके बाद फिर दिन आने पर, प्राक्तन कर्म के वशीभूत होकर, जन्म-ग्रहण करते हैं। उस चराचर के कारणभूत 'अव्यक्त' की अपेक्षा भी अव्यक्त जो एक और अतीन्द्रिय चिरन्तन भाव है वह, समग्र भूतल वितष्ट होने पर

२० भी, नष्ट नहीं होता। पण्डित लोग उसी जन्म-मरण-रहित अव्यक्त को परम पुरुषार्थ और गम्य-स्वरूप बताते हैं। वह परमधर्म ही मेरा स्वरूप है। उसके प्राप्त होने पर फिर जन्म नहीं होता। हे पार्थ ! जो कोई सब प्राणियों के अधिष्ठान रूप से इस चराचर विश्व में व्याप्त है, वह परम पुरुष मैं ही हूँ। अनन्य एकान्त भक्ति के ही द्वारा मैं पाया जा सकता हूँ। अब उस काल का वर्णन सुनो जिसमें गमन करने से योगी लोग आवृत्ति और अनावृत्ति को प्राप्त होते हैं। जिस स्थान में दिन शुक्लवर्ण और अग्नि की तरह प्रभायुक्त होता है और छः महीने उत्तरायण होता है, वहाँ जाने से ब्रह्मज्ञ लोग ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। जिस स्थान में रात्रि धूमवर्ण और कृष्णवर्ण तथा छः महीने दक्षिणायन होता है, वहाँ गमन करने से कर्मयोगी पुरुष

चन्द्रज्याति स्वर्ग को प्राप्त होकर फिर लौटते हैं। इस तरह जगत् की, शुक और कृष्ण, दो सनातन गतियाँ निरूपित हुई हैं। एक में जाने से अनावृत्ति और दूसरी में जाने से पुनरावृत्ति होती है। हे पार्थ, इन दोनों गतियों को जाननेवाला योगी कभी मोह को प्राप्त नहीं होता। इसलिए तुम सदा योगयुक्त रहो। अधिक क्या, योगी पुरुष इस ज्ञान के प्रभाव से वेद, यज्ञ, तप और दान के निर्दिष्ट सब पुण्यफलों को अतिक्रम करके आदिम परम पद को प्राप्त होता है।

२८

तृतीयां अध्याय

राजगृहयोग का वर्णन

भगवान् ने कहा—हे पार्थ, तुममें असूया नहीं है; इसलिए मैं तुमसे विज्ञान-समन्वित गुह्यतम ज्ञान कहता हूँ, सुनो। इसे जान लेंगे से सब अमङ्गलों से बच जाओगे। यह सब विद्याओं से श्रेष्ठ है; यह गुह्य से भी गुह्यतम, परम पवित्र, धर्मसङ्गत और अविनाशी है। हे शत्रु-दमन! जो लोग इस धर्म में अश्रद्धा करते हैं वे, मुझे प्राप्त न होकर, मृत्यु और संसार के मार्ग में भटकते हैं। मैं आत्मा के रूप से सारे विश्व में व्याप्त हूँ; सब प्राणी मुझमें ही स्थित हैं; किन्तु कोई भी मेरा अधिष्ठान नहीं है। हे पार्थ, मेरी 'ऐशी' शक्ति देखो। मैं अलिप्त हूँ, इसलिए कोई भी प्राणी मुझमें स्थित नहीं है। यद्यपि मैं सबको धारण किये हूँ, किन्तु किसी में अधिष्ठित नहीं हूँ। मेरे आत्मा ने ही सब प्राणियों की सृष्टि की है। वायु जैसे सर्वत्र जानेवाला होने पर भी नियत आकाश में स्थित है, वैसे ही सब प्राणियों को मुझमें स्थित समझो। हे अर्जुन! प्रलयकाल में सब प्राणी मेरी अधिष्ठित प्रकृति में लीन होते हैं, और कल्प के आरम्भ में मैं फिर उनकी सृष्टि करता हूँ। इसी तरह मैं अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर इन प्राणियों की बारम्बार सृष्टि करता हूँ। प्रकृति के वश में होने के कारण ये अवश हैं। परन्तु मैं सब कर्मों से अलिप्त रहकर उदासीन भाव से स्थित हूँ; इसी से मैं कभी सृष्टि आदि कार्यों का विषय नहीं बनता। मैं अविश्रुत ज्ञानस्वरूप हूँ। मेरे अधिष्ठान के प्रभाव से प्रकृति सारे जगत् को उत्पन्न करती है और यह संसार बार-बार उत्पन्न होता है। जिनकी आशा, कर्म और ज्ञान विफल है, जिनके अन्तःकरण में विवेक का लेश भी नहीं है और जो लोग राक्षसी आसुरी आदि मोहमयी प्रकृति का आश्रय लिये हुए हैं—उसके वशीभूत हैं—वही मेरे सर्वभूत-महेश्वररूप परम तत्त्व को अवगत न होकर, मुझको मनुष्य-देहधारी जानकर, मेरी अवज्ञा करते हैं। किन्तु महात्मागण दैवी प्रकृति का आश्रय लेकर, मुझे सब प्राणियों के आदि और अव्ययरूप से जानकर, अनन्य हृदय से मेरी आराधना करते हैं। वे सदा दृढ़व्रत और संयत होकर मेरे नामों

१०

का कीर्त्तन, निरन्तर भक्ति के साथ मुझे नमस्कार और मेरी उपासना करते हैं। और, कोई तत्त्वज्ञानरूप यज्ञ, कोई अभेद-भावना, कोई पृथक्-कल्पना आदि के द्वारा, और कोई मुझे सर्वरूप समझकर रुद्र आदि नाना रूपों से मेरी आराधना करते हैं। हे पार्थ ! यज्ञ, स्वधा, ओषधि, मन्त्र, आज्य, अग्नि और हवन मेरे ही रूप हैं। मैं ही इस जगत् का पिता, माता, विधाता और पितामह हूँ। मैं वेद्य, पवित्र, ओंकार, ऋक्, साम और यजुः हूँ। मैं गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण, सुहृद्, प्रभाव, प्रलय, निधान, लयस्थान और अक्षय बीज हूँ। मैं वर्षा करता हूँ और तपता हूँ; मैं जल को पृथ्वी से खींचता हूँ और पृथ्वी पर बरसाता हूँ। अमृत, मृत्यु, सत् और असत् मैं ही हूँ। त्रिवेद-विहित कर्मों का अनुष्ठान करनेवाले सेमपायी विगत-पाप महात्मागण यज्ञानुष्ठानपूर्वक मेरी उपासना करके स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा करते हैं। उसके बाद

२० वे परम पवित्र स्वर्गलोक में पहुँचकर सम्पूर्ण उत्कृष्ट देवभोगों का उपभोग करते हैं। स्वर्गलोक के भोग भोगने से पुण्य क्षीण होने पर वे फिर मनुष्यलोक में लौट आते हैं। वे इस प्रकार भोगाभिलाषी और वेदत्रयविहित कर्मकाण्ड के अनुष्ठान में तत्पर होकर बारम्बार आवागमन के फेर में पड़े रहते हैं। जो लोग अनन्य हृदय से मेरा चिन्तन और उपासना करते हैं, उन सब नित्य-भक्तियुक्त व्यक्तियों के योग-क्षेम को मैं वहन करता हूँ। जो लोग भक्ति और श्रद्धा के साथ पवित्र हृदय से अन्य देवताओं की पूजा करते हैं वे भी अविधिपूर्वक मेरी ही उपासना करते हैं। मैं ही सब यज्ञों का भोक्ता और प्रभु हूँ; किन्तु वे मेरे तत्त्व को अवगत न होने के कारण स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ करते हैं। देवव्रत में अनुरक्त व्यक्ति देवगण को, पितृव्रतनिष्ठ व्यक्ति पितरों को, भूतों की आराधना में निरत व्यक्ति भूतगण को और मेरे उपासक मुझे प्राप्त होते हैं। जो पवित्रात्मा पुरुष मुझे पत्र, पुष्प, फल, जल आदि कुछ भी अर्पण करता है उसकी वह भक्ति-पूर्वक दी हुई सामग्री मैं ग्रहण करता हूँ। हे पार्थ ! तुम जो कुछ करते हो, जो खाते-पीते हो, जो हवन करते हो, जो देते हो और जो तप करते हो वह सब मुझे अर्पण कर दो। ऐसा करने से कर्मनिबन्धन शुभाशुभ फल से मुक्त होकर, संन्यासयोगयुक्त हृदय से मुक्तिलाभपूर्वक, तुम अन्त को मुझे प्राप्त होओगे। मैं सब प्राणियों में समान भाव से स्थित हूँ। कोई मेरा मित्र या शत्रु नहीं है। जो लोग भक्तिपूर्वक मुझे भजते हैं वे मुझमें ही अधिष्ठित या लीन होते हैं और मैं भी उन भक्तों के हृदय में रहता हूँ। अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति भी अन्य देवताओं को छोड़कर मेरी उपासना करने से साधु गिना जा सकता है; क्योंकि उसका अश्वयसाय बहुत अच्छा है, और वह शीघ्र हो धार्मिक होकर निरंतर शान्ति सुख भोग करता है। हे पार्थ, मेरा भक्त कभी नष्ट या भ्रष्ट नहीं होता। स्त्री, शूद्र, वैश्य अथवा और पाप-योनित पुरुष भी मेरी शरण में आने से, परम गति को प्राप्त होते हैं। अतएव पवित्र पण्डित ब्राह्मणों और भक्तिपरायण राज-र्वियों के मेरे शरणागत होने पर उनकी परम गति के बारे में तो कुछ कहना ही नहीं है। हे

३०

अर्जुन, तुम इस अनित्य और असुखमय लोक में मुझे ही भजो। अनन्य-हृदय और अनन्य-भक्त होकर मुझे ही प्रणाम करो। मुझमें इस प्रकार मन लगाने से, मेरी पूजा करने से, अन्त में तुम मुझको प्राप्त होओगे।

३४

चौंतीसवाँ अध्याय

विभूतियोग का वर्णन

कृष्णचन्द्र कहते हैं—हे महाबाहो ! तुम मुझ पर परम प्रीति रखते हो, इस कारण तुम्हारे हित की इच्छा से जो मैं फिर श्रेष्ठ उपदेश करता हूँ उसे मन लगाकर सुनो। देवता या ऋषि-गण, कोई भी मेरे प्रभाव को नहीं जानते। मैं ही सब देवताओं और महर्षियों का आदि हूँ। जो मुझे अनादि, अज और सब लोकों का महान् ईश्वर जानते हैं वे इस जीवलोक में मोहशून्य और सब पापों से मुक्त हो जाते हैं। बुद्धि, ज्ञान, असंमोह, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, भव, भाव, भय, अभय, अहिंसा, समता, तुष्टि, तप, दान, यश, अयश आदि सब भिन्न-भिन्न भाव प्राणियों में मुझसे ही होते हैं। पूर्व समय के सनक आदि चारों ऋषि, भृगु आदि सातों महर्षि और सब मनु मेरे ही प्रभाव से सम्पन्न और मेरे ही मन से उत्पन्न हुए हैं। सब लोग उन्हीं की सन्तान हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जो कोई मेरे योग और मेरी विभूतियों को जानता है वह स्थिर ज्ञान का अधिकारी होकर अचल योग से युक्त होता है। मैं इस जगत् की उत्पत्ति का कारण हूँ, मुझसे ही मनुष्यों की बुद्धि आदि की स्फूर्ति होती है। ज्ञानी पण्डित ऐसा ही मानकर मेरी आराधना करते हैं। वे मन और प्राण को मुझमें ही स्थापित करके, एक दूसरे को मेरा ज्ञान कराते हैं। वे मेरा वर्णन करके सन्तुष्ट होते हैं, शान्ति पाते हैं और मुझमें ही रमते हैं। वे निरन्तर भक्तियुक्त होकर प्रीतिपूर्वक मेरी उपासना करते हैं; मैं भी उन्हें वह बुद्धि-योग देता हूँ, जिसके द्वारा वे मुझे प्राप्त होते हैं। उन पर कृपा करने के लिए मैं उनके हृदय में स्थित होकर समुज्ज्वल ज्ञान-दीपक के द्वारा अज्ञान-जनित अन्धकार को दूर करता हूँ।

अर्जुन ने कहा—हे केशव ! देवर्षि नारद, असित, देवल, व्यास और अन्यान्य ऋषिगण आपको परब्रह्म, परमधाम, परम पवित्र, शाश्वत पुरुष, दिव्य, आदिदेव, अजन्मा और असीम-प्रतापशाली कहते हैं; इस समय आप भी अपने को वैसा ही बता रहे हैं। हे वासुदेव ! आप जो कहते हैं, सब सच है। देवता या दानव कोई भी आपको स्पष्ट रूप से नहीं जानते। आप स्वयं अपने को जानते हैं। हे पुरुषोत्तम, हे भूतभावन, हे भूतेश, हे देव-देव, हे जगदीश्वर ! अब आप अपनी उन विभूतियों का विस्तार से वर्णन कीजिए जिनसे आपने सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रक्खा है। हे विभो, आप परम योगी हैं। मैं किस तरह सदा ध्यान-चिन्तन करके आपको जान सकूँगा ? आपके किस-किस भाव का ध्यान करूँगा ? अब आप फिर

विस्तार के साथ अपने योग और विभूतियों का वर्णन कीजिए । आपको अमृततुल्य वचन सुनकर मेरे कान किसी तरह ठुप्ट ही नहीं होते ।

- भगवान् ने कहा—हे कुरुकुलश्रेष्ठ, मेरी विभूतियों की तो संख्या ही नहीं है, इसलिए मैं अपनी प्रधान-प्रधान दिव्य विभूतियों का वर्णन करता हूँ । हे पार्थ, मैं सब प्राणियों में अन्त-
 २० र्यामी आत्मा हूँ । मैं ही सबका आदि, मध्य और अन्त हूँ । मैं आदित्यों में विष्णु, ज्योति-
 र्मय पदार्थों में अंशुमाली सूर्य, मरुद्गण मे मरीचि, नक्षत्रों में चन्द्रमा, वेदों में सामवेद, देवताओं में इन्द्र, इन्द्रियों में मन, भूतगण में चेतना, रुद्रों में शङ्कर, यक्षों और राक्षसों में कुबेर, वसुओं में अग्नि, पर्वतों में सुमेरु, पुरोहितों में बृहस्पति, सेनापतियों में स्कन्द, जलाशयों में सागर, महर्षियों में भृगु, वाक्यों में प्रणव, यज्ञों में जपयज्ञ, स्थावरों में हिमालय, वृक्षों में पीपल, देव-
 ३० र्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ, सिद्धों में कपिल, षोडशों में समुद्र के मथने से उत्पन्न उच्चैः-
 श्रवा और हाथियों में ऐरावत हूँ । हे अर्जुन ! मैं मनुष्यों में राजा, आयुधों में वज्र, गड्ढों में कामधेनु और उत्पत्ति के कारणों में कामदेव हूँ । मैं विपैले साँपों में वासुकि, विपहीन नागों में शेष, जलचरों में वरुण, पितृगण में अर्यमा, नियन्ता लोगों में यमराज, दैत्यों में प्रह्लाद, गणना करनेवालों में काल, पशुओं में सिंह, पक्षियों में गरुड़, वेगशालियों में पवन, शस्त्रधारियों में राम, मत्स्यां में मगर और नदियों में गङ्गा हूँ । हे अर्जुन ! सर्गों में आदि, मध्य और अन्त मैं हूँ—अर्थात् सृष्टि, स्थिति, प्रलय मैं हूँ । विद्याओं में आत्मविद्या, वाद करनेवालों में वाद, अक्षरों में अक्षर, समाप्तां में द्वन्द्व, अक्षरों में काल, विधाताओं में सर्वतांमुख विधाता, संहार करनेवालों में मृत्यु और अभ्युदयशीलों में अभ्युदय मैं हूँ । नारियों में कीर्ति, श्री, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा मैं हूँ । सामवेद में बृहत्साम, छन्दों में गायत्री, महीनों में अग्रहन और ऋतुओं में वसन्त मैं हूँ । छलनाओं में शूत, तेजस्वियों में तेज, जयशीलों में जय, उद्योगियों में उद्यम और सत्त्वशालियों में सत्त्व मैं हूँ । वृष्णिवंशियों में वासुदेव, पाण्डवों में तुम, मुनियों में व्यास और कवियों में शुक्र मैं हूँ । दण्डधारियों में दण्ड, जय की इच्छा रखनेवालों में नीति, गुह्य विषयों में गोपन का कारण सौन और ज्ञानियों में ज्ञान मैं हूँ । हे अर्जुन, सब प्राणियों का और जा कुछ बीज है सो मैं हूँ । चराचर जगत् में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मेरे बिना हो । इसी कारण मेरी दिव्य विभूतियों की संख्या नहीं है ! हे पार्थ, यह संक्षेप से मैंने अपनी
 ४० दिव्य विभूतियों का वर्णन कर दिया । मतलब यह कि संसार में जो कुछ विभूतियुक्त, श्री-
 सम्पन्न या वृद्धिशाली वस्तु है उसे मेरे तेज के अंश से उत्पन्न समझो । हे पार्थ, मेरी विभू-
 तियों को अलग करके जानने की आवश्यकता नहीं है । बहुत कहने की ज़रूरत नहीं—मैं
 ४२ अपने एक अंश से इस जगत् को व्याप्त और धारण किये हुए स्थित हूँ ।

पैंतीसवाँ अध्याय

विश्वरूप का दर्शन

अर्जुन ने कहा—हे वासुदेव ! आपने मुझ पर कृपा होने के कारण जो परमगुह्य अध्यात्मविषय का वर्णन किया, उसके द्वारा मेरे हृदय से मोह का अंधेरा दूर हो गया। हे कमलनयन ! मैंने आपके श्रीमुख से प्राणियों की उत्पत्ति और लय का वर्णन तथा आपका अक्षय अनन्त माहात्म्य सुना। हे पुरुषोत्तम ! आपने जो अपने ईश्वररूप का वर्णन किया, उस विश्वव्यापी विराट् रूप को देखने की मुझे बड़ी ही इच्छा है। जो आप मुझे वह रूप देखने का अधिकारी समझे तो वह रूप दिखला दें।

भगवान् ने कहा—हे पार्थ ! मेरे अनेक प्रकार के, अनेक वर्ण और आकारवाले, सैकड़ों-हज़ारों दिव्य रूप देखो। हे भारत ! मेरे इस रूप में बहुत से अदृष्टपूर्व आश्चर्य और आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण, अश्विनीकुमार तथा और जो कुछ देखना चाहते हो सो सब देखो। मेरे शरीर में चराचर जगत् एकत्र देखोगे; किन्तु तुम इसी दृष्टि से मेरा वह विश्वरूप नहीं देख सकते। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ; तुम मेरी विभूति को देखो।

सञ्जय धृतराष्ट्र से कहते हैं—महाराज, अब महायोगेश्वर हरि ने अपना वह ईश्वररूप दिखाया। अर्जुन ने देखा कि अनेक मुख, अनेक नयन, अनेक दिव्य आभूषण, अनेक उद्यत दिव्य शस्त्र, दिव्य माला और वस्त्र उस रूप की शोभा बढ़ा रहे हैं। वह अनेक अद्भुत दृश्यों से शोभित, १० दिव्य अनुलेपन आदि से मण्डित, सर्वतांमुख, अनन्त, परम प्रकाशमान रूप देखकर अर्जुन अवाक् हो गये। यदि आकाश में एक साथ सहस्र सूर्यों का उदय हो तो शायद महात्मा कृष्ण के उस तेजोमय रूप की प्रभा का अनुभव किया जा सके। अर्जुन ने श्रीकृष्ण के उस विश्वरूप में मनुष्य, देवता, पितर आदि को अनेक स्थलों में विभक्त और सब जगत् को एकत्र देखा।

तब उन्होंने अत्यन्त विस्मित होकर, सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर कृष्णचन्द्र को प्रणाम किया। अर्जुन के रोंगटे खड़े हो गये। उन्होंने कहा—हे विश्वरूप ! मैं आपके शरीर में सब देवताओं, जरायुज-अण्डज-स्वेदज-उद्भिज सब प्राणियों, कमलासन पर स्थित भगवान् ब्रह्मा, दिव्य ऋषियों और नागों आदि को देख रहा हूँ। भगवन् ! अनेक बाहुओं, अनेक उदरों, अनेक मुखों और अनेक नेत्रोंवाले आपके अनन्त रूप को तो मैं देख रहा हूँ; परन्तु हे विश्वेश्वर, हे विश्वरूप ! आपका आदि, मध्य और अन्त कुछ नहीं देख पड़ता। मैं देख रहा हूँ कि आप किरीट, गदा और चक्र धारण किये, तेजोराशि, सूर्य और अग्नि के सदृश तेजस्वी, परम दीप्तिमान्, दुर्निरीक्ष्य और अप्रमेय हैं। मोक्ष की इच्छा रखनेवालों के लिए आप अक्षय, परब्रह्म, ज्ञातव्य विषय हैं। आप इस विश्व के परम निदान या अधिष्ठान हैं। आप अव्यय, नित्य धर्म के रक्षक और

सनातन पुरुष हैं। प्रदीप्त अग्नि आपके मुखमण्डल में विराजमान है। आपका तेज समग्र विश्व को तपा रहा है। चन्द्र और सूर्य आपके नेत्र हैं। आपका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। आपका वीर्य और भुजाएँ अनन्त हैं। आप अकेले ही सब दिशाओं को, पृथ्वी-मण्डल और अन्तरिक्ष को व्याप्त किये हुए हैं। हे महात्मा, आपके इस उग्र और अद्भुत रूप को देखकर सब लोग अत्यन्त भयभीत और उद्भिन्न हो रहे हैं। सब देवता आपके शरणागत होकर “त्राहि त्राहि” कर रहे हैं। कोई-कोई डरकर, हाथ जोड़कर, आपसे रक्षा के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धगण “स्वस्ति” कहकर आपकी स्तुति कर रहे हैं। रुद्र, आदित्य, वसु, साध्य, मरुद्गण, पितर, गन्धर्व, यक्ष, असुर, विश्वेदेवा, सिद्धगण और अश्विनीकुमार आदि देवता विस्मय के साथ आपके रूप को देख रहे हैं। हे महाबाहो ! आपके अनेक मुखों, अनेक बाँहों, अनेक ऊरुओं, अनेक नेत्रों, अनेक चरणों, अनेक उदरों और अनेक दंष्ट्राओं आदि से युक्त इस भयङ्कर रूप को देखकर तीनों लोकों सहित मैं अत्यन्त व्यथित हो रहा हूँ। मैं आपको आकाशस्पर्श, दीप्तिशील, विविधवर्णयुक्त, विशाल लोचन, मुँह फैलाये देखकर किसी तरह धैर्य और शान्ति धारण करने के लिए समर्थ नहीं होता। हे जगदीश्वर, कालाग्नि-सदृश भयङ्कर दन्तावली से परिपूर्ण आपके इस मुखमण्डल को देखकर मैं बेचैन हो रहा हूँ। मुझको दिग्भ्रम सा हो रहा है। हे देवेश, हे जगन्नाथ, हे विष्णु ! आप प्रसन्न हों।

हे देवदेव ! सब राजाओं सहित कर्ण, जयद्रथ, दुर्योधन, भीष्म और द्रोण आदि धृतराष्ट्र-पुत्रों के पक्षवाले योद्धाओं के साथ शिखण्डी, धृष्टद्युम्न आदि सब हमारे पक्ष के योद्धा शीघ्रता के साथ आपके दंष्ट्राओं से कराल मुखों के भीतर चले जा रहे हैं। उनमें किसी-किसी का मस्तक चूर्ण हो गया है, और वे आपके दाँतों की मन्धि में चिपके हुए देख पड़ते हैं। जैसे सब नदियों का प्रवाह समुद्र में जाता है, वैसे ही सब नर-वीर आपके समुज्ज्वल मुखमण्डल में अपने आप दौड़-दौड़कर प्रवेश कर रहे हैं। पतङ्गे जैसे जान-बूझकर प्रबल वेग से प्रज्वलित आग के भीतर जा गिरते हैं, वैसे ही ये सब वीर उत्साह के साथ आपके मुखों में प्रवेश कर रहे हैं। हे विष्णु, आप प्रज्वलित मुखों की परम्परा में चारों ओर के सब लोगों को लीलते जा रहे हैं। आपकी दीप्ति अत्यन्त अधिक प्रस्फुरित होकर सम्पूर्ण जगत् को, व्याप्त करती हुई, तीव्र वेग से तपा रही है। इसलिए मेरे आगे प्रकट कीजिए कि आप कौन हैं। हे देवेश, आपको नमस्कार है, आप प्रसन्न हों। मैं नहीं जानता कि आप किसलिए ऐसे संहार के भयानक कार्य में प्रवृत्त हुए हैं। जान पड़ता है, आप आदि-पुरुष होंगे। जो हो, आपका विशेष परिचय प्राप्त करने की मुझे अत्यन्त इच्छा है।

भगवान् ने कहा—मैं सबका संहार करनेवाला काल हूँ। इस समय लोकसंहार में प्रवृत्त हुआ हूँ। तुम्हारे सिवा, भिन्न-भिन्न सेना-विभागों में स्थित, सभी योद्धा इस समय काल का कौर

बनेंगे। इसलिए तुम युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। शत्रुओं का मारकर, यश प्राप्त करके, सुसमृद्ध राज्य करो। हे सब्यसाची, ये सब लोग मेरे प्रभाव से पहले ही नष्टप्राय हो चुके हैं; इस समय तुम तो इन लोगों के संहार का निमित्तमात्र हो। मैं द्रोण, कर्ण, भीष्म, जयद्रथ और अन्यान्य योद्धाओं को मार चुका हूँ। अब तुम सहज ही उन्हें युद्ध में मारो। किसी तरह का सन्ताप मत करो। इस समय उठकर युद्ध में प्रवृत्त हो जाओ; निःसन्देह शत्रुओं को जीत लोगे।



वासुदेव की बातें सुनकर अत्यन्त डरे और काँपते हुए अर्जुन ने हाथ जोड़कर, बारम्बार प्रणाम करके, गद्गदवाणी से कहा—हे हृषीकेश! समय पर आपके माहात्म्य का कीर्तन करने से सम्पूर्ण जगत् सन्तुष्ट और अनुरक्त होता है, राक्षसगण या दुष्ट राजा लोग डर के मारे इधर-उधर दसों दिशाओं में भाग जाते हैं, योग तप और मन्त्र आदि से सिद्धि पाये हुए पुरुष आपको प्रणाम करते हैं। हे अनन्त, हे महात्मा, हे देवेश, हे जगन्निवास! आप ब्रह्मा के भी आदिकर्ता हैं, उनके भी गुरु हैं। फिर आपको क्यों न सब जगत् के लोग प्रणाम करें? हे अनन्त, आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं। आप इस विश्व का परम आश्रयस्थान हैं। आप ही ज्ञाता और आप ही ज्ञेय हैं। आप ही परमधाम विष्णुपद हैं। आप सर्वत्र व्याप्त हैं। आप वायु, अग्नि, यम, वरुण और चन्द्र हैं। आप पितामह और प्रपितामह हैं। हे सब लोकों के ईश्वर, आपको सहस्र-सहस्र नमस्कार है। हे विश्वात्मन्, विश्वरूप! आपको आगे, पीछे और सब ओर प्रणाम है। आपकी शक्ति अनन्त और पराक्रम अपार है। सभी पदार्थ आपका स्वरूप हैं। इसी कारण आपको सर्वरूप कहते हैं। हे विभो! मैंने आपकी महिमा न जानकर, प्रमाद या प्रणय के कारण आपको सखा समझ, “हे कृष्ण, हे यादव, हे सखा” आदि कहा है; आपके अचिन्त्य प्रभावशाली होने पर भी, बन्धु-बान्धवों के सामने और पीछे भी भोजन, विहार, शयन, आसन आदि के समय अनेक प्रकार की हँसी-दिल्लीगी की है। उस अपराध के लिए मैं इस समय आपसे क्षमा की प्रार्थना कर रहा हूँ। हे अपरिमित प्रभावशाली महापुरुष! आप

सबके पिता, पूज्य, गुरु और गुरु से भी बढ़कर गौरवशाली हैं। त्रिभुवन में कोई भी आपको समान या आपसे श्रेष्ठ नहीं है। आप सभी के नियन्ता और स्तुति के पात्र हैं। इसलिए मैं दण्डवत् प्रणाम करके आपकी प्रसन्नता के लिए प्रार्थना करता हूँ। जैसे पिता पुत्र का, सुहृद् सुहृद् का, प्रिय प्रिय व्यक्ति का अपराध क्षमा करता है, वैसे आप भी मेरे सब अपराध क्षमा कीजिए। हे देवेश, हे जगन्निवास! आपके इस अदृश्यपूर्व रूप को देखकर मैं जैसे सन्तुष्ट हुआ हूँ, वैसे ही डर के मारे मेरा अन्तःकरण बहुत ही विचलित हो रहा है। इसलिए हे देव! प्रसन्न हूँ, मुझे वही अपना पहले का रूप दिखाइए। मैं आपका वह किरीट, गदा, चक्र आदि से शोभित पहला रूप देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो रहा हूँ। हे विश्वमूर्ति, आप इस विश्वरूप को छिपाकर उसी चतुर्भुज रूप से प्रकट हूँ।

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन, तुम क्यों डर रहे हो? मैंने प्रसन्न होकर ही तुमको यह अपना आदिम तेजोमय रूप दिखाया है। तुम्हारे सिवा और कभी किसी ने मेरा यह अनन्त विश्वमय रूप नहीं देखा। हे कुरुश्रेष्ठ! तुम्हारे सिवा और कोई अध्ययन, दान, पुण्य और उग्र तप के द्वारा भी मेरे इस रूप को नहीं देख सकता। इस समय तुमको अत्यन्त भय और मोह ने घेर रक्खा है, इसलिए तुम्हारा डर और मोह दूर करने को मैं तुम्हें अपना पहला ही रूप दिखाता हूँ। तुम निडर होकर प्रसन्नतापूर्वक वह रूप देखो।

अब वही पहले की प्रसन्न-मूर्ति धारण कर भगवान् ने अर्जुन को, पहला रूप दिखाकर, ५० ठाढ़स बैधाया। इसके बाद अर्जुन ने कहा—हे हृषीकेश, आपकी यह सौम्य मूर्ति देखने से मेरा चित्त प्रसन्न हो गया, मैं स्वस्थ हूँ।

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन, तुमने जो मेरा विश्वरूप देखा है उसे देखना अत्यन्त दुर्घट है। देवता भी इसे देखने की इच्छा रखते हैं। हे शत्रुसन्तापन! वेदाध्ययन, दान, तप या यज्ञ करके भी कोई मेरे इस विश्वरूप को नहीं देख सकता। मेरा अनन्य भक्त ही शास्त्र से, परमार्थ से और तादात्म्य रूप से मेरा यह रूप देख सकता है। पुत्र आदि में अनासक्त, प्राणियों से वैर न रखनेवाला और मेरी भक्ति को ही पुरुषार्थ या परमार्थ माननेवाला पुरुष, जो ५५ मेरा आश्रय ग्रहण करके मेरे ही उद्देश से सब कर्म करता है, वही मुझे प्राप्त होता है।

छत्तीसवाँ अध्याय

भक्तियोग का वर्णन

अर्जुन ने कहा—हे केशव! आप विश्वरूप, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं। जो लोग तद्गत हृदय से आपकी उपासना करते हैं, और जो लोग अव्यक्त और निर्विशेष ब्रह्म की उपासना करते हैं, उन दोनों में कौन श्रेष्ठ है? यह बताइए।

भगवान् ने कहा—जो लोग श्रद्धा के साथ मुझमें ही मन लगाकर मरे ही लिए कर्मों का अनुष्ठान करते हैं वे ही, मेरे मत में, श्रेष्ठ हैं। जो लोग सब प्राणियों का हित करते हैं, सर्वत्र समबुद्धि होकर अव्यक्त ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे भी मुझे ही प्राप्त होते हैं। उनमें विशेषता यही है कि देहाभिमानियों की अव्यक्त ब्रह्म में निष्ठा होना अनायास साध्य नहीं है; इसी कारण अव्यक्त ब्रह्म की उपासना करने में अत्यन्त क्लेश होता है। और जो लोग अनन्य भाव से मुझमें ही मन को लगाकर, मुझको ही सब कर्म अर्पण कर, एकान्त भक्ति के साथ मेरा ध्यान और उपासना करते हैं, उन्हें मैं बहुत ही शीघ्र इस मृत्यु-दूषित संसार से उबार लेता हूँ। इस कारण तुम मुझमें मन और बुद्धि अर्पण करके मुझे ही भजो। ऐसा करने से निःसन्देह शरीर त्यागने पर मुझमें लीन हो जाओगे।

हे धनञ्जय, यदि अन्तःकरण मुझमें स्थिर न हो तो अभ्यासयोग द्वारा मुझे प्राप्त होने की इच्छा करो। अगर उसमें भी अपने को अशक्त देखो तो ऐसे कर्म करो जिनसे मैं प्रसन्न होऊँ। मेरे उद्देश से उन सब कर्मों का अनुष्ठान करने से सिद्धि पा लोगे। इसमें भी अगर अपने को असमर्थ समझो तो सब प्रकार के कर्मफल की इच्छा त्यागकर चित्त का संयम करके मेरी शरण में आओ। अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान, ज्ञान की अपेक्षा ध्यान और ध्यान की अपेक्षा कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है। कर्मफल के त्याग से ही परम शान्ति मिलती है। किसी भी प्राणी से द्वेष न करनेवाला, ममता और अहङ्कार से शून्य, सुख और दुःख को समान समझनेवाला, चमाशील, सदा सन्तुष्ट, जितेन्द्रिय, दृढनिश्चय, मन और बुद्धि को मुझमें अर्पण करनेवाला, मेरा अनन्य भक्त मुझे प्रिय है। जिससे लोगों को उद्वेग नहीं होता और जो स्वयं लोगों से उद्विग्न नहीं होता; जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेग से शून्य है, वही मुझे प्रिय है। अपेक्षारहित (निःस्पृह), विशुद्धचित्त, व्याधिशून्य और सर्वारम्भ (काम्य कर्म)-परित्यागी मेरा भक्त ही मुझे प्रिय है। जो हर्ष, द्वेष, शोक और आकांक्षा से रहित मेरा भक्त है, वही मुझे प्रिय है। जो शत्रु-मित्र, मान-अपमान, शीत-उष्ण, सुख-दुःख और स्तुति-निन्दा को समान मानता है, जो वाणी को संयत रखता है तथा जो कुछ मिल जाय उसी में जो सन्तुष्ट और स्थिर बुद्धिवाला है, वही मेरा भक्त मुझे प्रिय है। जो लोग श्रद्धापूर्वक मेरा आश्रय लेकर इस धर्मरूप अमृत की उपासना करते हैं, वे मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।

२०

सैंतीसवाँ अध्याय

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ योग का वर्णन

अर्जुन ने कहा—हे केशव ! मैं आपके श्रीमुख से प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, ज्ञान और क्षेत्र का वर्णन सुनना चाहता हूँ।

भगवान् ने कहा—हे पाण्डव, इस शरीर को क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्र के विषय को जो अच्छी तरह जानता है उसे, इस विषय के ज्ञाता लोग, क्षेत्रज्ञ कहते हैं। हे भारत, सब क्षेत्रों में मुझको ही क्षेत्रज्ञ समझो। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का जो ज्ञान है वही, मेरे मत से, यथार्थ ज्ञान है। वह क्षेत्र जैसे स्वभाव से युक्त, जिन इन्द्रियों के विकार से युक्त, जिस प्रकार की प्रकृति और पुरुष के संयोग से उत्पन्न, जिन स्थावर-जड़म आदि भेदों से विभिन्न और जैसे प्रभाववाला है, सो सब मैं संक्षेप से कहता हूँ—सुनो। वशिष्ठ आदि ऋषियों ने, विविध छन्दों में, युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्रपदों के द्वारा निश्चित रूप से, अनेक प्रकार से, इन विषयों का निरूपण किया है। पञ्चमहाभूत, अहङ्कार, बुद्धि, मूलप्रकृति, ग्यारह इन्द्रियाँ, पाँच इन्द्रियों के विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, चेतना और धृति, इन क्षेत्र के विषयों का संक्षेप से मैंने तुम्हारे आगे वर्णन कर दिया। मान और दम्भ का त्याग, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्य की उपासना, शौच, स्थिरता, आत्मनिग्रह (मन का दमन), विषय-भोग से वैराग्य, अहङ्कार न होना, जन्म-मृत्यु-जरा और व्याधि से उत्पन्न दुःख के दोषों का ज्ञान, पुत्र-स्त्री-धन आदि में आसक्ति न होना और अनभिष्वङ्ग, इष्ट तथा अनिष्ट वस्तुओं के प्रति सदा समभाव, अनन्य भाव से १० मेरी भक्ति, आनन्ददायक एकान्त स्थान में स्थिति, भीड़-भाड़ से अलग रहना, अध्यात्मज्ञान में निष्ठा और तत्त्वज्ञान के लिए मोक्ष की आलोचना—यं सब ज्ञानसाधन के उपाय हैं। इसके विपरीत आचरण अज्ञान का कारण कहा गया है।

हे अर्जुन! अब मैं तुम्हारे आगे ज्ञेय का निरूपण करता हूँ, सुनो। इसको जान लेने से मोक्ष मिलता है। वह (ज्ञेय) अनादि ब्रह्म मेरा निर्विशेष रूप है। वह न तो सत् है और न असत्। उसके हाथ-पैर, नेत्र, कान और मुख सर्वत्र विद्यमान हैं और वह स्वयं सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। वह सब प्रकार की इन्द्रियों से रहित है, किन्तु इन्द्रियों और उनके सब विषयों का प्रकाशक है। वह सङ्ग-रहित होकर भी सबका आधारस्वरूप है। वह गुण-हीन है, किन्तु सब गुणों का भोग करनेवाला है। वह सब चराचर प्राणियों के भीतर और बाहर है। वह सूक्ष्मतम होने के कारण अविज्ञेय है। वह दूरस्थ होकर भी निकटस्थ है। वह सब प्राणियों में अविभक्त रहकर भी भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न रूप से स्थित सा जान पड़ता है। वही सब प्राणियों की सृष्टि, रक्षा और संहार करनेवाला है। वह ज्योतिर्मय पदार्थों की ज्योति और अज्ञान से परे है। वह ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञानगम्य और सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित है। हे कौन्तेय, मैंने यह संक्षेप से तुम्हारे आगे ज्ञान-ज्ञेय और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का वर्णन कर दिया। मेरे भक्त लोग इन बातों को जानकर मेरे भाव को प्राप्त होते हैं।

प्रकृति और पुरुष दोनों को अनादि जानो। देह, इन्द्रिय आदि विकार और सुख-दुःख आदि गुण सब प्रकृति से उत्पन्न हैं। पुरुष प्रकृति में स्थित रहकर सब गुणों का भोग करता

है। शरीर और सब इन्द्रियों के कर्त्तव्य के विषय में प्रकृति कारण है, और सुख-दुःख के २० भोग के विषय में पुरुष कारण है। शुभाशुभ कर्मों को करानेवाला इन्द्रियसंसर्ग ही पुरुष के देव-तिर्यक् आदि सत्-असत् जन्मों का कारण है। प्रकृति अर्थात् देह में रहकर वह पुरुष प्रकृति के गुणों का भोग करता है। वह परम पुरुष उपद्रष्टा, अनुमन्ता (अनुमोदक), भर्ता और भोक्ता भी है। उसी को महेश्वर और परमात्मा भी कहते हैं। जो इस प्रकार पुरुष और प्रकृति को जानता है, वह गुणों के साथ सदा सर्वथा वर्त्तमान रहकर भी फिर संसार में जन्म नहीं लेता। कोई लोग ध्यान और मन के द्वारा आत्मा में ही आत्मा को देखते हैं। कोई साध्य-योग द्वारा और कोई कर्मयोग के द्वारा उस परमात्मा को दर्शन पाते हैं। कोई स्वयं इस प्रकार न जानने के कारण औरों (आचार्य आदि) के निकट सुनकर उसके अनुसार आत्मा का चिन्तन और उपासना करते हैं। वे श्रुतिपरायण लोग भी मृत्यु को जीतकर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। हे भारत ! स्थावर या जङ्गम जो कोई वस्तु उत्पन्न होती है, वह क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से उत्पन्न होती है। उस संयोग का कारण अविवेक ही है। जो लोग चराचर प्राणियों में परमात्मा को देखते हैं, और उन चराचर प्राणियों के विनष्ट होने पर भी उस परमात्मा को अविनाशी देखते हैं, वे ही परमार्थ-दर्शी हैं। जो लोग परमात्मा को सर्वत्र समान भाव से स्थित देखते हैं, और अविद्या के द्वारा आप ही अपने आत्मा की हत्या नहीं करते, वे ही मुक्ति प्राप्त करते हैं—परम गति पाते हैं। जो यह देखता है कि सब कर्मों को प्रकृति ही करती है, आत्मा स्वयं कोई कार्य नहीं करता, उसी का देखना ठीक है। जब लोग यह देखते हैं कि सब भिन्न-भिन्न प्राणी एक प्रकृति में ही स्थित हैं, और प्रकृति से ही उनका विस्तार होता है, तब वे सच्चिदानन्द ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। वह सनातन परमात्मा देह में रहता हुआ भी स्वयं अनादि ३० और निर्गुण होने के कारण न तो कुछ कर्म करता है, और न कभी किसी प्रकार कर्मफल में लिप्त होता है। जैसे आकाश सब पदार्थों में स्थित होकर भी किसी में लिप्त नहीं है, वैसे ही आत्मा सब देहों में होता हुआ भी देह के गुण-दोषों में लिप्त नहीं होता। हे भारत ! जैसे एक ही सूर्य इस असीम विश्व को पूर्ण रूप से प्रकाशित करता है, वैसे ही एकमात्र परमात्मा सब शरीरों को प्रकाशित किये हुए है। जो लोग विशेष रूप से ज्ञानचक्षु के द्वारा क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद को देखते हैं, और भौतिक प्रकृति से मोक्ष के उपाय को जानते हैं, वे ही परम पद को पाते हैं। ३४

अड़तीसवाँ अध्याय

त्रिगुण-विभागयोग का वर्णन

भगवान् ने कहा—हे पार्थ ! सर्वश्रेष्ठ मुनिगण जिसे जानकर परम सिद्धि प्राप्त करते हैं, उस ज्ञान का मैं तुम्हारे आगे वर्णन करता हूँ, सुनो। इस ज्ञान का आश्रय लेकर लोग

मेरे स्वरूप का प्राप्त करते हैं, और फिर सृष्टि-काल में भी जन्म नहीं लेते। उन्हें प्रलय-काल में भी व्यथित नहीं होना पड़ता। हे भारत, मेरी 'महत्' प्रकृति ही सब जीवों के गर्भाधान का स्थान है। मैं उसी में गर्भ स्थापित करता हूँ। उसी से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है। हे कौन्तेय ! सब योनियों में जो मूर्तियाँ उत्पन्न होती हैं उनका पिता मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। महत्तत्त्व उनकी योनि है। उसमें मैं बीज स्थापित करता हूँ। प्रकृति से उत्पन्न सत्त्व, रज, तम नाम के तीनों गुण ही जीवों को सुख-दुःख में आवद्ध करते हैं। उन तीनों गुणों में, निर्मल होने के कारण, सत्त्वगुण ही सब इन्द्रियों का प्रकाशक है। उसी के प्रभाव से देहधारी लोग अपने को सुखी और ज्ञानी समझते हैं। रजोगुण अनुरागात्मक है। वह तृष्णा और आसक्ति से उत्पन्न हुआ है। वह देहधारियों को कर्म के बन्धन में बाँध रखता है। तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न हुआ है। वह देहधारियों को मोह, आलस्य और निद्रा से आच्छन्न कर रखता है। सत्त्वगुण सब जीवों को सुखी, रजोगुण कर्मासक्त और तमोगुण ज्ञान का नाश करके प्रमाद के वश में कर देता है। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण को; रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण को; तमोगुण,

- १० सत्त्वगुण और रजोगुण को अभिभूत करके प्रकट होता है। सत्त्वगुण जब बढ़ता है तब इस शरीर की सब इन्द्रियों में ज्ञान का प्रकाश होता है। रजोगुण जब बढ़ता है तब लोभ, (अग्नि-होत्र आदि की) प्रवृत्ति, (घर आदि) कर्म का आरम्भ, स्पृहा और अशान्ति उत्पन्न होती है। तमोगुण के बढ़ने पर विवेक-हीनता, अप्रवृत्ति, प्रमाद और मोह उपस्थित होता है। सत्त्वगुण बढ़ने की अवस्था में अगर कोई मरता है तो वह हिरण्यगर्भ के उपासक लोगों के समुज्ज्वल लोको को जाता है। रजोगुण बढ़ने की अवस्था में अगर कोई मरता है तो वह मनुष्यलोक में जन्म लेकर कर्मा में आसक्त होता है। तमोगुण बढ़ने की अवस्था में अगर किसी का प्राणान्त होता है तो वह पशु आदि की योनियों में जन्म लेता है। सात्त्विक कर्म का फल अति निर्मल सुख है, राजस कर्म का फल दुःख है और तामस कर्म का फल अज्ञान है। सत्त्व से ज्ञान, रजोगुण से लोभ और तमोगुण से प्रमाद, मोह तथा अज्ञान उत्पन्न होता है। सात्त्विक लोग ऊर्ध्वगति प्राप्त करते हैं। राजस लोग मध्यगति प्राप्त करते हैं। जघन्य-गुण-सम्भूत भ्रम-मोह के वशीभूत तामस लोग अधोगति प्राप्त करते हैं। विवेक आदि सब गुणों को सब कार्यों का कर्ता समझने से और आत्मा को इन तीनों गुणों से परे जानने से मनुष्य मेरे भाव (ब्रह्मपद) को प्राप्त होते हैं। इन तीनों गुणों का अतिक्रमण करने पर देहधारी लोग जन्म-मृत्यु-जरा से बचकर मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

२०

अर्जुन ने कहा—हे वासुदेव, मनुष्य जब इन तीनों गुणों से अतीत हो जाता है तब उसको क्या लक्षण होते हैं ? कैसे आचरण होता है और तीनों गुणों का वह किस प्रकार अतिक्रमण करता है ? यह भी कृपा करके मुझसे कहिए।

वासुदेव ने कहा—हे पाण्डव ! जो प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह के प्रवृत्त होने पर उनसे द्वेष नहीं करता, और उनके निवृत्त होने पर उनकी इच्छा नहीं करता; जो उदासीन की तरह रहकर सुख-दुःख आदि गुणों के कार्यों द्वारा विचलित नहीं होता, बल्कि यह समझकर कि “सब गुण अपने-अपने कार्य में लगे हुए हैं, उनके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है,” धैर्य धारण किये रहता है, वही त्रिगुणातीत है। जो सुख-दुःख को समान मानता है, आत्मनिष्ठ है, वही त्रिगुणातीत है। धीमान्, मिट्टी-पत्थर और सुवर्ण को समदृष्टि से देखनेवाला, प्रिय और अप्रिय को एक समझनेवाला त्रिगुणातीत है। अपनी निन्दा और स्तुति, मान और अपमान, शत्रु और मित्र को तुल्य जाननेवाला व्यक्ति त्रिगुणातीत है। सब कर्मों को त्यागनेवाला अर्थात् कर्मफल की अपेक्षा न रखकर कर्म करनेवाला मनुष्य त्रिगुणातीत है। जो अत्यन्त अनन्य भक्ति के साथ मेरी सेवा करता है, वही सब गुणों से अतीत होकर मोक्ष प्राप्त करता है। हे पार्थ ! मैं ब्रह्म, नित्य, मोक्ष, सनातनधर्म और अखण्ड सुख की खान हूँ।

२७

उन्तालीसवाँ अध्याय

पुरुषोत्तम योग का वर्णन

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन, संसार एक अक्षय अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष है। इसकी जड़ ऊपर और शाखाएँ नीचे हैं। वेद इसके पत्ते हैं। इसके विषय को जो जानता है वही वेदज्ञ है। इस वृक्ष की शाखाएँ नीचे और ऊपर फैली हुई हैं। यह सत्त्व आदि गुणों के द्वारा परिवर्द्धित और रूप-रस आदि विषयों के द्वारा पल्लवित हुआ करता है। नीचे, मनुष्यलोक में, कर्मबन्धन रूप जड़ें फैली हुई हैं। इस वृक्ष का रूप नहीं देख पड़ता। न इसका आदि है, न अन्त है। यह किस प्रकार स्थित है, सो भी नहीं जाना जाता। सुदृढ़ निर्ममत्तरूप शस्त्र के द्वारा इस जड़ जमाये हुए वृक्ष को काटकर इसकी जड़ का खोजना चाहिए। उसे जिन्होंने पा लिया है, वे फिर संसार में लौटकर नहीं आते। जिससे पुरानी (प्राचीन संसार की) प्रवृत्ति प्रवर्तित हुई है उसी आदि-पुरुष के मैं शरणागत हूँ; यों कहकर उन्हीं के शरणागत होना चाहिए। जिन्होंने मान, मोह और पुत्र आदि के प्रति आसक्ति त्याग दी है, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वधर्मों से अपना छुटकारा कर लिया है वे ही आत्मज्ञाननिष्ठ, निष्काम, अविद्या-शून्य महात्मा उक्त अव्यय पद को प्राप्त करते हैं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि जिसे प्रकाशित करने में असमर्थ हैं, जिसे प्राप्त होकर फिर वहाँ से लौटना नहीं होता, वही मेरा परमधाम है। इस जीवलोक में सनातन जीव मेरा ही अंश है। वह प्रकृतिस्थ पाँचों इन्द्रियों को और मन को आकृष्ट करता है। जैसे हवा फूलों से गन्ध लेकर डालती है, वैसे ही जीव जब शरीर को ग्रहण करता है या त्यागता है

तब पूर्व शरीर से इन्द्रियों को खींचकर साथ ले जाता है। यह जीव श्रोत्र, चक्षु, त्वक्, रसना, घ्राण और मन, इन छः इन्द्रियों में स्थित होकर सब विषयों को भोगता है। विमूढ़ हृदयवाले लोग देहान्तरगामी, देहावस्थित अथवा विषयभोगासक्त इन्द्रियविशिष्ट जीव को कभी नहीं देख सकते। ज्ञान दृष्टिवाले महात्मा लोग ज्ञान के ही प्रभाव से उसे देखते हैं। योगी लोग प्रयत्नपूर्वक देहस्थित जीव को देखते हैं; किन्तु अकृतात्मा अजितेन्द्रिय लोग लाख यत्न करके भी उसे देखने में असमर्थ ही रहते हैं। सूर्य, चन्द्र और अग्नि मेरे ही तेज से तेजस्वी होकर सब संसार को प्रकाशित करते हैं। मैं ओज के प्रभाव से पृथ्वी में प्रवेश करके सब प्राणियों को धारण किये हुए हूँ, और रसमय सोम होकर सब ओषधियों को पुष्ट करता हूँ। प्राण और अपान वायु के साथ शरीर में प्रविष्ट होकर मैं जठराग्नि स्वरूप से चार प्रकार के आहार को पकाता हूँ।

मैं सबके हृदय में प्रविष्ट हूँ। मुझसे ही स्मृति और ज्ञान का उदय तथा उनका अभाव होता है। सब वेद मेरा ही ज्ञान कराते हैं। मैं ही वेदान्त का कर्त्ता और वेदज्ञ हूँ। लोक में चर और अचर, दो पुरुष प्रसिद्ध हैं। उनमें सब प्राणी चर हैं, और कूटस्थ पुरुष अचर है। इनके सिवा और एक उत्तम पुरुष है, उसका नाम परमात्मा है। वह इन तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका प्रतिपालन कर रहा है। वही अव्यय ईश्वर है। मैं चर और अचर दोनों पुरुषों से बढ़कर हूँ। इसी कारण लोक और वेद में मैं पुरुषोत्तम कहलाता हूँ। जो व्यक्ति मोह-शून्य होकर मुझे पुरुषोत्तम जानता है, वही सर्वज्ञ है—वही सब प्रकार से मुझे भजता है। हे पार्थ, मैंने तुमको यह २० परम गुह्य शास्त्रीय विषय सुनाया है। इस जानने पर लोग बुद्धिमान और कृतकार्य होते हैं।

चालीसवाँ अध्याय

दैवी और आसुरी सम्पत्तियों का वर्णन

वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन! जो लोग दैवी सम्पत्ति को लक्ष्य कर जन्मते हैं उनमें अभय, चित्तशुचि, आत्मज्ञान की निष्ठा, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, दुष्टता का अभाव, सब प्राणियों पर दया, लोभशून्यता, कोमलता, ही, अवञ्चलता, तेज, क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह और अभिमान का अभाव, ये छब्बीस गुण स्वाभाविक होते हैं। जो लोग आसुरी सम्पत्ति को लक्ष्य करके जन्म लेते हैं उनमें दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निष्ठुरता और अज्ञान आदि दुर्गुण स्वाभाविक होते हैं। दैवी सम्पत्ति मोक्ष का और आसुरी सम्पत्ति बन्धन का कारण होती है। हे अर्जुन, तुम दैवी सम्पत्ति को लक्ष्य करके पैदा हुए हो, इसलिए शोक मत करो।

हे पार्थ, इस लोक में—दैव और आसुर—दो प्रकार के प्राणी होते हैं। मैं तुमको दैव प्राणियों का विषय विस्तार के साथ सुना चुका। अब आसुर प्राणियों का विषय सुनो। आसुर

स्वभाव के लोग धर्म में प्रवृत्ति और अधर्म से निवृत्ति का विषय नहीं जानते । वे शौच, आचार और सत्य से शून्य होते हैं । वे जगत् को असत्य, अप्रतिष्ठ, स्वाभाविक, अनीश्वर, स्त्री-पुरुष के संसर्गमात्र से उत्पन्न और कामहेतुक बताते हैं । वे अल्प बुद्धिवाले लोग इस प्रकार की समझ का सहारा लेते हैं । वे मलिन-चित्त, उग्र-कर्मा और अहितकारी लोग जगत् के नाश के लिए उद्यत होते हैं । दम्भ, अभिमान, मद और अपवित्र मद्य-मांस आदि में उनकी विशेष रुचि होती है । वे मोहवश यह सोचकर कि “इस देवता की आराधना करके मैं बहुत सा द्रव्य प्राप्त करूँगा”, क्षुद्र देवताओं की आराधना में प्रवृत्त होते हैं और कामभोग को परम पुरुषार्थ समझकर मरणपर्यन्त असीम चिन्ता से चूर रहते हैं । बहुत सी आशाओं के फन्दे में बँधे हुए वे कामना करने और कामना पूरी करने के लिए अन्यायपूर्वक धन कमाने की चेष्टा करते हैं । “मैंने आज यह पाया, फिर यह मनोरथ पूरा होगा; मेरे पास यह धन है, आगे चलकर वह धन भी प्राप्त होगा; आज इस शत्रु को मारा है, कल उस शत्रु को भी मारूँगा; मैं ईश्वर हूँ, मैं भोगी हूँ, सुखी हूँ, धनशाली हूँ; मैं सिद्ध हूँ, बलवान् हूँ, कुलीन हूँ; मेरे समान और कोई नहीं है; मैं यज्ञ करूँगा, दान करूँगा, आमोद-प्रमोद करूँगा”, इस प्रकार वे अज्ञानमोहित लोग मोह और चित्तविकारों से आच्छन्न और कामभोग में आसक्त होकर तरह-तरह के मनसूवे बाँधते हैं, और अन्त को नरकगामी होते हैं । वे लोग स्वयं-पूजित, नम्रतारहित, धन-मद में चूर और अहङ्कार, बलदर्प, काम, क्रोध और ईर्ष्या के वशोभूत होकर नाममात्र के लिए यज्ञ आदि करते हैं । मैं उन विद्वेपी, क्रूरस्वभाव, नराधमों को निरन्तर इस संसार में आसुर योनियों के बीच गिराता रहता हूँ । हे कौन्तेय ! वे मूढ़ पुरुष आसुर योनि को प्राप्त होकर फिर मुझे नहीं पा सकते, इस कारण उत्तरोत्तर अधम गति को ही पहुँचते रहते हैं ।

१०

२०

हे अर्जुन ! काम, क्रोध और लोभ, यंतीन नरक के द्वार हैं । इन्हीं से आत्मविनाश होता है । इसलिए यज्ञपूर्वक इनसे बचना चाहिए । इनसे छुटकारा पा सकने पर मनुष्य आत्मकल्याण-लाभपूर्वक परम गति पाता है । जो कोई शास्त्र की विधि न मानकर स्वेच्छाचार में प्रवृत्त होता है, वह परम गति या सुख-शान्ति नहीं पा सकता । कार्य-अकार्य का निश्चय करने में शास्त्र ही प्रमाण है । इसलिए तुम शास्त्र के विधान को जानकर कर्तव्य-पालन में लग जाओ ।

२४

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रद्धात्रय-विभाग योग का वर्णन

अर्जुन ने पूछा—हे कृष्णचन्द्र ! जो लोग शास्त्रविधि को छोड़कर श्रद्धापूर्वक यज्ञ आदि करते हैं उनकी वह श्रद्धा सात्त्विकी है या राजसी अथवा तामसी ?

भगवान् ने कहा—हे अर्जुन ! देहधारियों की श्रद्धा सात्त्विकी, राजसी और तामसी, तीन प्रकार की होती है। तीनों प्रकार की श्रद्धा स्वाभाविक है। सत्त्व की श्रद्धा सत्त्व के अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है। जिसकी जैसी श्रद्धा है वह वैसा ही है। सात्त्विक पुरुष देवताओं की, राजस पुरुष यत्नों और राजसों की तथा तामस पुरुष भूतों और प्रेतों की पूजा करते हैं। जो मनुष्य दम्भ, अहङ्कार, काम, राग आदि की प्रवृत्तता के साथ अशास्त्रीय कठोर तप में लगे रहकर शरीरस्थ तत्त्वों को और शरीर के भीतर स्थित मुक्त आत्मा को क्लेश पहुँचाते हैं, वे अचेत पुरुष आसुर प्रकृति के हैं।

हे अर्जुन, सब पुरुषों को आहार भी तीन तरह का प्रिय होता है। यज्ञ, तप और दान भी त्रिविध होते हैं। इन सबके लक्षण मैं कहता हूँ, सुनो। आयु, सत्त्व, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ानेवाला, सरस, स्निग्ध, हृदय-पोषक आहार सात्त्विक लोगों को रुचता है। अत्यन्त कटु, अत्यन्त खट्टा, अत्यन्त नमकीन, अत्यन्त गर्म, अत्यन्त तीक्ष्ण, अत्यन्त दाही, दुःख, शोक और रोग को बढ़ानेवाला आहार राजस पुरुषों को प्रिय होता है। बासी, जिमका रस नष्ट हो चुका है, दुर्गन्धयुक्त, जूठा, अपवित्र, कई दिन का १० बना आहार तामस लोगों को प्रिय होता है।

हे धनञ्जय ! फल की कामना छोड़कर अवश्य कर्तव्य समझकर मन की एकाग्रता के साथ विधिपूर्वक जो यज्ञ किया जाता है, वह सात्त्विक यज्ञ है। हे भरतश्रेष्ठ, फल की कामना से या दम्भ के लिए जो किया जाता है वह यज्ञ राजस है। ऐसे ही विधिहीन, श्रद्धाहीन, अन्नदानशून्य, तथा बिना ही मन्त्र और दक्षिणा के किया गया यज्ञ तामस कहलाता है।

देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और पण्डित आदि की पूजा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, ये शारीरिक तप के अङ्ग हैं। किसी को कष्ट न पहुँचानेवाला वाक्य, सत्य, प्रिय, हितकारी वाक्य और स्वाध्याय (वेदपाठ) का अभ्यास, ये वाङ्मय तप के अङ्ग हैं। मन की पवित्रता, सौम्यभाव, मौन, आत्मनिग्रह (मन का दमन) और भाव की शुद्धि, ये मानस तप के अङ्ग हैं। यह त्रिविध तप सात्त्विक आदि भेद से तीन प्रकार का है। फल की इच्छा छोड़कर एकाग्रभाव से अत्यन्त श्रद्धा के साथ किया गया तप सात्त्विक है। सत्कार, मान और पूजा की प्राप्ति के लिए दम्भपूर्वक जो किया जाता है, वह नाशवान् फलवाला तप राजस है। मूढ़ता-पूर्वक आत्मा को पीड़ा पहुँचाकर या दूसरे को कष्ट पहुँचाने के लिए, दूसरे की बुराई के लिए, जो तप किया जाता है, वह तामस है।

केवल इस भाव से कि देना ही चाहिए, जो अपना उपकार न करनेवाले को, देश- २० काल और पात्र का विचार करके, दिया जाता है वह सात्त्विक दान है। प्रत्युपकार या स्वर्गलाभ आदि के उद्देश से अनिच्छापूर्वक जो दिया जाता है, वह राजस दान है। अनुपयुक्त

स्थान में, अनुपयुक्त समय में, अयोग्य पात्र को असत्कार और तिरस्कार के साथ जो दिया जाता है, वह तामस दान है ।

ॐ, तत्, सत्, ये ब्रह्म के तीन नाम हैं । पूर्व समय में इन्हीं नामों से ब्राह्मणों, यज्ञों और वेदों का विधान हुआ है । इसी कारण ब्रह्मवादियों के विधान में कहे गये यज्ञ, दान, तप आदि कर्म “ओ” कहकर किये जाते हैं । फल की इच्छा न रखनेवाले मोक्षाभिलाषी लोग “तत्” कहकर यज्ञ, तप, दान आदि विविध कर्म करते हैं । सद्भाव, साधुभाव, मङ्गलकर्म और यज्ञ-तप-दान आदि के अवसर पर परमेश्वर के उद्देश से किये गये कर्मों में “सत्” शब्द का प्रयोग किया जाता है । अश्रद्धा से किया गया हवन, दान, तप और अन्य कर्म “असत्” कहलाते हैं । हे पार्थ, वे कर्म न इस लोक में फलदायक होते हैं और न परलोक में काम आते हैं ।

२८

बयालीसवाँ अध्याय

संन्यासयोग का वर्णन

अर्जुन ने कहा—हे महाबाहो, हे हृषीकेश ! संन्यास का और त्याग का तत्त्व मैं अलग-अलग सुनना चाहता हूँ ।

श्री भगवान् ने कहा—हे अर्जुन, विद्वान् ज्ञानियों ने काम्य कर्म के त्याग को ही संन्यास और सब कर्मफलों के त्याग को ही त्याग कहा है । कुछ लोगों का कहना है कि कर्म का दोष-तुल्य त्याग कर देना चाहिए । अन्य लोग कहते हैं कि यज्ञ, दान, तप आदि कर्मों का त्याग न करना चाहिए ।

हे पार्थ, अब तुम त्याग के बारे में निश्चय सुनो । हे पुरुषसिंह, त्याग त्रिविध है । यज्ञ, दान और तप का त्याग किसी तरह न करना चाहिए । यज्ञ, दान, तप आदि कर्म विवेकियों के चित्त को शुद्ध करते हैं । हे भारत, मेरी राय में आसक्ति और फल की इच्छा छोड़कर कर्म करना चाहिए । नित्य कर्मों का त्याग कभी न करना चाहिए । यही मेरा उत्तम और निश्चित मत है । मोह के कारण नित्य कर्मों का त्याग तामस कहलाता है । अत्यन्त दुःखद समझकर शारीरिक क्लेश और डर के कारण किये गये कर्म के त्याग को राजस कहते हैं । राजस त्यागी व्यक्ति कभी त्याग का फल नहीं पा सकता । आसक्ति और फल की प्रत्याशा से बचकर, अवश्य कर्तव्य समझकर, कर्म करना सात्त्विक त्याग कहलाता है । सत्त्वगुणयुक्त, मेधावी, सन्देहहीन, त्यागशील व्यक्ति दुःख के विषय से द्वेष और सुख के विषय में अनुराग कभी नहीं रखता । देहधारी पुरुष सब कर्मों का त्याग कर भी तो नहीं सकता । हे पार्थ, जो कर्मफल का

११ त्याग करनेवाला है वही वास्तव में त्यागी कहा जा सकता है। कर्म के त्रिविध फल हैं,—इष्ट, अनिष्ट और इष्टानिष्ट। जो लोग त्यागी नहीं हैं वे परलोक में जाकर इन फलों को प्राप्त करते हैं; किन्तु संन्यासी लोग इन फलों को नहीं पाते। हे अर्जुन ! कर्मसिद्धि के लिए तत्त्व-निर्णय करनेवाले सांख्यशास्त्र में शरीर, कर्ता, भिन्न-भिन्न इन्द्रियाँ, भिन्न-भिन्न उनकी चेष्टाएँ और दैव, ये पाँच सब कर्मों के कारण कहे गये हैं। न्यायसङ्गत या अन्यायपूर्ण, सभी कार्यों के—जिन्हें मनुष्य मन, वाणी और काया से करते हैं—यही पाँच कारण हैं। बुद्धि परिमार्जित न होने के कारण जो मनुष्य उपाधिशून्य केवल आत्मा को कर्ता समझता है, वह दुर्बल कुछ भी नहीं जानता। जिसमें अहङ्कार का भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि अलिप्त है, वह इन सब लोकों को मारकर भी नहीं मारता, उसे प्राणिवध का पाप भी नहीं भोगना पड़ता। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता, यह तीन प्रकार की कर्म-प्रवृत्ति है। करण, कर्म, कर्ता, यह त्रिविध कर्मसंग्रह है। ज्ञान, कर्म और कर्ता, ये तीनों गुण-भेद के अनुसार त्रिविध हैं। हे अर्जुन ! सांख्य-शास्त्र में इनका वर्णन जिस तरह किया गया है सो मैं कहता हूँ, सुनो। मनुष्य जिसके द्वारा सब विभक्त प्राणियों में एक ही अविभक्त अव्यय भाव देखता है, वह सात्त्विक ज्ञान है। जिसके द्वारा विभिन्न प्राणियों में भिन्न-भिन्न भाव देख पड़ते हैं, वह राजस ज्ञान है। जो सम्पूर्ण सा, एक ही कार्य में संसक्त, अकारण, अल्प और तत्त्वार्थहीन है वह तामस ज्ञान है। कर्तृत्व के अभिमान और कामना से शून्य मनुष्य के द्वारा राग और द्वेष छोड़कर किया गया कर्म सात्त्विक कहलाता है। सकाम और अहङ्कारी व्यक्ति के द्वारा बड़े परिश्रम से किया गया कर्म राजस है। भावी शुभाशुभ, अर्थ-क्षय, हिंसा और पौरुष का ख्याल न करके मोह से जिस कर्म का आरम्भ किया जाता है वह तामस है।

सङ्ग-शून्य, अहङ्कार-हीन, धैर्य और उत्साह से सम्पन्न, सिद्धि और असिद्धि में निर्विकार कर्ता सात्त्विक है। रागयुक्त, कर्मफल की इच्छा रखनेवाला, लोभी, हिंस्रप्रकृति, अशुचि, हर्षशोकयुक्त कर्ता राजस है। अयोग्य, असावधान, विवेक-विहीन, उग्रस्वभाव, शठ, आलसी, विषण्णचित्त और दीर्घसूत्री कर्ता तामस है।

हे पार्थ, गुण-भेद से बुद्धि और धृति के भी तीन भेद हैं; उन्हें सुनो। मैं अलग-अलग विस्तार के साथ उनका वर्णन करता हूँ। जिस बुद्धि के द्वारा प्रवृत्ति-निवृत्ति, कार्य-अकार्य, भय-अभय, बन्ध-मोक्ष आदि विषय अच्छी तरह जाने जाते हैं, वह सात्त्विक है। जिसके द्वारा धर्म-अधर्म, कार्य-अकार्य, विशेष रूप से नहीं जाने जाते, वह बुद्धि राजसी है। जो बुद्धि अज्ञान से आच्छन्न होकर अधर्म को धर्म और सब पदार्थों का रूप उलटा दिखाती है, वह तामसी है।

जो धृति योगाभ्यास के कारण अन्य विषय को धारण न करके मन, प्राण और इन्द्रियों के सब कार्यों को धारण करती है वह सात्त्विकी है। जो धृति धर्म आदि के सम्बन्ध से—

फल की आशा से—धर्म, अर्थ, काम को धारण करती है, वह राजसी है। दुर्मति पुरुष जिसके प्रभाव से स्वप्न, भय, शोक, विषाद और मद का त्याग नहीं कर सकते, वही तामसी धैर्य है।

हे भरतश्रेष्ठ! जिस सुख में अभ्यासवश जी लग जाता है और जिसे प्राप्त करने पर सब प्रकार के दुःख शान्त होते हैं उस त्रिविध सुख का वर्णन करता हूँ—सुनो। जो पहले तो विष सा किन्तु परिणाम में अमृत सा होता है तथा जिसके द्वारा आत्मा और बुद्धि की प्रसन्नता होती है, वही सात्त्विक सुख है। विषयां और इन्द्रियां के संयोग द्वारा जो पहले अमृत सा और अन्त को विष सा जान पड़ता है, वह राजस सुख है। जो पहले भी और पीछे भी आत्मा को मोह में डालता है तथा जो निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होता है, वह तामस सुख है।

पृथ्वी पर सब जीव और स्वर्ग में सब देवता इन स्वाभाविक तीनों गुणों के अधीन हैं। कहीं कोई ऐसा नहीं जिसमें इन तीनों गुणों में से एक गुण न हो। इन प्राकृतिक तीनों गुणों के द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन चारों वर्णों के कर्मों का विभाग हुआ है। शम, दम, शौच, तप्ता, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता, ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म हैं। शूरता, तेज, धृति, निपुणता या सबके प्रति अनुकूलता, युद्ध से विमुख न होना, दान और स्वामिभाव, ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं। खेती, गो-पालन और बनिज-वैपार करना वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं। द्विजों की अर्थात् तीनों वर्णों की सेवा करना ही शूद्र का स्वाभाविक कर्म है। इस प्रकार चारों वर्णों के मनुष्य अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में लगे रहने से अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त करते हैं।

हे अर्जुन! अपने-अपने कर्म में लगे हुए लोग जिस तरह सिद्धि प्राप्त करते हैं, सो सुनो। जिनसे सब प्राणियों की प्रवृत्ति प्रकट हुई है और जो इस विश्व भर में सर्वत्र व्याप्त हैं उनकी, अपने-अपने कर्मों के पालन द्वारा, पूजा करने से मनुष्य सिद्धि पाते हैं। अच्छी तरह अनुष्ठित पर-धर्म की अपेक्षा अङ्गहीन अपना धर्म ही श्रेष्ठ है; क्योंकि स्वभाव-निर्दिष्ट कार्य करते रहने से क्लेश नहीं भोगना होता। हे कुन्तीपुत्र! जैसे आग धुएँ से आच्छन्न रहती है, वैसे ही सब कर्म दोषों से आवृत हैं। इसलिए अपने स्वाभाविक कर्म को, दापयुक्त होने पर भी, छोड़ बैठना कदापि उचित नहीं। अनासक्त, जितेन्द्रिय, स्पृहाशून्य व्यक्ति संन्यास के द्वारा सब प्रकार के कर्मों की निवृत्तिरूप सत्त्वशुद्धि पाते हैं।

हे अर्जुन! अब मैं तुमसे वह विषय कहता हूँ, जिससे सिद्ध पुरुष ब्रह्मपद का प्राप्त होते हैं; मन लगाकर सुनो। ऐसे मनुष्य को चाहिए कि बुद्धि को विशुद्ध बनाकर धैर्य के द्वारा उसे संयत करे; शब्द आदि विषयों के भोग को त्यागकर राग-द्वेष-रहित बने। मन, वाणी और काया की वृत्तियों को संयत करके वैराग्य का आश्रय और ध्यान तथा योग का अभ्यास करे। थोड़ा सा हल्का आहार करे, एकान्त स्थान में रहे। अहङ्कार, बल, दर्प, काम,

४०

५०

क्रोध, सङ्ग और सञ्चय का त्याग करें। ममताशून्य होकर शान्त भाव धारण करें। जो इस प्रकार अनुष्ठान करता है, वही ब्रह्मपद को प्राप्त कर सकता है। वह ब्रह्मनिष्ठ और प्रसन्नचित्त होकर शोक और लोभ के वशीभूत नहीं होता। वह सब जीवों को समदृष्टि से देखता है। मेरे ऊपर भी उसकी भक्ति सुदृढ़ होती है। वह अपनी भक्ति के प्रभाव से मेरे स्वरूप को और मेरे सर्वव्यापी भाव को जानकर अन्त को मुझमें ही लीन हो जाता है। मनुष्य मेरा आश्रय लेकर कर्मों का अनुष्ठान करते हुए मेरी ही कृपा के बल से मोक्षपद को प्राप्त होता है।

हे अर्जुन, तुम मनोवृत्ति द्वारा सब कर्म मुझे अर्पण करके मेरी शरण में आ जाओ। बुद्धियांग का आश्रय लेकर निरन्तर मुझमें ही चित्त लगाये रहो। ऐसा करने से तुम, मेरे अनुग्रह से, सब प्रकार के दुःखों से छुटकारा पा सकोगे। और जो तुम अहङ्कार के वश होकर मेरा कहा नहीं सुनेगे तो विनष्ट हो जाओगे। अगर तुम अहङ्कार के कारण “मैं नहीं लड़ूँगा” ऐसा समझते हो, तो तुम्हारा ऐसा खयाल करना व्यर्थ है; क्योंकि प्रकृति ही तुमको युद्ध में प्रवृत्त करेगी। तुम मोह के वश होकर इस समय जिस कार्य को नहीं करना चाहते वही कार्य ६० तुमको, क्षत्रियधर्म के वशीभूत होकर, अवश्य करना पड़ेगा। हे अर्जुन, ईश्वर सब प्राणियों के हृदय में स्थित होकर अपनी माया के बल से उन्हें भरमा रहा है। तुम सब प्रकार से उसी ईश्वर की शरण में जाओ। उसके प्रसाद से तुम परम शान्ति और मोक्षपद पाओगे।

हे पार्थ, मैंने तुम्हारे आगे गुह्य से भी गुह्यतम इस ज्ञान का वर्णन किया है। अब तुम अच्छी तरह इस पर विचार करके जो चाहो सो करो। तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, इसी कारण तुमसे परमगुह्य हित की बात कहता हूँ, सुनो। तुम मुझमें चित्त समर्पण करके, मेरे अनन्य भक्त होकर, मेरे उद्देश से प्रणाम और मेरी आराधना करो। मैं अङ्गीकार करता हूँ, तुम अवश्य मुझे पाओगे। तुम सब धर्मों को छोड़कर मेरी ही शरण में आओ। मैं तुमको सब पापों से छुड़ाऊँगा; तुम शोक मत करो। मैंने तुमको जो उपासना बताई है, जो उपदेश दिया है, वह तुम कभी धर्मातुष्टान-हीन, भक्ति-रहित, सुनने की इच्छा न रखनेवाले और विशेषकर मेरे द्रोही को न सुनाना। जो पुरुष भक्तिपरायण होकर मेरे भक्तों के आगे इस परमगुह्य विषय का वर्णन करेगा, वह निःसन्देह मुझको प्राप्त होगा। इस लोक में उससे बढ़कर मुझे प्यारा और कोई न होगा। उससे बढ़कर मेरा प्रिय करनेवाला भी और कोई नहीं होगा। हमारे-तुम्हारे इस ७० धर्ममय संवाद को जो कोई सुनेगा या पढ़ेगा वह, मेरी राय में, ज्ञान-यज्ञ से मेरी आराधना करेगा। जो मनुष्य असूया से बचा रहकर परम श्रद्धा के साथ हमारे-तुम्हारे इस संवाद को सुनेगा वह, सब पापों से बचकर, पुण्यकर्म करनेवालों के पवित्र लोकों की जायगा।

हे पार्थ, बतलाओ तुमने एकाग्रचित्त होकर यह संवाद सुना है न? अज्ञान से उपजा हुआ तुम्हारा मोह दूर हुआ कि नहीं?

अर्जुन ने कहा—हैं अच्युत, आपकी कृपा से मेरा सब मोह मिट गया और मुझे पूर्व-स्मृति प्राप्त हो गई। मेरा सब सन्देह दूर हो गया। अब मैं आपका कहा करूँगा।

सञ्जय कहते हैं—महाराज धृतराष्ट्र, मैंने इस तरह महात्मा वासुदेव और अर्जुन का यह अद्भुत लोमहर्षण संवाद सुना है। व्यासजी के प्रसाद से यह परम गुह्य योग मैंने योगेश्वर कृष्ण के मुख से सुना और यह अद्भुत परम पवित्र संवाद सुनकर तथा बारम्बार स्मरण कर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। महाराज, वासुदेव के उस अलौकिक विश्वरूप का स्मरण बारम्बार करके मुझे बड़ा विस्मय और हर्ष हो रहा है। इस समय मुझे जान पड़ता है कि जिस तरफ यागेश्वर वासुदेव और धनुर्धर अर्जुन हैं उसी पक्ष को अवश्य राजलक्ष्मी, विजय और अभ्युदय प्राप्त होगा। उधर ही नीति भी है।

७८

भीष्मवधपर्व

तैत्तलीसर्वां अध्याय

भीष्म आदि का समरभूमि में आना और युधिष्ठिर का उनके पास जाकर प्रणाम करना तथा जय का आशीर्वाद पाना

वैशम्पायन कहते हैं—गीता का उपदेश स्वयं श्रीकृष्ण ने किया है, उसी को भली भाँति पढ़ना चाहिए; और शास्त्रों का क्या प्रयोजन है? गीता में सब शास्त्रों का सार है; हरि में सब देवता हैं; गङ्गाजी में सब तीर्थ हैं और मनु में सब वेदों का सार है। गीता, गङ्गा, गायत्री और गोविन्द—इन चार गकारों का अनुशीलन करने से पुनर्जन्म नहीं होता। गीता के ६२० श्लोक श्रीकृष्ण ने, ७५ अर्जुन ने और ६७ सञ्जय ने कहे हैं। एक श्लोक धृतराष्ट्र का कहा हुआ है। भारत का अमृत-सर्वस्व जो गीता का मथितार्थ है उसका सार निकालकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मुख में दं दिया।

सञ्जय कहते हैं—महाराज, अर्जुन को फिर गाण्डीव धनुष और बाण हाथ में लेते देखकर सब महारथी योद्धा सिंहनाद करने लगे। पाण्डव और सृञ्जयगण, तथा जो लोग उनके साथी थे वे भी, समुद्र से निकले हुए बढ़िया शङ्ख बजाने लगे। सब लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उस समय एकाएक चारों ओर भेरी, पेशी, जयमङ्गल और गोशृङ्ग आदि तरह-तरह के बाजे बजने लगे। उनका वह तुमुल शब्द चारों ओर गूँज उठा। महाराज ! देवता, गन्धर्व, पितर, सिद्ध और चारुण्यगण युद्ध देखने की इच्छा से वहाँ आकर जमा होने लगे। महाभाग ऋषि लोग भी एकत्र होकर, इन्द्र को आगे करके, वह हत्याकाण्ड देखने के लिए वहाँ आ गये।

अब धर्मराज युधिष्ठिर ने दोनों ओर की सेना को युद्ध के लिए तैयार और बारम्बार सागरतुल्य चलायमान देखा तो कवच उतारकर शस्त्र रख दिये। वे रथ से उतरकर, पूर्वमुख



होकर, शत्रुसेना की ओर चले। पितामह भीष्म को सामने देखकर धीरे युधिष्ठिर मौन भाव से हाथ जोड़े पैदल चल दिये। युधिष्ठिर को इस तरह जाते देखकर अर्जुन शीघ्र ही रथ से उतर पड़े और भाइयों के साथ उनके पीछे चले। राजन्, वासुदेव भी उनके पीछे-पीछे जाने लगे। अन्यान्य राजा लोग भी उत्सुकता के साथ राजा युधिष्ठिर के पीछे चले। अब अर्जुन ने राजा युधिष्ठिर से कहा—महाराज, आप यह क्या करते हैं? हम लोगों को छाड़कर पैदल ही शत्रु-सेना में आप जा रहे हैं! भीमसेन ने कहा—राजन्! आप कवच और सब शस्त्र फेंककर, भाइयों को छाड़कर, कवच और शस्त्र आदि से सुसज्जित शत्रुओं के सामने कहाँ जा रहे

हैं? नकुल ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, आप हम लोगों के बड़े भाई हैं। आपको यों जाते देखकर मेरा हृदय डर और दुःख से पीड़ित हो रहा है। आप कहाँ जाते हैं? सहदेव ने कहा—हे नरेश, इस भयानक युद्धारम्भ के समय हमें छोड़कर शत्रुओं के सामने आप कहाँ जा रहे हैं?

सञ्जय कहते हैं—हे कौरव-राज, भाइयों के यों कहने पर भी युधिष्ठिर कुछ उत्तर न देकर वैसे ही जाने लगे। महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने हँसकर अर्जुन आदि से कहा—हे पाण्डवो, मैं इनका मतलब समझ गया। ये भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य आदि बड़े-बूढ़ों से आज्ञा लेकर शत्रुओं से युद्ध करना चाहते हैं। मैंने पहले सुन रक्खा है और मुझे खुद भी जान पड़ता है कि जो आदमी शास्त्र-विधि के अनुसार गुरुजन, वृद्ध और बान्धव आदि से आज्ञा लेकर प्रबल शत्रु से युद्ध करता है वह अवश्य विजयी होता है। और जो कोई गुरुजन का सम्मान बिना किये, उनकी आज्ञा बिना लिये, युद्ध करता है वह शत्रुओं से परास्त होता है।

श्रीकृष्ण इस प्रकार कह रहे थे कि उधर दुर्योधन की सेना में बड़ा हाहाकार होने लगा। कुछ लोग तो चुप हाँ गये और अनेक लोग युधिष्ठिर को आते देखकर शोर-गुल मचाने लगे।

दुर्योधन की सेना के योद्धा लोग दूर से युधिष्ठिर को आते देखकर आपस में कहने लगे—यं कुलकलङ्क युधिष्ठिर अवश्य युद्ध से डरकर भीष्म पितामह के पास आ रहे हैं। भाइयों सहित राजा युधिष्ठिर शरणप्रार्थी होकर आ रहे हैं। अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव के सहायक होने पर भी युधिष्ठिर क्यों डर गये ? ये अल्पपराक्रमी युधिष्ठिर युद्ध से डर गये हैं, इससे जान पड़ता है कि इनका जन्म जगत्प्रसिद्ध चत्रियकुल में नहीं हुआ।

अब सैनिक लोग प्रसन्नता से कौरवों की बड़ाई करने लगे। कुछ लोग प्रसन्न होकर दुपट्टे आदि हिला-हिलाकर हर्ष सूचित करने लगे। राजन्, आपके पक्ष के योद्धा लोग भाइयों सहित युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण की निन्दा करने लगे। इस प्रकार युधिष्ठिर को धिक्कार दे चुकने पर कौरव-सेना में सन्नाटा छा गया। उस समय दोनों पक्ष के योद्धाओं के मन में, युधिष्ठिर के बारे में, तरह-तरह की शङ्काएँ होने लगीं। वे सोचने लगे कि आखिर राजा युधिष्ठिर क्या कहना चाहते हैं ! भीष्म क्या जवाब देंगे ? समरप्रिय भीमसेन क्या कहेंगे ? श्रीकृष्ण और अर्जुन ही क्या कहना चाहते हैं ?

भाइयों-सहित राजा युधिष्ठिर शर-शक्ति-सङ्कुल कौरव-सेना के भीतर पहुँचकर फुर्ती से भीष्म पितामह की ही ओर चले। युद्ध के लिए तैयार खड़े हुए भीष्म के पास पहुँचकर, उनके पैर छूकर, राजा युधिष्ठिर कहने लगे—हे समरदुर्दर्प, हे तात ! मेरा निवेदन यह है कि हम लोग आपके साथ युद्ध करेंगे। आप आज्ञा और आशीर्वाद दीजिए।

भीष्म ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, जो तुम इस तरह आकर मुझसे युद्ध की अनुमति न माँगते तो मैं तुमको पराजय का शाप दे देता। पुत्र, अब मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम युद्ध में जय प्राप्त करो, तुम्हारी इच्छा पूरी हो। जाओ, युद्ध करो। हे पार्थ, और तुम मुझसे क्या चाहते हो ? मुझसे यथेष्ट वरदान माँग लो। महाराज, ऐसा होने से किसी तरह तुम्हारी हार नहीं हो सकती। राजन्, यह सच है कि मनुष्य धन का दास है; धन किसी का दास नहीं है। ४० मुझे धन से ही कौरवों ने अधीन कर रक्खा है। हे कुरुनन्दन, इसी से नामदों की तरह मैं तुमसे कहता हूँ कि मुझे कौरवों ने धन और वृत्ति देकर अपने अधीन बना रक्खा है। बोलो, तुम युद्ध-साहाय्य के सिवा मुझसे और क्या चाहते हो ?

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे प्राज्ञ, आप मदा मेरा हित चाहते हुए सलाह दें और दुर्योधन के लिए युद्ध करें। [अर्थात् मन से तो मेरा हित चाहें और शरीर से दुर्योधन का पक्ष लेकर लड़ें] यही वर मैं माँगता हूँ।

भीष्म ने कहा—हे कौरवश्रेष्ठ, मैं इस विषय में तुम्हें क्या सहायता दे सकता हूँ ? मैं दुर्योधन के लिए युद्ध करूँगा। इस कारण युद्ध के सिवा जो चाहो सो कहो।

युधिष्ठिर ने कहा—मैं अपने हित की यह सलाह आपसे चाहता हूँ कि आपको मैं संग्राम में किस तरह जीत सकता हूँ। आपको कोई हरा नहीं सकता, मार नहीं सकता। इसलिए यदि आप मेरा कल्याण चाहते हैं तो अपनी मृत्यु का उपाय मुझे बता दीजिए।

भीष्म ने कहा—हे युधिष्ठिर, मैं जब संग्राम करता हूँ तब ऐसा कोई नहीं देख पड़ता जो मुझे जीत लें। साक्षान् इन्द्र भी मुझे न तो जीत सकते हैं और न मार सकते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—पितामह, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। इसी कारण तो मैं पृष्ठता हूँ कि आप समर में शत्रुओं के हाथ से अपने मार जाने का उपाय मुझे बता दीजिए।

भीष्म ने कहा—बेटा, यह तो मैं तुमसे कह चुका कि संग्राम में ऐसा कोई देख नहीं पड़ता जो मुझे जीत सके। अभी मेरी मृत्यु का समय भी नहीं आया है। इसलिए अभी जाओ, मेरे पास फिर आना।

सञ्जय कहते हैं—तब महाबाहु महाराज युधिष्ठिर भीष्म की इस आज्ञा को मानकर, उन्हें प्रणाम और प्रदक्षिणा करके, वहाँ से चल दिये। इसके बाद वे अपने भाइयों के साथ ५० कीरव सेना के सामने आचार्य द्रोण के रथ के पास पहुँचे। दुर्धर्ष द्रोणाचार्य के पास पहुँच-



कर, प्रदक्षिणा और प्रणाम करके, राजा युधिष्ठिर ने कहा—भगवन्! आज्ञा दीजिए, मैं आपसे धर्मयुद्ध करना चाहता हूँ। आपकी आज्ञा लेकर किस तरह मैं अपने सब शत्रुओं को जीत सकूँगा, यह भी कृपा करके बतलाइए।

द्रोण ने कहा—राजन, तुम अगर युद्ध का निश्चय करने के बाद युद्धारम्भ के पहले मेरे पास आज्ञा लेने न आते तो अवश्य मैं तुमको हारने का शाप दे देता। हे युधिष्ठिर! तुमने आकर मेरा सत्कार किया, इस कारण मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ। मैं तुमको युद्ध की आज्ञा देता हूँ। जाओ युद्ध करो, विजय प्राप्त करो। तुम्हारी सब इच्छाएँ पूरी हों। बोलो, युद्ध के साहाय्य के सिवा और क्या चाहते हो? तुम अपनी इच्छा प्रकट करो, मैं उसे पूर्ण करूँगा। यह सच है कि धन किसी के अधीन नहीं है, धन के ही अधीन सब लोग

हैं। मुझे कौरवों ने धन के द्वारा अपने अधीन कर रक्खा है। इसी कारण नामदों की तरह कहता हूँ कि युद्ध-साहाय्य के सिवा और क्या चाहते हो? मैं युद्ध तो कौरवों की ओर से करूँगा, लेकिन हृदय से जय तुम्हारी ही चाहूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—ब्रह्मन्, मैं आपसे यही वर माँगता हूँ कि दुर्योधन के लिए लड़िए, मेरी जय मनाइए और मुझे हित की सलाह दीजिए।

द्रोण ने कहा—राजन्, साक्षात् कृष्ण जब तुम्हारे मन्त्रो हैं तब तुम्हारी जीत होने में तो कोई सन्देह ही नहीं है। मैं तुमको आशीर्वाद देता हूँ, तुम युद्ध में शत्रुओं को जीतेगो। हे कुन्तीनन्दन, जहाँ धर्म है वहीं कृष्ण हैं और जहाँ कृष्ण हैं वहीं जय है। इसलिए जाओ, युद्ध करो। और जो कुछ पूछना हो सो पूछो—मैं तुमसे कहूँगा।

६०

युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, जो मेरी इच्छा है वह मैं आपसे पूछता हूँ, सुनिए। आप अजेय हैं; मैं आपको किस तरह सङ्ग्राम में जीत सकूँगा?

द्रोण ने कहा—राजन्, मैं जब तक युद्धभूमि में लड़ूँगा तब तक तुम जय नहीं प्राप्त कर सकते। इसलिए भाइयों के साथ तुम शीघ्र मुझे मारने का यत्न करो।

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे आचार्य, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप कृपा करके अपनी मृत्यु का उपाय मुझे बताइए।

द्रोणाचार्य ने कहा—हे तात, मैं जब क्रोधपूर्वक बाणों की वर्षा करता रहूँ तो उस समय मुझे कोई भी नहीं मार सकता। हाँ, अगर मैं युद्धभूमि में अस्त्र आदि रखकर अचेतन की तरह स्थित होऊँ तो, उस प्रायःपवेशन की अवस्था में, मारा जा सकता हूँ। मैं तुमसे सच कहता हूँ, विश्वास योग्य सत्यवादी पुरुष के मुँह से कोई अत्यन्त अप्रिय समाचार सुनते ही मैं युद्धभूमि में हथियार रख दूँगा।

अब द्रोणाचार्य का सम्मान करके राजा युधिष्ठिर वीर कृपाचार्य के पास पहुँचे। प्रणाम और प्रदक्षिणा करके धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—हे आचार्य, मुझे युद्ध करने की आज्ञा दीजिए। मैं न्यायपूर्वक युद्ध करूँगा। अनुमति और आशीर्वाद दीजिए कि मैं आपकी आज्ञा पाकर युद्ध में सब शत्रुओं को जीत सकूँ।

कृपाचार्य ने कहा—राजन्, युद्ध के लिए निश्चय करके अगर तुम मेरी आज्ञा लिये बिना युद्ध करने लगते तो अवश्य मैं कुपित होकर तुमको हारने का शाप दे देता। राजन्, यह सत्य है कि पुरुष धन का दास है; धन किसी का दास नहीं है। धन के द्वारा कौरवों ने मुझे अपने अधीन कर लिया है। इसलिए मैं उन्हीं की ओर से युद्ध करूँगा। बोलो, युद्ध-साहाय्य के सिवा मुझसे और क्या चाहते हो? धन के कारण मैं कौरवों के अधीन हूँ, इसी से नामदों की तरह तुमसे ये बातें कह रहा हूँ।

७०

“हे आचार्य ! मैं आपसे पूछता हूँ, सुनिए—” इतना कहकर ही राजा युधिष्ठिर व्यथा के मारे अचेत से हो गये; आगे कुछ नहीं कह सके। राजा युधिष्ठिर के अभिप्राय को समझकर कृपाचार्य ने कहा—राजन्, तुम्हारे यों आकर आज्ञा माँगने से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। जाओ, युद्ध करो और जय पाओ। किन्तु मैं अवध्य हूँ; मारा नहीं जा सकता। मैं तुमसे वादा करता हूँ और सच कहता हूँ कि नित्य सबेरे उठकर ईश्वर से तुम्हारे जीतने की प्रार्थना करूँगा।

महाराज ! कृपाचार्य के ये वचन सुनकर, उनका सम्मान करके, राजा युधिष्ठिर मदनरेश शल्य के पास गये। उनको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके राजा ने अपने कल्याण की बात कही—मामाजी, मैं आपसे युद्ध की आज्ञा माँगता हूँ। मैं न्यायपूर्वक युद्ध करूँगा। आज्ञा और आशीर्वाद दीजिए कि मैं युद्ध में शत्रुओं को जीत सकूँ।

शल्य ने कहा—राजन्, तुम युद्ध के लिए निश्चय करने के बाद जो मुझसे आज्ञा माँगने न आते तो अवश्य मैं तुमको युद्ध में परास्त होने का शाप दे देता। तुमने आकर मेरा सम्मान किया, इससे मैं तुम पर सन्तुष्ट हूँ। तुम जो चाहते हो वही होगा। मैं तुमको आज्ञा देता हूँ, युद्ध करो और जय पाओ। तुम और क्या चाहते हो ? मैं तुमको क्या दूँ ? बोलो, युद्ध-साहाय्य के सिवा और क्या चाहते हो ? हे राजेन्द्र, यह सच है कि मनुष्य धन का दास है, धन किसी का दाम नहीं है। मुझे धन के द्वारा कौरवों ने अपने वश में कर लिया है। इसी से नामर्दों की तरह मैं तुमसे कह रहा हूँ कि युद्ध-साहाय्य के सिवा और क्या चाहते हो ? मैं सच कहता हूँ, तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा।

धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—राजन्, मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि नित्य मेरे हित को सोचिए और इच्छानुसार कौरवों की ओर से लड़िए।

शल्य ने कहा—हे युधिष्ठिर, मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ ? मुझे कौरवों ने धन के द्वारा अपने वश में कर लिया है; इस कारण मैं उन्हीं की ओर से युद्ध करूँगा।

युधिष्ठिर ने कहा—मामाजी, मैं वही वरदान आपसे माँगता हूँ जो आप पहले सोच चुके हैं। आप संग्राम में कर्ण का उत्साह और तेज अपनी बातों से घटाने की चेष्टा करते रहिएगा।

शल्य ने कहा—हे कुन्तीपुत्र, तुम्हारी यह इच्छा पूरी होगी। मैं तुमसे इसका वादा करता हूँ, विश्वास करो। जाओ युद्ध करो।

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! राजा युधिष्ठिर इस प्रकार शल्य को सम्मानित करके भाइयों के साथ भयङ्कर शत्रुसेना से बाहर निकल आये। उधर वासुदेव ने कर्ण के पास जाकर कहा—हे वीर, मैंने सुना है कि तुम भीष्म से विद्वेष रखने के कारण जब तक संग्रामभूमि में भीष्म रहेंगे तब तक युद्ध नहीं करोगे। इसलिए जब तक भीष्म मारे न जायें तब तक तुम हमी लोगों

की ओर से युद्ध करो। जो तुम दोनों पक्षों को समान दृष्टि से देखते हो तो भीष्म के मारे जाने ८० पर फिर दुर्योधन की सहायता के लिए उस ओर जाकर युद्ध करने लगना।

कर्ण ने कहा—हे केशव, मैं कभी दुर्योधन का अप्रिय नहीं कर सकता। दुर्योधन के हित के लिए प्राण देने में भी मुझे सङ्कोच नहीं हो सकता।

हे भारत, कर्ण के ये वचन सुनकर वहाँ से लौटकर श्रीकृष्ण फिर पाण्डवों के पास आ गये। अब पाण्डवों के बड़े भाई युधिष्ठिर ने सेना के बीच में खड़े होकर ऊँचे स्वर से कहा—इस युद्ध-भूमि में जो कोई हमारा हित चाहनेवाला हो उसे हम अपने पक्ष में सम्मिलित होने के लिए बुलाते हैं। वह हमारी सहायता करने के लिए आ सकता है। तब (वैश्या के गर्भ से उत्पन्न धृतराष्ट्र के पुत्र) युयुत्सु ने पाण्डवों की ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक युधिष्ठिर से कहा—महाराज, यदि आप लोग मुझे ग्रहण करें तो मैं आपके पक्ष में होकर दुर्योधन आदि से युद्ध करने को तैयार हूँ।

युधिष्ठिर ने कहा—भाई युयुत्सु, आओ आओ। वासुदेव और हम सब तुमको वरण करते हैं। तुम हमारी ओर होकर, हमारे साथ होकर, अपने मूढ़ भाइयों से युद्ध करो। धृतराष्ट्र के वंश और पिण्ड की रक्षा तुम्हीं से होगी। हे राजपुत्र! मैं अनुमति देता हूँ, तुम हमारे पक्ष में आ जाओ। अत्यन्त असहनशील दुर्बुद्धि दुर्योधन निःसन्देह मारा जायगा।



सञ्जय कहते हैं—राजन्, इसके बाद युयुत्सु अपने भाइयों को छोड़कर डङ्का बजाते हुए पाण्डवों की सेना में आ गये। राजा युधिष्ठिर ने प्रसन्न होकर फिर सुवर्णमय चमकीला कवच १०० पहन लिया। और-और योद्धा लोग भी अपने-अपने रथों पर चढ़कर, पहले की तरह फिर व्यूह बनाकर, असंख्य नगाड़े आदि बजाते हुए घोर सिंहनाद करने लगे। पुरुषसिंह धृष्टद्युम्न आदि राजा लोग पाण्डवों को फिर रथ पर सवार और युद्ध करने को उद्यत देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। मान्य पुरुषों के मान की रक्षा करनेवाले पाण्डवों का गौरव देखकर सब राजा लोग उनकी प्रशंसा करते हुए उनके समयानुकूल सौहार्द, कृपालुता और बन्धु-बान्धवों के प्रति असाधारण दया आदि

की चर्चा करने लगे । चारों ओर लोग पाण्डवों की स्तुति करते हुए उन्हें साधुवाद देने लगे । वहाँ स्लेच्छ जाति या आर्यजाति के जिन लोगों ने पाण्डवों को देखा या सुना, वे सभी गद्गद होकर रोने लगे । इसी समय सैकड़ों-हज़ारों नगाड़ों और दूध के समान सफ़ेद रङ्ग के शङ्खों १०८ को मनस्वी वीरगण प्रसन्न होकर बजाने लगे ।

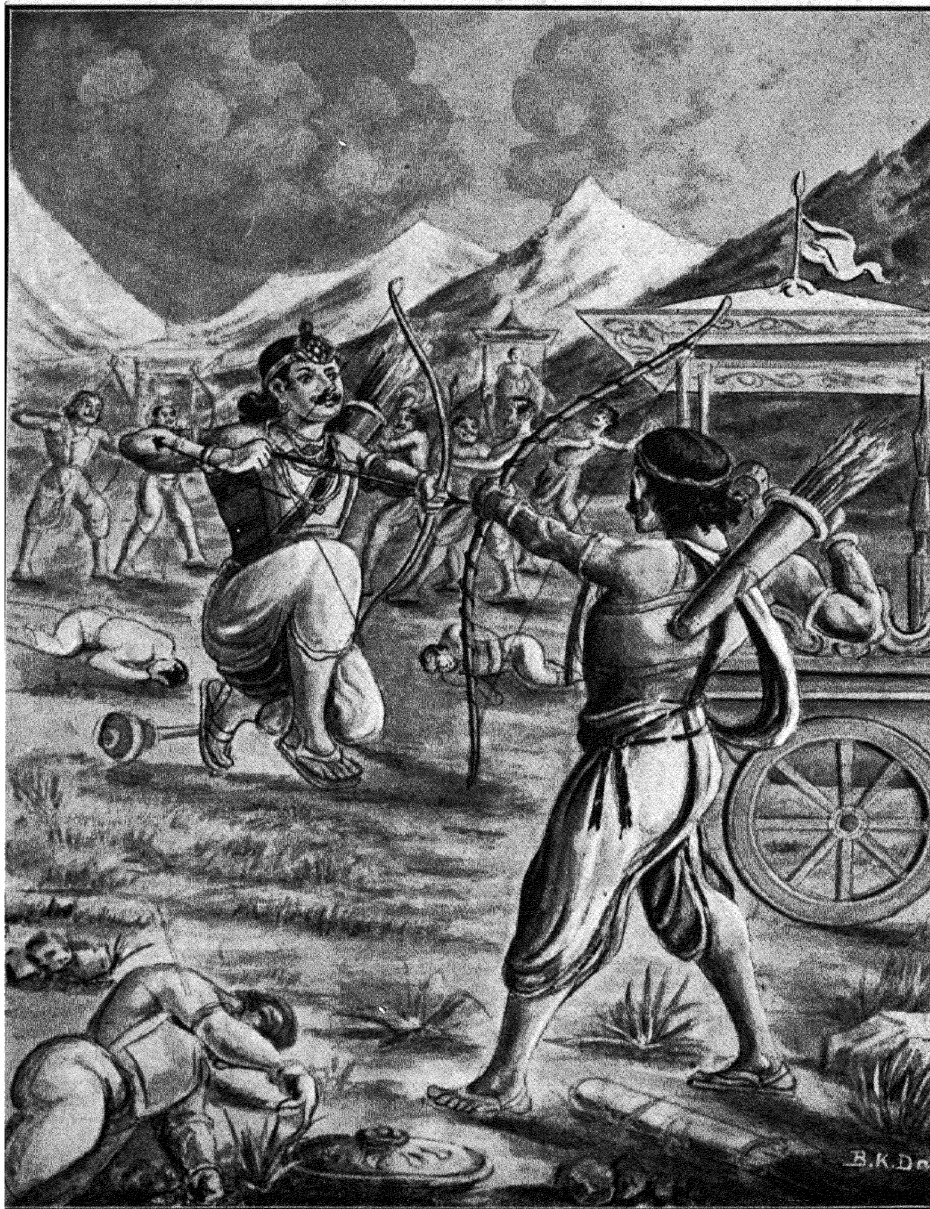
चवालीसवाँ अध्याय

युद्ध का आरम्भ

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय, दोनों ओर की सेना में व्यूह-रचना हो चुकने पर किसने पहले प्रहार किया ? कौरवों ने या पाण्डवों ने ?

सञ्जय ने कहा—राजन् ! आपके कुँअर दुःशासन, दुर्योधन की आज्ञा के अनुसार, भीष्म को आगे करके सेना-सहित युद्ध के लिए आगे बढ़े । पाण्डव लोग भी भीमसेन को आगे करके प्रसन्नतापूर्वक भीष्म के साथ युद्ध करने की इच्छा से आगे बढ़े । इसके बाद दोनों पक्षों की सेना में भेरी, मृदङ्ग, गान्धर्व, मुरज आदि बाजों का शब्द, रथ के पहियों का शब्द, वीरों की किलकार और सिंहनाद का शब्द, हाथियों और घोड़ों का शब्द चारों ओर गूँज उठा । दोनों ओर के याँझा तर्जन-गर्जन और सिंहनाद करते ललकारते एक दूसरे की तरफ़ भपटने लगे । बड़ा भारी कोलाहल आकाश तक छा गया । इस तरह दोनों पक्षों की मुठभेड़ होने पर पाण्डवों और कौरवों की भारी सेनाएँ, आँधी से हिलाये गये वनों की तरह, शङ्ख और मृदङ्ग आदि के शब्दों से उत्तेजित होकर, आन्दोलित हो उठीं । महाराज ! उस अशुभ घोर समय में हाथी, घोड़े, रथ आदि से परिपूर्ण दोनों सेनाओं में वैसा ही कोलाहल सुन पड़ने लगा जैसे तूफ़ान आने के समय क्षोभ को प्राप्त समुद्र में भयानक शब्द उठता है ।

राजन्, उस रामाञ्चकारी तुमुल शब्द के उठने पर महाबाहु भीमसेन बली साँड़ की तरह गरजने लगे । भीमसेन के उस शब्द ने शङ्ख और नगाड़ों के शब्द, हाथियों की चिंवार, हज़ारों १० घोड़ों की हिनहिनाहट और सैनिकों के सिंहनाद आदि सब प्रकार के शब्दों को दबा लिया । मेघ के समान गम्भीर शब्द से गरजते हुए भीमसेन के उस, इन्द्र के वज्र के से, शब्द को सुनकर कौरवसेना अत्यन्त भयभीत हो उठी । जैसे क्षुद्र मृगगण सिंह का भयङ्कर शब्द सुनकर मल-मूत्र कर देते हैं वैसे ही हाथी-घोड़े आदि वाहन भीमसेन की गर्जना से डरकर मल-मूत्र-त्याग करने लगे । महावीर भीमसेन मेघगर्जनतुल्य अत्यन्त घोर शब्द करके अपने घोर रूप से आपके पुत्रों को डराते हुए कौरवसेना की ओर बढ़े । तब दुर्योधन, दुर्मुख, दुःसह, अतिरथ, दुःशासन, शल, दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, महारथ, विकर्ण, पुरुमित्र, जय आदि महावीर, भोजवर्षा



सोमदत्त-तनय ने एक वाण से शंख के दाहिने हाथ में घाव करके उनके कन्धे पर और एक वाण मारा ।—पृ० १६६५

यादव कृतवर्मा और सोमदत्त के पुत्र आदि सब वीर विजली-सहित बादलों की तरह बड़े-बड़े धनुषों को चढ़ाकर, केंचुल से निकले नागों के स्वरूपवाले, नाराच बाणों को तरकसों से निकालने लगे। मेघ जैसे सूर्य को ढकना चाहते हैं, वैसे ही ये लोग बाण-वर्षा से भीमसेन को ढकते हुए चारों ओर से उन्हें घेरने की चेष्टा करने लगे। इधर द्रौपदी के पाँचों पुत्र, अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और धृष्टद्युम्न आदि वीरगण—पर्वत के शिखरों पर जैसे वज्रों की वर्षा हो वैसे—दुर्योधन आदि के ऊपर बाण बरसाने लगे। भयानक प्रत्यञ्चा-शब्द से परिपूर्ण उस भयङ्कर युद्ध में पाण्डवपक्ष या कौरवपक्ष का कोई भी योद्धा विमुख नहीं हुआ। महाराज, उस समय मैं द्रोणाचार्य के शिष्यों के हाथ की फुर्ती अपनी आँखों से देखने लगा। वे लोग निमित्तवेधी और शब्दवेधी बाणों की वर्षा वेग से कर रहे थे। धनुषों की डोरियों का शब्द उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था। आकाश से गिरनेवाली उल्काओं की तरह प्रज्वलित बाण बराबर धनुषों से छूट रहे थे। अन्य सब योद्धा राजा लोग दर्शकों की तरह अलग खड़े होकर उन भाइयों के भयानक युद्ध को देखने लगे।

२०

अब महारथी लोग परस्पर किये गये अपराधों को स्मरण करके, कुपित होकर, स्पर्धा के साथ एक दूसरे से युद्ध करने लगे। हाथी, घोड़े, रथ आदि से परिपूर्ण कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ उस समय युद्धभूमि में चित्रपट में लिखी सी देख पड़ने लगीं। सेना के चलने-फिरने से उड़ी हुई अपार धूल ने आकाश तक पहुँचकर सूर्य को ढक लिया। धनुष हाथ में लिये राजा लोग दुर्योधन की आज्ञा से अपनी-अपनी सेना के साथ शत्रुओं की ओर चले। उस हाथी-घोड़े-रथ-शङ्ख भरी के नाद और धनुष बाण आदि से परिपूर्ण रणभूमि में उमड़े हुए समुद्र का सा तुमुल शब्द छा गया। उधर पाण्डवपक्ष के राजा लोग महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से सिंहनाद करते हुए दुर्योधन की सेना के ऊपर दूट पड़े। इस प्रकार दोनों पक्ष की सेना परस्पर घोर युद्ध करने लगी। दोनों ओर की सेना में कोई तो युद्ध कर रहा था, कोई भाग खड़ा हुआ और कोई-फिर लौट पड़ा। ऐसी हलचल मच गई कि अपना-पराया पहचानना असम्भव हो गया, सब गुँथ से गये। महाराज, उस महाभयानक युद्धभूमि के बीच पितामह भीष्म की शोभा सबसे बढ़कर हो रही थी।

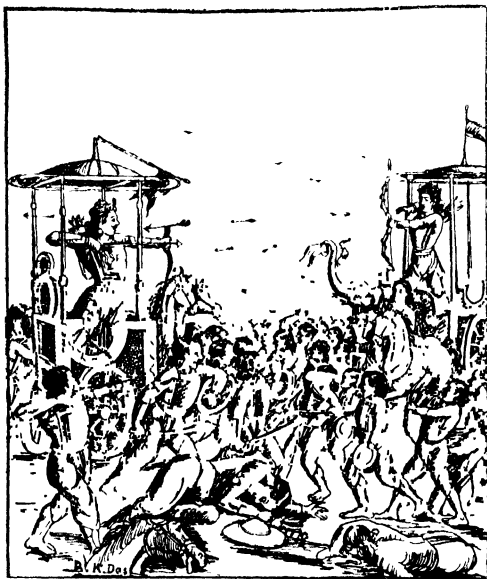
३०

पैंतालीसवाँ अध्याय

द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन

सञ्जय कहते हैं—महाराज, उस भयङ्कर युद्ध-दिन में सबेरे महाघोर युद्ध होने लगा। उसमें राजा लोग घायल होने और कटने लगे। कौरव और सृञ्जयगण परस्पर जीतने की इच्छा

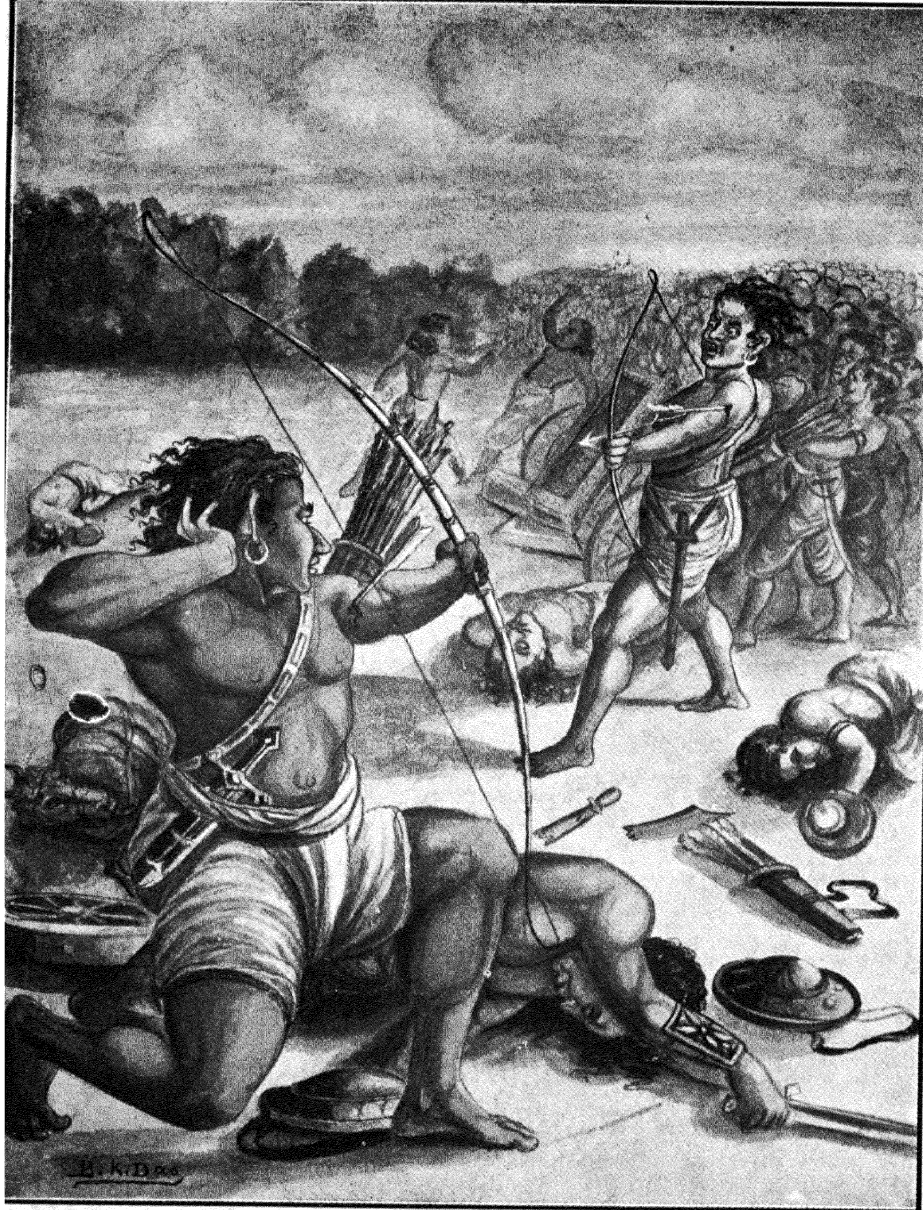
से सिंहनाद करके पृथ्वीमण्डल और आकाशमण्डल को बारम्बार प्रतिध्वनित करने लगे। हे भारत ! सैनिकों की किलकारी, ताल ठोकने का शब्द, शङ्खनाद, परस्पर स्पर्धा के साथ सिंहनाद, तलत्राण से टकराई हुई प्रत्यङ्घ्राओं का शब्द, पैदल सिपाहियों के चलने का शब्द, घोड़ों की घोर हिनहिनाहट, एक दूसरे की ओर झपटते हुए हाथियों के तोत्र, अंकुश और घण्टा आदि का शब्द, हथियारों की झनझनाहट और मेघों के गरजने के समान रथों के पहियों की घर-घराहट, इन सब शब्दों ने मिलकर ऐसे महाभयानक विचित्र महाशब्द को पैदा कर दिया जिससे रंगटे खड़े हो गये। तब जीवन की ममता छोड़कर, मन को क्रूर निठुर बनाकर, रथों पर फहराती हुई ध्वजाओं से सुशोभित वीर कौरवगण पाण्डवों के सामने चले। भीष्म पितामह कालदण्डतुल्य धनुष लेकर अर्जुन की ओर बढ़े। तेजस्वी अर्जुन भी लोकप्रसिद्ध गाण्डीव धनुष लेकर भीष्म की ओर झपटे। परस्पर वध करने की इच्छा रखनेवाले वे दोनों वीर युद्ध करने लगे। अर्जुन को अपने बाणों के प्रहार से भीष्म तनिक भी विचलित नहीं कर सके, वैसे ही अर्जुन भी प्रहार करके भीष्म को विचलित करने में असमर्थ ही रहे। उधर महाधनुर्धर सात्यकि कृतवर्मा से युद्ध करने लगे। दोनों का रामाश्व पैदा कर देनेवाला घोर



युद्ध होने लगा। दोनों वीर एक दूसरे पर आक्रमण करके प्रहार करने लगे। दोनों के शरीर बाणों से घायल हो गये। दोनों महाबली वीर घायल होकर वसन्त में फूले हुए ढाक के पेड़ों के समान शोभायमान हुए।

महाधनुर्धर अभिमन्यु ने कोशलेश्वर राजा बृहद्रथ के ऊपर आक्रमण किया। राजा बृहद्रथ ने अभिमन्यु को रथ की ध्वजा काट डाली और उनके सारथी को मार गिराया। अभिमन्यु ने भी क्रुद्ध होकर नव बाण मारकर उन्हें बेतरह घायल कर दिया। इसके बाद दो तीक्ष्ण भल्ल बाण लेकर एक से उनके रथ की ध्वजा काट डाली और एक से

उनके पृष्ठरक्षक सारथी को मार डाला। इस प्रकार दोनों ही शत्रुनाशन वीर तीक्ष्ण बाणों के द्वारा परस्पर प्रहार करने लगे।



कूरकर्मा घटोत्कच ने राक्षसराज अलम्बुष के ऊपर वैसे ही आक्रमण किया, जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर पर किया था ।—पृ० १६६५

महाराज ! भीमसेन ने महारथी, अभिमानी और युद्ध में शेखी दिखानेवाले आपके पुत्र दुर्योधन के ऊपर आक्रमण किया । वे दोनों चित्रयांही महाबली वीर युद्धभूमि में परस्पर बाणों की वर्षा करके ऐसा युद्ध करने लगे कि उसे देखकर सब प्राणियों को बड़ा आश्चर्य हुआ । २०

दुःशासन ने महाबली नकुल पर आक्रमण करके उनको पैंने दस बाण मारे । नकुल ने हँसकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों के द्वारा दुःशासन के वे बाण, धनुष और उनकी ध्वजा काट डाली । इससे कुपित होकर आपके पुत्र ने नकुल के ऊपर पचीस चुद्रक बाण मारकर उनकी ध्वजा काट गिराई और रथ के घोड़ों को भी मार डाला ।

उधर दुर्मुख ने समरप्रिय पराक्रमी सहदेव के सामने पहुँचकर अनेक बाणों से उन्हें घायल किया । सहदेव ने अत्यन्त तीक्ष्ण बाण मारकर उनके सारथी को मार डाला । ये दोनों वीर भी इस प्रकार आक्रमण करके जय की इच्छा से एक दूसरे पर बाण बरसाने लगे ।

स्वयं महाराज युधिष्ठिर मद्राज शल्य से युद्ध करने गये । शल्य ने देखते ही तीक्ष्ण बाण से उनके धनुष के दो टुकड़े कर डाले । युधिष्ठिर ने उसी दम दूसरा धनुष लेकर अत्यन्त क्रोध से फुर्ती के साथ सन्नतपर्व बाणों की वर्षा से शल्य को छिपा दिया और फिर “ठहरो-ठहरो” कहकर वे तर्जन करने लगे । ३०

धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य के सामने गये । द्रोण ने क्रांन्धपूर्वक एक बाण से धृष्टद्युम्न के सुहृद् और मृत्युद्वार-स्वरूप धनुष को फुर्ती के साथ तीन जगह से काट डाला । फिर यमदण्डमदृश महाभयङ्कर एक बाण मारकर धृष्टद्युम्न को घायल कर दिया । धृष्टद्युम्न ने उसी दम दूसरा धनुष लेकर द्रोणाचार्य को चौदह बाण मारे । इस तरह क्रुद्ध होकर वे दोनों वीर युद्ध करने लगे ।

महावेगशाली विराट-पुत्र शङ्ख ने सोमदत्त के पुत्र पर आक्रमण किया । सोमदत्त तनय ने एक बाण से शङ्ख के दाहने हाथ में घाव करके उनके कन्धे पर और एक बाण मारा । इस प्रकार दर्प से भरे दोनों वीर, देवता और दानव के समान, महाभयानक युद्ध करने लगे ।

वीर धृष्टकेतु ने क्रुद्ध होकर वाल्मीकिराज पर आक्रमण किया । वे भी बाण-वर्षा से धृष्टकेतु को मोहित करके सिंहनाद करने लगे । चेदि-नरेश धृष्टकेतु ने क्रोधान्ध होकर मतवाले हाथों की तरह उन पर आक्रमण किया और शीघ्र ही नव बाण मारकर उनको घायल कर दिया । इस प्रकार क्रोध के साथ तर्जन-गर्जन करके, मङ्गल और बुध ग्रह की तरह, स्पर्धापूर्वक दोनों वीर युद्ध करने लगे । ४०

कूरकर्मा घटोत्कच ने राक्षसराज अलम्बुष के ऊपर वैसे ही आक्रमण किया, जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर पर किया था । अलम्बुष ने भी भीमसेन के पुत्र पर बहुत से बाण बरसाये । घटोत्कच ने नब्बे बाण मारकर अलम्बुष को घायल कर दिया । रणभूमि में बाणों से घायल दोनों वीर देवासुर-संग्राम में युद्ध करते हुए इन्द्र और बलासुर के समान शोभा को प्राप्त हुए ।

महाराज, अतुल बलवान् शिखण्डो अश्वत्थामा से युद्ध करने के लिए उनके सामने पहुँचे। अश्वत्थामा ने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाणों से शिखण्डो को घायल कर दिया; इससे वे विचलित हो गये। फिर शिखण्डो ने भी अश्वत्थामा के ऊपर पने बाण बरसाना शुरू किया। इसी तरह वे दोनों वीर एक दूसरे को बाणों से घायल करने लगे।

हे भारत, बाहिनीपति राजा विराट ने महाशूर भगदत्त के पास जाकर युद्ध आरम्भ कर ५० दिया। विराट ने क्रुद्ध होकर, पर्वत के ऊपर जलवर्षा के समान, भगदत्त के ऊपर बाण बरसाये।



मेघ जैसे सूर्य को ढक लेते हैं, वैसे ही भगदत्त ने बाणों से राजा विराट को ढक लिया।

कैकयनरेश बृहत्तत्र के पास पहुँचकर कृपाचार्य बाण बरसाने लगे। बृहत्तत्र ने भी अपने को बाणपिञ्जर के बीच देखकर कृपाचार्य के ऊपर बाण बरसाना शुरू किया। युद्धभूमि में दोनों के धनुष कट गये और रथ के धाड़े मर गये। तब दोनों ही खड्गयुद्ध करने लगे।

शत्रुमर्दन राजा द्रुपद क्रोध के वश हांकर जयद्रथ के सामने पहुँचे; सिन्धुपति जयद्रथ ने उनको तीन बाणों से घायल किया। द्रुपद भी क्रुद्ध होकर जयद्रथ के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। शुक और मङ्गल के तुल्य उन दोनों वीरों के भयङ्कर युद्ध को

देखकर दर्शक लोग अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। महाराज, महाबलशाली आपके पुत्र विकर्ण महावीर श्रुतसोम के सामने जाकर अत्यन्त घोर संप्राम करने लगे। दोनों ही समान तेजस्वी और वीर थे। इस कारण कोई किसी को विचलित न कर सका। उनका युद्ध देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

६०

पाण्डवों के हितैषी महारथी चेकितान क्रुद्ध होकर सुशर्मा के सामने आये। बाणवर्षा करके सुशर्मा महारथी चेकितान के आक्रमण को रोकने लगे। मेघ जैसे पर्वत के ऊपर पानी बरसाते हैं, वैसे ही चेकितान क्रोधान्ध होकर सुशर्मा के ऊपर बाण बरसाने लगे। सिंह जैसे मस्त हाथी को देखकर उधर झपटता है, वैसे ही गान्धारपति शकुनि महापराक्रमी युधिष्ठिर-पुत्र प्रतिविन्ध्य के ऊपर झपटे। इन्द्र जैसे दानव को क्षत-विक्षत कर डालें वैसे ही युधिष्ठिर के पुत्र ने कुपित होकर बाणवर्षा से शकुनि को बेहद घायल कर दिया।

महर्षेय के पुत्र महावीर श्रुतकर्मा काम्बोज देश के निवासी महापराक्रमी महारथी सुदक्षिण के पास झपटकर पहुँचे । घोर बाणों की वर्षा करके भी सुदक्षिण मैनाक पर्वतसदृश श्रुतकर्मा को युद्ध से न हटा सके । श्रुतकर्मा ने तीक्ष्ण बाणों से सुदक्षिण को घायल कर दिया । उधर अर्जुन के पुत्र, शत्रु-पक्ष के लिए कालस्तदृश, इरावान् ने क्रुद्ध होकर कुपित श्रुतायु का सामना किया । वे शत्रु के घोड़ों को मारकर, सिंहनाद करके, उसकी सेना को विचलित करने लगे । श्रुतायु ने भी क्रुद्ध होकर गदा के प्रहार से इरावान् के घोड़ों को मार डाला । इसी तरह दोनों का तुमुल संग्राम होने लगा । ७०

अवन्ति देश के राजा विन्द और अनुविन्द दोनों वीर, पुत्र और सेना सहित, महाराज कुन्तिभोज के साथ युद्ध करने आये । युद्ध में उन दोनों का घोर पराक्रम मैंने देखा । वे उस भारी सेना के साथ युद्ध करने लगे । अनुविन्द ने कुन्तिभोज को एक गदा मारी । कुन्तिभोज ने भी उनके ऊपर बाण चलाये । कुन्तिभोज के पुत्र ने विन्द के ऊपर बाण छोड़े । विन्द ने भी कुन्तिभोज के पुत्र को बाणों से घायल किया । उनका युद्ध देखकर सभी को आश्चर्य हुआ । केकय देश के राजकुमार पाँचों भाई अपनी सेना को साथ लेकर सैन्ययुक्त गान्धार देश के पाँच राजकुमारों से युद्ध कर रहे थे ।

आपके पुत्र वीरबाहु, श्रेष्ठ रथी विराट-पुत्र उत्तर के साथ युद्ध की इच्छा से, आगे बढ़े । वीरबाहु ने उत्तर को नव बाणों से घायल किया । महावीर उत्तर ने भी इतने बाण बरसाये कि वीरबाहु उनसे ढक गये । महावीर चेदि-पति उलूक के सामने आये और उन पर बाण बरसाने लगे । उलूक ने भी उनके ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की । युद्ध करते-करते दोनों के शरीर इतने घायल हो गये कि तिल भग भी शरीर बाणों के घाव से खाली नहीं रह गया; किन्तु कोई किसी को हरा नहीं सका । ८०

हे राजेन्द्र ! इस तरह कौरवों और पाण्डवों के पक्ष के हज़ारों रथ, हाथी, घोड़े आदि पर सवार और पैदल वीर योद्धा परस्पर अत्यन्त घोर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे । क्षण भर तो वह द्वन्द्वयुद्ध अच्छी तरह देखा जा सका, किन्तु फिर सब लोग ऐसे भिड़ गये और अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा ऐसी होने लगी कि कुछ भी नहीं देख पड़ता था । उस समय रथ के साथ रथ, हाथी के साथ हाथी, घोड़े के साथ घोड़ा और पैदल के साथ पैदल भिड़ गया और अत्यन्त घोर युद्ध होने लगा । शूर वीर लोग एक दूसरे के सामने जाकर दारुण संग्राम करने लगे । युद्ध-भूमि में पहुँचकर देवर्षि, सिद्ध और चारुणगण वह देवासुर-युद्ध के समान भयानक संग्राम देखने लगे । मैंने देखा कि हज़ारों रथों, हाथियों, घोड़ों और पुरुषों के दल विशृङ्खल होकर इधर-उधर दौड़ते और युद्ध कर रहे थे । हर जगह बेशुमार रथ, हाथी, घोड़े और पैदल बारम्बार गरजकर युद्ध करते नज़र आते थे । ८१

छियालीसवाँ अध्याय

युद्ध का वर्णन

सञ्जय बोले—महाराज ! इस समय में हज़ारों पैदल सैनिक जिस तरह मर्यादा का उल्लङ्घन करके लड़ें, सो मैं कहता हूँ, सुनिए। उस समय पिता ने पुत्र का, सगे भाई ने सगे भाई का, भानजे ने मामा का, मामा ने भानजे का और मित्र ने मित्र का कुछ खयाल नहीं किया मानों कोई किसी को पहचानता ही नहीं था। पाण्डवगण प्रेतवाधाग्रस्त से होकर कौरवों के साथ युद्ध कर रहे थे। कुछ पुरुषमिह वीर, जो रथों पर सवार थे, दूसरे पक्ष के रथारूढ़ वीरों पर टूट पड़े। रथों से रथ ऐसे भिड़ गये कि जुएँ से जुआँ, रथदण्ड से रथदण्ड और रथ-कूबर से रथकूबर टूटने लगे। रथों से कुछ रथ ऐसे भिड़ गये कि वे किमी और चल नहीं सकते थे। कुछ वीर एक दूसरे के प्राण लंने की इच्छा से घोरतर संग्राम कर रहे थे। जिनके मद बह रहा है, ऐसे बड़े-बड़े हाथी हाथियों से भिड़कर घायल हो रहे थे। तोरण-पताका (अम्बारी) आदि से शोभित वेगशाली गजराज परस्पर भिड़कर दाँतों के प्रहार से एक दूसरे को फाड़ने और व्यथित होकर घोर चीत्कार करने लगे। हस्तिविद्या में निपुण लोगों के द्वारा सुशिक्षित मद-हीन हाथी, अङ्गुश की चांट खाकर, मस्त हाथियों के सामने जाकर आक्रमण कर रहे थे। बहुत से गजराज मदस्त्रावी गजराजों के समीप जाकर क्राँव पक्षों का मा शब्द करते हुए इधर उधर भागने लगे। अच्छी तरह सिखाये गये कुछ हाथी ऋष्टि, तोमर, नाराच आदि शस्त्रों से घायल होकर सूँड़ उठाकर चिल्लाते हुए पृथ्वी पर गिरते देख पड़े। मर्मस्थल पर वार हाने से कुछ तो मर गये और कुछ भयानक स्वर से चिल्लाते हुए इधर-उधर भागने लगे।

महाराज ! विशाल छातीवाले शस्त्रधारी लोग, जो हाथियों के पैरों के पाम उनकी रक्षा के लिए रहते हैं, एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत होकर ऋष्टि, धनुष, चमकीले फरसे, गदा, मुशल, भिन्दिपाल, तोमर, बाण, बेलन, तलवार आदि अस्त्र-शस्त्र हाथ में लिये वेग से इधर-उधर दौड़ते देख पड़ रहे थे। परस्पर आक्रमण करनेवाले वीरों के हाथों में नररक्त-रञ्जित चमकीले खड्ग थे। वीर पुरुषों के हाथों से उठी और गिरी हुई तलवारें शत्रुओं के मर्मस्थलों पर पड़ रही थीं और उससे घोर शब्द हो रहा था। युद्धभूमि में जगह-जगह गदा-मुशल आदि के प्रहार से दलित, खड्गों के वार से घायल, हाथियों के पैरों से रौंदे गये और उनके दाँतों से दले गये आदमी युगी तरह कराह रहे थे। प्रेतों की सी—नरक की यन्त्रणा भोगनेवालों की सी—उनकी आर्तवाणी सुननेवालों के हृदय को दहला रही थी। चँवर और कलंगी से शोभित हंसतुल्य घोड़ों पर सवार यादवा लोग एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे थे। वीरों के हाथों से छूटे हुए, सुवर्णमण्डित, तीक्ष्ण धारवाले बाण साँपों की तरह सर्वत्र गिर रहे थे। तेज़ घोड़ों

पर सवार याँदा लोग रथों पर पहुँचकर रथारूढ़ वीरों के मिर काट डालते थे । रथ पर सवार याँदा लोग भी घुड़सवारों को, अपने पाम आतं देखकर, तीक्ष्ण और भुके हुए भल्ल बाण मारकर, मार डालते थे । पानी भरं बादल के समान नीले, सुवर्ण-भूषण-भूषित, मस्त हाथी अपने मस्तक और कपोल काटे जाने पर भी हाथियों का गिराकर रौंद डालते थे । कुछ हाथी प्राम नाम के शस्त्र के प्रहार से पीड़ित होकर आतुर भाव से चिल्ला उठते थे । कुछ श्रेष्ठ हाथी, सवार और घोड़ों को गिराकर, दल मलकर डाल देते थे । उस भयानक युद्ध में कुछ हाथी दाँतों से और सूँड़ से घोड़े तथा उसके सवार का ऊपर उछाल देते और रथों को तोड़ते-फाड़ते हुए इधर-उधर विचर रहे थे । कोई-कोई मदमत्त महागज सूँड़ से घोड़े और उसके सवार का खींचकर पैरों से रौंद डालते थे । साँप के समान भीषण बाण उन हाथियों के दाँतों पर, देह पर और कोख पर गिर रहे थे । वीर पुरुषों के हाथों से छूटी हुई उत्कासदृश शक्तियाँ मनुष्यों, घोड़ों और हाथियों के शरीरों में घुमकर दृढ़ कवचों को तोड़कर बाहर निकल जाती थीं । वीरगण व्याघ्र-चर्म की म्यानों से चमकीले खड्ग निकाल-निकालकर शत्रुओं का काट रहे थे ।

३०

महाराज ! उस युद्ध में हजारों याँदा शक्तियों के प्रहार से कटे हुए, परशुओं के प्रहार से छिन्न भिन्न, हाथियों के पैरों से दले गये, घोड़ों के पैरों से कुचले गये और रथ के पहियों से घायल पड़े कराह रहे थे । कोई पुत्र का, कोई पिता का, कोई भाई का, कोई मामा का, कोई भानजे का और कोई अन्य भाई-बन्धुओं का याद करके अत्यन्त दान स्वर से विलाप कर रहा था । बहुतों की आँते बाहर निकल पड़ी थी, जाँघें टूट गई थी, हाथ कट गये थे, काँधें फट गई थीं और कोई व्यास के मारे तड़प रहा था । ऐसे लोग जीवन की इच्छा से रंगे रहे थे । कुछ लोग अधमरे पड़े थे और व्यास से व्याकुल होकर पानी माँग रहे थे । हे भारत ! कुछ लोग, रक्त से नहाये हुए, क्लेश पा रहे थे और अपनी और आपके पुत्रों की निन्दा कर रहे थे । उनमें से कुछ अत्यन्त शूर साहसी क्षत्रिय अधमरे होने पर भी काँध के मारे दाँतों से आँठ चबा रहे थे; न तो वे विलाप करते थे और न कराहते थे । वे उम समय भी भौहें टेढ़ी किये, आँठ चबाते हुए, शत्रुओं की ओर देख रहे थे । उम समय भी उनमें उत्साह और प्रसन्नता की कमी नहीं थी । कोई-कोई महाबली याँदा बाणों से घायल होकर भी चुपचाप पड़े थे । रथ नष्ट हो जाने पर कोई-कोई वीर दूसरा रथ माँग रहे थे कि इसी समय हाथियों के धक्के से पृथ्वी पर गिर पड़े और हाथियों के पैरों के नीचे कुचल गये । उनके रक्तस्जित शरीर फूले हुए ढाक के पेड़ के समान शोभा पा रहे थे । श्रेष्ठ वीरों का विनाश करनेवाले उस युद्ध में, मेनाओं के बीच, अनेक प्रकार के भयानक शब्द सुन पड़े रहे थे । पिता ने पुत्र का, पुत्र ने पिता का, भानजे ने मामा का, मामा ने भानजे का, मित्र ने मित्र का, सम्बन्धी ने सम्बन्धी का और बान्धव ने बान्धव का उस मर्यादाहीन युद्ध में मारना शुरू कर दिया था । हे भारत, उस मर्यादाशून्य

४०

घोरतर संग्राम में पाण्डवों और कौरवों के पक्ष के बहुतेरे वीर मारे गये। संग्राम में भीष्म के बाणों के प्रहार से पाण्डव-पक्ष की सारी सेना विचलित हो उठी। सेने-चाँदी से मण्डित, ऊँचे, पञ्चतारा और ताल के चिह्न से शोभित ध्वजावाले रथ पर सवार महावीर भीष्म ५० सुमेरु पर्वत पर स्थित चन्द्रमा के समान शोभायमान थे।

सैतालीसवाँ अध्याय

उत्तरकुमार का मारा जाना

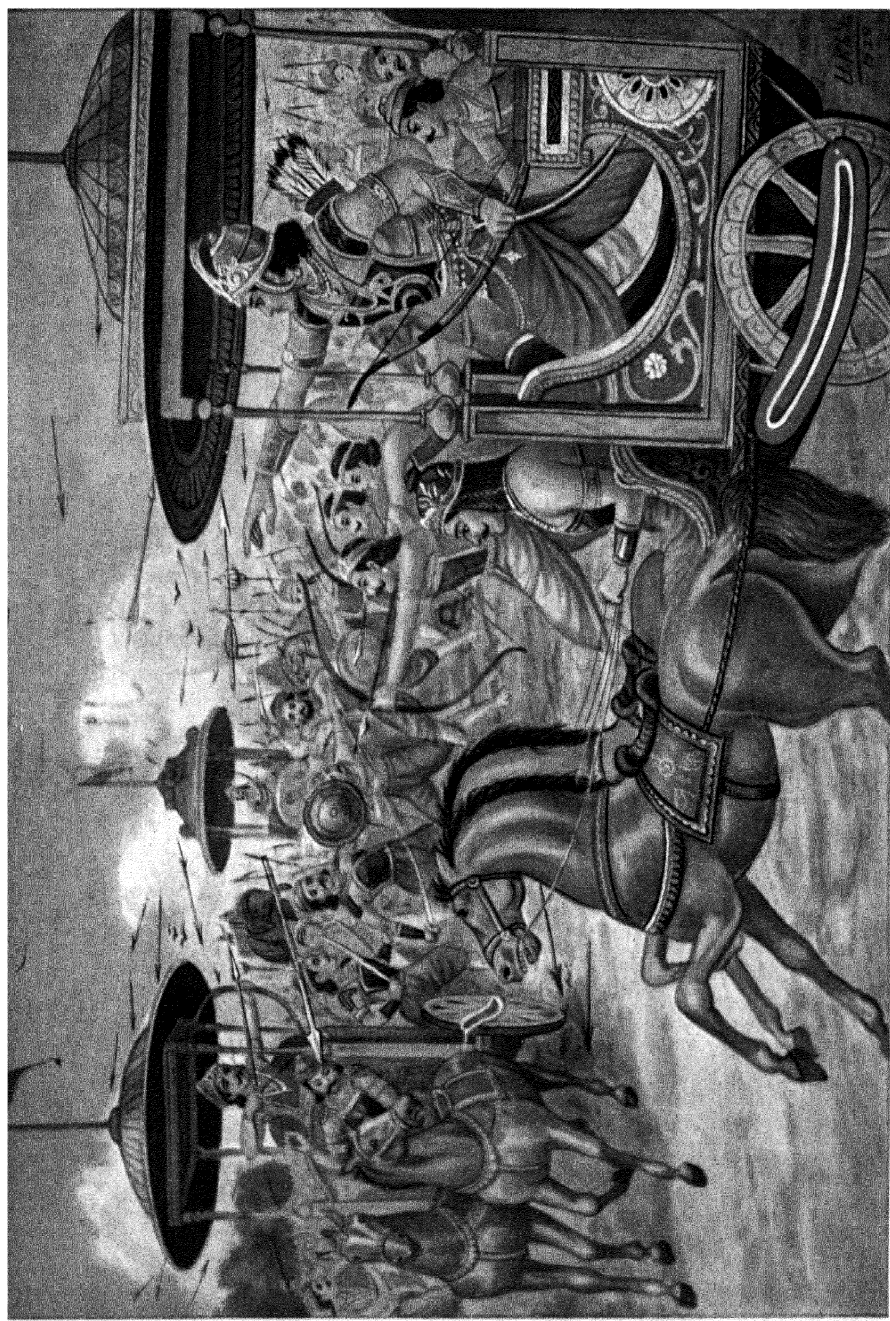
सञ्जय कहते हैं—महाराज, इस अत्यन्त दारुण दिन का पूर्व-भाग समाप्त होने के समय बहुत से वीर पुरुषों का नाश हुआ। महावीर दुर्मुख, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य और विविशति, ये यादवा दुर्योधन की आज्ञा से भीष्म के पास जाकर उनकी रक्षा करने लगे। पाँच अतिरथी वीरों के द्वारा चारों ओर से सुरक्षित होकर महारथी भीष्म पाण्डवों की सेना के भीतर पहुँचे। चेदि, काशि, करूप और पाञ्चालदेश की सेना के भीतर भीष्म की तालचिह्नयुक्त ध्वजा फहराती



देख पड़ने लगी। वे असंख्य सैनिकों के रथ, वाहन, ध्वजा और सिर आदि अङ्गों को अपने तीक्ष्ण बाणों से काट-काटकर गिराने लगे। युद्धभूमि के बीच उनके रथ की राह में पड़नेवाले गजराज मर्मस्थल में घायल होकर चिल्लाते और कातर ध्वनि करने लगे।

इस प्रकार संग्रामभूमि में भीष्म के बाणों से अपने सैनिकों का विनाश होते देखकर प्रवल पराक्रमी कुमार अभिमन्यु क्रोध होकर पिङ्गलवर्ण घोड़े से शोभित, सुवर्णमण्डित, कर्णिकार-चिह्न-युक्त ध्वजा से अलङ्कृत रथ पर बैठकर महारथी भीष्म और उनके अनुगामी वीरों के सामने पहुँचे। अभिमन्यु ने बहुत से बाण भीष्म

की ध्वजा में मारे और भीष्म की रक्षा करनेवाले उन प्रधान पाँच रथी वीरों को भी उन्होंने बाणों से घायल किया। इस प्रकार वे घोर युद्ध करने लगे। अभिमन्यु महावीर अर्जुन के पुत्र थे।



(अभिमन्युते) एक भट्टवाण से दुमु ख के सारथी का सिर काट डाला ।—पृ० १६७१

उन्होंने कृतवर्मा को एक बाण और शल्य को पाँच बाण मारे। इस प्रकार अन्य वीरों को घायल और उद्ध्विग्न करके अपने पितामह भीष्म के ऊपर भी उन्होंने नव बाण छोड़े। इसके बाद एक तीक्ष्ण बाण से भीष्म की सुवर्ण-मण्डित ध्वजा काट डाली। फिर क्रुद्ध होकर सब प्रकार के आवरणों को काटनेवाले, सन्नतपर्व, एक भल्ल बाण से उन्होंने दुर्मुख के सारथी का सिर और अन्य पँने भल्ल बाण से कृपाचार्य का सुवर्णमण्डित धनुष काट डाला। वे ममरभूमि में नृत्य मा कर रहे थे। अपने तीक्ष्ण बाणों से शत्रुओं के छोड़े हुए बाणों का छिन्न-भिन्न करके वे अपने गाण्डीव-तुल्य श्रेष्ठ धनुष की प्रत्यक्षा को वजाते हुए फुर्ती के साथ विचरने लगे। उनके हाथ की फुर्ती देखकर देवता भी मन्तुष्ट हुए। उनका निशाना कभी चूकता ही न था! यह देखकर भीष्म आदि यादवाओं ने समझा कि वीर अभिमन्यु अपने पिता अर्जुन के ही समान बलवान् और पराक्रमी हैं। अभिमन्यु अग्नि के समान दुर्दर्प और तेजस्वी देख पड़ने लगे।

उस समय महावीर भीष्म ने वेग और फुर्ती के साथ वीर अभिमन्यु पर आक्रमण किया। नव बाण उनके शरीर में मारे, तीन भल्ल बाणों से ध्वजा काट डाली और तीन ही बाणों से उनके सारथी को जर्जर कर दिया। इसी समय कृतवर्मा, कृपाचार्य और शल्य भी अभिमन्यु के ऊपर लगातार बाणों की वर्षा करने लगे; किन्तु वीर अभिमन्यु तनिक भी विचलित नहीं हुए। इसके बाद अर्जुन के पुत्र नं, दुर्योधन-पत्न के वीरों के बीच स्वयं घिरकर भी, पूर्वोक्त पाँच रथी वीरों के ऊपर बाण बरसाना और उनके चलाये हुए अस्त्र-शस्त्रों को नष्ट करना शुरू किया। अभिमन्यु भीष्म के ऊपर असंख्य बाण बरसाकर सिंहनाद करने लगे। उस युद्धभूमि में बाणों के मारे भीष्म पीड़ित हो गये। इस दुष्कर कर्म से अभिमन्यु का असाधारण बाहुबल प्रकट हुआ। महावीर भीष्म ने अभिमन्यु के अद्भुत पराक्रम को देखकर उन पर कई तरह के बाण छोड़े। अभिमन्यु ने वे सब बाण काट डाले। इसके बाद नव बाणों से भीष्म की ध्वजा को भी काट डाला। यह देखकर कौरवसेना के लोग चिन्नाने लगे। महावीर भीष्म का रजतमय मणिभूषित ताल-ध्वजयुक्त रथ अभिमन्यु के बाणों से टुकड़े-टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। युद्धप्रिय उत्साही भीमसेन यह देखकर, अभिमन्यु का उत्साहित करने के लिए, जोर से सिंहनाद करने लगे।

तब महापराक्रमी भीष्म ने युद्धभूमि में तरह-तरह के दिव्य महा-अस्त्रयुक्त हज़ार बाण अभिमन्यु के ऊपर चलाये। भीष्म का यह कार्य और फुर्ती देखकर सब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय अभिमन्यु की रक्षा के लिए पाण्डवपक्ष के दस महाधनुर्धर—पुत्र सहित राजा विराट, द्रुपदनन्दन धृष्टशुम्भ, भीमसेन, कैकेय, और सात्यकि आदि—बड़े वेग से वहाँ पहुँच गये। भीष्म ने उन लोगों को शीघ्रता के साथ आते देखकर धृष्टशुम्भ के ऊपर तीन बाण और सात्यकि के ऊपर नौ बाण चलाकर एक छुरे के समान तेज़ बाण से भीमसेन की सुवर्ण-दण्डयुक्त सिंह-चिह्नशोभित ध्वजा काटकर गिरा दी।

यह देखकर महापराक्रमी भीम क्रोध से अधीर हो गये। उन्होंने भी तीन बाणों से भीष्म को, एक बाण से कृपाचार्य को और आठ बाणों से कृतवर्मा को घायल किया। उसी



समय हाथी पर सवार महावीर उत्तर कुमार महावीर मद्राज शल्य के सामने आये। महापराक्रमी शल्य उत्तर कुमार के हाथी के वेग को रोकने के लिए आगे बढ़े और बाण बरसाने लगे। उत्तर कुमार के हाथी ने कुपित होकर शल्य के रथ पर पैर रखकर पैरों से उसके चारों घाड़ों को मार डाला। तब बिना घाड़ों के रथ पर बैठे हुए वीर शल्य ने विपैले नाग के समान भयानक लोहे की शक्ति उत्तर के ऊपर चलाई। उससे उत्तर का कवच टूट गया, उनकी आँखों के आगे अंधेरा छा गया और अंकुश-ताम्र आदि शस्त्र हाथ से गिर पड़े। इस दशा में उत्तर कुमार हाथी में नीचे गिरकर मर गये। अब शल्य खड़्ग लेकर रथ से उतर पड़े।

४० उन्होंने उस हाथी की सूँड़ काट डाली। मर्मस्थल में सैकड़ों बाण लगने और सूँड़ कट जाने से भयानक आर्तनाद करता हुआ वह गजराज गिरकर मर गया। शल्य इस तरह अपना काम करके शांघता के साथ कृतवर्मा के सुवर्णमय रथ पर सवार हो गये।

विराट के दूतों ने पुत्र श्वेत अपने भाई उत्तर की मृत्यु और कृतवर्मा के रथ पर शल्य की स्थिति देखकर, आह्वति पड़ने से अग्नि के समान, क्रोध से जल उठे। बली श्वेत इन्द्र-धनुष के समान अपने धनुष को चढ़ाकर बाणों की वर्षा करते हुए शल्य को मारने के लिए उनकी ओर दौड़े। मस्त हाथी के समान पराक्रमी श्वेत को आते देखकर, मृत्यु के मुख में पड़े हुए शल्य का बचाने के लिए, आपके पक्ष के सात वीर रथी—बृहद्बल, जयत्सेन, शल्य का पुत्र रुक्म-रथ, विन्द, अनुविन्द, जयद्रथ और सुदक्षिण—बड़े-बड़े धनुष चढ़ाकर आगे बढ़े। उनके धनुष

५० घनघटा के बीच बिजली के समान चमकने लगे। गर्मी के बाद हवा से जोर पकड़े हुए बादल जैसे पहाड़ के ऊपर जल की वर्षा करें, वैसे ही वे वीर श्वेत के ऊपर बाण बरसाने लगे। महावीर श्वेत ने क्रोध करके तीक्ष्ण सात भद्र बाणों से सातों के धनुष काट डाले। उन वीरों

ने फुर्ती के साथ फिर और धनुष हाथ में लेकर श्वेत को मात बाण मारें। किन्तु श्वेत ने फिर भी फुर्ती के साथ सात भल्ल बाणों से उन्हें काट डाला। तब क्रोध से कांपते हुए उन वीरों ने सिंहनाद करके उल्का-सदृश, इन्द्र के वज्र के तुल्य, चमकीली सात शक्तियाँ एक साथ उठाकर फुर्ती के साथ श्वेत के ऊपर फेंकीं। श्वेत ने तीक्ष्ण सात बाणों से बीच में ही उन शक्तियों को काट गिराया। इसके बाद सबके शरीरों को भिन्न करने की शक्ति रखनेवाला एक श्रेष्ठ अमोघ बाण लेकर श्वेत ने रुक्मरथ के ऊपर चलाया। वह वज्रतुल्य बाण जोर से आकर लगा और रुक्मरथ अत्यन्त व्यथित और मूर्च्छित होकर रथ पर गिर पड़े। रथी को वेहंश देखकर सारथी सब लोगों के सामने रथ को युद्धभूमि से हटा ले गया। श्वेत ने फिर और सुवर्ण-मण्डित तीक्ष्ण छः बाण चलाकर शेष छः रथियों की ध्वजाएँ काट डालीं। इस प्रकार उनके घोड़ों और सारथियों को घायल तथा उन्हें भी बाणवर्षा से विद्वल करके महावीर श्वेत मद्राज शल्य के सामने आये। महाराज, सेनापति श्वेत जब शल्य के रथ के सामने पहुँचे तब आपकी सेना में बड़ा कोलाहल होने लगा। अब आपके महाबली पुत्र दुर्योधन, भीष्म पितामह के साथ, सब सेना लेकर श्वेत को रोकने के लिए गये। इस प्रकार आपके पुत्र ने जाकर, भीष्म की सहायता से, मृत्यु-मुख में पड़े हुए मद्राज शल्य को उवारा। इसके बाद अत्यन्त भयानक युद्ध होने लगा। हाथी और रथ एक दूसरे से भिड़कर गंगाश्च उत्पन्न करनेवाला युद्ध करने लगे। आपकी और पाण्डवों की सेना प्राणों का मोह छोड़कर लड़ने लगी। कुरु-पितामह भीष्म उस समय फुर्ती के साथ अभिमन्यु, भीमसेन, महारथी मात्यकि, कैकेय, विगाट, धृष्टद्युम्न और चेदि-मत्स्य आदि देशों की सेना के ऊपर लगातार घोर बाण बरसाने लगे।

६७

अड़तालीसवाँ अध्याय

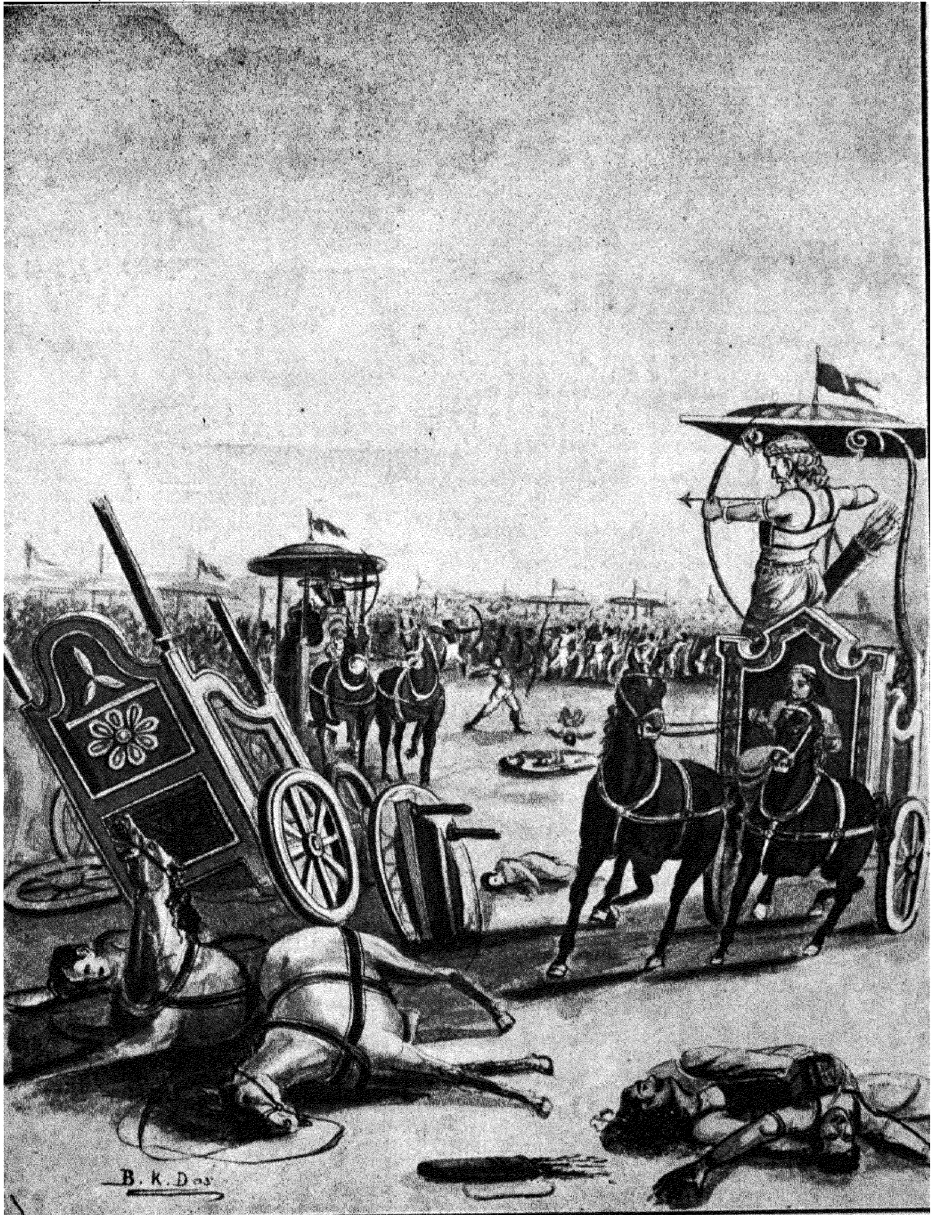
भीष्म के हाथ राजकुमार श्वेत का मारा जाना

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय ! धनुर्धरश्रेष्ठ श्वेतकुमार जब कुपित होकर शल्य के रथ की ओर चले तब भीष्म पितामह और कौरवों या पाण्डवों ने क्या किया ?

सञ्जय ने कहा—महाराज ! हज़ारों क्षत्रियश्रेष्ठ वीरगण, सेनापति श्वेत को आगे करके, आपके पुत्र राजा दुर्योधन को अपना बल और पराक्रम दिखाने लगे। श्रेष्ठ योद्धा भीष्म जब पाण्डवसेना का संहार करने लगे तब उनसे अपना बचाव करने के लिए, शिखण्डी को आगे करके, वे सब महारथी भीष्म के सुवर्णमण्डित रथ के पास पहुँचे। राजन्, उस समय आपके और शत्रुपक्ष के सैनिकों में परस्पर महाभयानक युद्ध हुआ और बहुत से लोग हत तथा आहत हुए। सुनिप, वह वृत्तान्त मैं विस्तार के साथ कहता हूँ।

सूर्यसदृश तेजस्वी वीर भीष्म ने लगातार बाण-वर्षा के द्वारा वीरों के सिर काट-काटकर बहुत से रथों के आसनों को खाली कर दिया। उनके बाणों ने सूर्यमण्डल तक को छा लिया। सूर्यदेव उदय होकर जैसे अँधेरे को नष्ट करते हैं, वैसे ही वीर भीष्म युद्धभूमि में असंख्य वीरों का नाश करने लगे। महाराज, भीष्म के चलाये हुए सैकड़ों-हज़ारों चित्रियों का नाश करने-वाले बाण वेग के साथ जा-जाकर महापराक्रमी योद्धाओं के मस्तक काटने लगे। भीष्म के बाणों से सिर कट जाने पर महापराक्रमी रथी लोग रथों पर गिरने लगे। उस युद्धभूमि में काँटेदार कवच पहने हुए हाथी, वज्र से फूटे पहाड़ों की तरह, बाणों से छिन्न-भिन्न होकर १० गिरते देख पड़ते थे। रथों के ऊपर रथ टूट-टूटकर गिर रहे थे। बहुत से रथों को घोड़े खींचते चले जाते थे और उनमें, धनुष हाथ में लिये, मरे हुए नौजवान वीरों के शरीर लटक रहे थे। खड्ग, ढाल और तर्कस बाँधे हुए वीरों के सिर कट गये थे, और उन्हें लादे हुए घोड़े इधर-उधर भाग जा रहे थे। सैकड़ों योद्धा वीरशय्या पर मरे पड़े थे। अनेक वीर पुरुष एक दूसरे के पीछे दौड़ते, गिर पड़ते, फिर उठते और पृथ्वी पर लोट जाते थे। द्वन्द्वयुद्ध में परस्पर प्रहार से व्यथित वीर आर्त शब्द कर रहे थे। मस्त हाथी अपने पैरों से घोड़ों और उनके सवारों को रौंदते चले जा रहे थे। रथों पर बैठे वीर पुरुष चारों ओर के योद्धाओं को कुचलते और काटते चले जाते थे। दूसरे के बाण से मरकर कोई रथ पर से पृथ्वी पर गिर रहा था। सारथी के मर जाने पर छिन्न-भिन्न अनेक बड़े-बड़े रथ गिरकर घायलों को चूर-चूर कर डालते थे।

महाराज, उस समय इतनी धूल उड़ी कि युद्धभूमि में अँधेरा छा गया। परस्पर युद्ध करते हुए लोग केवल धनुष का शब्द सुनकर यह समझते थे कि उनसे लड़नेवाला कहां पर है; उन्हें लड़नेवाले का शरीर नहीं देख पड़ता था। शरीर का स्पर्श करने पर ही ज्ञात होता था कि यह दूसरा योद्धा है। कोई किसी को आँखों से नहीं देख पाता था। सेना में इतना कोलाहल हो रहा था कि परस्पर लड़नेवाले वीरों को अपने प्रतिद्वन्द्वी का २० सिंहनाद भी नहीं सुन पड़ता था। संप्रामभूमि में घोर कोलाहल मचा हुआ था, नगाड़ों के शब्द से कान फटे जा रहे थे। द्वन्द्वयुद्ध करते हुए वीर अपना-अपना पराक्रम दिखाते समय जो अपने नाम-गोत्र का उच्चारण करते थे या कुछ कहते-सुनते थे सो कुछ भी नहीं सुन पड़ता था। पितामह भीष्म के धनुष से छूटे हुए बाणों के प्रहार से आर्त, परस्पर लड़नेवाले, वीर उस अत्यन्त दारुण युद्ध में विचलित हो उठे। पिता और पुत्र भी परस्पर न पहचानने के कारण आपस में ही युद्ध करने लगे। बहुत से रथों का यह हाल था कि उनके पहिये कट गये, जुआ टूट गया और एक धुरा भी कट गया। भीष्म के बाणों से मर-मरकर सारथी और रथी रथों पर से गिर रहे थे। इस प्रकार प्रायः सभी वीरों के रथ टूट-फूट गये। वे इधर-उधर दौड़कर पैदल ही युद्ध करते देख पड़ते थे।



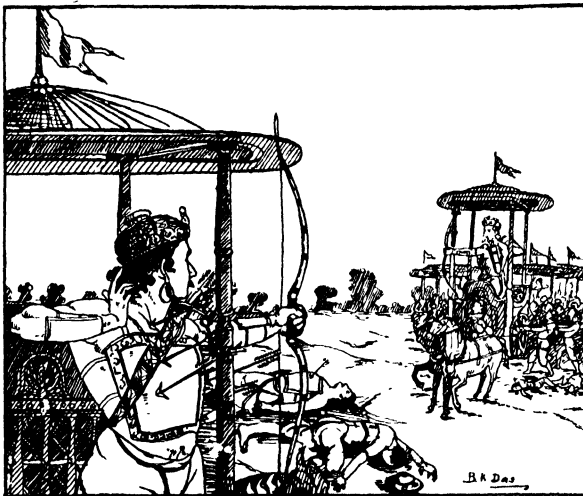
सूर्यसदृश तेजस्वी वीर भीष्म ने लगातार बाण-वर्षा के द्वारा वीरों के सिर काट काट कर बहुत-से रथों के आसनों को खाली कर दिया ।—पृ० १६७४

कहीं हाथी मर गया, कहीं सिर कट गया, कहीं घोड़ा गिर गया। बाण के प्रहार से किसी का मर्मस्थल कट गया। भीष्म पितामह शत्रुपक्ष की सेना का संहार कर रहे थे। कोई भी ऐसा नहीं रह गया जिसके शरीर में घाव न लगा हो।

उधर महाबली श्वेत भी कौरवपक्ष के हज़ारों राजाओं और राजकुमारों का संहार कर रहे थे। वे भी अपने बाणों के प्रहार से रथ-सवारों के मस्तक, अङ्गद-विभूषित हाथ, धनुष, तरकस, रथ, रथों के पहिये, छत्र और ध्वजाएँ काटने लगे। उनके बाणों के प्रहार से हज़ारों हाथी, घोड़े और मनुष्य मर-मरकर पृथ्वी पर गिर रहे थे। महाराज, हमारे पक्ष के वीर उस समय श्वेत के पराक्रम से बहुत ही डरकर रथ आदि वाहनों को छोड़कर युद्धभूमि से भागने लगे। कुरुसेना के सब वीर, बाणों की मार के बाहर आकर, भीष्म और श्वेत का युद्ध देखने लगे। उस सङ्कटमय में भी हम लोगों ने देखा कि धीरे धीरे पितामह भीष्म सुमेरु पर्वत की तरह अटल होकर अपने स्थान पर डटे हुए हैं। सूर्यदेव जैसे गर्मियों में अपनी किरणों से पृथ्वी का रस खींचते हुए तपते हैं, वैसे ही भीष्म अपने तीक्ष्ण बाणों से शत्रु-सैनिकों के प्राण खींचते हुए युद्धभूमि में विराज रहे थे। वज्रपाणि इन्द्र जैसे दैत्यसेना का नाश करें, वैसे ही महाधनुर्धर भीष्म असंख्य बाण बरसाकर शत्रुपक्ष का संहार कर रहे थे। पाण्डवपक्ष की सेना भीष्म के हाथों अपना नाश होते देख जर्जर होकर इधर-उधर भागने लगी। भीष्म ने जब देखा कि पाण्डवसेना श्वेत को अकेले छोड़कर भागी जा रही है तब वे बहुत प्रसन्न हुए। दुर्योधन का प्रिय करने के लिए उद्यत, सुहृद्-शरीर, आपके पिता देवव्रत भीष्म उस समय जीवन का मोह छोड़कर निर्भय होकर शीघ्रता के साथ पाण्डवों की सेना का संहार करते हुए सेनापति श्वेत के पास पहुँचे। कुरुसेना का संहार करते हुए श्वेत भीष्म के ऊपर असंख्य बाणों की वर्षा करने लगे। भीष्म ने भी श्वेत के ऊपर बेशुमार बाण बरसाये।

दो साँड़ों की तरह गरजते हुए वे दोनों वार दो मस्त हाथियों की तरह अथवा दो क्रुद्ध बाघों की तरह एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। एक दूसरे के वध की इच्छा से दोनों पुरुष-श्रेष्ठ वीर अस्त्र-शस्त्र छोड़ते और दूसरे के अस्त्रों को रोकते थे। महाराज, यदि महाबली श्वेत पाण्डवसेना की रक्षा न करते तो अत्यन्त क्रुपित भीष्म पितामह एक ही दिन में सारी सेना को अपने बाणों से भस्म कर डालते। महाराज, अन्त को पराक्रमी श्वेत ने अपने युद्धकौशल से पितामह भीष्म को युद्ध से हटा दिया। भीष्म को शिथिल देखकर पाण्डव अत्यन्त प्रसन्न हुए। दुर्योधन को बड़ा खेद हुआ। वे उदास हो गये। इसके बाद महावीर दुर्योधन क्रोध के आवेश में आकर, सेना और सब राजाओं को साथ लेकर, पाण्डवसेना से युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। दुर्योधन, कृतवर्मा, कृपाचार्य, शल्य आदि सब वीर आपके पुत्र की प्रेरणा से जाकर भीष्म की रक्षा करने लगे। दुर्योधन आदि सब राजाओं को युद्ध में पाण्डव-सेना का संहार

करते देखकर परम पराक्रमी श्वेत भीष्म को छोड़कर उन्हीं की ओर दौड़े। प्रबल आँधी जैसे पेड़ों को गिराती है वैसे ही श्वेत ने क्रुद्ध होकर कौरवों की सेना का संहार करना शुरू किया। विराट के पुत्र श्वेत इस प्रकार दुर्योधन की सेना को भगाकर फिर एकाएक वहाँ पर आ गये जहाँ भीष्म पितामह थे। वे दोनों महापराक्रमी वीर वृत्रासुर और इन्द्र की तरह एक दूसरे ५१ को मारने की इच्छा से एक दूसरे पर बाणों की वर्षा करते हुए घोर युद्ध करने लगे। श्वेत ने धनुष हाथ में लेकर भीष्म के ऊपर सात बाण छोड़े। पराक्रमी भीष्म ने पराक्रम करके, मस्त हाथी जैसे मस्त हाथी के पराक्रम को रोके वैसे, श्वेत के उस पराक्रम को व्यर्थ कर दिया। महावीर श्वेत ने फिर पचीस बाण भीष्म को मारकर अद्भुत कर्म कर दिखाया। भीष्म ने



भी दस तीक्ष्ण बाण श्वेत को मारे। उन बाणों के लगने से श्वेत तनिक भी व्यथित नहीं हुए और पर्वत की तरह अचल भाव से खड़े रहे। उन्होंने धनुष चढ़ाकर फिर भीष्म को बहुत से बाण मारे। क्रोध के मारे ओठ चाटते हुए सेनापति श्वेत ने हँसकर नव बाणों से भीष्म के धनुष के दस टुकड़े कर डाले। इसके बाद एक रोएँदार बाण लेकर श्वेत ने

भीष्म के रथ की तालचिह्न-युक्त ध्वजा काट गिराई। महाराज, भीष्म के रथ की ध्वजा को कटकर गिरते देखते ही आपके पुत्रों ने समझा कि श्वेत के वश में होकर अब पितामह मारे गये। पाण्डव लोग भी प्रसन्न होकर शङ्ख बजाने लगे।

६० तब दुर्योधन ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी सेनावालों से कहा—तुम लोग यत्नपूर्वक चारों ओर से पितामह की रक्षा करो। हम लोगों के देखते हुए शूर पितामह भीष्म श्वेत के हाथों नहीं मारे जा सकते, यह मैं तुमसे सच कहता हूँ। राजा के ये वचन सुनकर महारथी लोग फुर्ती के साथ भीष्म की रक्षा करने लगे। चतुरङ्गिणी सेना साथ में लिये हुए बाह्लीक, कृतवर्मा, शल, शल्य, जलसन्ध, विकर्ण, चित्रसेन और विविंशति आदि महारथी चारों ओर से भीष्म की रक्षा करते हुए श्वेत के ऊपर बाण बरसाने लगे। महापराक्रमी श्वेत ने भी क्रुद्ध होकर अपने

हाथ की फुर्ती दिखाते हुए तीक्ष्ण बाणों से उनके बाणों को रोक दिया। सिंह जैसे हाथियों को विमुख कर दे, वैसे ही वीरवर श्वेत ने बाण मारकर उन वीरों को हटा दिया।

उन वीरों को इस तरह हटा करके श्वेत ने बहुत से बाण बरसाकर भीष्म पितामह का धनुष काट डाला। भीष्म ने फुर्ती से दूसरा धनुष लेकर कङ्कपत्रभूषित तीक्ष्ण बाणों से श्वेत को घायल कर दिया। सेनापति श्वेत ने क्रुद्ध होकर सब लोगों के सामने लोहनिर्मित बहुत से बाण भीष्म को मारे। उस प्रहार से भीष्म विह्वल-से हो गये। युद्ध में त्रिभुवनश्रेष्ठ वीर भीष्म की यह दशा देखकर राजा दुर्योधन बहुत व्यथित हुए और आपके पक्ष की सेना भी मारनों सन्नाटे में आ गई। श्वेत के बाणों से घायल भीष्म की यह दशा देखकर सबने समझ लिया कि भीष्म अब श्वेत के वश में आ गये और श्वेत उन्हें अभी मार डालेंगे। ७०

आपके पिता भीष्म अपनी कटी हुई ध्वजा और भागी हुई सेना देखकर क्रोध के मारे अधीर हो उठे। उन्होंने सँभलकर श्वेत के ऊपर बाण बरसाना शुरू किया। किन्तु श्रेष्ठ रथी श्वेत ने उन बाणों को राह में ही रोककर एक भल्ल बाण से भीष्म का धनुष काट डाला। इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर भीष्म ने और अत्यन्त दृढ़ धनुष हाथ में लिया और उस पर सात भल्ल बाण चढ़ाकर चार से श्वेत के चारों घोड़े मारे, दो से ध्वजा काटी और एक से सारथी का सिर काट डाला। बिना घोड़ों के रथ से महाबली श्वेत उतर पड़े। वे क्रोध के मारे व्याकुल हो गये। श्रेष्ठ रथी श्वेत को रथ-हीन देखकर भीष्म ने उनको अनेक तीक्ष्ण बाण मारे।

महावीर श्वेत ने इस प्रकार भीष्म के बाणों से जर्जर होकर धनुष तो अपने रथ पर डाल दिया और एक यमदण्डतुल्य सुवर्णभूषित कालजिह्वा के समान महाभयानक शक्ति हाथ में ली। वह शक्ति हाथ में लेकर श्वेत ने कहा—“हे भीष्म, अब सँभल जाओ, मेरा पराक्रम देखो और मर्द बनें।” अब पाण्डवों का हित और आपका बुरा करने की इच्छा से पराक्रमी श्वेत ने वह शक्ति भीष्म के ऊपर चलाई। उस शक्ति को देखकर आपके पुत्र हाहाकार करने लगे। केंचुली से निकले हुए विपैल साँप के समान, कालदण्ड ऐसी महाघोर वह शक्ति श्वेत के हाथ से छूटकर आकाश में भारी उल्का के समान ज्वालामयी देख पड़ी। ८०

किन्तु उस शक्ति को देखकर महापराक्रमी भीष्म तनिक भी नहीं घबराये। उन्होंने आठ-नव तीक्ष्ण बाण चलाकर उस सुवर्णमयी घोर शक्ति को बीच में ही टुकड़े-टुकड़े करके गिरा दिया। उस शक्ति की यह दशा देखकर आपके पुत्र प्रसन्नता के मारे चिल्लाने लगे। शक्ति को नष्ट देखकर श्वेत क्रोध से अधीर हो उठे। उनके सिर पर काल सवार था, इससे वे कुछ निश्चय नहीं कर सके कि अब क्या करना चाहिए। इसके बाद क्रोध से आँखें लाल करके, दण्डपाणि यमराज की तरह गदा हाथ में लेकर, भीष्म को मारने के लिए उनकी ओर श्वेत दौड़े। जल का प्रवाह जैसे पर्वत की ओर चले, वैसे ही श्वेत को अपनी ओर आते देखकर ८०

उनके वेग को न रुकनेवाला समझकर, उस प्रहार से बचने के लिए, महाप्रतापी भीष्म एकाएक रथ से कूद पड़े। उधर श्वेत ने क्रोध के मारे वह गदा धुमाकर ज़ोर से भीष्म के रथ पर फेंकी।



कुबेरतुल्य श्वेत के हाथ से छूटी हुई वह गदा रथ के ऊपर गिरी। उसकी चोट से ध्वजा, सारथी, घोड़े, जुआ, धुरा आदि सहित वह रथ चूरचूर हो गया।

भीष्म को रथ-हीन देखकर शल्य आदि सब यांद्वा अन्य रथ लेकर उनके पास पहुँचे। तब कुछ खिन्न से होकर, दूसरे रथ पर चढ़कर, पितामह भीष्म धनुष चढ़ाकर धीरे-धीरे श्वेत की ओर बढ़े। राजन, इसी बीच में भीष्म ने अपने हित की सूचना देनेवाली यह दिव्य आकाशवाणी सुनी “हे भीष्म, हे महाबाहो, शांति श्वेत को मारने का यत्न करो। विधाता ने इसे मारने का यही समय निर्दिष्ट किया है।” देवदूत के कहे हुए ये वचन सुनकर

भीष्म बहुत प्रसन्न हुए और श्वेत को मारने का दृढ़ विचार करके युद्ध के लिए तैयार हुए।

इधर श्वेत को रथ-हीन और पैदल देखकर उनकी महायुता करने के लिए सात्यकि, भीम-१०० सेन, धृष्टद्युम्न, कैकेय, धृष्टकेतु, पराक्रमी अभिमन्यु आदि वीर रथ लेकर आगे बढ़े। महा-प्रतापी भीष्म ने द्रोण, कृप, शल्य आदि के साथ इन सबको बीच में ही रोकने का यत्न किया। पानी के वेग को जैसे पहाड़ रोकता है, वैसे ही पराक्रमी भीष्म ने बाण-वर्षा करके पाण्डवों को और उनके वीरों को आगे नहीं बढ़ने दिया। महावीर निर्भय श्वेत ने यह देखकर साहस के साथ खड्ग निकालकर उसके प्रहार से भीष्म का धनुष फिर काट डाला। कटे हुए धनुष को भीष्म ने अलग फेंक दिया। देवदूत के वचन सुनकर श्वेत को मारने के लिए शीघ्रता करते हुए पितामह ने इन्द्रधनुष-तुल्य प्रभापूर्ण दूसरा धनुष लेकर दम भर में चढ़ा लिया। अब भीम-सेन आदि वीरों से घिरे हुए सेनापति श्वेत की ओर भीष्म पितामह ने अपना रथ दौड़ाया। उधर से श्वेत की सहायता करने को आते हुए प्रतापी भीमसेन को साठ बाण मारकर भीष्म ने रोक दिया। इसी तरह उन्होंने अभिमन्यु को बहुत ही तीक्ष्ण तीन बाण मारे। सात्यकि को सौ बाण मारे। धृष्टद्युम्न को बीस बाण मारे और कैकेय को पाँच बाण मारे।

महाराज, आपके पिता भीष्म इस तरह शत्रुपक्ष के इन वीरों को घोर बाणों से हटा करके श्वेत के ऊपर आक्रमण करने के लिए आगं बढ़े। इसी समय भीष्म ने एक बाणों को सह सकनेवाले, कालरूप, श्रेष्ठ, रौप्यदार, तीक्ष्ण बाण को तरकस से निकाला। फिर उस भयानक बाण को ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित करके श्वेत का हृदय ताककर छोड़ा। देवता, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षस आदि सबने देखा कि वह बाण कवच तोड़कर पराक्रमी श्वेत के हृदय में घुस गया। महावज्र के समान प्रज्वलित वह बाण उसी तरह प्राण लेकर श्वेत के शरीर से निकलकर पृथ्वी में घुस गया, जिस तरह अस्त होता हुआ सूर्य प्रभा को लेकर चले जाते हैं। पितामह के हाथ से मारे गये श्वेत का शरीर, पर्वत के फटे हुए शिखर की तरह, सबके सामने पृथ्वी पर गिर पड़ा। श्वेत की मृत्यु देखकर पाण्डव और उनके पक्ष के सब क्षत्रिय शोक करने लगे। इधर आपके पुत्र और सब कुरु-सेना अत्यन्त प्रसन्न हुई। कौरव-सेना में खूब बाजे बजे और दुःशासन आनन्द के मारे नाचने लगे।

युद्ध-दुर्द्धर्ष भीष्म के हाथ से विराट के पुत्र श्वेत की मृत्यु देखकर [शाक और डर के मार] शिखण्डा आदि महाधनुर्धर वीर कांपने लगे। अब महावीर अर्जुन और वासुदेव ने सेनापति की मृत्यु देखकर युद्ध रोकने की आज्ञा दी। दोनों पक्ष के वीर सैनिक गरजते हुए धीरे-धीरे विश्राम के लिए अपने-अपने डेरों को चले गये। द्वन्द्वयुद्ध में श्वेत की मृत्यु होने के कारण महारथों पाण्डव लोग चिन्तित और उदास होकर डेरों को लाँटे।

१२१

उनचासवाँ अध्याय

शङ्ख के युद्ध का वर्णन

धृतराष्ट्र ने कहा—हैं सख्य, सेनापति श्वेत के मार जाने पर धनुर्धरश्रेष्ठ पाञ्चालों और पाण्डवों ने युद्धभूमि में फिर क्या किया? सेनापति श्वेत की मृत्यु, उसकी सहायता करनेवालों का भागना और अपने पक्ष की विजय सुनकर मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है। मेरे पक्ष के यादवा उपाय करते हुए यद्यपि दया से काम लेते हैं तथापि शूर पितामह भीष्म की हम पर कृपा है। श्वेत का अपने पिता से सदा वैर बना रहा। पिता से भगड़ा होने के कारण वह पाण्डवों को यहाँ चला आया था और अपनी सेना से अलग होकर किले में रहता था। पाण्डवों का आश्रय पाकर उसने दुर्गम स्थान को आबाद किया और शत्रुओं का नाश कर अपना व्यवहार अच्छा रक्खा। मेरा बेटा दुर्योधन उन्मत्त और नीच है। कुरुकुलश्रेष्ठ भीष्म, महात्मा द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, मैं और गान्धारी, किसी की इच्छा नहीं थी कि यह युद्ध हो। उधर वासुदेव, परम धार्मिक युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और

- १० सहदेव भी इस युद्ध को पसन्द नहीं करते थे। पहले मैं, गान्धारी, विदुर, परशुराम और महात्मा व्यास आदि सबने दुरात्मा दुर्योधन को समझाया और मना किया था कि पाण्डवों से युद्ध मत करो; किन्तु उस उड़ण्ड हठी ने हमारे मना करने को नहीं माना। हमारे उपदेश की अवहेला करके कर्ण, शकुनि और दुःशासन की सलाह मानकर दुष्ट दुर्योधन पाण्डवों से, ईर्ष्या रखने के कारण, लड़ पड़ा। उसने पाण्डवों की कुछ परवा नहीं की। मैं समझता हूँ, अब उसके ऊपर घोर सङ्कट आनेवाला है। श्वेत की मृत्यु और भीष्म की विजय से अत्यन्त क्रुद्ध होकर कृष्णसहित अर्जुन ने युद्ध में क्या किया? मुझसे सब वृत्तान्त कहो। हे सञ्जय, अर्जुन से मुझे बड़ा डर है। वह किसी तरह दूर नहीं होता। मुझे स्पष्ट जान पड़ता है कि शूर और फुर्तिले अर्जुन अवश्य अपने बाणों से शत्रुओं के शरीरों को टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। अर्जुन का क्रोध कभी निष्फल नहीं हो सकता। उनका इरादा भी अधूरा नहीं रह सकता। वेदज्ञ, शूर, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, बल में महेन्द्र और विष्णु के सदृश, इन्द्रास्त्र के ज्ञाता, अप्रमेय पराक्रमी, इन्द्रतुल्य अर्जुन को समर के लिए उद्यत देखकर तुम्हारे मन में कैसा भाव प्रकट हुआ था? वज्र के ऐसे रूप और स्पर्शवाले अमोघ अस्त्रों का प्रयोग करने में निपुण, खड्गयुद्ध में अद्वितीय अर्जुन ने क्रोध करके क्या किया? हे सञ्जय! युद्ध में श्वेत के मारे जाने पर महारथी, पराक्रमी धृष्टद्युम्न ने क्या किया? मुझे निश्चय जान पड़ता है कि दुर्योधन ने पहले जो कुव्यवहार किये हैं उनसे और सेनापति श्वेत की मृत्यु से पाण्डवों के हृदय में असह्य
- २० क्रोध की आग भड़क उठी होगी। हे सञ्जय, दुर्योधन के अपराध से उत्पन्न होनेवाले पाण्डवों के अनिवार्य क्रोध को सोचकर मुझे दिन को या रात को कभी घड़ी भर शान्ति नहीं मिलती। अब तुम बतलाओ, वह महायुद्ध किस तरह हुआ?

सञ्जय ने कहा—महाराज, मन लगाकर सुनिए। आप ही इस विपत्ति के आने का मूल कारण हैं। इस बार में दुर्योधन के ऊपर दोषारोपण करना अनुचित है। पानी की बाढ़ निकल जाने पर पुल बाँधना या घर जल जाने पर कुआँ खोदना जैसे व्यर्थ होता है वैसे ही अब आपका यों कहना और सोचना व्यर्थ है। खैर, अब आप युद्ध का व्यौरा सुनिए। वह दारुण दिन का पूर्वभाग (दोपहर) बीत जाने पर दूसरे भाग में फिर कौरवों और पाण्डवों में युद्ध होने लगा। विराट के पुत्र सेनापति श्वेत को मरा हुआ और कृतवर्मा-सहित शल्य को युद्ध के लिए तैयार देखकर वीर शङ्ख, आहुति पड़ने पर अग्नि के समान, क्रोध से प्रज्वलित हो उठे। बहुत से रथों के द्वारा चारों ओर से सुरक्षित वीर शङ्ख इन्द्रधनुष ऐसा श्रेष्ठ धनुष चढ़ाकर मद्राज शल्य को मारने के लिए उनकी ओर बढ़े और तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे। मस्त हाथी के समान पराक्रमी विराट-पुत्र शङ्ख को आते देखकर, शल्य को मृत्यु-मुख से बचाने के लिए, आपके पक्ष के सान महारथी—बृहद्रथ, जयत्सेन, रुक्मरथ, विन्द, अनुविन्द, सुदक्षिण और जयद्रथ—बाणों की

वर्षा करते हुए आगे बढ़े । अनेक धातुओं से विचित्र उन लोगों के धनुष बादलों में बिजली की तरह चमक रहे थे । उन्होंने शङ्ख को ऊपर बाण बरसाना शुरू किया । तब महापराक्रमी शङ्ख ने कुपित होकर सात तीक्ष्ण भल्ल बाणों से उनके धनुष काटकर सिंहनाद किया ।

इसी समय महावीर भीष्म मेघ के समान गरजते हुए तालपरिमित धनुष लेकर शीघ्रता के साथ शङ्ख के सामने आये । भीष्म को आते देखकर पाण्डवों की सेना की दशा आँधों के वेग से डगमगाती हुई नाव के समान हो गई । तब भीष्म से शङ्ख की रक्षा करने के लिए महावीर अर्जुन फुर्ती के साथ शङ्ख के आगे आ गये । उस समय युद्ध करते हुए योद्धाओं में भारी हाहाकार मच गया । एक तेज जैसे दूसरे तेज से जा भिड़े, वैसे भीष्म और अर्जुन को आमने-सामने देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ । उधर शल्य और शङ्ख से युद्ध होने लगा । शल्य ने अपने रथ से उतरकर गदा के प्रहार से शङ्ख के रथ के चारों घोड़ों को मार डाला । तब उस रथ से उतरकर खड्ग हाथ में लेकर शङ्ख अर्जुन के रथ पर चले गये । वहाँ जाने पर उनका बचाव हुआ ।

४०

इधर भीष्म के रथ से फुर्ती के साथ इतने बाण बरसने लगे कि उनसे चारों ओर आकाश और पृथ्वी व्याप्त हो गई । श्रेष्ठ योद्धा भीष्म पाञ्चाल, मत्स्य, कंकय, प्रभद्रक आदि देशों के वीरों को अपने बाणों से मार-मारकर गिराने लगे । वे सव्यसाची पाण्डव को छोड़कर, अपनी सेना के बीच स्थित, प्रिय सम्बन्धी पाञ्चालराज द्रुपद के सामने पहुँचे, और उन पर बाण बरसाने लगे । गर्मियों में दावानल जैसे जङ्गलों को जलाता है वैसे ही भीष्म पितामह अपने बाणों से पाञ्चालसेना का संहार करने लगे । युद्धभूमि में पितामह भीष्म बिना धुएँ की आग के समान देख पड़ते थे । दोपहर के सूर्य के समान अपने तेज से तपते हुए भीष्म को पाण्डव-सेना का कोई योद्धा आँख भरकर देख भी नहीं सकता था । शीतपीड़ित गाय-बैलों की तरह भयपीड़ित पाण्डव-सैनिक चारों ओर देखने लगे । उन्हें कोई अपनी रक्षा करनेवाला न देख पड़ता था । सिंह के हमला करने पर जैसे गायों के झुण्ड भाग खड़े होते हैं वैसे ही भीष्म के बाणों से पीड़ित होकर—हत-आहत, निरुत्साह, विमर्दित होकर—पाण्डवों की सेना इधर-उधर भागने लगी । घोर हाहाकार मच गया ।

भीष्म पितामह के मण्डलाकार धनुष से चमकीली नोकवाले, विषैले सर्प-तुल्य बाण लगातार निकल रहे थे । जिधर भीष्म बाण बरसाते थे उधर ही सेना में भगदर पड़ जाती थी । भीष्म पितामह ललकार-ललकारकर पाण्डवपक्ष के वीरों को मार रहे थे । सेना उन्मथित होकर भाग रही थी, इसी समय सूर्य भी अस्ताचल पर पहुँच गये । अँधेरे में कुछ नहीं सूझ पड़ता था । युद्धभूमि में भीष्म का अनिवार्य पराक्रम देखकर पाण्डवों ने सैनिकों को युद्ध रोकने की आज्ञा दे दी ।

५०

५३

पचासवाँ अध्याय

क्रौञ्चव्यूह की रचना

सञ्जय कहते हैं—महाराज, पहले दिन का युद्ध समाप्त हो गया। क्रुद्ध भीष्म का युद्ध में पराक्रम देखकर दुर्योधन को बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर धर्मात्मा युधिष्ठिर बहुत शोकाकुल हुए। उन्होंने सोचा कि जो भीष्म यों ही लड़ते रहे तो अवश्य हमारी हार होगी। इससे भाइयों और सब राजाओं के साथ वे उसी दम श्रीकृष्ण के पास जाकर कहने लगे—कृष्णचन्द्र !



आग जैसे गर्मियों में सूखे घास-फूस के ढेर को जलावे, वैसे ही भीष्म पितामह अपने बाणों से मेरी सेना का संहार कर रहे हैं। हम लोग इन महात्मा पितामह का सामना कैसे कर सकेंगे ? वे आहुति पाकर प्रज्वलित अग्नि की तरह मेरी सेना को भस्म कर रहे हैं। धनुष धारण किये महाबली भीष्म को देखकर और उनके बाणों की चोट खाकर मेरी सेना भाग खड़ी होती है। क्रुद्ध दण्डपाणि यमराज, वज्रपाणि इन्द्र, पाशपाणि वरुण, गदापाणि कुबेर चाहे जीते भी जा सकें, किन्तु धनुष हाथ में लिये महाबली भीष्म नहीं जीते जा सकते। मैं अपनी बुद्धि की कमजोरी के कारण, जिसके पार जाने के लिए कोई

उपायरूप नौका नहीं है उस, भीष्मरूप अथाह समुद्र में डूबा जा रहा हूँ। हे वासुदेव ! मैं वन को चला जाऊँगा, वहाँ जीवन विताना मुझे अच्छा जान पड़ता है। इन राजाओं को और इतनी सेना को व्यर्थ भीष्म के हाथों मृत्युमुख में भेजना मुझे ठोक नहीं जँचता। महात्माओं के ज्ञाता भीष्म १० बहुत शीघ्र मेरी सारी सेना नष्ट कर देंगे। जैसे जलती हुई आग में हज़ारों पतङ्ग जलने के लिए कूदते हैं, वैसे ही मेरे सैनिक केवल विनाश के लिए भीष्म के सामने जाते हैं। मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारे ये भाई बाणों के प्रहार से पीड़ित हो रहे हैं। ये मेरे ही कारण भ्रातृस्नेह से आज तक सुख और राज्य से भ्रष्ट होकर कष्ट सहते आये हैं। राज्य के लिए पराक्रम करके भीष्म के द्वारा मैं अवश्य चौपट होऊँगा। मैं इस समय अपना और अपने भाइयों का जीवन ही बड़ो

बात समझ रहा हूँ। इस समय तो जीवन ही दुर्लभ जान पड़ता है। मैं शेष जीवन कठोर तप करके भले बिता दूँगा; किन्तु रण में इन मित्रों की हत्या नहीं करा सकूँगा।

हे माधव, महाबली भीष्म ने मेरे पक्ष के कई हजार श्रेष्ठ योद्धाओं को अपने दिव्य अस्त्रों से मार डाला है और वे इसी तरह नित्य मेरी सेना का संहार करेंगे। इसलिए बहुत जल्द यह बताइए कि क्या करने से मेरा हित होगा। महावीर अर्जुन मुझे सङ्ग्राम से उदासीन से देख पड़ते हैं। अकेले भीमसेन क्षत्रिय-धर्म के अनुसार यथाशक्ति बाहुबल से युद्ध करते हैं। महामनस्वी वीर भीम शत्रुघातिनी गदा से उत्साहपूर्वक रथों, हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों के दिलों में दुष्कर कर्म अवश्य करते हैं, किन्तु ये अकेले सौ वर्ष में भी सरल युद्ध के द्वारा शत्रु-सेना का संहार नहीं कर सकते। तुम्हारे प्रिय सखा ये अर्जुन ही सब दिव्य अस्त्रों को जानते हैं। सो ये भीष्म, द्रोण आदि के द्वारा हमारे पक्ष का नाश होते देखकर भी लापरवाही दिखा रहे हैं। २०

महात्मा भीष्म और द्रोणाचार्य के दिव्य अस्त्र बारम्बार प्रयुक्त होकर हमारे पक्ष के सब क्षत्रियों को भस्म कर डालेंगे। हे कृष्णचन्द्र! भीष्म का जैसा पराक्रम है, उसे देखकर स्पष्ट जान पड़ता है कि वे अपने पक्ष के सब राजाओं के साथ, क्रुद्ध होकर, हमारी सारी सेना को नष्ट कर देंगे। इसलिए हे जनार्दन, शीघ्र वह वीर बताइए जो युद्ध में भीष्म को वैसे ठण्डा कर सकता हो जैसे दावानल को मेघ शान्त कर देते हैं। हे योगेश्वर, हे महाभाग! आपके ही प्रसाद से पाण्डव लोग शत्रुओं को मारकर अपना राज्य पावेंगे और भाई बन्धु सहित आनन्द करेंगे।

हे महाराज, यों कहकर महामनस्वी युधिष्ठिर शोक से व्याकुल अवस्था में बहुत देर तक [आँखें बन्द किये] ध्यानावस्थित से बैठे रहे। तब उन्हें शोक से व्याकुल और दुःखित जानकर श्रीकृष्णचन्द्र सब पाण्डवों को प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहने लगे—हे पाण्डवश्रेष्ठ, आप शोक न करें। आप शोक करने के योग्य नहीं हैं; क्योंकि आपके चारों भाई त्रिलोक-प्रसिद्ध योद्धा और अद्वितीय वीर हैं। मैं, महायशस्वी सात्यकि, विराट, द्रुपद, धृष्टद्युम्न और अपनी सेनाओं सहित ये सब राजा लोग आपका प्रिय करनेवाले और भक्त हैं। सब आपके कृपाकाँक्षी और हितचिन्तक हैं। आपके हितैषी, प्रिय करनेवाले, महाबली धृष्टद्युम्न सेनापति हैं। हे महाबाहो! विश्वास रखिए, ये शिखण्डी ही भीष्म के लिए मृत्युस्वरूप हैं। ३०

धार्मिकश्रेष्ठ युधिष्ठिर यह सुनकर उस सभा के बीच में वासुदेव के सामने धृष्टद्युम्न से बोले—हे धृष्टद्युम्न, मेरी बातों को मन लगाकर सुनो। मुझे पूरा विश्वास है कि मैं जो कहूँगा, उसे तुम नहीं टालोगे। तुम वासुदेव के समान प्रतापी हो। पहले कार्तिकेय जैसे देवताओं के सेनापति हुए थे, वैसे ही तुम पाण्डवों के सेनापति हो। हे पुरुषसिंह, तुम अपना बल और पराक्रम दिखाकर कौरवों का संहार करो। मैं, भीमसेन, श्रीकृष्ण, नकुल, सहदेव, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और अन्य प्रधान-प्रधान राजा लोग, सब तुम्हारे पीछे सहायता के लिए चलेंगे।

युधिष्ठिर के वचन सुनकर वहाँ उपस्थित सब लोगों को प्रसन्न करते हुए धृष्टशुभ्र कहने लगे—भगवान् शङ्कर ने मुझे द्रोण का काल बनाया है। महाराज! मैं युद्ध में भीष्म, कृप, द्रोण,



शल्य और दर्पयुक्त जयद्रथ आदि सब महारथियों से युद्ध करूँगा। महावीर धृष्टशुभ्र जब इस प्रकार युद्ध के लिए तैयार हुए तब सब पाण्डव प्रसन्न होकर सिंहनाद और जय शब्द करने लगे। अब धर्मराज युधिष्ठिर ने सेनापति धृष्टशुभ्र से कहा—हे वीर, जब देवताओं और असुरों का संग्राम हुआ था तब महामनस्वी बृहस्पति ने इन्द्र को जो दुर्भेद्य क्रौञ्चव्यूह बतलाया था, वही व्यूह हम लोग रचेंगे। वह व्यूह शत्रुसेना को नष्ट कर देता है। कौरव और अन्य राजा लोग पहले कभी न देखे हुए उस व्यूह को देखेंगे।

धृष्टशुभ्र को यह उपदेश देकर धर्मराज युधिष्ठिर ने रात्रि को विश्राम किया। सबेरे पाण्डवों ने इस तरह क्रौञ्चव्यूह की

रचना की;—सब सेना के अगले भाग में अर्जुन स्थित हुए। अर्जुन के रथ की ध्वजा इन्द्र की आज्ञा से विश्वकर्मा ने बनाई थी। वह ध्वजा वज्र के रङ्ग की अनेक पताकाओं से शोभित थी। वह आकाशस्थित गन्धर्व नगर के समान अन्तरिक्ष में फहरा रही थी। उसे देखने से जान पड़ता था मानों वह नृत्य कर रही हो। सूर्य के समीप स्थित होकर ब्रह्मा जैसे शोभित होते हैं, वैसे ही उस प्रकाशमान ध्वजा के समीप अर्जुन की शोभा हुई। बहुत सी सेना साथ लिये हुए राजा द्रुपद उस व्यूह के मस्तक में स्थित हुए। कुन्तिभोज और चैद्य दोनों वीर नेत्र के स्थान में स्थित हुए। दशार्णदेशीय, प्रभद्रकगण, दाशेरक, अनूपक और किरातगण उसकी गर्दन के स्थान में स्थित हुए। धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं पटञ्जर, पौण्ड्र, पौरवक और निषादगण के साथ उसके पृष्ठभाग में स्थित हुए। भीमसेन, धृष्टशुभ्र, महारथी सात्यकि, द्रौपदी के पाँचों

५० पुत्र, अभिमन्यु पिशाचगण, पुण्ड्रगण, दरद, कुण्डाविष, मारुत, धेनुक, तङ्गण, परतङ्गण, वाह्मीक, तित्तिर, पाण्ड्य, चोल आदि देशों के वीर दक्षिणपक्ष में, और अग्निवेश, हुण्ड, मालव, दानभारि, शबर, उद्गस, वत्स और नाकुल आदि वीरों की सेना के साथ नकुल और सहदेव वाम-

पक्ष में स्थित हुए। इस व्यूह के दोनों पक्षों में दस हजार (अयुत), मस्तक में दस लाख (नियुत), पृष्ठस्थल में दस करोड़ (एक अर्बुद) बीस हजार और गर्दन में एक नियुत सत्तर हजार रथ रक्खे गये। उसके चारों ओर, पक्षों और उनके किनारों में—प्रकाशमान पर्वतों के समान—सुवर्ण-भूषित हाथियों के झुण्ड चले। केकय देश के राजाओं सहित राजा विराट उस व्यूह के जङ्घा भाग की रक्षा कर रहे थे। काशिराज और शैव्य तीस हजार रथों सहित उस व्यूह के दूसरे जङ्घा भाग की रक्षा कर रहे थे।

राजन! इस प्रकार सूर्योदय की प्रतीक्षा करते हुए सब वीरों सहित राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव व्यूह की रचना करके, कवच आदि पहनकर, युद्धभूमि में स्थित हुए। उनके हाथियों और रथों के ऊपर सूर्य के समान चमकीले अत्यन्त निर्मल सफ़ेद छत्र तने हुए थे।

५८

इश्यावनवाँ अध्याय

वीरों का व्यूह बनाना

सञ्जय कहते हैं कि महाराज! महातेजस्वी पाण्डवों के रचे हुए उस दुर्भेद्य महाव्यूह को देखकर आपके पुत्र दुर्योधन ने द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, सोमदत्त-तनय, विकर्ण, अश्वत्थामा, दुःशासन आदि भाइयों और युद्ध के लिए आये हुए अपने पक्ष के अन्य शूरवीरों को सम्बोधन करके उत्साहित और प्रसन्न करते हुए कहा—हे वीरों, तुम सब अनंक शस्त्र और शस्त्र जानने-वाले हो। तुममें से हर एक वीर पाण्डवों को और उनकी सेना को नष्ट कर सकता है। फिर जब सभी मिलकर यह यत्न कर रहे हो तब इसमें क्या सन्देह किया जा सकता है? हमारी सेना अपार है और उसके रक्षक महापराक्रमी भीष्म हैं। पाण्डवों की सेना परिमित है और उसके रक्षक भीमसेन हैं। इस समय मेरा यही कहना है कि संस्थान, शूरसेन, वेत्रिक, कुकुर, आरांचक, त्रिगर्त, मद्रक, यवन आदि देशों के राजा लोग और शत्रुसञ्जय, दुःशासन, विकर्ण, सुधीर, चित्रसेन, नन्दक, उपनन्दक, पारिभद्रक आदि सब वीर अपनी-अपनी सेना साथ लेकर भीष्म पितामह की रक्षा करें।

इस तरह दुर्योधन के कहने पर महातेजस्वी भीष्म, द्रोण और आपके सब पुत्र पाण्डवों के आक्रमण को रोकनेवाले महाव्यूह की रचना करने लगे। महावीर भीष्म बहुत सी सेना १० साथ लेकर इन्द्र की तरह आगे चले। गान्धार, सिन्धु-सैवीर, शिवि, वसाति, कुन्तल, दशार्ण, मगध, विदर्भ, मेलक, कर्णप्रावरण आदि देशों की वीर सेना को साथ लिये हुए महाप्रतापी द्रोणाचार्य उनके पीछे चले। अपनी बहुत सी सेना के साथ वीर शकुनि द्रोणाचार्य के पीछे चले। उनके पीछे राजा दुर्योधन अपने सब भाइयों को साथ लेकर चले। दुर्योधन के साथ अश्व-तक, विकर्ण, वामन, कोशल, अश्वपथ, दरद, शक, क्षत्रकमालव आदि देशों के प्रसन्नचित्त वीर

पुरों की सेना थी। भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त, विन्द और अनुविन्द उस सेना के वाम भाग की रक्षा कर रहे थे। सोमदत्त-तनय, सुशर्मा, काम्बोजपति सुदक्षिण, श्रुतायु और अच्युतायु सेना के दक्षिण भाग की रक्षा कर रहे थे। अरवत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा, केतुमान्, वसुदान, काशिराज-पुत्र आदि अनेक देशों के राजा अपनी-अपनी सेना को साथ लेकर उस व्यूह के पृष्ठभाग की रक्षा कर रहे थे। इस प्रकार व्यूह बन जाने के बाद आपकी वीर-वाहिनी के सब सैनिक, प्रसन्नतापूर्वक युद्ध के लिए उत्साहित होकर, शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे। कुरुवृद्ध पितामह भीष्म भी उस शब्द को सुनकर शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे।

उधर पाण्डवों की सेना में भी शङ्ख, नगाड़ें, डङ्के आदि अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। वह गम्भीर शब्द चारों ओर गूँज उठा। महाप्रभावशाली नारायण और अर्जुन रथ पर सवार हुए। उस रथ में सफेद रङ्ग के घोड़े जुते हुए थे। केशव ने पाञ्चजन्य, अर्जुन ने देवदत्त, भीमकर्मा भीमसेन ने पौण्ड्र, कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ने अनन्तविजय, नकुल ने सुघोष और सहदेव ने मणिपुष्पक नाम का दिव्य शङ्ख बजाया। काशिराज, शैव्य, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, महावीर सात्यकि, महाधनुर्धर द्रुपद, द्रौपदी के पाँचों पुत्र और अभिमन्यु आदि भी सिंह की तरह गरजकर शङ्ख बजाने लगे। इन सब वीरों का सिंहनाद और शङ्खनाद पृथ्वी तथा आकाशमण्डल में प्रतिध्वनित हो उठा। राजन्, कौरव और पाण्डव लोग प्रसन्नता-पूर्वक फिर एक-दूसरे को सन्तापित करते हुए युद्ध के लिए उद्यत हुए।

वाचनवां अध्याय

पितामह भीष्म और अर्जुन का युद्ध

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे सञ्जय, कौरवों और पाण्डवों की सेना में इस प्रकार व्यूह-रचना हो चुकने पर वे रण-निपुण योद्धा किस तरह युद्ध करने लगे ?

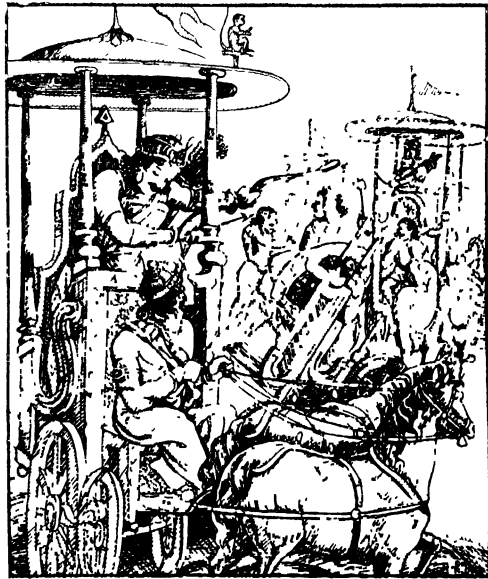
सञ्जय ने कहा—राजन् ! सेनाओं में व्यूह-रचना हो चुकी, चारों ओर ऊँची ध्वजाएँ फहराने लगीं। वह अपार सेना समुद्र सी प्रतीत होने लगी। आपके पुत्र राजा दुर्योधन ने उस अपार सैन्यसागर के बीच में खड़े होकर अपने योद्धाओं को युद्ध आरम्भ करने की आज्ञा दी। फहराती हुई ऊँची ध्वजाओं से शोभित रथों पर विराजमान वीरगण, जीवन का मोह छोड़कर, क्रोधपूर्वक पाण्डवों की सेना पर आक्रमण करने लगे। दोनों ओर की सेना घेर युद्ध करने लगी। हाथी से हाथी और रथ से रथ भिड़ गये। रथों पर से लड़नेवाले वीर हाथियों और घोड़ों पर सुवर्णपुङ्खयुक्त तीक्ष्ण अकुण्ठित बाण मारने लगे।

राजन् ! इस तरह भयानक समर छिड़ने पर महाबली भीष्म कवच पहनकर, धनुष उठाकर, शत्रुपक्ष के अभिमन्यु, महावीर भीमसेन, महारथी अर्जुन, कैकेय, विराट, धृष्टद्युम्न,

चेदि और मत्स्यदेश आदि के वीर योद्धाओं पर लगातार बाणों की वर्षा करने लगे। महावीर भीष्म के आने पर उस व्यूह की शृङ्खला नष्ट हो गई, सब योद्धा चोभ से विह्वल हो गये। १० सैनिकों ने अपने को विपत्ति में पड़ा हुआ समझा। पाण्डवों के बहुत से पैदल, घुड़सवार, ध्वजाधारी और श्रेष्ठ घोड़े मारे जाने लगे। रथी लोगों के दिल के दिल भागने लगे।

भीष्म के ऐसे पराक्रम को देखकर, बहुत ही क्रुद्ध होकर, अर्जुन ने कहा—हे श्रीकृष्ण, जहाँ पर पितामह हैं वहीं पर मेरा रथ ले चलिए। मालूम होता है कि दुर्योधन के हितचिन्तक ये भीष्म कुपित होकर मेरी सारी सेना को इसी तरह नष्ट कर देंगे। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य, विकर्ण और दुर्योधन आदि योद्धा लोग दृढ़ धनुर्धर भीष्म के द्वारा सुरक्षित होकर पाञ्चालसेना को नष्ट करेंगे। इस कारण अपनी सेना की रक्षा के लिए मैं भीष्म को अवश्य मारूँगा।

तब वासुदेव ने कहा—हे अर्जुन, मैं अभी तुम्हें भीष्म के पास पहुँचाये देता हूँ। बस, वे अर्जुन के लोक-प्रसिद्ध रथ को भीष्म के रथ के सामने ले चले। मित्रों की प्रसन्नता बढ़ानेवाले और उनकी रक्षा करनेवाले महावीर अर्जुन बगलों की कतार जैसे सफेद रङ्गवाले सुन्दर घोड़ों से युक्त, भयङ्कर वानर-केतु-युक्त, मेघ के समान गम्भीर शब्द करनेवाले, सूर्य के समान समुज्ज्वल रथ पर बहुत ही शोभायमान हो रहे थे। वे कौरवपक्ष की सेना और शूरसेनवंशी यादवों की नारायणी सेना को नष्ट करते हुए रणभूमि में आगे बढ़ने लगे।



महापराक्रमी अर्जुन वीरों को डराते और तीक्ष्ण बाणों से मारते युद्ध के लिए आ रहे हैं, यह देखकर प्राच्य, सौवीर, केकय और सैन्धव आदि महावीरों से सुरक्षित पितामह भीष्म शोग्र ही उनकी ओर आगे बढ़े। कुरु-पितामह भीष्म, गुरु द्रोणाचार्य और अतुल बलशाली कर्ण के सिवा और कौन व्यक्ति युद्धभूमि में गाण्डीवधन्वा महारथी अर्जुन के सामने जा सकता? महावीर भीष्म ने अर्जुन के पास पहुँचकर उनकी सतहत्तर नाराच बाण मारे। साथ ही द्रोणाचार्य ने पचास, कृपाचार्य ने पचास, दुर्योधन ने चौसठ, शल्य ने नव, अश्वत्थामा ने साठ, जय-

द्रुप ने नव, शकुनि ने पाँच बाण और विकर्ण ने दस भल्ल बाण मारकर चारों ओर से अर्जुन को घायल कर दिया। उन वीरों ने चारों ओर से बाण मारकर शरीर को क्षत-विक्षत तो कर दिया, किन्तु महाधनुर्धर महाबाहु अर्जुन पर्वत की तरह अचल खड़े रहे। इसके बाद अर्जुन ने भी भीष्म को पचीस, कृपाचार्य को नव, द्रोणाचार्य को साठ, विकर्ण को तीन, शल्य को तीन और दुर्योधन को पाँच बाण मारकर सबको घायल कर दिया।

उसी समय सात्यकि, विराट, धृष्टद्युम्न, अभिमन्यु और द्रौपदी के पाँचों पुत्र अर्जुन की सहायता और रक्षा के लिए उनके पास आ गये। भीष्म का प्रिय और सहायता करनेवाले ३० द्रोणाचार्य से लड़ने के लिए उनके सामने सोमकी सहित धृष्टद्युम्न आये। इधर श्रेष्ठ रथी भीष्म ने फिर अर्जुन को अस्सी बाण मारे। यह देखकर कौरवपक्ष की सेना के



लोग प्रसन्न होकर आनन्दसूचक कोलाहल करने लगे। उनका वह हर्षसूचक शब्द सुनकर महावीर अर्जुन बहुत ही क्रुद्ध हुए और उन महारथियों के बीच में घुसकर, वीरों को ताक-ताककर, बाण मारने लगे।

अपनी सेना को अर्जुन के बाणों से पीड़ित देखकर राजा दुर्योधन ने महावीर भीष्म से कहा—हे पितामह ! आप और महाधनुर्धर गुरु द्रोणाचार्य के जीते रहते ही ये बली अर्जुन, कृष्ण के साथ आकर, हमारी सेना का नाश कर रहे हैं। ये हमारी जड़ काटने को तैयार हैं। देखिए, वीरवर कर्ण हमारे हितैषी हैं; वे आपके ही कारण

अस्त्र-शस्त्र त्याग किये बैठे हैं और पाण्डवों से युद्ध नहीं करते। इसलिए अब वह उपाय कीजिए कि युद्ध में अर्जुन मार जायँ।

महाराज, दुर्योधन के ये वचन सुनकर और “हा, छात्र-धर्म का धिक्कार है !” कहकर भीष्म पितामह अर्जुन के रथ के सामने आये। दोनों के रथों में सफेद रङ्ग के घोड़े जुते हुए थे। उन दोनों को युद्ध में निरत देखकर राजा लोग बारम्बार सिंहनाद करने और शङ्ख बजाने लगे। महावीर अश्वत्थामा, राजा दुर्योधन और विकर्ण भी पाण्डवों के साथ युद्ध करने की

इच्छा से महावीर भीष्म के पास आ गये । इसी तरह पाण्डवगण भी कौरवों से महायुद्ध करने के लिए अर्जुन को घेरकर युद्धभूमि में डट गये । इसके बाद महाभयानक युद्ध होने लगा । ४१ महापराक्रमी पितामह ने अर्जुन के ऊपर नव बाण छोड़े । महारथी अर्जुन ने भी मर्मभेदी दस बाण भीष्म को मारे । इसके बाद उन्होंने हज़ारों बाण बरसाकर भीष्म को चारों ओर से छिपा दिया । पितामह भीष्म ने भी असंख्य बाण चलाकर अर्जुन के चलाये बाणों को व्यर्थ कर दिया । इस प्रकार वे दोनों वीर प्रसन्नतापूर्वक एक दूसरे के प्रहार को व्यर्थ करते हुए तुल्यरूप से युद्ध करने लगे । जितने बाण भीष्म के धनुष से निकलते थे, उन्हें अर्जुन व्यर्थ कर देते थे, और जितने बाण अर्जुन के गाण्डोव धनुष से निकलते थे, वे भीष्म के बाणों से कट-कटकर पृथ्वी पर गिर पड़ते थे । महावीर अर्जुन ने भीष्म को पचीस बाण मारे, और भीष्म ने भी अर्जुन को नव बाण मारे ।

राजन् ! शत्रुओं का मान-मर्दन करनेवाले वे दोनों महावीर एक दूसरे के घोड़े, ध्वजा, रथ-चक्र, रथदण्ड आदि को बाणों से वेधते हुए युद्धक्रीड़ा करने लगे । इसके बाद महापराक्रमी भीष्म ने क्रुद्ध होकर तरकस से तीन बाण निकालकर धनुष पर चढ़ाकर श्रीकृष्ण की छाती में मारे । ५० भीष्म के धनुष से छूटे हुए बाणों से घायल होकर श्रीकृष्णचन्द्र फूले हुए ढाक के पेड़ के समान शोभा को प्राप्त हुए । श्रीकृष्ण को घायल देखकर महावीर अर्जुन क्रोध से अर्धर हो उठे । उन्होंने भी तीन बाण मारकर भीष्म के सारथी को घायल कर दिया । वे दोनों वीर एक दूसरे के वध के लिए चेष्टा करके भी उसमें कृतकार्य नहीं हो सकते थे । दोनों वीर अपने-अपने सारथी की सामर्थ्य और कुर्ती के प्रभाव से तरह-तरह के मण्डल और गत-प्रत्यागत आदि कौशल दिखाने लगे । एक दूसरे के ऊपर प्रहार करने का अवसर खोजता था । दोनों वीर सिंहनाद, शङ्खनाद और धनुष का शब्द कर रहे थे । उन महारथियों के शङ्खनाद और रथचक्र फिरने के घोर शब्द से पृथ्वी हिलती थी, फटी जाती थी, और आर्तनाद कर रही थी । उस समय कोई भी यह निश्चय नहीं कर सकता था कि भीष्म और अर्जुन में कौन कम है और कौन अधिक है । क्योंकि दोनों ही बली, युद्धदुर्धर्प और समान पराक्रम दिखा रहे थे । कौरव लोग भीष्म को और पाण्डव लोग अर्जुन को ध्वजा के चिह्नमात्र से पहचान पाते थे, उनके शरीर को कोई नहीं देख पाता था । क्योंकि एक तो वे एक स्थान पर नहीं ठहरते थे, दूसरे धूल भी बेइद ६० उड़ रही थी, तीसरे बाण-जाल उन्हें छिपा लेते थे । युद्धभूमि में दोनों का ऐसा अद्भुत पराक्रम देखकर अपने और पराये सबको बड़ा आश्चर्य हो रहा था । हे भारत, जैसे धर्मात्मा पुरुष में रस्ती भर पाप नहीं देख पड़ता, वैसे ही उन दोनों के युद्धकौशल में कहीं पर कुछ भी असावधानी या दोष नहीं देख पड़ता था । वे कभी एक दूसरे को बाण-वर्षा से ढक लेते थे और कभी उन बाणों के जाल कट जाने पर उनके रथ प्रकट हो जाते थे ।

राजन् ! दोनों पुरुषसिंहों का अतुल पराक्रम देखकर देवता, गन्धर्व, चारण और महर्षिगण परस्पर कहने लगे कि मनुष्य की कौन कहे, देवता, असुर और गन्धर्वगण भी संग्राम में इन दोनों वीरों को परास्त नहीं कर सकते । यह बड़ा अद्भुत संग्राम है; ऐसा संग्राम कभी न होगा । धनुष हाथ में लिये और रथ पर सवार भीष्म कभी अर्जुन से हारनेवाले नहीं हैं, और देवताओं के लिए भी दुर्द्धर्ष अर्जुन का भीष्म से संग्राम में परास्त होना सम्भव नहीं । जब तक सृष्टि की स्थिति है, तब तक भी चाहे यह युद्ध होता रहे, परन्तु दोनों में से कोई हारनेवाला नहीं है ।

महाराज, भीष्म और अर्जुन से युद्ध होते समय इसी तरह के प्रशंसासूचक वाक्य चारों ओर सुनाई पड़ रहे थे । उधर आपके और पाण्डवों के पक्ष के योद्धा तीक्ष्ण खड्ग, परशु, बाण आदि तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्रों से एक दूसरे के शरीरों को काट रहे थे । इधर भीष्म और ७२ अर्जुन का घोर युद्ध हो रहा था, उधर द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न भी दारुण संग्राम कर रहे थे ।

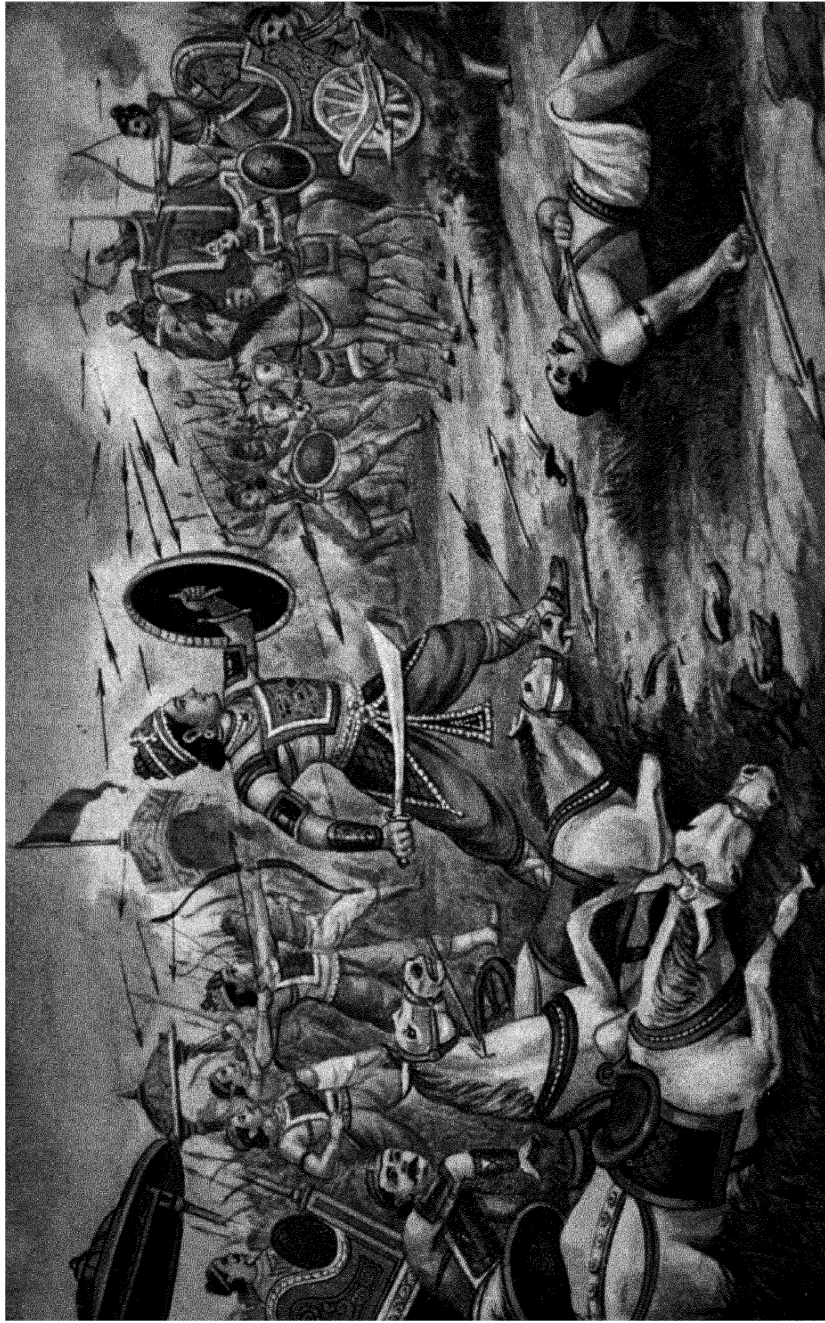
तिरपनवाँ अध्याय

द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न का युद्ध

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सख्य, महाधनुर्धर द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न ने रणभूमि में प्रवेश करके किस तरह युद्ध किया ? उसका हाल मुझसे कहो । मैं पौरुष की अपेक्षा दैव को ही श्रेष्ठ समझता हूँ । देखो, जो भीष्म क्रुपित होकर युद्धभूमि में चराचर जगत् को नष्ट कर सकते हैं वही भीष्म अर्जुन को नहीं मार सके; बल्कि एक तरह से उनसे हार ही गये ।

सख्य ने कहा—राजन्, अब मैं द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्न के दारुण युद्ध का हाल कहता हूँ, ध्यान देकर सुनिए । इन्द्र सहित देवता कभी युद्ध में पाण्डवों को नहीं जीत सकते । महावीर द्रोणाचार्य ने अनेक प्रकार के बाणों से क्रुद्ध धृष्टद्युम्न को घायल करके एक भल बाण मारकर उनके सारथी को रथ पर से मार गिराया । इसके बाद क्रुद्ध होकर उनके चारों ओर घेड़ों का चार बाण मारे । तब धृष्टद्युम्न ने भी तीक्ष्ण धारवाले नव्हे बाणों से द्रोणाचार्य को घायल किया और “खड़े रहो, खड़े रहो” कहकर दर्प प्रकट किया । महाबली द्रोणाचार्य ने फिर बाण बरसाकर धृष्टद्युम्न को ढक दिया । अब धृष्टद्युम्न को मारने के लिए उन्होंने वज्ररूप, मृत्युदण्ड-तुल्य, एक अन्य बाण हाथ में लिया । द्रोणाचार्य ने वह बाण जब धनुष पर चढ़ाया १० तब सब सैनिक हाहाकार करके चिल्ला उठे ।

हे भारत, उस समय धृष्टद्युम्न का अद्भुत पौरुष देख पड़ा । वे तनिक भी विचलित न होकर वहीं पर पहाड़ के समान खड़े रहे । मूर्तिमान् मृत्यु के समान उस प्रज्वलित बाण के राह में ही, अपने बाण से, दो टुकड़े करके धृष्टद्युम्न बाण बरसाने लगे । इस प्रकार धृष्टद्युम्न के हाथों यह दुष्कर कार्य होने पर पाण्डव और पाञ्चालगण प्रसन्नतापूर्वक आनन्दध्वनि करने लगे ।



अब बलशाली छट्छु झ शतचन्द्रयुक्त, अत्यन्त मनोहर, बड़े आकारवाली ढाल और दिव्य हथौड़ा लेकर आचार्य को मारने के लिए मस्त हाथी के सामने सिंह की तरह झपटे ।—पृ० १६६१

इसके बाद प्रतापी धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को मारने के इरादे से स्वर्णमयी, वैडूर्यमणि से विभूषित, महावेगशालिनी एक विकराल शक्ति फेंकी। महावीर द्रोण ने हँसते-हँसते राह में ही उस शक्ति के तीन टुकड़े कर डाले। महाबली धृष्टद्युम्न उस शक्ति को इस तरह व्यर्थ देखकर द्रोणाचार्य के ऊपर बाण बरसाने लगे। महारथी द्रोणाचार्य ने उस बाण-जाल को व्यर्थ करके धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला। धनुष कट जाने पर महायशस्वी धृष्टद्युम्न ने कुपित होकर आचार्य को मारने के लिए उनके ऊपर एक वज्र-तुल्य हठ, पर्वततुल्य भारी, गदा फेंकी। पराक्रमी द्रोणाचार्य ने अपने पराक्रम से उसे निष्फल करके सुवर्णपुङ्ख-युक्त अत्यन्त तीक्ष्ण भल्ल बाण धृष्टद्युम्न को मारे। वे बाण धृष्टद्युम्न का कवच तोड़कर उनके हृदय का रक्त पीने लगे। अब वीर धृष्टद्युम्न ने उसी २१ दम अन्य धनुष लेकर पराक्रमपूर्वक पाँच बाण द्रोणाचार्य को मारे। उस समय उन दोनों वीरों के शरीर खून से तर होकर वमन्तकाल में फूले हुए ढाक के पंड़ों के समान दिखाई पड़ने लगे।

महाराज, अमित पराक्रमी द्रोणाचार्य ने क्रुद्ध होकर फिर धृष्टद्युम्न का धनुष काट डाला। मेघ जैसे पहाड़ के ऊपर पानी बरसाता है वैसे ही वे धृष्टद्युम्न के ऊपर सन्नतपर्व बाण बरसाने लगे। इसके बाद आचार्य ने एक

भल्ल बाण से उनके सारथी को और चार बाणों से चारों घोड़ों को मारकर, एक बाण से धनुष काट डाला और सिंहनाद किया। धनुष कट जाने और सारथी सहित घोड़ों के मरने पर धृष्टद्युम्न ने हाथ में एक गदा ली। वह गदा लेकर पराक्रम प्रकट करने के लिए वे रथ से उतर रहे थे, इसी समय द्रोणाचार्य ने बाणों से वह गदा भों काट डाली। यह देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब बलशाली धृष्टद्युम्न शतचन्द्रयुक्त, अत्यन्त मनोहर, बड़े आकारवाली ढाल और दिव्य खड्ग लेकर आचार्य को मारने के लिए, मस्त हाथी के सामने सिंह की तरह,



भपटे। उस समय महावीर द्रोणाचार्य ने बाहुबल, अस्त्रप्रयोग, पौरुष और हाथ की फुर्ती दिखाई। उन्होंने अकेले ही बाणवर्षा करके धृष्टद्युम्न को रोक दिया। असाधारण बलशाली

होने पर भी धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्य के पास तक नहीं जा सके। केवल हाथ की कुर्ती दिखाते हुए, ढाल घुमाकर, उन बाणों की चोट बचाते रहे।

इसी समय महापराक्रमी भीमसेन वीर धृष्टद्युम्न की सहायता के लिए वहाँ आ गये। उन्होंने तीक्ष्ण धारवाले सात बाण द्रोणाचार्य को मारे। भीमसेन की सहायता पाकर धृष्टद्युम्न कुर्ती के साथ उनके रथ पर सवार हो गये। राजा दुर्योधन ने भी आचार्य की रक्षा करने के लिए बहुत सी सेना के साथ कलिङ्ग-नरेश को भेजा। आपके पुत्र की आज्ञा पाकर कलिङ्ग देश की सेना भीमसेन के ऊपर आक्रमण करने के लिए दौड़ पड़ी। श्रेष्ठ रथी द्रोणाचार्य तब धृष्टद्युम्न को छोड़कर वृद्ध राजा विराट और द्रुपद के सामने आ गये और एक साथ दोनों से युद्ध करने लगे। महाराज, इधर धृष्टद्युम्न युद्धभूमि में राजा युधिष्ठिर के पास गये उधर पराक्रमी भीमसेन के साथ ४१ कलिङ्ग देश की सेना का बड़ा भयानक, जगत् का नाश करनेवाला, संग्राम होने लगा।

चौवनवाँ अध्याय

कलिङ्गराज की मृत्यु

धृतराष्ट्र ने कहा—सञ्जय! विशाल सेना के सम्बालक कलिङ्गराज ने, मेरे पुत्र की आज्ञा पाकर, दण्डपाणि यमराज की तरह गदा हाथ में लेकर विचरते हुए अद्भुतकर्मा महापराक्रमी भीमसेन से किस तरह युद्ध किया? सब वृत्तान्त मुझे सुनाओ।

सञ्जय ने कहा—राजेन्द्र, महाबलशाली कलिङ्ग-नरेश आपके पुत्र की आज्ञा से बहुत सी सेना साथ लेकर भीमसेन के रथ की ओर बढ़े। घोड़े, हाथी, रथ आदि पर सवार और अस्त्र-शस्त्र हाथ में लिये कलिङ्ग देश के सैनिकों को तथा निषादनन्दन केतुमान को आते देखकर भीमसेन चेदि देश के वीरों को साथ लेकर उनके सामने आये। उस समय क्रोध से अधोर श्रुतायु भी, व्यूह रचकर खड़ी हुई सेना के द्वारा सुरक्षित होकर, राजा केतुमान के साथ भीमसेन के सामने आये। कलिङ्गराज ने कई हज़ार रथों से और महावीर केतुमान ने निषाद-सेना तथा दस हज़ार हाथियों से भीमसेन को घेर लिया। उधर भीमसेन के आगे स्थित चेदि, मत्स्य और करुष देश के वीर और अन्य बहुत से राजा निषाद-सेना से लड़ने के लिए आगे बढ़े। इस तरह एक १० दूसरे को मारने की इच्छा से परस्पर बढ़कर दोनों पक्षों के वीरों में घोर संग्राम होने लगा।

राजन, जैसे इन्द्र ने बहुत बड़ी दैत्य-सेना के साथ युद्ध किया था वैसे ही भीमसेन भी शत्रुदल के साथ अत्यन्त घोर संग्राम करने लगे। उस समय उस महासेना का कोलाहल महासागर के गर्जन के समान जान पड़ने लगा। योद्धा लोग एक दूसरे के शरीरों को काट रहे थे, इस कारण सारी पृथ्वी मांस और रक्त की कीचड़ से परिपूर्ण हो गई। रणदुर्मद वीरगण, हिसाप्रवृत्ति के वश होने के कारण, अपने-पराये का खयाल नहीं कर सकते थे। बहुत लोग

अपने ही पक्ष के लोगों को—आत्मीयों को—मार डालते थे। कलिङ्ग देश के सैनिक और निषाद-गण संख्या में बहुत थे। उनके साथ थोड़ी संख्यावाले चेदिगण का युद्ध होने लगा। चेदिगण ने पहले यथाशक्ति अपना पराक्रम और पौरुष दिखाया, परन्तु अन्त को वे शत्रुसेना का आक्रमण न रोक सके और अत्यन्त व्यथित होकर, भीमसेन को छोड़कर, भाग खड़े हुए। इस तरह चेदिगण के विमुख होने पर महावीर भीमसेन, अपने बाहुबल का सहारा लेकर, कलिङ्गसेना के सामने जाकर संग्राम करने लगे। अटल भाव से रथ पर स्थित भीमसेन पैसे बाण चलाकर कलिङ्गसेना को मारने और घायल करने लगे।

तब महाधनुर्धर कलिङ्गराज और उनके पुत्र शक्रदेव, दोनों युद्धभूमि में भीमसेन के ऊपर तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। उस समय भीमसेन अपने बाहुबल का आश्रय लेकर, धनुष चढ़ाकर, कलिङ्ग देश की सेना से घोर युद्ध करने लगे। कलिङ्ग देश के राजकुमार शक्रदेव ने बहुत से बाणों से भीमसेन के रथ के घोड़ों को मार डाला। इस प्रकार उन्हें रथ-हीन करके असंख्य बाण बरसाते हुए शक्रदेव भीमसेन के ऊपर आक्रमण करने को दौड़े। मेघ जैसे वर्षाकाल में जल बरसाते हैं वैसे ही शक्रदेव भीमसेन के ऊपर बाण बरसाने लगे। बिना घोड़ों के रथ पर स्थित महापराक्रमी भीमसेन ने एक सुदृढ़ गदा उठाकर शक्रदेव के ऊपर फेंकी। उस गदा की चौट से महावीर शक्रदेव, उनका रथ, ध्वजा, घोड़े और सारथी, सब कुछ चूर-चूर हो गया।



२०

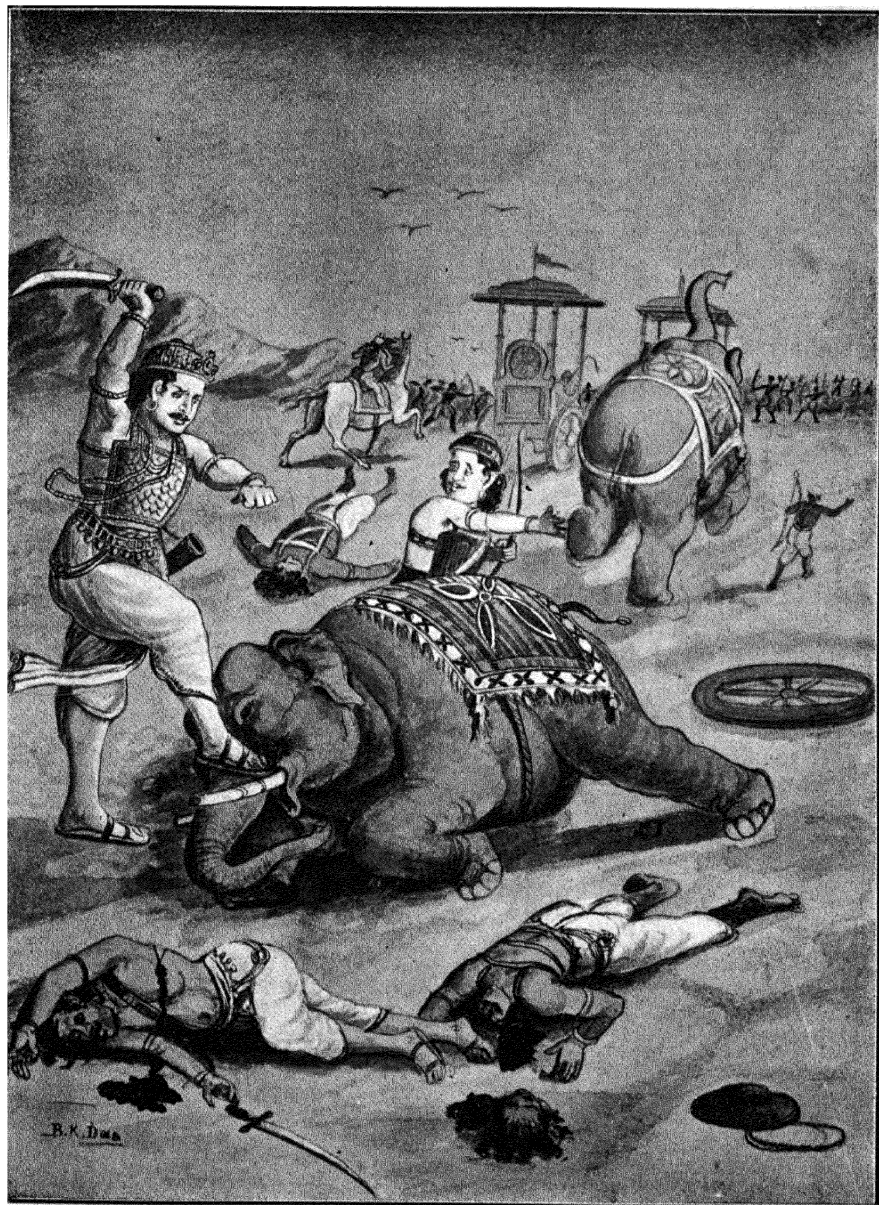
पुत्र की मृत्यु देखकर महारथी कलिङ्गराज क्रोध से अधीर हो उठे। उन्होंने कई हज़ार रथों से भीमसेन को घेर लिया। तब महावीर भीमसेन ने भयानक काम करने की इच्छा से गदा छोड़कर खड्ग और हेममय नक्षत्रों तथा अर्द्धचन्द्र के चिह्न से शोभित अति दृढ़ वृषभचर्म की ढाल ले ली। महाबली कलिङ्गराज ने भीमसेन को देखकर क्रोधपूर्वक धनुष पर डोरी चढ़ाकर, उनको मारने के लिए, एक विषैले सर्प-तुल्य भयानक बाण हाथ में लिया। कलिङ्गराज ने धनुष पर चढ़ाकर वह बाण छोड़ दिया परन्तु भीमसेन ने तीक्ष्ण धारवाले खड्ग से उस बाण के दो टुकड़े कर डाले। वे कौरवों के मन में त्रास उत्पन्न करते हुए बड़े आनन्द से सिंहनाद करने ३०

लगे। अब महावीर कलिङ्गनाथ ने क्रोध से अधीर होकर भीमसेन के ऊपर अत्यन्त तीक्ष्ण चौदह बाण छोड़े। वे सब तोमर बाण आकाशमार्ग से होकर ज्योंही भीमसेन के पास पहुँचे त्योंही उन्होंने खड्ग से उन बाणों को काट डाला।

- कलिङ्गराज के मारे हुए तोमर बाण कट जाने पर विक्रमशाली भीमसेन कुँअर भानुमान को ताककर दौड़े। कुँअर भानुमान असंख्य बाणों से भीमसेन को छाकर आकाश को कँपाने-वाला सिंहनाद करने लगे। भानुमान के सिंहनाद को महावीर भीमसेन सह नहीं सके। वे भी क्रुद्ध होकर ज़ोर से गरजने लगे। उस शब्द से कलिङ्गसेना डरकर काँपने लगी। उस सेना को भीमसेन कोई असाधारण देवता जान पड़ने लगे। राजन्, इसके बाद गम्भीर गर्जन करते हुए भीमसेन हाथ में तलवार लिये रथ पर से कूद पड़े और बड़े वेग से दौड़े। वे भानुमान के हाथी के दोनों दाँतों पर पैर रखकर उसके ऊपर चढ़ गये। उस समय वह हाथी शिखर-युक्त पर्वत सा जान पड़ने लगा। महावीर भीमसेन ने हाथी के ऊपर जाकर पहले खड्ग से
- ४० भानुमान का सिर काट गिराया और फिर हाथी के कन्धे पर तलवार का एक हाथ मारा। इससे वह हाथी घोर चीत्कार करते पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके गिरने के पहलू ही भीमसेन उसके ऊपर से नीचे कूद पड़े। अब खड्ग हाथ में लिये हुए भीमसेन दर्प के साथ अजेय हाथियों का संहार करने लगे। वे उस गज-सेना के बीच अग्निचक्र के समान चारों ओर फिरने लगे। हाथियों पर सवार असंख्य योद्धाओं के सिर काटते, वारों को विमोहित करते हुए क्रोधित भीमसेन अकलं ही काल के समान युद्धभूमि में विचरने लगे। वीरगण विमूढ़ से होकर भयानक शब्द करते हुए भीमसेन की ओर दौड़े। शत्रुदलनाशन भीमसेन रथों के दण्ड और युग आदि को तोड़ते-फोड़ते और योद्धाओं को मारते इधर-उधर भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, प्रसृत,
- ५० प्लुत, सम्पात और समुदीर्ण आदि तरह-तरह की गतियों और पैतरो से विचरने लगे।

भीमसेन के भयङ्कर खड्ग-प्रहार से हाथियों के मर्मस्थल कट-फट गये और वे ऊँचे स्वर से चिल्लाते हुए पृथ्वी पर गिरने लगे। कुछ हाथियों के दाँत, सूँड़, मस्तक आदि अङ्ग कट गये। उन्होंने चीत्कार करते हुए इधर-उधर दौड़कर, गिरकर, अपने ही पक्ष के सैनिकों को कुचल डाला। राजन्! उस युद्ध में तोमर, अंकुश, महावत, योद्धाओं के सिर, विचित्र कम्बल, सुवर्णमण्डित बाँधने की रस्सियाँ, हाथी-घोड़ों की गर्दन बाँधने की रस्सियाँ, शक्ति, पताका, तरकस, बाजे, विचित्र धनुष, मुद्गर, भिन्दिपाल, तोत्र, अंकुश, घण्टा, म्याने और तलवारें आदि सामग्रियाँ गिरती और गिरी हुई चारों ओर देख पड़ती थीं। हाथियों की सूँड़ें और छिन्न-भिन्न लाशों के ढेर पर्वत के समान देख पड़ते थे।

राजन्, महाबली पराक्रमी भीमसेन इस तरह हाथियों की सेना का विनाश करके घोड़ों तथा उनके सवारों को मारने और गिराने लगे। उस समय कौरव पक्ष के योद्धाओं के साथ



अब खड्ग हाथ में लिये हुए भीमसेन द्रुपद के साथ अजय हाथियों का संहार करने लगे ।—पृ० १६६४

महावीर भीमसेन का बड़ा भयानक युद्ध होने लगा । उस महासंग्राम में लगाम, जात, सुवर्ण-मण्डित चमकती हुई बाँधने की रस्सियाँ, प्रास, ऋष्टि, कवच, ढाल, तरह-तरह के आस्त्रगण और आभूषण पृथ्वी पर चारों ओर बिखर पड़ने के कारण ऐसा जान पड़ने लगा मानों पृथ्वी पर तरह तरह के सफेद कुमुद-पुष्प खिल रहे हैं । उस समय महावीर भीमसेन उछल-उछलकर खड्ग के प्रहार से रथों और घोड़ों पर सवार योद्धाओं के सिर और ध्वजाएँ काट-काटकर गिराने लगे । वे बारम्बार धावन, उत्पन्न आदि गतियों के अनुसार पँतरे बदलकर चारों ओर फिर रहे थे । उनका यह पराक्रम और फुर्ती देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था । किसी-किसी योद्धा को उन्होंने पैरों से कुचलकर मार डाला । किसी को खींचकर पटक दिया । किसी को खड्ग के प्रहार से दो-टुकड़े कर डाला । कोई उनके भयानक सिंहनाद से ही डरकर मर गया । कुछ लोग उनकी जाँघों के वे से पृथ्वी पर गिर पड़े । बहुत लोग उन्हें देखकर ही डर के मारे मर गये । इस प्रकार उस अमित कलिङ्गसेना को जब भीमसेन मारने लगे तब उस सेना के लोग भीष्म की शरण में गये । भीष्म के साथ फिर कलिङ्गसेना भीमसेन की ओर बढ़ी । भीमसेन उस कलिङ्गसेना के साथ श्रुतायु को आते देखकर उनकी ओर चले । पराक्रमी कलिङ्गराज श्रुतायु ने भीमसेन को आते देखकर उनकी छाती में तीक्ष्ण नव बाण मारे । ईर्ष्य से जैसे आग बल उठती है, अथवा अंकुश मारने से जैसे हाथी उत्तेजित हो उठता है, वैसे ही उन बाणों के लगने से भीमसेन क्रोध के मारे प्रज्वलित हो उठे । इसी समय सारथी अशोक भीमसेन के पास सुवर्णमण्डित रथ लेकर पहुँचा । भीमसेन उस रथ पर सवार हुए और “ठहर तो जा, ठहर तो जा” कहते हुए कलिङ्गराज की ओर दौड़े । बलवान् कलिङ्गराज श्रुतायु ने कुपित होकर फुर्ती के साथ भीमसेन के ऊपर नव बाण छाड़े । महाबली पराक्रमी भीमसेन ने कलिङ्गराज के धनुष से छूटे हुए बाणों की चोट खाकर, बण्डे से मारे गये विपैले साँप की तरह, अत्यन्त कुपित होकर धनुष चढ़ाया । इसके बाद लोहमय सात बाणों से कलिङ्गराज को, दो बाणों से उनके चक्ररक्त सत्यदेव को और तीन तीक्ष्ण नाराच बाणों से केतुमान् को मारकर गिरा दिया । अब कलिङ्ग देश के क्षत्रिय लोग क्रोध-वश होकर कई हजार सैनिकों सहित भीमसेन से संग्राम करने लगे । सैकड़ों कलिङ्गदेशीय वीरगण शक्ति, गदा, खड्ग, तोमर, ऋष्टि, परशु आदि शस्त्र भीमसेन के ऊपर बरसाने लगे । महाबली भीमसेन उस बाण आदि शस्त्रों की वर्षा को निष्फल करके, भारी गदा लेकर, वेग से दौड़े । गदा के प्रहार से उन्होंने सात सौ क्षत्रियों को मार गिराया । इसी तरह भीष्म के सामने ही दो हजार और वीरों को मारा । यह बड़ा अद्भुत कार्य हुआ । भीमसेन इस तरह कलिङ्ग देश की सेना को समर में बारम्बार छिन्न-भिन्न करने लगे । असंख्य हाथियों पर सवार योद्धा भीम के हाथों मारे गये । सवारों से खाली, बाण की चोट खाये हुए हाथी, सेना में घुसकर, हवा से हटाये गये मेघों की तरह चिह्नान्त

और गरजते हुए अपनी ही सेना को कुचलने और रौंदने लगे । इसी समय खड्ग हाथ में लिये हुए भीमसेन हर्ष के साथ शङ्ख बजाने लगे । उस शब्द से सब कलिङ्गसेना के लोग घबरा गये । उनके दिल धड़कने लगे । अनेक पैतरे बदलकर, बारम्बार उछलकर, इधर-उधर दौड़कर, गज-राज सट्टा भीम को वीर-सेना का संहार करते देख शत्रुपक्ष के वीर बहुत ही घबरा गये । जैसे कोई विकट ग्राह बड़े तालाब को मथ डाले वैसे ही भीमसेन ने उस सेना को मथ डाला । सब सैनिकों के हृदय काँपने लगे ! वे डर के मारे प्राण लेकर इधर-उधर भाग खड़े हुए ।

भीमसेन का यह अद्भुत काम देखकर और भागी हुई कलिङ्गसेना को फिर वापस आते देख पाण्डव-सेना के प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपनी सेना को युद्ध करने की आज्ञा दी । सेनापति की आज्ञा पाकर शिखण्डी आदि यादवा लोग, बहुत से रथी-अतिरथी आदि के साथ, भीमसेन की सहायता करते हुए शत्रुसेना से युद्ध करने लगे । धर्मराज युधिष्ठिर भी मेघवर्ण हाथियों का भारी दल साथ लिये उन लोगों के पीछे सहायता के लिए चले । इस प्रकार अपनी सारी सेना का युद्ध की आज्ञा देकर वीर धृष्टद्युम्न भीमसेन के पार्श्व स्थान पर स्थित होकर उनकी सहायता करने लगे । उनके साथ और भी बहुतरे श्रेष्ठ योद्धा थे । भीमसेन और सात्यकि से बढ़कर और कोई भी धृष्टद्युम्न को प्रिय नहीं था । भीमसेन का शत्रुसेना के बीच काल की तरह विचरते देखकर, महाबली शत्रुनाशन पाञ्चालनन्दन, प्रसन्नतापूर्वक गरजने और शङ्ख बजाने लगे । धृष्टद्युम्न के कबूतर के रङ्गवाले घोड़ों से युक्त, सुवर्णमण्डित, रथ पर कोविदार (लाल कचनार) चिह्न की ध्वजा फहराते देखकर भीमसेन को भी आश्वास हुआ । कलिङ्गसेना को भीमसेन पर हमला करने के लिए दौड़ते देखकर महावीर धृष्टद्युम्न उनकी रक्षा करने के लिए आगे बढ़े । महावीर सात्यकि ने दूर से भीमसेन और धृष्टद्युम्न को कलिङ्ग-सेना के साथ युद्ध करते देखा तो वे भी शीघ्र ही वहाँ पहुँचकर उनके पार्श्वभाग की रक्षा करने लगे । महावीर भीमसेन ने धनुष हाथ में लेकर, रौद्रभाव धारण कर, ऐसा दारुण युद्ध किया कि कलिङ्गदेशीय वीरों के शरीरों का कटकर ढेर लग गया, रक्त की नदी बह चली और उसमें मांस की कीचड़ मच गई । कलिङ्ग-सेना और पाण्डव-सेना के बीच वह भयानक रक्त की नदी बहने लगी । उस दुस्तर नदी के उस पार महाबली भीमसेन ही उतर सके, और सब लोग डूब गये । महाराज, उस समय आपके पक्ष के योद्धा चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे—यह साक्षात् काल ही भीमसेन का रूप रखकर कलिङ्ग-सेना के साथ युद्ध कर रहा है !

तब भीष्म पितामह अपनी सेना का चिल्लाना सुनकर, व्यूह-रचनापूर्वक सेना साथ लेकर, शीघ्रता से भीमसेन की तरफ दौड़े । उधर महाबली भीमसेन, धृष्टद्युम्न और सात्यकि, भीष्म के रथ के पास पहुँचकर, उनका रथ घेरकर, युद्ध करने लगे । तीनों वीरों ने भीष्म को तीन-तीन तीक्ष्ण बाण मारे । आपके पिता देवव्रत ने भी तीन-तीन बाण तीनों

वीरों को मारे । इसके बाद एक सहस्र बाण छोड़कर भोष्म ने तीनों महारथियों का वेग रोककर कई तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन के सुवर्ण-भूषित घोड़ों को मार डाला । खाली रथ पर स्थित प्रतापी भीमसेन ने वेग से भोष्म के रथ के ऊपर एक शक्ति चलाई । भोष्म ने बाणों से राह में ही उस शक्ति को तीन टुकड़े करके पृथ्वी पर गिरा दिया । तब भीमसेन एक लोहमयी गदा लेकर रथ से उतर पड़े । इसी समय महावीर सात्यकि ने भीमसेन का प्रिय करने की इच्छा से तीक्ष्ण बाण मारकर भोष्म के सारथी को मारकर रथ पर से गिरा दिया । सारथि के मरते ही इधर-उधर अव्यवस्थित रूप से भागते हुए घोड़े भोष्म के रथ का युद्धभूमि से हटा ले गये ।

महाव्रत भोष्म के युद्धभूमि से हटते ही भीमसेन फिर प्रज्वलित होकर, सूखी घास का आग की तरह, शत्रुसेना को नष्ट करने लगे । कलिङ्ग देश की सेना के सब वीरों को मारकर भीमसेन अपनी सेना के बीच पहुँच गये । महाराज, आपकी सेना का कोई भी वीर उनके प्रताप और पराक्रम को नहीं सह सका; किसी में उनका सामना करने की हिम्मत नहीं देख पड़ती थी । इसी समय महारथी धृष्टद्युम्न उनके पास आये और उनको अपने रथ पर बिठाकर युद्धभूमि से हटा ले गये । पाञ्चाल और मत्स्य देश की सेना के सब लोग भीमसेन की वड़ाई कर रहे थे । भीमसेन, धृष्टद्युम्न को गले से लगाकर, सात्यकि के पास गये । यदुश्रेष्ठ पराक्रमी सात्यकि धृष्टद्युम्न के सामने भीमसेन को प्रसन्न करते हुए कहने लगे—‘ हं वृकोदर, बड़े भाग्य की बात है कि तुमने कलिङ्गराज श्रुतायु, राजकुमार केतुमान्, शक्रदेव और सम्पूर्ण कलिङ्ग-सेना को मार डाला । अपने बाहुबल और पराक्रम से हाथियों, घोड़ों, रथों और महाबली पुरुषों से परिपूर्ण कलिङ्गसेना का दुर्भेद्य महाव्यूह नष्ट-भ्रष्ट करके तुमने दुष्कर और अद्भुत कर्म किया है ’’ महावीर सात्यकि ने अब जल्दी से अपने रथ से उतरकर भीमसेन के रथ पर जाकर उनके गले से लगा लिया । महारथी सात्यकि फिर अपने रथ पर आकर भीमसेन की सेना का साथ लेकर आपकी सेना का संहार करने लगे ।

१२४

पचपनवाँ अध्याय

दूसरे दिन के युद्ध की समाप्ति

सञ्जय कहते हैं—महाराज ! इस दिन का आधा भाग बीत जाने पर असंख्य रथ, हाथी, घोड़े, उनके सवार और पैदल मारे जा चुके थे । पाञ्चालपुत्र धृष्टद्युम्न अकेले ही तीन महारथियों—अश्वत्थामा, शल्य और कृपाचार्य—से युद्ध करने लगे । महावीर धृष्टद्युम्न ने अश्वत्थामा के प्रसिद्ध श्रेष्ठ घोड़ों को तीक्ष्ण दस बाणों से मार डाला । घोड़ों के मर जाने पर अश्वत्थामा शल्य के रथ पर चढ़कर धृष्टद्युम्न के ऊपर बाण बरसाने लगे । वीर अभिमन्यु धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा से युद्ध करते देखकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाण बरसाते हुए उनके पास पहुँचे । वहाँ

पहुँचकर उन्होंने शल्य के ऊपर पचीस, कृपाचार्य के ऊपर नव और अश्वत्थामा के ऊपर आठ बाण चलाये। तब अश्वत्थामा ने बड़े वेग से अभिमन्यु को बाणों से घायल करना शुरू किया। शल्य ने भी बारह और कृपाचार्य ने भी तीन बाण अभिमन्यु को मारे।

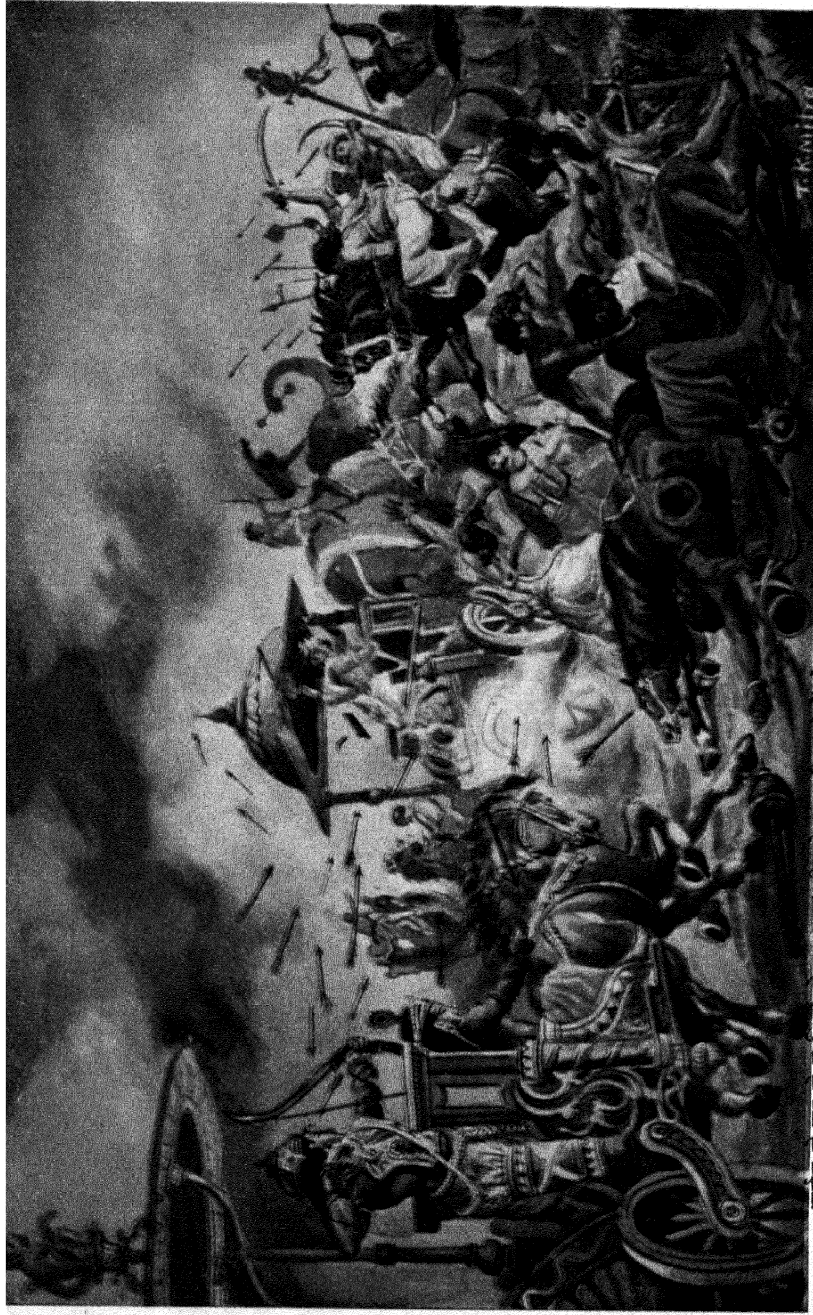
राजन्, आपके पोते लक्ष्मण ने जब अभिमन्यु को युद्ध करते देखा तब वे भी क्रोध करके, पास पहुँचकर, प्रहार करने लगे। उसके बाद वे परस्पर घोर युद्ध करने लगे। अभि-



मन्यु ने क्रोध से अधीर होकर फुर्ती के साथ पाँच सौ बाण अपने चचरे भाई लक्ष्मण का मारे। लक्ष्मण ने भी एक बाण मारकर अभिमन्यु के धनुष की मुष्टि काट डाली। यह देखकर लोग चीत्कार कर उठे। शत्रुनाशन अभिमन्यु ने कटा हुआ धनुष फेंककर दूसरा धनुष हाथ में लिया। वे दोनों वीर परस्पर जय की इच्छा से एक दूसरे पर अत्यन्त तीव्र बाण बरसाने लगे।

इसके बाद राजा दुर्योधन अभिमन्यु के हाथों अपने पुत्र का पीड़ित देखकर शीघ्र उस स्थान पर पहुँचे। तब भीष्म, द्रोण आदि सब योद्धाओं ने रथों के समूह से चारों ओर से अभिमन्यु

को घेर लिया। वासुदेव के समान पराक्रमी युद्धदुर्मद शूर अभिमन्यु शूर-वीरों के बीच घिर जाने पर भी विचलित या विभ्र नहीं हुए। अर्जुन ने जब अभिमन्यु को रथों के बीच घिरा हुआ देखा तब, उनकी रक्षा के लिए, वे क्रुद्ध होकर उसी ओर चल पड़े। हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदलों के पैरों से उड़ी हुई धूल ने ऊपर उठकर सूर्यमण्डल तक काँछा लिया। हज़ारों हाथियाँ और घोड़े पर सवार राजा लोग किसी तरह अर्जुन के बाणों की राह से बचकर उनके पास तक नहीं पहुँच सकते थे। उस समय सब प्राणी युद्धभूमि में लगातार आर्तनाद और कोलाहल करने लगे। दिशाओं में अँधेरा छा गया। कौरवों के दारुण अन्याय का फल उस समय प्रत्यक्ष देख पड़ने लगा। अर्जुन के बाण अन्तरिक्ष, दिशा, उपदिशा, पृथ्वीमण्डल आदि सब स्थानों में व्याप्त देख पड़ते थे। बाणों के सिवा पृथ्वी, आकाश या सूर्यमण्डल कुछ भी नहीं देख पड़ता था। उस समय हाथियाँ और घोड़े के भुण्ड और उनके सवार मर-मरकर



अनुत क डर स हाथया क सवार होया छुईकर और घोड़ा के सवार घोड़े छुईकर चारा और भागि जा रह थ ।—पृ० १३३३

पृथ्वी पर गिरते देख पड़ते थे और रथ दूट-दूटकर गिर रहे थे। रथियों से खाली रथ इधर-उधर दौड़ते देख पड़ते थे। रथ-हीन होकर रथी लोग इधर-उधर दौड़ रहे थे। स्थान-स्थान पर अङ्गद आदि आभूषणों से शोभित कटे हुए हाथ पड़े हुए थे। अर्जुन के डर से हाथियों के सवार हाथी छोड़कर और घोड़ों के सवार घोड़े छोड़कर चारों ओर भागे जा रहे थे। अर्जुन के बाणों की चोट से वीर लोग हाथी, घोड़े, रथ आदि वाहनों के ऊपर से गिरते या गिरे हुए देख पड़ते थे। भयङ्कर मूर्ति धारण किये हुए अर्जुन युद्धभूमि में इधर-उधर याँझाओं के गदा, खड्ग, तरकस, धनुष, बाण, अंकुश, पताका आदि सहित उठे हुए हाथों को काटते हुए देख पड़ रहे थे। परिघ, मुद्गर, प्रास, भिन्दिपाल, निखिंश, तीक्ष्ण परश्वध, तोमर, ढाल, ध्वजा, कवच आदि सर्वत्र पड़े हुए थे और ३० अन्यान्य शस्त्र, छत्र, सोने के दण्ड, अंकुश, प्रताद, कांडे, जोत आदि के ढेर इधर-उधर बिखर रहे थे। इन छिन्न-भिन्न सामानों से सारी समरभूमि पटी पड़ी थी। राजन् ! आपकी ओर कोई ऐसा साहसी वीर नहीं था, जो इस संप्रभ में अर्जुन के सामने खड़ा होता। जो आदमी अर्जुन के सामने गया वही, उनके तीक्ष्ण बाण की चोट से, सुरपुर सिंधारा। आपके पक्ष के सब योद्धा जब भाग गये तब वासुदेव और अर्जुन दोनों हर्ष की सूचना के लिए शङ्ख बजाने लगे।

राजन्, देवव्रत भीष्म ने जब अपनी सेना को इस तरह हिम्मत छोड़कर भागते देखा तब उन्होंने हँसकर द्रोणाचार्य से कहा—हे आचार्य, ये वासुदेव सहित वीर अर्जुन अपने योग्य ही युद्ध कर रहे हैं। इनकारूप साक्षात् यम के समान देख पड़ता है। इस समय ये समर में किसी तरह जीते नहीं जा सकते। देखो, यह विशाल सेना एक दूसरे का मुँह देखकर प्राण लेकर भागी ही जा रही है। इस समय इन सैनिकों का लौटाना सब तरह असम्भव है। सबकी दृष्टि को नष्ट करते हुए सूर्य नारायण भी अब अस्ताचल पर पहुँच गये हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ, मैं समझता हूँ कि आज का युद्ध अब समाप्त किया जाय। हमारे योद्धा थके और डरे हुए हैं, इस कारण अब वे किसी तरह युद्ध न कर सकेंगे।

महाराज, यह कहकर महारथी भीष्म ने युद्ध रोक दिया। सूर्य अस्त हो गये, साँझ हो गई, यह देखकर दोनों पक्ष के योद्धाओं ने युद्ध बन्द कर दिया।

छप्पनवाँ अध्याय

कौरवों का गरुड़ व्यूह और पाण्डवों का अर्द्धचन्द्र व्यूह रचकर लड़ना

सञ्जय ने कहा—महाराज, सबेरा होने पर शत्रुतापन भीष्म ने सैनिकों को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी। पितामह भीष्म ने उस दिन आपके पुत्रों की विजय की इच्छा से गरुड़ व्यूह नाम के दुर्भेद्य व्यूह की रचना की। उस व्यूह के मुख पर स्वयं देवव्रत भीष्म स्थित हुए। दोनों नेत्रों के स्थान पर महात्मा द्रोणाचार्य और यादवश्रेष्ठ कृतवर्मा स्थित

हुए। सम्पूर्ण त्रिगर्त, कैकेय और वाटधान देश की सेना साथ लेकर यशस्वी अश्वत्थामा और कृपाचार्य मल्लक के स्थान पर खड़े हुए। मद्रक, सिन्धु-सौवीर, पञ्चनद आदि देशों की सेना के साथ भूरिश्रवा, शल, शल्य, भगदत्त और जयद्रथ उसकी गर्दन के स्थान पर स्थित हुए। अपने अनुगत राजाओं और भाइयों सहित राजा दुर्योधन उसके पृष्ठभाग की रक्षा करने लगे। अवन्ति देश के विन्द और अनुविन्द अपने साथ काम्बोज, शक, शूरसेन आदि देशों की सेना लेकर उसके पुच्छ स्थान पर खड़े हुए। मगध और कलिङ्ग देश की सेना तथा दासेरकगण उसके दक्षिण पक्ष की रक्षा में नियुक्त हुए। कारुष, विकुञ्ज, मुण्ड, कुण्डीवृष आदि की सेना के साथ राजा बृहद्रथ उसके वामपक्ष की रक्षा में नियुक्त हुए।

महाराज, शत्रुपक्ष की ऐसी व्यूह-रचना देखकर धृष्टद्युम्न के साथ मिलकर अर्जुन ने भी १० अपनी सेना का व्यूह बनाया। राजन्, पाण्डवों ने आपकी सेना के व्यूह के विरुद्ध अर्द्धचन्द्र नाम के दुर्भेद्य व्यूह की रचना की। उसके दक्षिण भाग में अनेक शस्त्र धारण किये हुए अनेक देशों के राजाओं के साथ भीमसेन स्थित हुए। उनके पीछे विराट और महारथी द्रुपद और उनके पीछे नीलायुधधारिणी सेना सहित राजा नील स्थित हुए। नील के बाद चेदि, काशी, करुष आदि देशों की सेना के साथ धृष्टकेतु स्थित हुए। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, पाञ्चालगण और प्रभद्रकगण व्यूह के मध्यभाग में स्थित हुए। वहीं पर हाथियों के दल को साथ लिये धर्मराज युधिष्ठिर स्थित हुए। वामभाग में सात्यकि, द्रौपदी के पाँचों पुत्र, शूर अभिमन्यु, इरावान्, घटोत्कच और महारथी कैकयगण स्थित हुए। इसके बाद ही सब जगत् की रक्षा करनेवाले वासुदेव के द्वारा सुरक्षित पुरुषोत्तम महावीर अर्जुन स्थित हुए।

राजन्, पाण्डवों ने आपके पुत्रों और उनके पक्षवाले राजाओं को मारने के लिए इस व्यूह की रचना की। इसके बाद दोनों पक्ष के रथी, घोड़ों और हाथियों के सवार तथा पैदल वीर परस्पर युद्ध करने लगे। वे परस्पर घायल होने और मारे जाने लगे। स्थान-स्थान पर रथों और हाथियों पर सवार भुण्ड के भुण्ड वीरगण युद्ध करते और एक दूसरे को मारते देख पड़ने लगे। उस तुमुल संग्राम में परस्पर प्रहार करते हुए दोनों पक्ष के वीर पुरुषों का २२. कोलाहल, चीत्कार और नगाड़ों का गम्भीर शब्द आकाश तक गूँज उठा।

सत्तावनवाँ अध्याय

संकुल युद्ध का वर्णन

सञ्जय ने कहा—महाराज, दोनों पक्ष की सेना जब व्यूह बना करके युद्ध करने लगी तब यमरूप महावीर अर्जुन बाणवर्षा से रथरत्तकों को गिरा-गिराकर रथी वीरों को मारने लगे। यश पाने की इच्छा से कौरवपक्ष के सब वीर पाण्डवपक्ष के वीरों के साथ यथाशक्ति युद्ध करने

लगे । उन्होंने कई बार पाण्डव-सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया । पाण्डवपक्ष के वीर भी बारम्बार कौरव-सेना को छिन्न-भिन्न और अस्त-व्यस्त करने लगे । दोनों पक्ष की सेना इधर-उधर दौड़ने, भागने और फिर लौटने के कारण एक में ही ऐसी मिल गई कि कौन किस पक्ष का है, यह जानना कठिन हो गया । रणक्षेत्र से उड़ी हुई धूल ने भगवान् सूर्य को और सब दिशाओं को एकदम ढक-कर चारों ओर घने अँधेरे का राज्य कर दिया । उस समय केवल अनुमान और नाम-गोत्र के उच्चारण पर भरोसा करके लोग एक दूसरे पर प्रहार करते थे; कोई किसी को पहचान नहीं पाता था । कौरवपक्ष के व्यूह की रक्षा महारथी द्रोणाचार्य कर रहे थे, और पाण्डवपक्ष के व्यूह की रक्षा महावीर भीमसेन और अर्जुन कर रहे थे । इस कारण कोई भी पक्ष दूसरे पक्ष के व्यूह को तोड़ नहीं पाता था । दोनों ओर के सैनिक वीर सेनाव्यूह के अप्रभाग से निकल-निकलकर युद्ध कर रहे थे । रथ, हाथी आदि उनके वाहन एक दूसरे से भिड़े हुए देख पड़ते थे ।

१०

उस भयङ्कर संग्राम में घुड़सवार योद्धा तीक्ष्ण ऋष्टि, प्रास आदि शस्त्रों से घुड़सवारों को मारते और गिराते थे । रथी योद्धा सुवर्ण-भूषित बाणों से अपने प्रतिद्वन्द्वी रथी वीरों को मारते और गिराते थे । हाथियों पर सवार योद्धा नाराच बाण, तामर आदि चलाकर गजारूढ़ वीरों को मारते थे । किसी हाथी के सवार ने दूसरे को केश पकड़कर खींच लिया और खड्ग से उसका सिर काट डाला । हाथियों के दाँतों से हृदय फट जाने पर कुछ वीर बारम्बार साँस लेते हुए मुँह से रक्त बहा रहे थे । कोई युद्धनिपुण वीर हाथी के दाँत पर पैर रखकर चढ़ गया, शत्रु ने शक्ति मारकर उसे अधमरा कर दिया और वह काँपकर गिर पड़ा । पैदल सिपाहियों के झुण्ड युद्ध में भिन्दिपाल, परश्वध आदि शस्त्रों से पैदल सेना का संहार करते देख पड़ते थे । किसी रथी ने हाथी के सवार को, हाथी के सवार ने रथी को, घोड़े के सवार ने प्रास से रथी को, रथी ने घोड़े के सवार को, पैदल ने तीक्ष्ण शस्त्रों से रथी को और रथी ने पैदल को मार गिराया । दोनों सेनाओं में यही मार-काट देख पड़ती थी । हाथियों के सवार घुड़सवारों को और घुड़सवार हाथियों के सवारों को मारने लगे । हाथियों के सवार पैदलों को और पैदल वीर हाथियों के सवारों को, ऐसे ही घुड़सवार पैदलों को और पैदल घुड़सवारों को हज़ारों की संख्या में मार-मारकर गिरा रहे थे । असंख्य धनुष, ध्वजा, तामर, विचित्र कम्बल, महामूल्य कम्बल, प्रास, परिघ, गदा, कम्पन, शक्ति, कवच, विचित्र कणप, अंकुश, निखिंश, स्वर्णपुङ्ख बाण, क्षुद्र कम्बलासन आदि वस्तुएँ इधर-उधर पड़ी हुई थीं । उनसे वह युद्धभूमि विचित्र मालाओं से विभूषित सी जान पड़ती थी । हाथियों, घोड़ों और मनुष्यों की लाशों के ढेर से वह भूमि अगम्य हो रही थी । सब ओर मांस और रक्त की कीचड़ देख पड़ती थी । युद्ध में इतना रक्त गिरा कि वह उठी हुई धूल उससे बैठ गई । सब दिशाएँ निर्मल हो गईं । जगत् के नाश के चिह्न स्वरूप असंख्य कबन्ध उठने लगे । उस महादाहण युद्ध में इधर-उधर सब योद्धा दौड़ते देख पड़ने लगे ।

२०

३०

उस भयानक समय में सिंह के समान पराक्रमी समय-दुर्द्धर्ष महावीर भीष्म, द्रोण, जयद्रथ, पुरुमित्र, जय, भोज, शन्य और शकुनि आदि महावीर बारम्बार पाण्डवसेना के व्यूह को तोड़ने और उसका संहार करने लगे। पूर्व समय में जैसे देवताओं ने दानवों को पीड़ित किया था वैसे ही भीमसेन, घटोत्कच, सात्यकि, चेकितान और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों ने, अपने पक्ष के अन्य राजाओं के साथ मिलकर, आपके पुत्रों को युद्ध में मार भगाया। युद्ध में परस्पर प्रहार करते हुए त्रित्रि-श्रेष्ठ वीर रक्त से तर, घोररूप, दानव-से जान पड़ने लगे। दोनों सेनाओं के वीरगण शत्रुओं को जीतकर, आकाश में प्रधान ग्रहों के समान, युद्धभूमि में विराजमान हुए।

महाराज, तब आपके पुत्र राजा दुर्योधन हज़ार रथ साथ लेकर राक्षस घटोत्कच से युद्ध करने को आगे बढ़े। उधर शत्रुदमन पाण्डवगण भी यत्नपूर्वक द्रोण और भीष्म से युद्ध करने के लिए चले। क्रोधित अर्जुन शत्रुपक्ष के राजाओं को मारने लगे। अभिमन्यु और सात्यकि दोनों ही वीर शकुनि की सेना पर आक्रमण करने चले। राजन्, इसके बाद संग्राम में विजय ४० चाहनेवाले दोनों पक्ष के वीर फिर रोमहर्षण घोर युद्ध करने लगे।

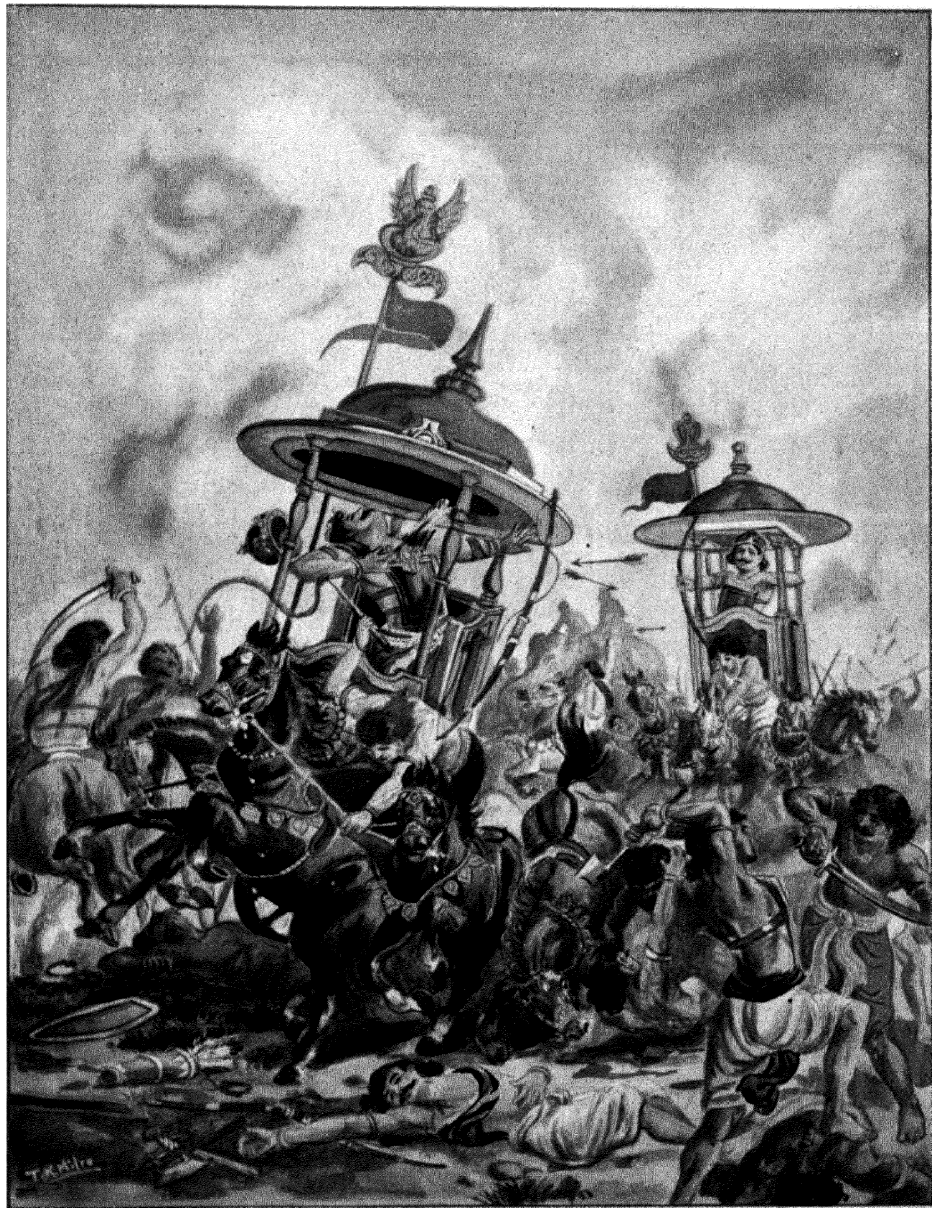
अट्टावनवाँ अध्याय

पितामह भीष्म और दुर्योधन की बातचीत

सञ्जय ने कहा—महाराज ! कौरवपक्ष के राजा लोग महावीर अर्जुन को युद्ध के लिए सामने आते देखकर, क्रोध के आवेश में आकर, असंख्य रथों से उन्हें घेरकर उनके रथ के ऊपर बाण, तीक्ष्ण शक्ति, गदा, परिघ, प्रास, परशु, मुद्गर, मुशल आदि विविध शस्त्रों की वर्षा करने लगे। अर्जुन ने भी टीड़ियों की कतार के समान आती हुई उस शस्त्रवर्षा को स्वर्णपुष्प बाणों से बीच में ही रोक दिया। अर्जुन की वह असाधारण कुर्ती देखकर देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, नाग, राक्षस आदि सब दर्शक “वाह वाह” कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे।

सात्यकि और अभिमन्यु दोनों वीर बहुत सी सेना साथ लेकर शूर गान्धार सेना और शकुनि से युद्ध करने चले। शकुनि के सैनिकों ने क्रुद्ध होकर सात्यकि के श्रेष्ठ रथ को शस्त्रों से तिल-तिल करके काट डाला। तब सात्यकि उस भयानक समय में अभिमन्यु के रथ पर चले १० गये। दोनों वीर एक ही रथ पर बैठकर तीक्ष्ण बाणों से शकुनि की सेना का संहार करने लगे। उधर द्रोण और भीष्म सावधान होकर कङ्कपत्रयुक्त तीक्ष्ण बाणों से युधिष्ठिर की सेना को नष्ट करने लगे। तब राजा युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव सब सैनिकों के सामने ही द्रोण की सेना को मारने लगे। जैसे पूर्वकाल में देवताओं और दैत्यों का युद्ध हुआ था वैसे ही वे लोग घोर युद्ध करने लगे।

भीमसेन और घटोत्कच को युद्ध में अद्भुत कर्म करते देखकर राजा दुर्योधन उनके सामने गये और उन्हें रोकने का यत्न करने लगे। राजन्, उस समय हम लोगों ने भीमसेन के पुत्र घटो-



भीमसेन के वज्रतुल्य बाण की चोट से मूर्च्छित होकर राजा दुर्योधन रथ पर गिर पड़े।—पृ० २००३

त्कच का ऐसा अद्भुत पराक्रम देखा कि हम दङ्ग रह गये । वह उस समय भीमसेन से भी बढ़कर पराक्रम दिखाने लगा । भीमसेन ने क्रुद्ध होकर असहनशील दुर्योधन के हृदय में एक तीक्ष्ण बाण मारा । भीमसेन के वज्रतुल्य बाण की चोट से मूर्च्छित होकर राजा दुर्योधन रथ पर गिर पड़े । उन्हें अचेत देखकर सारथी शीघ्र रणभूमि से हटा ले गया । दुर्योधन की यह दशा देखकर सब सैनिक निरुत्साह और भीत होकर भागने लगे ।



२१

कौरव-सेना को इधर-उधर भागते देखकर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करते हुए भीमसेन उसके पीछे दौड़े । राजा युधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न दोनों वीर द्रोणाचार्य और भीष्म के सामने ही उनकी सेना को तीक्ष्ण बाणों से मार गिराने लगे । महारथी भीष्म और द्रोण आपके भागें हुए सैनिकों को रोक नहीं सके । वे उन सैनिकों को मना करते थे, तो भी भयभीत सैनिक भागते ही जाते थे । हज़ारों रथ

इधर-उधर भागते देख पड़ते थे । इसी समय अमावास्या के दिन आकाश-स्थित सोम-सूर्य के समान एक रथ पर स्थित शनिकुलभूषण सात्यकि और अभिमन्यु दोनों वीर, चारों ओर बाण बरसाकर, शकुनि की सेना को नष्ट करने लगे । अर्जुन भी क्रोध के वश होकर आपकी सेना के ऊपर, मेघों की जलवर्षा के समान, बाण-वर्षा करने लगे । सारी कौरव सेना अर्जुन के बाणों से पीड़ित होकर, विषाद और भय से अभिभूत हो, युद्धभूमि से भागने लगी । दुर्योधन के हितैषी महारथी भीष्म और द्रोण सैनिकों को भागते देखकर उन्हें लौटाने की चेष्टा करने लगे । राजा दुर्योधन ने चारों ओर भागती हुई सेना को आश्वस्त करके लौटाया । जिसने जहाँ से आपके पुत्र को देखा वह वहीं से लौट पड़ा । महारथी चत्रियों को लौटते देखकर और-और साधारण सैनिक भी स्पर्धा और लज्जा के कारण भागना छोड़कर खड़े हो गये । महाराज, चन्द्रमा का उदय देखकर समुद्र जैसे उमड़ पड़ता है वैसे ही सब सेना राजा का देखकर वेग से लौट पड़ी । योद्धाओं को लौटते देखकर राजा दुर्योधन ने जल्दी से भीष्म के पास जाकर कहा—हे पितामह, मैं आपसे जो कहता हूँ, सो सुनिए । पुत्र और सुहृदों सहित अखविशा-निपुण द्रोणाचार्य के, आपके और महाधनुर्धर

३०

कृपाचार्य के जीवित रहते मेरी सेना का इस तरह भागना आप लोगों के पराक्रम के अनुरूप मैं नहीं मान सकता। मैं किसी तरह यह मानने के लिए तैयार नहीं हूँ कि पाण्डवगण संग्राम में द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और आपके समान बलशाली पराक्रमी हैं, या वे आप लोगों को अपने पराक्रम से अशक्त बना सकते हैं। आप इस तरह सेना का नाश होते देखकर भी चमा कर रहे हैं, इससे मुझे निश्चय जान पड़ता है कि आप पाण्डवों पर कृपा करके उन्हें ऐसा करने में बाधा नहीं पहुँचाते। पितामह! अगर आपका ऐसा ही इरादा था, तो पहले सलाह के समय ही आपको कह देना था कि “मैं धृष्टद्युम्न, सात्यकि और पाण्डवों से युद्ध नहीं करूँगा।” मैंने केवल आपके और द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्य के वचन पर भरोसा करके ही, कर्ण के साथ कर्तव्य की



सलाह करके, यह युद्ध छेड़ा है। यदि युद्ध में आप लोग मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहते तो अब अपने पराक्रम के अनुरूप युद्ध करके शत्रुओं को नष्ट कीजिए।

दुर्योधन के ये वचन सुनकर महावीर भीष्म बारम्बार हँसकर और फिर क्रोध से आँखें चढ़ाकर आपके पुत्र से बोले—राजन्, मैंने बहुत बार तुमसे सत्य और हितकारी वचन कहे हैं। मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि इन्द्रसहित सब देवता भी युद्ध में पाण्डवों को हरा नहीं सकते। मैं इस समय वृद्ध और गतायु होकर भी जो कुछ कर सकता हूँ वह यथाशक्ति करूँगा। तुम अपने भाइयों सहित मेरा पराक्रम देखो। इस समय

सब लोगों के सामने मैं अकंला ही सेना और भाई-बन्धुओं सहित पाण्डवों को रोकूँगा। महाराज, महारथी भीष्म के ये वचन सुनकर आपके पुत्रगण प्रसन्न होकर शङ्ख बजाने लगे। समरभूमि के बीच कौरवसेना में नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। पाण्डवगण भी उस महानाद को सुनकर शङ्ख, भेरी, मुरज आदि बाजे बजाने लगे।

उनसठवाँ अध्याय

भीष्म को मारने के लिए श्रीकृष्ण का प्रतिज्ञा छोड़कर चक्र लेकर
दौड़ना और अर्जुन का उनको रोक लेना

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय, युद्ध में मेरे दुःखित पुत्र की प्रार्थना से कुपित होकर प्रतिज्ञा करने के बाद भीष्म ने पाण्डवों के साथ कैसा युद्ध किया ? और पाण्डवों सहित पाण्डवों ने भीष्म के साथ किस तरह कैसा युद्ध किया ? सब वृत्तान्त कहो ।

सञ्जय ने कहा—महाराज ! उस दिन का पहला भाग समाप्तप्राय हो चुका था; सूर्यदेव कुछ पश्चिम आकाश की ओर झुक चले थे और पाण्डव लोग विजयलाभ करके प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे, इसी समय भीष्म ने यथाशक्ति युद्ध करके पाण्डवों को रोकने की प्रतिज्ञा की । सब धर्मों के ज्ञाता देवव्रत भीष्म भारी सेना लेकर आपके पुत्रों के साथ तेज़ घोड़ों से युक्त रथ पर बैठकर पाण्डव-सेना की ओर बढ़े । हे भारत, इसके बाद पाण्डवों के साथ कौरवों का घोर युद्ध होने लगा । हे कुरुश्रेष्ठ, आपकी ही अनीति इस घोर युद्ध का मूल कारण है । उस समय रणभूमि में लगातार पहाड़ के शिखर फटने के समान भयानक धनुषों की टङ्कार और ताल ठोकने का कठोर शब्द चारों ओर सुन पड़ने लगा । सब ओर “ठहर तो जा !” “ठहरा हूँ,” “यह है,” “लौटो,” “स्थिर होकर खड़े रहो !” “खड़ा हूँ, प्रहार करो” इत्यादि शब्द ही सुन पड़ते थे । सुवर्ण-मण्डित लोहकवच, किरिट-मुकुट, ध्वजा आदि के ऊपर बाण लगने से वैसा ही घोर शब्द होता था, जैसा कि पहाड़ के ऊपर फट-फटकर शिलाओं के गिरने से होता है । सैकड़ों-हज़ारों कटे हुए विभूषित सिर और हाथ पृथ्वी पर गिरकर तड़प रहे थे । कुछ वीर-श्रेष्ठों के कवच, सिर कट जाने पर भी, वैसे ही धनुष बाण हाथ में लिये, या शस्त्र उठाये प्रहार करने के लिए युद्धभूमि में खड़े थे । उस समय वहाँ मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि के शरीरों से बहते हुए रक्त की नदियाँ बह चलीं । गिद्ध, गीदड़ आदि मांसभोजी पशु-पक्षी उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे । हाथियों के अङ्ग शिला के समान उनमें पड़े थे । मांस और रक्त की कीचड़ से वे अगम्य हो रही थीं । वे नदियाँ परलोक सागर की ओर बहने लगीं ।

१०

महाराज, पाण्डवों के साथ आपके पुत्रों का जैसा घोर युद्ध हुआ वैसा युद्ध न किसी ने देखा होगा और न सुना होगा । गिरे हुए योद्धाओं और गिरिशिखर-तुल्य नीले रङ्ग के हाथियों के शरीरों से समरभूमि परिपूर्ण हो उठी । उसमें रथों के चलने की राह नहीं रही । बिखरे हुए कवचों और शिरस्त्राणों के द्वारा युद्ध-भूमि शरत्काल के आकाश के समान दीखने लगी । कोई-कोई वीर शस्त्र की चोट से पीड़ित होकर भो, हीनभाव-हीन होकर, दर्प के साथ शत्रुपक्ष की ओर दौड़ने लगा । बहुत मनुष्य रणस्थल में गिरकर “हाय पिता !, हाय भाई !, हाय सखा !, हाय बन्धु !, हाय वयस्य !, हाय मामा ! मुझे मत छोड़ो !” कहकर ऊँचे स्वर से रो रहे थे । बहुत

लोग “आओ, पास आओ, तुम क्या डर गये हो ? कहाँ जाओगे ? मैं युद्ध में हूँ । तुम डरना नहीं ।” कहकर चिल्ला रहे थे । उस समय भोष्म पितामह हाथ में मण्डलाकार धनुष लेकर नाग-
 २० सदृश प्रज्वलित अग्रभागवाले बाण छोड़ने लगे । संयतव्रत महावीर भोष्म बाण-वर्षा द्वारा दसों दिशाओं को एकाकार करते हुए पाण्डवपक्ष के वीरों के नाम ले-ज़ेकर उन्हें मारने लगे । महाराज, वे सभी स्थानों में अपने हाथों की फुर्ती दिखाते हुए, अलातचक्र की तरह, इधर-उधर सब जगह दिखाई पड़ने लगे । भोष्म के हाथ की फुर्ती के कारण पाण्डव और सृञ्जयगण युद्ध-भूमि में एक-मात्र वीर भोष्म को सैकड़ों-हज़ारों की तरह देख रहे थे । वहाँ के सब वीर उनको मायावी जानने लगे । वे पल भर में पूर्व ओर, पल भर में पश्चिम ओर, दम भर में दक्षिण ओर और क्षण भर में उत्तर ओर देख पड़ते थे । भोष्म के धनुष से निकले हुए बाण ही पाण्डवपक्ष के वीरों को देख पड़ते थे; भोष्म की मूर्ति को कोई नहीं देख सकता था । वीरगण उन्हें सेना का नाश और अद्भुत कर्म करते देखकर तरह-तरह से चिल्लाने और आर्तनाद करने लगे । हज़ारों क्षत्रियगण पतङ्गों की तरह मोहित होकर आप ही अपने नाश के लिए उन अमानुषिक रूप से विचरनेवाले क्रुद्ध भोष्मरूप अग्नि में गिर-गिरकर भस्म होने लगे । भोष्म के बाण मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि सबके शरीरों पर गिरकर व्यर्थ नहीं जाते थे । वज्र से पहाड़ फटने की तरह, उनके एक ही बाण से बड़े-
 ३० बड़े हाथी कट-कटकर गिर पड़ते थे । वे नाराच बाण मारकर एक साथ दो-दो तीन-तीन हाथियों के सवारों को मार गिराते थे । महाराज, जो वीर भोष्म के पास जाता था वह उसी घड़ी मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ता था । इस तरह अतुल वीर्यशाली भोष्म के हाथों मारी जाती हुई युधिष्ठिर की सेना हज़ारों भागों में बँटकर इधर-उधर भागने लगी । युधिष्ठिर की सेना महात्मा वासुदेव और अर्जुन के सामने ही भोष्म के बाणों से कम्पायमान और पीड़ित होकर भागने लगी । सेनापति-गण बारम्बार यत्न करके भी भोष्म के बाणों से पीड़ित होकर भागती हुई सेना को नहीं रोक सके । राजन् ! प्रधान-प्रधान योद्धा भी महेन्द्र सदृश वीर्यसम्पन्न भोष्म के बाणों की चोट खाकर, साथियों और आश्रितों को छोड़कर, रणभूमि से भागने लगे । इस तरह पण्डवों की सेना अचेत सी होकर दहाकाकार करने लगी । युद्धभूमि में मनुष्य, हाथी और घोड़े मर-मरकर गिरने लगे । रथ, ध्वजा, रथदण्ड आदि के ढेर जगह-जगह पड़े थे । उस महायुद्ध में हानी के वश होकर पिता पुत्र को, पुत्र पिता को और मित्र अपने प्रिय मित्र को मार रहे थे । पाण्डवपक्ष के बहुत से योद्धा कवच और केश खोलकर इधर-उधर जान बचाते हुए भागते देख पड़ते थे । सिंह के आने से गावों के झुण्ड जैसे घबराकर डर के मारे चिल्लाते हुए इधर-उधर भागते हैं वैसे ही उद्भ्रान्त रथ-यूथप-पूर्ण पाण्डव-सेना आर्त शब्द करती हुई इधर-उधर भाग रही थी ।

४१ तब यदुनन्दन श्रीकृष्ण ने सैनिकों को भागते देखकर, रथ लौटाकर, अर्जुन से कहा—हे पार्थ, यह वही समय है जिसकी तुम प्रतीक्षा कर रहे थे । हे पुरुषसिंह, इस समय तुम भोष्म पर

प्रहार करो; नहीं तो मोहवश होकर तुम कुछ नहीं कर पाओगे। पहले वीर राजाओं की मण्डली में तुमने प्रतिज्ञा की थी कि “भीष्म, द्रोण आदि कौरव-पक्ष के जो योद्धा युद्धभूमि में मुझसे लड़ने आवेंगे उनको और उनके अनुचरों को मैं मारूँगा।” हे शत्रुनाशन, इस समय वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। वह देखो, हमारी सेना के राजा लोग और युधिष्ठिर के पास की सेना, मुँह फैलाये मृत्यु के समान आते हुए भीष्म को देखकर, भागी जा रही है। सिंह को देखकर डरे हुए मृगों के समान सब भागे जा रहे हैं।

यह सुनकर अर्जुन ने कहा—हे वासुदेव, जहाँ पर भीष्म पितामह का रथ है वहाँ इस सैन्यसागर के बीच से होकर मेरा रथ ले चलिए। मैं अवश्य इन दुर्द्धर्ष कुरुवृद्ध पितामह भीष्म को मार गिराऊँगा।

सञ्जय कहते हैं—राजन, इसके बाद माधव ने रथ को हाँका और जहाँ



पर भीष्म का सूर्य के समान दुर्निरीक्ष्य रथ खड़ा था वहाँ पर सफेद घोड़ों से शोभित अर्जुन का रथ पहुँचा दिया। युधिष्ठिर की सेना अर्जुन का भीष्म से युद्ध करने के लिए उद्यत देखकर लौट पड़ी। इसके बाद कुरुकुल-प्रधान भीष्म ने बारम्बार सिंहनाद करके शीघ्र ही बाणवर्षा से अर्जुन का रथ ढक दिया। वह रथ क्षण भर में ध्वजा और सारथी वासुदेव सहित भीष्म के बाणों से अटश्य हो गया। सत्वसम्पन्न वासुदेव धैर्य धारणपूर्वक, तनिक भी विचलित न होकर, भीष्म के बाणों से पीड़ित अर्जुन के रथ के घोड़ों को हाँकने लगे। अर्जुन ने मेघ के समान गरजनेवाला दिव्य गाण्डीव धनुष चढ़ाकर तीक्ष्ण बाण से भीष्म का धनुष काट डाला। धनुष कट जाने पर कुरुकुल-तिलक भीष्म ने तुरन्त दूसरा दृढ़ धनुष हाथ में लिया और उस पर नई डोरी चढ़ा ली। वे उसे दोनों हाथों से खींचने लगे। अर्जुन ने कुपित होकर वह धनुष भी काट डाला। तब अर्जुन की फुर्ती की तारीफ़ करके भीष्म कहने लगे—हे महाबाहो, शाबाश! ऐसा अद्भुत कर्म तुम्हारे योग्य ही है। वत्स अर्जुन, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। अब तुम दृढ़तापूर्वक मेरे साथ युद्ध करो।

इस प्रकार अर्जुन की प्रशंसा करके और धनुष लेकर वे फिर युद्ध करने और बाण बरसाने लगे। वासुदेव ने घोड़े हाँकने की निपुणता दिखाते हुए मण्डलाकार रथ-गति से भीष्म के उन बाणों

६० को व्यर्थ कर दिया। राजन्, तब महावीर भीष्म ने तीक्ष्ण बाणों से वासुदेव और अर्जुन दोनों को घायल कर डाला। भीष्म के बाणों से शरीर क्षत-विक्षत हो जाने पर, सींग की चोटों से घायल होकर गरजते हुए दो साँड़ों के समान, श्रीकृष्ण और अर्जुन शोभायमान हुए। भीष्म ने फिर क्रुद्ध होकर बाण-वर्षा करके चारों ओर से श्रीकृष्ण और अर्जुन को छिपा दिया। वे अट्टहास करके तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से श्रीकृष्ण को विचलित करके बारम्बार अर्जुन को पीड़ित करने लगे।

शत्रु-वीरघाती श्रीकृष्ण ने देखा कि युद्ध में भीष्म पितामह घोर पराक्रम दिखा रहे हैं, किन्तु अर्जुन उनके साथ कोमल युद्ध कर रहे हैं। दोनों सेनाओं के बीच में खड़े होकर भीष्म लगातार बाणवर्षा करते हुए सूर्य के समान तप रहे थे। वे मानों प्रलय कर देंगे, इस तरह युद्ध करके युधिष्ठिरपक्ष के चुने-चुने श्रेष्ठ योद्धाओं को मार रहे थे। श्रीकृष्ण यह नहीं सह सके। उन्होंने सोचा कि पाण्डवों की सेना बहुत थोड़ी रह गई है। भीष्म पितामह युद्ध में आकर एक ही दिन में सब देवताओं और दानवों का संहार कर सकते हैं, फिर सेना और अनुचरों-सहित पाण्डवों को नष्ट करना तो उनके लिए कोई बात ही नहीं। वीर पाण्डवों की और सोमकों की सेना को भागते देखकर कौरव लोग पितामह को आनन्दित करते हुए उनका पीछा कर रहे हैं। अतएव पाण्डवों के हित के लिए आज मैं ही भीष्म को मारूँगा, पाण्डवों के इस बोझ को मैं ही हलका करूँगा। यद्यपि भीष्म तीक्ष्ण बाण मार रहे हैं; किन्तु अर्जुन, पितामह के गौरव की रक्षा के लिए, अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते।

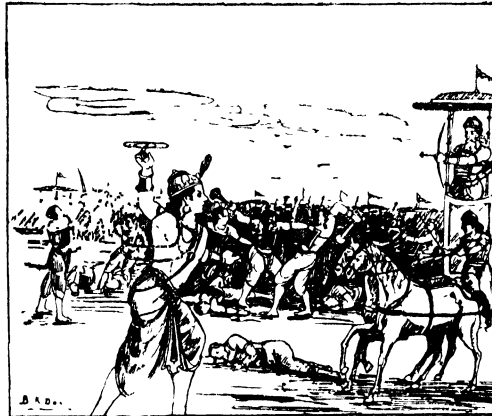
कृष्ण भगवान् यों सोच रहे थे, और उधर भीष्म पितामह क्रुद्ध होकर अर्जुन के ऊपर दारुण बाण बरसाने लगे। भीष्म के चलाये हुए असंख्य बाण दसों दिशाओं में भर गये। उस समय अन्तरिक्ष, दिशा, पृथ्वीतल या सूर्यमण्डल कुछ भी नहीं सूँभ पड़ता था। धुएँ के रङ्ग की तेज़ आँधी चलने लगी। सब दिशाएँ चोभ को प्राप्त हुईं। द्रोण, विकर्ण, जयद्रथ, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, कृपाचार्य, श्रुतायु, अम्बष्ठराज, विन्द, अनुविन्द, सुदक्षिण, प्राच्य, सौवीरगण, वसातिगण, क्षुद्रकगण, मालवगण आदि सब राजा भीष्म की आज्ञा से शीघ्रतापूर्वक युद्ध करने के लिए अर्जुन की ओर दौड़े। सात्यकि ने देखा कि हाथी-घोड़े-रथ-पैदल इन चार अङ्गोंवाली असंख्य सेना चारों ओर से अर्जुन को घेर रही है। इस प्रकार वासुदेव और अर्जुन को चतुरङ्गिणी सेना से घिरते देखकर महापराक्रमी सात्यकि उनकी सहायता के लिए शीघ्र अपना रथ दौड़ाते हुए वहाँ पहुँचे। विष्णु ने जैसे इन्द्र की सहायता की थी, वैसे ही प्रधान धनुर्धर यादवश्रेष्ठ सात्यकि एका-एक उस सेना में घुसकर अर्जुन की सहायता करने लगे। सात्यकि ने देखा कि भीष्म ने पाण्डव-पक्ष की सेना के सब वीरों को भयभीत कर दिया है और हाथी, घोड़े, रथ, ध्वजा आदि काट-काट कर उनके ढेर लगा दिये हैं। भीष्म को युधिष्ठिर की भागती हुई सेना का पीछा करते देखकर सात्यकि ने अपनी सेना के वीरों से कहा—चत्रियो, कहाँ भागे जा रहे हो? प्राचीन

पण्डितों का कथन है कि युद्ध से भागना क्षत्रिय का धर्म नहीं है। हे वीरो, अपनी प्रतिज्ञा को मत तोड़ो। अपने वीर-धर्म का पालन करो।

यशस्वी श्रीकृष्ण ने भी देखा कि सब क्षत्रिय भागे जा रहे हैं, भीष्म पितामह संग्राम में प्रचण्ड रूप धारण करते जा रहे हैं, अर्जुन कोमल युद्ध कर रहे हैं और कौरवसेना के वीर दौड़-दौड़कर आक्रमण कर रहे हैं। सब यादवों के स्वामी कृष्णचन्द्र से यह नहीं देखा गया। वे सात्यकि की प्रशंसा करते हुए कुपित होकर कहने लगे—हे यदुश्रेष्ठ, जो जा रहे हैं उन्हें जाने दो। जो खड़े हैं वे भी भाग जायें। आज मैं अकेला ही भीष्म को और अनुचरों सहित द्रोण को मारकर रथ से गिराता हूँ; तुम खड़े-खड़े तमाशा देखो। आज कौरवसेना का एक भी वीर मेरे क्रोध से नहीं बच सकता। मैं अभी भयङ्कर चक्र हाथ में लेकर भीष्म को मार डालूँगा। इस तरह भीष्म, द्रोणाचार्य और उनके अनुचरों को मारकर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव का प्रिय करूँगा। धृतराष्ट्र के सब पुत्रों को और उनके पत्न के मुख्य राजाओं को मारकर आज मैं प्रसन्नतापूर्वक राजा युधिष्ठिर को राजगद्दी पर बिठाऊँगा।

अब महात्मा वासुदेव ने घोड़ों की रास हाथ से छोड़ दी। सहस्रवज्र-सदृश, बहुत ही पैंने, सूर्यसदृश प्रभा-सम्पन्न चक्र को हाथ में लेकर घुमाते हुए वे रथ से कूद पड़े। सिंह जैसे गज-राज को मारने के लिए दौड़े वैसे कृष्ण-

चन्द्र भीष्म को मारने के लिए कौरवसेना की ओर दौड़े। उस समय उनके शरीर का पीताम्बर आकाश में स्थिर बिजली से युक्त मेघ के समान शोभा को प्राप्त होने लगा। श्रीकृष्ण के कोपरूप सूर्य के उदय में प्रफुल्लित, तुरधारसदृश तीक्ष्ण अग्रभाग रूप पत्तों से शोभित, श्रीकृष्ण के शरीररूप सरोवर में उत्पन्न बाहु-मृणाल पर स्थित, सुदर्शन चक्र रूप पद्म—विष्णु की नाभि से उत्पन्न, बालसूर्य-सन्निभ, सृष्टि के आदिकाल के पद्म के समान—शोभा को प्राप्त



६०

हुआ। क्रुद्ध श्रीकृष्ण को चक्र हाथ में लिये देखकर सब प्राणी ऊँचे स्वर से हाहाकार करने लगे। सबने समझा कि अब कुरुकुल का नाश हुआ। धूमकेतु जैसे चराचर जगत् को जलाने के लिए उदित होता है वैसे ही लोकगुरु वासुदेव चक्र हाथ में लेकर, जीवलोक को जलानेवाले प्रलय-काल के अग्नि के समान, भीष्म पितामह की ओर वेग से दौड़े।

श्रीकृष्ण को अपनी ओर चक्र लेकर आते देखकर महात्मा भीष्म तनिक भी नहीं घबराये। वे अविचलित भाव से गाण्डीव के समान श्रेष्ठ धनुष की डोरी बजाते हुए कहने लगे— हे श्रीकृष्ण ! हे जगन्निवास ! हे चक्रपाणि ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप प्राणियों की रक्षा करनेवाले शरण्य हैं। आप बलपूर्वक इस श्रेष्ठ रथ पर से मुझे मार गिराइए। आप मुझको मारेंगे तो मुझे इस लोक और परलोक में कल्याण प्राप्त होगा। हे यदुनाथ ! आप मुझे मारने दौड़े, इससे मेरी प्रतिष्ठा और कीर्ति और भी बढ़ गई।

भीष्म के ये वचन सुनकर वेग के साथ उनके सामने जाने के लिए उद्यत कृष्णचन्द्र ने कहा—हे भीष्म, तुम्हीं इस महाविनाश के मूल कारण हो। तुम्हारे ही कारण आज दुर्योधन भाई-बन्धुओं सहित विनष्ट होगा। हे भीष्म, द्यूत में आसक्त राजा को उससे रोकना ही धार्मिक मन्त्रियों का कर्तव्य है। यदि कोई राजा काल-विपर्यय के कारण उस उपदेश को न मानकर धर्म-विरुद्ध कार्य को न छोड़ना चाहें तो उसको छोड़ देना ही श्रेयस्कर होता है।

महानुभाव यदुवीर वासुदेव के वचन सुनकर भीष्म ने कहा—हे जनार्दन ! दैव ही प्रबल है। मैंने हित-कामना से बारम्बार धृतराष्ट्र से कहा कि यादवों ने अपने हित के लिए कंस को छोड़ दिया था; तुम भी दुर्योधन को त्याग दो। परन्तु उन्होंने दैववश बुद्धि विपरीत होने के कारण मेरा वह हितोपदेश नहीं सुना।

इसी समय विशालबाहु वीर अर्जुन रथ से कूदकर यदुवीर श्रीकृष्ण के पीछे दौड़े। अर्जुन ने जाकर श्रीकृष्ण के दोनों हाथ पकड़ लिये। यागेश्वर कृष्णचन्द्र उस समय क्रोध में थे, इस कारण यद्यपि अर्जुन ने उनको रोकना चाहा, तो भी वे उसी तरह अर्जुन को खींचते हुए भीष्म की १०० ओर चले जैसे प्रबल आँधी किसी वृत्त को खींच ले जाती है। दसवें पग पर जाकर अर्जुन बलपूर्वक पैर जमाकर श्रीकृष्ण को रोक सके। उनके दोनों पैर अर्जुन ने अपने जोर भर पकड़ रखे। सुवर्ण की विचित्र माला पहने हुए अर्जुन ने श्रीकृष्ण के चरणों में सिर रख दिया और उन्हें प्रसन्न करने के लिए कहा—हे केशव ! अपना क्रोध शान्त कीजिए। आप ही पाण्डवों की एकमात्र गति हैं। हे कृष्णचन्द्र, मैं अपने भाइयों और पुत्रों की कसम खाकर कहता हूँ कि जो प्रतिज्ञा कर चुका हूँ उसे अवश्य पूरी करूँगा। मैं आपकी आज्ञा से अवश्य कुरुकुल का संहार करूँगा।

अर्जुन की प्रतिज्ञा और शपथ सुनकर जनार्दन का कोप शान्त हो गया। वेक्षण भर चक्र हाथ में लिये उसी तरह खड़े रहकर फिर लौटकर अर्जुन के रथ पर सवार हुए। घोड़ों की रास हाथ में लेकर उन्होंने पाञ्चजन्य शङ्ख के शब्द से आकाशमण्डल और चारों दिशाओं को प्रतिध्वनित कर दिया। कृष्णचन्द्र निष्क, अङ्गद, कुण्डल आदि भूषण पहने हुए थे; उनके केशों और कमल-सी आँखों की पलकों पर धूल जम रही थी। सफेद दाँत और दाढ़ें चमक रही थीं। ऐसे रूप से हाथ में शङ्ख लिये श्रीकृष्ण को देखकर सब श्रेष्ठ कुरुवीर ऊँचे स्वर से चिखाने लगे।

उस समय कौरव-सेना के बीच मृदङ्ग, भेरी, पटह, पणव, दुन्दुभि आदि बाजों का शब्द, रथों के पहियों की घरघराहट और उग्र सिंहनाद चारों ओर छा गया। अर्जुन के गाण्डीव धनुष का शब्द बिजली की कड़क के समान आकाशमण्डल में और सब दिशाओं में व्याप्त हो गया। अर्जुन के धनुष से छूटे हुए विमल बाण सब ओर फैलने लगे। सूखी घास को जलाने के लिए उद्यत अग्नि के समान राजा दुर्योधन, धनुष और बाण हाथ में लेकर, भोष्म और भूरिश्रवा के साथ अर्जुन की ओर चले। इसके बाद अर्जुन के ऊपर भूरिश्रवा ने सुवर्णपुङ्ख सात भल्लबाण, दुर्योधन ने बड़े वेग से तोमर, शल्य ने गदा और भोष्म ने शक्ति मारी। महाधनुर्धर अर्जुन ने भूरिश्रवा के सातों बाणों को सात बाणों से और दुर्योधन के तोमर को तीक्ष्ण चुरप्र बाण से निष्फल करके भोष्म की बिजली के समान चमकीली शक्ति और शल्य की भारी गदा को दो बाणों से काट डाला। इसके बाद अर्जुन ने विचित्र अग्रमेय गाण्डीव धनुष को दोनों हाथों से खींचकर विधिपूर्वक आकाश में अमोघ माहेन्द्र अस्त्र छोड़ा। धनुर्धर अर्जुन उम उत्तम अस्त्र और विमल अग्निवर्ण बाणों के द्वारा सम्पूर्ण शत्रुसेना को रोकने लगे। अर्जुन के धनुष से छूटे हुए बाण रथ, ध्वजा, धनुष, बाहु आदि काटकर शत्रुपक्ष के मनुष्य, हाथी, घोड़े आदि के शरीरों में घुसने लगे। अर्जुन ने युद्ध में पड़े बाणों से दसों दिशाओं को व्याप्त करके गाण्डीव धनुष के शब्द से शत्रुओं के हृदयों को व्यथित करना शुरू किया। उस घोर संग्राम में गाण्डीव के शब्द ने शङ्ख, दुन्दुभि, रथ, घोड़े, हाथी आदि के उग्र शब्दों को छिपा लिया। गाण्डीव की ध्वनि को सुनकर विराट आदि वीर राजा और पाञ्चालराज द्रुपद निर्भय भाव से अर्जुन के पास आ गये।

१०

महाराज! आपकी सारी सेना में जहाँ जितने गाण्डीव धनुष का शब्द सुना वहीं वह खड़ा सा रह गया। किसी शत्रु को अर्जुन के सामने जाने का साहस नहीं हुआ। उस घोर-तर युद्ध में अर्जुन के तीक्ष्ण भल्ल बाणों की गहरी चोट खाकर रथ, घोड़े, सारथी, वीर रथी आदि मर-मरकर गिर रहे थे। नाराच बाण लगने से प्राणहीन होकर सुवर्णशृङ्खलायुक्त पताका-शोभित हाथी और उनके ऊपर के योद्धा पृथ्वी पर गिर रहे थे। उग्रवेगधारी अर्जुन के बाणों से जिनके कवच कट गये हैं और शरीर फट गये हैं, ऐसे वीर योद्धा मर-मरकर गिरने लगे। जिनके यन्त्र कट गये और इन्द्रकील निहत हो गये हैं, ऐसे बड़े-बड़े सेना के आगे के भण्डे कट-कटकर गिरने लगे। अर्जुन के बाण लगने से शीघ्र ही मरकर रथी, हाथी, घोड़े और पैदल अपने अङ्गों को पकड़े हुए पृथ्वी पर गिरते देख पड़ते थे। इस प्रकार अर्जुन ने ऐन्द्र अस्त्र के प्रभाव से रण में अद्भुत घोर कर्म कर दिखाया। अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों ने मनुष्यों आदि के शरीर काट-काटकर रक्त की एक भयानक नदी बहा दी। उस वैतरिणी-सदृश भयानक नदी में मनुष्यों की मेढ़ा फेंके के समान, मरे हुए हाथियों-घोड़ों और मनुष्यों के शरीर तटभूमि के समान, मज्जा और मांस कीचड़ के समान, खोपड़ियों के केश सेवार के समान, शरीरों के समूह प्रवाह के समान, टूटे-फूटे कवच

१२०

लहरों के समान और मनुष्य आदि की कटी हड्डिया कड़ुड़ी के समान जान पड़ती थीं। बड़े चौड़े पाटवाली वह महानदी बड़े वेग से बह चली। उसके दोनों किनारों पर कुत्ते, कड़ू, सियार, गिड़, कौए, चोल आदि मांसभोजी पशु-पक्षी और राक्षस देख पड़ रहे थे। मेदा, बसा और रक्त से परिपूर्ण वह नदी अर्जुन के बाणों से प्रकट होकर बह चली।

इस प्रकार अर्जुन के द्वारा कौरवों की सेना के वीरों को नष्टप्राय देखकर चेदि, पाञ्चाल, करूप, मत्स्य आदि वीरों के साथ सब पाण्डव प्रसन्न होकर सिंहनाद करने लगे। जय से प्रगल्भ उन पुरुषश्रेष्ठों का हर्षनाद सुनकर कौरवगण त्रस्त हुए। उन्होंने देखा कि शत्रुओं के लिए भयप्रद अर्जुन ने सेना के सभी श्रेष्ठ वीरों को प्रायः मार डाला है। सिंह जैसे मृगों को मारकर भयभीत कर देता है, वैसे ही शत्रुसेना को नष्ट और त्रस्त देखकर अत्यन्त हर्ष से अर्जुन और वासु-
३० देव सिंहनाद करने लगे। द्रोण, भीष्म, दुर्योधन, बाह्लीक आदि बहुत ही घायल हो रहे थे। उन्होंने देखा कि सूर्य अब अस्त होने को है और प्रलयकाल सा वह घोर असह्य अस्त्र अपना अमोघ प्रभाव उसी तरह फैलाये हुए है। सूर्य की किरणों से लाल रङ्ग धारण किये हुए सन्ध्या-काल का सामने देखकर कौरवों ने युद्ध रोक दिया।

अर्जुन भी शत्रुओं को जीतने से कीर्ति पाकर, अपना काम पूरा करके, सन्ध्याकाल देख भाइयों और अन्य राजाओं के साथ शिविर को लौट चले। उस सन्ध्याकाल में कौरवसेना के बीच घोर चिन्नाहट और कोलाहल होने लगा।

राजन्, आपकी सेना में जितने लोग बचे थे उनके भुण्ड यह कहते हुए लौटे कि आज अर्जुन ने दस हज़ार रथियों और सात सौ हाथियों को मारकर, प्राच्य-सौवीर-क्षुद्रक-मालव आदि को विलकुल ही नष्ट करके, बहुत बड़ा काम किया। ऐसा अद्भुत काम कोई नहीं कर सकता। अर्जुन इस समय संसार भर में अद्वितीय योद्धा हैं। उन्होंने क्रुद्ध होकर आज अकेले ही श्रुतायु, अम्बष्ठपति, चित्रसेन, दुर्मर्षण, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, जयद्रथ, बाह्लीक, भूरिश्रवा, शल्य, शल और महाप्रतापी भीष्म को जीत लिया।

चारों ओर हज़ारों पल्लिते और दीपक जल रहे थे। उस उजले में जाकर आपकी सेना १३८ डेरे पर पहुँची। अर्जुन ने सब योद्धाओं को भय से व्याकुल कर दिया था।

साठवाँ अध्याय

अर्जुन के साथ भीष्म का द्वन्द्वयुद्ध

सञ्ज कहते हैं—हे भारत ! रात बीत गई। शत्रुओं के ऊपर क्रुद्ध भीष्म पितामह अपनी सब सेना साथ लेकर शत्रुसेना से लड़ने के लिए युद्धभूमि का चले। उनके साथ बहुत सी सेना

लेकर द्रोणाचार्य, दुर्योधन, बाह्लीक, दुर्मर्षण, चित्रसेन, महाबली जयद्रथ और अन्य सब महारथी राजा चले। उन सब तेजस्वी महाबली राजा लोगों के बीच में महारथी भीष्म देवगण सहित इन्द्र के समान शोभा को प्राप्त हुए। उस सेना के बीच हाथियों और रथों के ऊपर लाल, पीले, सफेद आदि अनेक रङ्ग के झण्डे फहरा रहे थे। वह कौरवसेना भीष्म, अन्य महारथियों, हाथियों और घोड़ों से, सौदामिनी-मण्डित मेघमाला के समान, शोभित हुई। इसके बाद भीष्म द्वारा सुरक्षित वह कौरवसेना सहसा अर्जुन से युद्ध करने के लिए पाण्डवसेना के सामने, भयङ्कर नदीप्रवाह के समान, आगे बढ़ने लगी।

महावीर अर्जुन ने दूर से हाथियों, घोड़ों, रथों और पैदलों से परिपूर्ण उस मेघमाला के समान कौरवसेना को अपनी ओर आते देखा। वे अपने पक्ष की सेना को साथ लेकर, सफेद घोड़ों से युक्त रथ पर चढ़कर, शत्रुसेना के सामने चले। आपके पुत्र, सब कौरवगण और उनके सैनिक अर्जुन के बढ़िया रथ और स रथी को देखकर अत्यन्त उदास हुए। पाण्डवों ने आज जिस व्यूह की रचना की थी उसके दोनों ओर चार हज़ार गजराज थे। महारथी अर्जुन शस्त्र हाथ में लिये सावधान होकर उस व्यूह की रक्षा कर रहे थे। आपके पक्ष के वीर उत्सुक होकर उस श्रेष्ठ व्यूह को देखने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर ने पहले दिन जैसा १० अद्भुत अदृष्टपूर्व व्यूह रचा था वैसा ही यह व्यूह भी था।

इसके बाद समरभूमि में हज़ारों भेरी, शङ्ख आदि बाजे बजने लगे। उनके साथ तूर्य-ध्वनि और सिंहनाद भी सुन पड़ने लगा। फिर क्षण भर में धनुष और बाण चढ़ाने का शब्द और शङ्खों का शब्द इतना बढ़ गया कि उसमें भेरी, पणव आदि का शब्द छिप गया। आकाशमण्डल में भूल का तम्बू सा तन गया। रथी घोड़ा के प्रहार से दूसरा रथी रथ, सारथी और घोड़ा समेत मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसी तरह हाथियों और घोड़ों के सवारों के प्रहार से मरकर हाथी और घोड़े पृथ्वी पर गिरने लगे। इधर-उधर दौड़ते हुए घुड़सवार लोग, दूसरे घुड़सवारों के हाथों, प्रास और शक्ति आदि शस्त्रों के प्रहार से मरकर पृथ्वी पर गिरने लगे। उस समय उनकी दशा अद्भुत देख पड़ती थी। सुवर्ण-तारागण-भूषित, सूर्य के समान प्रभासम्पन्न तरकस, प्रास, परश्वध और खड्ग आदि के प्रहार से कट-कटकर वे पृथ्वी पर गिरने लगे। बहुत से रथी और सारथी हाथियों की सूँड़ और दाँतों के प्रहार से मरकर और हाथियों के सवार श्रेष्ठ रथियों के बाणों की चोट खाकर पृथिवी पर गिरने लगे। उस समय अनेक पैदल भी हाथियों के वेग और दाँतों की चोट से पीड़ित होकर आर्तनाद करने लगे।

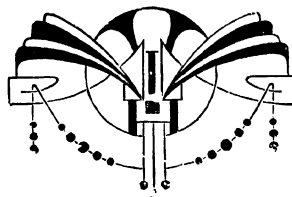
इस प्रकार घुड़सवार और पैदल कम होने लगे। हाथी, घोड़े और रथ आन्त से होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। उस समय महारथी भीष्म ने महारथियों के साथ स्थित अर्जुन के रथ २० की ध्वजा दूर पर देखी। पाँच ताल ऊँची तालचिह्नयुक्त ध्वजा से शोभायमान, वेगशाली घोड़ों से

युक्त, रथ पर सवार महाबली भीष्म उस समय महाअस्त्र, बाण आदि से प्रकाशमान अर्जुन की तरफ चले। उनके साथ ही इन्द्र के समान प्रभावशाली अर्जुन पर आक्रमण करने के लिए



द्रोण, कृप, शल्य, विविशति, दुर्योधन, सोमदत्त के पुत्र आदि वीर भी चले। इसी समय सब अस्त्रों के ज्ञाता, सुवर्ण-कवचधारी अभिमन्यु बड़े वेग के साथ युद्ध के लिए इन लोगों के आगे आये। भीमकर्मा अभिमन्यु—कृपाचार्य आदि महाबली वीरों के अस्त्र-शस्त्रों का काटकर—महामन्त्र द्वारा आहुतियों को प्राप्त, उवालामाली अग्नि के समान शोभायमान हुए। उधर परम पराक्रमी भीष्म पितामह युद्ध में शत्रुओं के रक्त की नदी बहाकर, अभिमन्यु को लाँघकर, अर्जुन के समीप जाकर बाणों की वर्षा करने लगे। हँसते हुए अर्जुन ने अद्भुत गाण्डोव धनुष चढ़ाकर इतने बाण छोड़े कि भीष्म के सब अस्त्र-शस्त्र तिल-तिल कट गये।

इसके बाद वे भीष्म के ऊपर अमोघ तीक्ष्ण भस्त्र बाण बरसाने लगे। महाराज, आपके पक्ष के योद्धाओं ने आश्चर्य के साथ देखा कि सूर्य जैसे अपनी किरणों से घने अँधेरे को नष्ट कर देते हैं, वैसे ही अर्जुन के अस्त्रजाल को भीष्म ने आकाश में ही अपने दिव्य अस्त्रों से नष्ट कर दिया। कौरव, सृज्य और अन्य सब लोग प्रधान योद्धा भीष्म और अर्जुन का—इस प्रकार २८ प्रबल धनुष चढ़ाने के घोर शब्द के साथ—द्वन्द्व युद्ध देखने लगे।



महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् ११) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकखर्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री खर्च सहित १३।१) या ६।१।१) जो सज्जन पेशगी मनी-आर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतिर्या राह में गुम न हो जायें और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायें, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) उसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दे भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य १।१) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को वे ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिल्कुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छुपा रहता है और पूरा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हुए लोगों ग्राहकों में से किसी एक का नाम देकर निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

(६) जिन ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा पते में कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय का पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक्कत न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने इलाके के डाकखाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रखें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पृष्ठ-ताज़ करने की जरूरत न हो। “हम परिचित ग्राहक हैं” यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो ‘कूपन’ पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनी-आर्डर-फार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्र-व्यवहार का पता—

मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

शुभ संवाद !

लाभ की सूचना !!

महाभारत-मीमांसा

कम मूल्य में

राव बहादुर चिन्तामणि विनायक वैंद्य एम० ए०, एल्-एल्० बी०, मराठी और ऍंगरेज़ी के नामी लेखक हैं। यह ग्रन्थ आप ही का लिखा हुआ है। इसमें १८ प्रकरण हैं और उनमें महाभारत के कर्ता (प्रणेता), महाभारत-ग्रन्थ का काल, क्या भारतीय युद्ध काल्पनिक है?, भारतीय युद्ध का समय, इतिहास किनका है?, वर्ण-व्यवस्था, सामाजिक और राजकीय परिस्थिति, व्यवहार और उद्योग-धन्ये आदि शीर्षक देकर पूरे महाभारत ग्रन्थ की समस्याओं पर विशद रूप से विचार किया गया है।

काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्रायुक्त बाबू भगवानदासजी, एम० ए० की राय में महाभारत का पढ़ने से पहले इस मीमांसा को पढ़ लेना आवश्यक है। आप इस मीमांसा को महाभारत की कुंजा समझते हैं। इसी से समझिए कि ग्रन्थ किस कोटि का है। इसका हिन्दी-अनुवाद प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय पण्डित माधवरावजी सप्रे, बी० ए०, का किया हुआ है। पुस्तक में बड़े आकार के ४०० से ऊपर पृष्ठ हैं। साथ में एक उपयोगी नक्शा भी दिया हुआ है जिससे ज्ञात हो कि महाभारत-काल में भारत के किस प्रदेश का क्या नाम था।

हमारे यहाँ महाभारत के ग्राहकों के पत्र प्रायः आया करते हैं जिनमें स्थल-विशेष की शंकाएँ पृच्छी जाती हैं। उन्हें समयानुसार यथामति उत्तर दिया जाता है। किन्तु अब ऐसी शंकाओं का समाधान घर बैठे कर लेने के लिए हमने इस महाभारत-मीमांसा ग्रन्थ को पाठकों के पास पहुँचाने की व्यवस्था का संकल्प कर लिया है। पाठकों के पास यदि यह ग्रन्थ रहूँगा और वे इसे पहले से पढ़ लेंगे तो उनके लिए महाभारत की बहुत सी समस्याएँ सरल हो जायँगी। इस मीमांसा का अध्ययन कर लेने से उन्हें महाभारत के पढ़ने का आनन्द इस समय की अपेक्षा अधिक मिलने लगेगा। इसलिए महाभारत के स्थायी ग्राहक यदि इसे मँगाना चाहें तो इस सूचना को पढ़ कर शीघ्र मँगा ले। उनके सुभीते के लिए हमने इस ४) के ग्रंथ को केवल २॥) में देने का निश्चय कर लिया है। पत्र में अपना पूरा पता-ठिकाना और महाभारत का ग्राहक-नंबर अवश्य होना चाहिए। समय बीत जाने पर महाभारत-मीमांसा रिझायती मूल्य में न मिल सकेगी। प्रतियाँ हमारे पास अधिक नहीं हैं।

मैनेजर बुकडिपो—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

